गांधीजी, १९०० — जोहानिसबर्गमें

# सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

३

(१८९८-१९०३)

प्रकाशन विभाग

सूचना और प्रसारण मन्त्रालय

भारत सरकार

# भूमिका

सन् १८९८ से १९०३ तक गाधीजी दक्षिण आफ्रिकामें रहे। केवल एक वर्ष (१९०१–१९०२) वे वहाँ नही थे — भारतमें थे। ये वर्ष भारतीयोके हितकी दृष्टिसे गांधीजीकी सरगर्म कोशिशो के वर्ष थे। यह उनके व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवनका महत्त्वपूर्ण समय था। इन दिनो अपने जीवनको अधिकाधिक सरल बनाने और अपने देशभाइयोकी सेवा करनेकी प्रेरणा उन्होंने निरन्तर बढ़ती हुई अनुभवकी। डर्बनके भारतीय अस्पतालमें रोज घटे-दो-घंटे उन्होने सहायककी तरह काम किया और गिरमिटिया भारतीयोके घनिष्ठ सम्पर्कमें आये। उन्होंने बच्चोकी हिफ़ाजत और तीमारदारीमें भी विशेष दिलचस्पी ली।

सन् १८९८ में नेटाल भारतीय काग्रेसकी सदस्य-सख्या बढ़ाने और उसके लिए कोश निर्माण करनेमें उन्होने बड़ी मेहनतकी। सन् १८९९ में जब बोअर-युद्ध शुरू हुआ, उन्होंने भारतीय आहत-सहायक दलका संगठन किया और नेटाल-सरकारको उसकी सेवाएँ दे दी। तब उन्हे अपने ब्रिटिश नागरिक होनेका अभिमान था। दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोपर प्राय: यह दोष मढ़ा जाता था कि वे केवल धन-संग्रहमें लगे हुए स्वार्थी लोग है। गाधीजी इस आरोप को गलत सिद्ध करनेके लिए विकल थे। मोर्चे पर अक्सर गोलियोंकी बौछार में छ' सप्ताह रहकर गांधीजी और दलके शेष लोगोंने जो सेवाएँ कीं, उनकी सबने प्रशंसा की। कलकत्तेके अपने एक भाषण में उन्होने मोर्चे पर प्राप्त सम्पन्न अनुभवका जिक्र किया था। उन्होने वहाँकी पूर्ण व्यवस्था और पवित्र निस्तब्धताका मिलान ट्रैपिस्ट मठोके जीवनसे किया और कहा : "तब फौजी सिपाही निरपवाद रूपसे प्यारा था . . . उन्हें अर्जुनके समान विशुद्ध कर्त्तव्यकी भावना युद्धक्षेत्रमें ले गई थी। और इसने कितने जंगली, घमंडी और उद्धत जनोंको सिखाकर भगवानके नम्र जीवोंमें नही बदल दिया है?"

अक्टूबर १९०१ में गांधीजीने माना कि दक्षिण आफ्रिकामें उनका काम खत्म हो चुका है। और उन्होने भारत लौटना निश्चित किया। अपने मनका स्नेह और आदर व्यक्त करते हुए भारतीयोंने उन्हें मानपत्र और बहुमूल्य भेंटें दी। इस धनराशिको गाधीजीने एक बैंकमें जमा करके एक न्यास (ट्रस्ट) बना दिया कि वह पैसा दक्षिण आफ्रिकामें सार्वजनिक कार्योंमें लगाया जा सके। यदि उनकी सेवाओंकी आवश्यकता पड़े तो लौटनेका वचन देकर बड़ी कठिनाई से गाधीजी भारत रवाना हो सके।

देशमें आकर गांधीजी अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके अधिवेशनमें कलकत्ता गये और उन्होंने दक्षिण आफ्रिकापर प्रस्ताव पेश किया। वहाँ भारतीयोकी अवस्थाके बारेमें उन्होने सार्वजनिक सभाओंमें भाषण दिये और वे अनेक प्रमुख भारतीय नेताओसे मिले। गोखलेसे उन्हे विशेष लगाव हुआ। उनके साथ वे कलकत्तेमें एक महीना रहे।

राजकोट लौटकर उन्होने वकालत जमानेका प्रयत्न किया; किन्तु प्रारम्भिक कठिनाइयाँ आती रही। प्राय: भारतीय समाचारपत्रोंमें लिखकर दक्षिण आफ्रिकाकी बढ़ती हुई परेशानियों पर वे चिन्ता व्यक्त करते रहे। वे दक्षिण आफ्रिका-स्थित अपने सहयोगियोसे बराबर सम्पर्क बनाये रहे और वहाँकी परिस्थितियोंकी जानकारी प्राप्त करते रहे।

जब राजकोटमें प्लेगका खतरा हुआ, वे प्लेग-स्वयंसेवक समितिके मन्त्री बने। कुछ समयके बाद बम्बई जाकर उन्होने अपनी वकालतको यशस्वी बनानेकी ओर ध्यान दिया।

नवम्बर १९०२ में उपनिवेश-मंत्री श्री चेम्बरलेन दक्षिण आफ्रिका जा रहे थे, अतः वहाँके भारतीयोंने गांधीजीसे लौटनेका आग्रह किया। अपने जीवनकी इस अनिश्चितताके समयमें उन्होंने प्रभुके रूप सत्यकी ध्रुवतामें अपनी श्रद्धा प्रकट की। इस अवसरका जिक्र करते हुए उन्होंने लिखा है, "इस [संसार] में जो एक परमतत्त्व निश्चित रूपसे निहित है, यदि उसकी झाँकी सध सके, उसपर श्रद्धा रहे, तभी जीना सार्थक है। उसकी खोज ही परम पुरुषार्थ है।" (गुजराती आत्मकथा, १९५२, पृष्ठ २५०)। उनका दक्षिण आफ्रिका लौटना इस खोजका संकल्प था।

दिसम्बर-खत्म होते-होते वे डर्बन पहुँचे। उन्होंने देखा कि ट्रान्सवालमें नये एशियाई विभागके द्वारा भारतीयोंपर पुराने बोअर-नियम अभूतपूर्व कठोरतासे लागू किये जा रहे हैं। उन्होंने चेम्बर-लेनके समक्ष एक प्रतिनिधिमण्डलका नेतृत्व किया और दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंपर लादी गई वैधानिक निर्योग्यताओंको सामने रखा। दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोके धुँधले भविष्यकी संभावना से उन्होंने भारत लौटना मुलतवी करके जोहानिसबर्गमें रहना तय किया। ट्रान्सवालके सर्वोच्च न्यायालयकी सनद लेकर वे फिर से भारतीयोंकी शिकायतो को दूर करानेके लिए अनेक मोर्चों-पर काम करने लगे। गोखलेको लिखे गये एक पत्रमें वहाँके आन्दोलनकी बढ़ती हुई गतिके बारेमें उन्होने कहा, "संघर्ष मेरी अपेक्षासे बहुत अधिक जोरदार है।"

इस समय उनका व्यक्तिगत जीवन आत्म-निरीक्षणके एक नये दौरसे गुजरा। जिस तरह दक्षिण आफ्रिकाके पहले निवासमें ईसाई मतने उनकी धार्मिक जिज्ञासाको प्रभावित किया था, उसी तरह इस बार थियॉसफ़ीने उन्हें प्रभावित किया और वे हिन्दू धर्मशास्त्रोके गम्भीर अध्ययनकी ओर प्रेरित हुए। गीता उनके लिए "आचारकी प्रौढ़ मार्गदर्शिका," "धार्मिक कोश" हो गई और उन्होंने उसे कंठस्थ कर लिया। अपरिग्रहके विचारने उनके मनको इतना जकड़ा कि उन्होंने अपनी बीमाकी पालिसी रद करा दी। उन्होने निश्चय किया, अबसे उनके पास जो बचेगा जनताकी सेवामें खर्च होगा। इस निर्णयसे उनके बड़े भाई श्री लक्ष्मीदास और उनके बीच गम्भीर गलतफ़हमी पैदा हो गई, जो श्री लक्ष्मीदासकी मृत्युके कुछ ही पहले मिटी।

जोहानिसबर्गमें प्लेग फैलनेपर फिर सार्वजनिक सेवाका अवसर आया। सहयोगियोके एक छोटे-से दलके साथ नगरपालिकाकी ओरसे प्रबन्ध होने तक वे स्वभावके अनुसार जोखिम उठाकर बीमारोंकी सेवामें लग गये। भारतीय बस्तीसे गिरमिटिया मजदूरोंको हटाकर क्लिप्सप्रूट फार्मके तम्बुओंमें कर दिया गया था। गांधीजी रोज वहाँ जाते थे और उनकी विपत्तिमें उन्हें धीरज बँधाते थे। प्लेगके बारेमें उन्होंने समाचारपत्रोंमें एक चिट्ठी लिखी और उसके कारण वे दो यूरो-पीयोंके सम्पर्कमें आये: पादरी जोसफ़ डोक और हेनरी पोलक। बादमें ये उनके मित्र और सहयोगी बन गये। अलबर्ट वेस्टसे उनकी पहचान नयी-नयी हुई थी; इस पत्रके कारण वे भी और पास आये।

गांधीजीकी प्रेरणा से जून १९०३ में डर्बनसे *इंडियन ओपिनियन*का प्रकाशन शुरू हुआ। दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोंके आन्दोलनमें इससे नवजीवन आया। भारतीय समाजको "उसकी भाव-नाएँ प्रकट करनेवाला और विशेष रूपसे उसके हितमें संलग्न" मुखपत्र मिल गया।

यद्यपि सम्पादककी जगह इस पत्रमें कभी गांधीजीका नाम नही रहा फिर भी यह जानना आवश्यक और दिलचस्प होगा कि उन्होंने *इंडियन ओपिनियन*की जिम्मेदारी अपनी मानी थी। उन्होंने इस पत्रके बारेमें आत्मकथामें लिखा है:

> सम्पादकत्व का सच्चा भार मुझ पर ही पड़ा। बहुत हद तक, मेरे भाग्य में हमेशा दूरसे ही अखबार चलाना रहा है। मनसुखलाल नाजर [प्रथम सम्पादक] तन्त्र चला

नहीं सकते थे यह बात नहीं है. . . किन्तु दक्षिण आफ्रिकाके अटपटे प्रश्नोंपर मेरे रहते हुए स्वतन्त्र लेख लिखनेका उन्होंने साहस ही नहीं किया। मेरी विवेकशक्तिपर उन्हें अतिशय विश्वास था इसलिए लिखनेके सारे विषयोंपर सम्पादकीय लिखनेका बोझ मुझपर डाल देते थे। . . . मैं पत्रका सम्पादक नहीं था फिर भी उसकी सामग्री की सारी जिम्मेदारी मेरी थी। (गुजराती आत्मकथा, १९५२; पृष्ठ २८२)।

इसके बाद गांधीजी हमें *इंडियन ओपिनियन*का महत्त्व बताते हैं:

जबतक [यह पत्र] मेरे हाथमें रहा तबतक इसमें होनेवाले फेरफार मेरी जिन्दगी के फेरफारोंको सूचित करते थे। जैसे अब *यंग इंडिया* और *नवजीवन* मेरे जीवनके कितने ही अंशोंका निचोड़ हैं, इसी प्रकार उस समय *इंडियन ओपिनियन* था। मैं प्रति सप्ताह उसमें अपनी आत्मा उँडेलता और जिसे सत्याग्रह मानता उसे समझानेका प्रयत्न करता। जेलके समयको छोड़कर दस वर्षों तक, अर्थात् १९१४ तक *इंडियन ओपिनियन*का कदाचित् ही कोई ऐसा अंक होगा जिसमें मैंने कुछ न लिखा हो। इसमें एक भी शब्द मैंने बिना विचारे, बिना तोले लिखा हो, या किसीको केवल खुश ही करनेके लिए लिखा हो, या जान-बूझकर अतिशयोक्ति की हो, ऐसा मुझे याद नहीं है। मेरे लिए यह पत्र संयमकी तालीम बन गया और मित्रोंके लिए मेरे विचारोंको जाननेका साधन . . . । (गुजराती आत्मकथा, १९५२; पृष्ठ २८३-८४)।

इस अवधिमें दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोके मसले और गांधीजी द्वारा उन्हे हल करनेके प्रयत्नकी पद्धति पहले वर्षोंके अनुसार रही। नये भारतीय विरोधी कायदे, या जो थे, उनमें जाति-भेद पर आधारित प्रतिक्रियावादी संशोधन पास किये जाते रहे या लागू किये जाते रहे, और उनका विरोध करना पड़ा। इन कायदोका प्रवास-परवानो, बस्तियों और *बाजारों*, गिरमिटिया मजदूरो, अनुमतिपत्रो और मताधिकार पर असर पड़ा। ये सब बातें दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोके सामाजिक और आर्थिक जीवनको छूती थी। इन सबपर गांधीजीने अपने उस समयके तरीकेके मुताबिक नगरपरिषदो, अनुमतिपत्र कार्यालयों, प्रवास-विभाग, एशियाई विभाग, स्थानीय विधानसभाओ, गवर्नर, उच्चायुक्त और उपनिवेश-कार्यालयके अधिकारियों को प्रार्थनापत्र भेजनेकी पद्धतिका अनुसरण किया। अपेक्षाकृत बड़ी, जिन नीतिगत बातोका सम्बन्ध शाही सरकारसे होता था उनको लेकर उपनिवेश सचिवको प्रार्थनापत्र भेजते थे, अथवा उनतक शिष्टमण्डलका नेतृत्व करते थे। जिस अवसरपर वे भारत सरकारका हस्तक्षेप चाहते थे, भारतके वाइसराय के पास मामला ले जाते थे।

जिस दूसरे मोर्चेपर गांधीजी भारतीयोकी तकलीफें दूर करनेकी लड़ाई लड़ते रहे, वह था स्थानीय समाचारपत्रों का। इन्हे वे पत्र लिखते और मुलाकातें देते थे। जब वे सभाओमें बोलते और विशेषत: जब *इंडियन ओपिनियन* मुखपत्रकी तरह उनके पास था, वे अपने देशवासियोको अपने सुधारने-सँवारनेके लिए आत्मनिरीक्षणकी प्रेरणा देते, जिससे वे अपने प्रश्नको शक्तिशाली बनाकर न्याय पा सकें। भारत और इंग्लैंडमें मित्रों और समाचारपत्रोंको वे प्राय: दक्षिण आफ्रिकाकी परिस्थितिके उतार-चढ़ावोंपर पत्र, विवरण और वक्तव्य भेजते रहते थे। गांधीजीके सार्वजनिक कार्यका सामान्य स्वरूप ऐसा था।

जब सन् १८९७ का विक्रेता-परवाना अधिनियम पास हुआ तब १८९८ के अन्त-अन्तमें गाधीजीने उसके हानिकारक प्रभावको स्पष्ट करते हुए एक अच्छा सप्रमाण स्मरणपत्र श्री चेम्बरलेनके

सामने पेश किया। सोमनाथ महाराज और दादा उस्मानको परवाना देनेसे इनकार करने वाले दो प्रमुख मामलोंकी उन्होंने खुद पैरवी की; किन्तु वे दोनोंमें असफल हुए।

अधिकारियोके सामने प्रायः मामले पेश करनेके अतिरिक्त गांधीजीने *इंडियन ओपिनियन*के स्तम्भोंमें दक्षिण आफ्रिकी उपनिवेशोंमें परवाना देनेकी नीतिकी आलोचना करते हुए अनेक लेख लिखे। उन्होंने श्री चेम्बरलेनकी आलोचना की कि वे दक्षिण आफ्रिकामें औपनिवेशिक नीतिका, चाहे वह ब्रिटिश परम्पराओंका स्पष्ट भंग भी करे, विरोध करना नहीं चाहते (१०-९-१९०३)। विक्रेता-परवाना अधिनियम पास होनेके छः वर्ष बाद तक और विशेषतः ट्रान्सवाल और ऑरेंज रिवर कालोनीके ब्रिटिश-सत्ताके अन्तर्गत आनेके बाद उसके दुष्प्रयोग से, उनकी यह धारणा हुई कि "यह नेटालके ब्रिटिश भारतीयोके लिए दूसरे जीवन-संघर्षका शायद आरम्भ-मात्र हो।"

प्रवास, भारतीयोंके सामने दूसरी बड़ी समस्या थी। जहाज-यात्राका पास और भारतीय आगन्तुकोंपर लगाये जानेवाले शुल्क जैसे कुछ अपेक्षाकृत छोटे प्रतिबन्धोंको गाधीजी लिख-लिखाकर दूर करा सके थे, या उनमें सुधार करा सके थे। किन्तु तत्कालीन प्रवासी कानूनोंमें संशोधनोंके द्वारा भारतीय प्रवासियो पर प्रायः गंभीर प्रतिबन्ध लादे जाते थे। केप उपनिवेशके प्रवास-कानून अपेक्षाकृत ज्यादा उदारतापूर्ण थे और गांधीजी नेटालमें ऐसे ही कानून मंजूर करनेके लिए तैयार थे।

ट्रान्सवाल सरकारकी *पृथक्करण*-नीति, जिसने भारतीयोको बस्तियों और *बाजारों*में सीमित करनेके आग्रहपूर्ण प्रयत्नका रूप ले लिया था, भारतीयोंकी अन्य गंभीर समस्या थी। ट्रान्सवालके सर्वोच्च न्यायालयके इस फैसले ने, कि कानून ३, १८८५ के अन्तर्गत सरकार भारतीयोंको बस्तियोंमें रहने और व्यापार करने पर बाध्य कर सकती है, गांधीजीको बहुत बेचैन कर दिया और इस विषयको लेकर उन्होंने अधिकारियों, ब्रिटिश मित्रों, *इंडिया* और वाइसरायको भी तथा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसको अनेक निवेदन भेजे। चेम्बरलेन और जोहानिसबर्गके ब्रिटिश एजेंट को लिखे गये पत्रोंके अतिरिक्त ये प्रार्थनापत्र इस खण्डमें हैं। यूरोपीयो द्वारा प्रार्थनापत्र (अप्रैल १९०३) इस बातका उदाहरण है कि बस्ती-सूचनाके विरुद्ध गांधीजीने समझदार यूरोपीय-मत को किस प्रकार गति दी थी।

डर्बनके महापौरने जब ट्रान्सवाल बस्ती-कानून और *बाजार*-सूचनाके अनुसरणपर कानूनको भारतीयोंके खिलाफ़ सख्त बनाना चाहा तब गांधीजीने इसे "नेटालमें पुराने घृणित कानूनोंको दाखिल करनेका एक असामयिक प्रयत्न" कहकर इसकी निन्दा की (*इंडियन ओपिनियन*, ४-६-१९०३)। केप कालोनीकें ऐसे ही एक कानूनकी गांधीजीने विरोधपूर्ण टीका की; किन्तु साथ ही उपनिवेशके भारतीयोंसे भीड़भाड़ और गन्दगीसे बचनेकी प्रार्थना की (*इंडियन ओपिनियन*, १६-७-१९०३)।

इस अवधिमें भारतीय गिरमिटिया मजदूर बड़ी संख्यामें अनेक अड़चनें और प्रतिबन्ध सहते रहे। गांधीजीने घोषित किया कि यूरोपीयोंकी इच्छाके विरुद्ध गिरमिटिया मजदूरोंका प्रवास नहीं होना चाहिए, किन्तु अनिवार्य वापसीकी शर्तके साथ गिरमिटिया मजदूरोंकी कोई भी प्रवास-योजना स्वीकार नहीं की जानी चाहिए (*इंडियन ओपिनियन*, ६-८-१९०३)। जब ट्रान्सवालके बड़े-बड़े खान-मालिकोंने २,००,००० चीनी मजदूरोंके आयातका प्रस्ताव रखा तब गांधीजीने मानवताके आधार पर इस प्रस्तावका विरोध किया और माँगकी कि पृथक् बाड़ोंमें निवास जैसी अमानवीय शर्तें लगाकर दक्षिण आफ्रिकाकी गोरी कौम चीनियोका अधःपतन न होने दे (*इंडियन ओपिनियन*, २४-९-१९०३)।

मताधिकारपर प्रतिबन्ध दक्षिण आफ्रिकामें भारतीय परिस्थितिका एक स्थायी अंग था। जब ट्रान्सवाल-सरकारने निर्वाचित नगर-परिषदोंके अध्यादेशके मसविदेमें भारतीयोंको मतदानके अधिकारसे वंचित करनेका संशोधन करना चाहा तब गांधीजीने विधान-सभाको रंगके आधारपर इस भेदभावका विरोध करते हुए प्रार्थनापत्र भेजा (जून १०, १९०३)।

दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंके सामने उपस्थित इन प्रमुख समस्याओंके अतिरिक्त गांधीजीने गिरमिटिया मजदूरोंके बच्चोंपर व्यक्ति-कर, भारतीय रिक्शा-चालकोंपर रोक, हाइडेलबर्गमें भारतीय व्यापारियोंपर पुलिसके अत्याचार, और अमतलोमें भारतीय व्यापारियोंके विरुद्ध गोरी-जनताकी उत्तेजना जैसी अनेक दूसरे स्तरकी समस्याओंको भी हाथमें लिया।

गांधीजीके इस कालके सार्वजनिक अथवा व्यक्तिगत कथन अथवा लेखनका प्रधान लक्षण ब्रिटिश विधानमें उनका अविच्छिन्न विश्वास, ब्रिटिश नागरिकताके लाभों और राष्ट्रोंके परिवारके रूपमें साम्राज्यपर निष्ठा था। उनका सम्राज्ञीके जन्म-दिवसोंपर बधाइयाँ भेजना, सम्राज्ञीके देहावसानपर शोक-सभाओंका आयोजन करना, ब्रिटिश प्रजाके समान नागरिकताके अधिकारों और व्यक्तिगत स्वतन्त्रताका अपने पत्रों और निवेदनोंमें बारबार उल्लेख, सम्राज्ञीकी घोषणा, १८५८, का निरन्तर उद्घोष, बोअर-युद्धमें भारतीय आहत-सहायक दलका प्रस्ताव और सेवा-कार्य आदि सभी बातोंका प्रेरणा-विन्दु उनकी साम्राज्य-भावना थी। अक्टूबर १९०१ में अपनी विदाईके समयके भाषणमें उन्होंने कहा, "दक्षिण आफ्रिकामें आवश्यकता गोरे लोगोंके देशकी नहीं, गोरे भ्रातृमण्डलकी भी नहीं, बल्कि एक साम्राज्य भ्रातृमण्डल की है।"

१९०३ के द्वितीयार्धमें घटनाओंने ब्रिटिश सद्भावके प्रति उनके मनमें सन्देह अंकुरित कर दिया। किन्तु धैर्यपूर्वक निवेदन करनेकी पद्धतिसे निष्क्रिय प्रतिरोध और सक्रिय सत्याग्रह अब भी दूर था।

## आभार

इस खण्डकी सामग्रीके लिए हम निम्नलिखितके ऋणी है: गांधी स्मारक-निधि, नेशनल आर्काइव्ज़ तथा अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीका पुस्तकालय, नई दिल्ली; नवजीवन ट्रस्ट तथा साबरमती आश्रम सरक्षण व स्मारक ट्रस्ट, अहमदाबाद; कलोनियल आफ़िस पुस्तकालय तथा इंडियन आफिस पुस्तकालय, लन्दन; प्रिटोरिया तथा पीटरमैरित्सबर्ग आर्काइव्ज़, और डर्बन नगर-परिपद, दक्षिण आफ्रिका; भारत सेवक समिति, पूना; श्री छगनलाल गांधी, श्री डी० जी० तेंदुलकर तथा *महात्मा* के प्रकाशक; श्री प्रभुदास गांधी और *माई चाइल्डहुड विद् गांधीजी*के प्रकाशक; श्री वी० बख्तावरसिंह मॉरीशस और समाचारपत्र . *इंग्लिशमैन, इंडिया, ल-रेडिकल, स्टैंडर्ड, टाइम्स ऑफ इंडिया, वेजिटेरियन* और *वॉयस ऑफ इंडिया*।

अनुसंधान और संदर्भकी सूचनाएँ देनेके लिए गुजरात विद्यापीठ ग्रथालय तथा *गुजरात समाचार*-कार्यालय, अहमदाबाद; एशियाटिक पुस्तकालय तथा *बाम्बे क्रानिकल*-कार्यालय, *टाइम्स ऑफ इंडिया, मुंबई समाचार* तथा गुजराती प्रेस, बम्बई; राष्ट्रीय पुस्तकालय तथा *अमृत बाजार पत्रिका*-कार्यालय, कलकत्ता; विधानसभा पुस्तकालय तथा इंडियन कौंसिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स पुस्तकालय और ब्रिटिश म्यूजियम पुस्तकालय हमारे धन्यवादके पात्र है।

# पाठकोंको सूचना

पहले दोनों खण्डोंकी तरह इस खण्डमें भी ऐसे अनेक प्रार्थनापत्र और स्मरणपत्र शामिल हैं जिनपर हस्ताक्षर दूसरोंके हैं किन्तु जिनका मसविदा निस्सन्देह गांधीजीने लिखा था। इस मान्यताके कारण पहले खण्डके उन्नीसवें पृष्ठपर कुछ विस्तारसे दिये जा चुके हैं। इस खण्डमें पृष्ठ २९० पर आये हुए बादके एक प्रलेखसे भी यह स्पष्ट होता है कि उपनिवेश-कार्यालयको भेजे गये सन् १८९४ से १९०१ तक के अधिकतर प्रार्थनापत्र गांधीजीने तैयार किये थे।

*इंडियन ओपिनियन*के वे लेख भी जिन पर गांधीजीका नाम नहीं था किन्तु जिन्हें श्री छगनलाल गांधी और स्व० श्री एच० एस० एल० पोलकने गांधीजी द्वारा लिखित तय किया, इस खण्डमें शामिल किये गये हैं। *इंडियन ओपिनियन* और दक्षिण आफ्रिकाकी अन्य प्रवृत्तियोंमें ये दोनों सज्जन गांधीजीके सहयोगी थे और सन् १९५६–५७ में इस ग्रंथमालाके सम्पादकोंका भी हाथ बँटाते थे। गांधीजी *इंडियन ओपिनियन*में लिखते थे इसका सर्वसामान्य प्रमाण हमें 'आत्मकथा' से मिलता ही है; तो भी कोई विशिष्ट अंश उनका है या नहीं इसके पक्ष या विपक्षमें प्रमाण मिलने पर उसे परखा गया है। *इंडियन ओपिनियन*के गुजराती विभागमें गांधीजी के जो गुजराती लेख थे उनके अनुवाद भी दे दिये गये हैं। ये विश्वस्त आधारों पर गांधीजीके माने गये हैं।

इस खण्डमें अनेक पत्र और प्रलेख मूल अथवा फोटो-नकलोंके रूपमें पाई जानेवाली हस्ताक्षरहीन दफ्तरी नकलोंके आधारपर शामिल किये गये हैं। किसी-किसी प्रलेख पर बहुत-से हस्ताक्षर थे। उनमें से जो प्रमुख थे केवल उन्हें ही लिया है।

दिलचस्प उदाहरणोंके तौर पर खालिस वकालत के पेशेसे सम्बन्धित कुछ प्रलेख भी लिये गये हैं। इनमें कुछ ऐसे हैं जिन्हें गांधीजी ने उन दूसरे वकीलोंके मार्गदर्शनके लिए तैयार किया था जो भेदभाव पर आधारित कायदों या रिवाजोंसे सम्बन्धित मुकदमोंमें पैरवी कर रहे थे।

सामग्रीको उद्धृत करनेमें दृढ़तासे मूलका अनुसरण करनेका प्रयत्न किया गया है। छापे की स्पष्ट भूलोंको सुधारा है और मूलमें व्यवहृत शब्दोंके संक्षिप्त रूपोंके स्थानपर पूरे रूप दिये गये हैं।

अखबारों या पत्र-पत्रिकाओंके लेखोंके अतिरिक्त लिखनेकी तारीख, जैसे चिट्ठियोंमें लिखी जाती है उस तरह, सदा दाहिने कोने पर ऊपर दी गई है। मूलमें यदि वह नीचे थी तो भी उसे ऊपर ही कर दिया है। जहाँ मूल पर कोई तिथि नहीं थी वहाँ चौकोर कोष्ठकोंमें सम्भाव्य तिथि रख दी गई है और कभी आवश्यकतानुसार इसका कारण समझाया गया है। अन्तमें दी गई तिथि प्रकाशन की है। व्यक्तिगत पत्रोंमें, पत्र जिन्हें लिखे गये हैं उनके नाम शीर्षकमें दिये गये हैं। सामग्रीके सूत्रका उल्लेख उसके अन्तमें किया गया है।

मूलकी भूमिकामें, पादटिप्पणियोंमें और मूलके बीच चौकोर कोष्ठकोंमें तथा छोटे अक्षरोंमें जो सामग्री है वह सम्पादकीय है। गोल कोष्ठक मूलानुसारी हैं। जहाँ गांधीजीने मूलमें दूसरों के या अपने ही लेखों, वक्तव्यों और विवरणोंके उद्धरण दिये हैं, वहाँ उन्हें हाशिया छोड़कर अलग अनुच्छेदमें गहरी स्याहीसे छापा है।

पाठ और शब्दोंको समझनेमें सहायक अधिकांश सूचनाएँ पादटिप्पणियोंमें दी गई हैं। पादटिप्पणियोंमें इसी खण्डमें अन्यत्र प्रकाशित सामग्रीका उल्लेख अंश, शीर्षक अथवा उसके मूल

स्रोत या प्रकाशनकी तिथिके साथ किया गया है। संदर्भ पहले खण्डके अगस्त १९५८ के संस्करण और दूसरे खण्डके मार्च १९५९ के सस्करणसे लिये हैं। आत्मकथाके संदर्भ गांधीजीकी मूल गुजराती पुस्तक *सत्यना प्रयोगो* अथवा *आत्मकथा* की नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद द्वारा प्रकाशित १९५२ की नौवी आवृत्तिसे लिये हैं।

पुस्तकके अन्तमें सामग्रीके साधन-सूत्र, खण्डके कालसे सम्बन्धित तारीखवार जीवन-वृत्तान्त और व्यक्तियों, स्थानों, कानूनों तथा महत्त्वपूर्ण संदर्भोंपर टिप्पणियाँ दी गयी हैं। अन्तमें एक विस्तृत सांकेतिका भी है।

साधन-सूत्रके तौर पर बतायी गई संख्याओंके साथ 'एस० एन०' संकेतका अर्थ है साबरमती संग्रहालय, अहमदाबादमें उपलब्ध मूल कागज-पत्रोंकी क्रमसंख्या। इन कागज-पत्रोंकी फोटो-नकलें गांधी स्मारक-संग्रहालय, नई दिल्लीमें सुरक्षित हैं। इसी प्रकार 'जी० एन०' का अर्थ है, वे मूल कागज जो नेशनल आर्काइव्ज़, नई दिल्लीमें उपलब्ध हैं। इनकी फोटो-नकलें भी गांधी स्मारक संग्रहालयमें सुरक्षित हैं। 'सी० डब्ल्यू०' संकेत उन कागज-पत्रोंका है जिन्हें सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय (कलेक्टेड वर्क्स आफ महात्मा गांधी) ने प्राप्त किया है। इनकी फोटो-नकलें नेशनल आर्का-ईव्ज़में उपलब्ध हैं।

प्रस्तुत खण्ड आकारमें पहले दो खण्डोंसे बड़ा है। यह परिवर्तन ग्रन्थमालाकी खण्ड-संख्या घटाने और पाठकोंको एक ही खण्डमें अधिक पाठ्यसामग्री देनेके विचारसे किया गया है।

# विषय-सूची

## चित्र-सूची

## १. पत्र : ब्रिटिश एजेंटको

सन् १८८५ का कानून नं० ३ जिस रूपमें १८८६ में संशोधित किया गया था, उससे "कुली, अरब, मलायी और तुर्की साम्राज्यके मुसलमान प्रजाजन" नागरिकताके अधिकारोंसे वंचित हो गये थे। छिने हुए इन अधिकारोंमें अचल सम्पत्ति रखनेका अधिकार भी शामिल था। साम्राज्य-सरकार और ट्रान्सवाल-सरकारमें इस विषयमें मतभेद था कि उक्त कानून भारतीयोंपर लागू हो सकता है या नहीं। यह प्रश्न पंच-फैसलेके लिए ऑरेंज फ्री स्टेटके मुख्य न्यायाधीशको सौंपा गया। उसने निर्णय किया कि ट्रान्सवाल-सरकारको अधिकार है — और वह बाध्य है — कि भारतीय तथा अन्य एशियाई व्यापारियोंके साथ व्यवहार करनेमें वह उक्त कानूनको कार्यान्वित करे। शर्त केवल यह रखी गई कि यदि ऐसे लोगोंकी ओरसे आपत्ति की जाये कि उनके साथ किया जानेवाला बरताव कानूनकी व्यवस्थाओंके विरुद्ध है, तो अदालतोंसे कानूनकी व्याख्या करा ली जाये। नीचे दिये हुए पत्रका सम्बन्ध उसके बादकी घटनाओंसे है।

प्रिटोरिया
फरवरी २८, १८९८

सेवामें
सम्राज्ञीके एजेंट
प्रिटोरिया

महोदय,

हम, नीचे हस्ताक्षर करनेवाले प्रिटोरिया और जोहानिसबर्ग-निवासी ब्रिटिश भारतीय प्रजाजन, ट्रान्सवालके भारतीय समाजके प्रतिनिधियोंकी हैसियतसे आदरपूर्वक सम्राज्ञी-सरकारके सूचनार्थ निवेदन करना चाहते हैं कि हम, सम्राज्ञी-सरकारके सुझावके अनुसार, १८८६ में संशोधित १८८५ के कानून नं० ३ की व्याख्या करानेके लिए दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यके उच्च न्यायालयमें कारंवाई करनेवाले हैं[1]। यह व्याख्या ब्लूमफांटीनके मुख्य न्यायाधीश डी'विलियर्सके निर्णय[2] की शर्तोंके अनुसार कराई जायेगी। इसका हेतु यह निर्णय प्राप्त करना होगा कि ब्रिटिश भारतीय प्रजाजन इस राज्यके कस्बों और गाँवोंमें व्यापार करनेके अधिकारी हैं अथवा नहीं।

तथापि हम अपना खेद प्रकट किये बिना नहीं रह सकते कि सम्राज्ञी-सरकारने इस विषयमें हमारी ओरसे अन्त तक कारंवाई न करनेका निश्चय किया है; क्योंकि हमने आशा की

१. यह परीक्षात्मक मुकदमा — *तैयब हाजी मुहम्मद* बनाम *डा० विलेम जोहानिस लीड्स*, राज्यमन्त्री, दक्षिण आफ्रिकी गणराज्य — इसी दिन दायर कर दिया गया था। अन्ततः, अगस्त ८, १८९८ को, इसका फैसला भारतीयोंके विरुद्ध कर दिया गया।

२. देखिए खण्ड १, पृष्ठ १७८ और १९१।

थी कि जिस तरह सम्राज्ञी-सरकारने हमारे मामलेको फैसलेके लिए पंचके सुपुर्द किया था उसी तरह वह उसे अन्त तक निभायेगी भी[1]।

आपके, आदि,

(हस्ताक्षर) तैयब हाजी खान मुहम्मद
हाजी हबीब हाजी दादा
मुहम्मद कासिम कमरुद्दीन ऐंड कं०
एम० एच० यूसब

[अंग्रेजीसे]

सम्राज्ञीके मुख्य उपनिवेश-सचिव, लन्दनके नाम दक्षिण आफ्रिकी गणराज्य-स्थित उच्चायुक्तके तारीख ९–३–१८९८ के गोपनीय खरीतेका सहपत्र।

कलोनियल ऑफ़िस रेकर्ड्स: सी० ओ० ४१७, जिल्द २४३।

## २. सोमनाथ महाराजका मुकदमा

विक्रेता-परवाना अधिनियम, १८९७ के द्वारा नेटालकी नगर-परिषदों और नगरनिकायोंको व्यापारियोंको परवाने देनेके लिए "परवाना-अधिकारियों" की नियुक्ति करने, उनके निर्णयोंकी पुष्टि करने और अपनी ही की हुई पुष्टिकी अपील सुननेका अधिकार दिया गया था। डर्बन नगर-परिषदने सोमनाथ महाराजके मुकदमेमें उपर्युक्त दूसरे प्रकारकी अपीलकी, जिसकी पैरवी गांधीजीने की थी, जो सुनवाई की उसका विवरण नीचे दिया जाता है। यह विवरण गांधीजीने उपनिवेश-मन्त्री श्री जोजेफ़ चेम्बरलेनके नाम दिसम्बर ३१, १८९८ के प्रार्थनापत्रके साथ परिशिष्टके रूपमें नत्थी किया था। *सोमनाथ* बनाम *डर्बन निगम*के नामसे प्रसिद्ध अपीलमें नेटालके सर्वोच्च न्यायालयने मार्च ३०, १८९८ को डर्बन नगर-परिषदके प्रतिकूल निर्णयको इस आधारपर रद कर दिया था कि उसकी कार्रवाई अवैध थी। इसकी आगे अपील हुई, जो ६ जूनको सुनी गई (जिसकी रिपोर्ट *नेटाल ऐडवर्टाइज़र*में ७–६–१८९८ को छपी थी)। उसमें नगर-परिषदने सोमनाथ महाराजको परवाना देनेसे इनकार करनेके सम्बन्धमें परवाना-अधिकारीका यह कारण बहाल रखा: "चूँकि वे जिस किस्मके व्यापारमें लगे हुए थे, उसकी कस्बे और शहरमें काफी व्यवस्था थी।"

### *प्रारम्भिक सुनवाई*

श्री सी० ए० डी' आर० लैबिस्टर प्रार्थीकी ओरसे हाजिर हुए और उन्होंने कहा कि निर्दिष्ट मकानके बारेमें सफाई-दारोगाने बहुत ही सन्तोषजनक रिपोर्ट दी है और उसमें खासा-अच्छा व्यापार शुरू करनेके लिए उनके मुअक्किलके पास यथेष्ट पूँजी है। प्रार्थी एक समर्थ व्यापारी है।

श्री कालिन्स: क्या परवाना-अधिकारीके बताये कारण हमारे पास आये हैं?

मेयर: नहीं।

श्री टेलर: मैं समझता हूँ, जबतक परिषदका बहुमत माँग न करे, परवाना-अधिकारीके लिए कारण बताना जरूरी नहीं है। हमारा काम तो सिर्फ इतना तय करना है कि हम परवाना-अधिकारीके निर्णयकी पुष्टि करेंगे या नहीं। मैं प्रस्ताव करता हूँ कि हम पुष्टि कर दें।

श्री हेनवुडने प्रस्तावका समर्थन किया।

श्री कालिन्सने संशोधनके रूपमें प्रस्ताव पेश किया कि परवाना-अधिकारीसे अपने कारण बतानेका अनुरोध किया जाये।

श्री एलिस ब्राउनने समर्थन किया। उन्होंने कहा कि कारण प्राप्त कर लेना ज्यादा सन्तोषजनक होगा।

संशोधन तीनके खिलाफ चार मतोंसे गिर गया।

१. अपनी भेंट और अपने मई १८, १८९७ के पत्रमें भी (खण्ड २, पृष्ठ ३५१) गांधीजीने कहा था कि इस परीक्षात्मक मुकदमेका खर्च ब्रिटिश सरकारको उठाना चाहिए, परन्तु यह निवेदन नामंजूर कर दिया गया था।

श्री कालिन्सने कहा कि हम एक परिपाटी स्थापित कर रहे हैं, और मेरे खयालसे, हम एक अनिष्ट परिपाटी स्थापित कर रहे हैं। एक मामलेमें जो-कुछ किया जा रहा है, वही सब मामलोंमें करना जरूरी होगा और ऐसी हालतमें मैं प्रस्तावके विरुद्ध मत देनेके लिए बाध्य हूँगा।

मेयरने कहा कि परिषदने बहुमतसे निर्णय कर दिया है कि परवाना-अधिकारीसे कारण न पूछे जायें।

इसके बाद मूल प्रस्तावपर मत लिये गये और वह पास हो गया और, इस तरह, परवाना-अधिकारीके निर्णयकी पुष्टि कर दी गई।

[मार्च २, १८९८][1]

## बादकी अपील

सोमनाथ महाराज नामके एक भारतीयने अपील की कि उसे नेटाल भारतीय कांग्रेसके अमगेनी रोड-स्थित मकानमें व्यापार करनेका परवाना देनेसे इनकार कर दिया गया है।

श्री गांधीने अपील करनेवाले और मकान-मालिकोंकी ओरसे पैरवी की। उन्होंने कहा, मैंने टाउन क्लार्कको लिखा था कि परवाना-अधिकारीने जिन कारणोंसे परवाना देनेसे इनकार किया है वे मुझे बता दिये जायें; परन्तु मुझसे कहा गया कि कारण नही बताये जा सकते।

मेयरके एक प्रश्नके उत्तरमें श्री गांधीने बताया कि उक्त जायदादके मालिक नेटाल भारतीय कांग्रेसके ट्रस्टी हैं।

श्री गांधीने फिरसे बहस आरम्भ करते हुए कहा कि उन्होंने टाउन क्लार्कसे कागजातकी नकल भी माँगी थी, परन्तु उन्हें बताया गया कि उन्हें नकल नही दी जा सकती। उन्होंने दावा किया कि कानूनन उन्हें नकल पानेका अधिकार है, क्योंकि उस न्यायाधिकरणके सामने अपीली मामलोंके जाब्तेके साधारण नियम ही लागू होंगे। और, वे कारण जाननेके भी हकदार हैं। कानूनमें ऐसी कोई बात नही है जिससे मालूम होता हो कि जाब्तेके साधारण नियमोंको उलटा जा सकता है। अधिनियमके ग्यारहवें खण्डमें उसके अनुसार बनाये गये नियमोंका विधान है, परन्तु मैं नही जानता कि वे वैध हैं या नही। मैं नजीरें पढ़कर सुनाना नही चाहता, क्योंकि मुझे लगता है, अगर अपील करनेका अधिकार दिया गया होता तो ऐसी अपीलोंकी कार्रवाई साधारण जाब्तेके अनुसार ही होती। अगर ऐसा न होता तो लगता मानो कानूनने एक हाथसे अपील करनेवालेको अधिकार दिया और दूसरेसे छीन लिया, क्योंकि अगर वह नगर-परिषदके सामने अपील करता और उसे यह मालूम न होता कि परवाना देनेसे इनकार क्यों किया गया और वह अर्जीके कागजात न पा सकता, तो उसे अपीलका कोई अधिकार व्यावहारिक रूपमें होता ही नही। अगर उसे अपील करनेका अधिकार दिया गया है तो निश्चय ही उसे कार्रवाईके पूरे कागजात पानेका हक है; और अगर नही है, तो वह आदमी बाहरी है। क्या परिषद यह फैसला करनेवाली है कि वह एक बाहरी आदमी है—हालाँकि यहाँ उसका भारी हित दाँवपर है? उससे कहा गया था: "तुम आ सकते हो, तुम जो चाहो कह सकते हो, पर यह बिना जाने कि मामलेकी भीतरी और बाहरी बातें क्या हैं," और वह आपके सामने आया; परन्तु अगर उसके कोई कारण हों तो वे उसे अचानक बताये जायेंगे, और अगर सफाई-दारोगाके पाससे कोई रिपोर्ट आई हो, तो वह भी उसे अचानक बताई जायेगी। उन्होंने निवेदन किया कि अपील करनेवालेको परिषदकी कार्रवाईका लेखा प्राप्त करनेका और कारण जाननेका अधिकार है, और अगर नही है, तो उसे अपील करनेका अधिकार देनेसे इनकार किया गया है। मेरा मुअक्किल एक नागरिक है और उसे वे सब सहूलियतें पानेका अधिकार है जो दूसरे नागरिकोंको

१. *नेटाल ऐडवर्टाइज़र*, मार्च ३, १८९८, मे कहा गया था कि अपीलकी सुनवाई कल हुई थी।

परिषदसे मिलनी चाहिए। इसके बदले, लगभग सारेके-सारे म्यूनिसिपल तन्त्रने उसका विरोध किया, उसे अनुमान करना पड़ा कि परवाना देनेसे किन कारणोंसे इनकार किया गया, और परिषदके सामने आना पड़ा और फिर, बहुत-सा धन खर्च कर देनेके बाद, शायद उससे कह दिया जायेगा कि परवाना-अधिकारीका निर्णय बहाल रखा गया है। क्या ब्रिटिश संविधानमें अपील इसीको कहते हैं?

श्री ईवान्स: अर्जदारके पास पहले कोई परवाना था या नहीं?

मेयर: उपनिवेशके एक दूसरे हिस्सेमें उसकी एक दूकान है, परन्तु डर्बनमें आये उसे सिर्फ तीन माह ही हुए हैं।

श्री कॉलिन्सने कहा कि श्री गांधी हमारा फैसला एक कानूनी नुक्ते पर लेना चाहते हैं। यह अदालत कानूनके जानकार लोगोंकी नहीं है, और मैं नहीं कह सकता कि हम अपने कानूनी सलाहकारकी सलाह लिये बिना फैसला दे सकते हैं या नहीं। कानूनके अनुसार, परिषद परवाना-अधिकारीको कारण लिखकर देनेके लिए कह सकती है, परन्तु मैं मानता हूँ कि इस नुक्तेपर मुझे कानून अच्छा नहीं लगता, मेरी रायमें इससे सच्चा न्याय प्रकट नहीं होता। परन्तु फिर भी कानूनका पालन तो करना ही चाहिए। मुझे जो अन्याय लगता है उसका प्रतिकार करनेका उपाय भी कानूनमें ही मौजूद है। हम परवाना-अधिकारीको परवाना देनेसे इनकार करनेके कारण लिखकर देनेके लिए कह सकते हैं। इसके बाद हमें यह बैठक मुल्तवी कर देनी चाहिए, जिससे कि अपील करनेवालेको उन कारणोंका जवाब देनेका मौका मिल सके। मेरा खयाल है कि हमें इसी रास्ते चलना चाहिए और इसलिए मैं प्रस्ताव करता हूँ कि परवाना-अधिकारीको अपने कारण लिखकर देनेके लिए कहा जाये।

श्री वैलिनॉरने इसका अनुमोदन किया।

श्री ईवान्सने कहा कि परवाना-अधिकारीके कारण जाननेका परिषदको विशेषाधिकार है, इसलिए मेरी रायमें हमें उससे उन्हें लिखवा लेना चाहिए।

श्री एलिस ब्राउन — हाँ, उन्हें सदस्योंमें घुमा दीजिए।

श्री क्लार्कने प्रस्ताव किया कि सब सदस्य कारण देखनेके लिए पाँच मिनटको मेयरके कमरेमें चले चलें।

श्री कॉलिन्सने इसका समर्थन किया और कहा कि मैंने कई बार सुना है कि न्याय अन्धा होता है, परन्तु अबसे पहले मैंने इसका इतना जोरदार उदाहरण नहीं देखा था। परिषदके कुछ सदस्य, परवाना देनेसे इनकार करनेके कारण जाने बिना भी, इस मामलेपर मत देनेको तैयार थे।

श्री टेलरने श्री कॉलिन्सके साथ सहमति प्रकट करते हुए कहा कि न्याय तो बेशक अन्धा होता है, परन्तु परिषदके कुछ सदस्य परवाना-अधिकारीके कारणोंको, कागजके पुर्जेपर नजर डाले बिना भी, देख सकते हैं। मुझे खेद है कि यहाँ ऐसे अजान व्यक्ति भी मौजूद हैं, जो उन्हें देख नहीं सकते।

प्रस्ताव पास हो गया और परिषदके सदस्य उठ गये।

परिषद–कक्षमें वापस आने पर —

श्री गांधी: मैंने जो प्रश्न उठाये हैं उनका मैं फैसला चाहता हूँ।

मेयर: परिषदका निर्णय आपके विरुद्ध है।

श्री गांधीने कहा: मेरे मुअक्किलमें पाया जा सकनेवाला एक-मात्र दोष यह है कि उसकी खाल गेहुँए रंगकी है और डर्बनमें उसके पास इससे पहले कभी परवाना नहीं रहा। मुझे बताया गया है कि प्रार्थियोंमें व्यापार करनेके लिए खासी कानूनी योग्यताएँ हों या न हों, परिषद नये परवानोंकी कोई अर्जी मंजूर नहीं करेगी। अगर यह सही है, तो अन्यायपूर्ण है। और अगर किसी व्यक्तिको इसलिए परवाना नहीं दिया जाता कि उसकी खाल गेहुँए रंगकी है, तो ऐसे निर्णयमें अन्यायकी बू है और वह निश्चय ही अ-ब्रिटिश है। कानूनमें ऐसी कोई बात नहीं है जिससे कि किन्हीं व्यक्तियोंको उनकी राष्ट्रीयताके आधारपर परवाने देनेसे इनकार करना जरूरी हो। इस न्यायाधिकरणको, जो बातें आतंकके समयमें कही गई हों उनसे नहीं, बल्कि भूतपूर्व

प्रधानमंत्रीके शब्दोंसे मार्गदर्शन ग्रहण करना चाहिए। उन्होंने कहा था : यह याद रखना चाहिए कि नगर-परिषदको दानवकी शक्ति प्रदान की गई है; परन्तु उसे सावधानी रखनी चाहिए कि उस शक्तिका प्रयोग दानवी तरीकेसे न हो। अर्जदार छः वर्ष तक मूई नदीके इलाकेमें दूकानदारी कर चुका है। वह पूर्णतः प्रतिष्ठित व्यक्ति है और उसके खरेपन तथा व्यापार-सामर्थ्यका प्रमाण नेटालकी चार यूरोपीय पेढ़ियोंने दिया है। मुझे आशा है कि परिषद उसे परवाना दे देगी।

श्री टेलरने प्रस्ताव किया कि परवाना-अधिकारीका फैसला बहाल रखा जाये।

श्री क्लार्कने प्रस्तावका समर्थन किया, और वह प्रस्ताव बिना विरोधके पास हो गया।

[अंग्रेजीसे]

*नेटाल मर्क्युरी*, ३-३-१८९८

## ३. अर्जी : जुर्मानेकी वापसीके लिए[1]

५३-ए, फील्ड स्ट्रीट
डर्बन
मार्च ९, १८९८

श्री टाउन क्लार्क
डर्बन

महोदय,

जूसा जना तथा अन्योंको सरकारसे पटरियोंपर दूकान लगानेका परवाना प्राप्त है। वे बन्दरगाहपर खुले स्थानपर रोटी आदि बेचते आ रहे हैं। उनपर भोजनालय चलानेका अभियोग लगाकर एक-एक पौंड जुर्माना किया गया था। परन्तु इन मामलोंमें न्यायाधीशका निर्णय डायर बनाम मूसा मुकदमेके अनुसार गलत ठहरेगा। डायर बनाम मूसा मुकदमेकी अपीलका फैसला उपर्युक्त मुकदमोंके फैसलेके बाद हुआ था। इन परिस्थितियोंमें क्या नगर-परिषद इन व्यक्तियोंको, इन्होंने जो जुर्माना भरा है, वापस करनेकी कृपा करेगी?

आपका विश्वासपात्र,
**मो० क० गांधी**

[पुनश्च]

चूंकि सर्वोच्च न्यायालयने फैसलेको रद कर दिया है, इसलिए, क्या मैं मूसापर किया गया और उसका भरा हुआ ५ शि० जुर्माना भी वापस माँग सकता हूँ?

**मो० क० गांधी**

[अंग्रेजीसे]

डर्बन टाउन कौन्सिल रेकर्ड्स : पत्र नं० २३५९६, जिल्द १३४।

१. यह पत्र गांधीजीके हस्ताक्षरोंमें है।

## ४. अभिनन्दनपत्र : जॉर्ज विन्सेंट गॉडफ़्रेको

यह अभिनन्दनपत्र गांधीजीका लिखा हुआ है और मार्च १८, १८९८ को डर्बनके भारतीयोंकी एक सभामें श्री जॉ० वि० गॉडफ़्रेको अर्पित किया गया था। गांधीजी इसपर हस्ताक्षर करनेवालोंमें भी शामिल थे।

[मार्च १८, १८९८ के पूर्व]

श्रीमान् जॉर्ज विन्सेंट गॉडफ़्रे
डर्बन

प्रिय श्री गॉडफ़्रे,

हम, नीचे हस्ताक्षर करनेवाले भारतीय, उपनिवेशकी हाल ही की नागरिक सेवा (सिविल सर्विसेज) परीक्षामें आपकी सफलतापर इस पत्र द्वारा आपका अभिनन्दन करते हैं। उपनिवेशके भारतीयोंमें इस परीक्षामें बैठने और उत्तीर्ण होनेवाले आप पहले व्यक्ति हैं, इसलिए भारतीय समाज इस घटनाको बहुत महत्त्वपूर्ण मानता है। आप पहले असफल हो चुके हैं — यह, हमारे खयालसे, आपके लिए प्रशंसाकी वस्तु है। इससे मालूम होता है कि आपने कठिनाइयों और असफलताओंके बावजूद प्रयत्न नहीं छोड़ा। कठिनाइयाँ और असफलताएँ तो सफलताकी सीढ़ियाँ हैं। हम यहाँ यह उल्लेख करना भूल नहीं सकते कि श्री सुभान गॉडफ़्रे भी भारतीय समाजके धन्यवादके पात्र हैं, क्योंकि उन्होंने आपको अध्ययन करनेका अवसर दिया। जैसे आपने यह दिखाया है कि अवसर मिलनेपर इस उपनिवेशका एक भारतीय युवक अध्ययनके क्षेत्रमें क्या कर सकता है, वैसे ही उन्होंने उपनिवेशके अन्य भारतीय माता-पिताओंके सामने वास्तवमें एक उदाहरण पेश कर दिया है कि अपने बच्चोंको शिक्षा दिलानेके लिए पिताको क्या करना चाहिए। बच्चोंको शिक्षा देनेके सम्बन्धमें उनकी उदारताका एक और भी अधिक ज्वलन्त उदाहरण यह है कि उन्होंने आपके सबसे बड़े भाईको चिकित्साशास्त्रका अध्ययन करनेके लिए ग्लासगो भेजा है। हमें यह जानकर हर्ष है कि नागरिक सेवा-परीक्षा उत्तीर्ण कर लेनेसे ही आपकी महत्त्वाकांक्षाका अन्त नहीं हुआ, बल्कि आप अब भी बहुत आगे तक अपना अध्ययन जारी रखनेकी इच्छा कर रहे हैं। हमारी प्रार्थना है कि परमात्मा आपको दीर्घ जीवन और स्वास्थ्य प्रदान करे, जिससे आप अपनी अभिलाषाएँ पूर्ण कर सकें। हम आशा करते हैं कि उपनिवेशके अन्य भारतीय युवक आपकी लगन और परिश्रमशीलताका अनुकरण करेंगे और आपकी सफलता उन्हें प्रोत्साहित करनेवाली होगी।

आपके सच्चे शुभचिन्तक
और मित्र

[अंग्रेजीसे]

*नेटाल ऐडवर्टाइज़र*, १९–३–१८९८

## ५. पत्र: जॉर्ज विन्सेंट गॉडफ्रेको

[डर्बन
मार्च १८, १८९८से पूर्व]

प्रिय श्री गॉडफ्रे,

आप इस उपनिवेशकी नागरिक सेवा (सिविल सर्विस) परीक्षा पास करनेवाले पहले भारतीय हैं। इस कारण अनेक भारतीयोंने, जिनमें आपके मित्र और शुभचिन्तक भी शामिल हैं, आपको अभिनन्दनपत्र अर्पित करनेका निश्चय किया है। मुझे भरोसा है कि आप आगामी शुक्रवार, तारीख १८ को सायंकाल ७.४५ बजे कांग्रेसके सभाभवन, ग्रे स्ट्रीटमें अभिनन्दन-पत्र ग्रहण करनेका यह निमन्त्रण स्वीकार करेंगे।

मैं बहुत हर्षपूर्वक इसके साथ आपके देखनेके लिए अभिनन्दनपत्रकी प्रूफ़-नकल भेज रहा हूँ।

आपका सच्चा,
**मो० क० गांधी**

गांधीजीके हस्ताक्षरोंमें लिखी अंग्रेजी दफ्तरी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० २७३०)से।

## ६. एक हिसाब

मार्च २५, १८९८

नेटाल भारतीय काग्रेसके नामे
मो० क० गाधीका पावना — ३१ दिसम्बर तक

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| २५–४–९७ | प्रार्थनापत्रोंके रजिस्ट्रेशनकी टिकेटोंके लिए चेक | २ | २ | ४ |
| ३०–१२–९७ | पिचरका बिल चुकता किया — बाबत करारनामा (बाड) की मंसूखी | ० | ९ | ६ |
| २०–१०–९७ | प्रार्थनापत्रोंके लिए टिकेट | ० | १४ | ० |
| १६–१०–९७ | टिकेट — नाजर[1]को पत्र | ० | ० | ६½ |
| ६–१२–९७ | दो चिमनियाँ | ० | २ | ० |
| ९–१२–९७ | बैंक ऑफ़ आफ्रिकाको चेक बाबत फरीदकी जायदाद | ३०० | ० | ० |
| | शेष पावना: पौंड | ३०३ | ८ | ४½ |

अंग्रेजी दफ्तरी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० २७२३) से।

१. मनसुखलाल हीरालाल नाजर (१८६२–१९०६), जिन्होंने दक्षिण आफ्रिकामें गांधीजीको उनके कार्योंमें सहायता दी थी। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९३।

## ७. टिप्पणियाँ : परीक्षात्मक मुकदमेपर

यह और इसके बादके शीर्षककी सामग्री गांधीजीने परीक्षात्मक मुकदमेमें तैयब हाजी खान मुहम्मदकी ओरसे पैरवी करनेवाले वकीलकी मददके लिए लिखी थी।

[अप्रैल ४, १८९८ के पूर्व][1]

प्रिटोरियामें मेरे सामने सरकारी वकीलने जो सम्मति प्रकट की थी उसका आदर करते हुए भी मेरा निवेदन है कि जिन भारतीयोंपर यह कानून लागू करनेका प्रयत्न किया जा रहा है वे, अधिनियमकी उपधारा १[2] के अनुसार, इसके अन्तर्गत नहीं आते।

वह धारा है: "यह कानून एशियाके उन लोगोंपर लागू होगा जो किसी आदिम जातिके हों। तथाकथित कुली, अरब, मलायी और तुर्की साम्राज्यके मुस्लिम प्रजाजन भी उनमें ही गिने जायेंगे।"

मैं मानता हूँ कि इस धारामें आये हुए विभिन्न शब्दोंका अर्थ, अगर कानूनमें ही उनकी व्याख्या न हो तो, अदालत वही मानेगी जो कि 'शब्द-कोश' जैसे किसी प्रामाणिक ग्रन्थमें दिया होगा। आम लोग अज्ञान अथवा पक्षपातके कारण इनका जो अर्थ लगाने लगेंगे उसे अदालत नहीं मानेगी।

यदि यह ठीक हो, तो 'एशियाकी आदिम जातियों' का मतलब इतिहासका कोई ग्रन्थ देखनेसे ही ज्ञात हो सकता है। हंटरके 'इंडियन एम्पायर' [भारतीय साम्राज्य] ग्रन्थका तीसरा और चौथा अध्याय देखते ही पता चल जाता है कि आदिम जातियाँ कौन-सी हैं और कौन-सी नहीं। वहाँ यह बात इतनी स्पष्टतासे बताई गई है कि दोनोंमें अन्तर करनेमें भूल किसीसे भी नहीं हो सकती। पुस्तकसे एकदम पता चल जायेगा कि दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय इंडो-जर्मन नस्लके, अथवा अधिक ठीक शब्दका प्रयोग करें तो, आर्य वंशके हैं। मैं जहाँतक जानता हूँ, इस विचारका विरोध किसी अधिकारी विद्वानने नहीं किया। मॉरिस और मैक्स-मूलरकी पुस्तकोंमें भी इसी विचारका समर्थन किया गया है। ये पुस्तकें प्रिटोरियामें सरलतासे मिल सकती हैं। यदि इन शब्दोंका यह अर्थ नहीं माना जाता तो मैं नही समझता कि इनका और क्या अर्थ करना चाहिए।

'ग्रीन बुक्स'[3] [हरी किताबों] को देखनेसे पता चलेगा कि सर हर्क्युलीज राबिन्सन ने भी (मुझे नामका निश्चय नहीं है) कुछ इसी प्रकारके कारणोंसे भारतीय व्यापारियोंको इस धाराका अपवाद माना है। और यदि गणराज्यके भारतीयों की गणना "एशियाकी आदिम जातियों" में नहीं की जाती, तो उन्हें कुलियों, अरबों, मलाइयों और तुर्की साम्राज्यके मुस्लिम प्रजाजनोंमें तो गिना ही नहीं जा सकता।

वे कुली या अरब हैं या नहीं? यदि पुस्तकों और खरीतोंपर भरोसा किया जाये तो वे इन दोनोंमें से कुछ भी नहीं हैं। यहाँ कोष्ठकमें इतना और बढ़ा देना चाहिए कि यदि यह कानून सचमुच भारतीयोंपर भी लागू करनेका इरादा होता तो उनका नाम भी इसमें

१. देखिए अगले शीर्षककी सामग्रीका अन्तिम अनुच्छेद।

२. १८८५ का कानून ३, जैसा १८८६ में संशोधित हुआ था।

३. गांधीजीके हस्ताक्षरोंमें हाशियामें यह लिखा हुआ है: "ग्रीन बुक नं० १, १८९४, पृष्ठ २८, अनुच्छेद ७ व ८, और पृष्ठ ३६ भी।"

शामिल करके यह स्पष्ट कर दिया गया होता। और यदि यह बात सन्दिग्ध छोड़ दी गई है तो उसका अर्थ भारतीयोंके पक्षमें किया जाना चाहिए, क्योंकि यह एक प्रतिबन्धक कानून है। वेब्स्टरके शब्द-कोशके अनुसार, 'कुली' शब्दका अर्थ है माल ढोने या उठाकर ले जानेवाला भारतीय, विशेषत: भारत या चीन आदि देशोंसे किसी दूसरे देशमें ले जाया गया मजदूर। ठीक इसी अर्थमें इस शब्दको नेटालके कानूनोंमें और अन्य सरकारी कागजातमें प्रयुक्त किया गया है। *विन्दन बनाम लेडीस्मिथ लोकल बोर्ड* मुकदमेका फैसला करते हुए सर वाल्टर रैगने इस प्रश्नपर खासी तफसीलसे विचार किया है। उस मुकदमेकी पूरी रिपोर्टकी नकल इसके साथ नत्थी है। देखिए, उसके पृष्ठ १०, ११ और १२।[1]

इस गणराज्यके निवासी भारतीय अरब नहीं हैं, इस दावेके समर्थनमें कोई प्रमाण देनेकी आवश्यकता नहीं है। वे अरब देशके कभी नहीं रहे, और जिन भारतीय मुसलमानोंको लोग भूलसे अरब कह देते हैं वे पहले हिन्दू थे, अपना धर्म बदल कर वे मुसलमान बन गये। जिस प्रकार कोई चीनी बौद्ध धर्म छोड़कर ईसाई धर्म स्वीकार कर लेने मात्रसे यूरोपीय नहीं हो जाता उसी प्रकार धर्म-परिवर्तन मात्रसे भारतीय भी अरब नहीं हो सकते।

कानूनमें 'कुली' शब्दके पहले 'तथाकथित' शब्द आया है। उसके कारण, मैं नहीं समझता कि, जो कुछ ऊपर कहा गया है उसका मतलब कुछ बदल जायेगा।

अंग्रेजी दफ्तरी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३७०५) से।

## सर वाल्टर रैगका फैसला

न्यायमूर्ति रैग: मुझे लगता है कि महत्त्वपूर्ण प्रश्न, जो अदालतके सामने फैसलेके लिए सीधा पेश किया गया है, यह है कि १८६९ के कानून १५ के अर्थके अन्तर्गत श्रीमती विन्दन 'रंगदार व्यक्ति' हैं या नहीं।[2] मुझे मालूम हुआ है कि मेरे विद्वान बन्धुजन [साथी न्यायाधीश] इस विषयका निर्णय करनेमें संकोच कर रहे हैं और, इसलिए, मुझे जो-कुछ कहना है उसे सिर्फ मेरा ही मत माना जाये। मेरा दृढ़ मत है कि कानूनके अर्थके अन्तर्गत वादी 'रंगदार व्यक्ति' नहीं है। इसके कारण निम्नलिखित हैं:

कानून १५, १८६९के खण्ड २ के अनुसार कोई भी 'रंगदार व्यक्ति', जो आवारा घूमता पाया जाये और अपने बारेमें सन्तोषजनक कैफियत देनेमें असमर्थ हो, दण्डका पात्र है। खण्ड ५ में 'रंगदार व्यक्तियों'की यह व्याख्या की गई है कि उनमें, दूसरोंके साथ-साथ, 'कुली' भी शामिल हैं। १८६९ के उस कानूनके पास होनेके पहले भारतीय प्रवासियोंसे सम्बन्ध रखनेवाले कई कानून मौजूद थे। उस कानूनकी और उसके बादके कानूनोंकी प्रस्तावना देखनेसे हमें मालूम होता है कि 'कुली' शब्दका अर्थ है वे लोग जो, इन कानूनोंके अनुसार सरकारी खर्चपर, या व्यक्ति-विशेषों द्वारा अपने खर्चपर, एक खास दर्जेकी सेवाके लिए भारतसे इस उपनिवेशमें लाये गये हैं। इसके बाद १८७० का 'कुली एकीकरण कानून' (कुली कन्सॉलिडेशन लॉ) आया। उसमें 'कुली' शब्दका फिर प्रयोग किया गया, और इसी अर्थमें। अखीरमें, हमारा वर्तमान कानून है—१८९१ का कानून २५। यह कई दृष्टियोंसे, १८८५–१८८७ के भारतीय प्रवासी आयोग (इंडियन इमिग्रेशन कमिशन) के परिश्रमका फल है। इस कानूनमें यह सन्तापजनक शब्द—कुली—नहीं है। इसका स्थान 'भारतीय प्रवासी' संज्ञाने ले

१. नत्थी की हुई नकल उपलब्ध नहीं है; परन्तु *नेटाल लॉ रिपोर्ट्स*, नं० १७, तारीख २३ मार्च, १८९६ से लिया हुआ सर वाल्टर रैगका फैसला "टिप्पणियों" के परिशिष्टके रूपमें दिया गया है।

२. यह एक गैरकानूनी गिरफ्तारीका मुकदमा था, जिसमें एक भारतीय ईसाई महिला श्रीमती विन्दनने २०० पौंड हरजानेका दावा किया था। श्रीमती विन्दनसे एक रातको एक वतनी पुलिस सिपाहीने उनका पास दिखानेको कहा था और बादमें वे जेलमें डाल दी गई थीं। इससे प्रश्न यह उठा कि श्रीमती विन्दन कानूनके अनुसार 'रंगदार लोगों' में हैं या नहीं। न्यायाधीशने उन्हें गैरकानूनी गिरफ्तारीके लिए २० पौंड हरजाना दिलाया था।

लिया है। इस कानूनके खण्ड ११८ में इस संज्ञाकी व्याख्या इस प्रकार की गई है और इसमें ये लोग शामिल बताये गये हैं: "भारतसे नेटाल लाये गये सब भारतीय, जो इस प्रकारके प्रवासको नियन्त्रित करनेवाले कानूनोंके अनुसार लाये गये हों; और ऐसे भारतीयोंके वे वंशज, जो नेटालमें रहते हों।" जिन लोगोंको साधारणतः एशियाई, अरब, या अरब व्यापारी कहा जाता है और जिन्हें इसी हैसियतसे लाया गया है, उन्हें साफ तौरपर इस व्याख्याके बाहर रखा गया है।

अब, श्रीमती विन्दन इस उपनिवेशमें अपने खर्चेसे आई हैं। वे डेविड विन्दनकी पत्नी हैं। डेविड विन्दन भारतीय गिरमिटिया मजदूरके तौरपर उपनिवेशमें नहीं लाये गये। फिर, इन दोनोंमें से किसीको भी १८६९ के कानून १५ के अनुसार 'रंगदार व्यक्ति' कैसे माना जा सकता है? मैं अधिकसे अधिक जोर देकर कहता हूँ कि ये उस कानूनके अर्थमें 'रंगदार व्यक्ति' नहीं हैं।

कोई भी 'स्वतन्त्र' भारतीय, अर्थात् कोई भी ऐसा गिरमिटिया भारतीय, जिसने प्रवासी कानूनोंके अनुसार लाये जानेके बाद अपनी सेवाकी अवधि समाप्त कर ली हो, कानूनके अनुसार, अपने वंशजों सहित 'रंगदार व्यक्ति' है; क्योंकि वह १८९१ के कानून २५ के खण्ड ११८ की व्याख्याके अन्दर आ जाता है। परन्तु यह स्थिति डेविड विन्दन या उनकी पत्नीकी नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

*विन्दन बनाम लेडीस्मिथ लोकल बोर्ड*, १८९६: नेटाल लॉ रिपोर्ट्स।

## ८. टिप्पणियाँ: परीक्षात्मक मुकदमेपर

डर्बन
अप्रैल ४, १८९८

***तैयब हाजी खान मुहम्मद बनाम डा० लीड्सके मुकदमेके लिए जरूरी प्रमाणों पर टिप्पणियाँ।***

प्रमाण जरूरी हैं — यह सिद्ध करनेके लिए कि

(क) वादी ग्रेट ब्रिटेनकी रानीकी प्रजा है।
(ख) वह १८८३ से चर्च स्ट्रीट, प्रिटोरियामें जमा है और वहाँ व्यापार कर रहा है।
(ग) इस दौरानमें उसने देशके क़ानूनोंका पालन किया है।
(घ) वह अरब नहीं है।
(ङ) वह तुर्की साम्राज्यका मुसलमान प्रजाजन नहीं है।
(च) वह मलायी नहीं है।
(छ) वह 'कुली' शब्दके किसी अर्थमें कुली नहीं है।

बाबत (क):

वादी काठियावाड़[1]के एक बन्दर स्थान पोरबन्दरका निवासी है। काठियावाड़ भारतका एक दक्षिण-पश्चिमी प्रान्त है। पोरबन्दर ब्रिटिश प्रशासनमें है। श्री एच० ओ० क्विन, राज्यके कारबारी (स्टेट ऐडमिनिस्ट्रेटर) हैं, और राज्यका प्रबन्ध करते हैं। दुनियाके किसी भी नक्शेको देखनेसे मालूम हो जायेगा कि काठियावाड़ प्रान्त ब्रिटिश भारतमें शामिल है और उसे लाल रंगमें दिया गया है। भारतके पृथक् नक्शेमें काठियावाड़ और दूसरे हिस्से पीले रंगमें दिखलाई देंगे। ये भारतके दो हिस्से हैं — अर्थात् एक खालसा या ठेठ ब्रिटिश भारत, जो सीधे ब्रिटिश

१. गुजरातके पुराने सम्मिलित देशी राज्य, बादमें सौराष्ट्र जो अब बम्बई राज्यमें शामिल कर दिया गया है।

राजनीतिक अधिकारियोंके नियन्त्रणमें है; और दूसरा रक्षित ब्रिटिश भारत, जहाँ जनता और ब्रिटिश अफसरके बीच एक मध्यस्थ है। तथापि, हमारे मतलबके लिए भारतके इन दोनों भागोंके निवासी समान रूपसे ब्रिटिश प्रजा हैं और भारतके बाहर उन्हें एक-ही विशेषाधिकार प्राप्त हैं। यह पहलू कोई भी नक्शा या प्रामाणिक भूगोल-पुस्तक पेश करके, या ब्रिटिश एजेंटकी गवाही लेकर भी, साबित किया जा सकता है। इसके अलावा, वादीने अक्सर ब्रिटिश भारतीय व्यापारीकी हैसियतसे ब्रिटिश एजेंटोंके साथ व्यापार किया है, और उसकी यह हैसियत स्वीकार भी की गई है।

ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोंकी ओरसे रानीको जो प्रशस्त अभिनन्दनपत्र[1] भेजा गया था, उसमें दूसरे लोगोंके साथ वादीके भी हस्ताक्षर थे। यह भी ब्रिटिश एजेंट साबित कर सकता है। और यदि यह उपाय ठीक समझा जाये और मंजूर किया जाये तो, और कुछ हो या न हो, इससे मामलेको थोड़ा गौरव तो मिल ही सकता है।

मुझे बताया गया है कि एक बार एक मजिस्ट्रेटने वादीसे एक फार्म भरवाया था। उसमें वादीने अपना परिचय ब्रिटिश प्रजाके रूपमें दिया था। और यह उस अफसरने स्वीकार किया था।

बाबत (ख):

मालूम होता है कि १८८२ में वादी तैयब इस्माइलका साझेदार था। १८८३ में वह अबूबकर अमद और कंपनीमें शामिल हो गया और प्रिटोरियामें इस पेढ़ीके व्यापारका आवासिक साझेदार और व्यवस्थापक रहा। १८८८ में अबूबकर अमद और कम्पनी तैयब हाजी अब्दुल्ला और कम्पनीके रूपमें बदल गई; और १८९२ से वादी तैयब हाजी खान मुहम्मद और कम्पनीके नामसे, साझेदारोंके साथ या बिना साझेदारोंके, व्यापार करता आ रहा है। ट्रान्सवालमें उसका दूसरा कारोबार भी था, और है। बहुत-से गवाह इसे साबित कर सकते हैं। यह भी सम्भव है कि साझेदारीके कागजात, या अगर परवाने दिये गये हों तो वे भी, पेश किये जा सकें।

बाबत (ग):

वादी अपनी निजी या अपने कब्जेकी जायदादका कर नियमित रूपसे अदा करता रहा है। उसे कभी अपराधी नहीं ठहराया गया। करोंकी रसीदें पेश की जा सकती हैं। मैं मानता हूँ, वादीने सैनिक कार्रवाई सम्बन्धी कर[2]में भी अपना हिस्सा अदा किया ही होगा। उसने अपनी दूकानको अच्छी आरोग्यजनक अवस्थामें रखा है। डा० बील इसकी गवाही दे सकेंगे।

बाबत (घ), (ङ) और (च):

यदि (क) को सिद्ध कर दिया गया, अर्थात् अगर वादीका ब्रिटिश भारतीय होना साबित कर दिया गया, तो (घ), (ङ) और (च) आप ही सिद्ध हो जाते हैं। क्योंकि, यदि वादी भारतीय है तो वह न अरब हो सकता है, न मलायी ही; और अगर वह ब्रिटिश प्रजा है तो तुर्की प्रजा नहीं हो सकता। इससे इनकार नहीं किया गया कि वह मुसलमान है, और उलझन इसी कारण पैदा हुई है। किसी भी तरह क्यों न हो, दक्षिण आफ्रिकाके लोग भारतीय मुसलमानोंको अरब और तुर्की प्रजा समझने लगे हैं। वादी दोनोंमें से कोई भी नहीं है। वह न कभी अरब गया और न तुर्की। अरब वह तीर्थ-यात्रा करने भी नहीं गया। भारतीय अरब या भारतीय मलायी होना तो असम्भव ही है। मेरी जानकारी तो यह है कि मलायी लोग

१. देखिए खण्ड २, पृष्ठ ३५४।

२. १८९४ में काफिर मुखिया मलाबोकके विरुद्ध बोअरोंकी सैनिक कार्रवाईके समय ट्रान्सवालमें वसूल किया गया एक कर।

पहले जावाके निवासी थे या शायद अब भी हैं, और उन्हें दक्षिण आफ्रिकामें पहले-पहले डच लोग लाये थे।

बाबत (छ):

'कुली' शब्दका प्रयोग सरकारी तौरसे पहले-पहले नेटालके विधानमण्डलने तब किया था जब कि इस उपनिवेशमें यूरोपीय जायदादोंके लिए असली 'कुली' अर्थात् खेतोंमें काम करनेवाले मजदूर लाये गये थे। उस समय इस उपनिवेश अथवा दक्षिण आफ्रिकामें अन्य कोई भारतीय नहीं थे, और १८७० से पहले एक भी भारतीय व्यापारी दक्षिण आफ्रिकामें नही आया था। तबतक खेतोंमें काम करनेवाले भारतीय मजदूरोंकी आबादी यहाँ खासी बढ़ चुकी थी, और तब गोरे लोग उन्हें 'कुली' कहा करते थे। वैसा करते हुए उनका मतलब उनका जी दुखानेका नही होता था। जब भारतीय व्यापारी यहाँ आये तब गोरे लोग उन्हें भी 'कुली' कहने लगे, क्योंकि वे इन मजदूरोंके अतिरिक्त अन्य भारतीयोंको जानते ही नहीं थे। वे यह भूल गये कि इस शब्दका विशेष अर्थ क्या है और इसका प्रयोग मजदूरोंके एक विशेष वर्गके लिए किया जाता है, किसी राष्ट्रके लिए नहीं। धीरे-धीरे व्यापारिक ईर्ष्याके अंकुर फूटे और यह शब्द भारतीय व्यापारियोंके प्रति तिरस्कार व्यक्त करनेका जरिया बन गया। इस रूपमें इसका प्रयोग जान-बूझकर और निर्बाध रूपसे किया जाने लगा। कुछ यूरोपीय लोग व्यापारियोंका थोड़ा-बहुत आदर करते थे। वे व्यापारियों-व्यापारियोंमें अन्तर प्रकट करनेके लिए भारतीय व्यापारियोंको 'अरब' कहने लगे। इसके बाद भारतीय लोग दक्षिण आफ्रिकामें जहाँ-कहीं भी गये 'कुली' शब्द भी उनके पीछे-पीछे गया। आम तौरसे यह घृणाका ही सूचक रहा। और आजतक यह वैसा ही बना हुआ है। इसका कानूनी अथवा कोशका अर्थ जाननेके लिए, वेब्स्टरके शब्दकोशको प्रामाणिक माना जा सकता है। और इस शब्दका व्यापारमें और बोलचालमें जो अर्थ समझा जाता है उसे बतलाने के लिए बहुत-से व्यापारी शपथपूर्वक यह गवाही देनेको तैयार हो जायेंगे कि वे वादी और उस जैसे भारतीयोंको 'कुली' कहनेके लिए कभी तैयार नहीं होंगे। उनका अपमान करना हो तो बात दूसरी है।

इस प्रसंगमें उस याददाश्तकी तरफ भी ध्यान देना चाहिए जो कि मैंने कुछ समय पूर्व कानूनकी साधारण व्याख्या करनेके लिए, और विशेष रूपसे 'कुली' शब्दके प्रयोगके सम्बन्धमें, लिखकर भेजी थी। *विन्दन बनाम लेडीस्मिथ कारपोरेशन* का मुकदमा भी देखने योग्य है। उसे इसके साथ भेज रहा हूँ। उसमें 'कुली' शब्दके प्रयोगपर जो विचार सर वाल्टर रैगने व्यक्त किया है[1], वह भी सम्मिलित है।

मो० क० गांधी

टाइप की हुई अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३७०४) से। उक्त प्रतिमें गांधीजीके हस्ताक्षर हैं।

१. देखिए पहले दी हुई "टिप्पणियाँ: परीक्षात्मक मुकदमे पर"।

## ९. पत्र : औपनिवेशिक सचिवको

५३-सी, फील्ड स्ट्रीट
डर्बन
जुलाई २१, १८९८

सेवामें
माननीय औपनिवेशिक सचिव
पी० मैं० बर्ग[1]

महोदय,

मैंने डर्बनके प्रवासी-अधिकारीको अमुक चार भारतीयोंके लिए अस्थायी परवानोंकी अर्जी दी थी। वे हरएक व्यक्तिके २५-२५ पौंड जमा करनेपर परवाने देनेको तैयार है। मेरे यह अर्जी देनेपर कि हर व्यक्ति से १०-१० पौंड जमा कराये जायें, उन्होंने मुझे सूचित किया है कि उन्हें ऐसी छोटी रकमें मंजूर करनेका अधिकार नही है।

मैं आपका ध्यान इस हकीकतकी ओर खींचना चाहता हूँ कि चार्ल्सटाउनमें १० पौंडकी रकम स्वीकार की जाती है। रकम जमा करानेकी प्रणाली वहुत बड़े सन्तापका मूल है, और मै निवेदन करता हूँ कि रकम जमा करानेका मंशा पूरा करनेके लिए १० पौड बहुत काफी है।

अगर अस्थायी परवाने रखनेवालोंकी जमा-रकम जब्त हो जाये, तो भी कानून तो उन तक पहुँच ही सकता है और उन्हें उपनिवेशसे निर्वासित किया जा सकता है। ऐसी स्थितिमें, मुझे भरोसा है, आप डर्बनके प्रवासी-अधिकारीको अधिकार दे देंगे कि वे अस्थायी परवाना माँगनेवाले हर व्यक्तिसे १० पौंडकी रकम जमा कराना मंजूर कर लें।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

हाथसे लिखे हुए मूल अंग्रेजी पत्रसे, जिसपर गाधीजीके हस्ताक्षर है; पीटरमैरित्सबर्ग आर्काइव्ज, नं० सी० एस० ओ०/४७९९/९८।

१. पीटरमैरित्सबर्ग।

## १०. तार : भारतके वाइसरायको

जोहानिसबर्ग, वरास्ता अदन
अगस्त १९, १८९८

प्रेषक
ब्रिटिश भारतीय
जोहानिसबर्ग

सेवामें
परमश्रेष्ठ वाइसराय महोदय
शिमला

हम, जोहानिसबर्गमें व्यापार करनेवाले ब्रिटिश भारतीय, आदरपूर्वक महानुभावके सूचनार्थ निवेदन करना चाहते हैं कि यहाँ के उच्च न्यायालयने निर्णय किया है[1] कि तमाम भारतीयोंको पृथक् बस्तियोंमें ही रहना और व्यापार करना होगा।

[अंग्रेजीसे]

परराष्ट्र विभाग, विदेश मन्त्रालय, भारत सरकार : कार्रवाइयाँ, सितम्बर १८९८, नं० ५५–५६।

## ११. प्रार्थनापत्र : भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसको[2]

ट्रान्सवाल उच्च न्यायालयके यह फैसला देने पर कि भारतीयोंको पृथक् बस्तियोंमें ही रहना और व्यापार करना होगा, भारतीयोंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके नाम निम्नलिखित प्रार्थनापत्र भेजा था।

जोहानिसबर्ग
दक्षिण आफ्रिकी गणराज्य
अगस्त २२, १८९८

सेवामें
अध्यक्ष तथा सदस्यगण
भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस

महोदयो,

दक्षिण-आफ्रिकी गणराज्यके जोहानिसबर्ग नगरमें रहनेवाले हम, निम्न हस्ताक्षरकर्ता ब्रिटिश प्रजाजन, आपकी कांग्रेसका ध्यान निम्न-लिखित तथ्योंकी ओर सादर आकृष्ट करना चाहते हैं :

१. परीक्षात्मक मुकदमेमें अदालतने निर्णय किया था कि निवास और व्यापारके स्थानोंमें कोई भेद नहीं है, और एशियाइयोंको उन्हीं पृथक् बस्तियोंमें रहना तथा व्यापार करना होगा, जो सरकारने उनके लिए निश्चित कर दी हैं (पृष्ठ १)।

२. इसी प्रकारका प्रार्थनापत्र उपनिवेश-मंत्री तथा भारत-मंत्रीको और एक नकल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी ब्रिटिश समितिको भी भेजी गई थी।

१. हम ब्रिटिश प्रजाजन हैं, हमारा जन्म ब्रिटिश भारतमें हुआ है, और अब हम जोहानिसबर्गमें व्यापारियों और दूकानदारोंकी हैसियतसे व्यापार कर रहे हैं।

२. हममें से कुछ लोगोंको इस गणराज्यमें रहते बारह वर्ष और इससे भी अधिक समय बीत गया है। जोहानिसबर्गमें हमारी दूकानोंमें बहुतेरा कीमती सामान भरा है।

३. हमारा सादर निवेदन है कि ब्रिटिश प्रजाजनोंकी हैसियतसे हमें 'लंदन समझौता' के नामसे प्रसिद्ध समझौतेका पूरा लाभ पानेका अधिकार है। यह समझौता सम्राज्ञीकी सरकार और दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यकी सरकारके बीच १८८४ में हुआ था। इसके चौदहवें अनुच्छेदमें विधान है कि सब ब्रिटिश प्रजाजनोंको दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यमें कहीं भी रहने और व्यापार करनेका अधिकार होगा।

४. हालमें इस गणराज्यके उच्च न्यायालयने निर्णय किया है कि सब भारतीयों और अन्य एशियाइयोंको उन खास बस्तियोंमें ही रहना और व्यापार करना पड़ेगा, जो कि गणराज्यकी सरकार उनके लिए नियत कर देगी; और कही नही।

५. उच्च न्यायालयका यह निर्णय इस गणराज्यकी लोकसभा (फोक्सराट) द्वारा पास किये हुए एक विधानके आधारपर है। यह विधान उपर्युक्त समझौतेके पश्चात्, अर्थात् १८८५ में पास किया गया था और १८८५ का कानून ३ कहलाता है। यह कानून उक्त समझौतेकी स्पष्ट शर्तोंके प्रत्यक्ष विरुद्ध है।

६. यदि यह मान भी लिया जाये कि हम १८८५ के उक्त कानून ३ की शर्तोंके पाबन्द है, जो कि हम नही मानते, तो भी हमारा सादर निवेदन है कि इस गणराज्यके उच्च न्यायालयका उक्त निर्णय कानूनन गलत और उक्त कानूनके सच्चे अर्थों और उद्देश्योंके स्पष्ट विपरीत है। क्योंकि, कानूनमें लिखा है कि इस गणराज्यकी सरकारको इस गणराज्यके एशियाइयोंके लिए बस्तियोंमें रहनेका स्थान निश्चित कर देनेका अधिकार होगा। इससे, गणराज्यमें कहीं भी व्यापार करनेके एशियाइयोंके अधिकारपर कोई प्रतिबन्ध लागू नही होता।

७. उच्च न्यायालयका उक्त निर्णय अन्तिम है, उसके विरुद्ध अपील नही की जा सकती।

८. हमें यह विश्वास नही होता कि सम्राज्ञी-सरकारका ऐसा कोई इरादा था या है कि जो अधिकार उक्त लदन-समझौते द्वारा सब ब्रिटिश प्रजाजनोके लिए विशेष रूपसे प्राप्त कर लिए गये हैं उनसे हमको वंचित कर दिया जाये, और सन्धि द्वारा प्राप्त अधिकारोके मामलेमें भारतीय ब्रिटिश प्रजाजनोंकी स्थिति यूरोपीय ब्रिटिश प्रजाजनोकी अपेक्षा घटिया होती हो तो हो जाने दी जाये।

९. हमें सन्देह नही कि इस गणराज्यके उच्च न्यायालयके उक्त निर्णयपर तुरन्त ही अमल किया जायेगा और हमें जोहानिसबर्गमें और उसके अड़ोस-पड़ोसमें दूकानें और दफ्तर बन्द करके, इस गणराज्यकी सरकार द्वारा मनचाहे ढंगसे कायम की गई बस्तियोमें जाकर रहने और रोजगार करनेको विवश होना पड़ेगा। ये बस्तियाँ जोहानिसबर्गसे लगभग *तीन मील परे*, काफिरोकी बस्तीसे लगी हुई होंगी। इसका परिणाम यह होगा कि हमारा व्यापार नष्ट हो जायेगा, हम अपनी आजीविकाके साधनोसे वंचित हो जायेंगे और हमें यह राज्य छोड़कर चले जानेको विवश होना पड़ेगा; क्योंकि इस गणराज्यमें केवल जोहानिसबर्ग ही व्यापारका बड़ा केन्द्र और ऐसा स्थान है, जहाँ कि इस गणराज्यके अधिकतर भारतीय रहते तथा कारबार करते है।

इन सब कारणोंसे, आपकी कांग्रेससे हमारी आदरपूर्वक प्रार्थना है कि वह हमारी शिकायतें दूर करानेके लिए हमारी तरफसे अपने प्रबल प्रभावका उपयोग करनेकी कृपा करे।

आपके अत्यन्त आज्ञाकारी सेवक,
(यहाँ अनेक व्यक्तियोंके हस्ताक्षर हैं)

[अंग्रेजीसे]
*इंडिया*, ११-११-१८९८

## १२. पत्र: लॉर्ड हैमिल्टनको

पो० आ० बॉक्स १३०२
जोहानिसबर्ग
अगस्त २५, १८९८

परम माननीय लॉर्ड हैमिल्टन
सम्राज्ञीकी परिषद (प्रीवी कौंसिल) के सदस्य, आदि
भारत-मन्त्री
लंदन, इंग्लैंड

परम माननीय महोदय,

हम, अपनी और दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यके जोहानिसबर्ग नगर-निवासी अन्य भारतीय ब्रिटिश प्रजाजनोंकी ओरसे, आपकी सेवामें संलग्न प्रार्थनापत्र[1] अर्पित कर रहे हैं।

आपके अत्यन्त आज्ञाकारी सेवक,
ए० चेट्टी
ए० अप्पास्वामी

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल ऑफ़िस रेकर्ड्स: मेमोरियल्स ऐंड पिटिशन्स, १८९८।

१. इसे जिस खरीतेके साथ भेजा गया था उसमें औपनिवेशिक कार्यालय (कलोनियल ऑफ़िस) की यह सूचना दर्ज थी: "प्रार्थनापत्र शब्दशः वही है, जो श्री चेम्बरलेन और आइ० एन० सी० (इंडियन नेशनल कांग्रेस) को भी भेजा गया है।" देखिए पिछला शीर्षक।

## १३. तार: मंचरजी भावनगरीको[1]

जोहानिसबर्ग
अगस्त ३०, १८९८

सर मंचरजी भावनगरी
लंदन

अदालतने फैसला कर दिया कि सरकारको भारतीयोंको व्यापार तथा निवासके लिए पृथक् बस्तियोंमें हटानेका अधिकार है। न्यायाधीश जोरिसेन असहमत। भारी आतंक। हटाये जानेके भयसे व्यापार ठप्प हो रहा है। बड़े-बड़े हित खतरेमें। चेम्बरलेनके आश्वासनपर भरोसा कि परीक्षात्मक मुकदमेके बाद ट्रान्सवाल-सरकारसे लिखा-पढ़ी करेंगे। उन्होंने कहा था, निश्चित मुद्दा प्राप्त करनेके लिए मुकदमा आवश्यक। कृपया सहायता करें।

ब्रिटिश भारतीय

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल ऑफ़िस रेकर्ड्स: मेमोरियल्स ऐण्ड पिटिशन्स, १८९८।

## १४. तार: 'इंडिया' को[2]

जोहानिसबर्ग
[अगस्त ३०, १८९८][3]

अदालतने फैसला दे दिया है कि सरकारको अधिकार है कि वह ट्रान्सवालके भारतीयोंको व्यापार तथा निवास दोनोंके लिए पृथक् बस्तियोंमें हटा दे। न्यायाधीश जोरिसेनने इस फैसलेसे मतभेद प्रकट किया। यहाँ भारी आतंक फैला हुआ है। डर है कि पृथक् बस्तियोंमें हटाये जानेसे व्यापार ठप्प हो जायेगा। बड़े-बड़े हित खतरेमें पड़ गये हैं। हमें श्री चेम्बरलेनके इस वादेका ही आसरा है कि परीक्षात्मक मुकदमेके बाद वे ट्रान्सवाल-सरकारके साथ लिखा-पढ़ी करेंगे। उन्होंने कहा था कि लिखा-पढ़ीके लिए निश्चित मुद्दा प्राप्त करनेके हेतु परीक्षात्मक मुकदमा जरूरी है।

[अंग्रेजीसे]

*इंडिया*, ९-९-१८९८

१. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी लंदन-स्थित ब्रिटिश समितिके सदस्य; देखिए खण्ड २, पृष्ठ ४२० ।

२. *इंडिया*ने यह तार 'जोहानिसबर्ग-स्थित संवाददाता से प्राप्त' रूपमें प्रकाशित किया था। उस समय गांधीजी ही *इंडिया*के डर्बन, जोहानिसबर्ग तथा दक्षिण आफ्रिका-स्थित संवाददाताका काम कर रहे थे।

३. इस तारका पाठ लगभग वही है, जो पिछले तारका है। स्पष्ट है कि यह भेजा भी उसी तारीखको गया होगा और *इंडिया* चूँकि एक साप्ताहिक पत्र था, इसलिए यह उसके आगेके अंकमें प्रकाशित हुआ।

# १५. दादा उस्मानका मुकदमा

नीचे दी जानेवाली सामग्री डर्बन नगर-परिषद द्वारा सुनी गई एक अपीलकी रिपोर्ट है। अपील करनेवालोंकी ओरसे गांधीजी खड़े हुए थे। उन्होंने भारतीयोंको प्रजातीय आधारपर व्यापारके परवाने न देनेके विरुद्ध जोरदार दलीलें की थीं। परिषद्ने अपील खारिज कर दी थी।

डर्बन
सितम्बर १४, १८९८

दादा उस्मानने ग्रे स्ट्रीटकी दूकान नं० ११७ के लिए थोक तथा फुटकर व्यापारके परवानेकी अर्जी दी थी। परवाना-अधिकारीने उसे नामंजूर कर दिया। दादा उस्मानने परवाना-अधिकारीके निर्णयके खिलाफ अपील की, जिसपर विचार करनेके लिए नगर-परिषदने कल तीसरे पहर अपने सभाभवनमें एक विशेष बैठक की थी। माननीय मेयर महोदय (श्री जे० निकोल) अध्यक्ष थे और माननीय श्री जेमिसन, एम० एल० सी० तथा सर्वश्री एम० एस० ईवान्स, एम० एल० ए०, हेनवुड, कालिन्स, चैलिनॉर, हिचिन्स, टेलर, लेबिस्टर, गार्लिक (नगर-परिषद्के सॉलिसिटर) और डायर (परवाना-अधिकारी) भी उपस्थित थे। श्री गांधी अर्जदारके वकीलकी हैसियतसे उपस्थित हुए थे।

टाउन-क्लार्क (श्री कूले)ने परवाना-अधिकारीके निर्णयके निम्नलिखित कारण पढ़कर सुनाये:

> "जहाँ तक मैं समझा हूँ, सन् १८९७ के कानून १८ को मंजूर करनेमें सरकारकी दृष्टि यह रही है कि कुछ वर्गोंके लोगोंके नाम, जिन्हें आम तौरपर अवांछनीय माना जाता है, परवाने देनेपर कुछ रोक रखी जाये। और चूँकि मुझे विश्वास है कि मैं यह माननेमें भूल नहीं कर रहा हूँ कि प्रस्तुत अर्जदार उन्हीं वर्गोंमें गिना जायेगा, और चूँकि डर्बनमें व्यापार करनेका परवाना उसके पास कभी नहीं रहा है, इसलिए परवाना देनेसे इनकार करना मैंने अपना कर्तव्य समझा है।"

दूकानके सम्बन्धमें सफाई-दारोगाकी रिपोर्ट भी पढ़ी गई। उसका आशय यह था कि उस दूकानके लिए पहले परवाना जारी था और वह उपयुक्त है।

वेस्ट स्ट्रीटके व्यापारी श्री अलेक्जैंडर मैकविलियमको गवाहके तौरपर बुलाया गया था। उन्होंने कहा, मैंने अर्जदारके साथ बड़े पैमानेपर कारोबार किया है। उसपर मेरा एक साथ ५०० पौंड तकका कर्ज रहा है। मैंने उसे एक अच्छा व्यापारी और व्यवहारमें ईमानदार पाया है। वास्तवमें मैं उसपर फिरसे ५०० पौंड तकका भरोसा कर सकता हूँ। गवाहके खयालसे, उक्त मकानमें जो व्यापार करनेका इरादा किया गया है उसके लिए वह उपयुक्त और शोभास्पद है।

श्री कालिन्स: क्या अर्जदारमें हिसाब-किताब रखनेकी योग्यता है?

गवाह: मुझे मालूम नहीं। परन्तु जिस तरह वह मेरे नाम पत्रोंमें अपनी बात व्यक्त करता है, उससे मैं कल्पना करता हूँ कि उसमें हिसाब-किताब रखनेकी योग्यता होगी ही।

अर्जदार दादा उस्मानने भी गवाही दी। उन्होंने कहा कि मैं नेटालमें १८ वर्षसे रह रहा हूँ। इस सारे समयमें मैं व्यापार ही करता रहा हूँ। अमर्सिगामें मेरी दो दूकानें हैं। मैं डर्बनमें एक दूकान खोलना चाहता हूँ, क्योंकि मेरा परिवार यहाँ रहता है। यहाँ मेरा घर खर्च २० पौंड माहवार है और मेरे मकान तथा दूकानका किराया करोंको मिलाकर ११ पौंड होता है। मेरे घर और दूकानमें बिजलीकी रोशनी है और मेरे घरकी साज-सज्जा, जिसकी कीमत १०० पौंडसे ज्यादा है, डर्बनकी खरीदी हुई है। डर्बनकी कई बड़ी-बड़ी पेढ़ियोंके साथ मेरा व्यापारिक व्यवहार चलता है और मैं हिसाबकी दोनों सिंगल एन्ट्री और डबल एन्ट्री प्रणालियाँ[1] जानता हूँ, और अंग्रेजीमें हिसाब रख सकता हूँ। परवाना-अधिकारीने मेरी हिसाबकी किताबोंकी जाँच की थी और

१. हिसाबका पश्चिमी तरीका।

उन्हें ठीक ठहराया था। मेरी अन्दरूनी इलाकोंकी दूकानोंको माल भेजनेके लिए परवाना निहायत जरूरी नहीं है। फिर भी मैं परवाना चाहता हूँ, ताकि मेरा डर्बनमें रहनेका खर्च पूरा हो जाये। मुझे डर्बनमें मकान रखना ही पड़ता है, क्योंकि मुझे बार-बार अपने कारोबारके सम्बन्धमें फ्राईहाइड तथा अमसिंगा जाना पड़ता है और मेरी पत्नी मेरे साथ इन स्थानोंकी यात्रा बहुत सहूलियतसे नहीं कर पाती। अमसिंगामें मेरी दो दूकानें हैं। डर्बनमें दूकान चलानेका परवाना मेरे पास कभी नहीं रहा। अमसिंगाकी दूकानें मेरे पास १५ वर्षसे अधिकसे हैं और इस बीच मैंने अपना सारा माल डर्बनमें खरीदा है। अगर परिषद परवाना देनेसे इनकार कर दे तो मुझे अपनी अन्दरूनी इलकोंकी दूकानें बन्द नहीं करनी पड़ेंगी। मेरी पत्नी पाँच माहसे नेटालमें है। मेरा विवाह ८ वर्ष पूर्व भारतमें हुआ था और उसके बाद भी मैंने भारतकी यात्रा की है।

अब्दुल कादिरको गवाहीके लिए बुलाया गया। वे मुहम्मद कासिम ऐंड कम्पनी नामकी पेढ़ीके व्यवस्थापक-साझेदार हैं। यह कम्पनी उस मकानकी मालिक है, जिसके लिए परवानेकी अर्जी दी गई है। अब्दुल कादिरने कहा कि किराया १० पौंड तय किया गया है। कर इसके अलावा है। इस दूकानके लिए पहले परवाना रह चुका है। डर्बनमें मेरी तीन या चार जायदादें हैं। उनकी कीमत १८,००० और २०,००० पौंडके बीच है। इन जायदादोंका अधिकतर हिस्सा किरायेपर दिया जाता है। अगर उस्मानको परवाना न मिला तो मुझे उस खास दूकानके किरायेकी हानि होगी। मैं अर्जदारको लम्बे अरसेसे जानता हूँ। मैं जानता हूँ कि वह एक अच्छा किरायेदार होगा।

इसके आगे, अर्जदारकी प्रतिष्ठाके बारेमें एक अन्य भारतीय व्यापारीने गवाही दी।

श्री गांधीने कहा कि पिछली बार जब उन्होंने परिषदके सामने दलीलें की थीं तब, दुर्भाग्यवश, वे परिषदको यह नहीं जँचा सके थे कि मकान-मालिकके हितोंका खयाल किया जाना चाहिए। उस दिन मुहम्मद कासिम ऐंड कम्पनीके व्यवस्थापक-साझेदारने परिषदको बताया था कि उन्हें उस दूकानके लिए जो किरायेदार मिल सकते हैं उनमें वर्तमान अर्जदार सबसे अच्छा है। और यह कि, उनके पास १८,००० पौंडकी जायदाद है, जिसका ज्यादातर हिस्सा अर्जदार जैसे लोगोंको किराये पर दिया जाता है। उन्होंने आगे कहा था कि अगर अर्जदारको परवाना न दिया गया तो उन्हें अपनी दूकानके लिए कोई किरायेदार न मिल सकेगा। स्पष्ट है कि, मकान-मालिकके हितोंका खयाल होना ही चाहिए। श्री अब्दुल कादिर नगरके उतने ही अच्छे करदाता हैं, जितना कि कोई भी दूसरा व्यक्ति। और उनकी आवाज परिषदको सुननी ही चाहिए। अब्दुल कादिरको अर्जदार एक ऐसा किरायेदार मिला है, जिसे वे लम्बे अरसेसे जानते हैं। और अगर परवाना देनेसे इनकार किया गया तो मकान-मालिकको तकलीफ होगी। मकान केवल दूकानके लायक है और उसे किसी दूसरे प्रयोजनके लिए किरायेपर उठाना मकान-मालिकके लिए सम्भव न होगा। इस बातकी गवाही पेश की जा चुकी है कि पहले उस दूकानके लिए परवाना जारी रहा है। और श्री मैकविलियम ने, जो एक बिलकुल बेलाग गवाह थे, कहा है कि दूकान साफ-सुथरी और शोभास्पद है। इन परिस्थितियोंमें, उन्होंने आशा व्यक्त की, परिषद मकान-मालिकके हितोंको उचित महत्त्व देगी। जहाँतक स्वयं अर्जदारका सम्बन्ध है, प्रमाण पेश किया जा चुका है कि उसकी गवाही सही है और वह डर्बनमें मकान रखनेका खर्च निकालनेके लिए यहाँ कुछ व्यापार करना चाहता है। अर्जदार पूर्णतः शिष्ट, इज्जतदार और अपने व्यवहारमें खरा व्यक्ति है। वह अपनी बातें समझानेके लिए अंग्रेजीमें काफी बातचीत कर सकता है और अपना हिसाब अंग्रेजीमें रख सकता है। उसकी हिसाबकी किताबें पहले मंजूर की जा चुकी हैं और उनका [गांधीजीका] खयाल था कि परिषद मंजूर करेगी, अर्जदार जाँच में बहुत खरा उतरा है। दूकान या अर्जदार किसीके बारेमें रंच-मात्र भी आपत्ति नही हो सकती। परवाना-अधिकारीको अपने कारणोंमें जो-कुछ बताना अच्छा लगा है, उसके अलावा अर्जदारमें और कुछ भी आपत्तिजनक नही है और, परिषदके प्रति पूरे सम्मानके साथ

उन्होंने निवेदन किया कि, परवाना-अधिकारीका उन भाषणोंसे कोई वास्ता नहीं था, जो अधिनियमके पास किये जाते समय विधान सभामें दिये गये थे। अधिनियमकी प्रस्तावनामें यह बतानेवाली कोई चीज नहीं है कि अधिनियमका मंशा यह है। उसमें तो सिर्फ यह कहा गया है कि थोक और फुटकर विक्रेताओंको परवाने देना विनियमित करना जरूरी है। वांछनीय या अवांछनीय व्यक्तियोंका कोई भेद उसमें नहीं किया गया। और, फिर भी, परवाना-अधिकारीने सरासर अपनी मर्यादाका उल्लंघन करके उन भाषणोंका हवाला दिया, जो अधिनियमके पास होते समय दिये गये थे। वस्तुतः, उससे अपेक्षा तो यह थी कि अर्जीपर विचार करते समय वह न्यायान्यायकी भावनासे काम लेगा। परवाना-अधिकारीके लिए यह रास्ता अख्तियार करना बड़ी असाधारण बात थी और, श्री गांधीने आशा व्यक्त की कि, चूँकि परवाना-अधिकारीने, दिये हुए कारणोंसे, परवाना देना नामंजूर किया है, इसलिए परिषद उस निर्णयको उलट देगी। परवाना-अधिकारीने कहा है कि उसका विश्वास था, उसका यह मानना ठीक था कि अर्जदार अवांछनीय वर्गमें शामिल किया जायेगा। परन्तु, उसे ऐसा माननेका क्या अधिकार था? श्री गांधीने कहा कि वे जानना चाहते हैं, अवांछनीय कौन है, और ऐसे व्यक्तिका वर्णन किस तरह किया जायेगा; और वे इस मुद्देपर उपनिवेश-मन्त्रीकी राय पेश करना चाहते हैं। उन्होंने श्री चेम्बरलेनके एक भाषणके कुछ अंश पढ़कर सुनाये। श्री चेम्बरलेन ने यह भाषण उपनिवेशोंके प्रधानमन्त्रियोंके सम्मेलनमें दिया था। उसमें उन्होंने कहा था कि हमें साम्राज्यकी परम्पराओंका खयाल रखना चाहिए, जिनमें रंगके आधारपर किसी प्रजातिके पक्ष या विपक्षमें कोई भेदभाव नहीं किया जाता। उन्होंने भारतीयोंकी सम्पत्ति तथा सभ्यताका, और संकटके समय उन्होंने साम्राज्यकी जो सेवाएँ की उनका भी जिक्र किया था। श्री चेम्बरलेनके कहनेके अनुसार, आपको प्रवासियोंके आचरणका विचार करना है; और यह कि, कोई आदमी आपके रंगसे भिन्न रंगका होनेके कारण ही अवांछनीय नहीं बन जाता, बल्कि इसलिए अवांछनीय होता है कि वह गन्दा है, या चरित्रहीन है, या कंगाल है, या उसमें कोई दूसरी आपत्तिजनक बात है। यह है, उपनिवेश-मन्त्रीके मतसे, अवांछनीय प्रवासी और श्री गांधी के मुअक्किलके खिलाफ ऐसी कोई आपत्ति पेश नहीं की गई। अर्जदारके खिलाफ उठाई गई एकमात्र आपत्ति यह है, और इसे उपनिवेश-मन्त्री ने अमान्य कर दिया है, कि वह एक भारतीय है और, इसलिए, वह अवांछनीय लोगोंके वर्गमें शामिल होता है। श्री गांधीने आशा व्यक्त की कि परिषद इस कारणको मंजूर नहीं करेगी। परवाना-अधिकारीने इन परवानोंके नामंजूर किये जानेका एकमात्र कारण बता कर भारतीय समाजको बहुत कृतज्ञ बना लिया है। इस परिषद-भवनमें कहा गया है कि भारतीयोंपर आपत्ति उनके रंगके कारण या उनके भारतीय होनेके कारण नहीं, बल्कि इस कारण की जाती है कि वे साफ-सुथरे तरीकेसे नहीं रहते। यह आपत्ति श्री गांधीके मुअक्किलके विरुद्ध नहीं उठायी जा सकती। उन्होंने कहा कि वे बताना चाहते हैं, अगर परिषदने यह परवाना देनेसे इनकार किया तो वह तमाम भारतीयोंको एक-बराबर करार दे देगी और उसके इस कामसे भारतीयोंको साफ-सुथरे तथा शोभास्पद मकानोंमें और हर तरहसे प्रतिष्ठित नागरिकोंकी भाँति रहनेका प्रोत्साहन नहीं मिलेगा। इन परवानोंके बारेमें की जानेवाली प्रत्येक बात बाहर फैलती है और अगर मेरे मुअक्किल जैसे आदमीको परवाना देनेसे इनकार किया गया तो भारतीय कहेंगे कि नगर-परिषद यह नहीं चाहती कि वे साफ-सुथरे ढंगसे और ईमानदारीके साथ रहें, बल्कि यह चाहती है कि वे किसी भी तरह रह लें। परिषदको भारतीय आबादीमें इस तरहकी भावना पैदा नहीं होने देनी चाहिए। पहले एक मौकेपर कहा गया था कि यह जरूरी है कि इन परवानोंको बढ़ाया न जाये। परन्तु प्रस्तुत मामलेमें

यह प्रश्न नही उठता, क्योंकि जिस दूकानके लिए परवाना माँगा गया है, उसके लिए इस साल परवाना जारी था ही। अर्जी मंजूर करनेसे परवानोंकी संख्या बढ़ेगी नही। अगर ये दूकानें बन्द कर दी जायें तो भारतीय मकान-मालिकोंको भी अपना कारोबार बन्द कर देना होगा। उन्होंने आशा व्यक्त की कि परिषद अपीलपर उचित विचार करेगी और उनके मुअक्किलको परवाना दे देनेका आदेश निकाल देगी।

श्री टेलरने कहा: मुझे नहीं जँचा कि परवाना-अधिकारीने गलती की है और, इसलिए, उन्होंने प्रस्ताव किया कि निर्णयको पक्का कर दिया जाये।

श्री कालिन्सने कहा कि मुझे जरा भी आश्चर्य नहीं कि परिषद परवाना देनेसे इनकार करनेकी बहुत ही ज्यादा अनिच्छुक है; फिर भी, मेरा विश्वास है, इनकार किया ही जानेवाला है। और मुझे यह कहनेमें कोई संकोच नहीं कि इनकारीका कारण यह नहीं है कि अर्जदार भारतीय होनेके अलावा और किसी दृष्टिसे परवानेके अयोग्य है। श्री गांधीने जो-कुछ कहा है वह बिलकुल सत्य है और मेरा मन यह कह डालनेसे कुछ हल्का होता है कि इन परवानोंमें से अगर सब नहीं तो ज्यादातर मुख्यतः उसी कारणसे नामंजूर किये गये हैं। परिषद बड़ी अड़चनमें पड़ गई है, क्योंकि उसे एक ऐसी नीति कार्यान्वित करनी पड़ती है, जिसे संसदने आवश्यक समझा है। समाजके प्रतिनिधिकी हैसियतसे संसद इस निष्कर्षपर पहुँची है कि डर्बनमें व्यापारपर भारतीय अपना कब्जा बढ़ायें, यह अवांछनीय है। और इसी आधारपर परिषदको आदेश-सा दे दिया गया है कि वह ऐसे परवाने देनेसे इनकार कर दे, जो अन्यथा आपत्तिजनक नहीं हैं। मेरा खयाल है कि अर्जदारको परवानेकी इनकारीसे अन्याय महसूस होगा; परन्तु औपनिवेशिक नीतिके रूपमें यही अनुकूल पाया गया है कि इन परवानोंकी संख्या बढ़ाई न जाये। और, इसलिए, मैं श्री टेलरके प्रस्तावका समर्थन करता हूँ।

मेयरने कहा कि सर्वश्री ईवान्स, लैबिस्टर और हिचिन्स देरीसे आनेके कारण मत नहीं दे सकेंगे।

श्री लैबिस्टरने कहा कि देरीसे आनेके बारेमें, मैं समझता हूँ, मुझे मेयर महोदय और परिषदसे क्षमा-याचना करनी चाहिए। परन्तु मैं कैफियत देना चाहता हूँ कि मैं इन परवाना सम्बन्धी बैठकोंमें आना समझ-बूझ कर टालता हूँ, क्योंकि हमें जो गन्दा काम करनेको कहा गया है उससे मैं पूर्णतः असहमत हूँ। मैं इस बैठकमें इस अपेक्षासे आया था कि परवाना-सम्बन्धी काम पहले ही खत्म हो चुका होगा और जब मैं पहुँचूँगा तबतक साधारण काम शुरू हो चुका होगा। श्री कालिन्सकी कही हुई बातोंसे मैं सहमत हूँ; परन्तु कोई भी परिषद-सदस्य, हमसे जो-कुछ करनेको कहा गया है उसकी कार्रवाईमें भाग न लेकर, अपनी असहमति दर्ज करा सकता है। मेरा मत है कि, जब हम अपील-अदालतकी हैसियतसे बैठते हैं, तब हमारा काम होता है कि हम गवाहियाँ सुनें और यदि किसी अर्जदारके खिलाफ कोई मजबूत कारण न हो तो हम उसे परवाना दे दें। अगर डर्बनके नागरिक या उपनिवेशके लोग चाहते हैं कि ये परवाने देना बन्द कर दिया जाये तो वे विधान-मण्डलके पास जा सकते हैं और भारतीय समाजके सदस्योंका परवानोंके लिए अर्जियाँ देना रुकवा सकते हैं।

मत लिये जानेपर श्री टेलरका परवाना-अधिकारीके निर्णयको बहाल रखनेका प्रस्ताव बिना विरोध पास हो गया। और, फलस्वरूप, अपील रद हो गई।

[अंग्रेजीसे]

*नेटाल मर्क्युरी*, १५-९-१८९८

## १६. सूचना: कांग्रेसकी बैठककी

[डर्बन]
सितम्बर १५, १८९८
गुरुवार

महाशय,

कल रातको ठीक ८ बजे कांग्रेसकी बैठक होगी। उसमें नीचेके मुताबिक काम होगा:

कांग्रेसकी रिपोर्ट — हिसाब — कर्जके बारेमें विचार — श्री नाजर[1]को भेजे गये पौंड दस की मंजूरी — सर मंचरजी भावनगरीको भेजे गये पौंड दसकी मंजूरी — श्री नाजर जो कर्ज छोड़ आये हैं उसकी अदायगीके लिए माँग — अवैतनिक मन्त्रीका इस्तीफा — आदि काम किया जायेगा। श्री नाजर बैठकमें हाजिर नही रहेंगे।

बैठक इतनी जरूरी है कि, आशा है, आप सब सदस्य हाजिर रहेंगे।

कल शामको ठीक ८ बजे अवैतनिक मन्त्रीकी रिपोर्ट आदि पर विचार करनेके लिए कांग्रेसकी बैठक होगी।[2]

मो० क० गांधी

गांधीजीके हस्ताक्षरोंमें लिखी गुजरातीकी मूल दफ्तरी प्रति (एस० एन० २८०७) से, जो नेशनल आर्काइव्ज़, नई दिल्लीमें सुरक्षित है।

## १७. तार: औपनिवेशिक सचिवको

डर्बन
नवम्बर ३, १८९८

प्रेषक
मुहम्मद कासिम कमरुद्दीन ऐंड कं०

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
पी० मै० बर्ग

अभ्यागतों और प्रस्थान सम्बन्धी परवानोंके[3] नियम गज़टमें प्रकाशित। उनसे भारतीयोंमें बहुत असन्तोष उत्पन्न। गवर्नर महोदयके नाम प्रार्थनापत्र[4] तैयार हो रहा है। भारतीय समाजकी ओरसे नम्र निवेदन है इस बीच नियम स्थगित रखें।

हस्तलिखित अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० २८४५) से। मूल प्रतिमें गांधीजी के हस्ताक्षर हैं।

१. लन्दनमें १८९७ में औपनिवेशिक प्रधानमन्त्रियोंका जो सम्मेलन हुआ था उसके अवसरपर श्री नाजरको वहाँ भेजा गया था।

२. मूल प्रतिमें यह अनुच्छेद अंग्रेजीमें टाइप किया हुआ है।

३. प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियम, १८९७ के अन्तर्गत जो प्रतिबन्ध, शुल्क तथा धन जमा करानेकी शर्तें लगाई गई थीं, उनके लिए देखिए "पत्र: उपनिवेश-सचिवको," जुलाई २१, १८९८ और "प्रार्थनापत्र: चेम्बरलेनको," पृष्ठ २६।

४. देखिए पृष्ठ २६।

## १८. प्रार्थनापत्र : भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसको

जोहानिसबर्ग
दक्षिण आफ्रिकी गणराज्य
नवम्बर २८, १८९८

सेवामें
सभापति महोदय
भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस

श्रीमन्,

हम, दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यके जोहानिसबर्ग नगरवासी नीचे हस्ताक्षर करनेवाले ब्रिटिश भारतीय, आपकी कांग्रेसका ध्यान आदरपूर्वक निम्न तथ्योंकी ओर आकृष्ट करना चाहते हैं :

१. इस गणराज्यके नवम्बर १९, १८९८ के *स्टाट्स कूरैंट* [सरकारी गजट] में प्रकाशित सरकारी सूचना नं० ६२१ के द्वारा सब भारतीयों और अन्य एशियाइयोंको आज्ञा दी गई है कि वे पहली जनवरी १८९९ से और उसके बाद केवल उन बस्तियोंमें रहें और व्यापार करें जिनका निर्देश इस राज्यकी सरकार करे। सूचनाकी नकल इस प्रार्थनापत्रके साथ संलग्न है।

२. हम आदरपूर्वक निवेदन करते हैं कि इस सरकारी सूचनाकी शर्तें "लंदन-समझौते" की शर्तोंके विरुद्ध हैं। समझौतेमें लिखा है कि सब ब्रिटिश प्रजाजनोंको बिना किसी भेदभावके दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यमें कहीं भी रहने और व्यापार करनेका पूरा अधिकार होगा।

३. यदि इस सरकारी सूचनाकी शर्तोंपर अमल किया गया तो हमारी भारी आर्थिक हानि हो जायेगी, क्योंकि हममें से अनेकने अपना व्यापार जोहानिसबर्गमें और गणराज्यके अन्य कई स्थानोंमें जमा लिया है।

इसलिए हम आपकी कांग्रेससे सादर अनुरोध करते हैं कि हमें जो हानि पहुँचाई जा रही है उसका प्रतिकार करनेके लिए वह हमारी तरफसे अपने प्रभावका उपयोग करे।

आपके आज्ञाकारी सेवक,

वी० ए० चेट्टी
ए० पिल्ले ऐंड कं०
वी० मुरुस्वामी मुदलियार
ए० कृष्णस्वामी
ए० अप्पास्वामी

*[संलग्न सूचना]*

### *सरकारी सूचना नं० ६२१*[1]

सर्वसाधारणकी जानकारीके लिए इसके द्वारा सूचित किया जाता है कि माननीय कार्यकारिणी परिषद्ने नवम्बर १५, १८९८ के अपने प्रस्ताव अनुच्छेद ११०१ के द्वारा निश्चय किया है कि :

१. जो कुली और अन्य एशियाई वतनी अबतक विशेष रूपसे उनके लिए नियत बस्तियोंमें निवास और व्यापार नहीं करते, और जो कानूनके विरुद्ध किसी नगर या ग्राम या अन्य वर्जित स्थानमें रहते तथा व्यापार

१. यह सूचना मूलतः डच भाषामें प्रकाशित हुई थी।

करते हैं, उन्हें हाकिम-बन्दोबस्त-जमीन (लैंडड्रास्ट) या खानोंके आयुक्त (माइनिंग कमिश्नर) या उनके आदेशानुसार पटवारी (फील्ड कॉर्नेट) द्वारा आज्ञा दी जायेगी कि वे १८८५ के कानून नं० ३ के अनुसार १ जनवरी, १८९९ से पहले ही विशेष रूपसे उनके लिए निर्धारित बस्तियोंमें जाकर रहने और व्यापार करने लगें।

२. परन्तु हाकिम-बन्दोबस्त-जमीन और खानोंके आयुक्त उन कुलियों अथवा अन्य एशियाई वतनियोंके नामोंकी दो तालिकाएँ तैयार करेंगे जो कि बहुत समयसे, विशेष रूपसे निर्धारित बस्तियोंसे भिन्न स्थानोंपर, व्यापार करते रहे हैं और जिनके लिए इतनी थोड़ी सूचनापर अपना कारोबार हटा लेना कठिन होगा। एक तालिकामें तो उन कुलियों अथवा अन्य एशियाइयोंके नाम लिखे जायेंगे जिनको हाकिम-बन्दोबस्त-जमीन या खानोंके आयुक्तकी सम्मतिमें अधिकतम तीन मासका समय दे देना उचित होगा, और दूसरी तालिकामें उनके जिनको छः मासका समय देना उचित होगा। इस प्रकार उन्हें कानूनका पालन करनेके लिए क्रमशः १ अप्रैल और १ जुलाई, १८९९ तकका समय दिया जायेगा। कुलियों अथवा अन्य एशियाइयोंको यह समय पानेकी प्रार्थना इसके कारण बतलाकर, स्वयं करनी चाहिए।

३. यदि कुली अथवा अन्य एशियाई व्यापारियोंने इस आशयका प्रार्थनापत्र दिया कि हमारे लिए बस्तीमें बाजार या दूकानोंकी छतदार इमारत बनानेको जगह सुरक्षित कर दी जाये, तो उनकी सुविधाके लिए उसपर अनुकूलतासे विचार किया जायेगा।

इस सम्बन्धमें इतनी सूचना और दी जाती है कि जो एशियाई यह समझते हों कि हमपर १८८५ का कानून ३ लागू नहीं होता, क्योंकि हमने ऐसा इकरारनामा कर रखा है जिसकी मियाद अभी समाप्त नहीं हुई अथवा हमने अपनी जायदाद किसी दूसरेको हस्तान्तरित कर दी है, उन्हें यह बात १ जनवरी १८९९ से पहले ही हाकिम-बन्दोबस्त-जमीन या खानोंके आयुक्तको बतला देनी चाहिए, जिससे कि उनका मामला सरकारके सामने पेश किया जा सके।

[अंग्रेजीसे]

*इंडिया*, २३-१२-१८९८

# १९. तार : 'इंडिया' को

गांधीजीने *इंडिया*के जोहानिसबर्ग-संवाददाताकी हैसियतसे पृथक् बस्तियोंके प्रश्नके सम्बन्धमें निम्नलिखित तार उक्त पत्रको भेजा था।

जोहानिसबर्ग
दिसम्बर ५, १८९८

दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यकी सरकारने सूचना प्रकाशित की है और भारतीयोंको भी दे दी है कि आगामी १ जनवरीसे और उसके पश्चात् उन्हें कुछ पृथक् बस्तियोंमें ही रहना और व्यापार करना पड़ेगा। भारतीयोंको पूरी आशा है कि केपके उच्चायुक्तके इंग्लैंड जानेका लाभ उठाकर उनके पक्षका समर्थन करनेका प्रयत्न किया जायेगा। वर्तमान अनिश्चित अवस्थाके कारण चिन्ता है।

[अंग्रेजीसे]

*इंडिया*, ९-१२-१८९८

Copy No 4

NATAL GOVERNMENT TELEGRAPHS.

No. of Message

| Code | Class | Sent. | For Stamps. | Office Stamp. |
|---|---|---|---|---|
| Name of Origin and Service Instructions | | At ... To ... By ... | (A receipt for the Charges on this Telegram can be obtained, price Twopence) | |
| | | Words. Charge. | | |

FROM — Please Write Distinctly. — TO

Mahomed Casum Camroodeen & Co — Honble Colonial Secretary P. M. Burg

Rules published Gazette re visitors and embarkation passes have created great dissatisfaction among Indians. Memorial to His Excellency being prepared. Humbly requests behalf Indian Community suspension rules meanwhile.

3/11/98

Signature of Sender Ypd M K Gandhi Address (in full)

[SEE OVER.

तार : उपनिवेश-सचिवके नाम

## २०. मामलेका सार: वकीलकी सलाहके लिए

मामलेके निम्नलिखित सारसे, जो गांधीजीने तैयार किया था, संकेत मिलता है कि विक्रेता-परवाना अधिनियमके अमलसे सम्बन्धित कानूनी प्रश्नोंके बारेमें उनका रुख क्या था।

डर्बन
दिसम्बर २२, १८९८

*थोक और फुटकर विक्रेताओंके परवाने सम्बन्धी कानून १८, १८९७ में संशोधनका प्रश्न : वकीलकी सलाहके लिए मामलेका सार*

एक नगर-परिषद (टाउन कौंसिल) विक्रेता-परवाना अधिनियमके अन्तर्गत परवाना देनेवाले अधिकारीकी नियुक्ति करती है। वह उसे गुप्त अथवा सार्वजनिक रूपसे निर्देश देती है:

(१) एशियाइयोंको परवाने न दिये जायें।

(२) अमुक व्यक्तियोंको परवाने न दिये जायें।

(३) अधिकतर एशियाई व्यापारियोंको परवाने न दिये जायें।

ऐसी हालतमें, क्या परवानेका कोई उम्मीदवार सर्वोच्च न्यायालयसे फरियाद कर सकता है कि वह नगर-परिषदको दूसरा अधिकारी नियुक्त करने और ऐसे अधिकारीके विवेकाधिकारमें किसी तरहका दखल न देनेका आदेश दे?

एक नगर-परिषद अपने स्थायी कर्मचारियोंमें से किसी एकको — उदाहरणके लिए, नगर-क्लार्क, नगर-कोषाध्यक्ष या मुख्य रोकड़ियाको — परवाना-अधिकारी नियुक्त करती है।

ऐसी हालतमें, क्या परवानेका कोई उम्मीदवार सर्वोच्च न्यायालयसे फरियाद कर सकता है कि वह नगर-परिषदको किसी बिलकुल स्वतंत्र व्यक्तिकी नियुक्ति करनेका आदेश दे? इस आदेशका आधार यह हो कि स्थायी कर्मचारीपर नगर-परिषदका इतना अधिक प्रभाव रहेगा कि उससे नगर-परिषदके विचारोंसे प्रभावित हुए बिना निष्पक्ष निर्णय देनेकी अपेक्षा नहीं की जा सकेगी। साथ ही, उम्मीदवार छोटी और अपीलकी — दोनों भिन्न अदालतोंके सामने फरियाद करनेके अधिकारसे अमली तौरपर वंचित रहेगा।

[कानूनके अन्तर्गत एक परवाना अधिकारी किसी व्यक्तिको इस आधारपर परवाना देनेसे इनकार करता है कि वह भारतीय है, तो क्या सर्वोच्च न्यायालयसे उस अधिकारीको यह आदेश देनेकी फरियाद की जा सकती है कि किसी आदमीका भारतीय होना परवाना देनेसे इनकार करनेका कोई कारण नहीं हो सकता; और उसे अपने निर्णयपर इस निर्देशके अनुसार फिरसे विचार करना चाहिए?]

अगर एक परवाना-अधिकारी तमाम भारतीयों या उनकी अधिकांश संख्याको परवाने देनेसे मनमानी तौरपर इनकार करता है, तो क्या यह कहा जा सकता है कि उसने किसी एक या दोनों मामलोंमें विवेकाधिकारका प्रयोग किया है?

एक आदमीने व्यापार करनेके परवानेकी अर्जी दी। उसकी अर्जी नामंजूर हो गई। फिर भी वह बिना परवानेके ही व्यापार करता रहता है। उसपर कानूनकी धारा ९ की अवहेलना करनेका मुकदमा चलाया जाता है और उसे सजा दे दी जाती है। वह सजा भोग लेता है और व्यापार जारी रखता है। तो, क्या सजाके बाद, परन्तु कानूनी वर्षके अन्दर, यह व्यापार नया अपराध माना जायेगा?

क्या कोई आदमी जितने दिनों तक विना परवानेके व्यापार करता है, उसके अपराध भी, कानूनके अनुसार, उतने ही होते हैं?

जुर्माना वसूल करनेका तरीका क्या होगा?

अगर सजा पाये हुए व्यक्तिका माल किसीके पास गिरवी है और अगर गिरवीदारका उसपर कब्जा है, तो क्या उस मालसे जुर्माना वसूल करनेका हक पहला माना जायेगा? याद रहे, इस अधिनियमके अन्तर्गत किसी बस्तीके व्यापारपर वसूल किया गया सारा जुर्माना उस बस्तीके कोषमें ही जमा किया जायेगा।

क्या सपरिषद गवर्नरको कानूनकी अन्तिम धाराके अन्तर्गत ऐसे नियम बनानेका अधिकार होगा, जिनसे परवाना-अधिकारीके विवेकाधिकारपर अंकुश रहे और परवाना-अधिकारीके लिए अमुक परिस्थितियोंमें परवाने देना अनिवार्य हो?

मो० क० गांधी

हस्तलिखित अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० २९०४) से।

## २१. प्रार्थनापत्र : चेम्बरलेनको

विक्रेता-परवाना अधिनियम (डीलर्स लाइसेंसेज ऐक्ट) का अमल जिस ढंगसे भारतीयोंके अधिकारोंका भंग करके किया जा रहा था उसके बारेमें साम्राज्य-सरकारको एक प्रार्थनापत्र भेजा गया था। वह प्रार्थनापत्र नीचे दिया जा रहा है। गांधीजीने उसे नेटालके गवर्नरके नाम एक पत्रके साथ (देखिए पृष्ठ ५६) भेजा था।

डर्बन
दिसम्बर ३१, १८९८

सेवामें
परम माननीय जोजेफ चेम्बरलेन
मुख्य उपनिवेश-मन्त्री, सम्राज्ञी-सरकार
लंदन

नेटाल उपनिवेशवासी ब्रिटिश भारतीयोंके नीचे हस्ताक्षर करनेवाले प्रतिनिधियोंका नम्र प्रार्थनापत्र

नम्र निवेदन है कि,

आपके प्रार्थी इसके द्वारा विक्रेता-परवाना अधिनियमके बारेमें सम्राज्ञी-सरकारकी सेवामें उपस्थित हो रहे हैं। पिछले वर्ष प्राथियोंने इसका विरोध किया था, जो सफल नहीं हुआ।

प्रार्थी सम्राज्ञी-सरकारकी सेवामें इससे पहले ही यह प्रार्थनापत्र भेज देते; परन्तु उनका इरादा एक तो यह था कि वे कुछ समय तक धीरजके साथ अधिनियमका अमल देखें और जान लें कि उन्होंने सम्राज्ञी-सरकारकी सेवामें उपर्युक्त विरोध प्रकट करते हुए जो प्रार्थनापत्र भेजा था उसमें अनुमानित आशंकाएँ साधार थीं या नहीं। दूसरे, वे चाहते थे कि उपनिवेशके अन्दर ही सारी कोशिशें करके देख लें और अधिनियमकी समुचित न्यायिक व्याख्या भी करा ली जाये।

प्रार्थियोंको बहुत ही खेदके साथ लिखना पड़ता है कि उपर्युक्त प्रार्थनापत्रमें व्यक्त की गई आशंकाएँ अनुमानसे भी ज्यादा सही साबित हुई हैं; और यह भी कि, अधिनियमकी

न्यायिक व्याख्या उपनिवेशवासी ब्रिटिश भारतीयोंके खिलाफ की गई है। आगे उल्लिखित एक मामले[1]में सम्राज्ञीकी न्याय-परिषद (प्रीवी कौंसिल) के न्यायाधीशोंने यही निर्णय दिया है कि उपर्युक्त कानूनके अनुसार, नगर-परिषद (टाउन कौंसिल) या नगर-निकाय (टाउन बोर्ड) के फैसलेके खिलाफ उपनिवेशके सर्वोच्च न्यायालयमें अपील नहीं की जा सकती। इस निर्णयसे तमाम भारतीय व्यापारियोंका कारोबार ठप्प हो गया है। वे आतंकसे जकड़ गये हैं और उनमें अरक्षाकी भावना और एक घबराहट प्रबल हो उठी है कि न जाने अगले वर्ष क्या होनेवाला है।

भारतीय समाज जिन मुसीबतोंसे गुजर रहा है वे बहुत-सी हैं। प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियमके अमलके बारेमें भी प्रार्थियोंने विरोध व्यक्त किया था, जो निष्फल रहा। वह बहुत कष्ट और सन्तापका कारण बन रहा है। हालमें सरकारने इस कानूनके अधीन कुछ नियम बनाये हैं। उनके अनुसार ऐसे हर व्यक्तिसे एक पौंड शुल्क माँगा जाता है, जो उक्त कानून द्वारा मढ़ी गई परीक्षाओंको उत्तीर्ण नहीं करता, और जो एक दिनसे लेकर छः हफ्ते तक उपनिवेशमें रुकना चाहता है, या जो जहाजपर सवार होनेके लिए उपनिवेशसे गुजरना चाहता है। जबकि इन नियमों और उपर्युक्त कानूनसे निकलनेवाली दूसरी बातोंके सम्बन्धमें एक प्रार्थनापत्र तैयार किया जा रहा था, ठीक उसी समय सम्राज्ञीकी न्याय-परिषदका निर्णय बमगोलेकी तरह भारतीय समाजपर आ पड़ा। उसने भारतीय व्यापारियोंके भविष्यको इतना भयानक बना दिया कि उसके मुकाबलेमें और सब मुसीबतें फीकी पड़ गईं। इसलिए विक्रेता-परवाना अधिनियमको सबसे पहले हाथमें लेना बिलकुल जरूरी हो गया है।

अब तो सम्राज्ञी-सरकारके हस्तक्षेपसे जो-कुछ राहत मिल जाये उसमें ही नेटालवासी भारतीय व्यापारियोंकी आशा रह गई है। प्रार्थी सम्राज्ञीके सब देशोंमें वही अधिकार और विशेषाधिकार पानेका दावा करते हैं, जिनका उपभोग सम्राज्ञीके अन्य प्रजाजन करते हैं। इसका आधार १८५८ की घोषणा है। और नेटाल-उपनिवेशमें तो प्रार्थियोंके इस दावेका यह भी खास आधार है कि उन्होंने पहले जो प्रार्थनापत्र भेजे थे उनसे सम्बन्धित खरीतेमें आपके पूर्वाधिकारीने कहा था: "सम्राज्ञी-सरकारकी इच्छा है कि सम्राज्ञीकी भारतीय प्रजाओंके साथ उनकी अन्य प्रजाओंकी बराबरीका व्यवहार किया जाये।"[2] इसके अलावा, प्रार्थियोंको भरोसा है, सम्राज्ञी-सरकार नेटाल-उपनिवेशसे, जिसकी वर्तमान समृद्धिका श्रेय गिरमिटिया भारतीयोंको है, उपनिवेशवासी स्वतन्त्र भारतीयोंके साथ न्यायपूर्ण व्यवहार करानेकी कृपा करेगी।

सारे संसारमें, जहाँ-कहीं भी जरूरत हुई है, भारतीय सिपाही ग्रेट ब्रिटेनकी लड़ाई लड़ते आ रहे हैं। इसी तरह, भारतीय मजदूर उपनिवेश बसानेके लिए नये-नये क्षेत्र खोलते जा रहे हैं। अभी हालमें ही रायटरके एक तारमें बताया गया था कि रोडेशियाके वतनियोंको तालीम देनेके लिए भारतीय सैनिकोंको लाया जायेगा। क्या यह हो सकता है कि उन्हीं सैनिकों और मजदूरोंके देशभाइयोंको सम्राज्ञीके साम्राज्यके एक भागमें ईमानदारीके साथ जीविका कमानेकी इजाजत न हो?

और फिर भी, जैसाकि आगे कही हुई बातोंसे स्पष्ट हो जायेगा, नेटाल-उपनिवेशमें भारतीय व्यापारियोंको ईमानदारीके साथ जीविका उपार्जित करनेका अधिकार *न देनेका* संगठित प्रयत्न किया जा रहा है। इतना ही नहीं, उन्हें उन अधिकारोंसे भी *वंचित करनेका* संगठित प्रयत्न किया जा रहा है, जिनका उपभोग वे वर्षोंसे करते आ रहे हैं। और जिस जरियेसे नेटालके यूरोपीय उपनिवेशी अपने इस ध्येयको पूरा करनेकी आशा करते हैं, वह है उपर्युक्त कानून।

१. देखिए पृष्ठ ३४।

२. देखिए खण्ड १, पृष्ठ २०४।

डर्बनकी नगर-परिषद उपनिवेशका सबसे मुख्य निगम (कारपोरेशन) है। उसमें ग्यारह सदस्य हैं। इनमें से एक सदस्य भारतीयोंका इकवाली और कट्टर विरोधी है। गत वर्षके आरम्भ में *नादरी* और *कूरलैंड* जहाजोंसे यात्रियोंके उतरनेके विरुद्ध जो प्रदर्शन किया गया था उसमें उस सदस्यने एक अगुएका काम किया था।[1] वह अपने अत्यन्त उग्र भाषणोंके लिए प्रसिद्ध हो गया था। वह अपने भारतीय-द्वेषको नगर-परिषदके अन्दर भी ले गया है। और अबतक उसने बराबर और व्यक्ति-विशेषोंका खयाल किये बिना भारतीयोंको व्यापारके परवाने देनेका विरोध किया है। चूँकि यूरोपीयोंके दो ही वर्ग हैं — एक तो भारतीयोंका उग्र विरोधी और दूसरा उदासीन — इसलिए जब कभी भी भारतीयों-सम्बन्धी कोई विषय परिषदके सामने निर्णयके लिए आता है, तब आम तौरपर वही सदस्य विजयी होता है। कानूनके अनुसार नियुक्त परवाना-अधिकारी निगमका स्थायी कर्मचारी है। इसलिए, प्राथियोंकी नम्र रायमें, परिषदके सदस्योंका थोड़ा-बहुत प्रभाव उसपर है ही। आगे चलकर एक मामलेका उल्लेख किया जानेवाला है। उसमें प्रथम उपन्यायाधीश सर वाल्टर रैगने, जो उस समय मुख्य न्यायाधीशके स्थानपर काम कर रहे थे, नगर-परिषदके स्थायी कर्मचारीके परवाना-अधिकारीके पदपर नियुक्त किये जानेके खतरेके बारेमें ये विचार व्यक्त किये हैं:

> न्यायाधीशको सुझाया गया है कि इस तरह नियुक्त किये गये अधिकारीके मनमें कुछ हद तक पक्षपात तो होगा ही। कारण, वह नगर-परिषदके अधीन एक स्थायी कर्मचारी है और उसका नगर-परिषदका विश्वासी होना अनिवार्य है। न्यायाधीश महोदय इस विषयका फैसला करनेको तैयार नहीं थे। परन्तु उन्होंने यह तो पूरी तरहसे मान लिया कि परवाना-अधिकारी कोई ऐसा आदमी होना चाहिए जो न तो नगर-परिषदकी सेवामें रहा हो और न नगर-परिषदका विश्वासी हो (*नेटाल विटनेस*, मार्च ३१, १८९८)।

यह परवाना-अधिकारी परवानोंके अर्जदारोंकी आर्थिक स्थितिकी जाँच करता है; उनसे उनके माल, पूंजी आदिके बारेमें सवाल करता है; और आम तौरपर उनके खानगी मामलोंकी भी पूछताछ करता है। उसने एक नियम ही बना लिया है कि जिस भारतीयके पास डर्बन में व्यापार करनेका परवाना पहले नहीं रहा, उसे वह न दिया जाये। इन बातोंका उसे कोई खयाल नहीं होता कि उम्मीदवारके पास उपनिवेशके किसी अन्य स्थानमें व्यापार करनेका परवाना रहा है या नहीं, वह पुराना बाशिन्दा है या नया, अंग्रेजी जाननेवाला सुयोग्य व्यक्ति है या साधारण व्यापारी, और जिस मकानमें व्यापार करनेका परवाना माँगा जा रहा है वह हर तरहसे योग्य है या नहीं तथा पहले वहाँके लिए परवाना रहा है, या नहीं।

इस वर्षके आरम्भमें सोमनाथ महाराज नामके एक भारतीयने नगरमें फुटकर व्यापार करनेके परवानेके लिए अर्जी दी थी। उसकी अर्जी ले ली गई। परवाना-अधिकारीने उसकी स्थितिके बारेमें उससे लम्बी जिरह भी की। उसके खिलाफ कोई बात नहीं पाई गई। वह जिस मकानमें व्यापार करना चाहता था उसके बारेमें सफाई-दारोगाने अनुकूल रिपोर्ट दी। उस मकानको एक भारतीय दूकानदार हाल ही में खाली करके जोहानिसबर्ग गया था। इस तरह, परवाना-अधिकारीको उसके या उस मकानके खिलाफ कोई बात ढूंढ़े न मिली तब उसने बिना कारण बताये ही उसकी अर्जी नामंजूर कर दी। मामलेकी अपील नगर-परिषदके सामने

१. देखिए खण्ड २, पृष्ठ २११ तथा आगे।

हुई।[1] वहाँ यह साबित कर दिया गया कि अर्जदारने पाँच वर्ष तक गिरमिटियाके तौरपर उपनिवेशकी सेवा की है; वह तेरह वर्षसे स्वतंत्र भारतीयके रूपमें उपनिवेशमें रह रहा है; उसने अपने परिश्रमके बलपर ही व्यापारीकी हस्ती हासिल की है; उसके पास इसी उपनिवेशकी मूई नदीके क्षेत्रमें छ: वर्ष तक व्यापार करनेका परवाना रह चुका है; उसके पास ५० पौंड नकद पूंजी है; नगरमें उसके पास माफीकी जमीनका एक टुकड़ा है; उसका रहनेका मकान अलग और दूकानकी इच्छित जगहसे कुछ दूर है और उसने कानूनकी माँग पूरी करनेके लिए एक यूरोपीय हिसाब-नवीसको नियुक्त कर लिया है। तीन यूरोपीय व्यापारियोंने प्रमाणित किया कि वह इज्जतदार और ईमानदारीसे कारोबार करनेवाला व्यक्ति है। अर्जदारके वकीलने माँग की कि परवाना-अधिकारीने जिन कारणोंसे परवाना देनेसे इनकार किया है वे बताये जायें और अर्जी-सम्बन्धी कागजातकी नकल दी जाये। नगर-परिषदने इन दोनों अर्जियोंको नामंजूर कर दिया और परवाना-अधिकारीके निर्णयको बहाल रखा। इस निर्णयके खिलाफ सर्वोच्च न्यायालयमें अपील दायर की गई। यह अपील फैसलेके न्यायान्यायके आधारपर नहीं की गई, क्योंकि सर्वोच्च न्यायालय इसके पहले ही बहुमतसे फैसला कर चुका था कि विक्रेता-परवाना विधेयकके कारण उसे न्यायान्यायके आधारपर अपीलें सुननेका हक नहीं है। बल्कि, वह इन अनियमितताओंके आधारपर की गई कि परवाना न देनेके कारण बतानेसे इनकार किया गया, अर्जदारके वकीलको कागजातकी नकल नहीं दी गई और जबकि अपीलकी सुनाई हो रही थी उस समय परिषदके सदस्य टाउन-सॉलिसिटर, टाउन-क्लार्क तथा परवाना-अधिकारीके साथ एक एकान्त कमरेमें गुप्त मन्त्रणाके लिए चले गये। सर्वोच्च न्यायालयने अपील सुनना मंजूर कर लिया, अपील करनेवालेके पक्षको मंजूर करके नगर-परिषदकी कार्रवाईको रद कर दिया और नगर-परिषदको फरियादीका खर्च भरने तथा मामलेकी सुनवाई फिरसे करनेका आदेश दिया। फैसला देते हुए स्थानापन्न मुख्य न्यायाधीशने कहा:

> इस मामलेमें जो बात साफ गलत महसूस होती है वह है कि कागजातकी नकल नहीं दी गई। फरियादीने परिषदको अर्जी देकर कागजातकी नकल देने और परवाना देनेसे इनकार करनेके कारण बतानेकी माँग की थी। अर्जी अनुचित बिलकुल नहीं थी। न्यायके हकमें उसे मंजूर कर लिया जाना चाहिए था। परन्तु उसे नामंजूर कर दिया गया। और जब फरियादीका वकील परिषदके सामने आया, वह कागजातके बारेमें बिलकुल अनभिज्ञ था और उसे पता नहीं था कि परवाना-अधिकारीके मनमें क्या बात चल रही है।... उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि इस मामलेमें नगर-परिषदकी कार्रवाई अत्याचारपूर्ण थी।... उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि दोनों अर्जियोंको नामंजूर करनेकी कार्रवाई अन्यायमूलक और अनुचित थी। (*टाइम्स आफ़ नेटाल*, मार्च ३०, १८९८)।

न्यायाधीश श्री मेसनने कहा:

> जिस कार्रवाईके खिलाफ अपीलकी गई है, वह नगर-परिषदके लिए लज्जाजनक है। और मुझे इस तरहकी कड़ी भाषाका प्रयोग करनेमें कोई संकोच नहीं है। इन परिस्थितियोंमें तो मैं मानता हूँ, यह कहना कि नगर-परिषदके सामने अपीलकी सुनवाई हुई थी, शब्दोंका दुरुपयोग करना है। (*टाइम्स आफ़ नेटाल*, ३० मार्च, १८९८)।

१. देखिए "सोमनाथ महाराजका मुकदमा," मार्च २, १८९८।

नगर-परिषदके सामने अपीलकी सुनवाई फिरसे हुई। इस बार कागजातकी नकल दे दी गई। और जब परवाना-अधिकारीसे पूछा गया कि परवाना देनेसे इनकार करनेके और कारण क्या हैं, तो उसने कहा: "अर्जदार जिस तरहका व्यापार कर रहा है उसकी पर्याप्त व्यवस्था उपनगरों और बस्तियोंमें मौजूद है। उसे डर्बनमें व्यापार करनेका कोई अधिकार नहीं है।" परवाना-अधिकारीका निर्णय बहाल रखा गया। इसके लिए एक परिषद-सदस्यने प्रस्ताव किया कि, "जो परवाने अबतक दिये जा चुके है उनका शतमान आबादीकी जरूरत से ज्यादा है। इस दृष्टिसे परवाना देना अवांछनीय है।" परिषदने इन बातोंका कोई खयाल नहीं किया कि जिस स्थानके लिए परवाना माँगा गया था वहाँ कुछ ही महीने पहले एक दूकानदार मौजूद था। वह डर्बनसे चला गया था, इसलिए परवानोंकी संख्या बढ़ानेका कोई प्रश्न नहीं था। साथ ही, मकान-मालिक भारतीय हैं, उनके भी प्रतिनिधि परिषदमें हैं, और उन्हें भी हक है कि परिषद उनके हितोंका खयाल करे। सम्बद्ध मकान सिर्फ दूकानके लिए उपयुक्त है। वह आज तक करीब-करीब खाली पड़ा है और इससे उसके मालिकको अबतक ३५ पौंडकी हानि हो चुकी है। प्रार्थी इसके साथ परिषदकी पहली कार्रवाईकी नकल नत्थी कर रहे हैं (परिशिष्ट क)। इससे कार्रवाई-सम्बन्धी भावना स्पष्ट हो जाती है।

मुहम्मद मजम ऐंड कम्पनीने परवाना-अधिकारीको एक ऐसे मकानमें व्यापार करनेके लिए परवानेकी अर्जी दी, जिसके मालिक एक भारतीय सज्जन हैं। इन सज्जनकी डर्बनमें बहुत-सी मिल्क मुतलक जायदाद है और इनकी आमदनीका मुख्य जरिया ही व्यापारियोंको अपने मकान किरायेपर देना है। परवाना-अधिकारीने परवाना देनेसे इनकार कर दिया। इसके कारण वैसे ही दिये, जैसे ऊपर बताये गये हैं। इसपर मकान-मालिकने परवाना-अधिकारीके निर्णयके खिलाफ नगर-परिषदके सामने अपील की। नगर-परिषदने अपील खारिज कर दी। फलत: मकान-मालिकको अपने मकानका किराया घटा देना पड़ा। और मुहम्मद मजम ऐंड कम्पनी तो बिलकुल कंगाल हो गई है। उसके सब साझेदारोंको पूरी तरह अपने एक साझे-दारके कामपर निर्भर करना पड़ता है। वह साझेदार टीनसाज है।

हाशम मुहम्मदका पेशा फेरी लगाना है। वह पहले भी डर्बनमें फेरीवाला रह चुका है। वह परवाना-अधिकारीके पास और वहाँसे नगर-परिषदके पास गया; परन्तु उसे फेरी लगानेका विशेषाधिकार देनेसे इनकार कर दिया गया। उसने परिषदको बताया कि उसे यह विशेषाधिकार देनेसे इनकार करनेका अर्थ उसे भुखमरीका वरण करनेको कहनेके बराबर होगा। वह दूसरे उपायोंसे रोटी कमानेकी कोशिश कर चुका है, परन्तु सफल नहीं हुआ। कोई दूसरा काम करनेके लिए उसके पास पूंजी नहीं है। उसने परिषदको यह भी बताया कि किसी यूरो-पीयके साथ उसकी कोई स्पर्धा नहीं है; फेरीका काम करना तो करीब-करीब भारतीयोंकी ही विशेषता है और वे उसके वह काम करने पर कोई आपत्ति नहीं करते। परन्तु ये सब मिन्नतें बेकार हुईं।

श्री दादा उस्मान[1] पन्द्रह वर्षसे ज्यादा हो गये, इस उपनिवेशमें हैं। उन्होंने काफी अच्छी अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त की है। पहले वे दक्षिण आफ्रिकाकी तत्कालीन प्रमुख व्यापारिक पेढ़ीसे सम्बन्ध रखते थे। अब इस उपनिवेशके अर्मासिगा और ट्रान्सवालके फ्राईहाइड नामक स्थानोंमें उनका व्यापार चलता है। इस वर्ष उन्होंने भारतसे अपनी पत्नी और बच्चोंको बुलवाया। परन्तु ऊपरकी दोनों जगहोंमें उनकी पत्नीको उपयुक्त संगी-साथी नहीं मिले। फिर परिवारके आ जानेसे उनका खर्च भी बढ़ गया। इन दोनों दृष्टियोंसे उन्होंने डर्बनमें बसनेका इरादा किया।

१. "दादा उस्मानका मुकदमा," सितम्बर १४, १८९८।

खयाल यह था कि वे अपने उन स्थानोंके कारोबारके लिए खुद माल भेज दिया करेंगे और डर्बनमें भी कुछ व्यापार कर लेंगे। उन्हें परवाना पानेका इतना दृढ़ विश्वास था कि उन्होंने भारतीय व्यापारियोंकी एक पेढ़ीसे डर्बनकी एक मुख्य सड़कपर ११ पौंड मासिक किरायेका एक भारी मकान ले लिया। इतना ही नही, उन्होंनें करीब १०० पौंड मूल्यका साज-सामान भी खरीद लिया। बादमें उन्होंने परवाना-अधिकारीको परवानेके लिए अर्जी दी। परवाना-अधिकारीने दस्तूरके मुताबिक उनके काम-काजकी बारीकीके साथ छान-बीन की, उनके अंग्रेजी और हिसाब-किताब रखनेके ज्ञानकी जाँच की और उन्हें तीन बार अपने सामने पेशीपर बुलानेके बाद उनकी अर्जी मंजूर करनेसे इनकार कर दिया। उन्होंने और मकान-मालिक दोनोंने फैसलेके खिलाफ अपील की। नगर-परिषदके पूछनेपर परवाना-अधिकारीने निम्न-लिखित कारण बताये:

> मैं समझता हूँ, १८९७ का १८वाँ कानून अमुक वर्गोंके लोगोंके, जिन्हें आम तौरपर अवांछनीय माना जाता है, व्यापारके परवाने पानेपर कुछ रोक लगानेके लिए बनाया गया था। और मैं मानता हूँ कि अर्जदार एक ऐसा आदमी है, जो उसी वर्गमें शामिल किया जायेगा। इसके अलावा उसको डर्बनमें व्यापार करनेका परवाना कभी प्राप्त नहीं था। इसलिए उसे परवाना न देना मैंने अपना कर्त्तव्य समझा है।

इस तरह, इतने-सारे परवाने देनेसे इनकार करनेका सच्चा कारण इस मामलेमें पहली बार नग्न रूपमें प्रकट किया गया। डर्बनके एक प्रमुख व्यापारी श्री अलैक्जैंडर मैकविलियम ने इस विषयमें परिषदके सामने गवाही देते हुए कहा था:

> मैं बहुत वर्षोंसे अर्जदारको जानता हूँ — १२ या १४ वर्षोंसे। मैंने उसके साथ बहुत कारोबार किया है। कभी-कभी उसपर मेरा पाँच-पाँच सौ पौंड तक कर्ज रहा है। उसके साथ मेरा कारोबार पूरी तरहसे सन्तोषजनक रहा है। मैंने उसे बहुत अच्छा और इज्जतदार व्यापारी पाया है। मैं हमेशा ही उसकी बातपर विश्वास कर सका हूँ।... करदाताकी हैसियतसे मुझे उसके परवाना पानेपर कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। वह अंग्रेजीमें हिसाब-किताब रख सकता है या नहीं, यह मैं नहीं जानता। हाँ, वह अंग्रेजी में लिखकर अपने विचार भली भाँति व्यक्त कर सकता है। परन्तु जिस ढंगसे उसने इस पत्रमें लिखा है और जिस ढंगसे वह अपना कारोबार चलाता है, उससे मैं अनुमान करता हूँ कि वह हिसाब-किताब रख सकेगा (अर्जदारका लिखा हुआ एक पत्र पेश किया)।

अर्जदारकी स्थितिके बारेमें जो बातें ऊपर कही गई हैं उनके अलावा उसकी अंग्रेजीमें दी हुई गवाहीसे नीचे लिखी बातें भी प्रकट हुईं:

> मेरा निजी पारिवारिक खर्च लगभग २० पौंड माहवार है। दूकानका खर्च इससे अलग है।... दूकानके अलावा मेरे पास एक मकान है।... मेरे मकान और दूकानमें बिजली की रोशनी है।... मेरा कारोबार एस० बुचर ऐंड सन्स, रैंडल्स ब्रदर ऐंड हडसन, एच० ऐंड टी० मैक-कबिन, एल० केरमान ए० फास ऐंड को०, एम० लारी तथा अन्योंके साथ है। मैं अंग्रेजीमें सादे पत्र लिख सकता हूँ। मैं हिसाब रखना जानता हूँ। फ्राईहाइडमें मैंने अपना हिसाब-किताब खुद रखा है। मैं खाता, रोजनामचा, कच्ची बही, रोकड़ बही,

मालका हिसाब और बीजक-बही रखता हूँ। मैं हिसाबकी सिंगल और डबल एंट्रीको पद्धति जानता हूँ।

मकान-मालिक श्री अब्दुल कादिरने कहा :

मैं एम० सी० कमरुद्दीन ऐंड कम्पनीका प्रबन्धक हूँ।... (जिसकी बात चल रही है) उस दूकानके लिए पहले परवाना जारी था। परवाना टिमोलको मिला था। डर्बन में मेरे ३ या ४ मकान हैं। मूल्यांकन-सूची में उनकी कुल कीमत १८,००० या २०,००० पौंड है। इस जायदादका ज्यादातर हिस्सा मैं किरायेदारोंको किराये पर देता हूँ। अगर दादा उस्मानको परवाना नहीं मिलता तो मुझे किरायेकी हानि उठानी पड़ेगी। वे बहुत अच्छे किरायेदार हैं।... मैं उन्हें लम्बे अरसे से जानता हूँ। उनका रहन-सहन अच्छा है। उनके घरमें साज-सामान बहुत है।... मैं परवाना-अधिकारीके फैसलेसे सन्तुष्ट नहीं हूँ।

आपने उपनिवेशोंके प्रधानमंत्रियोंके सामने "अवांछित व्यक्ति" की जो व्याख्या की थी[1] उसकी परिषदको याद दिलाई गई। व्याख्या यह थी: "इसलिए कि कोई आदमी हमसे भिन्न रंगका है, वह जरूरी तौरपर अवांछनीय प्रवासी नहीं है। अवांछनीय तो वह है, जो गन्दा है, या दुराचारी है, या कंगाल है, या जिसके बारेमें कोई अन्य आपत्ति है, जिसकी व्याख्या संसद के कानून द्वारा की जा सकती है।" परन्तु यह सब केवल अरण्य-रोदन सिद्ध हुआ। जिस परिषद-सदस्य ने १८९७ में प्रदर्शन-समितिका झण्डा उठाया था और जो कूरलैंड तथा *नादरी*के भारतीय यात्रियोंको "जरूरत होनेपर बल प्रयोग द्वारा" लौटानेके लिए तैयार था, वह "कायल नहीं हुआ" कि परवाना-अधिकारीकी कार्रवाई गलत है। और उसने प्रस्ताव किया कि उसके निर्णयकी पुष्टि कर दी जाये। प्रस्तावका समर्थन करनेके लिए खड़ा होनेको कोई तैयार नहीं था, और थोड़ी देरके लिए ऐसा मालूम हुआ कि परिषद न्याय करनेको तैयार है। परन्तु आखिर एक अन्य सदस्य श्री कालिन्स सहायताको बढ़े और उन्होंने निम्नलिखित भाषणके द्वारा प्रस्तावका समर्थन किया :

उन्हें आश्चर्य नहीं कि परिषद परवाना देनेसे इनकार करनेको बहुत अनिच्छुक है। परन्तु उन्होंने विश्वास व्यक्त किया कि परवाना देनेसे इनकार कर दिया जायेगा। [उनके कथनानुसार] कारण यह नहीं है कि अर्जदार या व्यापारका प्रस्तावित स्थान अयोग्य है, बल्कि यह है कि अर्जदार एक भारतीय है। श्री गांधीने जो-कुछ कहा है वह बिलकुल सच है और उन्हें (श्री कालिन्सको) यह कहनेमें कुछ राहत महसूस हुई कि अधिकतर परवाने देनेसे इस आधारपर इनकार किया गया है कि अर्जदार भारतीय हैं। परिषदको एक ऐसी नीति अमलमें लानी पड़ रही है जिसे संसदने जरूरी समझा है। इससे परिषद बड़ी अप्रिय स्थितिमें पड़ गई है। नेटाली जनताके प्रतिनिधिके रूपमें संसद इस निर्णयपर पहुँची है कि भारतीयोंका डर्बनके व्यापारपर अपना प्रभुत्व बढ़ाना अवांछनीय है। इसलिए परिषदको ये परवाने देनेसे इनकार करनेके लिये लगभग बाध्य हो जाना पड़ा है, जो अन्यथा आपत्तिजनक नहीं है। उन्होंने कहा, व्यक्तिगत रूपसे मैं मानता हूँ कि परिषदके सामने उपस्थित होकर परवाना माँगनेके लिए अर्जदार एक

१. देखिए खण्ड २, पृष्ठ ३९३।

योग्यतम व्यक्ति हैं और उसे परवाना न देना उसके प्रति अन्याय है। परन्तु उपनिवेशकी नीतिके तौरपर यह जरूरी पाया गया है कि इन परवानोंकी संख्या बढ़ाई न जाये। (*नेटाल ऐडवर्टाइज़र*, १३ सितम्बर, १८९१)।[1]

यहाँ उल्लेख किया जा सकता है कि नेटालके लोकनिष्ठ लोगोंमें श्री कॉलिन्स एक प्रमुख स्थान रखते हैं। उन्होंने अक्सर परिषद के उपाध्यक्ष (डिप्टी मेयर) का स्थान ग्रहण किया है और वे एकाधिक बार स्थानापन्न अध्यक्ष (मेयर) भी रहे हैं। यह निर्णय ऐसे व्यक्ति ने किया, इसलिए अत्यन्त दुःखद और उतना ही महत्त्वपूर्ण भी था। हमारा आदरपूर्वक निवेदन है कि यदि तत्कालीन प्रधानमन्त्रीने नेटाल-संसदकी भावना सही-सही व्यक्त की थी तो, जैसा कि बादमें प्रकट होगा, संसदका मंशा उतनी दूरी तक जानेका कभी नहीं था, जितनी दूरी तक श्री कॉलिन्स चले गये। संसदका मंशा *नये आनेवाले* भारतीयोंको — सब नये भारतीयोंको कदापि नहीं — परवाने प्राप्त करनेसे रोकनेका था। और प्रार्थियोंको दृढ़ विश्वास है कि श्री कॉलिन्सने कानूनका जो अर्थ लगाया है, वही यदि सम्राज्ञी-सरकारके सामने पेश किया गया होता तो उसे सम्राज्ञीकी अनुमति कदापि न मिलती। मालूम होता है, श्री कॉलिन्स मानते हैं कि संसद नेटालके केवल यूरोपीय समाजका प्रतिनिधित्व करती है। प्रार्थी तो सिर्फ इतना ही कह सकते हैं कि यदि यह सच है, तो शोक का विषय है। जब भारतीयोंका मताधिकार सर्वथा छीन लेनेका प्रयत्न किया गया उस समय उन्हें दूसरी ही बात बताई गई थी। फिर, श्री कॉलिन्सने समझा कि विचाराधीन परवाना दे देनेका अर्थ परवानोंकी संख्यामें वृद्धि करना होगा। परन्तु सच तो यह है कि जिस मकानके लिए परवाना माँगा गया उसका इस सालके लिए परवाना था ही। वह इसलिए खाली हो गया था कि परवानेवालेको घाटा हुआ और उसने व्यापार बन्द कर दिया। इसलिए वर्तमान अर्जदारको परवाना देनेसे नगर (बरो)में परवानोंकी सख्यामें बढ़ती न होती।

एक अन्य परिषद-सदस्य और डर्बनके प्रमुख वकील श्री लैबिस्टर सारी कार्रवाईसे इतने आजिज़ आ गये कि उन्होंने अपनी भावनाओंको इस प्रकार व्यक्त किया :

> इस प्रकारकी अपीलोंमें जिस उलटी-सीधी नीतिका अनुसरण किया जाता है उसके कारण वे जानबूझकर बैठकोंमें हाजिर नहीं होते। परिषद-सदस्योंसे जो गन्दा काम करनेको कहा गया है उससे उन्होंने मतभेद व्यक्त किया। अगर परिषद-सदस्यों (बर्गेसों) का मतलब ऐसे सब परवाने बन्द कर देना है तो ऐसा करनेका साफ रास्ता मौजूद है। वह है — विधानसभासे भारतीयोंको परवाने देनेके विरुद्ध कानून बनवा लेना। परन्तु जब हम अपील सुननेवाली अदालतकी हैसियतसे बैठे हैं तब, जबतक विपरीत निर्णयके लिए उचित कारण मौजूद न हों, परवाना देना ही चाहिए। (*नेटाल ऐडवर्टाइज़र, वही तारीख*)।

श्री लैबिस्टर, जैसा कि उन्होंने कहा, जानबूझ कर देरसे आये थे। इसलिए वे मत नहीं दे सके। फलतः प्रस्ताव सर्वसम्मतिसे स्वीकृत हो गया और अपील खारिज कर दी गई।

प्रार्थियोंकी नम्र रायमें उपर्युक्त मामलेसे ज्यादा मजबूत मामलेकी, या डर्बन नगर-परिषदने जो अन्याय किया है उससे बड़े अन्यायकी कल्पना करना करीब-करीब असम्भव है। फिर यह

१. मूल छपी हुई अंग्रेजी प्रतिमें तारीख गलत छपी मालूम होती है। देखिए "दादा उस्मानका मुकदमा," सितम्बर १४, १८९८।

नगर-परिषद एक ब्रिटिश उपनिवेशकी है। और यह एक न्यायालयके रूपमें अपील सुननेके लिए बैठी थी। इसने अस्वच्छताको और बेईमानीके व्यापारको प्रोत्साहन दिया है। अब प्रार्थी भारतीय समाजके ज्यादा कमजोर सदस्योंको क्या उत्साह दिलाएँ? वे ज्यादा कमजोर सदस्य कह सकते हैं: "आप हमसे स्वच्छताके आधुनिक तरीके अपनाने और ज्यादा अच्छी तरह रहनेको कहते हैं। और आप आश्वासन देते हैं कि सरकार हमारे साथ न्यायका व्यवहार करेगी। हम इसपर विश्वास नहीं करते। क्या आपके दादा उस्मानका रहन-सहन उनके ही स्तरके किसी भी यूरोपीयके बराबर नहीं है? क्या नगर-परिषदने इसका कोई खयाल किया है? नहीं। हम अच्छे रहें या बुरे रहें, हमारी हालत न अच्छी होगी न बुरी होगी।" यूरोपीय उपनिवेशी पुकार-पुकार कर कहते आ रहे हैं कि उन्हें आधुनिक ढंगसे रहनेवाले इज्जतदार भारतीयोंके बारेमें कोई आपत्ति नहीं होगी। प्रार्थियोंने हमेशा ही यह कहा है कि कथित अस्वच्छताके आधारपर जो आपत्तियाँ की जाती हैं, वे झूठी हैं। और साफ है कि डर्बन नगर-परिषदने हमारा यह दावा सही साबित कर दिया है।

तथापि, न्यूकैसिल नगर-परिषद डर्बनकी परिषदसे भी कुछ आगे बढ़ गई है। उसके परवाना-अधिकारीने पिछले साल परवाना पाये हुए आठ भारतीय दूकानदारोंमें से हर एकको इस वर्ष कानूनके अनुसार परवाने देनेसे इनकार कर दिया है। दीख पड़ता है कि उसे ऐसा करनेका आदेश दिया गया था। इस तरह तमाम लोगोंको परवाने न देनेसे उपनिवेशके भारतीय व्यापारियोंके दिलोंमें आतंक छा गया है। इन दूकानदारोंका कारबार स्थगित होनेसे न केवल ये और इनके आश्रित ही मारे जायेंगे, बल्कि डर्बनकी कुछ पेढ़ियाँ भी, जो उनका पोषण करती हैं, बैठ जायेंगी। इन लोगोंकी पूंजी उस समय दस हजार पौंडसे अधिक कूती गई थी। और उनपर सीधे आश्रित रहनेवाले लोगोंकी संख्या चालीससे अधिक थी। इसलिए नगर-परिषदके सामने अपील करनेके लिए भारी खर्च उठाकर एक प्रमुख वकील श्री लॉटनको नियुक्त किया गया। फलतः (आठ दूकानदारोंके) नौमें से छः परवाने मंजूर किये गये। शेष तीन व्यक्तियोंने, जिन्हें परवाने देनेसे इनकार किया गया, सर्वोच्च न्यायालयमें अपील की। परन्तु उसने बहुमतसे अपील नामंजूर कर दी। कारण यह बताया गया कि कानूनकी पाँचवीं धाराके अनुसार सर्वोच्च न्यायालयको उसपर विचार करनेका अधिकार नहीं है। चूंकि बात बहुत महत्त्वकी थी और चूंकि मुख्य न्यायाधीशने शेष दो न्यायाधीशोंसे मतभेद व्यक्त करते हुए वादियोंके पक्षमें राय दी थी, इसलिए मामलेको सम्राज्ञीकी न्याय-परिषद (प्रीवी कौंसिल) के सामने ले जाया गया। वादियोंके वकीलोंके पाससे लन्दनसे आये हुए एक तारमें बताया गया है कि अपील खारिज हो गई है। न्यायके नाते कहना ही होगा कि न्यूकैसिल नगर-परिषदने कृपा करके तीनों वादियोंको अपीलके दौरानमें अपना कारबार जारी रखने दिया है। परन्तु उसकी नीति स्पष्ट है। अगर वह शिष्टताके साथ तथा आन्दोलन खड़ा किये बिना न्यूकैसिलसे भारतीयोंका सफाया कर सकती तो उसने पीड़ित पक्षपर होनेवाले परिणामोंका खयाल किये बिना वैसा कर डाला होता। परवाना-अधिकारीने परवाने देनेसे इनकार करनेके जो कारण बताये थे वे उपर्युक्त सभी मामलोंमें एक ही थे — अर्थात्, "इस अर्जीके सम्बन्धमें सफाई-दारोगाने १८९७ के कानून १८ के नियमोंके खण्ड ४ की शर्तोंके अनुसार जो रिपोर्ट तैयार की है वह प्रतिकूल है और सम्बद्ध मकान कानूनके खण्ड ८ के अनुसार इच्छित व्यापारके योग्य नहीं है। इसलिए मैंने अर्जीको नामंजूर कर दिया।" परवाना देनेसे इनकार होनेके पहले किसी भी अर्जदारको सफाई-दारोगाकी रिपोर्ट या परवाना-अधिकारीके कारणोंका कोई ज्ञान नहीं था। उनसे अपने मकानोंमें किसी तरहका सुधार या फेरफार करनेको भी

नहीं कहा गया था। परवाना-अधिकारीने अपने कारण सिर्फ तब बताये जब कि मामलेकी अपील परिषदके सामने गई और परिषदने उससे कारण बतानेको कहा। उपर्युक्त तीन अर्जदारोंको जब परवाने देनेसे इनकार किया जा चुका और उन्हें मालूम हुआ कि इनकार क्यों किया गया है, तब उन्होंने तुरन्त कहा कि वे अपने मकानोंमें सफाई-दारोगाके सुझाये हुए सब सुधार या फेरफार करनेको तैयार हैं। परन्तु परवाना-अधिकारी यह सब सुननेको तैयार नहीं था। उसने उनकी अर्जियोंपर विचार करनेसे इस आधारपर इनकार कर दिया कि नगर-परिषदने उसका पहला निर्णय बहाल कर दिया है (परिशिष्ट ख)। यहाँ कह देना अनुचित न होगा कि अर्जदारोंने यह कभी नहीं माना कि उनके मकान अस्वच्छ हैं। और उन्होंने साबित करनेके लिए डाक्टरी प्रमाण भी पेश किये थे कि मकानोंकी हालत सन्तोषजनक है। प्रार्थी इसके साथ एक उद्धरण नत्थी कर रहे हैं (परिशिष्ट ग)। यह नगर-परिषदके सामने हुई कार्रवाईका एक अंश है। इससे तीनों वादियोंका मामला अधिक पूर्ण रूपमें स्पष्ट हो जायेगा। न्यूकैसिल नगर-परिषदमें आठ सदस्य हैं — एक डाक्टर, एक वकील, एक बढ़ई, एक जल-पानकी दूकानका मालिक, एक खान-कर्मचारी, एक पुस्तक-विक्रेता और दो वस्तु-भण्डार-मालिक। परवाना-अधिकारी नगर-परिषदका क्लार्क भी है। फलतः जब नगर-परिषद परवाना-अधिकारीके फैसलेके खिलाफ अपील सुननेको बैठती है तब वही उसका क्लार्क भी होता है।

परन्तु डंडीका स्थानिक निकाय (लोकल बोर्ड) तो डर्बन और न्यूकैसिल दोनोंकी नगर-परिषदोंको मात देना चाहता है। पिछले नवम्बरमें परवाना-अधिकारीने एक चीनीको व्यापारका परवाना दिया था। और अधिकतर करदाताओंने उस अधिकारीके निर्णयके खिलाफ अपील की। स्थानिक निकायने दोके विरुद्ध तीनके बहुमतसे एक-मात्र इस आधारपर परवाना रद कर दिया कि अर्जदार चीनी राष्ट्रीयताका था। अर्जदारके सॉलिसिटरने स्थानिक निकायको उसके निर्णयके विरुद्ध अपीलकी सूचनामें अपीलके ये आधार बताये थे :

(१) कि, आपके निकाय के कुछ सदस्य व्यापारी और दूकानदार और फुटकर व्यापारके परवानेदार हैं। इसलिए वह होई-ली ऐंड कम्पनी के हितोंको हानि पहुँचाये बिना अपीलके विषयका निपटारा करनेमें असमर्थ था — सम्भवतः उसे निपटारा करनेका अधिकार ही नहीं था।

(२) कि, आपके निकायकी रचना ऐसी है कि होई-ली ऐंड कम्पनीको फुटकर व्यापारका परवाना न दिया जानेमें निकायके कई सदस्योंका व्यक्तिगत और सीधा आर्थिक स्वार्थ है। इसलिए उन्हें चाहिए था कि न तो वे निकायकी बैठकमें उपस्थित होते और न इस प्रश्नपर अपनी राय ही देते।

(३) कि, आपके निकायके कुछ सदस्यों ने, जो बैठकमें शामिल हुए थे, होई-ली ऐंड कम्पनीकी पेढ़ीके खिलाफ व्यक्तिगत द्वेष और पक्षपात प्रकट किया। कारण यह था कि पेढ़ीके सदस्य चीनके निवासी हैं। और, खास तौरसे, एकने तो यहाँतक कहा : "मैं किसी चीनीको कुत्तेके बराबर भी मौका नहीं दूंगा।"

(४) कि, अपील करनेवाले करदाताओंने कोई गवाही या कानूनी सबूत पेश नहीं किया कि होई-ली ऐंड कम्पनीके लोग उपनिवेशमें रखने योग्य नहीं हैं।

(५) कि, अपील करनेवाले करदाताओंने कोई गवाही या कानूनी सबूत पेश नहीं किया कि परवाना-अधिकारीने जिस मकानके लिए परवाना दिया था वह तबतक

व्यापारके लिए बिलकुल अयोग्य और अनुपयुक्त है, जबतक कि मकान-मालिक होई-ली ऐंड कम्पनीके साथ अपने पट्टेमें किये हुए इकरारके अनुसार नया मकान नहीं बना देता।

(६) कि, निकायका निर्णय और प्रस्ताव न्यायके सिद्धान्तों तथा कानून दोनोंकी दृष्टिसे भी अयोग्य और अन्यायपूर्ण है।

मामलेके कागजात देखनेसे मालूम होता है कि यह चीनी एक ब्रिटिश प्रजाजन है। फिर भी उसकी जो गति हुई वही भारतीयोंकी भी होना असम्भव नहीं है। इस मामलेमें सर्वोच्च न्यायालयने अपील सुननेसे इनकार कर दिया। इसका कारण ऊपर बताये हुए न्यू-कैसिलके मामलेका फैसला ही था।

गत नवम्बरमें करदाताओंके अनुरोधपर डंडीके स्थानिक निकायके अध्यक्षने एक सभा बुलाई थी। उसका उद्देश्य "एशियाइयोंको नगरमें व्यापार करने देनेके औचित्यपर विचार-विमर्श करना" था। इस समय डंडीमें लगभग दस भारतीय वस्तु-भण्डार हैं। सभाकी कार्रवाईके निम्नलिखित अंशोंसे मालूम होगा कि स्थानिक निकाय अगले वर्ष उनके साथ कैसा बरताव करना चाहता है:

श्री सी० जी० विल्सन (स्थानिक निकायके अध्यक्ष) ने अपने मंतव्यसे बहुत अच्छा असर पैदा किया। उन्होंने सभी विषयोंमें निकायकी कार्रवाईका पोषण किया और कहा कि हमारा प्रयत्न, अगर सम्भव हो तो, नगरको एशियाई अभिशापसे मुक्त कर देनेका है। वे सिर्फ यहीं नहीं, बल्कि सारे नेटाल उपनिवेशके लिए एक अभिशाप हैं। उन्होंने सभाको आश्वासन दिया कि चीनी व्यापारीके सम्बन्धमें हमारी कार्रवाइयाँ स्वार्थ-रहित और पक्षपातहीन थीं और परवानेको रद करके हमने ईमानदारीके साथ वही किया है जिसे हम नगरके प्रति अपना कर्तव्य समझते थे। उन्होंने आशा व्यक्त की कि करदाता अपनी राय जोरोंसे व्यक्त करके बता देंगे कि उनका इरादा इस अभिशापको नामशेष कर देनेका है।

श्री डब्ल्यू० एल० ओल्डएकर (निकायके एक सदस्य) ने कहा कि उन्होंने और निकायके अन्य सदस्योंने जो-कुछ ठीक समझा वही किया है। उन्होंने सभाको आश्वासन दिया कि उनकी कार्रवाइयोंमें पक्षपातका कोई भाव नहीं था और सभासद भरोसा कर सकते हैं कि वे निकायके सदस्यकी हैसियतसे अपने कर्त्तव्यका पालन अवश्य करेंगे।

श्री एस० जोन्सने इसके बाद प्रस्ताव पेश किया कि, स्थानिक निकाय अवांछनीय लोगोंको परवाने देना रोकनेके लिए जो-कुछ भी उसकी शक्तिमें हो, सब करे; कि, परवाना-अधिकारीको भी इस आशयका निर्देश दिया जाये; और यह कि, इनमें से जितने परवाने रद किये जा सकें उतनोंको रद करनेकी कार्रवाई की जाये। यह प्रस्ताव सर्व-सम्मतिसे, हर्ष-ध्वनिके साथ, मंजूर हो गया।

श्री सी० जी० विल्सनने इस निर्णयपर सभाको यह कहकर धन्यवाद दिया कि इससे निकायके हाथ बहुत मजबूत हो गये हैं और वह सभाके निर्णयपर अमल करेगा।

और भी कई सज्जनोंके भाषण हो जानेके बाद श्री हेस्टिंग्जने प्रस्ताव किया कि टाउन-क्लार्क और परवाना-अधिकारी दो भिन्न व्यक्ति हों।

श्री विल्सनने कहा कि अधिकारियोंको अभीकी तरह ही रहने देना बहुत बेहतर होगा। बादमें, अगर परवाना-अधिकारीने इस प्रकारके मामलोंमें वैसी ही कार्रवाई न की

जैसी कि निकायने की है, तो हमारे हाथमें इलाज है ही। (*नेटाल विटनेस*, २६ नवम्बर, १८९८)।

ऊपरके उद्धरणोंमें जिन लोगोंको अवांछनीय कहा गया है वे, निस्सन्देह, डंडीके ब्रिटिश भारतीय व्यापारी हैं। डंडीका स्थानिक निकाय जो नीति बरतना चाहता है उसे इन उद्धरणोंमें स्पष्ट रूपसे स्वीकार कर लिया गया है। कानूनने अपील सुननेका अधिकार जिस संस्थाको दिया है उसकी ओरसे परवाना-अधिकारीको हिदायतें मिल चुकी हैं — और आगे भी मिलेंगी — कि उसे क्या करना है। और, इस तरह, दो न्यायाधिकरणों — अर्थात् परवाना-अधिकारी और नगर-परिषद या स्थानिक निकायके, जहाँ जो हो, सामने कानूनके मंशाके अनुसार पीड़ित पक्षोंको अपना मामला पेश करनेका जो अधिकार था, वह छिन जायेगा। प्रार्थियोंकी नजरमें जो उदाहरण आये हैं उनमें से ये केवल थोड़े-से हैं। इनसे बिलकुल साफ मालूम होता है कि यदि विभिन्न नगर-परिषदों और स्थानिक निकायोंपर अंकुश न लगाया गया तो वे किस नीतिका अनुसरण करेंगे।

प्रार्थियोंको यह स्वीकार करनेमें संकोच नहीं है कि अबतक दूसरी नगर-परिषदों और स्थानिक निकायोंने ऐसी कोई इच्छा नहीं दिखाई है कि वे जुल्मी तरीकेपर व्यवहार करेंगे; हालाँकि वहाँ भी नये परवाने प्राप्त कर लेना लगभग असम्भव है। यहाँ तक कि पुराने जमे हुए भारतीयोंको भी नये परवाने नहीं मिल सकते, फिर, कानूनके अनुसार जो अधिकार — प्रार्थी तो कहना चाहते थे, अत्याचारी अधिकार — उन्हें दिया गया है वह मौजूद है ही, और इसका कोई ठिकाना नहीं कि वे डर्बन, न्यूकैसिल और डंडी द्वारा पेश किये गये उदाहरणोंका अनुकरण नहीं करेंगे।

जिन सॉलिसिटरोंका इस कानूनके अमलसे कुछ सम्बन्ध रहा है उनके विचार जाननेकी दृष्टिसे उन्हें एक पत्र[1] लिख कर निवेदन किया गया था कि वे कानूनके अमलके सम्बन्धमें अपने अनुभव बतानेकी कृपा करें। यह पत्र चार सॉलिसिटरोंके पास भेजा गया था। उनमें से तीनने अपने उत्तर भेजे हैं, जो इसके साथ नत्थी हैं (परिशिष्ट घ, ङ, च)। श्री लॉटन, जिन्होंने न्यूकैसिल, चीनी व्यापारी और उपर्युक्त सोमनाथ महाराजके मामलों की पैरवी की थी, कहते हैं :

> मैं विक्रेता-परवाना अधिनियमको बहुत लज्जाजनक और बेईमानी-भरा विधान मानता हूँ। बेईमानी-भरा और लज्जाजनक — क्योंकि इस मंशाको जरा भी छिपाया नहीं गया कि उसे भारतीयोंपर, और सिर्फ उनपर ही लागू किया जायेगा। वास्तवमें वह स्वीकार तो संसदके एक ऐसे अधिवेशनमें किया गया, जो भारतीय-विरोधी समुदाय को तुष्ट करनेके लिए साधारण समयसे एक महीने पहले ही कर लिया गया था; फिर भी उपनिवेश-मन्त्रीकी स्वीकृति प्राप्त करनेके लिए उसे रूप ऐसा दिया गया, मानो वह सबपर लागू होता हो।
>
> अधिनियमका असर है — व्यापारके परवाने देने या न देनेका अधिकार भारतीय व्यापारियोंके माने हुए शत्रुओंके हाथोंमें सौंप देना। नतीजा वही है, जिसकी अपेक्षा की जा सकती थी। और हम सब जो-कुछ देखते हैं उससे लज्जित हैं, भले ही हम इसे मंजूर करें या न करें।

१. यह उपलब्ध नहीं है।

एक और सज्जन हैं श्री ओ'ह्री। वे औपनिवेशिक देशभक्त संघ (कलोनियल पैट्रिऑटिक यूनियन) के अवैतनिक मन्त्री भी हैं। उनका स्पष्टतः स्वीकृत लक्ष्य एशियाइयोंकी और अधिक भरमारको रोकना है। वे कहते हैं:

> मैं नहीं समझता कि इस कानूनका अमल विधानमण्डलकी भावनाके अनुसार किया जा रहा है। उस समयके प्रधानमंत्रीने, जिन्होंने विधेयक पेश किया था, कहा था: 'इसका मुख्य उद्देश्य उन लोगोंपर असर करनेका है, जिनका निपटारा प्रवासी विधेयकके अन्तर्गत किया जाता है। जहाजवालोंको अगर मालूम हो कि इन्हें उतारने नहीं दिया जायेगा तो वे इन्हें नहीं लायेंगे। और अगर लोगोंको मालूम हो कि उन्हें परवाने नहीं मिल सकेंगे तो वे व्यापार करने के लिए यहां आयेंगे ही नहीं।'
>
> बहुत दिन नहीं हुए कि मेरे पास इसी तरहका एक मामला उपस्थित हुआ था। एक चीनी राष्ट्रिक उपनिवेशमें तेरह वर्षोंसे रह रहा था। उसे परवाना देनेसे इनकार कर दिया गया। मुझे निश्चय है कि इसका कारण और कुछ नहीं, सिर्फ यह था कि वह चीनी राष्ट्रिक था। डर्बन-सम्बन्धी आँकड़ोंसे मालूम होता है कि गत दस वर्षोंके अन्दर इस शहरका फैलाव और आबादी दूनीसे ज्यादा हो गई है। और फिर भी इस आदमीको जिसने अपना भाग्य उपनिवेशके साथ जोड़ दिया था—एक ऐसे आदमीको, जिसका चरित्र निष्कलंक था, जो उस समय इस उपनिवेशमें आया था जबकि यहाँ आजके १०० मनुष्योंकी जगह केवल ४० मनुष्य निवास करते थे—डर्बनमें ईमानदारीके साथ जीविका उपार्जित करनेका साधन देनेसे इनकार कर दिया गया; उसके चरित्रका और इस बातका कोई खयाल नहीं किया गया कि वह लम्बे अरसेसे उपनिवेशमें रह रहा है। इसी तरह, मैंने देखा है कि न्यूकैसिलमें एक भारतीयको परवाना देनेसे इनकार कर दिया गया। वह १५ वर्षोंसे नेटालमें रह रहा था। अगर किसी यूरोपीयने उसी परवानेकी अर्जी दी होती तो उसे वह दे दिया जाता। यह उचित नहीं है।

श्री रेनॉड ऐंड रॉबिन्सनकी पेढ़ीवाले दूसरी बातोंके साथ-साथ कहते हैं:

> परन्तु, हमारी रायमें, प्रस्तुत अधिनियमका मुख्य दोष यह है कि उसमें नगर-परिषदके निर्णयकी अपील करनेकी गुंजाइश नहीं रखी गई। इससे परवानोंके अर्जदारों-पर अन्याय हुआ है, और आगे भी हो सकता है।

जब यह छप रहा था, श्री जी० ए० डी'आर० लैबिस्टरकी राय प्राप्त हुई। वह इसके साथ संलग्न हैं (परिशिष्ट छ[1])।

"कन्सिस्टेन्सी" ['सुसंगत'] ने *टाइम्स आफ़ नेटाल* में (जिसे सरकारका मुखपत्र माना जाता है) एक पत्र लिखा है। उनके पत्र (परिशिष्ट ज) से मालूम होगा कि वे, २० वर्ष से अधिक हुए, उपनिवेशमें रह रहे हैं और एक व्यापारी है। उन्होंने कहा है:

> बेशक आप उनसे (भारतीय व्यापारियोंसे) सफाईके कड़ेसे कड़े नियमोंका पालन कराइए, उनका हिसाब-किताब अंग्रेजीमें रखवाइए और अन्य काम भी वैसे ही करवा-इए, जैसे कि अंग्रेज व्यापारी करते हैं; परन्तु जब वे इन सब माँगोंको पूरा कर दें तब

१. देखिए पृष्ठ ४९।

उन्हें न्याय दीजिए। नया विधेयक इन लोगोंको या सारे समाजको न्याय देता है, यह ईमानदारीसे विचार करनेवाला कोई व्यक्ति नहीं कह सकता। क्योंकि, विधेयक जन-साधारणको लाभ पहुँचानेवाली होड़को दूर कर देनेका अधिकार स्वार्थी लोगोंके हाथोंमें सौंप देता है और इन स्वार्थी लोगोंको अपनी जेबें भरनेमें समर्थ बनाता है। . . . मैंने हाल ही आपके एक सहयोगी पत्रमें पढ़ा था कि डंडीके स्थानिक निकायने अगले वर्षके लिए किसी भी अरब व्यापारीका परवाना नया न करनेका निश्चय किया है और परवाना-अधिकारीको तदनुसार निर्देश दे दिया है। ये लोग [स्थानिक निकायके सदस्य] अंग्रेज व्यापारी हैं और चाहते हैं कि साराका सारा व्यापार इनके ही हाथोंमें रहे, जबकि जनता इन्हें मुँहमाँगे भाव चुकाती रहे। निश्चय ही अब समय आ गया है जबकि सरकारको चाहिए कि वह इन लोगोंको इनकी सीमा बता दे।

*टाइम्स आफ़ नेटाल*ने अपने २१ दिसम्बर, १८९८ के अंकमें उपर्युक्त पत्रपर टीका करनेके बाद भारतीय व्यापारियोंके प्रति विरोधको आत्म-रक्षणके आधारपर उचित बताते हुए कहा है:

साथ ही, हमारी यह इच्छा बिलकुल नहीं है कि इन भारतीय व्यापारियोंके साथ सख्तीका व्यवहार किया जाये। . . . फिर भी, हम नहीं मानते कि उपनिवेशी किसी भी बड़ी संख्यामें यह चाहते होंगे कि इन कानूनोंके अनुसार दिये गये अधिकारोंका उपयोग अत्याचारी ढंगसे किया जाये। यदि यह समाचार सही है कि डंडीके स्थानिक निकायने अगले वर्षके लिए भारतीयोंके किसी भी परवानेको नया न करनेका निश्चय किया है, तो हम निकायसे जोरोंके साथ आग्रह करेंगे कि वह अपने ही करदाताओंके हितमें, और आम तौरपर उपनिवेशके हितमें भी, उस निश्चयको तुरन्त रद कर दे। निकायको परवाने नये करनेसे इनकार करनेका अधिकार जरूर है, परन्तु यह अधिकार देते समय कभी क्षण-भर के लिए भी सोचा नहीं गया था कि इसका उपयोग इस तरह सर्वग्राही रूपमें किया जायेगा। विक्रेता-परवाना कानूनके लिए जिम्मेदार श्री एस्कम्ब थे और उन्होंने कभी स्वप्नमें भी खयाल नहीं किया था कि उसके द्वारा दिये गये अधिकारका उपयोग इस तरह किया जायेगा। अधिनियम स्वीकार करनेमें यह खयाल उतना नहीं था कि परवाना-अधिकारियोंको उपनिवेशमें पहलेसे ही व्यापार करते आनेवाले भारतीयोंसे निपटनेका अधिकार दिया जाये, जितना कि यह था कि और भारतीयोंको व्यापार करनेके लिए यहाँ आनेसे रोका जाये। विधेयकका दूसरा वाचन प्रारम्भ करते हुए श्री एस्कम्बने बताया कि उसे नगर-परिषदोंके अनुरोधपर पेश किया गया है। उन्होंने कहा: 'उनका उद्देश्य क्या है, यह बतानेमें उन्हें कोई संकोच नहीं है; और सरकारको भी उनका प्रस्ताव स्वीकार कर लेनेमें कोई आपत्ति नहीं है। प्रस्ताव यह है कि कतिपय लोगोंको इस देशमें आकर यूरोपीयोंके साथ गैर-बराबर हालतोंमें होड़ करने और व्यापारके लिए परवाने प्राप्त करनेसे, जो यूरोपीयोंके लिए ही जरूरी है, रोका जाये।' और फिर, 'अगर लोगोंको शंका रही कि उन्हें परवाना मिलेगा या नहीं तो यहाँ व्यापार करनेके लिए कोई आयेगा ही नहीं। इसलिए यदि कानूनकी किताबमें यह कानून मौजूद रहे तो वह बगैर ज्यादा अमलके भी अपना काम पूरा करता रहेगा।' इस तरह, स्पष्ट

है कि कानून तो व्यापक अधिकार प्रदान करता है, फिर भी जिम्मेदार मन्त्रीने अपना उद्देश्य पूरा करनेके लिए उसकी व्यवस्थाओंके अमलपर नहीं, बल्कि उसके अस्तित्वसे पैदा होनेवाले नैतिक असरपर भरोसा किया था। यह उद्देश्य पहलेसे ही यहाँ रहनेवाले व्यापारियोंको उनके परवानोंसे वंचित करना नहीं, बल्कि दूसरोंको यहाँ आने और परवाने प्राप्त करनेसे रोकना था। यह अपेक्षा नहीं की गई थी कि वे निकाय और परिषदें, जिन्हें इस कानूनके अन्तर्गत अपीली न्यायालय नियुक्त किया गया है, अपने अधिकारोंका वैसा दुरुपयोग करेंगी, जैसा कि डंडीका निकाय करनेकी धमकी दे रहा है। दूसरे वाचनकी बहसका जवाब देते हुए श्री एस्कम्बने कहा: 'मुझे कोई सन्देह नहीं है कि इस विधेयककी आवश्यकता केवल उस गम्भीर खतरेके कारण हो सकती है, जो इस देशके सामने मुँह बाये खड़ा है। परन्तु मुझे नगरपालिकाओंके अधिकारियों और उपनिवेशकी न्यायशीलतापर इतना विश्वास है कि, मैं मानता हूँ, इस विधेयकका प्रयोग, जिसे मैं न्याय और नरमी कहता हूँ उसके साथ किया जायेगा।' अच्छा हो कि डंडीका निकाय इन शब्दोंको याद रखे; क्योंकि वह भी सोचे हुए सर्वग्राही तरीकेपर अपनी सत्ताका उपयोग जितने असन्दिग्ध रूपमें करेगा, उतने ही असन्दिग्ध रूपमें वह उद्देश्य विफल होगा, जो हम सबके सामने है। बेशक, अवांछनीय लोगोंका मूलोच्छेद होने दीजिए, परन्तु यह काम क्रमशः होना चाहिए, ताकि उद्देश्यकी पूर्ति कोई भारी अन्याय किये बिना ही हो जाये। कहा जा सकता है, 'कानून तो है, हम उसको अमलमें लायेंगे।' हाँ, कानून जरूर है, मगर उससे अन्याय ढाया गया, तो वह कितने दिनों तक टिकेगा? उपनिवेशमें ऐसे मतदाताओंकी संख्या बहुत बड़ी है, जिन्हें अपने मजदूर भारतसे ही लाने पड़ते हैं। यह बात भुलानी नहीं चाहिए; क्योंकि यह भारत-सरकारके हाथमें एक ऐसा शस्त्र है, जिसके द्वारा वह इस उपनिवेशसे जितना बहुत-से लोग समझते हैं उससे बहुत ज्यादा ऐंठ सकती है। मान लीजिए, भारत-सरकार कह देती है, 'आपको तबतक और मजदूर नहीं मिल सकते जबतक कि आप उस कानूनको रद नहीं कर देते, जिसके अधीन हमारे लोगोंके साथ घोर दुर्व्यवहार किया गया है', तो परिणाम क्या होगा? हम इसका अन्दाज नहीं लगायेंगे। अगर स्थानिक निकाय, नगर-परिषदें और परवाने देनेवाले निकाय बुद्धिमान हैं तो वे भारतीय मजदूरोंके मालिकोंको ऐसी अग्नि-परीक्षासे गुजारनेकी कभी कोई कोशिश नहीं करेंगे।

इस लम्बे उद्धरणके लिए प्रार्थी क्षमा-याचना नहीं करते, क्योंकि यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसका महत्त्व केवल इसके स्रोतके कारण नहीं, बल्कि जिस ढंगसे इसमें विषयका निरूपण किया गया है उसके कारण भी है। विधानमण्डलके अच्छे इरादे कानूनमें निहित नहीं हैं, यद्यपि उन्हें उसमें उतारा जरूर जा सकता था। यदि ऐसा किया गया होता तो भारतीय व्यापारी इस चिन्तासे बच जाते कि उनकी रोटी कभी भी एकाएक उनके मुँहसे छीनी जा सकती है। सरकारी मुखपत्र एक ऐसी बात मंजूर कर गया है, जो डंडीके निकायको बताई हुई उसकी अपनी ही फटकारसे मेल नहीं खाती। वह निकायोंको एक छिपा हुआ इशारा मालूम होती है कि वे लोगोंका ध्यान खींचे बिना किस तरह अपना उद्देश्य पूरा कर सकते हैं। क्योंकि, वह भी यही चाहता है कि अवांछनीय लोगोंका एक "बहुत क्रमिक तरीके" से "मूलोच्छेद" कर दिया जाये। इस रुखका मेल जो लोग पहलेसे ही जमे हुए हैं उनको न छेड़नेकी इच्छाके साथ

कैसे बैठ सकता है? तत्कालीन प्रधानमन्त्रीके शब्दोंका उपयोग किया जाये तो, डंडीका निकाय अपने "भोंडे मुँहफटपने" के कारण जिस कार्यको पूर्ण करनेमें विफल हो सकता है उसको, टाइम्स चाहता है, ऐसे अप्रत्यक्ष रूपमें और कूटनीतिक तरीकेसे पूर्ण किया जाये कि उसका असली उद्देश्य प्रकट न हो।

नेटाल *मर्क्युरी* (१४ दिसम्बर, १८९८) में एक पत्र-लेखकने "लगभग वीस वर्षसे उपनिवेशका निवासी" के नामसे लिखा है :

> महोदय,—आपके आजके अंकमें मैंने न्यूकैसिलका एक पत्र देखा है। उसमें कहा गया है कि उस नगरके शक्तिमान निगम (कारपोरेशन) ने वावड़ा नामक व्यक्तिके खिलाफ, जिसे उसने परवाना देनेसे इनकार कर दिया था, दायर किया हुआ मुकदमा जीत लिया है। पत्रमें यह खबर भी दी गई है कि इस नतीजेका सारे उपनिवेशमें स्वागत किया जायेगा। वावड़ा एक भारतीय है, जो न्यूकैसिलमें गत १५ वर्षोंसे व्यापार करता आ रहा है। इस दौरानमें वह एक अच्छा नागरिक रहा है। परन्तु, दुर्भाग्यसे, वह एक सफल व्यापारी भी रहा है। स्पष्टतः, यह हकीकत न्यूकैसिलके परवाना-निकायके सदस्योंको, जो खुद व्यापारी हैं, पसन्द नहीं है। निगमको अपने अधिकारोंकी ऐसी दय-नीय विडम्बनापर कहाँतक बधाई दी जा सकती है, या यह कि सम्राज्ञीकी न्याय-परिषद (प्रीवी कौंसिल) के निर्णयका नेटालके न्यायशील व्यक्ति स्वागत करेंगे—इसमें शंका है।
>
> —आपका, आदि,
>
> लगभग बीस वर्षसे उपनिवेशका निवासी।

ट्रान्सवाल-सरकार भारतीयोंको पृथक् बस्तियोंमें हटानेका प्रयत्न करती आ रही है। परन्तु वह भी भारतीयोंको कुछ समय देनेको तैयार है—चाहे वह समय कितना ही नाकाफी क्यों न हो—ताकि वे सरकारकी दृष्टिमें हानि उठाये बिना अपने कारबारको हटा सकें। स्वभावतः ही, सम्राज्ञी-सरकार ऐसी स्वल्प रियायतसे संतुष्ट नहीं है। और प्रार्थी जानते हैं कि जो लोग पहलेसे ही जमे हुए हैं उनसे छेड़छाड न करनेके लिए ट्रान्सवाल-सरकारको समझानेका प्रयत्न किया जा रहा है। आरेंज फ्री स्टेटकी सरकारने, यद्यपि वह बिलकुल स्वतंत्र है, भारतीय व्यापारियोंको अपना व्यापार बन्द कर देनेके लिए एक सालका समय दिया था। परन्तु नेटाल-उपनिवेशने, जो दक्षिण आफ्रिकाका सबसे अधिक ब्रिटिश उपनिवेश होनेका दम भरता है, भारतीय व्यापारियोंको व्यापार करनेके अधिकारसे एकाएक वंचित कर देनेका अधिकार प्राप्त कर लिया है। उसने उसे काममें लानेका प्रयत्न भी किया है और यह खतरा पैदा कर रखा है कि उसे जरूर काममें लाया जायेगा। *नेटाल ऐडवर्टाइज़र* (तारीख १३ दिसम्बर, १८९८) इस विसंगतिके बारेमें लिखता है :

> . . . हम इतना ही कह सकते हैं कि (सम्राज्ञीकी न्याय-परिषदके) निर्णयपर हमें सख्त अफसोस है। . . . यह तो ऐसा काम है जिसकी अपेक्षा ट्रान्सवालकी संसदसे की जा सकती थी। उस संस्थाने अपने परदेशी निष्कासन कानून (एलियन्स एक्सपल्शन लॉ) में उच्च न्यायालयके अधिकार-क्षेत्रका उच्छेद कर दिया है; और इसके बारेमें उपनि-वेशोंमें जो शोरगुल मचा था वह पाठकोंको याद होगा। परन्तु वह इस कानूनसे रत्ती-भर भी ज्यादा खराब नहीं है। हाँ, अगर दोनोंमें कोई फर्क है, तो हमारा कानून ज्यादा खराब है, क्योंकि उसका अमल अधिक बारंबार किया जानेकी सम्भावना है। यह कहना फिजूल

है कि अगर सर्वोच्च न्यायालयको अपील सुननेका अधिकार दिया गया होता तो कानून कारगर न होता। उस संस्थासे इतनी अपेक्षा तो निश्चय ही की जा सकती थी कि वह साधारण समझदारीसे काम लेगी। . . . अपना राज्य प्रातिनिधिक संस्थाओंके द्वारा स्वयं चलानेवाले समाजमें इस सिद्धान्तके प्रतिपादित किये जानेकी अपेक्षा कि नागरिकके अधिकारोंपर आघात करनेवाले किसी भी मामलेमें सर्वोच्च न्यायाधिकारीकी शरण जानेके मार्गको जान-मानकर बन्द कर दिया जाये, बहुत बेहतर तो यह होता कि एक दो मामलोंमें बादवाली बात (म्यूनिसिपैलिटियोंकी इच्छा) को दाब दिया जाता।

आपके प्रार्थियोंको बहुत भय है कि उपनिवेशकी सरकार प्रार्थियोंको मदद करनेवाली नहीं है। इस कानूनके अनुसार परवाने प्राप्त करने और परवाना-अधिकारीके निर्णयके खिलाफ अपील करनेके तरीकेको नियन्त्रित करनेके लिए जो नियम (परिशिष्ट झ) स्वीकार किये गये हैं वे, प्रार्थियोंकी नम्र रायमें, ऐसे ढंगसे बनाये गये हैं कि उनसे परवाना-अधिकारी और अपील-संस्थाको दिये गये मनमाने अधिकार दृढ़ होते हैं। यहाँ यह बता देना उचित ही होगा कि वे सितम्बर १८९७ में ही स्वीकार कर लिये गये थे। तथापि प्रार्थियोंको आशा थी कि चूँकि उपनिवेशको असाधारण सख्ती करनेका अधिकार दे दिया गया है, इसलिए अब भारतीय समाजको कुछ आरामकी साँस लेने दी जायेगी। और यह भी कि, सख्तीके इक्के-दुक्के मामलोंमें वे यहीं राहत प्राप्त कर सकेंगे — उन्हें सम्राज्ञी-सरकारके पास फरियाद करनेकी जरूरत न होगी। भूतपूर्व प्रधानमन्त्रीने लन्दनसे लौटनेपर जो भाषण दिया था उससे हमारा यह विश्वास और भी दृढ़ हो गया था। उन्होंने आशा प्रकट की थी कि इन अधिकारोंका अमल बहुत सोच-समझकर और नरमीके साथ किया जायेगा। दुर्भाग्यवश ऐसा हुआ नहीं। इसीलिए प्रार्थी निवेदन करते हैं कि नियमोंमें जो ऐसी कोई व्यवस्था नहीं की गई है कि परवाना-अधिकारीको अपने निर्णयके कारण अर्जदारको बताने चाहिए, उससे बहुत अनर्थ हुआ है। श्री कॉलिन्सको भी ऐसा ही लगा है (परिशिष्ट क)।

प्रार्थियोंको सबसे ज्यादा भय तो क्रमिक उच्छेदकी उस प्रक्रियासे है, जिसका जिक्र ऊपर किया गया है। यहाँ मौजूद लोग उस प्रक्रियाको भलीभाँति समझते हैं। इस वर्ष अनेक छोटे-छोटे दूकानदारोंको उखाड़ दिया गया है। कुछको तो इसलिए उखाड़ा गया कि उनका कारोबार मुश्किलसे १० पौंड माहवार है; वे नकद खरीदते हैं और नकद ही बेचते हैं; इसलिए वे हिसाब-किताब नहीं रख सके। आखिर, छोटे-छोटे यूरोपीय दूकानदार भी तो प्रायः यही करते हैं। कुछ अन्य लोगोंको इसलिए उखाड़ दिया गया कि वे सफाई-दारोगाकी शर्तोंको पूरा नहीं कर सके। इन शर्तोंका सम्बन्ध मकानोंकी सफाईसे नहीं, बल्कि उनकी बनावटसे था। अगर परवाना-अधिकारी साल-ब-साल कुछ छोटे-छोटे भारतीय दूकानदारोंको मिटाते रहे, तो परवाने देनेसे इनकार किये बिना ही बड़ी-बड़ी दूकानोंको बैठा देनेके लिए बहुत वर्षोंकी जरूरत नहीं होगी। उदाहरणके लिए, इस प्रार्थनापत्रपर सबसे पहले हस्ताक्षर करनेवाले श्री मुहम्मद कासिम कमरुद्दीन ऐंड कम्पनीका नेटालके लगभग ४०० भारतीय दूकानदारों और फेरीवालों-पर २५,००० पौंडसे ज्यादाका कर्ज फैला हुआ है। डर्बनमें उनकी जायदाद भी है, जो भारतीय दूकानदारोंने किरायेपर ले रखी है। यदि इन दूकानदारोंके आठवें हिस्सेको भी परवाने देनेसे इनकार कर दिया गया तो इस पेढ़ीकी स्थिति बिगड़ जायेगी। कुछ क्षति तो उसे पहुँच ही चुकी है। यह क्षति श्री दादा उस्मानको परवाना न दिया जानेके कारण हुई है। (इसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।) श्री अमद जीवाकी जायदाद एस्टकोर्ट, डंडी, न्यूकैसिल और डर्बनमें है। वह करीब-करीब पूरीकी पूरी भारतीय दूकानदारोंने किरायेपर ले रखी है।

और उनमें से अधिकांशका उपयोग किसी दूसरे कामके लिए नहीं हो सकता। इनमें से अगर कुछ दूकानें भी बन्द हो गईं तो बरबादी हो जायेगी। ये तो सिर्फ नमूनेके उदाहरण हैं। ऐसे उदाहरण और भी बहुतसे दिये जा सकते हैं।

प्रार्थियोंको बचपनसे यह विश्वास करना सिखाया गया है कि सम्राज्ञीके सब राज्योंमें जान और मालकी पूरी सुरक्षा है। जहाँतक मालकी सुरक्षाका सम्बन्ध है, इस विश्वासको इस उपनिवेशमें जबरदस्त धक्का पहुँचा है। क्योंकि आपके प्रार्थियोंका नम्र निवेदन है, किसीकी जायदादका एकमात्र सम्भव उपयोगके साधनसे वंचित किया जाना उस जायदादके बिलकुल छीन लिये जानेसे कम नहीं है।

कहा गया है कि स्वशासित उपनिवेशोंमें सम्राज्ञी-सरकारका हस्तक्षेप करनेका अधिकार बहुत सीमित है। आपके प्रार्थी तो मानते हैं कि वह कितना भी सीमित क्यों न हो, ट्रान्सवालमें हस्तक्षेप करनेके लिए जितना है, स्वशासित उपनिवेशोंमें हस्तक्षेप करनेके लिए उससे कम नहीं है। दुर्भाग्यवश प्रार्थियोंको एक ऐसे कानूनका सामना करना पड़ रहा है, जिसे सम्राज्ञी स्वीकृति प्रदान कर चुकी हैं। परन्तु प्रार्थियोंका खयाल है कि जब सम्राज्ञीको कानूनको अस्वीकार करनेके अधिकारका प्रयोग न करनेकी सलाह दी गई थी, उस समय यह नहीं सोचा गया था कि उस कानून द्वारा दिये गये अधिकारोंका इतना दुरुपयोग किया जायेगा, जितना कि, निवेदन है, किया गया है।

प्रार्थी अत्यन्त आदरके साथ निवेदन करते हैं कि ऊपर जो-कुछ कहा गया है वह इसके लिए काफी होगा कि सम्राज्ञी-सरकार उपनिवेशकी सरकारको एक जोरदार उलहना और परामर्श दे कि वह कानूनमें ऐसे संशोधन करे जिनसे ऊपर वर्णन किये हुए अन्यायकी पुनरावृत्ति असम्भव हो जाये और वह कानून उदात्त ब्रिटिश परम्पराओंके अनुरूप भी बन जाये।

परन्तु, यह सम्भव न हो तो प्रार्थी नम्रतापूर्वक निवेदन करना चाहते हैं कि : सभी मानते हैं कि उपनिवेशकी प्रगतिके लिए भारतीय मजदूर अनिवार्य हैं। उनके उपयोगके जिस विशेषाधिकारका उपभोग उपनिवेश कर रहा है, उसका उपभोग उसे अब न करने दिया जाये। *टाइम्स आफ़ नेटाल*ने, ऊपर दिये हुए उद्धरणमें आशंका प्रकट की ही है कि यदि परवाना-अधिकारियोंने अन्याय किया तो भारतसे गिरमिटिया मजदूरोंको भेजना बन्द कर दिया जायेगा। *टाइम्स* (लन्दन), ईस्ट इंडिया असोसिएशन, सर लेपेल ग्रिफिन[1], डॉ० कस्ट, भारतकी प्रमुख सस्थाओं और सारेके सारे भारतीय और आंग्ल-भारतीय पत्रोंने पहले ही यह उपाय सुझा रखा है। परन्तु अबतक, मालूम होता है, सम्राज्ञी-सरकारने उसे स्वीकार करनेकी कृपा नहीं की। प्रार्थियोंका नम्र निवेदन है कि जो दुःखड़े सही माने जा चुके हैं उनको अगर दूर नहीं किया जाता, तो इस तरह मजदूर भेजना बन्द करनेके पक्षमें इससे ज्यादा जोरदार कारण और क्या हो सकते हैं?

प्रार्थी जानते नहीं कि भारतीय व्यापारियोंके लिए आगामी वर्षका आरम्भ कैसे होगा। परन्तु हर दूकानदार चिन्तामग्न और बेचैन हो रहा है। दुविधा भयंकर है। बड़ी-बड़ी पेढ़ियोंको डर हो गया है कि उनके ग्राहकों (छोटे दूकानदारों) को परवाने नहीं दिये जायेंगे। इसके अलावा, उनको परवाना-अधिकारियोंपर अंकुश लगवानेकी जो एक मात्र आशा थी वह भी सम्राज्ञीकी न्याय-परिषदने उनसे हर ली है। इन कारणोंसे वे हताश हो गई हैं और अपना माल निकालनेमें हिचक रही हैं।

१. १८३८-१९०८; भारतीय नागरिक सेवाके एक हाकिम और प्रशासक; १८९१ से लेकर मृत्युतक पूर्व भारत संघ (ईस्ट इंडिया असोसिएशन) के अध्यक्ष ।

इसलिए प्रार्थी आदरपूर्वक आशा करते हैं कि उनकी प्रार्थनापर सम्राज्ञी-सरकार शीघ्र ध्यान देगी।

और न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए प्रार्थी, अपना कर्तव्य समझकर, सदा दुआ करेंगे, आदि-आदि-आदि।

मुहम्मद कासिम कमरुद्दीन ऐंड कम्पनी
और अन्य

## परिशिष्ट क

[यह सोमनाथ महाराजके मुकदमेकी कार्रवाईकी रिपोर्ट है, जो ३-३-१८९८ के नेटाल मर्क्युरीमें प्रकाशित हुई थी। यह अपने तिथिक्रमके अनुसार पृष्ठ २ पर दे दी गई है।]

## परिशिष्ट ख

*(नकल)*

न्यूकैसिल
जनवरी ११, १८९८

श्री टाउन क्लार्क
न्यूकैसिल

प्रिय महोदय,

मुझे निर्देश किया गया है कि मैं सुलेमान इब्राहीम, सज्जाद मियाजान और अब्दुल रसूलकी ओरसे खुदरा दूकानोंके परवानोंकी इसके साथ नत्थी की हुई अर्जियाँ आपके पास भेजूँ।

आपने पिछले महीने ये परवाने देनेसे इनकार कर दिया था। जैसा कि मुझे मालूम हुआ है, इनकारीका कारण यह था कि आपने सफाई-दारोगाकी रिपोर्टको काफी अनुकूल नहीं समझा। अब मुझे आपको यह सूचित करनेका निर्देश किया गया है कि परवानोंको नया करानेके उद्देश्यसे सफाई-दारोगा जो भी फेरफार सुझाये उन सबको मेरे मुवक्किल पूरा करके उसकी आपत्तिका निवारण कर देंगे।

सज्जाद मियाजानने तो, मुझे मालूम हुआ है, सफाई-दारोगाके मुआयनेके बाद, जो गत दिसम्बरमें हुआ था, फेरफार कर ही लिये हैं। मेरा विश्वास है कि पहले जो भी आपत्तियाँ रही हों, वे इस फेरफारसे मिट जायेंगी। दूसरे दो मामलोंमें मैं चाहता हूँ कि, अगर आपको मंजूर हो तो आप स्वयं सफाई-दारोगाके साथ चले चलें और वह जो भी आपत्ति बताये उसे लिख लें, ताकि सब त्रुटियोंको दूर किया जा सके।

मुझे विश्वास है कि मेरे मुवक्किल आपको सन्तोष दिला सकेंगे, क्योंकि परवाने देनेसे इनकारीका परिणाम उनके लिए बहुत गम्भीर होनेवाला है।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
(ह०) डब्ल्यू० ए० वांडरप्लैंक, अटर्नी
*वास्ते* — सुलेमान इब्राहीम, सज्जाद
मियाजान और अब्दुल रसूल

इनमें से प्रत्येक व्यक्तिको इस प्रकारका उत्तर दे दिया गया था:

एस० ई० वावडाने १५ दिसम्बर, १८९७ को एक अर्जी दी थी। उसका मंशा मर्चिसन स्ट्रीटमें प्लाट नं० ३७ पर बने हुए मकानमें खुदरा दूकान खोलनेके लिए परवाना माँगना था। यह दूकान

सुलेमान इब्राहीमके नामसे खोली जानी थी। परन्तु मैंने उस अर्जीको नामंजूर कर दिया था। नगर-परिषद्ने ८ जनवरी, १८९८ को अपीलका फैसला सुनाते हुए मेरे निर्णयको बहाल रखा है। इन कारणोंसे आपकी अर्जी खारिज की जाती है।

(ह०) टी० मैक-किलिकन
परवाना-अधिकारी
न्यूकैसिल बरो

## परिशिष्ट ग

न्यूकैसिल बरोकी नगर-परिषद्की शनिवार, जनवरी [८] १८९८ को परिषद्के सभा-भवनमें हुई विशेष बैठकके प्रमाणित कार्य-विवरणके अंश। यह बैठक, सुलेमान ईसप वावड़ा, अब्दुल रसूल और सज्जाद मियाजानकी परवानोंकी अर्जियोंपर १८९७ के कानून नं० १८ के अनुसार नियुक्त परवाना-अधिकारीके निर्णयके विरुद्ध अपील सुननेके लिए हुई थी। वावड़ाने मर्चिसन स्ट्रीटके प्लाट नं० ३७ के लिए दो परवानोंकी अर्जी दी थी। उसकी और अब्दुल रसूल तथा सज्जाद मियाजानकी परवानोंकी अर्जियाँ परवाना-अधिकारीने और अपीलमें नगर-परिषद्ने भी खारिज कर दीं।

आरम्भमें श्री लॉटनने चाहा कि १८९७ के कानून १८ के अनुसार परवाना-अधिकारीके पदपर परिषद्के ही किसी अफ़सरकी नियुक्ति की जानेके विषयमें उनका विरोध दर्ज कर लिया जाये। और उन्होंने इसके समर्थनमें परिषद्के सामने भाषण किया।

### *अपीलें*

सुलेमान ईसप वावड़ा — अर्जियां नं० २०, २१ — १८९८।

श्री लॉटनने परवाना-अधिकारीके पाससे अर्जदारको भेजी गई २३ दिसम्बर, १८९७ की सूचना और सफाई-दारोगाकी रिपोर्ट पढ़कर सुनाई। सफाई-दारोगाकी रिपोर्ट इस प्रकार थी:

### *सफाई-सम्बन्धी रिपोर्ट*

मैंने मर्चिसन स्ट्रीटके मकान नं० ३७ का मुआयना किया। इसमें खुदरा दूकान खोलनेका परवाना माँगा गया है। तमाम अरब मकानोंके समान इसमें भी रोशनी और हवाका प्रबन्ध खराब है। अन्यथा, मकान काफी अच्छी हालतमें है। लोग सोनेका कमरा ठीक करनेमें व्यस्त थे। परन्तु अभी दूकान और सोनेके कमरेके बीच दरवाजा है। मुआयनेका अनुमान करके मकानको साफ और ठीक-ठाक दिखानेकी बहुत कोशिश की गई है। परवाना-कानूनकी व्यवस्थाओंका यह एक अच्छा नतीजा है।

(ह०) जेस० मैकडॉनल्ड
सफाई-दारोगा

और उन्होंने नं० ३७, मर्चिसन स्ट्रीटके लिए परवानेकी अर्जीपर परवाना-अधिकारीका निर्णय और उसके कारणोंको भी पढ़कर सुनाया। उन्होंने दावेके साथ कहा कि सफाई-दारोगाकी रिपोर्ट सन्तोषजनक है; और अगर न भी हो तो परवाना कुछ शर्तोंपर दिया जा सकता है।

आगे, श्री लॉटनने २३ दिसम्बर, १८९७ को अर्जदारको भेजी गई सूचना और सफाई-दारोगाकी यह रिपोर्ट पढ़ी:

### *सफाई-सम्बन्धी रिपोर्ट*
### *सुलेमान ईसप वावड़ा*

जिस मकानके लिए परवाना माँगा गया है वह स्कॉट और ऐलन स्ट्रीटके कोनेपर है। यह शहरका एक विशिष्ट स्थल है। सहायकोंके सोनेका कमरा सामकी छोटी दूकानमें है। अर्जदार खुद बड़ी दूकानके पीछे रहता

है। दूकानवाले मकानमें बहुत जगह है, किन्तु दूसरे मकानोंके समान ही हवा-प्रकाशका प्रबन्ध खराब है। अहाता छोटा है और रसोई, गुसलखाने तथा पाखानेसे घिरा हुआ है। तीन सहायक अब नं० ३६ स्कॉट स्ट्रीटमें रहने लगे हैं। यह जगह अर्जदारने हाल ही में ली है। इसके बिना दूकानसे लगी हुई सोनेकी जगह कम होगी।

(ह०) जैस० मैकडॉनल्ड
सफाई-दारोगा

दिसम्बर १५, १८९७

और उन्होंने मकान नं० ३३, स्कॉट स्ट्रीटके लिए परवानेकी अर्जीपर परवाना-अधिकारीके दिये हुए कारण भी पढ़े और फिर सुलेमान इब्राहीम वावडाको बुलाया, जिसने विधिपूर्वक शपथ ग्रहण करनेके बाद बयान दिया:

मैं मकान नं० ३७, मचिसन स्ट्रीट और मकान नं० ३३, स्कॉट स्ट्रीटके लिए परवानेका अर्जदार हूँ। वहाँ मैं व्यापार चलाता हूँ। पिछले वर्ष मेरे पास तीन परवाने थे। परन्तु इस वर्ष मैं सिर्फ दो परवानोंके लिए अर्ज कर रहा हूँ। मैं नेटालमें लगभग १७ वर्षसे और न्यूकैसिलमें १० वर्षसे हूँ। मेरे पास ३७, मचिसन स्ट्रीटका परवाना ७ वर्षसे है; ३३, स्कॉट स्ट्रीटका लगभग ५ वर्षसे। मेरी दोनों दूकानोंके मालकी कीमत लगभग ४,५०० पौंड है। मेरी पेढ़ी करीब ७०० पौंडकी देनदार है। ३७, मचिसन स्ट्रीटका मैं माहवारी किरायेदार हूँ, और मेरा ३३, स्कॉट स्ट्रीटका पट्टा ६ महीनोंमें समाप्त हो जायेगा।

मेयर [के पूछने] पर: मैं और मुहम्मद ईसप तोमेर साझेदार हैं। हमने उसी नामसे अलग अलग व्यापार किया है।

## *अपील*

अब्दुल रसूल। अर्जी नं० ९, १८९८।

श्री लॅटनने अर्जदारके नाम परवाना-अधिकारीका २३ दिसम्बर, १८९७ का पत्र, उसके दिये हुए निर्णय और कारण तथा सफाई-सम्बन्धी यह रिपोर्ट पढ़कर सुनाई:

## *सफाई-सम्बन्धी रिपोर्ट*

मैंने अर्जीमें बताये गये मकानका मुआयना किया। वह एक छोटी-सी जीर्ण दूकान है। सोनेके कमरेसे सीधा रास्ता नहीं है। उसमें सिर्फ अर्जदार रहता है और उसे काफी साफ रखा जाता है। अर्जदार फलोंका व्यापारी है। शायद इस दूकानमें वह जो कारबार करेगा उसका एक हिस्सा फलोंका व्यापार भी होगा। यह काम ऐसा है कि एक माह बाद मकानकी सफाईकी स्थितिपर इसका भिन्न ही असर पड़ सकता है। पहले अर्जदारके पास मुहम्मद शफीकी बगलमें एक छोटी-सी फलोंकी दूकान थी।

(ह०) जैस० मैकडॉनल्ड
सफाई-दारोगा

और उन्होंने १८९७ के कानून १८ की आठवीं धाराका हवाला देते हुए कहा कि सफाई-दारोगाकी रिपोर्टसे यह नहीं मालूम होता कि वह मकान इच्छित रोजगारके लिए अयोग्य है। उन्होंने अब्दुल रसूलको बुलाया, जिसने विधिपूर्वक शपथ ग्रहण करनेके बाद बयान दिया:

मैं परवानेका अर्जदार हूँ। मैं उपनिवेशमें लगभग १० वर्षसे और न्यूकैसिलमें लगभग ८ वर्षसे रह रहा हूँ। मेरे पास तीन वर्षसे परवाना है — २ वर्षसे ४२, स्कॉट स्ट्रीटकी फलोंकी दूकानका, और एक वर्षसे वर्तमान स्थानका। मेरी दूकानके बारेमें सफाई-दारोगाने या बरोके किसी दूसरे अधिकारीने कभी मेरे सामने कोई आपत्ति नहीं की। मुझे मालूम नहीं कि मुझे परवाना देनेसे इनकार क्यों किया गया। परवाना-अधिकारी कभी मेरे मकानके अन्दर नहीं गया। निरीक्षण-अफसरके मुआयना करनेके बाद मैंने अपने मकानमें कोई फेरफार नहीं किया है। मेरे मालका मूल्य लगभग ४०० पौंड है।

परिषद्-सदस्य हेस्टी [के पूछने] पर: वर्तमान मकानमें मैं लगभग एक वर्षसे काबिज हूँ।

## अपील

सज्जाद मियाजान । अर्जी नं० १०-१८९८ ।

श्री लॅटनने सफाई-दारोगाकी यह रिपोर्ट पढ़ी :

### सफाई-सम्बन्धी रिपोर्ट

मैंने ३६, मर्चिसन स्ट्रीटका निरीक्षण किया । इस स्थानमें खुदरा दूकान खोलनेका परवाना माँगा गया है । दूकान बहुत ही गन्दी हालतमें है और सोनेके कमरेमें उससे सीधा रास्ता है । सोनेके कमरेमें वह, उसकी पत्नी, लड़की और एक सहायक रहते हैं ।

(ह०) जैस० मैकडॉनल्ड
सफाई-दारोगा

और उन्होंने परवाना-अधिकारीका निर्णय और कारण तथा अर्जदारके नाम परवाना-अधिकारीका २३ दिसम्बर, १८९७ का पत्र पेश किया । बादमें उन्होंने सज्जाद मियाजानको बुलाया, जिसने विधिपूर्वक शपथ ग्रहण करनेके बाद बयान दिया :

मैं इस परवानेका अर्जदार हूँ । मैं नेटालमें सात वर्ष और न्यूकैसिलमें सात वर्ष रहा हूँ । मेरे पास इसी दूकानके लिए पाँच वर्षतक निगम (कारपोरेशन) का परवाना रहा है ।

जबसे मैंने परवानेकी अर्जी दी, सफाई-दारोगा या निगमके किसी दूसरे अधिकारीने यह नहीं बताया कि मुझे परवाना देनेसे क्यों इनकार किया गया । मुझे मालूम ही नहीं कि परवाना देनेसे इनकार क्यों किया गया । मेरे अर्जी देनेके बाद परवाना-अधिकारीने मेरी दूकानका मुआयना नहीं किया । मेरे मालकी कीमत लगभग ६०० पौंड है । सफाई-दारोगाकी रिपोर्टमें बताया गया है कि मैं, मेरी पत्नी, पुत्री और एक सहायक एक ही कमरेमें रहते हैं । हम एक ही कमरेमें नहीं रहते । न हम रिपोर्टकी तारीखको ही रहते थे । सहायक एक अलग कमरेमें रहता है । रिपोर्टकी तारीखके बाद मैंने अपनी दूकानमें फेरफार किया है । पाखाना अहातेके एक दूरके कोनेमें हटा दिया गया है । मैं नहीं जानता कि रिपोर्टकी तारीखको मेरी दूकान गन्दी हालतमें थी और निरीक्षकने उस समय यह बात मुझे नहीं बताई ।

परिषद-सदस्य केम्प [के पूछने] पर : मैंने, बिना किसीके कहे, खुद ही फेरफार किया है ।

चार्ल्स ओ'ग्रेडी गबिन्सने आगे शपथपूर्वक कहा : मैंने आज सज्जाद मियाजानकी दूकानका मुआयना किया और उसे सन्तोषजनक हालतमें पाया । उसमें दो सोनेके कमरे हैं — बहुत साफ और तख्ते जड़े हुए; उनमें भीतर अस्तर है और भीतरी छतें भी मढ़ी हुई हैं ।

स्वच्छताकी दृष्टिसे मैं नहीं समझता कि परवाना देनेसे इनकार किया जाना चाहिए ।

परिषद-सदस्य हेस्टी [के पूछने] पर : मुझे नहीं मालूम कि सोनेके कमरोंमें कितने लोग रहते हैं । कमरोंका माप १७'×१२' और ११'×१२' और ऊँचाई १०' है ।

*ज्ञातव्य :* परवाना-अधिकारीके दिये हुए कारण प्रार्थनापत्रमें उपलब्ध हैं । अब सज्जाद मियाजान, उधारी देनेवालों द्वारा माल देना बन्द कर दिया जानेके कारण, दिवालिया हो गया है ।

## परिशिष्ट घ

डर्बन
दिसम्बर २४, १८९८

श्रीमान् मो० क० गांधी

प्रिय महोदय,

मुझे आपका कलका पत्र[1] मिला । मैं विक्रेता-परवाना अधिनियमको बहुत लज्जाजनक और बेईमानीभरा विधान मानता हूँ । बेईमानीभरा और लज्जाजनक — क्योंकि इस मंशाको जरा भी छिपाया नहीं गया कि उसे

१. पत्र उपलब्ध नहीं है ।

भारतीयोंपर, और सिर्फ उनपर ही लागू किया जायेगा। वास्तवमें वह स्वीकार तो संसदके एक ऐसे अधिवेशनमें किया गया, जो भारतीय-विरोधी समुदायको तुष्ट करनेके लिए साधारण समयसे एक महीने पहले ही कर लिया गया था; फिर भी उपनिवेश-मन्त्रीकी स्वीकृति प्राप्त करनेके लिए उसे रूप ऐसा दिया गया, मानो वह सब-पर लागू होता हो।

अधिनियमका असर है — व्यापारके परवाने देने या न देनेका अधिकार भारतीय व्यापारियोंके माने हुए शत्रुओंके हाथोंमें सौंप देना। नतीजा वही है, जिसकी अपेक्षा की जा सकती है। और हम सब जो-कुछ देखते हैं उससे लज्जित हैं, भले ही हम इसे मंजूर करें या न करें।

आपका बहुत सच्चा,
एफ० ए० लॉटन

## परिशिष्ट ङ

३९, गार्डिनर स्ट्रीट
डर्बन
दिसम्बर २३, १८९८

श्रीमान् मो० क० गांधी
१४, मक्युरी लेन
डर्बन

प्रिय महोदय,

*बाबत : विक्रेता-परवाना अधिनियम*

आपके आजकी तारीखके पत्रके उत्तरमें, मैं नहीं समझता कि इस कानूनका प्रयोग विधानमण्डलकी भावनाके अनुसार किया जा रहा है। उस समयके प्रधानमन्त्रीने, जिन्होंने विधेयक पेश किया था, कहा था: "इसका मुख्य उद्देश्य उन लोगोंपर असर करनेका है, जिनका निपटारा प्रवासी-विधेयकके अन्तर्गत किया जाता है। जहाजवालोंको अगर मालूम हो कि इन्हें उतारने नहीं दिया जायेगा तो वे इन्हें नहीं लायेंगे। और अगर लोगोंको मालूम हो कि उन्हें परवाने नहीं मिल सकेंगे तो वे व्यापार करनेके लिए यहाँ आयेंगे ही नहीं।"

बहुत दिन नहीं हुए कि मेरे पास इसी तरहका एक मामला उपस्थित हुआ था। एक चीनी राष्ट्रिक उपनिवेशमें तेरह वर्षोंसे रह रहा था। उसे परवाना देनेसे इनकार कर दिया गया। मुझे निश्चय है कि इसका कारण और कुछ नहीं, सिर्फ यह था कि वह चीनी राष्ट्रिक था। डर्बन-सम्बन्धी आँकड़ोंसे मालूम होता है कि गत दस वर्षोंके अन्दर इस शहरका फैलाव और आबादी दूनीसे ज्यादा हो गई है। और फिर भी इस आदमीको जिसने अपना भाग्य उपनिवेशके साथ जोड़ दिया था — एक ऐसे आदमीको, जिसका चरित्र निष्कलंक था, जो उस समय इस उपनिवेशमें आया था जब कि यहाँ आजके १०० मनुष्योंकी जगह केवल ४० मनुष्य निवास करते थे — डर्बनमें ईमानदारीके साथ जीविका उपार्जित करनेका साधन देनेसे इनकार कर दिया गया; उसके चरित्रका और इस बातका कोई खयाल नहीं किया गया कि वह लम्बे अरसेसे उपनिवेशमें रह रहा है। इसी तरह, मैंने देखा है कि न्यूकैसिलमें एक भारतीयको परवाना देनेसे इनकार कर दिया गया। वह १५ वर्षोंसे नेटालमें रह रहा था। अगर किसी यूरोपीयने उसी परवानेकी अर्जी दी होती तो उसे वह दे दिया जाता। यह उचित नहीं है।

आपका विश्वासपात्र,
पी० ओ'ही

## परिशिष्ट च

३, ४ और ५, पाइंटन्स बिल्डिंग्ज
गार्डिनर स्ट्रीट
डर्बन
दिसम्बर ३१, १८९८

श्रीमान् मो० क० गांधी :
एडवोकेट

प्रिय महोदय,

विक्रेता-परवाना अधिनियमकी बाबत आपके इसी माहकी २३ तारीखके पत्रके उत्तरमें :

हम इस प्रश्नके राजनीतिक पहलूपर कुछ न कहना ही पसन्द करते हैं।

हमारा मत है कि परवाना-अधिकारी नगर-परिषदों या स्थानिक निकायोंके — जहां जैसा हो — स्थायी कर्मचारी-मण्डलके बाहरसे नियुक्त किया जाना चाहिए। उसके निर्णयके विरुद्ध नगर-परिषदमें और नगर-परिषदके निर्णयके विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालयमें अपीलकी व्यवस्था होनी चाहिए।

हम समझते हैं कि अधिनियमके अमलमें आनेके कारण जिन मकान-मालिकोंने अपने किरायेदार खोये हैं उन्हें मुआविजा दिया जाना चाहिए।

हम समझते हैं कि कम महत्त्वकी अनेक बातें ऐसी हैं, जिनमें सुधार होना चाहिए। परन्तु, हमारी रायमें, प्रस्तुत अधिनियमका मुख्य दोष यह है कि उसमें नगर-परिषदके निर्णयकी अपील करनेकी कोई गुंजाइश नहीं रखी गई। इससे परवानोंके अर्जदारोंपर अन्याय हुआ है और आगे भी हो सकता है।

आपके विश्वासपात्र,
रेनॉड और रॉबिन्सन

## परिशिष्ट छ

२३, फील्ड स्ट्रीट बिल्डिंग्ज
डर्बन, नेटाल
जनवरी ४, १८९९

श्रीमान् मो० क० गांधी
डर्बन

प्रिय महोदय,

परवाना-अधिनियम १८/९७ की बाबत हमारी आजकी मुलाकातके सम्बन्धमें मैं सिर्फ इतना ही कह सकता हूँ कि यद्यपि उस अधिनियममें ऐसा कहा नहीं गया; फिर भी, मेरे अनुभवके अनुसार उसका मंशा केवल भारतीयों और चीनियोंपर लागू होनेका है। कुछ हो, मुझे लगता तो ऐसा ही है।

मैंने परवाना-अधिकारीको नये परवानोंके लिए कई अर्जियाँ भेजी हैं, जो बिना कारण बताये खारिज कर दी गई हैं। और नगर-परिषदसे अपीलें करनेपर मैंने हमेशा ही देखा है कि उस संस्थाने परवाना-अधिकारीसे उसकी खारिजीके कारण पूछे बिना ही उसके निर्णयको बहाल कर दिया है।

यूरोपीयोंको कितने परवाने नामंजूर किये गये, उनकी संख्या जाननेकी मैंने कोशिश नहीं की। परन्तु मुझे लगता है, वे सिर्फ उन लोगोंको नहीं दिये गये, जिनके पास, उनके आचरण आदिके कारण, परवाना होना उचित नहीं जँचता था।

आपका विश्वासपात्र,
सी० ए० डी' आर० लैबिस्टर

*पुनश्च* : अधिनियमका सबसे अन्यायपूर्ण अंश वह है, जिसके कारण सर्वोच्च न्यायालयमें नगर-परिषद्के निर्णयकी अपील नहीं की जा सकती।

सी० ए० आर० एल०

## परिशिष्ट ज

सेवामें
सम्पादक
*टाइम्स ऑफ़ नेटाल*
महोदय,

इसी माहकी १६ तारीखके *टाइम्स ऑफ़ नेटाल*में प्रकाशित मेरे "ऐन इम्पॉर्टेंट डिसिज़न" [एक महत्त्वपूर्ण निर्णय] शीर्षक पत्रपर ध्यान देने और उसके उत्तरमें अपना मन्तव्य व्यक्त करनेके लिए मैं आपको धन्यवाद देना चाहता हूँ। आप कहते हैं : "जहाँतक कसाइयोंके मण्डलका सम्बन्ध है, इतना कह देना जरूरी है कि, उसके जरिये रहन-सहनका खर्च बहुत बढ़ा दिया गया है और, हमें बताया गया है, मांस तो समाजके गरीब वर्गोंके वित्तके बाहरकी चीज बन गया है।"

मैं आपसे पूरी तरह सहमत हूँ। इस प्रकारकी तमाम गुटबन्दियाँ नैतिक दृष्टिसे गलत हैं, और खतरनाक हैं; क्योंकि इनसे उन थोड़े-से लोगोंको तो लाभ पहुँचता है, परन्तु आम जनताको हानि होती है। आगे आप कहते हैं : "दूसरी ओर, भारतीय व्यापारी भी खतरनाक बन गये हैं, क्योंकि वे यूरोपीयोंकी अपेक्षा बहुत सस्तेमें गुजर कर सकते हैं और इसलिए वे यूरोपीयोंको व्यापारसे और उपनिवेशसे भी बाहर खदेड़े दे रहे हैं।" यह तो हमारा एक स्वतःसिद्ध तत्त्व है कि स्पर्धा व्यापारकी जान है। और यह मानते हुए कि सभी स्पर्धा खतरनाक है, मैं निवेदन करता हूँ कि भारतीय व्यापारी उसी रूपमें खतरनाक नहीं हैं, जिस रूपमें कसाइयोंका मण्डल है।

भारतीय दूकानदार, दूकानदारोंमें ही जोरदार स्पर्धा उत्पन्न करके, जीवनकी तमाम जरूरी चीजोंकी कीमतें घटा रहे हैं। दूसरे शब्दोंमें, वे थोड़े-से लोगोंको हानि पहुँचाकर बहुत-से लोगोंका लाभ कर रहे हैं, जो कसाइयोंके मण्डलके ठीक उलटा है।

मुझे भली भाँति याद है, बीस वर्ष पूर्व जब मैं उपनिवेशमें आया था उस समय हमें अबसे बीस फ़ीसदी ज्यादा फायदा होता था। उस समय थोड़े-से लोगोंको फायदा होता था और बहुत-से हानि सहते थे। परन्तु स्पर्धाने, और खास तौरसे भारतीयोंकी स्पर्धाने, सारे देशमें भावोंको गिरा दिया है। और अब बहुत-से लोगोंको लाभ होता है, थोड़ेसे लोगोंको हानि। यही तो होना भी चाहिए।

आप इन लोगोंको खदेड़ दीजिए तो आम जनता फिर कष्टोंमें पड़ जायेगी — उसे अपनी जरूरतकी तमाम चीजोंके बहुत महँगे भाव चुकाने होंगे।

मुझे याद है, लगभग सोलह वर्ष पूर्व एक देहाती कस्बेके आदमीसे मेरा झगड़ा हो गया था। कारण यह था कि मैंने दूकानदारोंके एक ऐसे मण्डलमें शामिल होनेसे इनकार कर दिया था, जो आटेके फी बोरेपर ५ शिलिंग मुनाफा वसूल करना चाहता था। उन दिनों भले ही जनताको हानि पहुँचानेवाली, परन्तु दूकानदारोंकी थैलियाँ भरनेवाली ऐसी गुटबन्दियाँ चलाई जा सकती हों, परन्तु आज ये बिलकुल असम्भव होंगी। और यदि आप मांसके व्यापारमें वैसी ही स्पर्धा जारी करा सकें तो आज आपको मांसके भावोंके बारेमें जो शिकायतें सुननेको मिलती हैं, वे शीघ्र ही कम हो जायेंगी।

आप शिकायत करते मालूम होते हैं कि ये लोग सस्तेमें गुजारा कर सकते हैं। हाँ, वे कर सकते हैं सस्तेमें गुजारा — वे दारू नहीं पीते, अधिकारियोंको तकलीफ़ नहीं देते और, सचमुच, कानूनका पालन करनेवाले प्रजाजन हैं। और अगर वे सस्तेमें गुजारा करके मालको सस्ते भावों बेच सकते हैं तो फायदा, जरूर ही, जनताका है।

बेशक आप उनसे सफाईके कड़ेसे कड़े नियमोंका पालन करवाइए, उनका हिसाब-किताब अंग्रेजीमें रखवाइए और अन्य काम भी वैसे ही करवाइए, जैसे कि अंग्रेज व्यापारी करते हैं; परन्तु जब वे इन सब माँगोंको पूरा कर दें तब उन्हें न्याय दीजिए। नया विधेयक इन लोगोंको या सारे समाजको न्याय देता है, यह ईमानदारीसे विचार करनेवाला कोई व्यक्ति नहीं कह सकता। क्योंकि, विधेयक जन-साधारणको लाभ पहुँचानेवाली होड़को दूर कर देनेका अधिकार स्वार्थी लोगोंके हाथोंमें सौंप देता है और इन स्वार्थी लोगोंको अपनी जेबें भरनेमें समर्थ बनाता है। अब हमारे पास काफी मण्डल हो गये — बीमा-मण्डल और कसाई-मण्डल — और अगर समाचारपत्रों जैसे विद्या तथा ज्ञानके प्रसारक गलत पक्षमें हो गये तो, भगवान ही जाने, हम कहाँ जाकर रुकेंगे।

मैंने हाल ही आपके एक सहयोगी पत्रमें पढ़ा था कि डंडीके स्थानिक निकायने अगले वर्षके लिए किसी भी अरब व्यापारीका परवाना नया न करनेका निश्चय किया है और परवाना-अधिकारीको तदनुसार निर्देश दे दिया है।

ये लोग अंग्रेज व्यापारी हैं और चाहते हैं कि साराका सारा व्यापार इनके ही हाथोंमें रहे, जब कि जनता इन्हें मुँहमाँगे भाव चुकाती रहे।

निश्चय ही अब समय आ गया है, जब कि सरकारको चाहिए कि वह इन लोगोंको इनकी सीमा बता दे।

हमने आपको भारी अधिकार सौंपे हैं, परन्तु यदि आप उनका उपयोग अन्यायपूर्वक करनेवाले हैं तो हम वे अधिकार आपसे वापस ले लेंगे।

— आपका, आदि,

कन्सिस्टेन्सी

डर्बन, १९ दिसम्बर।

(इस पत्रकी समीक्षा हमारे अग्रलेखमें की गई है — सम्पा०, टा० ऑफ़ ने०)

## परिशिष्ट झ

## *सरकारी सूचना नं० ५१७, १८९७*

कानून नं० १८, १८९७ के खण्ड ११ के अन्तर्गत सपरिषद् गवर्नर महोदय द्वारा मंजूर किये गये निम्नलिखित नियम सब लोगोंकी जानकारीके लिए प्रकाशित किये जाते हैं।

सी० बर्ड

मुख्य उपसचिव,

उपनिवेश-सचिवका कार्यालय, नेटाल

सितम्बर १६, १८९७

परवाने प्राप्त करनेके तरीकों और परवाना-अधिकारीके निर्णयोंकी अपीलोंको विनियमित करनेके लिए कानून १८, १८९७ के अन्तर्गत नियम।

१. इन नियमोंमें "परवानों" का अर्थ, जबतक दूसरा अर्थ नहीं बताया जाये, या तो थोक व्यापारका परवाना है, या फुटकर व्यापारका। "नया परवाना" का अर्थ ऐसे मकानके लिए परवाना है, जिसके लिए परवानेकी अर्जी देनेके दिन वैसा ही कोई परवाना मौजूद न हो, जैसेकी अर्जी दी गई है।

"निकाय या परिषद" (बोर्ड या कौन्सिल) का अर्थ है — जैसा जहाँ हो — उस क्षेत्रका परवाना देनेवाला निकाय, या किसी बरोकी नगर-परिषद, या किसी बस्तीका स्थानिक निकाय।

### एक. *परवानोंकी अर्जी*

२. नया परवाना पाने या वर्तमान परवानेको नया करानेके इच्छुक हरएक व्यक्तिको सम्बद्ध विभाग, बरो या बस्तीके परवाना-अधिकारीको लिखित अर्जी देनी होगी। अर्जीमें अनुसूची क में बताया हुआ विवरण दिया जायेगा।

३. जिस मकानके लिए परवाना माँगा जाता है उसकी बनावटका पैमानेके अनुसार बनाया हुआ नक़्शा अर्जेदारको अपनी अर्जीके साथ नत्थी करना होगा।

४. परवानेकी अर्जी पानेपर परवाना-अधिकारीको अधिकार होगा कि वह, अपने मार्ग-दर्शनके लिए, जिस मकानके लिए परवाना देनेकी बात हो उसकी सफ़ाईकी व्यवस्थाके सम्बन्धमें उस विभाग, बरो या बस्तीके सफ़ाई-दारोगा या किसी अन्य अधिकारीसे रिपोर्ट माँग ले।

५. अर्जेदारको अगर बुलाया जाता है तो खुद हाजिर होकर परवाना-अधिकारीके सामने अपनी हिसाबकी किताबें या ऐसे सब कागज़-पत्र या प्रमाण पेश करने होंगे जो उस अधिकारीको यह सन्तोष दिलानेके लिए जरूरी हों कि अर्जेदार अपने हिसाबकी किताबें अंग्रेजी भाषामें रखनेके सम्बन्धमें कानूनके खण्ड ७ में बताई हुई शर्तें पूरी करनेमें समर्थ है।

६. परवाना-अधिकारी परवाना देने या देनेसे इनकार करनेके सम्बन्धमें परवानेकी हर अर्जीपर अपना निर्णय लिख देगा।

७. अर्जीको, सफ़ाई-दारोगा या अन्य अधिकारीकी रिपोर्ट और परवाना-अधिकारीके निर्णयके साथ, हर मामलेमें उस मामलेकी कार्रवाइयोंका पूरा लेखा माना जायेगा।

८. परवाना तबतक नहीं दिया जायेगा, जबतक कि आवश्यक स्टाम्प न भर दिया जाये, या रुपया अदा न कर दिया जाये।

## दो. अपीलें

९. अर्जेदार या दिलचस्पी रखनेवाला कोई भी व्यक्ति परवाना-अधिकारीके निर्णयसे दो सप्ताहके अन्दर निकाय या परिषद्के क्लार्कको उस निर्णयके विरुद्ध अपील करनेके इरादेकी सूचना दे सकता है। यह सूचना अनुसूची ख के फार्ममें होगी।

१०. अपीलकी सुनवाईके लिए निश्चित की गई तारीखकी सूचना, अपीलोंकी सूचीके साथ, निश्चित तारीखसे कमसे कम पाँच दिन पहलेसे अदालत या नगर-कार्यालयके दरवाजेपर लगा रखी जायेगी। यह अनुसूची ग के फार्ममें होगी।

११. अपीलकी सूचना मिलते ही क्लार्क परवाना-अधिकारीके पाससे कार्रवाईका विवरण और उसके कागजात या उनकी नकलें मँगायेगा।

१२. निकाय या परिषद्की कार्रवाइयाँ सुननेके लिए जनताको आनेकी इजाजत रहेगी।

१३. क्लार्क कार्रवाइयोंका विवरण लिखेगा।

१४. अर्जीका लेखा निकाय या परिषद्के सामने पढ़ा जायेगा।

१५. अपील करनेवाले या दिलचस्पी रखनेवाले किसी भी व्यक्तिको खुद हाजिर होकर, या अपने लिखित अधिकारपत्रके अनुसार काम करनेवाले किसी दूसरे व्यक्तिके द्वारा, अपीलपर अपना बयान देनेका अधिकार होगा।

१६. निकाय या परिषद्को अधिकार होगा कि वह परवाना-अधिकारीसे अर्जीपर दिये निर्णयके कारण लिखित रूपमें माँग ले। अगर निकाय या परिषद्की रायमें और गवाही जरूरी हो तो निकाय या परिषद् ऐसी गवाही उसी दिन या किसी दूसरे दिन, जबके लिए पेशी बदल दी जाये, ले सकती है।

## अनुसूची क

सेवामें, परवाना-अधिकारी, विभाग . . . . . . . . . . . . . . . . . . . .
(या बरो अथवा बस्ती . . . . . . . . . . . . . . . . )।

मैं (या हम) नीचे लिखे अनुसार परवानेके लिए आवेदन करता हूँ (या करते हैं):

व्यक्ति या पेढ़ीका नाम, जो परवानेमें भरा जाना हो . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . .

परवानेका प्रकार (थोक या फुटकर व्यापारके लिए) . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . .

अवधि, जिसके लिए परवाना माँगा जा रहा है . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . .

मकान, जिसके लिए परवाना माँगा जा रहा है . . . . . . . . . . . . . . . . . . . .

(यदि अर्जी नये परवानेके लिए हो तो लिखिए : मैं इसके साथ मकानकी बनावटका नक्शा नत्थी कर रहा हूँ)।

तारीख . . . . . . . . . . . १८९

सही . . . . . . . . . . . . . . . . . . . .

आवेदनकर्ता

## अनुसूची ख

सेवामें, क्लार्क महोदय, परवाना-निकाय, विभाग . . . . . . . . . . . . . . . . . . . .

(या) सेवामें, क्लार्क महोदय, स्थानिक निकाय (स्थान) . . . . . . . . . . . . . . . . . . . .

तारीख . . . . . . . . . . . . . . . . . १८९

महोदय,

मैं (या हम) इसके द्वारा सूचना देता हूँ (देते हैं) कि मेरा (हमारा) इरादा (मकान) . . . . . . . . . . में (थोक या फुटकर) . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . व्यापारके परवानेके लिए . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . की अर्जीपर परवाना-अधिकारी द्वारा दिये गये निर्णयके खिलाफ अपील करनेका है।

## अनुसूची ग

विभाग (बरो या बस्ती) . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . .

सूचना दी जाती है कि नीचे लिखी परवानोंकी अर्जियोंपर परवाना-अधिकारीके निर्णयके खिलाफ अपील दायर की गई है।

अपीलकी सुनवाई परवाना-निकाय (या नगर-परिषद या नगर-निकाय) द्वारा (स्थान) . . . . . . . . . में (दिन) . . . . . . . . (तारीख) . . . . . . . (महीना) . . . . . . . . (सन्) १८९ . . . . को होगी।

| अपील करनेवालेका नाम | परवानेके अर्जदारका नाम | माँगे गये परवानेका प्रकार | मकान |
|---|---|---|---|
| | | | |

क्लार्क, परवाना-निकाय

(या) टाउन-क्लार्क

इंटरनेशनल प्रिंटिंग प्रेस, ग्रे स्ट्रीट, डर्बनमें छपी हुई मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० २८९४–२९०३) से।

## २२. पत्र : प्रार्थनापत्र भेजते हुए

डर्बन
जनवरी ११, १८९९

सेवामें

परमश्रेष्ठ सर वाल्टर फ्रान्सिस हेली-हचिन्सन, सेंट माइकेल तथा सेंट जार्जके परम प्रतिष्ठित संघके नाइट-कमांडर, नेटाल उपनिवेशके गवर्नर, प्रधान सेनापति तथा उप-नौसेनापति और वतनी आबादीके सर्वोच्च अधिकारी, पीटरमैरित्सबर्ग

परमश्रेष्ठ ध्यान देनेकी कृपा करें,

मुझे १८९७ के विक्रेता-परवाना-अधिनियम १८ के सम्बन्धमें एक प्रार्थनापत्रकी तीन नकलें आपकी सेवामें भेजनेका मान प्राप्त हुआ है। इस प्रार्थनापत्रपर मुहम्मद कासिम कमरुद्दीन ऐंड कंपनीके श्री अब्दुल कादिर तथा अन्य व्यक्तियोंके हस्ताक्षर हैं और यह सम्राज्ञीके मुख्य उपनिवेश-सचिवकी सेवामें भेजनेके लिए है। परमश्रेष्ठ जैसा उचित समझें वैसे मन्तव्यके साथ इसे भेज देनेकी कृपा करें।

आपका, आदि,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

सम्राज्ञीके मुख्य उपनिवेश-मन्त्री, लंदनके नाम नेटालके गवर्नरके खरीता नं० ६, ता० १४ जनवरी, १८९९ का सहपत्र।

कलोनियल आफिस रेकर्ड्स, मेमोरियल्स ऐंड पिटिशन्स १८९८-९९।

## २३. पत्र : दलपतराम भवानजी शुक्लको

१४, मर्क्युरी लेन
डर्बन, नेटाल
जनवरी १७, १८९९

श्री दलपतराम भवानजी शुक्ल[1]

प्रियवर शुक्ल,

मुझे कालाभाई[2]के पाससे महीनोंसे कोई खबर नहीं मिली। मैं बहुत चिन्तित हूँ कि उनके हाल-चाल क्या हैं, वे क्या कर रहे है और उनकी आर्थिक सम्भावनाएँ कैसी हैं। आप कृपया पता लगाकर मुझे सूचित करेंगे? मेहता[3]से मालूम हुआ कि आपका काम वहाँ बहुत अच्छा चल रहा है। मेरे बारेमें उन्होंने आपको सब-कुछ बता दिया होगा — इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं।

मैं अपनी खराब लिखावट सुधार नहीं सका, इसलिए इधर कुछ दिनोंसे टाइप करने लगा हूँ।

आपका, हृदयसे,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी पत्रकी फोटो-नकल (एस० एन० २३२७) से।

१. राजकोटके एक बैरिस्टर।
२. गांधीजीके बड़े भाई — लक्ष्मीदास गांधी।
३. डा० प्राणजीवन मेहता — लंदनके दिनोंसे गांधीजीके मित्र।

## २४. भारतके पत्रों और लोक-सेवकोंको

डर्बन
जनवरी २१, १८९९

महोदय,

इसके साथ भेजा हुआ प्रार्थनापत्र[1] अपनी दुःखभरी कहानी आप ही सुना रहा है। इसमें जो शिकायत की गई है वह भावनात्मक नहीं, बल्कि बहुत गम्भीर और बहुत सच्ची है। अगर उसे तुरन्त दूर न किया गया तो आसार ये हैं कि उससे सैकड़ों भूखोंकी रोटी छिन जायेगी। नेटालके परवाना-अधिकारी प्रतिष्ठित भारतीयोंको उनके प्राप्त किये हुए अधिकारोंसे वंचित करना चाहते हैं। स्थितिका तकाजा है कि अखबार और लोक-सेवक इसपर तुरन्त *उत्कटताके साथ* और *लगातार* ध्यान दें। गिरमिटिया भारतीयोंका नेटाल जाना रोक देनेसे कम कोई कार्रवाई मामलेको निपटानेके लिए काफी नहीं होगी। हाँ, नेटाल-सरकारको परवाना-कानूनमें ऐसा संशोधन करनेके लिए प्रेरित किया जा सके, जिससे कि वह कानून ब्रिटिश संविधान द्वारा स्वीकृत न्याय-सिद्धान्तोंसे मेल खाने लगे, तो बात दूसरी है।

दूसरी सब शिकायतें सैद्धान्तिक वाद-विवादके लिए ठहर सकती हैं, परन्तु इसमें देरीकी कोई गुंजाइश नहीं है।

डर्बन नगरमें भारतीय १,००,००० पौंडसे भी अधिक मूल्यकी भूमिके मालिक हैं। सफाई-दारोगाकी उत्तम रिपोर्टके बावजूद, कुछ अच्छेसे अच्छे मकानोंके लिए, जिनके मालिक भारतीय हैं, परवाने देनेसे इनकार कर दिया गया है।

एक व्यापारी अपना कारोबार बेच देना चाहता है। उसका सारा मुनाफा उसके मालमें ही है। वह ग्राहक पानेमें असमर्थ है, क्योंकि खरीदनेवालेको परवाना मिल सकता है, इसका कोई निश्चय नहीं है।

आपका आज्ञाकारी,
मो० क० गांधी

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० २९४९) से।

१. श्री चेम्बरलेनके नाम ३१-१२-१८९८ का प्रार्थनापत्र।

## २५. प्रार्थनापत्र : लॉर्ड कर्जनको

डर्बन
जनवरी २७, १८९९

सेवामें

परम माननीय जार्ज नैथेनियल, केडल्स्टनके बैरन कर्जन
भारतके वाइसराय और गवर्नर-जनरल
कलकत्ता

नेटाल उपनिवेशवासी ब्रिटिश भारतीयोंके नीचे हस्ताक्षर
करनेवाले प्रतिनिधियोंका प्रार्थनापत्र

नम्र निवेदन है कि,

प्रार्थी परमश्रेष्ठका ध्यान उस प्रार्थनापत्रकी प्रतिकी ओर आकृष्ट करनेका साहस करते हैं जो कि उन्होंने सम्राज्ञीके प्रथम उपनिवेश-मन्त्रीकी सेवामें, नेटाल-विधानमण्डल द्वारा १८९७ में स्वीकृत विक्रेता-परवाना अधिनियमके विषयमें, भेजा है।

परमश्रेष्ठको उस प्रार्थनापत्रसे विदित होगा कि

(क) जिस अधिनियमकी शिकायत की गई है वह एक प्रत्यक्ष, वास्तविक तथा ठोस दुःख-दर्दका कारण बन रहा है; और जिस प्रकार उसे अमलमें लाया जा रहा है उसका, नेटाल उपनिवेशमें बसे हुए भारतीय व्यापारियोंके उपलब्ध अधिकारोंपर बहुत गम्भीर दुष्परिणाम होनेकी सम्भावना है;

(ख) जो हित दाँव पर चढ़े हैं उनका मूल्य हजारों पौंड है;

(ग) जैसा कि नेटालके कुछ पत्रकार भी मानते हैं, दक्षिण आफ्रिकाके गणराज्यने जितनी दूरी तक जानेका साहस किया है, नेटालका विधानमण्डल उससे भी बहुत आगे बढ़ गया है;

(घ) अधिनियमका अमल परम माननीय हैरी एस्कम्बके, जिन्होंने उसे पास कराया था और जो उस समय उपनिवेशके प्रधानमंत्री थे, सार्वजनिक रूपसे दिये आश्वासनके प्रतिकूल सिद्ध हुआ है। उन्होंने कहा था कि उन्हें नगर-परिषदों और नगर-निकायों-पर पूरा विश्वास है कि वे व्यापारके वर्तमान परवानोंमें उलट-फेर नहीं करेंगे।

(ङ) कई नगर-परिषदें और स्थानिक निकाय वर्तमान परवानोंमें पहले ही गम्भीर हस्तक्षेप कर चुके हैं, और उन्होंने आगे और अधिक हस्तक्षेप करनेका भय दिखलाया है।

इन परिस्थितियोंमें, आपके प्रार्थियोंने निवेदन किया है कि या तो इस अधिनियममें ऐसे संशोधन कर दिये जायें कि यह ब्रिटिश न्याय-सिद्धान्तोंसे मेल खाने लगे, या फिर इस उपनिवेशमें गिरमिटिया मजदूरोंका भेजना बन्द कर दिया जाये।

आपके प्रार्थियोंका विचार है कि यदि ब्रिटिश-भारतसे बाहर ब्रिटिश-भारतीयोंके अधिकारोंको मिट जानेसे बचाना हो तो इस मामलेमें भारत-सरकारको सक्रिय और कारगर हस्तक्षेप करना चाहिए। इस प्रार्थनापत्रसे संलग्न परिशिष्टमें, डंडीके स्थानिक निकायके एक प्रस्तावका जिक्र

है कि जितने भी एशियाइयोंका सफाया किया जा सके उतनोंका कर देना चाहिए। आपके प्रार्थियोंको पता चला है कि इस प्रस्तावके अनुसार, वहाँके परवाना-अधिकारीने, सोलहमें से सात या आठ भारतीय दूकानदारोंके परवानोंको फिर जारी करनेसे इनकार कर दिया है। जिन्हें इस प्रकार परवाना देनेसे इनकार किया गया है उनमें से एक डंडीका सबसे बड़ा भारतीय दूकानदार है और उसकी दूकानमें हजारों पौंडका माल भरा पड़ा है। न्यूकैसिलके परवाना-अधिकारीने ऐसे तीन परवाने देनेसे इनकार कर दिया है, जो कि गत वर्ष भी रोक लिये गये थे — इनका भी जिक्र परिशिष्टमें है। प्रार्थी परवाना पानेके लिए स्थानिक रूपसे जो कुछ कर सकते हैं सो अब भी कर रहे हैं। इसलिए यह परिणाम अन्तिम नहीं है। परन्तु इससे स्थितिकी गम्भीरताका तो पता भली भाँति चल ही जाता है। उपनिवेशके अन्य अनेक स्थानोंपर प्रार्थनापत्र अभी विचाराधीन पड़े हुए हैं।

इस वर्ष अन्तिम परिणाम चाहे जो हो, आपके प्रार्थियोंकी नम्र सम्मतिमें, इस अधिनियमसे बुराई होनेकी सम्भावना बहुत बढ़ी है; और आपके प्रार्थी हृदयसे आशा करते और नम्र निवेदन करते हैं कि संलग्न पत्रमें की हुई प्रार्थनापर परमश्रेष्ठ सहानुभूतिपूर्वक और शीघ्र विचार करनेकी कृपा करें।

और इस न्याय तथा दयाके कार्यके लिए, आपके प्रार्थी, अपना कर्तव्य समझकर, सदा दुआ करेंगे।

(ह०) मुहम्मद कासिम कमरुद्दीन ऐंड कं०
और अन्य व्यक्ति

छपी हुई मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० २९५५) से।

## २६. पत्र : उपनिवेश-सचिवको

१४, मर्क्युरी लेन
डर्बन
फरवरी २०, १८९९

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

महोदय,

सर्वश्री अमद सुलेमान, इस्माइल मुहम्मद खोटा और ईसा हाजी सुमार ट्रान्सवाल जानेका इरादा कर रहे हैं। पहले दो अपने व्यवसायके लिए ट्रान्सवालसे आये हैं; उनके पास वापसी टिकेट है। तीसरेका स्टैंडर्टनमें भारी व्यापार चलता है और वे अपने व्यापारका निरीक्षण करनेके लिए वहाँ जाना चाहते हैं। पहले दोनोंका सम्बन्ध हीडेलबर्गमें चलनेवाले एक व्यापारसे है।

मैं आभारी हूँगा, अगर आप इन सज्जनोंको ट्रान्सवाल जानेके परवाने दिला सकें।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पीटरमैरित्सबर्ग आर्काइव्ज़, सी० एस० ओ० १५८४/९९।

## २७. पत्र : उपनिवेश-सचिवको

१४, मर्क्युरी लेन
डर्बन
फरवरी २८, १८९९

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

महोदय,

अमुक तीन भारतीयोंको ट्रान्सवाल जानेके परवाने दिलानेके सम्बन्धमें मुझे आपके इसी महीनेकी २५ और २७ तारीखोंके पत्रोंकी पहुँच स्वीकार करनेका मान प्राप्त हुआ है।

ट्रान्सवाल-सरकार द्वारा प्लेग-सम्बन्धी नियमोंकी घोषणा की जाने तकके अन्तरिम कालमें जो भारतीय सज्जन ट्रान्सवाल जाना चाहते हैं उनको परवाने दिलानेके बारेमें आपके इसी माहकी २५ तारीखके पत्रका भी प्राप्ति-स्वीकार निवेदन करता हूँ। इसके लिए मैं सरकारको नम्रतापूर्वक धन्यवाद देता हूँ।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पीटरमैरित्सबर्ग आर्काइव्ज़, सी० एस० ओ०, १५८४/९९।

## २८. तार : उपनिवेश-सचिवको

पीटरमैरित्सबर्ग
फरवरी २८, १८९९

माननीय उपनिवेश-सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

डर्बन और केपटाउनकी सी० लच्छीराम पेढ़ीके सात भारतीय चौदह जनवरीको भारतसे चले। अभी वे डेलागोआ-बेमें हैं। उनमें से पाँच केपटाउनके और दो डर्बनके लिए हैं। प्रवासी-अधिनियमकी कसौटीपर चढ़नेमें समर्थ हैं। जहाज़-कम्पनियाँ सूतक (क्वारंटीन) के डरसे उन्हें सवार करनेसे इनकार करती हैं। क्या सरकार कृपाकर कम्पनियोंको आश्वासन देगी कि जबतक जहाज़में रोग प्रकट नहीं होता, उन्हें सूतकका डर नहीं होना चाहिए? पाँच व्यक्ति सवारी पाते ही केपटाउन चले जायेंगे। सरकार उनपर देशके अन्दर जो भी सूतक जारी करना उचित समझे उसे सातों व्यक्ति पालेंगे।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

पीटरमैरित्सबर्ग आर्काइव्ज़, सी० एस० ओ० १५८४/९९।

## २९. पत्र : उपनिवेश-सचिवको

१४, मर्क्युरी लेन
डर्बन
मार्च १, १८९९

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

महोदय,

अमुक सात भारतीयोंको डेलागोआ-बेसे इस उपनिवेशमें आने देनेकी बाबत अपनी अर्जीके सम्बन्धमें मुझे आपके कल और आजके तारोंकी प्राप्ति स्वीकार करनेका मान प्राप्त हुआ है।

आपके निर्देशके अनुसार मैंने स्वास्थ्य-अधिकारीसे पत्र-व्यवहार किया है। आपके आजके पत्रके उत्तरमें मेरा निवेदन है कि उक्त व्यक्ति हैदराबाद, सिन्धके हैं, जहाँसे वे ४ जनवरीको निकले थे। वे १४ जनवरी या उसके आसपास *सफ़री* जहाज द्वारा बम्बईसे रवाना हुए। जहाज लामू और मोम्बासा होता हुआ जंजीबार गया। जंजीबारमें वे पिछले माहकी ९ तारीखको या उसके आसपास *जनरल* जहाजपर सवार हुए। अब वे डेलागोआ-बेमें उतर गये हैं। उनमें से दो नेटालमें रहेंगे और वे अधिनियमके अर्थके अन्तर्गत वर्जित प्रवासी नहीं हैं। शेष पाँच दर्शकोंके रूपमें उपनिवेशमें आना चाहते हैं। सरकार देशके अन्दर उनपर जैसा भी सूतक जारी करना उचित समझे उसका वे पालन करेंगे। कम्पनियाँ सरकारसे यह आश्वासन पाये बिना उनको टिकट देनेको राजी नहीं हैं कि उनके जहाजोंको, सिर्फ भारतीय सवारियाँ होनेके कारण ही, सूतकमें नहीं रखा जायेगा।

इन परिस्थितियोंमें मुझे भरोसा है, सरकार ऐसा आदेश दे देनेकी कृपा करेगी, जिससे कि उक्त व्यक्ति उपनिवेशमें आ सकें।

सम्बद्ध पाँच व्यक्तियोंके लिए दस्तूरके अनुसार रकम जमा कर दी जायेगी।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पीटरमैरित्सबर्ग आर्काइव्ज, सी० एस० ओ०, पत्र संख्या १७७२/९९।

## ३०. पत्र : नगर-परिषदको

गांधीजीने नीचे दिया हुआ पत्र पीटरमैरित्सबर्गकी नगर-परिषदको लिखा था। यह उस समय लिखा गया था, जब कि, १८९९ में, प्लेग शुरू होनेका डर फैला था।

डर्बन
[मार्च ८, १८९९ के पूर्व]

इस देशमें गिल्टीवाले प्लेगका प्रवेश रोकनेके लिए सफाईकी जो एहतियाती कार्रवाइयाँ की जा रही हैं, उनके सम्बन्धमें क्या मैं यह सुझाव दे सकता हूँ कि सफाईके नियमों, चूनेकी पोताई, कीटाणुओंके नाश आदिके बारेमें एक पुस्तिका निकालना बहुत उपयोगी हो सकता है? कुछ दिन पहले निगम (कारपोरेशन) की एक विज्ञप्ति प्रकाशित हुई थी। यह पुस्तिका उसका एक अच्छा पूरक होगी। अगर यह सुझाव स्वीकार कर लिया जाये तो मुझे उपनिवेशमें बोली जानेवाली भारतीय भाषाओंमें उस पुस्तिकाका अनुवाद करा देनेमें खुशी होगी। अगर जरूरत हो तो मैं उसका मुफ्त वितरण भी करा दूँगा। निगमको सिर्फ छपाई और डाकका खर्च देना होगा।

[अंग्रेजीसे]
*नेटाल मर्क्युरी*, ८–३–१८९९

## ३१. रोडेशियाके भारतीय व्यापारी

१४, मर्क्युरी लेन
डर्बन
मार्च ११, १८९९

सेवामें
सम्पादक
*टाइम्स ऑफ़ इंडिया*
[बम्बई]

महोदय,

मैं इसके साथ एक पत्रकी नकल भेज रहा हूँ। यह पत्र रोडेशियाके उमतली नामक स्थानके भारतीय व्यापारियोंके पाससे नेटालके भारतीय समाजके नाम प्राप्त हुआ है[1]। पत्र स्वयं स्पष्ट है। ऐसा मालूम होता है कि अधिकारियोंने भारतीयोंको सहायता दी है। परन्तु मेरे नम्र विचारसे, समस्याको हल करनेके लिए अत्याचारियोंको पर्याप्त दण्ड देना ही चाहिए। साथ ही औपनिवेशिक कार्यालयको इस आशयकी जोरदार घोषणा भी करनी चाहिए कि दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश उपनिवेशी भारतीय प्रवासियोंकी स्वतंत्रतामें हस्तक्षेप करेंगे तो उन्हें क्षमा नहीं किया जायेगा। औपनिवेशिक कार्यालय इतना न करे तो काम नहीं चलेगा। पत्रसे यह दीख पड़ेगा कि हिंसा-कार्योंमें प्रमुख यूरोपीयों और शान्ति कायम करनेके लिए नियुक्त मजिस्ट्रेटोंने[2]

१. देखिए आगेका सहपत्र।
२. जस्टिसेज़ आफ द पीस, 'जे० पी०'

भी भाग लिया है। डर्बनमें १८९७ में भीड़ने जो कानून-विरोधी कृत्य किये थे[1], उनकी ओर श्री चेम्बरलेनने ध्यान नहीं दिया था। उससे, मुझे अन्देशा है, गोरे बाशिन्दोंका यह खयाल हो गया कि वे भारतीयोंके साथ जैसा चाहें वैसा बरताव कर सकते हैं। डर्बनके मामलेमें भीड़को दण्ड देनेकी कोई जरूरत नहीं समझी गई थी। मगर यहाँ रहनेवाले हम लोग महसूस करते हैं कि यदि श्री चेम्बरलेन सारी घटनापर नापसन्दगी जाहिर करते हुए एक पत्र भेज देते तो उसका बहुत असर होता।

आपका विश्वासपात्र,
मो० क० गांधी

## सहपत्र

उमतली, रोडेशिया
जनवरी २२, १८९९

महाशयो,

हम निम्नलिखित परिस्थितियोंकी ओर आपका ध्यान आकर्षित करते हैं:

हम बेरा और मेसीक्वीस — दोनों स्थानोंमें व्यापार करते आ रहे हैं। गत मार्चमें हमने रोडेशियाके उमतली नामक स्थानमें व्यापार करनेके लिए परवानेकी अर्जी दी थी। वह अप्रैलमें मंजूर हो गई थी। इस पर हमने वहाँ एक वस्तु-भण्डार (स्टोर) का निर्माण किया। परन्तु हमने देखा कि यूरोपीय व्यापारी बड़े क्षुब्ध हो उठे हैं। उन्होंने एक सभा करके ब्रिटिश भारतीय प्रजाको परवाने देनेका विरोध किया, क्योंकि वे भारतीयोंको अवांछनीय समझते थे। परन्तु उच्चायुक्त (हाई कमिश्नर) ने उनका समर्थन नहीं किया।

हमने पिछले ७ दिसम्बरतक शान्तिपूर्वक व्यापार किया था, जब कि हमारे एक देशवासी (बैराके एक व्यापारी) ने भी परवानेकी अर्जी दी। उसे परवाना मिल गया। इससे उमतलीके व्यापारी फिर उत्तेजित हो उठे। उन्होंने इस विषयको व्यापार-संघ (चेम्बर ऑफ कॉमर्स) के सामने पेश किया और उससे अनुरोध किया कि वह इस विषयको उठाये और एशियाइयोंको परवाने देनेका विरोध करे। उनकी बैठकोंकी कार्रवाइयाँ स्थानिक पत्रोंमें प्रकाशित हुईं और उनका जनताके मनपर बड़ा गम्भीर असर पड़ा। फिर भी सरकारने आन्दोलनकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया। बादमें, ४ जनवरी १८९९ की रातको लगभग ९ बजे शहरके यूरोपीय व्यापारियोंने शान्ति स्थापित करनेके लिए नियुक्त मजिस्ट्रेटों और स्थानीय स्वयंसेवक सघके अफसरोंके नेतृत्वमें कोई डेढ़ सौ लोगोंकी भीड़ बनाकर वस्तु-भण्डारपर हमला कर दिया। वे वस्तु-भण्डारको तोड़-फोड़कर उसमें घुस गये। उनका रुख कितना हिंसात्मक और उनकी कार्रवाई कितनी गैरकानूनी थी, यह देखकर हम डर गये। परन्तु भाग्यवश हमारे सामान और आदमियोंके पोर्तुगीज सीमामें हटा दिये जानेके पहले ही इन्स्पेक्टर बर्न्स कुछ सिपाहियोंके साथ वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने आततायियोंको चेतावनी दी कि उनका काम बिलकुल गैरकानूनी है, और उनके गिरोहदारोंपर मुकदमा चलाया जायेगा।

पुलिसवाले सिर्फ दस थे, इसलिए आक्रमणकारियोंने उनका करीब-करीब सामना ही किया। इन्स्पेक्टरको हिंसाका भय हुआ, जिससे सम्पत्तिकी हानि जरूर ही होती, और शायद प्राणोंकी भी। इसलिए उसने सुझाव दिया कि हमें वहाँसे हटनेके लिए तैयारीका समय दिया जाये। बहुत वाद-विवादके बाद यह मान लिया गया। भीड़के बरखास्त होते ही इन्स्पेक्टरने हमें सूचित किया कि हमें जानेके बारेमें सोचना भी नहीं है; उसने तो

१. देखिए जिल्द २, पृ० २४६। जनवरी १३ को डर्बनमें जहाजसे उतरते समय गांधीजीपर आक्रमण किया गया था। श्री वेडरबर्न द्वारा फरवरी ५, १८९७को संसद्में इस बारेमें प्रश्न पूछा जानेपर उपनिवेश-मन्त्रीने उत्तर दिया कि "लोग बिना किसी विरोधके जहाजसे उतर थे। केवल एक व्यक्तिपर आक्रमण किया गया था लेकिन उसे कोई गहरी चोट नहीं आई।" (वेडरबर्नके लिए देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९६)।

समय देनेकी बात सिर्फ इसलिए कही थी कि वह और कुमक बुला सके। बादमें पुराने उमतली शहरसे तमाम उपलब्ध घुड़सवार पुलिसको बुलाकर हमारे वस्तु-भण्डारपर पहरा लगा दिया गया। उसी दिन लगभग आधी रातके समय करीब पन्द्रह अंग्रेजोंने इस शहरके अल्लारखिया हुसेनके वस्तु-भण्डारपर आक्रमण किया। उन्होंने दरवाजे तोड़ डाले, सामान जहाँ-तहाँ फेंक दिया और दूकानके कर्मचारियों तथा पुलिसवालोंको मारा। कर्मचारी तीन थे। वे वस्तु-भण्डार और सामानको चोरोंकी दयापर छोड़कर भाग गये। इन्स्पेक्टर बर्चेने, सरकारके प्रतिनिधिकी हैसियतसे, जितना संरक्षण उनसे हो सकता था, हमें दिया।

जनवरी ५ की सुबह व्यापार-मण्डलके सदस्य हमारे वस्तु-भण्डारमें आये और उन्होंने हमें ताकीद की कि हमारे सामान समेटकर चले जानेका समय खतम हो चुका है। हमने जवाब दिया कि स्थिति अब बदल गई है। हमसे चले जानेका वादा हिंसाके बलपर कराया गया था और हम उससे बँधे हुए नहीं हैं। हमने यह भी कहा कि भीड़से हमारी रक्षा करनेके लिए शहरमें काफी पुलिस मौजूद है। इसपर व्यापार-मण्डलके सदस्य नाराज होकर चले गये। हमलावरोंके नेताओंसे हमारे प्रति तीन महीनेतक शान्ति कायम रखनेके लिए सौ-सौ और दो-दो सौ पौंडकी जमानतें ले ली गई।

उनमें से दोको मुकदमेके लिए उच्च न्यायालयके सुपुर्द कर दिया गया। हमने अपना व्यापार फिर साधारण रूपसे शुरू कर दिया है। परन्तु रोडेशियाई व्यापारी अब भारतीय व्यापारियोंको रोडेशियामें व्यापार करने देनेके प्रश्नपर झगड़ रहे हैं।

उनका पहला कदम इस बातको रोडेशियाकी विधान-परिषदके सामने लाना होगा। वे परिषदसे प्रार्थना करेंगे कि "अवांछनीय" लोगोंको (वे यह शब्द हमारे लिए काममें लाते हैं) व्यापारके परवाने देनेसे इनकार करनेका अधिकार स्थानिक संस्थाओंको दे दिया जाये। न्यूकैसिल (नेटाल) के परवाना देनेवाले निकाय (बोर्ड) का एक भारतीयको परवाना न देनेका जो फैसला सम्राज्ञीकी न्याय-परिषद (प्रीवी कौंसिल) ने हालहीमें बहाल रखा है, उससे इन लोगोंको अपनी इस कार्य-प्रणालीमें मदद मिली है। हमें मालूम हुआ है कि आपकी कांग्रेसने इस मामलेको हाथमें लिया है।

अन्तमें हम आपसे निवेदन करते हैं कि जैसे यूरोपीय लोग मिलकर हमें इस प्रदेशसे निकाल देनेके लिए आकाश-पाताल एक कर रहे हैं, वैसेही हम भी अपने ब्रिटिश प्रजा-सुलभ अधिकारोंके लिए लड़ना चाहते हैं। आपसे हमारा सादर निवेदन है कि आप इस विषयपर गम्भीरताके साथ विचार करें और हमारा — सचमुच तो आम ब्रिटिश भारतीय प्रजाजनोंका — मामला हाथमें लें।

दक्षिण आफ्रिकाके कुछ हिस्सोंमें, जो पोर्तुगीज, फ्रांसीसी, जर्मन और डच लोगोंके शासनाधीन हैं, हमें स्वतन्त्रतापूर्वक व्यापार करने दिया जाता है। फिर, यह देखते हुए कि ब्रिटिश झण्डेके नीचे तो हम संरक्षणके खास हकदार हैं, एक ब्रिटिश प्रदेशमें हमारा विरोध क्यों होना चाहिए, हम समझ नहीं सकते।

हमें यह भी महसूस होता है कि ब्रिटेनकी भारत-सम्बन्धी नीति ब्रिटिश भारतीय प्रजाजनोंपर अत्याचारके बिलकुल खिलाफ है।

इस बारेमें हमने अपने ब्रिटिश एजेंटोंको, और भारतके वाइसराय लॉर्ड कर्ज़नको भी, लिखा है। इस विषयको ब्रिटिश संसदके सामने पेश करानेका हमारा निश्चय है। आपसे भी हम प्रार्थना करते हैं कि इस महान प्रश्नपर वैध उपायोंसे संघर्ष करने और इसका निबटारा करानेमें आप हमारी मदद करें।

वी० आर० नायक
(नाथूवाले और कं. के वास्ते)
अल्लारखिया हुसेन

[अंग्रेजीसे]

*टाइम्स आफ़ इंडिया* (साप्ताहिक संस्करण), १५-४-१८९९।

# ३२. दक्षिण आफ्रिकामें प्लेगका आतंक[1]

डर्बन
मार्च २०, १८९९

दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंकी मुसीबतोंका प्याला अब तक भरा नही दिखलाई पडता; और गिल्टीवाला प्लेग उसे लबालब भर देनेके आसार दिखा रहा है। एक अफवाह फैल गई थी कि लोरेनज़ो मार्कसमें एक व्यक्तिको प्लेग हो गया है। यह अब झूठी साबित हो गई है; परन्तु इससे दक्षिण आफ्रिका भर बेचैन हो उठा था और इस महाखण्डकी विभिन्न सरकारोंने सख्त उपाय करने शुरू कर दिये थे, जो मुख्यत: भारतीयोंपर लागू होते थे। जब यह सब हो ही रहा था, यह अफवाह फैली कि एक भारतीय लोरेनज़ो मार्कसमें कुछ समयतक रहनेके बाद ट्रान्सवालके मिडेलबर्ग नामक स्थानमें चला गया था; वह गिल्टीवाले प्लेगसे मर गया है। इसपर तुरन्त यह मान लिया गया कि बीमारीके पककर प्रकट होनेकी कोई निश्चित अवधि बताई नही जा सकती। साथ ही, भारतीयोंके आगमनका पूर्ण निषेध करनेके सुझाव भी दिये गये। ट्रान्सवाल-सरकारने एक घोषणा निकालकर अपने देशमें पड़ोसी राज्योंसे भी भारतीयोंके प्रवेशका निषेध कर दिया। ऐसा करते हुए इस बातकी भी परवाह नही की गई कि प्रवेशेच्छुक भारतीय इनमें से किसी राज्यका बहुत पुराना निवासी है, या भारतसे नया-नया आनेवाला कोई व्यक्ति है। हाँ, अगर उसके पास राज्य-सचिवसे प्राप्त परवानेका जोर हो तो बात दूसरी। और, यह परवाना तो, यहाँ कह दिया जाये, हर-किसी भारतीयको आसानीसे मिलने-वाली चीज़ है नही। भारतीयोंका देशके अन्दर यात्रा करना भी करीब-करीब स्थगित कर दिया गया। यह लिखते समय समाचारपत्रोंमें एक तार दिखलाई पड़ा है। उसमें कहा गया है कि उपर्युक्त घोषणामें इस हदतक संशोधन कर दिया गया है कि भारतीयोंके सीमा-स्थित अफ़सरको यह सन्तोष दिला देनेपर कि वे हालहीमें मारिशस, मादागास्कर या भारतके किसी छूतग्रस्त जिलेसे नहीं आये हैं, बिना परवानेके देशमें प्रवेश करने दिया जायेगा।

जिन डाक्टरोंने उपर्युक्त रोगीकी मृत्यूपरान्त परीक्षा की थी उन्होंने कहा था कि बीमारी गिल्टीवाले प्लेगकी नही थी। तथापि, जो-कुछ शरारत होनी थी वह तो हो ही चुकी, और सारे दक्षिण आफ्रिकामें बेतहाशा खौफ़ फैला हुआ है। लोरेनज़ो मार्कस मलेरियासे भरा हुआ जिला है, अपनी गन्दगीके लिए मशहूर है और वहाँ सफाई करनेवालोंका कोई प्रबन्ध नहीं है। फिर भी, वहाँसे आये छोटे-मोटे तार-समाचारोंसे ज्ञात होता है, वहाँ प्लेग-सम्बन्धी नियम अत्यन्त कठोर और युक्तिहीन ही नही, बल्कि उत्पीड़क और अव्यावहारिक हैं। ट्रान्सवालमें भारतीयोंके कारोबारको गम्भीर क्षति पहुँच रही है। अनेक अभागे फेरीवाले अपना माल खरीदनेके लिए नेटाल आये थे। अब उनमें से अधिकतर बाहर ही रोक दिये गये हैं। वे अपना माल और कर्ज छोड़ कर आये हैं। जैसी कि कल्पना की जा सकती है, उनमें परवाने प्राप्त करनेका सामर्थ्य नही है। न वे भारी कठिनाईके बिना ट्रान्सवालके कर्मचारियोंकी जाँच-पड़तालमें ही खरे उतर सकते है। कहा जाता है — यानी फेरीवाले खुद शिकायत करते है — कि ट्रान्सवालके

१. गाधीजीने दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंके साथ किये जानेवाले व्यवहारपर बम्बईके *टाइम्स आफ् इंडिया*में एक विशेष लेख-माला लिखी थी। यह लेख उसी मालाका अंश है। दूसरे लेखोंकी तारीखें है — मई १७, जुलाई १२, अक्टूबर २७, नवम्बर १८, १८९९ और मार्च १४, १९०० के बाद।

अन्दर ही उन्हें अपने मालकी फेरी लगाने नहीं दी जाती। इसकी प्रतिक्रिया भारतीय पेढ़ियों-पर होती है, जो इन फेरीवालोंपर निर्भर करती है।

केप-सरकार, ऐसा दीखता है, मतवाली नहीं हुई। परन्तु वहाँ सरकारसे यह माँग करनेका आन्दोलन चल रहा है कि केप-प्रदेशके किसी भी बन्दरगाहमें किसी भी भारतीयका उतरना निषिद्ध कर दिया जाये। कुछ दिन पहले पोर्ट एलिजाबेथमें एक सभा की गई थी। उसमें कम-ज्यादा हिंसात्मक ढंगसे भाषण किये गये थे। कुछ भाषणकर्ताओंने तो यहाँतक कह डाला कि अगर सरकार पोर्ट एलिजाबेथकी जनताकी इच्छा पूरी नहीं करेगी तो उसे कानून अपने हाथोंमें ले लेना होगा। नेटाल-सरकार, स्पष्टतः, उत्सुक है कि वह इस झूठे आतंकके चपेटेमें न आये। परन्तु, डर है कि वह बहुत दिनोंतक अपना धैर्य कायम नहीं रख सकेगी।

नेटालमें दो परस्पर-विरोधी हित काम कर रहे हैं। एक ओर तो खेतों और बागोंके मालिक हैं जो, सारे उपनिवेशमें पूरी तरह भारतीय गिरमिटिया मजदूरोंपर निर्भर करते हैं और ऐसे मजदूरोंकी सतत उपलब्धिके बिना अपना काम नहीं चला सकते। दूसरी ओर, डर्बन तथा मैरित्सबर्ग जैसे कस्बों और नगरोंके लोग हैं, जो ऐसे किन्हीं स्वार्थोंकी जोखिम न होनेके कारण, भारतीयोंके आगमनका पूर्ण निषेध करा देनेमें खुश होंगे — चाहे वे भारतीय गिरमिटिया हों, चाहे अन्य। इस बातपर ध्यान देना बड़ा दिलचस्प है कि सारे विवादमें दक्षिण आफ्रिकाके लोगोंने एक बार भी भारतीय हितोंपर विचार करनेका कष्ट नहीं किया। मालूम होता है कि गुपचुप यह स्वीकार कर लिया गया है कि जो भारतीय इस समय दक्षिण आफ्रिकामें निवास कर रहे हैं उनका जरा भी खयाल करना जरूरी नहीं है। मालूम होता है, उनको यह सूझा ही नहीं कि उन लोगोंको, जिनमें से कुछ तो बहुत खुशहाल और इज्जतदार हैं, भारतसे अपनी पत्नियों और बच्चोंको या नौकरोंको लाना हो सकता है। भारतके लोगोंको जानकर आश्चर्य होगा कि, एक सुझाव गम्भीरताके साथ दिया गया है कि, जब उपनिवेशमें चावलोंका वर्तमान संग्रह खत्म हो जाये तब भारतीयोंको मक्काके आहारपर रहनेके लिए बाध्य किया जाये। और, जहाँतक भारतसे लाई गई अन्य खाद्य-सामग्री और वस्त्रोंका सम्बन्ध है, सो अलबत्ता सिर्फ एक तफसीलकी बात है। मैरित्सबर्ग नगर-परिषदने अपने क्षेत्रके भारतीय दूकानदारोंके नाम एक परिपत्र जारी किया है। उसके द्वारा उन्हें सूचना दी गई है कि उन्हें अपना माल कम करना शुरू कर देना चाहिए, क्योंकि प्लेग नजदीक होनेके कारण उनमें से हरएकको पृथक् बस्तियोंमें चले जानेका आदेश दिया जा सकता है। जहाज-कम्पनियाँ — सबसे अच्छी कम्पनियाँ भी — भारतीय यात्रियोंको दक्षिण आफ्रिकाके किसी भी बन्दरगाहको ले जानेसे बिलकुल इनकार करती हैं। अनेक भारतीय व्यापारियोंके कुटुम्बी या साझेदार लोरेन्जो मार्कसमें हैं, इसलिए उन्हें भारी असुविधा तथा भयानक चिन्ताकी स्थितिसे गुजरना पड़ रहा है। फिर भी उन लोगोंको नेटाल आने नहीं दिया जाता — इसलिए नहीं कि, लोरेन्जो मार्कसको छूत-ग्रस्त बन्दरगाह घोषित कर दिया गया है, या वहाँ किसी भी हदतक प्लेग फैला हुआ है। नेटालने अब अपने प्रयोजनकी सिद्धिके लिए अप्रत्यक्ष और आपत्तिजनक तरीकोंका अवलम्बन किया है। उसके एशियाई-विरोधी कानूनसे यह स्पष्ट है। उसमें भोले व्यक्तियोंको भारतीयोंका उल्लेख कहीं ढूँढ़े भी न मिलेगा। स्पष्टतः वही तरीका प्लेगके सम्बन्धमें भी अख्तियार किया गया है। किसी भी जहाजको, जो किसी भारतीयको लेकर आता है, स्वास्थ्य-अधिकारी, सरकारसे पूछे बिना, सवारियाँ उतारनेकी इजाजत नहीं देता। पूछ-ताछकी इस प्रक्रिया-मात्रसे ही ऐसे जहाजोंका रुका रहना आवश्यक हो जाता है, भले ही, यह याद रखना जरूरी है कि, जहाजमें कोई बीमारी न हो और जहाज किसी बिलकुल नीरोग बन्दरगाहसे ही

क्यों न आया हो। इसलिए स्वाभाविक है (अर्थात्, दक्षिण आफ्रिकामें; क्योंकि ख़याल तो यह था कि सन्तापजनक सूतकके भयसे पहले दर्जेकी जहाज़-कम्पनियाँ अपने कर्त्तव्यका, यानी यात्रियोंको एक स्थानसे दूसरे स्थान ले जानेका, त्याग नहीं करेंगी) कि जहाज़-कम्पनियाँ किन्हीं भी भारतीय यात्रियोंको लेनेसे इनकार करती है। सरकारने फिलहाल गिरमिटिया भारतीयोंको लाना स्थगित कर दिया है। इसके अपवाद-रूप सिर्फ वे लोग है जो कलकत्तेमें रवाना होनेके लिए पड़े हैं।

मानो यह सब काफी नहीं था, इसलिए मैरित्सवर्गके लोगोंने कुछ दिन पूर्व वहाँके नगर-भवनमें एक सभा की। उसमें नगरके स्वास्थ्य-अधिकारीने एक सख्त प्रस्तावके समर्थनमें बड़ी उग्र गलेबाजी की। भारतसे चावल तथा अन्य खाद्य-पदार्थोंके आयातको बिलकुल बन्द करानेके एक आन्दोलनके कारण, सरकारने भारत-सरकारसे पूछा था कि क्या चावलको रोगकी छूत पकड़ने-वाली वस्तु माना जाता है? भारत-सरकारने नकारात्मक उत्तर दे दिया है। उक्त अधिकारी डॉ० ऐलनने आपकी सरकारपर यह अभियोग लगाया है:

> मैं मानता हूँ कि भारत-सरकारको जो तार भेजा गया था और उसका जो जवाब आया तथा प्रकाशित हुआ है, उसे सभाके सब लोगोंने पढ़ा ही होगा। मैं आपसे पूछना चाहूँगा, क्या यह सम्भव है कि अगर महान्यायवादीके पास किसी-एक सरकारी जेलमें कोई कैदी हो, जो किसी गुनाहके अभियोगमें सजा भोग रहा हो, तो महान्यायवादी उसे तार देंगे और पूछेंगे: "तुम अपराधी हो या नहीं?" मेरा ख़याल है, आप लोगोंको यह कहनेमें कोई हिचक न होगी कि कारागारका वह भलामानुस जवाबमें क्या तार देगा। मैं तो कहूँगा कि उत्तर जोरदार "नहीं" होगा।... महान्यायवादी खुदके व्यवसायपर वह सिद्धान्त लागू नहीं करेंगे।... इस महा प्रश्न पर उन्होंने उसे लागू करने और उसे इस बातके प्रमाणके तौरपर पेश करनेका साहस किया है कि हम खतरेसे मुक्त हैं। यह प्रमाण उतना ही निकम्मा है, जितना कि कैदीके मामलेमें।

उपर्युक्त कथनसे अनेक खेदजनक विचार उठते हैं। यह तो शंकाके परे है कि इस सारे आन्दोलन, इस सारे आतंकका मूल गिल्टीवाले प्लेगका सर्वथा प्रामाणिक भय नहीं, बल्कि भारतीय-विरोधी पूर्वग्रह है, जिसका मुख्य कारण व्यापार-सम्बन्धी ईर्ष्या है। मैरित्सवर्गकी प्लेग-सम्बन्धी सभाकी कार्रवाईमें, और खास तौरसे डॉ० ऐलनके भाषणमें, यही भावना व्याप्त है। डॉ० ऐलनके मूल्यांकनके अनुसार, जो-कुछ भी भारतीय है वह सब बुरा है। उन्होंने उन लोगोंपर भ्रष्टाचारी इरादोंका आरोप करनेमें कोई संकोच नहीं किया, जिन्हें वे भारत-सरकारके "निम्न कर्मचारी" कहते हैं। उन्होंने कहा:

> परन्तु बम्बईमें एक बड़ी विलक्षण घटना घटी है, जिसे याद रखना आपके लिए महत्त्वका है। और वह यह है कि, संग्रहणी और अतिसारसे होनेवाली मृत्युओंकी संख्या साधारण संख्यासे ५०,००० ज्यादा हो गई है। बम्बईकी सरकार खूब जानती है कि ये मृत्युएँ, या इनमें से ज्यादातर, प्लेगसे हुई हैं; और प्रभावशाली भारतीयोंने अपने कुटुम्बोंमें हुई मृत्युओंको देशी चिकित्सकों द्वारा दूसरे शीर्षकोंके अन्तर्गत दर्ज करा दिया है, ताकि वे सफाई-अफसरोंके मुआयनेसे बच जायें। इस प्रकारकी स्थिति सारे भारतमें व्याप्त है।... आयोग (कमिशन) ने साफ साबित कर दिया है कि यही बात कलकत्तेमें भी हो रही है।... वह सरकारको ज्ञात था, परन्तु, मुख्यतः इसलिए कि उसे दंगेकी आशंका थी, उसने वह काम नहीं

**किया। . . . भारत-सरकार उस प्लेगके मामलेमें अपने छोटे-छोटे अफ़सरोंपर बिलकुल ही भरोसा नहीं कर सकती। भारत-सरकारका साराका-सारा निम्न-अधिकारी-मण्डल इस विषयमें धोखेबाजीसे भरा हुआ है कि प्लेग कहाँ है।**

अगर कोई भारतीय जहाज़ हो तो उसमें कोई गुप्त बात दिखलाई देनी ही चाहिए! दूसरे सब स्थानोंके विपरीत, दक्षिण आफ्रिकामें भारतीय होना ही रोगोंकी छूतका कारण माना जाता है। भारतीय और उनका माल-असबाब ही छूतको ला सकता है। दूसरे यात्रियोंके बारेमें कोई आपत्ति नहीं की जाती, भले ही वे किन्हीं छूतके जिलोंसे क्यों न आये हों। मादागास्कर और मारिशसको छूत-ग्रस्त बन्दरगाह घोषित कर रखा गया है। फिर भी, जहाज़-कम्पनियाँ वहाँ यूरोपीय यात्रियोंको तो ला सकती हैं, मगर, क्या मजाल कि वे भारतीयोंको ले आयें। यह तो मंजूर करना ही होगा कि नेटाल तथा केपकी सरकारें आतंकके समयमें अन्याय न होने देनेके लिए अधिकसे अधिक उत्सुक हैं। परन्तु वे उन मतदाताओंसे जिनके, अपने पदोंके लिए, वर्तमान सदस्य ऋणी हैं, इतनी डरती हैं कि भारतीयोंको अनजाने, फिर भी निश्चित रूपसे, बहुत-सी अनावश्यक असुविधाएँ पहुँचाई जाती रहती हैं। ईश्वर हमें प्लेगके वास्तविक आक्रमणसे बचाये। अगर वह आ ही गया तो भारतीय ऐसी स्थितिमें पड़ जायेंगे जिसकी भीषणताकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। ऐसे ही मौकोंपर श्री चेम्बरलेनकी यह शोचनीय कर्त्तव्य-च्युति खलती है कि १८९७ के प्रारम्भमें डर्बनकी भीड़की गैरकानूनी कार्रवाइयोंका उन्होंने कोई खयाल नहीं किया। उस समय बारह दिनोंके लिए सरकारने अपने कर्त्तव्य व्यावहारिक रूपमें भीड़के हाथों सौंप दिये थे। इस जैसे महाखण्डमें, जहाँ विभिन्न प्रजातियोंके विविध और परस्पर-विरोधी हित सन्निहित हैं, ब्रिटिश-सरकारका प्रबल और शक्तिशाली प्रभाव सदैव आवश्यक है। एक बार विविध प्रजातियोंकी आबादीके किसी अंग-विशेषको छूट दी नहीं कि, कोई जान ही नहीं सकता कि कब उपद्रव उभड़ पड़ेगा। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, पोर्ट एलिज़ाबेथके लोगोंने पहलेसे ही धमकी दे रखी है कि अगर सरकारने अपनी इच्छाको उनकी इच्छाके अनुसार मोड़नेसे इनकार किया तो वे कानूनको अपने हाथोंमें ले लेंगे। डर्बनके समाचारपत्रोंमें इसी नीतिकी हिमायत करनेवाले गुमनाम पत्र प्रकाशित हो रहे हैं; और प्लेगके आतंकके, जो अभी मिटा नहीं है, इतिहासके विहगावलोकनकी परिसमाप्ति *नेटाल मर्क्युरी*में प्रकाशित पत्र-व्यवहारके निम्नलिखित उद्धरणसे बखूबी हो सकती है। यह उद्धरण दुनियाके इस हिस्सेमें जन-साधारणकी भावनाओंका खासा-अच्छा नमूना है:

> **यदि सरकार डरपोक और कार्रवाई करनेमें ढुलमुल है तो जनता खुद अपना काम कर ले और फिरसे सामूहिक रूपमें जहाज़-घाटपर जाये और इस बार तमाम एशियाइयोंको उतरनेसे रोकनेके लिए वहाँ पड़ाव डाल दे। हम उन्हें यहाँ किसी भी कीमतपर नहीं चाहते। आपत्तिजनक भारतीयोंका प्रवास यहाँ सदा-सर्वदाके लिए बन्द हो जाने दीजिए; और, जो लोग यहाँ मौजूद हैं उनका रहना दूभर कर देनेके लिए अगर कोई जेहाद छेड़ी जाये तो मैं खुद उसमें शामिल हूँगा।**

[अंग्रेजीसे]

*टाइम्स ऑफ़ इंडिया* (साप्ताहिक संस्करण), २२-४-१८९९।

१. देखिए खण्ड २, पृष्ठ १९७-३२०।

## ३३. पत्र : उपनिवेश-सचिवको

१४, मर्क्युरी लेन
डर्बन
मार्च २२, १८९९

माननीय उपनिवेश-सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

महोदय,

भारतीय समाजको यह देखकर संतोष हुआ है कि प्रवासी प्रतिबन्धक-अधिनियमके अन्तर्गत प्रस्थान-सम्बन्धी परवानोंपर यात्रियोंसे वसूल किया जानेवाला १ पौंडका शुल्क उठा दिया गया है।

मैं बताना चाहता हूँ कि विक्रेता-परवाना अधिनियम-सम्बन्धी प्रार्थनापत्र[1]में इस विषयके जिस प्रार्थनापत्रका उल्लेख किया गया है, उसका मसविदा बनानेके पहले, मुझसे कहा गया था कि, मैं उपनिवेशके विद्वान वकीलोंकी राय एकत्र कर लूं और यदि राय अनुकूल मिले तो उक्त नियमको उठानेका अनुरोध करनेकी दृष्टिसे सरकारकी सेवामें उपस्थित होऊँ। मैं यह भी बताना चाहता हूँ कि अबतक जो रायें मिली हैं वे इस मतके पक्षमें हैं कि उक्त नियम अवैध था।

आपसे मेरा निवेदन है कि इस पत्रकी विषय-वस्तु परम माननीय उपनिवेश-मन्त्रीकी दृष्टिमें ला दें, ताकि उन्हें पता चल जाये कि सरकारने कृपापूर्वक एक पौंडी शुल्कके सम्बन्धमें शिकायतका कारण दूर कर दिया है।

आपका अत्यन्त आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

मुख्य उपनिवेश-मन्त्रीके नाम नेटालके गवर्नरके २५ मार्च, १८९९के खरीता नम्बर २९ का सहपत्र नम्बर १।

१. देखिए पृष्ठ २६।

# ३४. प्रार्थनापत्र : श्री चेम्बरलेनको

प्रिटोरिया
मई १६, १८९९[1]

सेवामें
परम माननीय जोजेफ़ चेम्बरलेन
सम्राज्ञीके मुख्य उपनिवेश-मन्त्री

दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यवासी ब्रिटिश भारतीयोंके नीचे हस्ताक्षर करनेवाले प्रतिनिधियोंका प्रार्थनापत्र

नम्र निवेदन है कि,

प्रार्थियोंको खेद है कि दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यमें ब्रिटिश भारतीय जिस दुर्भाग्यमय और परेशानीकी स्थितिमें फँस गये हैं उसके कारण उन्हें सम्राज्ञी-सरकारको फिर कष्ट देना पड़ रहा है।

कुछ समय हुआ कि सरकार और सर विलियम वेडरबर्नमें हुए पत्र-व्यवहार[2]को देखकर आपके प्रार्थियोंको आशा हो गई थी कि ट्रान्सवालमें ब्रिटिश भारतीयोंके कष्टोंका प्रायः अन्त हो जायेगा। परन्तु उसके तुरन्त पश्चात् दक्षिण आफ्रिकी गणराज्य-सरकारकी विज्ञप्तिसे इस गणराज्यके निवासी ब्रिटिश भारतीयोंका भ्रम दूर हो गया। यह विज्ञप्ति २६ अप्रैल १८९९के *स्टाट्सकूरेंट* (सरकारी गज़ट) में प्रकाशित हुई है (उसके अनुवादकी एक प्रति इस प्रार्थनापत्रके साथ संलग्न है)। उसके कारण ही फिरसे प्रार्थनापत्र देनेकी आवश्यकता पड़ी है। उससे प्रकट है कि इस बार गणराज्यकी सरकारने १८८६ में संशोधित १८८५ के कानून ३ को लागू करनेका इरादा पक्का कर लिया है। अध्यक्षके लोकसभा (फोक्सराट) के उद्घाटन-भाषणमें भी इसकी चर्चा की गई है।

आपके प्रार्थी आपका ध्यान इस तथ्यकी ओर आकृष्ट करनेकी अनुमति चाहते हैं कि जबसे 'तैयब हाजी खान मुहम्मद बनाम एफ० डब्ल्यू० राइट्ज एन० ओ०' के मुकदमे[3]का फैसला हुआ है तबसे इस गणराज्यमें भारतीय लोगोंको चैन नहीं है। भारतीयोंको सरसरी कार्रवाई द्वारा बस्तियोंमें हटा देनेके सम्बन्धमें कई विज्ञप्तियाँ निकल चुकी हैं। स्वभावतः इससे उनका व्यापार अस्त-व्यस्त हो गया है और उनमें बहुत बेचैनी फैल गई है।

१. यह तारीख कलोनियल ऑफ़िस रेकर्ड्सके अनुसार दी गई है। प्रार्थना-पत्रकी छपी प्रतिमें तारीखके स्थानपर केवल 'मई १८९९' दिया गया है। मई १७, १८९९ को *टाइम्स ऑफ़ इंडिया*को भेजे गये समाचारसे स्पष्ट है कि यह उस तारीखके पहले तैयार हुआ था। परन्तु वेडरबर्नके नाम मई २७, १८९९ के पत्रसे ज्ञात होता है कि यह प्रार्थना-पत्र, जो प्रिटोरिया-स्थित ब्रिटिश एजेंटके पास भेजा गया था, २७ मई तक उपनिवेश-मन्त्रीको नहीं भेजा गया।

२. यहाँपर वेडरबर्नके जनवरी १३, १८९९ के उस पत्रका हवाला दिया गया है जो कि उन्होंने बस्तियोंके नोटिस तथा चेम्बरलेनके १५ फरवरीके उत्तरके बारेमें लिखा था। चेम्बरलेनके उत्तरमें कहा गया था कि ब्रिटिश उच्चायुक्त अध्यक्ष क्रूगरसे बातचीतके दौरानमें भारतीय व्यापारियोंके अनुकूल कोई समझौता करानेकी कोशिश करेंगे। (*इंडिया*, २४–२–१८९९)। किन्तु इस सम्बन्धमें मिलनरके प्रयत्न सफल नहीं हुए, क्योंकि ब्लूमफॉंटीनमें क्रूगरके साथ हुई उनकी वार्ता मताधिकारके प्रश्नपर टूट गई।

३. देखिए "तार: भारतके वाइसरायको," अगस्त १९, १८९८।

यह प्रश्न आपके प्रार्थियोंके लिए बहुत महत्त्वका है और वे इस दुःखदायी अनिश्चित स्थितिको चलते रहने देनेकी अपेक्षा इसका शीघ्र ही कोई अन्तिम निर्णय हो जानेका स्वागत करेंगे। वे सादर निवेदन करते हैं कि उन्होंने अपने गत प्रार्थनापत्रमें[1] ऊपर निर्दिष्ट मुकदमेमें न्यायालयके जिस बहुमत-निर्णयका प्रश्न उठाया था उसके अतिरिक्त भी जिस कानून और विज्ञप्तिके विषयमें यह प्रार्थनापत्र दिया जा रहा है उनसे ऐसे कई प्रश्न खड़े हो गये है कि उनके कारण सम्राज्ञीकी सरकार द्वारा उनमें कारगर हस्तक्षेप किया जाना उचित होगा।

अपनी पहली विज्ञप्तियोंमें ट्रान्सवाल-सरकार १८८५ के कानून ३ का बारीकीसे अनुसरण नही किया करती थी। इसके विपरीत, अपनी वर्तमान विज्ञप्तिमें उसने उस कानूनका बारीकीसे अनुसरण किया है। विज्ञप्तिकी प्रस्तावनाका प्रथम भाग यह है:

> **चूँकि १८८५ के कानून ३ के अनुच्छेद ३ (घ) ने सरकारको अधिकार दिया है कि वह स्वास्थ्य-रक्षाके प्रयोजनसे, एशियाकी मूल जातियोंमें से किसीके भी व्यक्तियोंको बसनेके लिए, कुछ खास गलियाँ, मुहल्ले और बस्तियाँ बतला सकती हैं; और इन जातियोंमें कुली कहानेवाले लोग अरब, मलायी और तुर्की साम्राज्यके मुस्लिम प्रजाजन भी शामिल हैं।**

सम्राज्ञीकी सरकार इस कानूनको स्वीकृत कर चुकी है। दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यके न्यायालयोंने निवास (हैबिटेशन) शब्दकी व्याख्या यह की है कि उसमें रहनेके स्थानके अतिरिक्त काम-काजका स्थान भी आ जाता है। इसलिए यहाँतक तो आपके प्रार्थियोंको अनिवार्यताके सामने सिर झुकाना पड़ रहा है। परन्तु वे यह बतलानेकी स्वतंत्रता चाहते हैं — जैसा कि उन्होंने पहले भी किया है — कि कानूनने सरकारको यह अधिकार कुछ खास अवस्थाओंमें और कुछ खास व्यक्तियोंके लिए ही दिया है। उसे सिद्ध करना चाहिए, और ऐसा सिद्ध करना चाहिए कि सम्राज्ञीकी सरकारको विश्वास हो जाये कि, जिन लोगोंपर कानूनका प्रभाव पड़ता है उन्हें हटानेके लिए स्वास्थ्य-रक्षाके प्रयोजन सचमुच विद्यमान हैं; उन्हें एकदम बस्तियोंमें हटाते हुए वह उन्हीं, और एकमात्र उन्हीं, प्रयोजनोंसे प्रेरित हो रही है। यह भी निवेदन है कि उसे यह भी सिद्ध करना चाहिए कि कानूनमें निर्दिष्ट व्यक्ति आपके प्रार्थी ही हैं।

आपके प्रार्थियोंका जो प्रार्थनापत्र[2] १८९५ की सरकारी रिपोर्ट (ब्लू बुक) सी० ७९११ के पृ० ३५–४४ पर छपा है उसमें उन्होंने दिखलानेका प्रयत्न किया है कि भारतीयोंको बस्तियोंमें हटानेके लिए सफाईका कोई भी आधार विद्यमान नही है, और वस्तुतः भारतीयोको उनकी तथा-कथित अस्वच्छ आदतोंके कारण नहीं, बल्कि व्यापारिक ईर्ष्याके कारण हटाया जा रहा है। गणराज्यके भारतीय लोगोंपर मैली आदतोंका जो आक्षेप किया गया है उसे मिथ्या सिद्ध करने के लिए आपके प्रार्थियोंने उस समय जो प्रमाण उद्धृत किया था उसे ही पुनः उद्धृत कर देनेके लिए वे क्षमा-याचना नही करते। प्रिटोरियाके डॉ० वीलने, जो बहुतसे भारतीयोंकी चिकित्सा करते हैं, १८९५में कहा था:

> **मैंने उनके शरीरोंको आम तौरसे स्वच्छ और उन लोगोंको गन्दगी तथा लापरवाहीसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंसे मुक्त पाया है। उनके मकान साधारणतः साफ रहते हैं और सफाईका काम वे राजी-खुशीसे करते हैं। वर्गकी दृष्टिसे विचार किया जाये तो मेरा यह मत**

१. देखिए पादटिप्पणी पृष्ठ १४।

२. देखिए खण्ड १, पृष्ठ १८९–२११।

> है कि निम्नतम वर्गके भारतीय निम्नतम वर्गके यूरोपीयोंकी तुलनामें बहुत अच्छे उतरते हैं। अर्थात्, निम्नतम वर्गके भारतीय निम्नतम वर्गके यूरोपीयोंकी अपेक्षा ज्यादा अच्छे ढंगसे, ज्यादा अच्छे मकानोंमें और सफाईकी व्यवस्थाका ज्यादा खयाल करके रहते हैं। . . . मेरे खयालसे, आम तौरपर भारतीयोंके विरुद्ध सफाईके आधारपर आपत्ति करना असम्भव है। शर्त हमेशा यह है कि, सफाई-अधिकारियोंका निरीक्षण भारतीयोंके यहाँ उतना ही सख्त और नियमित हो, जितना कि यूरोपीयोंके यहाँ होता है।

जोहानिसबर्गके डॉ० स्पिकने लिखा था कि "पत्रवाहकोंके निवास-स्थान स्वच्छ और स्वास्थ्यप्रद अवस्थामें हैं और इतने अच्छे हैं कि उनमें चाहे तो कोई यूरोपीय भी रह सकता है।" उसी नगरके डॉ० नामेचरने लिखा था:

> मुझे अपने धंधेके सिलसिलेमें जोहानिसबर्गके उच्चतर भारतीय वर्ग (बम्बईसे आये हुए व्यापारियों आदि) के घरोंमें जानेके मौके अक्सर मिलते हैं। इस आधारपर मैं यह मत देता हूँ कि वे अपनी आदतों और घरेलू जीवनमें अपने समकक्ष यूरोपीयोंके बराबर ही स्वच्छ हैं।

जोहानिसबर्गकी तीससे अधिक यूरोपीय पेढ़ियोंने कहा था:

> उक्त भारतीय व्यापारी, जिनमें से अधिकतर बम्बईसे आये हैं, अपने व्यापारके स्थानों और मकानोंको स्वच्छ और समुचित आरोग्यजनक हालतमें — वास्तवमें, ठीक यूरोपीयोंके बराबर ही अच्छी हालतमें — रखते हैं।

जो बात १८९५ में सत्य थी वह १८९९ में कुछ कम सत्य नहीं हो गई। जहाँतक आपके प्रार्थियोंको पता है, हालके प्लेग-सम्बन्धी आतंकके समय भी, उनके विरुद्ध किसी गम्भीर शिकायतका मौका नहीं आया था। आपके प्रार्थियोंका अभिप्राय यह नहीं कि ट्रान्सवालमें एक भी भारतीय ऐसा नहीं है जिसकी स्वास्थ्यकी दृष्टिसे निगरानी करनेकी आवश्यकता न हो; परन्तु वे, बिना किसी प्रतिवादके भयके, इतना निवेदन अवश्य करते हैं कि उनपर ऐसा कोई आक्षेप नहीं किया जा सकता जिससे कि सभी भारतीयोंको एक साथ बस्तियोंमें हटा देनेका औचित्य प्रतिपादित होता हो। आपके प्रार्थियोंका निवेदन है कि गन्दगीके एक-आध मामलेमें भुगतान सफाईके नियमोंके अनुसार सफलतापूर्वक किया जा सकता है; और यदि इन नियमोंको और भी कठोर बना दिया जाये तो आपके प्रार्थी कोई आपत्ति नहीं कर सकते।

आपके प्रार्थी सदा सादर यह आग्रह करते आये हैं कि यह कानून उच्च वर्गके भारतीयोंपर लागू नहीं होता, और व्यापारी लोग सब उसी वर्गके हैं, और यह सारा आन्दोलन भी वस्तुतः उनके ही विरुद्ध किया जा रहा है। तो क्या सम्राज्ञीकी सरकारसे यह प्रार्थना करनेमें भी कोई ज्यादती है कि दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यकी सरकारको इस कानूनके शब्दोंकी सीमामें ही रहनेको कह दिया जाये? यह कानून "एशियाकी मूल जातियोंपर" लागू होता है, "जिनमें कुली कहानेवालों, अरबों, मलाइयों और तुर्की साम्राज्यके मुस्लिम प्रजाजनोंकी गिनती होती है।" आपके प्रार्थियोंके लिए 'कुली' शब्दका प्रयोग किया जाता है। इसपर प्रार्थी सादर किन्तु दृढ़तापूर्वक विरोध प्रकट करते हैं। वे हर्गिज अरब नहीं हैं, न मलायी या तुर्की साम्राज्यके प्रजाजन ही हैं। उनका दावा है कि वे महामहिम परम कृपालु सम्राज्ञीके राजभक्त, शान्ति-प्रिय और विनम्र प्रजाजन हैं, और व्यापारिक ईर्ष्याके विरुद्ध अपने संघर्षमें उन्हें उन्हींके संरक्षणका भरोसा है, उनका विश्वास है कि यह संरक्षण उनको दिया जायेगा। सम्राज्ञीके शासनकी

हीरक-जयन्ती मनानेके लिए जब उपनिवेशोंके प्रधानमन्त्री लन्दनमें एकत्र हुए थे तब उनके सामने भाषण करते हुए आपने भारतीयोंका जिक्र बहुत प्रशंसापूर्ण शब्दोंमें किया था[1]। अब क्या आपके प्रार्थी यह आशा करें कि उस भाषणमें आपने जो विचार प्रकट किये थे वे दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यके ब्रिटिश भारतीयोंपर भी क्रियात्मक रूपमें लागू किये जायेंगे? ऊपर जिन शब्दोंकी चर्चा हुई है उनसे होनेवाले ब्रिटिश भारतीयोंके अपमानका यदि निवारण कर दिया गया और यदि उनकी स्थितिको १८५७[2] की दयालुतापूर्ण घोषणाके शब्दो और भावनाके अनुसार स्पष्ट कर दिया गया तो दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीय इसे सम्राज्ञीके जन्म-दिनपर किया गया अपना परम सम्मान मानेंगे।

दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यकी सरकारको 'अधिकार है कि वह उन्हें (कुलियों, अरबों आदि को) सफ़ाईके प्रयोजनसे, किन्ही निश्चित गलियों, मुहल्लो और बस्तियोंमें बसनेके लिए कह सकती है,' अर्थात् विभिन्न नगरोंमें ही उसे यह अधिकार नही है कि वह 'जिस स्थानका उपयोग शहरका कूड़ा-करकट इकट्ठा करनेके लिए होता है और जहाँ शहर और बस्तीके बीचके नालेमें झिरझिरकर जानेवाले पानीके सिवा दूसरा पानी है ही नही, उसपर बसी हुई छोटी-सी बस्तीमें लोगोंको ठूँस दे,' जिसका 'अनिवार्य परिणाम यह होगा कि उनके बीच भयानक किस्मके बुखार और दूसरे रोग फैल जायेंगे। इससे उनके प्राण और शहरमें रहनेवाले लोगोंका स्वास्थ्य भी खतरेमें पड जायेगा।' और यदि भारतीय लोगोंको यूरोपीयोंसे पृथक् करना आवश्यक ही हो तो भी यह समझमें नही आता कि उन्हें ऐसे स्थानपर क्यों ढकेला जाये जहाँ वे न तो व्यापार कर सकते हैं, न सफाईकी सुविधाएँ है और न पानी पहुँचनेका प्रबन्ध ही है। आपके प्रार्थी सादर निवेदन करते है कि यदि भारतीयोंको हटानेका कारण सफाईके अतिरिक्त और कुछ नही है तो नगरोंमें ही उनके लिए समान सुविधाओंसे सम्पन्न गलियों और मुहल्लोंका चुनाव अधिक सुगमतासे किया जा सकता है।

अन्तमें, आपके प्रार्थी आपका ध्यान इस तथ्यकी ओर खीचना चाहते है कि भारतीय व्यापारियोको हटानेकी इस प्रस्तावित कार्रवाईके कारण उनके अति मूल्यवान स्वार्थ संकटापन्न हो गये हैं और उनकी भारी हानि हो जायेगी। आपके प्राथियोको पूर्ण आशा है कि यह मामला सम्राज्ञीकी सरकारके हाथोंमें सौप देनेसे उस कठिनाईका कोई निश्चित और सन्तोषजनक हल निकल आयेगा, जिसमें कि वे इस समय फँस गये हैं।

और दया तथा न्यायके इस कार्यके लिए आपके प्रार्थी, अपना कर्त्तव्य समझकर, सदा दुआ करेंगे।

(ह०) तैयब हाजी खान मुहम्मद
और अन्य

१. देखिए खण्ड २, पृष्ठ ३९७।

२. यह या तो छपी प्रतिमें गलत छपा है या मूल प्रतिमें ही गलत लिखा गया है। घोषणा १८५८ में की गई थी।

## परिशिष्ट

### नये विनियम

२६ अप्रैल १८९९ के *स्टाट्सकूरेंट* में प्रकाशित

क्योंकि १८८५ के कानून ३ का अनुच्छेद २ (घ) सरकारको अधिकार देता है कि वह सफाईके निमित्त एशियाकी किसी भी आदिम जातिके व्यक्तियोंके रहनेके लिए किन्हीं खास गलियों, मुहल्लों और बस्तियोंका निर्देश कर सकती है, और इन जातियोंमें कुली कहलानेवाले, अरब, मलायी और तुर्की साम्राज्यके प्रजाजन भी शामिल हैं; क्योंकि 'तैयब हाजी खान मुहम्मद बनाम एफ० डब्ल्यू० राइट्ज़, एन० ओ०' के मुकदमेमें उच्च न्यायालयके निर्णयके अनुसार इन स्थानोंका निर्देश व्यापार और निवास दोनों कामोंके लिए किया जा सकता है; क्योंकि सरकारने ऐसी गलियों, मुहल्लों और बस्तियोंका निर्देश, घोषित तथा आबाद ग्रामों व कस्बोंमें या उनके पास करना उचित समझा है और उनकी पैमाइश करवाकर उन्हें ठीक करवा दिया है; क्योंकि यह उचित समझा गया है कि इन गलियों, मुहल्लों और बस्तियोंपर ठीक नियंत्रण रखनेके लिए इन्हें स्थानीय अधिकारी या निकायके अधीन कर दिया जाये; इसलिए मैं स्टीफिनस जोहानिस पाल्स क्रूगर, दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यका अध्यक्ष, कार्यकारिणी-परिषदकी मन्त्रणा और सहमतिसे और २४ अप्रैल १८९९की कार्रवाईके अनुच्छेद ४२० के अनुसार, निम्न घोषणा करता और नियम बनाता हूँ :

जो गलियाँ, मुहल्ले और बस्तियाँ, किन्हीं ग्रामों या कस्बोंमें, उनके समीप, या उनके साथ लगती हुई हैं, जिनकी पैमाइश हो चुकी है और जिन्हें ऐसे लोगोंके निवास और व्यापारके लिए निर्धारित कर दिया गया है, और जो उन ग्रामों या कस्बोंके अंग नहीं हैं, और जो स्थानीय अधिकारियों या प्रबन्ध-निकायोंके अधीन नहीं हैं, वे अबसे इन गाँवों या कस्बोंके अंग बन जायेंगी और वहाँके स्थानिक अधिकारियों या निकायोंकी अधीनतामें चली जायेंगी; वे अधिकारी या निकाय *स्थानीय भूमि-प्रबन्धकर्ता, खान-आयुक्त, उत्तरदायी टाउन-क्लार्क* या नगर-परिषद या नगर-निकाय, कोई भी क्यों न हों। ईश्वर देश और जनताकी रक्षा करे।

मेरे हस्ताक्षरसे, २५, अप्रैल १८९९ को प्रिटोरियाके सरकारी कार्यालयमें जारी किया गया।

एस० जे० पी० क्रूगर
राज्याध्यक्ष
एफ० डबल्यू० राइट्ज़
राज्य-सचिव

इसी प्रकार निम्न विज्ञप्ति भी, २३ नवम्बर १८९८ के *स्टाट्सकूरेंट* सं० ६२१ में छपी सरकारकी १८ नवम्बर १८९८ की विज्ञप्ति सं० ६२१ के सम्बन्धमें, प्रकाशित हुई है।

"निम्नलिखित अतिरिक्त सूचना जनताकी जानकारीके लिए दी जाती है :

१. जो कुली, अरब, और अन्य एशियाई काले आदमी, अबतक, इसी प्रयोजनके लिए निर्दिष्ट गलियों, मुहल्लों और बस्तियोंमें नहीं रहते और रोजगार नहीं करते, परन्तु कानूनके खिलाफ, निर्दिष्ट गलियों, मुहल्लों और बस्तियोंसे बाहर किसी गाँव या कस्बेमें, अथवा इस कामके लिए अनिर्दिष्ट किसी स्थानपर गाँव या कस्बेसे बाहर रहते और काम-काज करते हैं, वे १ जुलाई १८९९ से पहले कुलियों, अरबों और अन्य एशियाइयोंके लिए बनाये गये १८८५ के कानून ३, और विशेषतः उसके अनुच्छेद २ (घ) के अनुसार, इसी प्रयोजनके लिए निर्दिष्ट गलियों, मुहल्लों और बस्तियोंमें चले जायें और वहां रहने और रोज़गार करने लगें। उक्त अनुच्छेद सं० २ (घ) का रूप, १२ अगस्त १८८६ को लोकसभा (फोक्सराट) के अनुच्छेद १४१९ द्वारा संशोधित होनेके पश्चात्, यह हो गया है : 'सरकारको अधिकार होगा कि वह सफाईके उद्देश्यसे, उनके (अर्थात् कुलियों, अरबों और अन्य एशियाई

अश्वेत लोगोंके) रहने और रोजगार करनेके लिए निश्चित गलियों, मुहल्लों और बस्तियोंका निर्देश कर दे।' यह शर्त उन लोगोंपर लागू नहीं होगी जो अपने मालिकोंके स्थानोंमें रहते हैं।

२. ऊपरकी शर्तके अनुसार, ३० जून १८९९ के पश्चात्, अरबों और अन्य एशियाइयोंको, केवल कानूनके अनुसार निर्दिष्ट गलियों, मुहल्लों और बस्तियोंमें रोजगार करनेके लिए एक परवाना दिया जायेगा।

३. जो कुली, अरब और अन्य एशियाई, अबतक इसी प्रयोजनके लिए निर्दिष्ट गलियों, मुहल्लों और बस्तियोंसे बाहर रोजगार करते हैं, उन्हें उसके लिए ३० जून १८९९ तकका एक परवाना बनवाना पड़ेगा, और उस तारीखके बाद यह परवाना केवल कानूनके अनुसार इस प्रयोजनके लिए निर्दिष्ट गलियों, मुहल्लों और बस्तियोंमें रोजगार चलानेके लिए दिया जायेगा।

४. जो कुली और एशियाई और अन्य काले लोग इसी प्रयोजनके लिए निर्दिष्ट गलियों, मुहल्लों और बस्तियोंमें रहते हैं, उन्हें ३० जून १८९९ को समाप्त होनेवाली तिमाहीके लिए फेरीवालेका परवाना दिया जा सकता है।

५. जो कुली, अरब और अन्य एशियाई लोग गाँव या कस्बेसे बाहर किसी स्थानपर रहते और रोजगार करते हैं उन्हें १ जुलाई १८९९ तकका समय दिया जाता है कि वे अपने निवास और रोजगारका स्थान कानूनके अनुसार इसी प्रयोजनके लिए निर्दिष्ट गलियों, मुहल्लों और बस्तियोंमें हटा लें। किन्तु उनको ३० जून १८९९ तक अपने व्यवसायका परवाना भी ले लेना चाहिए।

६. उपर्युक्त निश्चित तारीख जून ३०, १८९९ के बाद कुलियों, अरबों और अन्य सम्बद्ध एशियाइयोंको उक्त प्रयोजनके लिए निर्दिष्ट गलियों, मुहल्लों और बस्तियोंके बाहर व्यापारके लिए कोई परवाना नहीं दिया जायेगा। और जो लोग उस तारीखके बाद निर्दिष्ट गलियों, मुहल्लों और बस्तियोंके बाहर बिना परवानेके व्यापार करते पाये जायेंगे उन्हें कानूनके अनुसार सजा दी जायेगी।

७. जो कुली, अरब और अन्य एशियाई लोग यह समझते हों कि वे किसी समाप्त या असमाप्त पट्टेके आधारपर अधिक समयका दावा कर सकते हैं उन्हें १ जुलाई १८९९ से कमसे-कम ६ सप्ताह पहले, अपनी दलीलोंके साथ, भूमि-प्रबन्धकर्ता या खान-आयुक्तको प्रार्थनापत्र दे देना चाहिए। वह सरकारको सूचना देकर उसपर अपनी सम्मति और कारण लिख देगा।

८. इसी प्रकार जो कुली, अरब और अन्य एशियाई समझते हों कि वे १८८५ के उक्त संशोधित कानून ३ से प्रभावित नहीं होते, (क्योंकि वे १८९९ से पहले ही लम्बा पट्टा प्राप्त कर चुके हैं और उसका समय अभी समाप्त नहीं हुआ अथवा उन्होंने उसे बदलवा लिया है) उनको १ जुलाई १८९९ से कमसे-कम ६ सप्ताह पहले, भूमि-प्रबन्धकर्ता या खान-आयुक्तको अपनी दलीलों सहित सूचना दे देनी चाहिए और वह, सरकारको इसकी सूचना देकर, अपनी सम्मति और कारण लिख देगा।

९. यह भूमि-प्रबन्धकर्ताओं और खान-आयुक्तोंकी समझपर छोड़ दिया गया है कि यदि वे देखें कि कुली और अरब आदि, निर्दिष्ट गलियों, मुहल्लों और बस्तियोंमें निवासस्थान बनाकर कानूनका पालन करनेको तैयार हैं, परन्तु नियत समयमें उन्हें पूरा नहीं कर सकते, तो उक्त १ जुलाई १८९९ की तारीखके सम्बन्धमें वे कुछ रियायत कर दें।

१०. जो कुली और अरब आदि व्यापार करते हैं वे यदि प्रार्थना करें तो सरकार उनसे मिलने और उन्हें नियत गलियों, मुहल्लों और बस्तियोंमें बाजार या दूकानोंवाली छतदार इमारत बनानेके लिए जमीन देनेकी बातपर अनुकूल विचार करनेके लिए तैयार हैं।

सरकारका दफ्तर, प्रिटोरिया
अप्रैल २५, १८९९

(ह०) एफ० डब्ल्यू० राइट्स
राज्य-सचिव

एक छपी हुई मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३१९८, ३१९९ तथा ३२००) से।

# ३५. ट्रान्सवालके भारतीय[1]

डर्बन
मई १७, [१८९९]

इस पत्रमें मैं उन भारी गलतियोंके सिलसिलेका विहगावलोकन कराना चाहता हूँ जो, सम्राज्ञीके नामपर एकके बाद दूसरे उपनिवेश-मन्त्रीने बरपा की हैं; जिनके द्वारा उपनिवेश-मन्त्रीने दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यमें रहनेवाले ब्रिटिश भारतीयोंके मामलेका चुटकी-चुटकी करके परित्याग किया है; और जिनका अन्त अब उस गणराज्य द्वारा निकाली गई एक भारी-भरकम सूचनामें हुआ है, जिसमें भारतीयोंको आदेश दिया गया है कि वे पृथक् बस्तियोंमें चले जायें, अन्यथा उनके परवाने छीन लिये जायेंगे। *टाइम्स* (लंदन) में "भारतीय मामलात" (इंडियन अफ़ेयर्स) शीर्षक लेख-मालाके प्रतिष्ठित लेखकने इन बस्तियोंको "यहूदी बाड़ा" कहा है और सम्राज्ञीके एक प्रिटोरिया-स्थित प्रतिनिधिने इनका बखान यों किया है: "जिस स्थानका उपयोग शहरका कूड़ा-करकट इकट्ठा करनेके लिए होता है और जहाँ शहर और बस्तीके बीचके नालेमें झिर-झिर कर जानेवाले गन्दे पानीके सिवा दूसरा पानी है ही नहीं।" समाचारपत्रके इस एक-अकेले लेखमें मुझे संक्षेपमें ही लिखना होगा और परिस्थितिका संक्षिप्त वर्णन करनेमें मैं लम्बे-लम्बे उद्धरण नहीं दे सकता। कुतूहली लोगों और उनके लिए, जो इस प्रश्नका पूरा इतिहास जाननेके इच्छुक हों, मुझे इस प्रश्नपर १८९५ में प्रकाशित एक सरकारी रिपोर्ट (पेपर्स रिलेटिंग टु द ग्रीवान्सेज़ आफ़ हर मैजेस्टीज़ इण्डियन सब्जेक्ट्स इन द साउथ आफ्रिकन रिपब्लिक — सी० ७९११, १८९५) और ट्रान्सवाल-सरकारकी, १८९४ में प्रकाशित दो हरी किताबें पढ़नेकी सलाह देनी होगी। इन पुस्तकों और हालके अन्य साहित्यसे मैंने निम्नलिखित सारांश निकाला है:

आजसे वर्षों पहले, सन् १८८४ की बात है, जबकि गणराज्यमें भारतीय व्यापारियोंकी संख्या अच्छी-खासी हो चुकी थी। इतनी संख्यामें उनकी उपस्थितिसे आम जनताका ध्यान उनकी ओर खिंचा और उनकी सफलताने उनके यूरोपीय प्रतिस्पर्धियोंकी ईर्ष्या जागृत की। कुछ स्वार्थी व्यापारियोंने अपने स्वार्थोंको सिद्ध करनेके उद्देश्यसे बिना विचारे सीधे-सादे भारतीयोंकी आदतों और चारित्र्यके बारेमें ऐसी बातें कहीं जिन्हें, बखूबी, जानबूझ कर की गई गलतबया-नियाँ कहा जा सकता है। (यूरोपीयोंने ऑरेंज फ्री स्टेटकी संसदको एक अपमानकारी प्रार्थनापत्र दिया था और प्रिटोरियाके व्यापार-संघने उसे स्वीकार करते हुए ट्रान्सवालकी संसदको भेजा था। उसके इन अंशोंसे अुपर्युक्त बात प्रमाणित हो जाती है: "सारे समाजपर इन लोगोंकी गन्दी आदतों और अनैतिक आचारसे उत्पन्न कोढ़, उपदंश तथा इसी प्रकारके अन्य घृणित रोगोंके फैलनेका जो खतरा आ खड़ा हुआ है . . . चूंकि ये लोग पत्नियों या स्त्री-रिश्तेदारोंके बिना राज्यमें आते हैं, नतीजा साफ है। इनका धर्म सब स्त्रियोंको आत्मारहित और ईसाइयोंको स्वाभाविक शिकार मानना सिखाता है")। उस समय ट्रान्सवाल-सरकारने उन थोड़ेसे स्वार्थी व्यापा-रियोंकी चीख-पुकार सुनकर भारतीयोंको ट्रान्सवालके बाहर खदेड़ देनेका विचार किया था। इसका तरीका यह तय किया गया था कि हरएक नये प्रवासीपर २५ पौंडका व्यक्ति-कर लगाया जाये और जो लोग ऐसी हालतोंमें भी बने रहें उन्हें, तथा पुराने निवासियोंको भी, पृथक् बस्तियोंमें रहने और व्यापार करनेके लिए बाध्य किया जाये। साफ़ शब्दोंमें, इसका

१. देखिए पादटिप्पणी, पृष्ठ ६३।

मतलव था — उन्हें व्यापार करनेके अधिकारोंसे वंचित करना। परन्तु १८८४ का लन्दन-समझौता, जो दूसरे कारणोंसे अव इतना प्रसिद्ध हो गया है, उसके सामने घूरने लगा। यह समझौता दक्षिण आफ्रिकाके वतनियोंको छोड़कर शेष सव लोगोंके व्यापार आदिके अधिकारोंका संरक्षण करता है। परन्तु सरकार किसी वातसे विचलित नहीं हुई और, वोअर-सरकारके ही योग्य एक तर्कसे, उसने भारतीयोंको वतनी शब्दकी व्याख्यामें शामिल कर देनेका संकल्प किया। परन्तु यह कार्य उपकारशील उच्चायुक्त सर हर्क्युलिस रॉविन्सनको भी वहुत ज्यादा लगा। उन्होंने सरकारको सूचित किया कि ब्रिटिश भारतीयोंको "दक्षिण आफ्रिकाके वतनी" परिभाषामें शामिल नहीं किया जा सकता। परन्तु (और यहाँ पहली भारी गलतीपर ध्यान दीजिए) भारतीयोंके खिलाफ जो आरोप उनकी नजरमें लाये गये थे उनकी छानवीन किये विना ही वे सम्राज्ञी-सरकारको यह सलाह देनेके लिए तैयार हो गये कि वह समझौतेमें ऐसा संशोधन मंजूर कर ले, जिससे वोअर-सरकार भारतीय-विरोधी कानून वना सके। तथापि, लॉर्ड डर्वी ज्यादा चतुर निकले। वे उस सुझावको स्वीकार करनेके वदले ट्रान्सवाल-सरकारको लोक-स्वास्थ्यके हितमें वैसे कानून वनाने देनेको तैयार हो गये। शर्त यह थी कि २५ पौंडी कर घटा कर ३ पौंडका कर दिया जाये और यह एक धारा जोड़ दी जाये कि सफाईके कारणोंसे भारतीयोंको पृथक् वस्तियोंमें रहनेके लिए वाध्य किया जा सकता है। इस तरह, उन्होंने भी आरोपोंकी छानवीन करनेके वदले ट्रान्सवाल-सरकारने जो-कुछ कहा उसे सही मान लिया और सहज ही भारतीयोंके जमे हुए हितोंका सौदा कर डाला। वे शुरूसे आखिरतक उच्चायुक्तके भेजे हुए एक खरीतेसे उत्पन्न इस भ्रममें रहे कि जो कानून तथाकथित कुलियों आदि पर लागू होगा उससे इज्जतदार भारतीय व्यापारी अछूते रहेंगे।

परन्तु, कानूनके पास होते ही औपनिवेशिक कार्यालयका भ्रम टूट गया। जिन व्यक्तियोंके वारेमें समझा गया था कि वे वरी रखे गये हैं, उन्हें भी वस्तियोंमें हट जानेका आदेश दिया गया। और उन्होंने अपने आपको अचल सम्पत्ति खरीदने और रेलगाड़ियोंके पहले या दूसरे दर्जेमें यात्रा करनेके अधिकारोंसे वंचित तथा आम तौरपर असभ्य जूलू लोगोंके वर्गमें शामिल पाया। यह वात कि, ट्रान्सवाल-सरकारसे इन लोगोंको अछूता छोड़ रखनेका वादा करा लिया जाये, न तो उच्चायुक्तको सूझी और न ब्रिटिश मन्त्रालयको ही। कानून वनानेकी अनुमति देते समय उन्होंने मनमें जो वात रख छोड़ी थी वह गणराज्य-सरकारके लिए वन्धनकारक नहीं हो सकती थी। और यह विलकुल स्वाभाविक था। इसपर वातचीत और लिखा-पढ़ीका एक सिलसिला चला — एक ओर भारतीयों व ब्रिटिश एजेंटके वीच और दूसरी ओर उच्चायुक्त व ट्रान्सवाल-सरकारके। इस सम्वन्धमें कहना ही होगा कि उच्चायुक्तने, अधूरे उत्साहसे ही क्यों न हो, खोई हुई वाजी फिर जीतनेकी कोशिश की। फिर भी, वहुत स्वाभाविक है कि, ट्रान्सवाल-सरकारने शुरूसे आखिरतक भारी शिकस्त दी है। लॉर्ड रिपन उस समय पदासीन हुए जवकि सारी चीज एक महा गडवड़-घोटालेमें परिणत हो चुकी थी; और उन्होने कानूनोंकी व्याख्याके सम्वन्धमें पंच-फैसला करानेका सुझाव दिया। परन्तु, दुर्भाग्यवश तव भी सच्चा प्रश्न अछूता छोड़ दिया गया। जो लोग निर्णय करनेके अधिकारी हैं उनका कहना है कि मामलेका अनुरोध-पत्र वडा ढीला लिखा गया और एक ऐसे सज्जनको — अर्थात्, ऑरेंज फ्री स्टेटके मुख्य न्यायाधीशको — जो दूसरी दृष्टियोंसे कितने भी आदरणीय क्यों न हों, भारतीयोंके विरुद्ध भारी पक्षपातके पोषक हैं, पंच चुना गया। यहाँ क्षेपकके तौरपर यह कहा जा सकता है कि इस पंच-फैसलेका उपयोग अध्यक्ष क्रूगरने दोनों सरकारोंके वीचके अन्य विवाद-ग्रस्त प्रश्नोंको पंचके सुपुर्द करनेके लिए उदाहरणके तौरपर किया

है; और इस असमंजसकी स्थितिसे मुक्ति पानेके लिए श्री चेम्बरलेनको जरूर ही कई आधे-घण्टे चिन्तामें बिताने पड़े होंगे। पंच बैठा, और उसने भी इस प्रश्नपर विचार-विमर्श करना उचित नहीं समझा कि सारेके-सारे भारतीयोंपर गन्दगीके आरोपका कोई आधार है या नहीं। पंचको व्यापकतम अधिकार प्राप्त थे। अतः उन्होंने उनका जी खोलकर उपयोग किया और एक ऐसा निर्णय कर दिया, जिससे भारतीय बिलकुल जैसेके-तैसे पड़े रह गये। उनसे कहा गया था कि दोनों सरकारोंके बीच जो खरीते चले थे — वे खरीते जिनपर कोई न्यायाधिकरण विचार नहीं कर सकता था, परन्तु वे बहुत ठीक तरहसे कर सकते थे — उनकी दृष्टिसे, वे कानूनोंकी व्याख्या कर दें, यह बता दें कि वे किन लोगोंपर लागू होते हैं और "निवास" शब्दका अर्थ क्या है। (अगर मंचके सामने पेश किया गया आखिरी प्रश्न बम्बईमें हँसीका कारण बनता है, तो मेरा जवाब यह है कि, दक्षिण आफ्रिका बम्बई नहीं है।) परन्तु पंच महाशयने, हालाँकि वे एक विद्वान वकील रहे हैं, वैसा कुछ नहीं किया, बल्कि अपना काम ट्रान्सवालकी अदालतोंको सौंप दिया। अर्थात्, उन्होंने फैसला किया कि कानूनोंकी व्याख्या सिर्फ वे अदालतें ही कर सकती हैं।

जैसे ही वह बहुमूल्य निर्णय प्रकाशित हुआ, भारतीयोंने उपनिवेश-मन्त्रीसे निवेदन किया कि उसे स्वीकार न किया जाये। उन्होंने विरोध भी व्यक्त किया कि इन सब कार्रवाइयोंमें — पंचके चुनावमें भी — उनकी कोई सुनवाई नहीं की गई। विषयकी बारीकियाँ न समझनेवालोंको ऐसा मालूम होगा कि श्री चेम्बरलेनने पंचसे जो यह आग्रह किया कि वह खरीतोंकी दृष्टिसे कानूनोंकी व्याख्या कर दे, उसमें कोई गलती नहीं थी। परन्तु भारतीयोंने यह साबित करनेके लिए राशिके-राशि प्रमाण पेश किये कि कानूनोंको गलतबयानीके आधारपर मंजूर कराया गया है; गन्दगीका आरोप निराधार है — ट्रान्सवालके तीन प्रतिष्ठित डॉक्टरोंने प्रमाणित किया है कि भारतीय उतने ही अच्छे ढंगसे रहते हैं, जितने कि यूरोपीय, एकने तो यहाँ तक कहा है कि वर्गकी तुलनामें वे यूरोपीयोंकी अपेक्षा ज्यादा अच्छे ढंगसे और ज्यादा अच्छे मकानोंमें रहते हैं; — और सच्चा कारण, जिसे बराबर दबाकर रखा गया है, व्यापारिक ईर्ष्या है। इसका नतीजा श्री चेम्बरलेनसे यह प्रमाणपत्र प्राप्त कर लेना हुआ कि भारतीय समुदाय 'शान्तिप्रेमी,' कानूनका पालन करनेवाले और पुण्यशील लोगोंका है। वे निस्सन्देह उद्यमी और बुद्धिमान तथा अदम्य लगनके लोग हैं। परन्तु प्रमाणपत्र एक चीज है, राहत दूसरी। पिछले वर्ष जो परीक्षात्मक मुकदमा[1] चला था उसकी याद अभी जनताके मनमें ताजी है। और, स्मरण किया जा सकेगा कि, उसका नतीजा कानूनोंकी वही व्याख्या हुआ, जिसका अनुमान भारतीयोंके उपर्युक्त प्रार्थना-पत्रमें पहले ही किया जा चुका था। अर्थात्, नतीजा यह था कि प्रिटोरियाके उच्च न्यायालयके न्यायाधीशोंके मतानुसार, "निवासके लिए" शब्दोंका अर्थ "निवास और व्यापारके लिए" है। अतएव, ट्रान्सवालके अभागे भारतीयोंके लिए आशाकी जो अन्तिम किरण बच गई थी वह भी दुःखान्त नाटकके इस अन्तिम अंकके साथ विलुप्त हो गई। ट्रान्सवाल-सरकारने भारतीयोंको पृथक् बस्तियोंमें हटानेकी धमकियाँ देते हुए सूचनाओंपर सूचनाएँ जारी की हैं। इससे उनका व्यापार अस्तव्यस्त हो गया है, उनके मन उद्विग्न हो उठे हैं और अब वे तलवारकी धारपर रह रहे हैं। उपनिवेश-मन्त्री और सर विलियम वेडरबर्नके बीच इस वर्षके आरम्भमें हुआ पत्र-व्यवहार अन्धकारमें एक उज्ज्वल चिनगारीके समान प्रतीत हुआ था; परन्तु, अफसोस! वह चिनगारी ही था, क्योंकि उपर्युक्त भारी-भरकम सूचनाने फिरसे आतंक पैदा कर दिया है और वे बेचारे जानते नहीं कि उनकी स्थिति क्या है और वे क्या करें। यह सूचना अन्तिम

१. देखिए: 'पत्र: ब्रिटिश एजेंटको,' फरवरी २८, १८९८।

मानी जाती है। यह किसी पुराने ढंगके कानूनी प्रलेखसे ही ज्यादा मिलती-जुलती है — अनेक 'चूँकि-यों' से युक्त, इसमें भारतीयोंके विरुद्ध स्वीकार किये गये कानूनोंका खूब हवाला दिया गया है और "एशियाकी आदिम जातियोंको, जिनमें तथाकथित कुली, अरब, मलायी और तुर्की साम्राज्यके मुसलमान प्रजाजन शामिल हैं" आदेश दिया गया है कि वे पहली जुलाईको या उसके पहले पृथक् बस्तियोंमें हट जायें। तथापि, व्यवस्था यह है कि सरकार चाहे तो लम्बी अवधिके पट्टेदारोंको अपने वर्तमान स्थानोंमें पट्टेकी अवधि बितानेका मौका दे सकती है। (देखिए, जब एक रिआयत देनेका प्रसंग है, तब कैसी अनिश्चित बात कही जाती है)।

यह अड़चनकी स्थिति है, जिसमें सम्राज्ञीके दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यवासी भारतीय प्रजाजन पड़नेवाले हैं। उनका एकमात्र अपराध यह है कि वे कमखर्च, परिश्रमी, शराबसे परहेज करनेवाले और ईमानदारीके साधनोंसे अपनी जीविका कमानेके शौकीन हैं। उन्होंने हताश होकर आखिरी कोशिश की है और श्री चेम्बरलेनको फिरसे निवेदन-पत्र[1] भेजकर उनसे अनुरोध किया है कि वे उस स्वर्ण-उत्पादक देशमें उनकी हैसियतकी स्पष्ट व्याख्या कर दें और इस रूपमें उन्हें जन्मदिवस सम्बन्धी उपहार प्रदान करें। हम सब उत्कंठाके साथ उस निवेदनपत्रके परिणामकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। कभी न थकनेवाले उपनिवेश-मन्त्रीके प्रति न्यायकी दृष्टिसे यह स्वीकार करना ही होगा कि उन्होंने अपने पूर्वगामियोंकी भूलें विरासतमें ही पाई हैं और इसमें कोई सन्देह नहीं कि वे खोई हुई बाजी फिरसे जीतनेके लिए अपने खयालके अनुसार अधिकसे-अधिक प्रयत्न कर रहे हैं। वे अपने प्रयत्नोंमें सफल हों, यही दक्षिण आफ्रिकाके प्रत्येक भारतीयकी प्रार्थना है।

[अंग्रेजीसे]

*टाइम्स ऑफ़ इंडिया* (साप्ताहिक सस्करण), १७–६–१८९९।

## ३६. पत्र : उपनिवेश-सचिवको

१४, मर्क्युरी लेन
डर्बन
मई १८, १८९९

श्री सी० बर्ड
माननीय उपनिवेश-सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

श्रीमन्,

मैं इस पत्र द्वारा, कुछ झिझकके साथ, आपका ध्यान भारतीय प्रवासी-अधिनियम संशोधन विधेयकके कतिपय पहलुओंकी ओर आकर्षित करनेकी धृष्टता करता हूँ। विधेयक इस समय विधान-सभाके विचाराधीन है।

मुझे मालूम हुआ है कि विधेयकका मसविदा गिरमिटिया भारतीयों द्वारा की जानेवाली शिकायतोंके बारेमें भारतीय प्रवासी न्यास-निकायकी शिकायतोंके जवाबमें बनाया गया है।

१. 'प्रार्थनापत्र : चेम्बरलेनको,' मई १६, १८९९ ।

कहा जाता है कि गिरमिटिया भारतीय वे शिकायतें बार-बार करते हैं और उन्हें अपना काम छोड़नेका बहाना बनाते रहते हैं।

विधेयकका मंशा उस कथित बुराईका इन उपायोंसे निवारण करना है:

(१) संरक्षक, सहायक संरक्षक या किसी मजिस्ट्रेट द्वारा शिकायती व्यक्तिका, शिकायत दर्ज करानेके बाद, उसके कामपर वापस भिजवा दिया जाना वैध करार देकर;

(२) मालिकको कतिपय परिस्थितियोंमें यह अधिकार देकर कि वह शिकायती व्यक्तिके सकुशल वापस भेज दिये जानेका खर्च उसकी मजदूरीसे काट ले;

(३) उन्हीं कतिपय परिस्थितियोंमें शिकायती व्यक्तिको ऐसा दण्डनीय करार देकर, मानो वह गैर-कानूनी तौरपर गैरहाजिर रहा हो।

सम्मानके साथ निवेदन है कि यह विधेयक गिरमिटिया-प्रथाके अधीन मजदूरी करनेवाले लोगोंकी डाँवाडोल स्थितिको और भी कठिन बना देगा। गिरमिटिया-प्रथाको तो साम्राज्य-सरकारने एक आवश्यक बुराई, और मजदूरीके इस स्वरूपसे परिचित लोगोंने "अर्ध दासता" या "भयानक रूपमें दासताके निकटकी स्थिति" माना है।

मेरी नम्र रायमें, रामस्वामी और भारतीय प्रवासी-संरक्षकके मामलेमें सर्वोच्च न्यायालयके निर्णयके साथ वर्तमान कानून ही मालिकोंकी जरूरत पूरी करनेके लिए काफ़ी होगा — अलबत्ता, अगर वह ईमानदार शिकायतियोंको भी रोकनेका काम नहीं करता। [जो लोग काम करना ही नही चाहते और ईमानदारीसे काम करनेके बदले जेलमें सड़ते रहना पसन्द करते हैं, उनके लिए तो कोई कानून काफी नहीं होगा — नहीं हो सकता।] फिर भी, अगर सरकार मालिकोंको राजी करना और वर्तमान कानूनको अधिक स्पष्ट बनाना जरूरी समझती है, तो मैं महसूस करता हूँ कि, जहाँतक पहले दो परिवर्तनोंका सम्बन्ध है, भारतीयोंके दृष्टिकोणसे प्रस्तावित संशोधनके खिलाफ कुछ भी कहनेकी जरूरत नहीं है। परन्तु मैं कहनेकी धृष्टता करता हूँ कि अन्तिम धारा अनावश्यक है और उसका मंशा १८९१ के कानून २५ के अन्तर्गत सुरक्षित शिकायती व्यक्तिके अधिकारमें — कि वह शिकायत दर्ज करानेके लिए अपना काम छोड़कर जा सकता है — हस्तक्षेप करना है। वह ऐसे शिकायतीपर गैरकानूनी तौरसे अनुपस्थित रहनेका अभियोग लगानेका अधिकार देती है, जिसकी धारणा हो — चाहे वह सही हो या गलत — कि वह शिकायत करनेके लिए अपने कामको बिना दण्ड-भयके छोड़ सकता है। किसी भारतीयके मनमें यह बात उठ सकती है कि उसे तेलके बदले घी नहीं मिलता, यह उसके साथ अन्याय है, जिसका निवारण होना चाहिए। यह शिकायत, बिलकुल सम्भव है, मजिस्ट्रेट या संरक्षक द्वारा निरर्थक ठहराई जाये। फिर भी, मैं नहीं समझता कि निरर्थकता इतनी बड़ी है कि वह अभियोक्ताको अभियुक्तके रूपमें बदल दे। मेरा निवेदन है कि [जो भी आदमी ईमानदारीसे मानता हो कि उसे कोई शिकायत है, उसको वह शिकायत दर्ज करानेकी हरएक सुविधा दी जानी चाहिए।] और, अगर यही न मान लिया जाये कि औसत दर्जेके गिरमिटिया भारतीय कानूनी और तार्किक बुद्धिके धनी हैं, तो यह प्रस्ताव वैसी सुविधा देनेवाला नहीं है।

निरर्थक शिकायतोंके विरुद्ध जिन रोकोंकी व्यवस्था की गई है वे, निवेदन है, दण्डकी धारा जोड़े बिना ही काफ़ी सख्त हैं। कदाचित् गिरमिटिया भारतीयोंके लिए मजदूरीका कट जाना कारावाससे ज्यादा कष्टप्रद है।

अगर मैंने विधेयकको ठीक-ठीक पढ़ा है तो, मेरा नम्र मत है, इस हकीकतसे कि वह सिर्फ अख्तियार देनेवाला विधेयक है, उपर्युक्त दलील किसी भी तरह कमजोर नहीं हो जाती।

मुझे वर्तमान कानूनके अमलमें लाये जानेका थोड़ा-सा अनुभव है। ये मुकदमे जिस ढंगसे होते हैं उससे हमेशा शिकायत करनेवालेके पक्षका समर्थन नहीं होता। और मजिस्ट्रेट, अतिशयोक्तियोंकी भूलभुलैयाँ पार करनेमें असमर्थ होनेके कारण, शिकायतोंको अक्सर "परेशान करनेवाली और निरर्थक" ठहरानेके लिए लाचार हो जाते हैं, भले ही शिकायतें बिलकुल सच्ची क्यों न हों।

इसका उपाय अगर मुझे सुझानेकी इजाजत हो, और अगर सचमुच उसकी जरूरत हो तो, इस प्रकारकी शिकायतोंके शीघ्रतापूर्ण निबटारेमें है। अगर यह बुराई किसी भी बड़े पैमानेपर मौजूद ही हो तो एक ऐसा कानून बना देनेसे उसका निवारण हो जायेगा, जिससे कि ये शिकायतें दूसरी सब शिकायतोंसे पहले सुनी जा सकें, अभियोक्ताको थोड़ीसे-थोड़ी अवधिकी सूचनापर इन शिकायतोंको पेश करनेका अधिकार मिल जाये और, कदाचित्, जब शिकायती लोग अपनी जायदादोंसे बाहर हों तब उन्हें दूसरा काम करनेके लिए बाध्य किया जा सके, ताकि काम न करनेकी वृत्तिको प्रोत्साहन न मिले। ऐसा करनेसे सम्बद्ध व्यक्तिकी स्वतन्त्रता कम किये बिना और उनका शिकायत करना भी असम्भवप्राय बनाये बिना काम चलाया जा सकता है।

मैं इस लम्बी दलीलके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ। मैं जानता हूँ कि सरकार मनुष्य और मनुष्यके बीच न्याय करने और मामलेके दोनों पक्ष सुननेको उत्सुक है। इसलिए मैंने समझा कि भारतीयोंने इस विषयको जिस दृष्टिसे देखा है उसे यदि मैं सरकारके सामने पेश न करूँ तो अपने कर्त्तव्यसे च्युत हो जाऊँगा। मजदूरोंके मालिकोंकी स्थिति ही ऐसी है कि वे प्रश्नको केवल एकांगी दृष्टिसे देख सकते हैं। दूसरी ओर, स्वतन्त्र भारतीय गिरमिटिया भारतीयोंके बन्धु-बान्धव हैं और मालिक नहीं हैं; इसलिए उन्हें रागद्वेष-रहित विचार व्यक्त करनेकी इजाजत दी जाये।

इन परिस्थितियोंमें, क्या मैं आशा कर सकता हूँ कि जिस धाराकी शिकायत की गई है उसे सरकार निकाल देने या इस तरहसे बदल देनेकी कृपा करेगी, जिससे कि गिरमिटिया भारतीयोंका शिकायत करनेका अधिकार ही न छिन जाये?[1]

आपका आज्ञाकारी सेवक,
**मो० क० गांधी**

[अंग्रेजीसे]

नेटाल आर्काइव्ज, पीटरमैरित्सबर्ग, सी० एस० ओ० १६१४, फाइल ३८४२।

१. उपनिवेश-सचिवने मई २९, १८९९ को इसका उत्तर दिया। उन्होंने गांधीजीका सुझाव स्वीकार नहीं किया।

## ३७. पत्र : उपनिवेश-सचिवको

मर्क्युरी लेन
डर्बन
मई १९, १८९९

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

श्रीमन्,

मैं इसके साथ प्रतिनिधि भारतीयोंके एक सन्देशकी नकल भेज रहा हूँ, जिसमें उन्होंने महा-महिमामयी सम्राज्ञीको, उनके अस्सीवें जन्मदिनके उपलक्ष्यमें अपनी विनम्र तथा राज-भक्तिपूर्ण बधाई अर्पित की है। प्रतिनिधि भारतीय इसे इसी महीनेकी २४ तारीखको सम्राज्ञीके मुख्य उपनि-वेश-मन्त्रीकी सेवामें तारसे भेजना चाहते हैं। उनकी इच्छा है, मैं आपसे निवेदन करूँ कि आप इसे आगे रवाना कर दें।

यह भी निवेदन है कि मुझे अधिकार दिया गया है, जो खर्च हो, उसकी सूचना आपके पाससे मिलनेपर आपको चेक भेज दूँ।[1]

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

सहपत्र संलग्न।[2]

[अंग्रेजीसे]

पीटरमैरित्सबर्ग आर्काइव्ज़, जी० सी० ओ० ३९०३/९९।

## ३८. रानीको तार : उनके जन्मदिनपर

डर्बन
मई १९, १८९९

नेटालके भारतीय सम्राज्ञीको, उनके अस्सीवें जन्मदिनके उपलक्ष्यमें, नम्रता और राजभक्तिपूर्वक बधाई देते हैं। हार्दिक प्रार्थना करते हैं कि सर्वशक्तिमान उनपर सर्वोत्तम सुख-समृद्धि की वर्षा करे।

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३१९५) से।

१. देखिए पृष्ठ ८५।
२. देखिए, अगला शीर्षक।

## ३९. प्रार्थनापत्र : चेम्बरलेनको

डर्बन
[मई २७ के पूर्व], १८९९

सेवामें
परम माननीय जोजेफ़ चेम्बरलेन
मुख्य उपनिवेश-मन्त्री
सम्राज्ञी-सरकार

दक्षिण आफ्रिकी गणराज्य-स्थित प्रिटोरिया नगरवासी निम्न हस्ताक्षरकर्ता जॉन फ्रेजर पार्करका प्रार्थनापत्र

नम्र निवेदन है कि,

प्रार्थी जन्मत ब्रिटिश प्रजा है और दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यके प्रिटोरिया नगरमें निवास करता है।

प्रार्थीने ट्रान्सवाल-सरकारकी नवीनतम सूचना ध्यानसे पढ़ी है, जिसमें भारतीयों तथा अन्य रंगदार लोगोंको १ जुलाईको, या उसके पहले, पृथक् बस्तियोंमें हट जानेका आदेश दिया गया है। तथापि, सूचनामें कहा गया है कि सरकार उन लोगोंके साथ नर्मीके साथ पेश आ सकती है, जिनके पास लम्बी अवधिके पट्टे हैं।

प्रार्थीके प्रिटोरियामें दस मकान हैं। ये मिल्क मुतलक जमीनपर बने हुए हैं। ये मकान प्रार्थीने केपके दस रंगदार व्यक्तियोंको, जिन्हें साधारणतः "केप बॉएज़" [केपके छोकरे] कहा जाता है, किरायेपर दे रखे हैं। इससे प्रार्थीको २० पौंड माहवार किराया मिलता है।

प्रार्थीके पास प्रिटोरियामें एक जमीनका पट्टा है। जमीन प्रिन्सलू स्ट्रीट कहलानेवाली गलीमें है और पट्टेकी अवधि अभी ८।। वर्ष बाकी है। प्रार्थीने इस जमीनपर लकड़ी और टीनकी चादरोंके मकान बनाये हैं, जैसे कि ट्रान्सवालमें और दक्षिण आफ्रिकाके अन्य भागोंमें साधारणतः बनाये जाते हैं। मकानोंकी कीमत ४,५०० पौंडसे ऊपर है।

पट्टेकी उपर्युक्त सारी जायदादमें ब्रिटिश भारतीय किरायेदार रहते हैं। पट्टेकी बची हुई अवधिमें उनका किराया, वर्तमान दरके अनुसार, १९,३८० पौंड होगा। मिल्क मुतलक जमीनका मूल्य इससे अलग है।

प्रार्थीको भय है कि अगर ट्रान्सवालके वर्तमान भारतीय व्यापारियों या उनके व्यापारिक उत्तराधिकारियोंपर उक्त सूचनाका असर पडने दिया गया तो उससे प्रार्थीको बहुत हानि होगी और सम्भव है कि प्रार्थी अपनी आयके मुख्य साधनसे वंचित हो जाये।

प्रार्थीका लन्दन-समझौतेकी १४वीं धारापर पूरा भरोसा रहा है। इसलिए वह हमेशा मानता रहा कि इन ब्रिटिश प्रजाजनोंकी स्थिति एकदम सुरक्षित है। प्रार्थीने यह भी देखा कि भारतीय उतने ही ब्रिटिश प्रजा हैं, जितने कि कोई भी दूसरे लोग। इसलिए उसकी न्याय-भावनाने, ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोंकी हैसियतके बारेमें पंच-फैसले[1] और हालके परीक्षात्मक

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ १७७-८ और १८९-२११।

मुकदमे[1] के बावजूद, यह स्वीकार नहीं किया कि जो ब्रिटिश भारतीय पहलेसे ही जमे हुए हैं उन्हें हटाया जा सकता है, या हटाया जायेगा।

ट्रान्सवालके भारतीयोंके साथ प्रार्थीका अपना अनुभव बहुत ही सुखकर है। प्रार्थी उन्हें सबसे अच्छे किरायेदार मानता है, जिन्होंने हमेशा नियमित रूपसे और बिना हीला-हवाला किये किराया दिया है। आपके प्रार्थीकी रायमें वे विनम्र, शीलवान और बहुत ही अच्छे बरताव-वाले लोग हैं। वे कानूनका पालन करनेवाले हैं, और जिस देशमें भी जायें वहाँके कानूनोंके अनुसार चलनेको राजी और तत्पर रहते हैं। उनकी आदतें स्वच्छ हैं और वे अपनी दूकानों और मकानोंको साफ-सुथरा रखते हैं। उनके घरोंके अहाते अनेक यूरोपीयोंके अहातोंकी तुलनामें अच्छे ठहरेंगे। उनका, अर्थात् व्यापारी-वर्गका, दारूसे परहेज लोकप्रसिद्ध है। प्रार्थीकी रायमें, हम अखबारोंमें हमेशा ही अज्ञानी और अधिकतर गुमनाम लेखकों द्वारा लगाये गये जो अनैतिक और गन्दगीके आरोप देखते रहते हैं, वे उनके प्रति एकदम अन्यायपूर्ण हैं। पिछले दस वर्षोंसे लगातार उनकी जो नुक्ताचीनी की जाती रही है उसे उन्होंने धैर्यके साथ सहा है। उनका यह धैर्य एक ब्रिटेनवासीके लिए तो सर्वथा आश्चर्यजनक है, या ऐसा मालूम तो होगा ही।

केपके रंगदार लोगोंपर भी उक्त सूचनाका असर पड़ता है और वे भी प्रार्थीके उतने ही महत्त्वपूर्ण किरायेदार हैं। वे गाड़ीवान या चुरुट बनानेवाले आदि हैं और उन्होंने यूरोपीय तौर-तरीके अख्तियार कर लिये हैं।

प्रार्थीकी नम्र रायमें, ट्रान्सवालमें किसी व्यक्तिपर निर्योग्यताओंके मढ़े जानेका कारण यह होता है कि वह ब्रिटिश प्रजा है। अगर वह ब्रिटिश प्रजा न हो तो ये निर्योग्यताएँ नहीं मढ़ी जायेंगी। पोर्तुगालके राजाकी भारतीय प्रजाएँ परवाने रखने और उन सब अधिकारोंका उपभोग करनेके लिए स्वतंत्र हैं, जिनका उपभोग साधारणतः ट्रान्सवालके अन्य निवासी करते हैं।

प्रार्थीका निवेदन है कि, जहाँतक प्रिटोरियाका सम्बन्ध है, आज भी अधिकतर भारतीयोंको यूरोपीयोंसे अलग ही रखा गया है। सिर्फ उनका व्यापार नष्ट नहीं किया गया और उन्हें अपमानकी स्थितिमें नहीं डाला गया। अब अगर उन्हें पृथक् बस्तियोंमें रख दिया गया तो यह भी जरूर होकर रहेगा। प्रिन्सलू स्ट्रीटका व्यापारिक हिस्सा करीब-करीब पूरा ही भारतीय व्यापारियोंसे आबाद है। और यह स्ट्रीट प्रिटोरियाकी मुख्य सड़क चर्च स्ट्रीटके बीचसे गुजरती है। अगर प्रश्न सिर्फ यह हो कि अधिक देखरेख रखनेके उद्देश्यसे भारतीयोंको यूरोपीयोंसे अलग करके किसी एक स्थानपर एकत्र कर दिया जाये तो, स्वच्छताके हितमें, सरकार इसी जगह जैसा चाहे वैसा नियन्त्रण रख सकती है। चर्च स्ट्रीटमें पाये जानेवाले इने-गिने भारतीय व्यापारियोंका कारोबार इतना बड़ा है और वे अपनी दूकानों और अहातोंको इतनी अच्छी हालतमें रखते हैं कि, प्रार्थीकी नम्र रायमें, उन्हें अस्तव्यस्त करना एक दुराग्रहपूर्ण अन्याय होगा। बेशक ऐसा अन्याय तो दूसरे भी सब मामलोंमें होगा ही, सिर्फ उसका असर इतना विनाशकारी न होगा, जितना कि चर्च स्ट्रीटके उन व्यापारियोंके मामलोंका, जिनके दीर्घ कालसे जमे हुए व्यापारने उनकी स्थितिको बहुत अधिक व्यापारिक महत्त्व प्रदान कर दिया है।

प्रार्थीने उस पृथक् बस्तीको देखा है जो भारतीयोंके उपयोगके लिए तय की गई है। उसमें भारतीयोंको, जो निस्सन्देह काफिर जातिके लोगोंसे बेहद बेहतर हैं, उनके बिलकुल निकट रहना पड़ेगा। उसकी ऊपरकी ओर कुछ दूरपर एक खाई है। उसमें छावनीकी तमाम

१. देखिए पृष्ठ १।

गन्दगी बहकर आती है। वह बस्तीको शहरसे अलग करती है। बस्ती रास्तेसे अलग एक कोनेमें है और उसके नजदीक ही शहरका कूड़ा-कचरा इकट्ठा किया जाता है। अन्धड-तूफान आते ही रहते हैं, परन्तु उनसे रक्षाकी वहाँ कोई व्यवस्था नहीं है। व्यापारीके नाते प्रार्थी कह सकता है कि वह स्थान व्यापारके लिए बिलकुल अयोग्य है। वहाँ न तो यूरोपीय जाते हैं और न प्रिटोरियासे गुजरनेवाले काफिरोंके भारी ताँते ही। और ये काफिर ही इन अभागे लोगोंके मुख्य ग्राहक हैं। कहना जरूरी नहीं कि वहाँ न तो मल-मूत्रकी सफाईका कोई कारगर प्रबन्ध है और न खाईके गन्दे पानीके अलावा दूसरे पानीका ही।

प्रार्थीने इन सब हकीकतोंका जिक्र यह बतानेके लिए किया है कि सम्राज्ञी-सरकारसे अपने हितोंकी रक्षाका निवेदन करनेमें वह ऐसी कोई माँग नहीं कर रहा है जो प्रिटोरियाकी आम आबादीके हितोंके प्रतिकूल हो। क्योंकि, प्रार्थी यह स्वीकार करनेके लिए स्वतन्त्र है कि, अगर अभागे भारतीय व्यापारियोंपर लगाये गये आरोपोंमें से एक-चौथाई भी सच होते तो प्रार्थीको साधारण समाजके हितोंके सामने अपने हितोंको दबा देना पड़ता। प्रसंगवश प्रार्थी यह भी कह दे कि और भी जन्मतः ब्रिटिश प्रजाजन ऐसे हैं जो लगभग उसी स्थितिमें पड गये हैं, जिसमें प्रार्थी है।

यह वस्तुस्थिति कि, सरकारने लम्बी अवधिके भारतीय पट्टेदारोंके मामलोंपर नर्मीसे विचार करनेकी रजामन्दी जाहिर की है, इस पत्रमें अख्तियार किये हुए प्रार्थीके रुखको बदलती नहीं। प्रार्थी इन व्यापारियोंको बहुत लम्बे पट्टे नहीं दे सकता। इसका सीधा-सादा कारण यह है कि अपेक्षाकृत छोटी अवधिके पट्टोंपर प्रार्थी जो किराया वसूल कर सकता है, लम्बी अवधिके पट्टोंपर वह उससे बहुत कम पा सकेगा।

प्रार्थीने अनेक बार माननीय ब्रिटिश एजेंटसे मुलाकात की है। वे जो जानकारी और सलाह दे सकते थे वह उन्होंने कृपापूर्वक दी। परन्तु, प्रार्थी नम्रतापूर्वक निवेदन करता है कि अब एक ऐसा समय आ गया है जब कि ज्यादा रस्मी और ज्यादा विस्तृत रूपमें फरियाद करना जरूरी है। प्रार्थी आदरपूर्वक प्रार्थना करता है कि इस मामलेपर उचित विचार किया जाये। और न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए प्रार्थी, कर्त्तव्य समझकर, सदा दुआ करेगा; आदि-आदि।

जॉ० फ्रे० पार्कर

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल ऑफ़िस रेकर्ड्स, सी० ओ० ४१७–१८९९, जिल्द २०, पार्लमेंट।

## ४०. पत्र : विलियम वेडरबर्नको[1]

१४, मर्क्युरी लेन
डर्बन
मई २७, १८९९

श्रीमन्,

मैं इसके साथ ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोंके एक प्रार्थनापत्रकी नकल भेजनेकी धृष्टता कर रहा हूँ। प्रार्थनापत्र ट्रान्सवाल-सरकार द्वारा निकाली गई नवीनतम सूचनासे उत्पन्न भारतीयोंकी स्थितिसे सम्बन्ध रखता है। सूचना द्वारा उस देशके भारतीयोंको आदेश दिया गया है कि वे इसी वर्ष १ जुलाईको या उसके पूर्व पृथक् बस्तियोंमें हट जायें।

सूचनासे मालूम होगा कि सरकार भारतीयोंको जो पृथक् बस्तियोंमें हटाना चाहती है, उसका हेतु स्वच्छताकी रक्षा है। तो फिर, क्या उपनिवेश-सचिवसे यह माँग करना अनुचित होगा कि वे भारतीयोंके पृथक् बस्तियोंमें हटाये जानेके पहले यह देख लें कि स्वच्छता-सम्बन्धी कारण मौजूद हैं भी या नहीं? मेरी नम्र रायमें प्रार्थनापत्रमें यह साबित करनेके लिए काफी प्रमाण है कि सरकारने जो कार्रवाइयाँ करनेका विचार किया है उनके लिए स्वच्छता-सम्बन्धी कोई कारण मौजूद नहीं हो सकते।

डचेतर यूरोपीयों (एटलांडर्स) की शिकायतें, जिन्होंने सारी दुनियाका ध्यान आकर्षित किया है और जिनसे आजकल प्रमुख समाचारपत्रोंके कालमके कालम भरे रहते हैं, मेरा निवेदन है, ट्रान्सवाल तथा दक्षिण आफ्रिकाके अन्य भागोंके ब्रिटिश भारतीयोंकी शिकायतोंकी तुलनामें तुच्छ हैं। तो फिर, क्या इंग्लैंडवासी हमदर्दियों और भारतीय जनतासे यह माँग करना बहुत ज्यादा होगा कि वे इस अतीव महत्त्वपूर्ण प्रश्नकी ओर (महत्त्वपूर्ण इसलिए कि वह, जहाँतक भारतके बाहर प्रवासका सम्बन्ध है, सारे भारतके भविष्यपर असर डालनेवाला है) अधिकसे अधिक ध्यान दें?

इस पत्रमें जिस प्रार्थनापत्रका उल्लेख किया गया है, वह प्रिटोरिया-स्थित ब्रिटिश एजेंटके हाथोंमें है। परन्तु जबतक उच्चायुक्त और गणराज्यके अध्यक्षके बीच होनेवाली मन्त्रणाका, जिसमें भारतीयोंके प्रश्नपर विचार-विमर्श होगा, नतीजा न निकल आये तबतकके लिए प्रार्थनापत्रको श्री चेम्बरलेनके पास भेजना रोक रखा गया है। यह भी हो सकता है कि वह उनके पास भेजा ही न जाये। परन्तु चूँकि इस मामलेमें समयका महत्त्व अधिकतम है, इसलिए प्रार्थनापत्र भेज देनेमें ही बुद्धिमत्ता समझी गई। अन्यथा, यह डर था कि कहीं उपर्युक्त वार्ताएँ निष्फल न हो जायें।

इसी विषयपर प्रिटोरियाके श्री पार्करके प्रार्थनापत्रकी एक नकल भी इसके साथ भेजी जा रही है। श्री पार्कर जन्मतः ब्रिटिश प्रजा हैं। उनका प्रार्थनापत्र सम्बद्ध प्रश्नपर बहुत-कुछ प्रकाश डाल सकता है।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल ऑफ़िस रेकर्ड्स, सी० ओ० ४१७–१८९९, जिल्द २०, पार्लमेंट।

१. यह पत्र छपा हुआ था। और, स्पष्टतः, इंग्लैंड तथा भारतके प्रमुख लोकसेवकोंको भेजा गया था।

## ४१. पत्र : उपनिवेश-सचिवको

१४, मर्क्युरी लेन
डर्बन
मई २९, १८९९

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

श्रीमन्,

महारानीके नाम नेटालवासी भारतीयोंके बधाईके तारके सम्बन्धमें मुझे आपके इसी माहकी २७ तारीखके पत्रकी प्राप्ति स्वीकार करनेका मान प्राप्त हुआ है। सूचनाके अनुसार इसके साथ पौं० ४–१५–० का चेक भेज रहा हूँ।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पीटरमैरित्सबर्ग आर्काइव्ज, जी० सी० ओ० ३९०३/९९।

## ४२. तार : उपनिवेश-सचिवको

[डर्बन]
जून ३०, १८९९

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

क्या सरकार अनुपस्थित भूस्वामी विधेयक (एबसेंटी लैंडलॉर्ड्स बिल) की वह उपधारा निकालनेका इरादा रखती है जिसका प्रभाव गर्भितार्थसे भारतीयोंपर पड़ता है? चूंकि, अन्यथा, भारतीय प्रार्थनापत्र देना चाहते हैं इसलिए आप सूचित करेंगे तो मैं आभारी हूँगा।

गांधी

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३२१४) से।

## ४३. अभिनन्दनपत्र : सेवानिवृत्त होनेवाले मजिस्ट्रेटको

लेडीस्मिथके सेवानिवृत्त होनेवाले मजिस्ट्रेट श्री जरहार्डस मार्टिनस रूडॉल्फको स्मृतिचिह्न भेंट करनेके लिए नगरके भारतीयोंने एक समारोह किया था। उस अवसरपर गांधीजीने एक भाषण दिया और अभिनन्दन-पत्र पढ़ा था। इन दोनोंका अखबारमें छपा विवरण नीचे दिया जाता है।

[जुलाई ५, १८९९]

श्री गांधीने कहा : मुझे बहुत ही खुशी है कि मेरे लेडीस्मिथवासी देशभाइयोंने मुझे इस समारोहमें भाग लेनेको बुलाया है। यह एक विशेषाधिकार और एक सम्मान है। अदालतके कर्मचारियों द्वारा भेंट दी जानेके बादसे लेडीस्मिथके भारतीयोंमें एक स्वस्थ स्पर्धा जागृत हो गई थी, और उन्होंने श्री विन्दनके जरिये मुझे आदेश भेजा था कि जो भेंट दी जा चुकी है उससे हमारी भेंट किसी तरह कम न उतरे। अभिनन्दनपत्र तैयार करनेका काम श्री सिंगलटनको सौंपा गया था। उपनिवेशके हर बारह अभिनन्दनपत्रोंमें से आठ वे ही तैयार करते हैं। स्मृतिचिह्नका चुनाव श्री फ़र्ग्युसनके जिम्मे किया गया था। उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया है कि मेजके बीचका यह साज कारीगरीका एक अनुपम नमूना है। यह मैं न्यायमूर्तिके प्रति लेडीस्मिथके भारतीयोंकी कृतज्ञता और अनुरागका परिचय देनेके लिए कह रहा हूँ। जब मैं हाल ही में यहाँ आया था उस समय मेरे देशभाई मुझे न्यायमूर्तिकी कठोर न्यायपरता, प्रेमिल दयालुता और सौम्य स्वभावकी बातें सुनानेमें एक-दूसरेसे होड़ कर रहे थे। और अब उन्हें न्यायमूर्तिके सेवा-निवृत्त होनेके अवसरपर अपनी भावनाओंको व्यक्त करनेका यह साधन प्राप्त हो गया है। भारतीय हृदयमें स्थित कृतज्ञता और स्नेहकी ज्योति सहानुभूतिकी चिन-गारीसे सजग हो उठनेके लिए सदैव तैयार रहती है, और वह सहानुभूति न्यायमूर्तिसे उन्हें प्रचुर मात्रामें मिली है। मेरे लिए यह गौरवकी बात है कि मैं इस सुखद प्रसंगमें शामिल हुआ हूँ।
इसके बाद उन्होंने निम्नलिखित अभिनन्दनपत्र पढ़कर सुनाया :

श्रीमन्,

लेडीस्मिथके अपने कार्यकालमें आप अत्यन्त निष्पक्षताके साथ न्याय करते रहे हैं, इस-लिए नीचे हस्ताक्षर करनेवाले लेडीस्मिथवासी भारतीयोंके प्रतिनिधि हम आपके उपनिवेशकी सक्रिय सेवासे निवृत्त होनेके अवसरपर आपके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं। हमें यह जानकर हर्ष होता है कि आपने दीर्घ कालतक उपनिवेशकी जो असाधारणतः उपयोगी सेवा की है, उसे मान्यता प्रदान करनेके लिए उपनिवेशकी जनताने स्थानिक संसद द्वारा आपको पूरा निवृत्तिवेतन (पेंशन) देनेका निर्णय किया है। जहाँ हमें इस बातकी खुशी है कि आप अपने न्यायार्जित विश्रामका उपभोग करने जा रहे हैं, वहाँ हम, अपनी स्वार्थपरताके कारण, बिना दु:खके इस भविष्यत्‌की कामना भी नहीं कर सकते। मुकदमेवालोंके प्रति आपका दयाभाव, अपने पास आये हुए मामलोंका मर्म समझनेके प्रयत्नमें आपका धैर्य तथा भय, पक्षपात एवं पूर्वग्रहसे मुक्त होकर निष्पक्षभावसे आपका न्याय — इन सभी गुणोंने आपको भारतीय समाजका अत्यन्त प्रिय बना दिया है और ब्रिटिश संविधानपर चार चाँद लगाये हैं। इसी संविधानका आपने लेडीस्मिथमें दीर्घ कालतक अत्यन्त योग्यताके साथ प्रतिनिधित्व किया है। इस नगरके भारतीय समाजका आपके प्रति जो आदर-भाव है, यह साथका स्मृति-चिह्न उसीका प्रतीक-रूप

है। इसलिए, आशा है, आप इसे स्वीकार करनेका अनुग्रह करेंगे। न्यायमूर्तिके लिए सुदीर्घ और सुख-शान्तिमय जीवनकी हार्दिक कामना तथा परमात्मासे इन कामनाओंकी पूर्तिके लिए प्रार्थनाओंके साथ —

आपके, आदि,
अमद मूसाजी उमर
और अन्य

[अंग्रेजीसे]

*नेटाल मर्क्युरी*, ७–७–१८९९

## ४४. पत्र : उपनिवेश-सचिवको

१४, मर्क्युरी लेन
डर्बन
जुलाई ६, १८९९

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

श्रीमन्,

आपके गत मासकी १३ तारीखके पत्रके सम्बन्धमें फिर निवेदन है कि साम्राज्य-सरकार और स्थानीय सरकारमें जो पत्र-व्यवहार चल रहा है उसे देखते हुए यह बतला देना अनुचित न होगा कि "विक्रेता-परवाना सम्बन्धी प्रार्थनापत्र"[1] में जो भय प्रकट किया गया था वह कितना सत्य निकला है। मैं सब स्थानोंसे ठीक-ठीक जानकारी एकत्र नहीं कर पाया हूँ, परन्तु जो जानकारी मुझे अबतक मिली है वह अत्यन्त निराशाजनक है।

डंडीमें पहले तो परवाने देनेसे इनकार कर दिया गया था, परन्तु अपील करनेपर वे एक शर्त मढ़कर दिये गये। शर्त परवानोंकी पीठपर लिख दी गई, जो यह है: "यह परवाना साफ़-साफ़ इस शर्तपर दिया जा रहा है कि इसे इसी इमारतके लिए फिरसे नया नहीं किया जायेगा। निकायकी आज्ञासे — (ह०) फ्राज० जे० बर्कट, परवाना-अधिकारी और नगरका क्लार्क।" पूछनेपर कई परवानेवालोंने जवाब दिया कि हमारा खयाल तो यह है कि हमारे परवानोंपर यह शर्त इस कारण लगाई गई है कि हमारी दूकानें लकड़ीके तख्तों और लोहेकी चादरोंकी इमारतोंमें थी। मालूम हुआ है कि डंडीमें हैंडले ऐंड सन्स और हार्वे-ग्रीनेकर ऐंड कं० की दूकानोंका सामना तो ईंटोंका है, शेष सारे भाग तख्तों और टीनके ही बने हुए हैं। वहाँके व्यापारी टेलर ऐंड फाउलरकी दूकान सारीकी-सारी ही तख्तों और टीनकी बनी हुई है। न्यूकैसिलमें जिनको परवाना देनेसे पिछले वर्ष इनकार कर दिया गया था उन्हें इस वर्ष भी इनकार कर दिया गया है। नगर-परिषदने दो अर्जदारोंको अपनी दूकानोंका माल बेचनेके लिए समय देनेकी कृपा की है, परन्तु इससे इन दोनों व्यापारियोंको जो नुकसान हुआ उसकी पूर्ति थोड़े ही हो सकती है। इनमें से एक अब्दुल रसूलका कारोबार बड़ा था और वह तख्तों तथा टीनकी एक दूकानका

१. देखिए खण्ड २; पृष्ठ ३७२ और आगे।

मालिक था। परिषदको बता दिया गया था कि जिस दूकानका मूल्य इस समय उसके लिए १५० पौंड है, वह यदि बेचनी पड़ी तो उसका प्रायः कुछ भी मूल्य नहीं मिलेगा।

मुझे मालूम हुआ है कि वेरुलममें दो अर्जदारोंके पास पिछले साल तो परवाने थे, परन्तु इस साल उन्हें वे देनेसे इनकार कर दिया गया। फल यह हुआ कि वे दोनों और उनके नौकर, सबके सब, अपेक्षाकृत कंगाल हो गये हैं।

लेडीस्मिथमें एम० सी० आमला नामके एक व्यक्ति कई वर्षोंसे व्यापार कर रहे थे। इस वर्ष उनका परवाना यह कहकर रद कर दिया गया कि जिस जगह वे दूकान करते हैं वह नगरकी मुख्य गलीमें होनेके कारण केवल किसी यूरोपीय सौदागरके लायक है। उन्होंने एक और ऐसी इमारतमें दूकान खोलनेके परवानेकी अर्जी दी जो एक भारतीय दूकानके साथ लगी हुई थी और जिसका मालिक भी दूकानका मालिक ही था। यह प्रार्थना भी वही कारण बताकर अस्वीकृत कर दी गई। यहाँ इतना बता देनेकी मुझे इजाजत दी जाये कि इसी गलीमें और भी कई भारतीय दूकानें हैं।

पोर्ट शेप्स्टोनमें दो बड़े भारतीय व्यापारियोंने हाल ही में अपना कारोबार दो अन्य भारतीयोंके हाथ बेचा था। उन दोनोंने परवानेकी अर्जी दी, परन्तु परवाना-अधिकारीने उसे अस्वीकृत कर दिया। परवाना-निकायमें अपील करनेका भी कुछ बेहतर नतीजा नहीं निकला। अब वे सोच रहे हैं कि करें तो क्या करें।

यहाँ नम्र निवेदन है कि यह बात बड़ी गम्भीर है कि एक व्यक्ति तो केवल भारतीय होनेके कारण अपना कारोबार बेच नहीं सकता और दूसरा, भारतीय होनेके कारण ही, उसे खरीद नहीं सकता। क्योंकि, इस प्रकारके मामलोंमें परवाना न देनेका अर्थ यह हो जाता है कि बेचना-खरीदना भी बन्द हो जाये; और वह हो भी तो लुक-छिपकर हो।

एक अन्य भारतीय अपनी दूकान डंडी कोल कम्पनीको बेचकर और वहाँ अपना सारा कारोबार समेटकर डर्बनमें आ गया, और यहाँ उसने अमगेनी रोडपर पहलेसे परवाना-प्राप्त एक दूकान खरीदकर उसमें स्वयं व्यापार करनेके लिए परवानेकी अर्जी दी। उसे परवाना-अधिकारीने परवाना दिया तो सही, परन्तु कई बार अर्जियाँ देने और भारी खर्च करके डर्बनका एक बड़ा वकील करनेके पश्चात्; और वह भी केवल थोड़े-से समयके लिए, जिससे कि प्रार्थीने परवाना मिल जानेकी आशामें जो माल खरीद लिया था उसे वह बेच सके।

ये कुछ मामले तो ऐसे हैं जिनमें कि जमे-जमाये कारोबारवालोंपर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। परन्तु ऐसे उदाहरण अनगिनत हैं जिनमें कि बिलकुल भले और पूंजीवाले व्यक्तियोंको केवल भारतीय होनेके कारण परवाना देनेसे इनकार कर दिया गया; यह भी कहा गया कि उनके पास पिछले साल भी परवाना नहीं था।

भारतीयोंको यह देखकर संतोष हुआ है और वे इसके लिए कृतज्ञ भी हैं कि, सरकार स्वयं चाहती है कि जिन भारतीयोंका कारोबार जम चुका है उनको कोई हानि न पहुँचे। और उसने शायद इसीलिए कई नगर-परिषदों और नगर-निकायोंको इस आशयके पत्र भी लिखे हैं कि यदि उन्होंने जमे-जमाये कारोबारवालोंको न छेड़नेका ध्यान न रखा तो शायद भारतीयोंको सर्वोच्च न्यायालयमें अपील करनेका अधिकार देनेके लिए कानून बनाना पड़ जाये। परन्तु मैं बताना चाहता हूँ कि निकायोंके नाम इस प्रकारकी अपीलका कुछ असर हुआ भी तो वह शायद स्थायी नहीं होगा और भारतीय व्यापारी पूर्ववत् भयंकर दुविधाकी अवस्थामें पड़े रहेंगे। ऊपर जिस पत्रका जिक्र हुआ है उसमें सुझाया हुआ परिवर्तन, मेरी नम्र सम्मतिमें,

है तो न्यायका एक छोटा-सा कार्य, परन्तु जिन भारतीय लोगोंका कारोबार उपनिवेशमें जम चुका है उनके लाभकी दृष्टिसे यह अत्यन्त अभीष्ट है।

निवेदन है कि इस पत्रकी बातोंको आप परम माननीय उपनिवेश-मन्त्रीतक पहुँचा देनेकी कृपा करें।

आपका, आदि,
**मो० क० गांधी**

[अंग्रेजीसे]

सम्राज्ञीके मुख्य उपनिवेश-मन्त्री, लंदनके नाम नेटालके गवर्नरके १४ जुलाई, १८९९ के खरीता नं० ९६ का सहपत्र।

कलोनियल ऑफ़िस रेकर्ड्स, मेमोरियल्स ऍंड पिटिशन्स १८९९।

## ४५. दक्षिण आफ्रिकामें भारतीय प्रश्न[1]

डर्बन
जुलाई १२, [१८९९]

पिछले लेख[2]में मैं बता चुका हूँ कि इस समय जो दक्षिण आफ्रिकी गणराज्य बहुत विक्षुब्ध है और जो सारे संसारके आकर्षणका केन्द्र बना हुआ है, उसमें भारतीयोंका प्रश्न क्या है। दक्षिण आफ्रिकामें प्लेगके आतंककी चर्चा मैंने अपने पहले लेख[3]में की थी। अब मैं नेटालके भारतीयोंके प्रश्नके एक पहलूपर, जो कि भारतीय बच्चोंकी शिक्षापर असर करता है, लिखना चाहता हूँ। इससे मालूम होगा कि वहाँ पूर्वग्रहको कहाँतक बढ़ने दिया गया है।

इस समय यहाँ विशेष रूपसे गिरमिटिया भारतीयोंके बच्चोंकी शिक्षाके लिए कोई पच्चीस स्कूल हैं। इनमें लगभग २००० विद्यार्थी पढ़ते हैं। इनमें से अधिकतर स्कूलोंका प्रबन्ध ईसाई पादरी करते हैं, जो मुख्यतः 'चर्च ऑफ इंग्लैण्ड मिशन' के लोग हैं। इस मिशनके भारतीय विभागके प्रबन्धकर्ता रेवरेड डॉ० बूथ हैं। ये एक साधु पुरुष हैं, और भारतीय समाजका ईसाई-वर्ग इनसे बहुत प्रेम करता है। इन स्कूलोंको सरकारी सहायता मिलती है, परन्तु वह इन्हें चलानेके लिए किसी भी प्रकार पर्याप्त नहीं है। इनकी इमारतें प्रायः बहुत पुराने ढंगकी हैं, और सिर्फ थोडी-सी लोहेकी नालीदार चादरों और लकडीके तख्तोंसे बनी हुई हैं। उनकी बनावट तो बहुत ही निकम्मी है, और देहातोंमें उनमें फर्शतक नहीं है, धरतीमाता ही फर्शका काम देती है। एक स्थानपर तो एक घुड़सालको स्कूल बना डाला गया है और बालक क्योंकि सबसे गरीब भारतीय वर्गके हैं, इसलिए स्वभावतः ही अच्छे कपड़े पहनकर नहीं आते। पढ़ाई भी इन स्कूलोंमें इनके आस-पासकी परिस्थितिके अनुसार ही होती है। शिक्षकोंको वेतन २ पौंड से ४ पौं० मासिकतक मिलता है। किसी-किसीको इससे अधिक भी मिलता है। इस हैसियतके किसी भी व्यक्ति — सँभलकर रहनेवाले अविवाहित व्यक्ति — का रहन-सहनका, अर्थात्, साफ-सुथरे तरीकेसे रहनेका खर्च ८ पौंड मासिकसे कम नहीं होगा। भारतीयोंके लिए शिक्षकके पेशेको

१. देखिए पादटिप्पणी, पृष्ठ ६३।
२. देखिए "ट्रान्सवालके भारतीय," मई १७, १८९९।
३. देखिए "दक्षिण आफ्रिकामें प्लेगका आतंक," मार्च २०, १८९९।

अपेक्षा मजदूरीमें अधिक कमाईका अवसर है। इसलिए, स्वभावतः ही, शिक्षक बहुत घटिया दरजेके हैं, हालाँकि प्रस्तुत परिस्थितियोंमें वे अपना पूरा प्रयत्न करते हैं। इन सब कारणोंसे, क्लार्क, दुभाषिए और दूकानदार आदि भद्र भारतीय, अपने बालकोंको इन स्कूलोंमें भेजना नहीं चाहते। यहाँकी साधारण प्रारम्भिक लोकशालाओंमें फीस बहुत ज्यादा ली जाती है। फिर भी जो बच्चे उसे दे सकते हैं वे अबतक इन स्कूलोंमें पढ़ते रहे हैं — परन्तु यहाँ भरती होनेमें अनेक कठिनाइयाँ उठाकर। कुछ वर्ष हुए, यहाँ एक आन्दोलन शुरू किया गया था कि भारतीय बच्चोंको इन लोकशालाओंमें तबतक दाखिल न किया जाये जबतक वे अपने स्कूलोंमें दाखिल होनेके सब प्रयत्न न कर चुके हों; और इस प्रकार इज्जतदार भारतीयोंपर भी, गरीबसे गरीब भारतीयोंके ऊपर बताये हुए स्कूल थोपनेका प्रयत्न किया गया था। तबसे, इज्जतदार भारतीयोंकी अपने बच्चोंको सरकारी स्कूलोंमें दाखिल करानेकी कठिनाइयाँ बढ़ती जा रही हैं। अब, कभी तो उनके मार्गमें कठिनाइयाँ स्कूलका मुख्याध्यापक खड़ी कर देता है, और कभी सरकार। हालमें बहुत कम भारतीय बच्चे, मुश्किलसे आधा दर्जन, इन लोकशालाओंमें दाखिल हो पाये हैं — और वे भी भारी कठिनाइयोंका सामना करनेके बाद।

वर्तमान सरकारने लोकप्रिय बननेके लिए अब एक बड़ा कदम उठाया है। उसने घोषणा की है कि उसका मंशा इन स्कूलोंको भारतीय बच्चोंके लिए बिलकुल बन्द कर देनेका है। जातीय भावनाका यह उभाड़ दुःखदायी तो अवश्य है, परन्तु इसका एक मनोरंजक पहलू भी है। यदि किसी भारतीय पिताके छः बच्चे हैं और उनमें से पाँचका शिक्षण विशेष लोकशालाओंमें हो चुका है तो अब वह अपने अन्तिम बच्चेको वही शिक्षण नहीं दिला सकता। यदि कोई पिता अपनी भारतीय राष्ट्रीयताका परित्याग करनेको तैयार हो जाये तो वह अपने बच्चेको इन विशेष लोकशालाओंमें भेज सकता है। यह सरकारकी बदकिस्मती है कि इस प्रकार वह पिता, सरकारकी इस दलीलको छिन्न-भिन्न कर सकता है कि काले बच्चोंको दाखिल करनेसे कटुता और शोर-गुल उत्पन्न होता है। व्यभिचारसे उत्पन्न बच्चा दाखिल हो सकता है, यदि उसका पिता या माता यूरोपीय हो, परन्तु शुद्ध रक्तका भारतीय दाखिल नहीं हो सकता। बहिष्कारके योग्य अकेला वही ठहराया गया है। परन्तु, मालूम होता है, सरकार अपनी अन्यायपूर्ण कार्रवाईसे आप ही चौंक उठी है। उसने अपने अन्तरात्माको बहलाने और उन भारतीय अर्जदारोंमें से कुछके दावोंको पूरा करनेके लिए, जो चाहते थे कि उनके बच्चोंको इन विशेष प्राथमिक लोकशालाओंमें दाखिल किया जाये, एक स्कूल खोलकर उसका नाम 'भारतीय बालकोंका उच्च स्कूल' रखना पसन्द किया है। माना जाता है कि यह स्कूल सब प्रकारसे उपर्युक्त स्कूलोंके बराबर है। इसमें तो सन्देह नहीं कि यह स्कूल ऊपर वर्णित टीनकी रद्दी झोंपड़ियोंसे बहुत अच्छा है और इसके शिक्षक भी यूरोपीय हैं, परन्तु इसे विशेष लोकशालाओंके बराबर किसी भी प्रकार नहीं माना जा सकता। इस स्कूलमें अबतक सब कक्षाओंका भी प्रबन्ध नहीं किया गया। बालिकाओंके शिक्षणकी तो इसमें बिलकुल ही उपेक्षा कर दी गई है। इसे यदि समझौता-रूप मान लें, तो भी अनेक आवश्यकताएँ ऐसी रह जायेंगी जो इससे पूरी नहीं होतीं। इसमें भारतीयोंके लिए लिखाई-पढ़ाई और गणितसे आगे कुछ सीखनेका कोई प्रबन्ध नहीं है। अबतक उपनिवेशके हाई-स्कूलोंमें दाखिला करानेके सब प्रयत्न विफल रहे हैं। सरकारने इस प्रकारकी अर्जियोंपर विचारतक करनेसे इनकार कर दिया है।

यदि लंदन या कलकत्तेसे ही इस बीच कोई सहायता न कर दी गई तो भविष्य निश्चय ही बहुत मनहूस है। जो माता-पिता अपने बच्चोंको भली भाँति शिक्षा देनेके लिए अपना सर्वस्वतक निछावर करनेको तैयार हैं, परन्तु जो केवल सरकारी प्रतिबन्धोंके कारण

वैसा नही कर पा रहे, उनके प्रति सहानुभूति न रखना असम्भव है। ग्रॉडफे नामके एक सज्जनकी कहानी इसी प्रकारकी है। वे भारतीय मिशन स्कूलके एक सम्मानित शिक्षक हैं। स्वय उन्होंने बहुत ऊँची शिक्षा नही पाई, परन्तु अपनी सन्तानको वे यथाशक्ति अच्छीसे अच्छी शिक्षा दिलानेके लिए बहुत ही उत्सुक हैं। एकके अतिरिक्त, उनके अन्य सब बच्चोंका शिक्षण सरकारी स्कूलोंमें हुआ है। उन्होंने अपने सबसे बड़े पुत्रको कलकत्ता भेजकर विश्वविद्यालयका शिक्षण दिलवाया और अब उसे डाक्टरी पढ़नेके लिए ग्लासगो भेजा है। उनका दूसरा पुत्र प्रथम भारतीय है जो इस उपनिवेशकी नागरिक सेवा (सिविल सर्विस) की प्रतियोगितामें सफल हुआ है। वे सबसे छोटी पुत्रीको सरकारी प्राइमरी स्कूलमें नही भेज पा रहे, और सब प्रयत्न करके भी अपने तृतीय पुत्रको डर्बन हाई स्कूलमें दाखिल नही करवा पाये। वह एक होनहार युवक है। यहाँ यह जिक्र भी कर देना अनुचित न होगा कि इस परिवारका रहन-सहन यूरोपीय ढंगका है। सब बालकोंको बचपनसे ही अंग्रेजी बोलनेका अभ्यास करवाया गया है और, स्वभावतः ही, वे अंग्रेजी बहुत अच्छी तरह बोलते हैं। समझमें नहीं आता कि इस बच्चेके लिए ही दरवाजा क्यों बन्द कर दिया गया, जब कि उनके अन्य सब बच्चोंको सरकारी स्कूलमें दाखिल कर लिया गया था। इस उदाहरणसे, अन्य किसी भी बातकी अपेक्षा, यह अधिक अच्छी तरह समझमें आ सकता है कि श्री गॉडफ्रेसे नीचे दरजेके भारतीयोंकी स्थिति कितनी कठिन होगी।

आजकल नेटाल-संसदकी, जिसे श्री रोड्स[1]ने दक्षिण आफ्रिकाकी "स्थानीय सभा" बतलाया है, बैठक हो रही है; और अटर्नी-जनरल, जो शिक्षा-मन्त्री भी है, बार-बार प्रश्न करनेवाले सदस्योंको बतला रहे हैं कि हमारी सरकार पहली सरकार है जिसने कि सरकारी स्कूलोंके दरवाजे भारतीय बच्चोंके लिए बन्द कर दिये हैं। और ये सज्जन अपने अन्तरात्माकी पुकार पर चलनेवाले माने जाते है, अन्यथा आदरणीय तो हैं ही। परन्तु यदि हम इनसे यह साधारण-सी भी अपील करते हैं कि कमसे कम न्यायकी इतनी बात तो कीजिए कि जिन माता-पिताओंको अबतक अपने बच्चोंको सरकारी स्कूलोंमें पढाने दिया जाता रहा है उनके लिए तो उनके दरवाजे खुले रहने दीजिए, तो उसका उनपर कोई असर नही होता। और यह सब है केवल थोड़े-से तुच्छ मतोंके लिए — क्योंकि भारतीयोंके विरुद्ध इस तमाम अन्यायपूर्ण और अनुचित कार्रवाईकी जड़ यही है। मन्त्री लोग न्यायके मार्गपर नही चल रहे, चलनेकी हिम्मत ही नही कर सकते, क्योकि उन्हें डर है कि अगर वैसा करे तो अगले चुनावोंमें कही उनकी अपनी स्थिति संकटापन्न न हो जाये। जब नेटालको उत्तरदायित्वपूर्ण शासन दिया गया था तब उसके लिए शोर मचानेवालोंने बड़े जोरसे दावा किया था कि जिन लोगोंको मताधिकार प्राप्त नही है उनके साथ पूरा न्याय किया जायेगा। परन्तु जब यह उपनिवेश स्वशासित उपनिवेश बन गया तब इसकी नवीन सरकारके प्रथम प्रधानमन्त्री सर जॉन रॉबिन्सनने भारतीयोंको मताधिकारसे वंचित करनेका विधेयक पेश करते हुए कहा था कि उपनिवेशके लोग — उनकी दृष्टिमें केवल यूरोपीय लोग — भली भाँति जानते हैं कि अब वे पहलेसे अधिक जिस स्वतन्त्रताका उपभोग कर रहे हैं, उसके साथ स्वभावत· अधिक जिम्मेवारी भी उनके सिर आ गयी है, और भारतीयोंको प्राप्त मताधिकारसे वंचित करनेके कारण उनकी जिम्मेवारी और भी अधिक बढ़ गई है। तब अभागे भारतीयोंने मानो यह भविष्यवाणी-सी ही कर दी थी कि इस प्रकारकी बातें केवल ब्रिटिश सरकारको सुनानेके लिए कही गई हैं, और नेटालमें उनसे कोई भ्रममें नही पड़ेगा। उन्होने कहा था कि यह मताधिकारका अपहरण तो अँगुली पकड़कर पहुँचा पकड़नेके प्रयत्न जैसा है, और यदि ब्रिटिश सरकार नेटाल-सरकारके दबावमें आ गई तो यहाँके

१. यह उल्लेख सेसिल रोड्सका है, जो दो बार केप उपनिवेशके प्रधानमन्त्री रहे थे।

भारतीयोंका सर्वनाश होकर रहेगा।) अब यह सब बिलकुल सच निकल चुका है। जबसे उत्तरदायित्वपूर्ण शासन दिया गया है तबसे बेचारे भारतीयोंको चैन नहीं मिल रहा। उनके ब्रिटिश नागरिकताके प्राथमिक अधिकार एक-एक करके उनसे छीन लिये गये हैं, और यदि श्री चेम्बरलेन और लॉर्ड कर्जन बहुत ही सजग न रहे तो शीघ्र ही एक दिन ऐसा आ जायेगा जब कि नेटालके ब्रिटिश भारतीय देखेंगे कि उन्हें सम्राज्ञीकी प्रजाकी हैसियतसे, जो अधिकार अपने समझनेका अभ्यास करवाया गया है, वे सब उनसे छिन चुके हैं।

ईसाई बने हुए भारतीयोंमें, जिनकी संख्या बहुत बड़ी है, नेटाल-सरकारकी शिक्षा-सम्बन्धी नयी कार्रवाईसे उत्पन्न हुआ असन्तोष बहुत तीव्र है। और सबकी अपेक्षा वे पश्चिमी सभ्यताके लाभोंको अधिक समझते हैं; उन्हें वैसा करना सिखाया भी गया है। उन्होंने अपने धार्मिक गुरुओंसे सबकी समानताका सिद्धान्त भी सीखा है। प्रति रविवारको उन्हें बतलाया जाता है कि उनका प्रभु ईसा यहूदियों और गैरयहूदियों, यूरोपीयों और एशियाइयोंमें कोई भेद नहीं करता था। इसलिए शिक्षाके क्षेत्रमें उनपर जो निर्योग्यताएँ लादी जा रही हैं उन्हें वे इतना अधिक महसूस करें तो क्या आश्चर्य है! यह बतलाना कठिन है कि इस भारतीय-विरोधी आन्दोलनका अन्त कहाँ जाकर होगा। नीचे नेटालकी संसदके कुछ प्रसिद्ध सदस्योंके भाषणोंमें से जो वाक्य उद्धृत किये जा रहे हैं उनसे शायद गैर-उपनिवेशवासियोंकी इच्छाओंका प्रकाशन भली भाँति हो जाता है:

> श्री पामरने भारतीयोंकी शिक्षाके लिए स्वीकृत की गई धन-राशिमें इतनी अधिक वृद्धि करनेको अवांछनीय बतलाया और कहा कि, इस तरह तो उन्हें गोरे उपनिवेशवासियोंके बच्चोंकी जगहें हड़पनेके लिए तैयार किया जा रहा है।

श्री पेनने प्रस्ताव किया कि इस राशिको बजटमें से निकाल दिया जाये। उन्होंने कहा कि जो भारतीय यहाँ आ गये हैं उन्हें उपनिवेशसे चले जानेका अधिकार है।

> नेटालमें एक गोरेके पीछे तेरह काले (?) हैं, और फिर भी संसद कालोंको शिक्षित करनेके लिए धन-राशि स्वीकृत कर रही है, जिससे कि काले लोग यूरोपीयोंको यहाँसे निकाल सकें। कुछ लोग तो इससे भी बुरा कर रहे हैं — वे कालोंके हाथ जमीन बेच रहे हैं, जो भविष्यमें यहाँ कालोंके बलकी नींवका काम देगी। — *नेटाल मर्क्युरी*, ८ जून, १८९९।

न्याय जिस पक्षमें है, यह समझने के लिए बहुत समयकी जरूरत नहीं है। सर हैरी एच० जान्स्टनका नाम तो आपके पाठक जानते ही हैं। उन्होंने अपनी हालकी पुस्तक *कालोनाइज़ेशन ऑफ़ आफ्रिका* ('आफ्रिकामें उपनिवेशोंकी स्थापना') में लिखा है:

> इसके विपरीत, साम्राज्यकी दृष्टिसे — जिसे मैं काले, गोरे और पीलेकी नीति कहता हूँ, उससे — यह अन्यायपूर्ण लगता है कि सम्राज्ञीके भारतीय प्रजाजनोंको उतनी ही स्वतन्त्रतासे घूमने-फिरने न दिया जाये जितनीसे यूरोपीयोंकी सन्तान होनेका दावा करनेवाले उसके पिट्ठुओंको घूमने-फिरने दिया जाता है।

और अन्ततोगत्वा, क्या विचार करने योग्य एकमात्र साम्राज्यका दृष्टिकोण ही नहीं है, और क्या इसके सामने अन्य सब विचारोंको दबना नहीं पड़ेगा? आशा है कि भारतकी जनता इस प्रश्नके महत्त्वको भली भाँति समझेगी और इसपर ध्यान देगी, क्योंकि व्यापक दृष्टिसे देखा जाये तो इसका प्रभाव केवल नेटालके ५०,००० भारतीयोंपर ही नहीं, ३० करोड़ भार-

तीयोंमें से ऐसे प्रत्येक व्यक्तिपर पड़ता है, जो आजीविकाकी खोजमें भारतसे बाहर जाना चाहता हो।

[अंग्रेजीसे]

*टाइम्स ऑफ़ इंडिया* (साप्ताहिक संस्करण), १९-८-१८९९।

## ४६. पत्र : उपनिवेश-सचिवको

डर्बन
जुलाई १३, १८९९

श्रीमन्,

मैंने इसी महीनेकी ६ तारीखको विक्रेता-परवाना अधिनियमके विषयमें जो पत्र लिखा था, उसमें एक भूल रह गई थी। उसे मैं ठीक कर देना चाहता हूँ।

जिस प्रकारकी कठिनाइयाँ होनेकी मैंने अपने पत्रमें चर्चा की है उस प्रकारकी कठिनाइयोंका पोर्ट शेप्स्टोनमें केवल एक मामला हुआ है। दूसरा मामला परवाना-अधिकारीतक पहुँचा ही नहीं, क्योंकि जिस वकीलको ये दोनों मामले सौंपे गये थे उसने पहले मामलेके दुर्भाग्यपूर्ण परिणामके कारण अपने दूसरे मुअक्किलको आगे न बढ़नेकी सलाह दे दी। अब दूसरी अर्जी भी पेश करनेकी तैयारी की जा रही है।

आपका, आदि,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल ऑफ़िस रेकर्ड्स, मेमोरियल्स ऐंड पिटिशन्स, १८९९।

## ४७. पत्र : ब्रिटिश एजेंटको

जोहानिसबर्ग
जुलाई २१, १८९९[1]

सेवामें
माननीय ब्रिटिश एजेंट
प्रिटोरिया

श्रीमन्,

जोहानिसबर्गके भारतीय समाजकी ओरसे मैं श्रीमान्के सामने नीचे लिखी बातें पेश करना चाहता हूँ:

१. बृहस्पतिवार (२० जुलाई १८९९) को आपने हमारे शिष्टमण्डलको भेंट देनेकी कृपा की थी। शिष्टमण्डलके सदस्य थे: हाजी हबीब हाजी दादा, श्री० एच० ओ० अली, श्री अब्दुर्रहमान और मैं। भेंटमें आपने हमको बतलाया था कि सम्राज्ञीकी सरकार

१. यह पत्र जुलाई २२, १८९९ के बाद पूरा हुआ और भेजा गया था।

*इस समय* इस सारे मामलेमें अर्थात् ट्रान्सवालमें ब्रिटिश भारतीयोंकी *समग्र हैसियतके* प्रश्नमें *हस्तक्षेप करना पसन्द नहीं करेगी*; इसलिए भारतीयोंको १८८६ में संशोधित १८८५ के कानून ३ का पालन करना ही चाहिए। परन्तु सम्राज्ञीकी सरकार बस्तियोंके स्थान और लम्बी मियादके पट्टों आदि जैसे विशेष मामलोंमें किसी भी समय हस्तक्षेप करनेके लिए तैयार रहेगी।

२. मैं निवेदन करना चाहता हूँ कि क्योंकि सम्राज्ञीकी सरकारने उक्त कानूनको स्वीकृत कर लिया है, इसलिए भारतीय लोगोंकी इच्छा भी यह नहीं है कि जबतक वह इस गणराज्यके कानूनमें सम्मिलित रहें तबतक वे उसका पालन न करें।

३. परन्तु, मैं आपको उचित सम्मानपूर्वक बतलाना चाहता हूँ — जैसा कि मैंने गत बृहस्पतिवारकी भेंटमें भी बतलाया था — कि क्योंकि कानूनके उल्लेखानुसार, इन बस्तियोंका निर्देश सफाईके उद्देश्यसे किया जानेवाला है, इसलिए *यह स्पष्ट रूपसे सिद्ध कर दिया जाना चाहिये कि उस आधारपर ऐसा करना जरूरी हो गया है।* और यदि वैसा करते हुए यह प्रश्न उठे कि प्रत्येक भारतीयको भी यह सिद्ध करना चाहिए कि वह सफाईके सब नियमोंका पालन करता रहा है और सफाईकी दृष्टिसे नगरमें उसकी उपस्थितिके कारण लोगोंको किसी प्रकारका खतरा नहीं है, तो भी बात बहुत सीधी लगती है। यदि सम्राज्ञीकी सरकार इस बातको मनवानेमें सफल हो जाये कि ट्रान्सवाल-सरकार उन भारतीयोंको नहीं हटायेगी जो अपनी सफाई-सम्बन्धी स्थितिके सन्तोषजनक होनेके प्रमाण पेश कर देंगे, तो मेरा निवेदन है कि शेष सारी बातका बोझ सम्बद्ध पक्ष अपने सिर उठा लेंगे और उसके लिए सम्राज्ञीकी सरकारको कष्ट नहीं देंगे।

४. मालूम होता है, इस समय, भारतीय बस्तियोंको छोड़कर जोहानिसबर्ग और उसके उपनगरोंमें १२५ ब्रिटिश भारतीय दूकानदार और कोई ४००० फेरीवाले रहते हैं। अन्दाजा यह है कि इन दूकानदारोंकी अनबिकी सम्पत्ति सब मिलाकर कोई ३,७५,००० पौंडकी और फेरीवालोंकी कोई ४,००,००० पौंडकी होगी।

५. ३ या ४ को छोड़कर प्रायः सब दूकानदारोंके पास पट्टे हैं। परन्तु उनमें से किसीने भी सरकारकी इस विज्ञप्तिका लाभ नहीं उठाया कि वे सब अपने पट्टोंको दफ्तर-दर्ज (रजिस्ट्री) करा लें।

६. लोग पहले तो थे ही, अब भी *भयभीत अवस्थामें* हैं। वे नहीं जानते कि क्या करें और क्या न करें। अखबारोंमें इस आशयका तार छपा है कि सम्राज्ञीकी सरकार और ट्रान्सवाल-सरकारमें बातचीत अब भी चल रही है और सम्राज्ञीके उच्चायुक्तको हिदायत दी गयी है कि वे ब्लूमफांटीन सम्मेलनमें इस मामलेको उठायें[1]। इसके कारण भी दूकानदारोंने अपने पट्टोंको दफ्तर-दर्ज नहीं कराया।

७. जोहानिसबर्गके निवासी भारतीय, चाहें तो भी ब्रिकफील्ड्सकी बस्तीमें नहीं जा सकते।

८. जोहानिसबर्गके वतनी लोगों और यातायातके इन्स्पेक्टरकी १० जनवरी १८९६ की रिपोर्टके अनुसार, ब्रिकफील्ड्समें ३०×५० फुटकी छियानवे कच्ची दूकानें हैं। इन्स्पेक्टरने लिखा है कि उस समय भी बस्तीमें बड़ी भीड़ थी; उसकी आबादी ३३०० थी। और अब तो, इस दृष्टिसे, बस्तीकी अवस्था शायद १८९८ से भी अधिक खराब होगी।

१. उच्चायुक्तको निर्देश दिया गया था कि वे दक्षिण आफ्रिकी सरकारको प्रत्येक नगरमें एशियाई बस्ती बनानेकी सम्भावनाका सुझाव दें। पाद-टिप्पणी १, पृष्ठ ६८ भी देखिए।

९. पता चला है कि दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यकी सरकार नगरके भारतीयोंको वाटर-काल नामक स्थानपर हटाना चाहती है। यह स्थान जोहानिसबर्गके केन्द्र जोहानिसबर्ग मार्केट-स्क्वेयरसे ४३/४ मील दूर है। वहाँका पैमाइशी नक्शा और वहाँके विषयमें डाक्टरी रिपोर्ट इस प्रार्थनापत्रके साथ संलग्न हैं[1]। नक्शेमें नगरके आबाद भागके किनारेसे भी उसकी दूरी दिखलाई गई है।

१०. निवेदन है कि भारतीयोंको वहाँ चले जानेके लिए कहनेका मतलब उन्हें ट्रान्सवाल ही छोड़कर चले जानेके लिए कहना होगा। दूकानदार वहाँ जाकर कुछ भी व्यापार नहीं कर सकेंगे। फेरीवालोंसे भी यह आशा नहीं की जा सकती कि वे अपना माल उठाकर रोज वहाँसे आया-जाया करें।

११. वहाँ स्वास्थ्य और सफाईका, पानीका और पुलिसकी रक्षाका तो कोई प्रबन्ध है ही नहीं, वह है भी उस स्थानकी बगलमें जहाँ कि नगरका कूड़ा और मल-मूत्र फेंका जाता है। परन्तु ये सब बातें भी इस तथ्यकी तुलनामें गौण लगने लगती हैं कि यह स्थान नगरसे तो ४३/४ मील है; अन्य कोई बस्ती भी इसके चारों ओर दो मीलतक नहीं है।

१२. जान पड़ता है, सरकारने इस स्थानके सम्बन्धमें जोहानिसबर्गके हर्मन टोबियांस्कीके साथ कोई इकरार कर लिया है। इसका पता इस प्रार्थनापत्रके साथ संलग्न उस इकरारनामेकी[2] एक प्रतिसे चलता है।

१३. जो लोग पट्टेपर दी हुई इस जमीनपर बसेंगे, उनकी दृष्टिसे, यह इकरारनामा अति हानि-कारक शर्तोंसे भरा हुआ है। परन्तु यहाँ उनकी विस्तारसे चर्चा करनेकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि यह स्थान ही उक्त प्रयोजनके लिए स्पष्टतया अनुपयुक्त है।

१४. प्रतीत होता है कि काफिर जातिके लोगोंने भी इस स्थानपर हटाये जानेका प्रतिवाद किया है, यद्यपि वे अधिकतर मजदूर हैं और उनपर व्यापारिक दृष्टिसे इस परिवर्तनका प्रभाव नहीं पड़ता।

१५. यह निवेदन बार-बार किया जा चुका है कि ये बस्तियाँ कहीं भी हों, भारतीय दूकानदारोंको इनमें हटानेसे उनका सर्वनाश प्रायः निश्चित है।

१६. इसलिए सादर निवेदन है कि यदि सम्राज्ञीकी सरकार इस प्रार्थनापत्रके अनुच्छेद ३ में नम्रतापूर्वक सुझाई गई दिशामें कदम उठानेको तैयार न हो तो कमसे-कम वर्तमान दूकानदारोंको तो अछूता छोड़ ही दिया जाये; इससे कममें सर्वनाशसे उनकी रक्षा नहीं हो सकती। यदि सर्वथा आवश्यक ही हो तो फेरीवालोंको उपयुक्त स्थानपर बसाई हुई और अन्य प्रकारकी आपत्तियोंसे मुक्त किसी बस्तीमें हटाया जा सकता है। आवश्यकता हो तो दूकानदारोंके लिए सफाईके विशेष नियम बनाये जा सकते हैं।

१७. परन्तु यदि ऊपर निर्दिष्ट प्रकारकी सहायता प्राप्त न की जा सके तो मेरा नम्र निवेदन यह है कि भारतीय दूकानदारोंके व्यापार करनेके लिए, शहरके ही व्यापारिक भागमें कोई स्थान पृथक् नियत कर दिया जाये, और वहाँ किराये आदिके जो नियम आवश्यक समझे जायें वे लागू कर दिये जायें। इससे शायद बहुत-से व्यापारी अपनी आजीविका कमा सकेंगे। परन्तु कुछ-एक बड़े भारतीय व्यापारियोंको तो इससे भी कोई सहायता नहीं मिलेगी।

१. ये उपलब्ध नहीं हैं।
२. यह उपलब्ध नहीं है।

१८. जबतक यह मामला तय हो तबतक भारतीय व्यापारियोंको तुरन्त और अस्थायी सहायता देनेके प्रयोजनसे यह बहुत आवश्यक है कि या तो समयकी मियाद बढ़ा दी जाये जिससे कि वे अस्थायी परवाने बनवा सकें, या उन्हें ऐसा आश्वासन दे दिया जाये कि इस बीच उनके व्यापारमें हस्तक्षेप नहीं किया जायेगा।

१९. यहाँ मैं यह भी लिख दूं कि ट्रान्सवाल-सरकारने इस प्रकारकी सहायता जोहानिस-बर्गमें दी है, दीख ऐसा पड़ता है। मैं यह भी बतला दूं कि गणराज्यकी सरकारने 'कुली बस्ती' में कच्ची दूकानोंके मालिकोंको निम्न नोटिस दिया है; इसपर २३ मई १८९९ की तारीख पड़ी है:

> आपको, २६ अप्रैल १८९९ के *स्टाट्सकूरैंटमें* प्रकाशित सरकारी सूचना २०८ के अनुसार, चेतावनी दी जाती है कि इस वर्षकी तारीख ३० जूनके पश्चात् केवल आपको और आपके परिवारको आपकी कच्ची दूकानमें रहने दिया जायेगा।
>
> (ह०) ए० स्मिथर्स

२०. मालूम होता है, इस सूचनाके विरुद्ध एक प्रार्थनापत्र ब्रिटिश वाइस-कॉन्सलकी सेवामें पहले ही भेजा जा चुका है[1]। सूचनाका प्रयोजन स्पष्ट है। निवेदन है कि १८८५ के कानून ३ और उसके संशोधनमें इस प्रकारकी पाबन्दी लगानेका कोई अधिकार सरकारको नहीं दिया गया।

२१. आशा है कि ट्रान्सवाल-सरकारको ऐसा कोई अधिकार नहीं है और वह भारतीय बस्तीकी वर्तमान आबादीके अधिकारोंमें गड़बड़ी करनेकी हठ नहीं करेगी।

२२. परन्तु यदि नगरकी सारी अथवा थोड़ी आबादीको किसी बस्तीमें हटाना ही हो तो यह स्पष्ट है कि बस्तीके लिए एक और जमीनकी आवश्यकता पड़ेगी।

२३. नगर-परिषद्ने ट्रान्सवाल-सरकारकी अनुमतिसे, बस्तियोंके सम्बन्धमें कुछ नियम बनाये हैं, जो १८८५ के कानून ३ और उसके संशोधनकी सीमासे बहुत बाहर निकल गये हैं। उन नियमोंकी एक प्रति इसके साथ संलग्न है और उसपर 'घ'[1] अंकित है।

२४. बहुत डर है कि ट्रान्सवाल-सरकार नगर-निवासी भारतीयोंको हटानेके लिए जो नये स्थान और चुनेगी उनपर भी इन नियमोंको लागू कर देगी। इसके साथ संलग्न परिशिष्ट 'ग'[2] से यह बिलकुल स्पष्ट हो जाता है।

२५. इसलिए, फेरीवाले या अन्य भारतीयोंको हटानेकी कोई भी योजना सन्तोषजनक तभी हो सकती है जब कि उसके अनुसार भारतीयोंको बस्तीमें भी स्वामित्वके वही अधि-कार दिये जायें जो साधारणतया नगरमें इतर लोगोंको दिये जाते हैं।

२६. ऊपर निर्दिष्ट कानूनमें भारतीयोंके लिए बस्तियोंमें भूमिका स्वामी बनने अथवा उसका वे जो और जैसे चाहें वैसे व्यवहार करनेका निषेध नहीं किया गया। फेरीवालोंसे तो यह आशा की ही नहीं जा सकती कि वे बस्तियोंमें जमीन खरीदेंगे और उसपर अपने मकान बनायेंगे। सादर निवेदन है कि यदि भारतीय बस्तियोंमें भूमिके स्वामित्व और उसपर मकान बनानेके अधिकार भारतीयोंके सिवा किन्हीं दूसरे लोगोंको दिये गये तो यह भारी अन्याय होगा।

१ और २. ये उपलब्ध नहीं हैं।

२७. अन्तमें आशा है कि बस्तियोंकी या आम बसावटकी कोई भी योजना, स्वीकृत करनेसे पहले, जिम्मेवार भारतीयोंको बतला दी जायेगी, जिससे कि, वे आवश्यक हो तो, अपने सुझाव दे सकें।

२८. अब, जब कि भारतीयोंको आम तौरसे बस्तियोंमें हटाये जानेकी सम्भावना है ही, तब क्या हमारा यह आशा करना बहुत ज्यादा होगा कि उनका सरकारी नाम 'कुली' बस्ती बदलकर 'भारतीय बस्ती' कर दिया जाये?

२९. मैं यहाँ यह बतला दूँ कि मुझे शनिवार[1]के प्रातःकाल निजी हैसियतसे — किसीके प्रतिनिधिकी हैसियतसे नहीं — राज्य-सचिव महोदयसे भेंट करनेका सम्मान प्राप्त हुआ था। मैंने उन्हें यह बतलाकर कि जिस प्रकार भारतीय लोग अपनी शिकायतें पहले अपनी ही सरकारसे करते रहे हैं उसी प्रकार उन्हें भविष्यमें भी करना पड़ेगा, उनसे नम्रतापूर्वक प्रार्थना की थी कि भारतीयोंके साथ उदार व्यवहार किया जाये क्योंकि उनका पिछला जीवन उच्च रहा है, वे जहाँ कहीं भी गये कानूनका अधिकसे अधिक पालन करते रहे, और इस देशके नागरिकोंको किसी प्रकारकी हानि पहुँचानेके बदले वे उनके नाना प्रकारके धन्धोंमें उनकी नम्रतापूर्वक किन्तु उपयोगी सेवा कर रहे हैं। राज्य-सचिवने मेरे साथ शिष्टतम व्यवहार करने और मेरी बात बहुत समय लगाकर धैर्यपूर्वक सुननेकी कृपा की थी।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३२४५) से।

१. जुलाई २४, १८९९ के स्टैंडर्ड ऐंड डिगर्स न्यूज़में छपे एक विवरणके अनुसार यह भेंट इससे पहलेके शनिवार, जुलाई १५, १८९९ को हुई थी।

## ४८. 'स्टार' के प्रतिनिधिकी भेंट

[जुलाई २७, १८९९ से पूर्व]

स्टार'के प्रतिनिधिके पूछनेपर श्री गांधीने कहा कि प्रिटोरियामें राज्यके न्यायवादीने भारतीयोंको तबतक बगैर परवानेके व्यापार करनेकी इजाजत दी है, जबतक कि पानीके नल न लगा दिये जायें। अब चूँकि यह काम पूरा हो गया है, अधिकारियोंका यह आग्रह होगा कि एशियाई अब बस्तियोंमें रहनेके लिए चले जायें। जोहानिसबर्गके अधिकारी अभी कोई सक्रिय कदम नही उठाना चाहते। वाटरवालकी बस्ती हर दृष्टिसे पूर्णतया अनुपयुक्त है। फेरीवाले रोज सुबह-शाम इतनी दूर चलकर जायें-आयें यह हो ही नहीं सकता। और व्यापारियोंके बारेमें पूछिए तो उन्हें तो अपना कारोबार एक जगहसे दूसरी जगह हटानेके लिए कहना मानो अपना रोजगार ही पूरी तरह बन्द करनेको कहना है। क्योंकि, कुछ अन्य रंगदार जातियोंको छोड़ दें तो, आस-पास दो-दो मीलतक कोई बस्ती ही नहीं है। फिर, शहरका कूड़ा-करकट जहाँ डाला जाता है उसके बिलकुल पास वह जगह है। और अभीतक वहाँ सफाईका कोई प्रबन्ध नही किया गया है। भारतीय यह सिद्ध करनेको तैयार हैं कि सफाईकी दृष्टिसे उन्हें वहाँसे हटानेके लिए सरकारके पास कोई कारण नहीं है। और अगर कहीं यहाँ-वहाँ गन्दगी दिखाई भी दे तो नियमानुसार उसका उपाय किया जा सकता है। अधिकारियोंने कोई अमली कारंवाई नहीं की इसका मुख्य कारण बहुत करके तो यह है कि बहुतसे बाड़ों (स्टैंड्स) और इमारतोंके मालिक भारतीय हैं और इनसे ये जायदादें छीनी नही जा सकतीं। ट्रान्सवालकी सरकार और साम्राज्य-सरकार इस विषयमें किसी सन्तोषजनक व्यवस्थापर क्यों नही पहुँच सकती, इसका कोई कारण श्री गांधीकी समझमें नहीं आया।

[अंग्रेजीसे]

*नेटाल मर्क्युरी*, २७-७-१८९९

## ४९. प्रार्थनापत्र : नेटालके गवर्नरको

डर्बन
जुलाई ३१, १८९९

सेवामें
परमश्रेष्ठ गवर्नर महोदय
नेटाल

श्रीमन्,

गत जनवरीमें हमने नेटालके विक्रेता-परवाना अधिनियमके सम्बन्धमें परम माननीय उप-निवेश-मन्त्रीके नाम लिखा हुआ एक प्रार्थनापत्र आपको भेजा था। निम्नलिखितसे प्रतीत होता है कि श्री चेम्बरलेन इस कानूनके सम्बन्धमें नेटाल सरकारसे पत्र-व्यवहार कर रहे हैं :

१. स्टारमें छपी भेंटकी रिपोर्ट उपलब्ध नहीं है।

पीटरमैरित्सबर्ग
जून १३, १८९९

आपने पिछली ११ जनवरी[1]को जो पत्र परमश्रेष्ठ गवर्नरको लिखा था, और जिसके साथ १८९७ के व्यापारी परवाना अधिनियम १८ के विषयमें बहुत-से भारतीयों द्वारा हस्ताक्षरित एक प्रार्थनापत्र भी संलग्न था, उसके विषयमें मुझे आपको यह बतलानेका सम्मान प्राप्त हुआ है कि प्रार्थियोंकी शिकायतके सम्बन्धमें उपनिवेश-मन्त्री इस सरकारके साथ पत्र-व्यवहार कर रहे हैं।

सरकार द्वारा लेडीस्मिथके स्थानिक निकायके नाम लिखे गये पत्रके विषयमें *नेटाल विटनेस*के जुलाई ४, १८९९ के अंकमें निम्नलिखित प्रकाशित हुआ है :

> मुख्य उप-सचिवकी ओरसे आया हुआ एक पत्र पढ़ा गया, जिसमें निकायको सलाह दी गई थी कि वह भारतीयोंको परवाने देनेसे इनकार करते हुए सावधानतासे काम ले, जिससे कि जमे हुए कारोबारवालोंपर उसका असर न पड़े। यदि ऐसा न किया गया तो सरकारको ऐसा कानून बनाना पड़ेगा जिससे भारतीयोंको स्थानिक निकायके निर्णयोंके विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालयमें अपील करनेका अधिकार प्राप्त हो जाये। परन्तु यदि भारतीयोंको परवाने देनेसे इनकार करते हुए सावधानतासे काम लिया गया तो इस प्रकारका कानून बनाना आवश्यक नहीं होगा।
>
> निश्चय किया गया कि सरकारको सूचना दे दी जाये कि इस विषयपर पूर्ण विचार किया जानेकी आवश्यकता है; और नगरके क्लार्कको हिदायत दी गई कि वह इस विषयको निकायके सामने पेश करे।

हम मानते हैं कि इसी प्रकारका पत्र उपनिवेशके प्रत्येक स्थानिक निकाय अथवा नगर-परिषदको लिखा गया होगा।

यह देखकर हमें सन्तोष हुआ कि श्री चेम्बरलेन इस बातको समझते हैं कि यदि भारतीयोंको साम्राज्य-सरकारकी बलशाली बाहुके संरक्षणमें न ले लिया गया तो उन्हें किस आपत्तिका सामना करना पड़ेगा, और प्रतीत होता है कि नेटाल-सरकारको भी किसी न किसी प्रकार श्री चेम्बरलेनकी इच्छा पूरी करनेका ध्यान है। फिर भी उपर्युक्त पत्रका वास्तविक भाव भली भाँति समझ लेना बहुत ही वांछनीय है। और यह भी कि, उपनिवेश-कार्यालय अथवा भारतीयोंके साथ सहानुभूति रखनेवाले अन्य लोग ऐसा समझकर चुप न बैठ जायें कि इस पत्रसे किसी तरह भी कठिनाई हल हो जाती है, या नेटालके भारतीयोंको जो चिन्ता परेशान कर रही है वह दूर हो जाती है। नगर-परिषदों और स्थानिक निकायोंको अधिनियमके अन्तर्गत कतिपय अधिकार प्राप्त हैं। और उन्हें उन अधिकारोंका जैसे वे चाहें वैसे बे-रोक-टोक प्रयोग करनेकी स्वतन्त्रता है। ठीक-ठीक कहें तो यह पत्र ही अवैध है। अधिकसे अधिक, इसे एक मुफ्तकी सलाहमात्र माना जा सकता है, जिसे स्थानिक निकाय या नगर-परिषदें माननेके लिए किसी भी प्रकार बाध्य नहीं हैं। यहाँतक कि, इसका भी कुछ ठिकाना नहीं कि आगे बढ़ी हुई कुछ नगरपालिकाएँ इस पत्रको नेटाल सरकारकी अनधिकार-चेष्टा और अनुचित हस्तक्षेप बतलाकर, इसपर नाराजगी जाहिर न करने लग जायें। परन्तु इस सबको जाने दीजिए। हम तर्कके लिए यह मान लेते हैं कि सम्बद्ध नगरपालिकाएँ *कुछ समयतक* अपने अधिकारोंका प्रयोग इस प्रकार

१. देखिए "पत्र: प्रार्थनापत्र भेजते हुए," पृष्ठ ५४।

करेंगी कि वे 'जमे हुए कारोबारों' को छेड़ती हुई न जान पड़ें। सम्भव है कि हमने अपने प्रार्थना-पत्रमें *टाइम्स ऑफ़ नेटाल* द्वारा दिये हुए जिस इशारेका जिक्र किया था वे उसीपर अमल करने लगें और 'धीरे-धीरे उन्मूलन' की कार्रवाई इस प्रकार करें कि उसके कारण कोई हलचल न मचे। इतना तो निश्चित है कि सरकारके पत्रसे कुछ राहत मिली भी तो वह केवल अस्थायी होगी, और अन्तमें वह रोगकी निवृत्ति करनेके स्थानपर उसको बढ़ा ही देगी। आवश्यकता तो इस बातकी है, और हमारी नम्र सम्मतिमें कमसे-कम इतना तो किया ही जाना चाहिए, कि अधिनियममें सरकार द्वारा सुझाया हुआ परिवर्तन कर दिया जाये। अर्थात्, नगरपालिकाओंके निर्णयोंके विरुद्ध उच्चतम न्यायालयमें अपील करनेका अधिकार दे दिया जाये। क्योंकि, सच तो यह है कि, यह अधिनियम ही बुरा और अ-ब्रिटिश है। इसके द्वारा दिये गये अधिकार मनमाने और ब्रिटिश-शासित प्रदेशोंके नागरिकोंके प्राथमिक अधिकारोंमें भारी दखल देनेवाले हैं। जहाँतक हम जानते है, नगरपालिकाओंने ये अधिकार कभी नहीं माँगे थे। हाँ, उन्होंने यथामति कार्य करनेके अधिकार जरूर माँगे थे। परन्तु यह अधिनियम बहुत आगे बढ़ गया है। इसने तो उन्हें ही उनका उच्चतम न्यायालय बना दिया है।

हमने इस विषयमें आपसे फरियाद करनेका साहस इस खयालसे किया है कि आपको बतला दें कि विक्रेता-परवाना अधिनियमके सम्बन्धमें क्या-कुछ हो रहा है और हमारे ऊपर-निर्दिष्ट प्रार्थनापत्रमें जो भय प्रकट किये गये थे वे कितने सत्य सिद्ध हो चुके हैं। हमारी ओरसे नेटाल-सरकारको निम्न पत्र लिखे गये हैं और ये स्वयं स्पष्ट हैं:

> आपके गत मासकी १३ तारीखके पत्रके सम्बन्धमें फिर निवेदन है कि साम्राज्य-सरकार और स्थानीय सरकारमें जो पत्र-व्यवहार चल रहा है उसे देखते हुए यह बतला देना अनुचित न होगा कि "विक्रेता-परवाना सम्बन्धी प्रार्थनापत्र" में जो भय प्रकट किया गया था वह कितना सत्य निकला है। मैं सब स्थानोंसे ठीक-ठीक जानकारी एकत्र नहीं कर पाया हूँ, परन्तु जो जानकारी मुझे अबतक मिली है वह अत्यन्त निराशाजनक है। डंडीमें पहले तो परवाने देनेसे इनकार कर दिया गया था, परन्तु अपील करनेपर वे एक शर्त मढ़कर दिये गये। शर्त परवानोंकी पीठपर लिख दी गई, जो यह है: "यह परवाना साफ-साफ इस शर्तपर दिया जा रहा है कि इसे इसी इमारतके लिए फिरसे नया नहीं किया जायेगा। निकायकी आज्ञासे — (ह०) फ्रांज० जे० बर्कट, परवाना-अधिकारी और नगरका क्लार्क।" पूछनेपर कई परवानेवालोंने जवाब दिया कि हमारा खयाल तो यह है कि हमारे परवानोंपर यह शर्त इस कारण लगाई गई है कि हमारी दूकानें लकड़ीके तख्तों और लोहेकी चादरोंकी इमारतोंमें थीं। मालूम हुआ है कि डंडीमें हेंडले ऐंड सन्स और हार्वे ग्रीनेकर ऐंड कम्पनीकी दूकानोंका सामना तो ईंटोंका है, शेष सारे भाग तख्तों और टीनके ही बने हुए हैं। वहाँके व्यापारी टेलर ऐंड फाउलरकी दूकान सारीकी सारी ही तख्तों और टीनकी बनी हुई है। न्यूकैसिलमें जिनको परवाना देनेसे पिछले वर्ष इनकार कर दिया गया था उन्हें इस वर्ष भी इनकार कर दिया गया है। नगर-परिषदने दो अर्जदारोंको अपनी दूकानोंका माल बेचनेके लिए समय देनेकी कृपा की है, परन्तु इससे इन दोनों व्यापारियोंको जो नुकसान हुआ उसकी पूर्ति थोड़े ही हो सकती है। इनमें से एक अब्दुल रसूलका कारोबार बड़ा था और वह तख्तों तथा टीनकी एक दूकानका मालिक था। परिषदको बता दिया गया था कि जिस दूकानका मूल्य इस समय उसके लिए १५० पौंड है, वह यदि बेचनी पड़ी तो उसका प्रायः कुछ भी मूल्य नहीं मिलेगा।

मुझे मालूम हुआ है कि वेरुलममें दो अर्जदारोंके पास पिछले साल तो परवाने थे, परन्तु इस साल उन्हें वे देनेसे इनकार कर दिया गया। फल यह हुआ कि वे दोनों और उनके नौकर, सबके सब, अपेक्षाकृत कंगाल हो गये हैं।

लेडीस्मिथमें एम० सी० आमला नामके एक व्यक्ति कई वर्षोंसे व्यापार कर रहे थे। इस वर्ष उनका परवाना यह कहकर रद कर दिया गया कि जिस जगह वे दूकान करते हैं वह नगरकी मुख्य गलीमें होनेके कारण केवल किसी यूरोपीय सौदागरके लायक है। उन्होंने एक और ऐसी इमारतमें दूकान खोलनेके परवानेकी अर्जी दी, जो एक भारतीय दूकानके साथ लगी हुई थी और जिसका मालिक भी दूकानका मालिक ही था। परन्तु यह प्रार्थना भी वही कारण बताकर अस्वीकृत कर दी गई। यहाँ इतना बता देनेकी मुझे इजाजत दी जाये कि इसी गलीमें और भी कई भारतीय दूकानें हैं।

पोर्ट शेप्स्टोनमें दो बड़े भारतीय व्यापारियोंने हाल ही में अपना कारोबार दो अन्य भारतीयोंके हाथ बेचा था। उन दोनोंने परवानेकी अर्जी दी, परन्तु परवाना-अधिकारीने उसे अस्वीकृत कर दिया। परवाना-निकायमें अपील करनेका भी कुछ बेहतर नतीजा नहीं निकला। अब वे सोच रहे हैं कि करें तो क्या करें।

यहाँ नम्र निवेदन है कि यह बात बड़ी गम्भीर है कि एक व्यक्ति तो केवल भारतीय होनेके कारण अपना कारोबार बेच नहीं सकता और दूसरा, भारतीय होनेके कारण ही, उसे खरीद नहीं सकता। क्योंकि, इस प्रकारके मामलोंमें परवाना न देनेका अर्थ यह हो जाता है कि बेचना खरीदना भी बन्द हो जाये; और वह हो भी तो लुक-छिपकर हो।

एक अन्य भारतीय अपनी दूकान डंडी कोल कम्पनीको बेचकर और वहाँ अपना सारा कारोबार समेटकर डर्बनमें आ गया, और यहाँ उसने अमगेनी रोडपर पहलेसे परवाना-प्राप्त एक दूकान खरीदकर उसमें स्वयं व्यापार करनेके लिए परवानेकी अर्जी दी। उसे परवाना-अधिकारीने परवाना दिया तो सही, परन्तु कई बार अर्जियाँ देने और भारी खर्च करके डर्बनका एक बड़ा वकील करनेके पश्चात्; और वह भी केवल थोड़े-से समयके लिए, जिससे कि प्रार्थीने परवाना मिल जानेकी आशामें जो माल खरीद लिया था उसे वह बेच सके।

ये कुछ मामले तो ऐसे हैं जिनमें कि जमे-जमाये कारोबारवालोंपर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। परन्तु ऐसे उदाहरण अनगिनत हैं जिनमें कि बिलकुल भले और पूंजीवाले व्यक्तियोंको केवल भारतीय होनेके कारण परवाना देनेसे इनकार कर दिया गया; यह भी कहा गया कि उनके पास पिछले साल भी परवाना नहीं था।

भारतीयोंको यह देखकर संतोष हुआ है और वे इसके लिए कृतज्ञ भी हैं कि, सरकार स्वयं चाहती है कि जिन भारतीयोंका कारोबार जम चुका है उनको कोई हानि न पहुँचे। और उसने शायद इसीलिए कई नगर-परिषदों और नगर-निकायोंको इस आशयके पत्र भी लिखे हैं कि, यदि उन्होंने जमे-जमाये कारोबारवालोंको न छेड़नेका ध्यान न रखा तो शायद भारतीयोंको सर्वोच्च न्यायालयमें अपील करनेका अधिकार देनेके लिए कानून बनाना पड़ जाये। परन्तु मैं बताना चाहता हूँ कि निकायोंके नाम इस प्रकारकी अपीलका कुछ असर हुआ भी तो वह शायद स्थायी नहीं होगा और

> भारतीय व्यापारी पूर्ववत् भयंकर दुविधाकी अवस्थामें पड़े रहेंगे। ऊपर जिस पत्रका जिक्र हुआ है उसमें सुझाया हुआ परिवर्तन, मेरी नम्र सम्मतिमें, है तो न्यायका एक छोटा-सा कार्य, परन्तु जिन भारतीय लोगोंका कारोबार उपनिवेशमें जम चुका है उनके लाभकी दृष्टिसे यह अत्यन्त अभीष्ट है।
>
> निवेदन है कि इस पत्रकी बातोंको आप परम माननीय उपनिवेश-मंत्रीतक पहुँचा देनेकी कृपा करें।
>
> दूसरा पत्र :
>
> मैंने इसी महीनेकी ६ तारीखको विक्रेता-परवाना अधिनियमके विषयमें जो पत्र लिखा था, उसमें एक भूल रह गई थी। उसे मैं ठीक कर देना चाहता हूँ।
>
> जिस प्रकारकी कठिनाइयाँ होनेकी मैंने अपने पत्रमें चर्चा की है उस प्रकारकी कठिनाइयोंका पोर्ट शेप्स्टोनमें केवल एक मामला हुआ है। दूसरा मामला परवाना-अधिकारीतक पहुँचा ही नहीं, क्योंकि जिस वकीलको ये दोनों मामले सौंपे गये थे उसने पहले मामलेके दुर्भाग्यपूर्ण परिणामके कारण अपने दूसरे मुअक्किलको आगे न बढ़नेकी सलाह दे दी। अब दूसरी अर्जी भी पेश करनेकी तैयारी की जा रही है।

पोर्ट शेप्स्टोनके विषयमें इतना और बतला देना आवश्यक है कि वहाँ परवाना देनेसे इनकार, नेटालकी विधान-सभामें उस जिलेके एक सदस्य द्वारा इस आशयका प्रश्न पूछा जानेके बाद तुरन्त ही किया गया था कि क्या इन जिलोंमें भारतीयोंको परवाने बिना सोचे-समझे दिये जा रहे हैं। सरकारने इसका जवाब यह दिया था कि इन जिलोंमें जिला मजिस्ट्रेट ही परवाना-अधिकारी भी हैं, और उन्हें बतला दिया गया है कि आपको अपनी समझके अनुसार चलनेका अधिकार है। स्पष्ट है कि पोर्ट शेप्स्टोनके मजिस्ट्रेटने इशारा ले लिया और उसने परवाना देनेसे इनकार कर दिया। यह बात, *नेटाल विटनेस* में लेडीस्मिथ स्थानिक निकायके नाम उपर्युक्त सरकारी पत्र प्रकाशित होनेसे कुछ दिन पहलेकी है।

इस प्रसंगमें यह तो बतलानेकी आवश्यकता ही नहीं कि कठिनाइयोंके उदाहरण केवल वही नहीं हैं जो कि किसी न किसी प्रकार अधिकारियोंतक पहुँचा दिये जाते हैं। इस अधिनियमका निरोधक प्रभाव बहुत भयंकर हुआ है। इसके कारण बहुत-से गरीब व्यापारियोंने तो निराशाके मारे अपने परवाने फिर जारी करवानेकी अर्जियाँ ही नही दीं। और ऐसे व्यापारियोंकी संख्या इनसे भी अधिक है जिन्होंने परवाना-अधिकारी द्वारा अपना प्रार्थनापत्र अस्वीकृत कर दिया जानेपर, नगरपालिका या परवाना-निकाय आदि अपील सुननेवाली किसी भी संस्थाके सामने अपील नहीं की। पोर्ट शेप्स्टोनका दूसरा मामला इसी प्रकारका है।

इस अधिनियमके कारण भारतीय जितनी कठिनाईका अनुभव कर रहे हैं उतनी वे अन्य किसी बातसे नहीं करते। कारण यह है कि इसका प्रभाव नीचेसे लेकर ऊपरतक सैकड़ों परिश्रमी और शान्त भारतीयोंकी दाल-रोटीपर पड़ रहा है। इसका कुछ निश्चय नही कि चूँकि हममें से सबसे अच्छे व्यापारियोंको इस वर्ष परवाना मिल गया है, इसलिए उन्हें अगले वर्ष भी मिल ही जायेगा। अरक्षाकी इस अवस्थामें स्वभावतः कारोबार बन्द हो जाता है और हमारा मन बेचैन हो उठता है। अब तो आशा यही रह गई है कि इस सम्बन्धमें साम्राज्य-सरकार कुछ करेगी या करवायेगी।

इस विषयपर *टाइम्स ऑफ़ इंडियामें* निम्नलिखित अग्रलेख प्रकाशित हुए हैं। हम आपका ध्यान उनकी ओर दिलानेका साहस करते हैं :

हम ब्रिटिश आफ्रिकावासी भारतीयोंके अधिकारोंके प्रश्नकी चर्चा इतनी बार कर चुके हैं कि हमने बार-बार जो तर्क पेश किये हैं उन्हें इस अवसरपर फिर दोहराना अनावश्यक है। . . . उपनिवेशियोंने उनकी सेवाओंका लाभ लकड़हारों और पनिहारोंके रूपमें तो प्रसन्नतासे उठा लिया, परन्तु वे उन्हें व्यापारमें स्वतन्त्र प्रतिस्पर्धा करनेके अधिकारसे वंचित रखनेका प्रयत्न निरन्तर करते चले आ रहे हैं। ब्रिटिश प्रजा होनेकी हैसियतसे उनका यह अधिकार ऐसा होना चाहिए, जो छीना न जा सके। वे स्वयं तो खुले बाजारमें भारतीय व्यापारियोंके मुकाबलेमें व्यापार करनेसे इनकार करते हैं, परन्तु उन्हें परेशान करनेवाली नाना प्रकारकी पाबन्दियोंमें जकड़कर घृणितसे घृणित रूपमें संरक्षण प्राप्त करनेका प्रयत्न करते हैं। . . . ब्रिटिश परम्परा सब जातियों और सब धर्मोंके साथ निष्पक्षताका व्यवहार करनेकी रही है। परन्तु दक्षिण आफ्रिकामें उन्होंने उसके इतना विपरीत आचरण किया है कि कहाँ तो ब्रिटिश प्रजाजन ब्रिटिश छत्रछायामें उनके साथ रहकर समान अधिकारोंका उपभोग करनेकी आशा कर रहे थे और कहाँ उनके ही क्रूर अत्याचारोंसे बचनेके लिए उन्हें पुर्तगाली राज्यमें जाकर शरण लेनी पड़ रही है! यह सब देखकर हमें घोर तिरस्कार और अपमानका अनुभव होता है। जबतक स्वयं ब्रिटिश सरकार भारतीय व्यापारियोंकी रक्षा करनेका निश्चय नहीं करेगी तबतक दक्षिण आफ्रिकामें उन्हें जो अन्याय सहना पड़ रहा है उसका अन्त नहीं हो सकेगा। उन्हें उससे ऐसी आशा रखनेका अधिकार भी है। (अप्रैल १५, १८९९, साप्ताहिक संस्करण)

भारतमें रहनवाले अंग्रेजोंके मनमें यह देखकर खीझ और क्रोधके भाव उत्पन्न हो जाते हैं कि भारतीय व्यापारियोंको ब्रिटिश झंडे-तलेके ही एक प्रदेशमें जाने और बसनेसे रोका जा रहा है। उसके कारण उनके साथी प्रजाजनोंको असन्दिग्ध रूपसे यह पूछनेका अवसर मिल जाता है कि हमें ब्रिटिश साम्राज्यका नागरिक होनेसे क्या लाभ? यह देखकर भारतीयोंको ऐसा सोचनेका प्रलोभन होता है कि ब्रिटिश झंडा निरा निरर्थक चिह्न है, क्योंकि उसके नीचे एक ब्रिटिश प्रजाजन दूसरेको दुःखी और बाध्य कर सकता है; और दुःखी व्यक्ति उसके प्रतिकारका कोई उपाय नहीं कर सकता। यदि ब्रिटेनका लोकमत दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंकी इस शिकायतके विषयमें जाग्रत किया जा सके तो यह हमारा, जो भारतमें अंग्रेजोंकी हिमायत करते हैं, एक भारी योगदान होगा। इस मामलेमें न्यायका पक्ष इतना स्पष्ट है कि डर्बनमें भी उसपर कोई किसी प्रकारका विवाद नहीं कर सकता। परन्तु, इस प्रश्नका एक राजनीतिक और भावुक पहलू भी है। यदि एक बार इंग्लैण्डके लोगोंका ध्यान इस ओर खींच दिया गया कि महारानीके हजारों ईमानदार और भले आचरणवाले प्रजाजनोंको साम्राज्यके एक भागसे हटकर दूसरेमें जानेपर नागरिकताके साधारणतम अधिकार देनेसे भी इनकार किया जा रहा है तो वहाँकी जन-भावना एकदम प्रभावित और जाग्रत हो जायेगी। . . . ब्रिटेनकी लोक-सभामें क्या एक भी सदस्य ऐसा नहीं है, जो लज्जा और अन्यायकी यह कहानी सुनाकर पीड़ितोंके साथ हुए अन्यायका प्रतिकार करवानेकी कुछ आशा रखता हो? . . . (अप्रैल २२, १८९९, साप्ताहिक संस्करण)

हमारा खयाल है कि इसमें हमें और कुछ भी जोड़नेकी आवश्यकता नहीं है। आशा है कि आप पहलेके समान अब भी हमारी ओरसे प्रयत्न करनेकी और वर्तमान दुःखदायी अवस्थाका शीघ्र अन्त करवानेकी कृपा करेंगे।

आपके आज्ञाकारी सेवक,
अब्दुल कादिर
(एम० सी० कमरुद्दीन ऐंड कं०)
तथा ३० अन्य

एक मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३२५२) से।

## ५०. तार : उपनिवेश-सचिवको

सितम्बर ९, १८९९

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

पत्र[1] मिला, धन्यवाद। रोजाना चिन्तापूर्वक पूछताछ हो रही है। तुरन्त सहायता आवश्यक[2]। सुना है ब्रिटिश एजेंट भी सरकारके पास पहुँचे। सादर निवेदन, सुझावके अनुसार भारतीयोंको आने देनेमें कोई हानि नहीं। लड़ाई[3]के बाद प्रतिबन्ध ढीले किये जायें तो समय निकल चुकेगा। अच्छे अच्छे लोग रैंड त्याग रहे हैं, तब घटनाओंको भारतीय चुपचाप बैठे देख नहीं सकते। ब्रिटिश प्रजाजन आपत्तिसे बचनेके लिए ब्रिटिश भूमिमें न जा सकें इसका दुःख अवर्णनीय है।

गांधी

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३२८८) से।

१. गांधीजीका वह पत्र, जिसका कि यह उत्तर था, उपलब्ध नहीं है।

२. ट्रान्सवालसे नेटालमें भारतीयोंके प्रवेशको विनियमित करनेवाले 'प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियम' के लागू करनेमें ढिलाईकी प्रार्थना की गई थी।

३. उस समय बोअर युद्ध छिड़ने ही वाला था।

## ५१. एक परिपत्र

१४, मर्क्युरी लेन
डर्बन
सितम्बर १६, १८९९

श्रीमन्,

ट्रान्सवालवासी भारतीयोंकी ओरसे जो पत्र[1] प्रिटोरिया-स्थित माननीय ब्रिटिश एजेंटको भेजा गया है उसकी एक नकल मैं इसके साथ नत्थी कर रहा हूँ। तनातनी प्रति घण्टे बढ़ती जा रही है और जब यह पत्र आपके हाथोंमें पहुँचेगा तबतक क्या हो जायेगा, यह कहना कठिन है। परन्तु यदि हमारी सरकार और ट्रान्सवालके बीच कोई समझौता हो तो उसमें भारतीय प्रश्नको किनारे न रख दिया जाये, इसलिए ब्रिटिश भारतीयोंपर असर करनेवाली स्थितिसे आपको अवगत रखना उचित समझा गया है। साथकी नकलसे मालूम हो जायेगा कि ट्रान्सवाल सरकार जोहानिसबर्ग नगर-परिषदके विनियमोंको स्वीकृति देनेमें किस तरह १८८५ के कानून ३ से भी आगे बढ़ गई है। ऐसे विनियम बनाने या भारतीयोंको बस्तियोंमें जमीनके मालिक बननेसे रोकनेका कोई आधार है ही नहीं। तथापि, मुख्य मुद्दा तो वह है, जो ब्रिटिश एजेंटको भेजे हुए पत्रके तीसरे अनुच्छेदमें बताया गया है; अर्थात्, भारतीयोंको बस्तियोंमें हटानेके लिए, कानूनके अनुसार, सफाई-सम्बन्धी कारणोंका अस्तित्व सिद्ध किया जाना जरूरी है। इस विषयमें हस्तक्षेपकी बहुत गुंजाइश है।

आपका आज्ञाकारी,
(ह०) मो० क० गांधी

गांधीजी द्वारा हस्ताक्षरित अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३२९५-ए) से।

१. देखिए "पत्र : ब्रिटिश एजेंटको" जुलाई २१, १८९९ ।

# ५२. नेटाल भारतीय कांग्रेसकी दूसरी कार्यवाही[1]

[अक्टूबर ११, १८९९ के बाद]

पहली कार्यवाही कांग्रेसकी स्थापनाके एक वर्ष बाद अगस्त १८९५[2] में प्रकाशित की गई थी। अनेक कारणोंसे इस बीच दूसरी कार्यवाही तैयार करना सम्भव नहीं हुआ।

*आय-व्यय*

इसके साथ नत्थी किये गये पर्चे[3]से सदस्य एक नजरमें जान सकेंगे कि तीन वर्षोंमें कितना खर्च हुआ है। इससे मालूम हो जायेगा कि मुख्य-मुख्य रकमें प्रदर्शन-संकट[4]के समय खर्च की गई थीं। अकेले प्रार्थनापत्र[5]पर ही लगभग १०० पौंड खर्च आ गया था। यदि इन वर्षोंमें १८९४–९५ की अपेक्षा औसतन अधिक व्यय हुआ है, तो आयमें भी बहुत वृद्धि हुई है। पहली कार्यवाहीके प्रकाशनका एक अच्छा और शायद सबसे महत्त्वपूर्ण परिणाम यह निकला कि कांग्रेसने तुरन्त निर्णय कर दिया कि सारे सालका चन्दा पेशगी अदा किया जाये; और हर महीने चन्दा एकत्र करनेका झंझटभरा तरीका छोड़ दिया गया। फलतः १८९५–९६ का चन्दा एकदम वसूल हो गया; और १८९६ में कुछ कार्यकर्ताओंने जो सरगर्मी दिखाई वह सचमुच आश्चर्यजनक थी। उन्होंने न केवल अपना समय दिया, बल्कि उनमें जो समर्थ थे वे चन्दा एकत्र करनेके लिए इधर-उधर जानेको अपनी गाड़ियाँ भी साथमें ले आये। इस सम्बन्धमें स्टैंजरकी यात्रा सबसे अधिक स्मरणीय है। अध्यक्ष श्री अब्दुल करीम हाजी आदम, श्री अब्दुल कादिर, श्री दाऊद मुहम्मद, श्री रुस्तमजी, श्री हाशम जुम्मा, श्री मदनजीत, श्री पारुक, श्री हुसेन मीरन और श्री कथराडाने अवैतनिक मन्त्रीको साथ लेकर वेरुलम, टोंगाट, अमलाटी, स्टैंजर तथा परेके जिलेका दौरा किया। इस दौरेके लिए अध्यक्ष श्री मुहम्मद दाऊद तथा श्री अब्दुल कादिरने अपनी गाड़ियाँ दीं। टोंगाटमें श्री कासिम भानको सदस्य बनानेके लिए ये सदस्य उनकी दूकानमें आधी राततक धरना देकर बैठे रहे। उन्होंने यह परवाह भी नहीं की कि भोजन किया है या नहीं। मगर श्री कासिम अपने हठ पर अड़े रहे, इसलिए कार्यकर्ताओंको वापस जाना पड़ा। किन्तु उन्होंने ऐसा इसलिए किया कि वे अगली सुबह अपना काम दूनी शक्तिसे कर सकें। उनमें से एक सदस्य तो बहुत सवेरे उठकर, चायकी बूँदतक मुँहमें डाले बिना ही, उनकी दूकानमें जा डटा। अन्य सदस्य भी बिना कुछ खाये वहाँ दोपहरतक बैठे रहे। उन्होंने दूकानको तभी छोड़ा जब कि श्री भान सदस्य बन गये और उन्होंने अपना चन्दा दे दिया। इसके बाद वे दूसरे स्टेशनको गये। रास्तेमें श्री हाशिम जुम्मा अपने घोड़ेसे गिर पड़े और कुछ क्षणोंतक बिलकुल बेहोश रहे।

१. यह कार्यवाहीका मसविदा है जिसमें गांधीजीके हाथसे किये गये बहुत-से संशोधन हैं। इसकी कोई अन्य प्रति उपलब्ध नहीं। यह कार्यवाही विभिन्न समयोंमें अलग-अलग अंशोंमें लिखी गई थी और अक्टूबर ११, १८९९ के बाद पूरी हुई। इसी तारीखको बोअर-युद्ध छिड़ा था, जिसका उल्लेख पृष्ठ ११८ पर किया गया है।

२. देखिए खण्ड १, पृष्ठ २३५–२४३।

३. यह उपलब्ध नहीं है।

४. यहाँपर भारतीय-विरोधी उस प्रदर्शनका उल्लेख है जो जनवरी १३, १८९७ को डर्बनमें गांधीजी तथा उनके भारतीय सहयात्रियोंके जहाजसे उतरते समय किया गया था। देखिए खण्ड २, पृष्ठ १७८–७९।

५. देखिए खण्ड २, पृष्ठ १९७ और आगे।

सड़क खराब थी और शाम हो गई थी, इसलिए सुझाव दिया गया कि सभी वापस चले जायें। किन्तु श्री हाशम जुम्माने एक नहीं सुनी और यात्रा जारी रही। स्टैंजर पहुँचनेपर यह सारी मेहनत सफल हो गई। श्री मुहम्मद ईसपजी, जिनका कि अब दुर्भाग्यवश देहावसान हो चुका है, टोंगाटमें कार्यकर्ताओंका उत्साह देखकर स्वयं प्रोत्साहित हो उठे। यद्यपि वे अपने किसी महत्त्वपूर्ण कार्यके लिए डर्बन जा रहे थे, तथापि वे स्टैंजर जानेके लिए कार्यकर्ताओंके साथ हो लिये। वहाँ उन्होंने सबकी खूब खातिरदारी की। उनके जरिये केवल स्टैंजरमें कांग्रेसके लिए ५० पौंडसे भी अधिककी रकम प्राप्त हुई।

हमारे पूर्वाध्यक्ष श्री अब्दुल करीम हाजी आदमके नेतृत्वमें सदस्योंकी उत्कृष्ट निष्ठाके ऐसे ही कई उदाहरण दिये जा सकते हैं। पहाड़ी प्रदेशसे — जहाँ बाकायदा कोई सड़क नहीं बनी हुई थी — गुजरकर न्यूलैंड्सकी यात्रा, बिना मार्गदर्शकके रातको खेतोंसे होते हुए वटरी प्लेस जाना, इस्पिजोकी यात्रा, श्री ईसपजी उमरकी दूकानकी यात्रा, जहाँ कि सदस्य ५ बजे शामसे लेकर ११ बजेतक भोजन किये बिना ही बैठे रहे — इन सबपर अलग-अलग एक अध्याय लिखा जा सकता है। किन्तु यहाँ इतना कहना पर्याप्त है कि उस समय कार्यकर्ताओंने अपने उद्देश्यके प्रति जो उत्साह, लगन तथा अनन्यभाव दिखाया उसकी बराबरी शायद ही कभी हुई हो। फिर भी, दुर्भाग्यवश अब वही बात हमारे लिए नहीं कही जा सकती। वह प्रबल जोश-खरोश अब, मालूम पड़ता है, ठंडा पड़ गया है। ऐसी स्थितिके बहुत-से कारण हैं। उनमें से कुछ ऐसे हैं जिनपर सदस्योंका कोई वश नहीं चल सकता। किन्तु यह लिखते दु:ख होता है कि सदस्य जितना कर सकते थे उतना उन्होंने नहीं किया और दो वर्ष पूर्व हमें जो यह दृढ़ आशा थी कि हम इस समय तक ५,००० पौंडकी एक निधि एकत्र कर लेंगे, वह फिलहाल तो एक स्वप्न-मात्र होकर रह गई है। कांग्रेसपर ३०० पौंड, शायद ४०० पौंड, देनदारी है। और यह कहना मुश्किल है कि यह रकम कैसे प्राप्त की जायेगी। मैरित्सबर्ग, चार्ल्स टाउन, न्यूकैसिल, वेरुलम, टोंगाट, स्टैंजर और अन्य स्थानोंसे चन्दा वसूल नहीं हुआ; और उसकी वसूलीके लिए अभीतक कुछ किया भी नहीं गया। एक समय था जब कि सदस्योंकी कुल संख्या ३०० तक पहुँच गई थी; लेकिन ठीक-ठीक कहें तो, वह अब केवल ३७ है। मतलब यह कि केवल ३७ सदस्य ऐसे हैं जिन्होंने आजतकका चन्दा अदा किया है। अब समय आ गया है जब कि सदस्योंको अपनी दीर्घ निद्रासे जाग जाना चाहिए, नहीं तो समय हाथसे निकल सकता है।

### *अक्टूबर १८९५ में कांग्रेसका कार्य*

अक्टूबर १८९५ में ट्रान्सवालकी संसद (फोक्सराट) ने एक प्रस्ताव पास कर ब्रिटिश प्रजाजनोंको अनिवार्य सैनिक-सेवासे मुक्त कर दिया। साथ ही यह शर्त भी लगा दी कि "ब्रिटिश प्रजाजनों" में भारतीय शामिल नहीं हैं। यद्यपि ठीक-ठीक कहें तो दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यके अपने भाईबन्दोंके मामलोंमें सक्रिय हस्तक्षेप करना हमारा काम नहीं था, फिर भी उनकी सहमतिसे कांग्रेसने इस प्रश्नको हाथमें लिया। एक तारका मसविदा तैयार करके ट्रान्सवालसे अपने लंदन-वासी हमदर्दियोंको भेजा गया। समय आने पर एक प्रार्थनापत्र[1] भी भेज दिया गया। जहाँतक मालूम हुआ है, इसके फलस्वरूप ब्रिटिश सरकारने अभीतक इस आपत्तिजनक प्रस्तावको मंजूर नहीं किया है।

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ २५८।
२. देखिए खण्ड १, पृष्ठ २५८।
३. देखिए खण्ड १, पृष्ठ २५८–२६०।

इसी महीने हमारा परिचय ब्रिटिश संसदके एक अनुदार दलीय सदस्य श्री अर्नेस्ट हैचसे हुआ। वे दक्षिण आफ्रिकाका भ्रमण कर रहे थे। जोहानिसबर्गके कुछ लोगोंने उन्हें भारतीय बस्तियोंमें ले जाकर वहाँका सबसे गन्दा मुहल्ला दिखाया। इसपर अखबारोंने लिखा कि श्री हैचने जो कुछ देखा उससे उन्हें बहुत घृणा हुई और वे भारतीयोंके प्रश्नका अध्ययन करने-वाले हैं। जोहानिसबर्गसे वे डर्बन आये। कांग्रेसके कुछ सदस्योंने यह वाजिब समझा कि उनसे मिलकर इस प्रश्नपर भारतीयोंका दृष्टिकोण उनके सामने रखा जाये। करीब ५० भारतीय प्रतिनिधियोंका एक शिष्टमण्डल उनसे मिला। जो-कुछ उनसे कहा गया उसका उन्होंने अत्यन्त सहानुभूतिपूर्ण उत्तर दिया और वादा किया कि इंग्लैण्डमें उनसे जो-कुछ हो सकेगा, वे करेंगे। उनकी रायमें हम नरमीके साथ अपना कार्य कर रहे थे, इसलिए उन्होंने उसका अनुमोदन किया। श्री हैचको कुछ अनोखी भारतीय वस्तुएँ भेंट की गईं।

मताधिकारका प्रश्न अभी हल हुआ ही नहीं था, और १८९५के उत्तर भागमें अखबारोंने इसपर खूब चर्चा की। उस समय मालूम पड़ता था, हर व्यक्ति समझता है कि भारतीय किसी ऐसे नये विशेषाधिकारका दावा करनेकी कोशिश कर रहे हैं, जिससे अबतक उन्हें वंचित रखा गया था; कि, वे चाहते हैं, प्रत्येक भारतीयको मत देनेका अधिकार मिले, जबकि भारतमें उन्हें वैसा करनेका कभी भी कोई अधिकार नहीं मिला; कि यदि दक्षिण आफ्रिकाके वतनियोंको यह अधिकार नहीं मिल सकता तो किसी भारतीयको कैसे मिल सकता है? इन सब गलत-बयानियोंका जवाब देना और गलतफहमियोंको दूर करना बिलकुल जरूरी हो गया है। *भारतीयोंका मताधिकार : दक्षिण आफ्रिकाके प्रत्येक अंग्रेजके नाम अपील*[1] के नामसे एक पुस्तिका तैयार की गई। उसकी सात हजार प्रतियाँ छापी गईं। उनमें से एक हजार प्रतियोंकी कीमत श्री अब्दुल करीम हाजीने दी और उन्हें दूर-दूरतक वितरित किया गया। कुछ इंग्लैंडमें भी बाँटी गईं। बहुत-से दक्षिण आफ्रिकी अखबारोंने इस पुस्तिका पर लिखा, जिससे उनमें कुछ तो सहानुभूतिपूर्ण, कुछ कटुतापूर्ण तथा कुछ अत्यन्त उपेक्षापूर्ण पत्र प्रकाशित हुए। लंदन टाइम्सने इसपर एक विशेष लेख प्रकाशित किया और उसमें लेखकने पुस्तिकाके सभी सुझाव स्वीकार कर लिए। यह दिसम्बर १८९५ की बात है।

१८९६ के आरम्भमें कांग्रेसने जो प्रश्न उपनिवेश-मन्त्रीके सामने रखे थे उनमें से ज्यादा-तर अबतक अनिर्णीत ही थे; इसलिए यह आवश्यक समझा गया कि सारी स्थितिका एक सिंहा-वलोकन अपने भारत तथा लंदनके मित्रोंके सामने पेश किया जाये। एक सामान्य पत्र[2] तैयार किया गया और नेटालके प्रतिनिधि भारतीयोंके हस्ताक्षरोंसे उसे उनके पास भेज दिया गया। लगभग उसी समय जूलूलैंडमें बसाये गये नये नगर नोंदवेनी-सम्बन्धी विनियम प्रकाशित हुए थे[3]। उनमें व्यवस्था की गई थी कि उस नगरमें भारतीय मकानके लिए जमीन न तो खरीद सकते हैं और न रख सकते हैं। जैसे ही वे विनियम सरकारी गजटमें प्रकाशित हुए इस भेदभावके खिलाफ विरोध प्रकट करते हुए एक प्रार्थनापत्र[4] तैयार करके परमश्रेष्ठ गवर्नरको भेजा गया। *नेटाल मर्क्युरी*ने हमारे दावेको न्यायानुकूल माना। फिर भी परमश्रेष्ठ इस पाबन्दीको नहीं हटा सके।

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ २६०।

२. यह उपलब्ध नहीं है।

३. देखिए खण्ड १, पृष्ठ २९९।

४. देखिए खण्ड १, पृष्ठ २९९–३०१।

इसपर एक प्रार्थनापत्र[1] श्री चेम्बरलेनको भेजा गया। प्रार्थनापत्रके पहुँचनेपर सर मंचरजी मेरवानजी भावनगरीने लोकसभामें उसपर एक प्रश्न उठाया। लंदन टाइम्सने इस मामलेपर लगभग दो कालमोंका लेख छापा। राष्ट्रीय कांग्रेसकी समिति[2]ने भी इस मामलेको उठा लिया। प्रसंगवश यहाँ यह भी ध्यानमें रहे कि उक्त विनियमोंके प्रकाशित होनेपर यह तथ्य भी प्रकाशमें आया कि पहले बसाये गये मेलमॉथ तथा एशोवे नामक नगरोंके सम्बन्धमें भी इसी प्रकारके विनियम पास किये जा चुके थे। उपर्युक्त प्रार्थनापत्रमें इन दोनों बस्तियोंको भी शामिल कर लिया गया था। अब यह पाबन्दी हटा ली गई है। यदि श्री आदमजी मियाखाँ चौकशे न रहते तो यह मामला कांग्रेसकी नजरसे चूक जाता, क्योंकि उन्हें ही सबसे पहले इस मामलेका पता चला और उन्होंने कांग्रेसके अवैतनिक मन्त्रीका ध्यान इस ओर खींचा था।

मई १८९६ के आसपास बहुत-सी जायदादोंका निरीक्षण तथा काफी सलाह-मशविरा करनेके बाद कांग्रेसने १०८० पौंडमें निद्धा नामक एक स्वतन्त्र भारतीय महिलाके नाम रजिस्टर की गई एक जायदाद खरीद ली। इस जायदादमें ईंटका एक मकान था और एक दूकान थी। सर्वसम्मतिसे यह निश्चय किया गया कि यह जायदाद उन ७ व्यक्तियोंके नाम रजिस्टर कराई जाये, जो कांग्रेसके न्यासियों (ट्रस्टियों) के रूपमें कांग्रेसकी ओरसे चेकोंपर हस्ताक्षर करनेका अधिकार रखते थे। इस जायदादसे करीब १० पौंड प्रतिमास किराया आता है, कर लगानेके लिए इसकी कीमत २०० पौंड आँकी गई है और इस वर्ष निगमको इसका वार्षिक कर पौंड ९-१७-६ दिया गया है। इन इमारतोंका गार्डिनर फायर एश्यूरेन्स सोसाइटीमें ८०० पौंडका बीमा कराया गया है। किरायेदारोंमें से अधिकतर तमिल लोग हैं। उन्हें एक गुसलखानेकी सख्त जरूरत थी। इसलिए स्वयंसेवकोंने उसका एक अस्थायी ढाँचा तैयार करके दे दिया। श्री अमद जीवाने उसके लिए मुफ्त ईंटें दीं। हिसाब लगानेसे मालूम होता है कि इससे कांग्रेसको ८ पौंडसे ज्यादाकी बचत हुई है। इस प्रकार जब अप्रैल १८९६ में कांग्रेसकी आर्थिक अवस्था अच्छी जान पड़ी और उसे श्री मूसा हाजी आदमके घरसे हटाना आवश्यक हो गया, तब यह महसूस किया गया कि अब तो कांग्रेस बखूबी एक कदम और आगे बढ़कर कोई अच्छा मकान ले सकती है। तदनुसार यह बड़ा हाल जिसमें कि अब उसका दफ्तर है, ५ पौंड मासिक कियायेपर लिया गया। पहले जो किराया दिया जाता था उससे यह ३ पौंड अधिक है।

नेटालकी संसदके १८९६ के पहले अधिवेशनके समय ज्ञात हुआ कि श्री चेम्बरलेनने नेटालके मन्त्रियोंको यह सलाह देनेका निश्चय किया है कि वे उपनिवेशकी कानूनी पुस्तकसे उस अधिनियमको निकाल दें, जिसके द्वारा खास तौरसे एशियाई वंशोंके लोगोंको मतदाता-सूचीमें शामिल होनेसे रोकनेकी व्यवस्था की गई है; और उसके बदले एक सामान्य अधिनियम पास कर लें। इसपर एक ऐसा विधेयक पेश किया गया, जिससे वह कानून रद होता है और ऐसे देशोंके लोगों और उनके वंशजोंको संसदीय चुनावोंमें मतदाता बननेके अयोग्य ठहराया जाता है, जिनमें संसदीय मताधिकारपर आधारित चुनावमूलक प्रातिनिधिक संस्थाएँ न हों। कांग्रेसने अनुभव किया कि यद्यपि यह विधेयक भारतीयोंपर लागू नहीं होता[3] तथापि यह केवल उन्हें ही मताधिकारसे वंचित करनेके उद्देश्यसे पास किया जा रहा है। इसलिए यह आवश्यक है कि इसका विरोध किया जाये। फलतः एक प्रार्थनापत्र तैयार किया गया। उसमें प्रमुख व्यक्तियोंके विचार दिये गये थे कि भारतमें प्रातिनिधिक संस्थाओंका अस्तित्व है। यह

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३१०-३१४।
२. यह निर्देश भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी लंदनस्थित ब्रिटिश समितिकी ओर है।
३. इसमें स्पष्ट तौरपर भारतीयोंका उल्लेख नहीं किया गया था।

प्रार्थनापत्र विधानसभाको दिया गया था[१]। इससे विधानसभाके कुछ सदस्योंने विधेयकका इतना अधिक विरोध किया कि एक समय तो ऐसा लगने लगा था कि विधेयक नामंजूर ही हो जायेगा। तब सर जान रॉबिन्सनने श्री चेम्बरलेनको एक तार भेजकर उनसे संस्थाओंके पूर्व 'संसदीय मताधिकारपर आधारित'[२] यह वाक्यखंड जोड़नेकी अनुमति प्राप्त कर ली। इस परिवर्धनसे विरोधी-पक्ष बहुत कमजोर पड़ गया और विधानपरिषदमें हमारे प्रार्थनापत्रके पेश होनेपर भी[३] दोनों सदनोंने इस विधेयकको पास कर दिया। इस वादविवादके समय श्री लॉटनने *नेटाल ऐडवर्टाइज़र*को एक पत्र लिखकर अपना मत प्रकट किया कि उक्त परिवर्धनके बावजूद विधेयक, जहाँतक भारतीयोंका सम्बन्ध है, बेकार ही रहेगा। विधेयक गवर्नरको अधिकार देता है कि वह इसके अन्तर्गत आनेवालोंको विशेष छूट देना चाहे तो दे सकता है। इस विधेयकका विरोध करते हुए एक प्रार्थनापत्र उपनिवेशमन्त्रीको भेजा गया[४], किन्तु इसपर शाही स्वीकृतिकी मुहर लग चुकी है और अब यह देशका कानून बन गया है। इसके लिए हमें पूरा अधिकार है कि हम किसी भी समय परीक्षात्मक मुकदमा दायर कर यह जान सकेंगे कि जिस तरहकी संस्थाएँ विधेयकमें बताई गई हैं वैसी भारतमें है या नहीं। साथ ही हम विशेष छूटके लिए गवर्नरसे प्रार्थना भी कर सकेंगे। अभीतक इन दोनोंमें से किसीकी भी आवश्यकता नहीं पड़ी। हम सदैवसे प्रतिवाद करते आ रहे हैं कि हम राजनीतिक सत्ता नहीं चाहते, बल्कि उस अपमानपर क्षोभ अनुभव करते हैं जो कि पहले विधेयकमें भरा हुआ था। स्पष्ट है कि सम्राज्ञीकी सरकारने हमारी इस आपत्तिको मान लिया है।

मार्च १८९६ में श्री अब्दुल कादिरके घर पुत्र-जन्मका उल्लेख एक विशेष अनुच्छेदके लायक है। जन्म-समारोह कांग्रेसके सभाभवनमें मनाया गया। उसमें ५०० से भी अधिक लोग जमा हुए थे। सभाभवनमें खूब रोशनी की गई थी। श्री अब्दुल कादिरने कांग्रेसको ७ पौंड दान दिये। इसका अनुसरण और लोगोंने भी किया। उस अवसरपर जो दान दिया गया उसकी रकम ५८ पौंड तक पहुँच गई।

श्री अब्दुल्ला हाजी आदमकी अध्यक्षताके कालमें इस आशयका प्रस्ताव पास किया गया था कि जो सदस्य कांग्रेसके लिए २५ पौंड या इससे अधिक रकम जमा करे, उसे चाँदीका पदक भेंट किया जाये। पदकोंकी प्रथा शुरू करनेपर बहुत-से सदस्योंने अप्रैल १८९६ से पहले ही अपनेको इस सम्मानका अधिकारी बना लिया था। इस सम्बन्धमें श्री दाऊद मुहम्मद सबसे आगे थे। और सबकी इच्छा थी कि उनके कार्यके सम्बन्धमें यह प्रस्ताव अमलमें लाया जाये। फलतः एक विशेष बैठक बुलाई गई और एक प्रमाणपत्रके साथ उन्हें चाँदीका पदक भेंट किया गया। पदकमें उपयुक्त शब्द खुदे हुए थे।

इस समयतक घरेलू कारणोंसे अवैतनिक मन्त्रीका कुछ समयके लिए भारत जाना जरूरी हो गया। कांग्रेसने निर्णय किया कि वे अपनी भारत-यात्राका लाभ उठाकर दक्षिण आफ्रिकी ब्रिटिश भारतीयोंकी शिकायतोंको भारतीय जनताके सामने रखें। फलतः उन्हें प्रतिनिधि नियुक्त किये जानेका एक पत्र[५] दिया गया और साथमें ७५ पौंडकी एक हुंडी भी दी गई, ताकि वे इसका

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३१९-३२८।
२. देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३३३।
३. प्रार्थनापत्र विधानसभाको भेजा गया था। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३१९-३८।
४. देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३३१-५४।
५. देखिए खण्ड २, पृष्ठ ५८-५९।

उपयोग अपनी यात्रा तथा उक्त कार्यसे सम्बन्धित छपाई और अन्य जेब-खर्चमें कर सकें[1]। कांग्रेसने उन्हें एक मानपत्र[2] तथा एक स्वर्ण-पदक प्रदान किया। कांग्रेसके तमिल सदस्योंने एक विशेष बैठक बुलाई और उन्हें एक और मानपत्र भेंट किया। अवैतनिक मन्त्रीने सभी मानपत्रोंका उत्तर देते हुए कहा कि वे भेंटें समयसे पूर्व ही दे दी गई हैं। अभीतक काम समाप्त नहीं हुआ। फिर भी उन्होंने मानपत्रों तथा भेंटोंको प्रेमकी निशानीके रूपमें स्वीकार किया और कहा कि यदि वे भावनाएँ, जो लोगोंने व्यक्त की हैं, सच्ची हैं तो मेरे वापस आनेके पहले सदस्य ऐसा काम करें कि कांग्रेसके कोशमें बची हुई १९४ पौंडकी रकम चन्दा तथा दानसे बढ़कर १,१९४ पौंडकी बन जाये — उसमें १,००० पौंड और जुड़ जायें। दक्षिण आफ्रिकी अखबारोंमें इन भेंटोंकी विस्तारसे चर्चा हुई, और सर्वथा अमित्र-भावनासे नहीं। जून ५, १८९६ को अवैतनिक मन्त्रीने *पोंगोला* जहाजसे भारतकी यात्रा आरम्भ की।

उनकी अनुपस्थितिमें आदमजी मियाखाँको कार्यवाहक अवैतनिक मन्त्री नियुक्त किया गया। भारत पहुँचनेके तुरन्त बाद ही अवैतनिक मन्त्रीने *दक्षिण आफ्रिकावासी ब्रिटिश भारतीयोंकी कष्ट-गाथा : भारतीय जनतासे अपील*[3] नामक एक पुस्तिका प्रकाशित की। उसकी चार हजार प्रतियाँ छापी गई, जिन्हें दूर-दूरतक वितरित किया गया। *टाइम्स ऑफ़ इंडिया*ने उसपर सबसे पहले विचार व्यक्त किये और एक सहानुभूतिपूर्ण अग्रलेखमें सार्वजनिक जाँचकी माँग की। भारतके प्रायः सभी प्रमुख पत्रोंने इस प्रश्नको उठाया। *पायोनियर*ने शिकायतोंको स्वीकार तो किया, लेकिन कहा कि प्रश्न बहुत ही उलझा हुआ है, स्वशासित उपनिवेशोंको किसी खास नीतिपर चलनेका आदेश नहीं दिया जा सकता और वर्तमान परिस्थितियोंमें दक्षिण आफ्रिका एक ऐसा देश है जिससे उच्च वर्गके भारतीयोंको दूर ही रहना चाहिए। लंदन *टाइम्स*के शिमला-संवाददाताने पुस्तिकाका सारांश तथा पुस्तिकापर *टाइम्स ऑफ़ इंडिया* और *पायोनियर*के विचार तार द्वारा भेजे। पुस्तिका प्रकाशित होनेके बाद अवैतनिक मन्त्री बम्बईके प्रमुख व्यक्तियोंसे मिले। उन दिनों कांग्रेसके पूर्व अध्यक्ष श्री अब्दुल हाजी भी बम्बईमें थे। वे भी इन मुलाकातोंमें उनके साथ जाते थे।

माननीय श्री फीरोजशाह मेहताके सुझाव पर २६ सितम्बरको फ्रामजी कावसजी इन्स्टिट्यूटके सभाभवनमें एक सार्वजनिक सभा[4] की गई। श्री मेहताने अध्यक्षता की। सभाभवन खचाखच भरा हुआ था। अवैतनिक मन्त्रीके अपना भाषण पढ़ चुकनेके बाद दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोंके प्रति सहानुभूति प्रकट करनेके लिए सर्वसम्मतिसे एक प्रस्ताव पास किया गया और अध्यक्षको अधिकार दिया गया कि वे इस सम्बन्धमें एक प्रार्थनापत्र तैयार करके सम्राज्ञीके मुख्य भारत-मन्त्रीको भेजें। माननीय श्री झवेरीलाल याज्ञिक, माननीय श्री सयानी और *चैम्पियन*के सम्पादक श्री चेम्बर्स प्रस्तावपर बोले। बैठककी पूरी कार्यवाही दैनिक पत्रोंमें प्रकाशित हुई और प्रेसीडेन्सी असोसिएशनने कार्यवाहीका सारांश तार द्वारा लंदन भेजा।

इसके बाद अवैतनिक मन्त्री मद्रास गये और वहाँके प्रमुख व्यक्तियोंसे मिले। मद्रास महाजन सभाके तत्त्वावधानमें पच्चैयप्पा-भवनमें एक सार्वजनिक सभा करनेके लिए एक परिपत्र तैयार किया गया। उस परिपत्रपर मद्रासके विभिन्न सम्प्रदायोंके लगभग ४० प्रतिनिधि सदस्योंने हस्ताक्षर

१. देखिए खण्ड २, पृष्ठ १५०–१६६ — "भारतमें प्रतिनिधित्व : वास्तविक खर्चका हिसाब"।

२. देखिए खण्ड २, पृष्ठ ३८९–९०।

३. देखिए खण्ड २, पृष्ठ १–५७।

४. देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९५।

५. देखिए खण्ड २, पृष्ठ ७५–९०।

किये। राजा सर रामस्वामी मुदलियार सर्वप्रथम हस्ताक्षर करनेवाले थे। माननीय श्री आनन्दाचारलुने सभाकी अध्यक्षता की। सभाभवन खचाखच भरा हुआ था। भाषणके पढ़े जानेके बाद सर्वसम्मतिसे वैसे ही प्रस्ताव पास किये गये जैसे कि बम्बईमें पास हुए थे। एक विशेष प्रस्ताव भी मंजूर किया गया, जिसमें सुझाव था कि गिरमिटिया मजदूरोंको नेटाल भेजना बन्द कर दिया जाये। श्री ऐडम्स, श्री परमेश्वरम् पिल्ले तथा श्री पार्थसारथी नायडूने प्रस्तावपर भाषण दिये। सभी प्रमुख दैनिक पत्रोंने पूरी कार्यवाही प्रकाशित की। सभा समाप्त होनेपर उक्त पुस्तिकाके लिए ऐसी छीना-झपटी हुई कि सभी उपलब्ध प्रतियाँ समाप्त हो गईं और जनताकी माँग पूरी करनेके लिए मद्रासमें २००० प्रतियाँ और छपाई गईं। लंदन *टाइम्स*के शिमला-संवाददाताका तार उस पत्रमें प्रकाशित होनेके बाद नेटालके एजेंट-जनरल, सर (उस समय श्री) वाल्टर पीससे भेंट की गई और उन्होंने जवाबमें बताया कि शिकायत कोई है ही नहीं, और उन्होंने बहुत-सी अन्य बातें भी कहीं। मद्रासमें दिये गये भाषणकी विशेषता यह थी कि उसमें सर वाल्टर पीसको विस्तारके साथ उत्तर दिया गया था। पुस्तिकाके दूसरे संस्करणमें यह उत्तर परिशिष्टके रूपमें छापा गया था।

पखवारे भर मद्रासमें ठहरनेके बाद अवैतनिक मन्त्री कलकत्ता चले गये। वहाँ उन्होंने लोकमतके नेताओंसे भेंट की। *इंग्लिशमैन*, *इंडियन मिरर*, *स्टेट्समैन* तथा अन्य अंग्रेजी तथा भारतीय भाषाओंके पत्रोंने सहानुभूतिपूर्ण टीका-टिप्पणियाँ लिखीं। ब्रिटिश भारत संघ (ब्रिटिश इंडिया असोसिएशन)की समितिने अवैतनिक मन्त्रीका भाषण सुननेके लिए एक बैठक की और निर्णय किया कि भारतमन्त्रीको भेजनेके लिए एक स्मरणपत्र मंजूर किया जाये। सार्वजनिक सभा करनेकी तैयारी हो ही रही थी कि नेटालसे एक तार प्राप्त हुआ, जिसमें अवैतनिक मन्त्रीको तुरन्त वापस बुलाया गया था। इसलिए सभाका विचार छोड़ देना पड़ा और वे कलकत्तेसे बम्बईको रवाना हो गये। तथापि, पूनामें वहाँकी सार्वजनिक सभाके तत्त्वावधानमें एक सभा की गई। प्रोफेसर भाण्डारकर उसके अध्यक्ष थे। सभाने वैसे ही प्रस्ताव पास किये जैसे कि मद्रासमें हुए थे। उनपर प्रो० गोखले, माननीय श्री तिलक तथा . . .[1] ने भाषण किये।

अवैतनिक मन्त्री २७ नवम्बर, १८९६[2] को *कूरलैंड* जहाज द्वारा भारतसे रवाना हुए। *टाइम्स*के शिमला संवाददाताके उपर्युक्त तारका सारांश रायटरने दक्षिण आफ्रिकी पत्रोंको भेज दिया था। इस सारांशने भारतमें प्रचारित पुस्तिकाके बारेमें ऐसी भावना पैदा की, जिसका समर्थन पुस्तिकाके पढ़नेसे नहीं हो सकता। फिर भी उसने यूरोपीय उपनिवेशियोंको नाराज कर दिया। समाचारपत्रोंने उग्र लेख प्रकाशित किये। इससे संगठित रूपमें एशियाई-विरोधी आन्दोलनका जन्म हुआ और देशभक्त उपनिवेशी संघ (कलोनियल पैट्रिआटिक यूनियन) की स्थापना हुई। ऐसा मालूम पड़ता है कि लेखोंके प्रकाशित होते ही उक्त पुस्तिकाकी प्रतियाँ, जो यहाँ भेज दी गई थीं, पत्रोंको दी गईं। तब उन्होंने स्थितिको यथार्थ दृष्टिसे देखा और स्वीकार किया कि पुस्तिकाके विरुद्ध जिस उग्र भाषाका उपयोग किया गया उसे उचित सिद्ध करनेके लिए उसमें कुछ भी नहीं था। फिर भी आन्दोलन जारी रहा। संघने बढ़ा-चढ़ाकर ऐसे वक्तव्य दिये जो जनताके दिमागको भड़का सकते थे। इसी बीच *कूरलैंड* वहाँ पहुँचा। उससे कुछ घण्टे पहले *नादरी* वहाँ पहुँच चुका था। वह भी भारतीय मुसाफिरोंको लेकर आया था। २३ दिनका लम्बा सूतक (क्वारंटीन), प्रदर्शन-समितिका संगठन, भारतीयोंको उतरनेसे रोकनेके लिए समितिके लोगोंका जुलूस बनाकर जहाजघाट तक जाना, मुसाफिरोंका तटपर उतरना, अवैतनिक

१. दूसरे वक्ता प्रोफ़ेसर ए० एस० साठे थे।

२. जहाज बम्बईसे नवम्बर ३० को छूटा था; देखिए खण्ड २, पृष्ठ २०६।

मन्त्रीपर भीड़का आक्रमण, भारतीय पुलिस सिपाहीके वेशमें उनका बाल-बाल बच निकलना, पुलिस सुपरिटेंडेंट अलेक्ज़ैंडर तथा उनके दल द्वारा दी गई प्रशंसनीय सहायता, पत्रोंकी आवाजमें सहसा परिवर्तन, प्रदर्शन-समितिकी कार्रवाईपर दिया गया उनका कठोर निर्णय, भारतीय समाजका पुलिस द्वारा की गई सेवाओंको मान्यता देना, संकटके पूरे इतिहासपर प्रकाश डालते हुए प्रदर्शनके सम्बन्धमें श्री चेम्बरलेनको . . . पृष्ठका प्रार्थनापत्र भेजना — ये सभी घटनाएँ कांग्रेसी सदस्योंके मनमें ताजी हैं। इस संकटकालमें भारतीय चरित्रकी दो विशेषताएँ प्रमुख रूपसे प्रकट हुईं। दो अभागे जहाजोंके पीड़ितोंकी सहायताके लिए सूतक-कोशकी स्थापना एक ऐसा कार्य था जिसमें भारतीय उदारताका अत्यन्त हितकर रूप प्रकट हुआ तथा अतिशय सन्तापके समयमें भी उनके शान्त व्यवहार और मौन समर्पणने उन लोगोंसे भी प्रशंसा प्राप्त की जिनसे हमारे लोगोंके गुणोंकी ओर ध्यान देनेकी कमसे-कम सम्भावना मानी जाती थी।

इसके बाद संसदका जो अधिवेशन हुआ उसमें सरकारने प्रदर्शन-समितिको दिये गये अपने वादेके अनुसार चार एशियाई-विरोधी विधेयक — अर्थात्, सूतक, प्रवासी-प्रतिबन्धक, विक्रेता-परवाना और गैरगिरमिटिया भारतीय-संरक्षण विधेयक — पेश किये। इनके विरुद्ध दोनों सदनोंको प्रार्थनापत्र[1] भेजे गये, किन्तु सब व्यर्थ। विधेयक स्वीकार हो गये। इसलिए एक प्रार्थनापत्र उपनिवेश-मन्त्री[2]को भेजा गया। उसका जो उत्तर मिला वह सर्वथा सन्तोषजनक नहीं है। फिर भी श्री चेम्बरलेनने हमारे साथ सहानुभूति व्यक्त की है, और उन्होंने भारतीय-संरक्षण अधिनियम सम्बन्धी हमारी प्रार्थना स्वीकार कर ली है। इस कानूनके बारेमें सरसरी तौरपर कहा जा सकता है कि इससे एशियाई प्रश्नका एक हिस्सा तय हो चुका है और मालूम पड़ता है कि कुछ हदतक यह हमारे पक्षमें ही हुआ है। जबसे हमारी संस्थाकी स्थापना हुई है, हम रंग-भेदके कानूनोंके — भारतीयोंपर विशेष निर्योग्यताएँ लादनेवाले कानूनोंके — खिलाफ लड़ते आये हैं। वह सिद्धान्त स्पष्ट रूपसे स्वीकार कर लिया गया है। अलबत्ता, इसका मतलब यह नहीं कि हमें आगे कुछ नहीं करना है या जो हल हुआ है वह सन्तोषजनक है। उलटे, हमें अब और भी अधिक धूर्ततापूर्ण विरोधसे लोहा लेना है, क्योंकि वह अप्रत्यक्ष है। यद्यपि उक्त कानून नाम-मात्रके लिए सबपर लागू होता है, तथापि व्यवहारमें उसका उपयोग केवल भारतीयोंके विरुद्ध किया जाता है। इसलिए हमें न केवल कानूनको रद करवाने या बदलवानेकी दिशामें प्रयत्न करना है, बल्कि यह चौकसी भी रखनी है कि विभिन्न अधिनियम कैसे अमलमें आते हैं। जहाँतक सम्भव है, हमें अधिकारियोंको इसके लिए भी तैयार करना है कि वे इन अधिनियमोंके अमलको अनुचित रूपसे कठोर एवं कष्टदायक न बनायें। इसके लिए हमें केवल निरन्तर प्रयत्न, सतत जागरूकता, परस्पर अटूट एकता, विशाल परिमाणमें आत्म-त्याग तथा राष्ट्रको ऊँचा उठानेवाले अन्य सब गुणोंकी आवश्यकता है। और तब अवश्य ही विजय हमारी होगी, क्योंकि सभी जानते हैं कि हमारा उद्देश्य न्यायपूर्ण है, हमारे तरीके नरम तथा अनिन्दनीय हैं।

इस प्रसंगमें यह उचित होगा कि कांग्रेसके खिलाफ जो एक शिकायत की जाती है उसपर विचार कर उसे निबटा दिया जाये। इस शिकायतका कारण पिछली घटनाओंकी जानकारी न होना है। कहा जाता है कि यदि हम अपनी शिकायतें दूर करवानेका आन्दोलन न छेड़ते तो हमारी स्थिति इतनी खराब न होती, जितनी कि अब है। किन्तु ऐसा तर्क करनेवाले लोग

१. देखिए खण्ड २, पृष्ठ १९७-३२० ।
२. देखिए खण्ड २, पृष्ठ ३२३ और ३३० ।
३. देखिए खण्ड २, पृष्ठ ३६१ ।

यह नहीं जानते कि भारतीयोंके खिलाफ आन्दोलन उतना ही पुराना है जितना कि उनका इस उपनिवेशमें आना। यदि हम इस आन्दोलनको रोकनेकी कोशिश न करते तो क्या होता? इसका उत्तर सीधा है। ऑरेंज फ्री स्टेटमें भारतीयोंका क्या हुआ? यूरोपीयोंने भारतीयोंके खिलाफ आन्दोलन चलाया और भारतीय चुपचाप बैठे रहे। वे तब होशमें आये जब काफी देर हो चुकी थी। अब उस राज्यमें हमारे पैर जरा भी जमे हुए नहीं रहे। ट्रान्सवालमें हम तब होशमें आये जब कि हमारी आधी जमीन खो चुकी थी। चूँकि हमने वहाँ यूरोपीयोंके विरोधके खिलाफ आवाज उठाई इसलिए आशा है कि भले ही हम खोई बाजी फिरसे जीत न सकें, जो कुछ हमारे पास बचा है कमसे-कम बचा तो सकेंगे। इसी प्रकार नेटालमें भी हमें तब होश आया जब कि एशियाई-विरोधी भावनाओंको कानूनके रूपमें उतारा जा रहा था। इसलिए हमारी स्थिति वहाँ अब वैसी नहीं है जैसी कि और तरहसे होती। यदि उक्त भावनाओंको उतना न बढ़ने दिया जाता जितना कि वे १८९४ में बढ़ीं तो हम दक्षिण आफ्रिकाके अन्य राज्योंके घटनाचक्रको देखकर भली भाँति अनुमान लगा सकते हैं कि, हमारी स्थिति आजकी अपेक्षा कहीं अच्छी होती। इस जाँच-पड़तालको आगे बढ़ानेपर दावा किया जा सकता है कि जूलूलैंडमें नोंदवेनी बस्तीके भारतीय-विरोधी विनियमोंका रद किया जाना, विशेष रूपसे भारतीयोंपर लागू होनेवाले पहले मताधिकार अधिनियमका रद किया जाना, ट्रान्सवालकी अनिवार्य सैनिक-भरती सन्धिमें एशियाई-विरोधी उपधाराका स्वीकार न किया जाना, ट्रान्सवाल-प्रार्थनापत्रके उत्तरमें भेजे गये प्रसिद्ध खरीतेमें श्री चेम्बरलेनका हमारे साथ पूरी तरह सहानुभूति प्रकट करना, नेटालके अखबारोंकी ध्वनिमें स्पष्ट सुधार होना तथा दूसरी बातें, जो ऐसे लोगोंकी समझमें आसानीसे आ जायेंगी, जिन्होंने हमारे कार्योंको समझनेकी परवाह रखी है — सभी हमारे ही आन्दोलनका सीधा और प्रत्यक्ष परिणाम हैं।

१८९७ के प्रारम्भमें बंगालके मुख्य न्यायाधीशका एक तार अखबारोंमें प्रकाशित हुआ। उसमें उन्होंने भारतीय अकाल-पीड़ित धर्मार्थ सहायता समितिके अध्यक्षकी हैसियतसे समितिके कोशमें दान देनेकी अपील की थीं। जैसे ही तार प्रसिद्ध हुआ, यह महसूस किया गया कि नेटालके भारतीयोंके लिए आवश्यक है कि वे इस दिशामें विशेष प्रयत्न करें। उपनिवेशमें पैदा हुए भारतीयोंकी एक बैठक एस० आइदान स्कूलके कमरेमें की गई। वहाँ उपस्थित सभी लोगोंने वादा किया कि वे न केवल स्वयं यथाशक्ति दान देंगे, बल्कि अन्य लोगोंसे भी दान एकत्र करनेकी कोशिश करेंगे। बादमें श्री पीरनकी दूकानमें व्यापारियोंकी एक बैठक हुई और एक कोश चालू कर दिया गया। किन्तु इतनेसे वहाँ उपस्थित लोग सन्तुष्ट नहीं हुए। इसलिए उन्होंने सोचा कि इसके अतिरिक्त कुछ और करना आवश्यक है। इसलिए दादा अब्दुल्ला ऐंड कम्पनीकी दूकानमें एक और बैठक हुई जिसमें लगभग उन सभी लोगोंने, जिन्होंने कि पीरनकी दूकानमें चन्दा दिया था, अपने पहले चन्देकी रकमको दुगना या तिगुना कर दिया। श्री अब्दुल करीमने अपना चन्दा ३५ पौंडसे १०१ पौंड, श्री अब्दुल कादिरने ३६ पौंडसे १०२ पौंड तथा श्री दाऊद मुहम्मदने ७५ पौंड कर दिया। भारतीय समाजके सब धर्मों तथा वर्गोंका प्रतिनिधित्व करनेवाली एक जोरदार समिति बना दी गई। अंग्रेजी, गुजराती, तमिल, उर्दू तथा हिन्दीमें परिपत्र छपवाकर विस्तृत रूपसे बाँटे गये[1]। कार्यकर्त्ताओंने उपनिवेश-भरमें जाकर गरीब-अमीर सबसे चन्दा इकट्ठा किया और एक पखवारेके अन्दर १,१५० पौंडकी रकम एकत्र कर ली। चन्दा एकत्र करनेका खर्च २० पौंडसे भी कम आया।

१. देखिए खण्ड २, पृष्ठ १८९।

नेटाल भारतीय शिक्षा-संघ (नेटाल इंडियन एजुकेशनल असोसिएशन)[1] ने डॉ० श्रीमती बूथकी देख-रेखमें कांग्रेस-भवनमें दो नाटक सहायतार्थ खेले। तुरन्त एक रंगमंच तैयार किया गया और सदस्योंने कुछ गैर-सदस्योंकी सहायतासे 'अलीबाबा चालीस चोर' का अभिनय किया। दोनों अवसरोंपर भवन खचाखच भरा हुआ था। ४० पौंडकी प्राप्ति हुई। लंदन टाइम्सके विशेष संवाददाता कैप्टन यंगहस्बैंड डर्बन गये। वे अपने कार्यपर कुछ समयतक भारतमें भी रह चुके थे। दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोंके प्रश्नका भारतीय पक्ष उनके सामने रखा गया। दादा अब्दुल्ला ऐंड कम्पनीने कांग्रेस-भवनमें उन्हें एक भोज दिया और प्रमुख भारतीयोंको भी आमन्त्रित किया। उन्होंने दक्षिण आफ्रिका-सम्बन्धी अपनी पुस्तकमें हमारे प्रश्नपर एक विशेष अध्याय लिखा। यद्यपि उसमें उन्होंने यूरोपीयोंके रुखके प्रति अनुकूलता दिखाई है, फिर भी भारतीय पक्षको भी अच्छी तरह पेश किया है।

हीरक जयंती समारोहमें भी कांग्रेस पीछे नहीं रही। नेटाली भारतीयोंकी ओरसे सम्राज्ञीको पानके आकारकी एक चाँदीकी तश्तरीमें खुदा मानपत्र भेंट किया गया। तश्तरीके पीछे मोटा, मुलायम रेशम मढ़ा था और उसे नेटालकी पीली लकड़ीके फ्रेममें जड़ दिया गया था। इस मानपत्रको भेंट करनेके लिए हमारे प्रमुख व्यक्तियोंका एक शिष्टमंडल परमश्रेष्ठ गवर्नरकी सेवामें विशेष रूपसे उपस्थित हुआ। इसी प्रकारकी भाषामें एक मानपत्र ट्रान्सवालके भारतीयोंकी ओरसे भी भेजा गया।

हीरक जयंतीके दिन नेटाल भारतीय शिक्षा-संघके तत्त्वावधानमें हीरक जयन्ती पुस्तकालय (डायमण्ड जुबिली लायब्रेरी) खोला गया, जिसका उद्घाटन डर्बनके तत्कालीन मजिस्ट्रेट श्री वॉलरने किया। उद्घाटन-समारोहके अवसरपर डर्बनके मेयर, श्री लॉटन, डर्बन पुस्तकालयके ग्रन्थपाल श्री ऑस्बर्न, डॉ० बूथ और कुछ अन्य यूरोपीय उपस्थित थे। जो लोग उपस्थित नहीं हो सके उनके पाससे सहानुभूतिके पत्र प्राप्त हुए। ऐसे लोगोंमें माननीय श्री जेमिसन तथा उप-महापौर (डिप्टी मेयर) श्री कॉलिन्स भी थे। इस अवसरपर कांग्रेस-भवनमें खूब रोशनी की गई थी। उद्घाटन-समारोहकी सफलता तथा सजावटका सारा श्रेय श्री ब्रायन गैब्रियलके प्रयत्नोंको है, हालाँकि यहाँ यह बता देना न्याय्य ही होगा कि सजावटके आखिर-आखिरमें अन्य कार्यकर्त्ताओंने भी उनकी सहायता की थी। खेदके साथ कहना पड़ता है कि जिस सफलताके साथ पुस्तकालयका उद्घाटन हुआ था उस सफलताके साथ वह चला नहीं। वहाँ उपस्थिति शून्य ही रही। पुस्तकालयके खर्चके लिए शिक्षा संघके सदस्योंने आपसमें चन्दा किया और उतनी ही रकम कांग्रेसने भी मंजूर की।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, जून १८९६ तथा जून १८९७ के बीच कांग्रेसके अवैतनिक-मन्त्रीका कार्य-भार श्री आदमजी मियाखाँने सँभाला। अब वे भी भारत जानेवाले थे। इसलिए उन्होंने अपना कार्य-भार अवैतनिक-मन्त्रीको वापस दे दिया। श्री आदमजी मियाखाँने कठिन समयमें कांग्रेसकी सेवा की थी। उनकी सेवाकी सराहनाके रूपमें उन्हें सम्मानित करनेके औचित्यपर विचार करनेके लिए कांग्रेसकी एक बैठक बुलाई गई। श्री आदमजीने जिस आत्मत्याग, उत्साह, योग्यता तथा कौशलसे कांग्रेसकी सेवा की उसकी तो सभी सदस्योंने प्रशंसा की, लेकिन इसपर मतभेद हो गया कि उन्हें मानपत्र दिया जाये या नहीं। कुछ बहस-मुबाहसेके बाद उनको मानपत्र देनेका प्रस्ताव थोड़े-से बहुमतसे पास हो गया। किन्तु विरोध इतना जबरदस्त था कि बहुमत-पक्षने मानपत्र न देनेका निश्चय किया, क्योंकि ऐसे मामलोंमें

१. इसकी स्थापना १८९४ में हुई थी।

सर्वसम्मतिका होना आवश्यक समझा गया। और श्री आदमजी मियाखाँ मानपत्र तथा धन्यवाद प्राप्त किये बिना ही भारतके लिए रवाना हो गये।

कांग्रेसने जो भूलें की हैं उनमें से यह भी एक थी। इससे मालूम पड़ता है कि हमारी संस्था भी तो आखिर मनुष्योंकी है, और उसका भी दूसरी संस्थाओंके समान भूल करना स्वाभाविक ही है। ऐसी स्थितिमें अवैतनिक-मन्त्रीने अपने घरपर श्री आदमजीके सम्मानमें एक भोज दिया। छपे हुए निमन्त्रणपत्र भेजे गये और सभी प्रमुख भारतीय उसमें शामिल हुए। वहाँ श्री आदमजीकी प्रशंसामें भाषण दिये गये, जिनका उन्होंने उपयुक्त उत्तर दिया। कांग्रेसके अध्यक्ष, अवैतनिक-मन्त्री तथा दूसरे सदस्य उन्हें विदा करनेके लिए जहाज घाटपर गये। कांग्रेसने श्री आदमजी मियाखाँको जो उत्तरदायित्व सौंपा था उसके लिए वे योग्य सिद्ध हुए। अपने कार्यकालमें उन्होंने नियमित रूपसे बैठकें बुलाईं, ठीक तरहसे किरायेकी उगाही की और सारे खर्चेका हिसाब भी सही रखा। इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने आम तौरपर कांग्रेसके सभी सदस्योंके साथ अच्छा सम्बन्ध कायम किया। इस पदको सँभालनेवाले व्यक्तिमें सबसे बढ़कर गुण यह होना चाहिए कि भीतर और बाहरसे होनेवाली सभी तरहकी उत्तेजनाओंमें उसका मन शान्त रहे और विभिन्न स्वभाववाले सदस्योंका निभाव करनेकी उसमें योग्यता हो। ये गुण उन्होंने पर्याप्त मात्रामें प्रकट किये। श्री आदमजी मियाखाँने जितनी लगन और तत्परता जयन्ती-मानपत्रको समयपर तैयार करनेमें दिखाई, उतनी यदि वे न दिखाते तो मानपत्र कभी भी भेजा न जा सकता[1]। उन्होंने दिखा दिया है कि कांग्रेस चलती रह सकती है और स्थानीय लोग उसका कार्य भली भाँति कर सकते हैं।

हीरक जयंती दिवसके दो मास पहले जब पत्रोंमें यह घोषणा की गई कि श्री चेम्बरलेन इस अवसरका लाभ उठाकर विभिन्न उपनिवेशोंके प्रधानमन्त्रियोंसे मिलेंगे और ब्रिटिश साम्राज्यपर असर डालनेवाले कुछ प्रश्नोंपर उनसे बातचीत करेंगे और उन प्रश्नोंमें भारतीय प्रश्न भी शामिल होगा, तब यह उचित समझा गया कि भारतीय हितोंपर चौकसी रखनेके लिए किसी व्यक्तिको लंदन भेजा जाये। इस कार्यके लिए लंदनकी नाज़र ब्रदर्स पेढ़ीके श्री मनसुखलाल हीरालाल नाज़र सर्वसम्मतिसे प्रतिनिधि चुने गये और वे उचित अधिकारोंके साथ इंग्लैंड गये। श्री नाज़र स्टॉकहोम ओरियंटल कांग्रेसके सदस्य और भूतपूर्व न्यायमूर्ति नानाभाई हरिदासके भतीजे हैं। श्री नाज़र दिसम्बर १८९६ में नेटाल आये थे। उन्होंने प्रदर्शन-संकटके अवसरपर समाजकी बहुमूल्य सेवा की थी। उन्हें इंग्लैंड जाते समय उनकी सेवाओंके लिए कोई पारिश्रमिक नहीं दिया गया। कांग्रेसको उन्हें केवल जेब-खर्च देना पड़ा। लंदनमें उन्हें इस कार्यके लिए अपेक्षासे अधिक समयतक रहना पड़ा। ऐसा उन्होंने उन सज्जनोंकी सलाहपर किया जिनसे हर काममें सलाह लेने तथा जिनकी सलाहपर चलनेकी उनसे विशेष प्रार्थना की गई थी। लंदनमें हमारे साथ सहानुभूति रखनेवालोंसे उन्हें बहुत सहायता मिली। वे हमारी ओरसे पूर्व भारत-संघ (ईस्ट इंडिया असोसिएशन) से कार्य करवानेमें सफल हो गये और उस प्रभावशाली संस्थाने एक सशक्त प्रार्थनापत्र लॉर्ड जॉर्ज हैमिल्टनको भेजा है। उसने भारतीय सरकारसे भी सीधे लिखा-पढ़ी की है। श्री नाज़रके पास बहुतसे प्रतिष्ठित अंग्रेजोंके पत्र हैं जिनमें हमारे उद्देश्यके प्रति सहानुभूति प्रकट की गई है। सर मंचरजी मेरवानजी भावनगरीने हमें लिखे एक पत्रमें उनके कार्यकी बड़ी सराहना की है। इस सम्बन्धमें उपनिवेशमें जन्मे कुछ भारतीयोंके असाधारण आत्मत्यागका उल्लेख किये बिना रहा नहीं जा सकता। उन्होंने एक ही सायंकालीन बैठकमें ३५ पौंडसे भी अधिक चन्दा जमा किया, वह भी बहुत कम वेतन पानेवाले १५ नव-

१. देखिए खण्ड २, पृष्ठ ३५३।

युवकोंने परस्पर मिलकर। इनमें से किसीकी भी नजर कभी दक्षिण आफ्रिकी क्षितिजके परे नहीं गई थी। श्री सी० स्टीफनने अपनी चाँदीकी घड़ी तथा जो कुछ उनकी जेबमें था सब निकालकर दे दिया। बैठकमें मौजूद अन्य लोगोंने भी उनका अनुसरण किया। इस प्रकार नाज़र-कोश समिति दूसरे दिन श्री नाज़रको तार द्वारा ७५ पौंड भेजनेमें समर्थ हुई।

गत वर्षके प्राय: अन्तमें डर्बन नगर-परिषदने रिक्शा-सम्बन्धी कुछ विनियम पास किये। उनमें से एकके अनुसार भारतीय न तो रिक्शा रख सकते थे और न उनके लिए परवाना प्राप्त कर सकते थे। इसपर तुरन्त ही एक विरोध-पत्र[1] तैयार किया गया। उसपर प्रमुख भारतीयोंके हस्ताक्षर करवाकर उसे गवर्नरको भेज दिया गया। उसकी एक प्रति नगर-परिषदको भी भेज दी गई। इसपर उसने तुरन्त ही प्रतिबन्ध हटानेका निर्णय किया। प्रवासी प्रतिबन्धक-अधिनियमके अमलमें आते ही डंडीमें सामूहिक रूपसे ७५ भारतीय गिरफ्तार कर लिये गये। इसका तथाकथित आधार यह बताया गया कि वे वर्जित प्रवासी हैं। अन्तमें वे छोड़ दिये गये। पिछली जनवरीमें उपर्युक्त विक्रेता-परवाना अधिनियमके अन्तर्गत न्यूकैसिल नगर-परिषद द्वारा नियुक्त परवाना-अधिकारीने किसी भी भारतीयको परवाना देनेसे इनकार कर दिया। अपील करनेपर नगर-परिषदने छ: परवाने तो मजूर कर लिये और तीनको नामंजूर कर दिया। यह मामला सर्वोच्च न्यायालयमें ले जाया गया। वहाँ अपील करनेवालोंके वकील श्री लॉटनने बड़ी योग्यतापूर्वक जिरह की कि यह मामला अपने गुण-दोषके आधारपर भी सर्वोच्च न्यायालयके अधिकार-क्षेत्रके परे नहीं है। फिर भी न्यायालयने अपील करनेवालोंके विरुद्ध निर्णय दिया। मुख्य-न्यायाधीशने इस निर्णयसे अपनी असहमति प्रकट की। अब कांग्रेसने इस मामलेको अपने हाथमें ले लिया है और सम्राज्ञीकी न्याय-परिषद (प्रीवी कौंसिल)में अपील दायर की है। प्रमुख वकील श्री एस्क्विथको इस मामलेकी पैरवीके लिए नियुक्त किया गया है। इसका परिणाम नवम्बरमें निकलनेकी सम्भावना है।[2] यह प्रश्न भी उठाया गया कि जो विक्रेता बिना दूकानके बिक्री करते हैं उन्हें फुटकर व्यापारका परवाना लेनेकी जरूरत है या नहीं। यह मामला मूसा नामके एक सब्जी बेचनेवालेकी ओरसे सर्वोच्च न्यायालयमें ले जाया गया और न्यायालयने निर्णय दिया कि ऐसे विक्रेताओंके लिए परवाना लेनेकी जरूरत नहीं। यह मामला सब्जी बेचनेवालोंने कांग्रेसके सामने पेश किया था और उसे हाथमें ले लिया गया। एक सदस्यने वास्तविक खर्च देनेका वादा किया। मामला तो कांग्रेसने जीत लिया, लेकिन उक्त सदस्यने उसका खर्च अभी तक नहीं दिया। यह खर्च कांग्रेसके ही माथे पड़ेगा।

उपनिवेशकी नागरिक सेवा (सिविल सर्विस) परीक्षामें उत्तीर्ण होनेके उपलक्ष्यमें श्री गॉडफ्रेको मार्चमें एक शानदार अभिनन्दनपत्र दिया गया।[3] वे पहले भारतीय थे जो इस परीक्षामें उत्तीर्ण हुए। इसके लिए विशेष चन्दा एकत्र किया गया और एक विशेष समितिकी स्थापना की गई थी। इस सम्बन्धमें यह उल्लेखनीय है कि बड़े गॉडफ्रे साहबने एक ऐसा उदाहरण पेश किया है जिसका अनुसरण कर अन्य माता-पिता भी पर्याप्त लाभ उठा सकते हैं। खुद विशेष शिक्षित न होनेपर भी उन्होंने अपने बच्चोंका उपयुक्त प्रकारसे पालन-पोषण कर उन्हें उत्तम शिक्षा देना अपना एकमात्र लक्ष्य बना लिया था। उन्होंने अपने सबसे बड़े लड़केको कलकत्ता भेजा और वहाँ उसे विश्वविद्यालयका शिक्षण दिलाया। अब वह ग्लासगो गया है और वहाँ चिकित्साशास्त्रका अध्ययन कर रहा है।

१. यह उपलब्ध नहीं है।
२. सम्राज्ञीकी न्याय-परिषदका निर्णय प्रतिकूल था। देखिए पृष्ठ ६५।
३. "अभिनन्दनपत्र: जार्ज विन्सेंट गॉडफ्रेको", मार्च १८, १८९८ से पूर्व।

इन वर्षोंमें लगभग २०,००० पुस्तिकाएँ, प्रार्थनापत्रोंकी प्रतियाँ तथा पत्र लिखे और वितरित किये गये हैं।

*अध्यक्ष*

श्री अब्दुल करीम हाजी आदम झवेरीने १८९६ में, जब कि उनके भाई स्वदेश लौटे, कांग्रेसका अध्यक्ष-पद सँभाला। तबसे वे इस पदपर अत्यन्त श्रेयके साथ आसीन रहे। कांग्रेसके सभी सदस्य उनसे सन्तुष्ट थे। अगस्त १८९८ में उन्होंने त्यागपत्र दे दिया। उनसे प्रार्थना की गई कि वे अपने निर्णयपर फिरसे विचार करें। किन्तु उन्होंने कहा कि मैं ऐसा नहीं कर सकता। उनके स्थानपर श्री कासिम जीवा अध्यक्ष चुने गये। इस वर्षके मार्चतक वे इस पदपर आसीन रहे। इसके बाद उन्होंने भी त्यागपत्र दे दिया क्योंकि वे उपनिवेशसे जाना चाहते थे। उनके स्थानपर सर्वसम्मितिसे श्री अब्दुल कादिर अध्यक्ष चुन लिये गये और वे समाजके मुखियाके पदको अब भी सँभाले हुए हैं। बड़े दुःखके साथ लिखना पड़ता है कि गत मईमें कलकत्तासे रंगून जाते समय श्री कासिम जीवा डूबकर मर गये। उनके शोक-पीड़ित पिताके प्रति बहुत सहानुभूति प्रकट की गई और कांग्रेसके अध्यक्षको अधिकार दिया गया कि वे उनके पिताको समवेदनाका पत्र भेजें।

*अतिथि*

ग्रँट मेडिकल कॉलिज[1] के स्नातक और स्वर्णपदक विजेता तथा मिडिल टेम्पल, लंदनके बैरिस्टर डा० मेहता डर्बन आये। वे ईडर राज्यमें कुछ समयतक मुख्य चिकित्सा-अधिकारी भी रह चुके हैं। समाजने उनका हार्दिक स्वागत किया और कांग्रेसके प्रमुख सदस्योंने उन्हें भोज दिया।

श्री रुस्तमजीने[2] उदारतापूर्वक कांग्रेसको २२ पौंड १० शिलिंग तथा १ पेंसके मूल्यका फर्श (लिनोलियम), कांग्रेसका नाम खुदी हुई पीतलकी एक कीमती पट्टी, लैम्प, तथा अन्य छोटी-मोटी वस्तुएँ प्रदान कीं।

*विविध*

श्री अब्दुल करीमके अध्यक्षता-कालके प्रारम्भमें यह नियम बनाया गया कि कांग्रेसकी बैठकोंमें विलम्बसे आनेके लिए जुर्माना किया जाये। बहुतसे सदस्योंने प्रत्येक बार विलम्बसे उपस्थित होनेके लिए ५ शिलिंग जुर्माना दिया। अब इस नियमका पालन नहीं होता। हम भी अपने प्रथम प्रेमसे इतने विमुख हो गये हैं कि कांग्रेसकी बैठकोंमें ९ बजेसे पहले, अर्थात् नियत समयसे डेढ़ घण्टे बादतक, कोरम भी मुश्किलसे पूरा होता है। श्री अब्दुल करीमके विशेष प्रयत्नोंसे यह निर्णय किया गया था कि प्रत्येक व्यापारी आयात किये हुए प्रत्येक पैकेटपर एक फार्दिग कांग्रेसको दे। नमकके ४ पैकेटोंका एक पैकेट गिना जाता था। इस प्रकार कांग्रेसने १९५ पौंड प्राप्त किये। किन्तु यह रकम उस रकमका दसवाँ अंश भी नहीं जो कि प्रत्येक व्यापारीके अपनी देय रकम कांग्रेसको दे देने से प्राप्त होती।

यह स्मरण होगा कि दानकी छोटी-छोटी रकमें एकत्र करनेके लिए कार्यकर्ताओंको टिकट बाँटे गये थे, ताकि उन्हें रसीद काटनेकी जरूरत न पड़े। यह योजना प्रायः असफल ही रही। केवल श्री मदनजीत स्टैंजर जिलेसे लगभग १० पौंड एकत्र करके लाये हैं।

१. बम्बईका एक चिकित्साशास्त्र-महाविद्यालय।

२. देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९५।

*भारतीय अस्पताल*

डॉ० बूथकी सलाह, सहायता तथा नियन्त्रणके अन्तर्गत डॉ० लिलियन रॉबिन्सनके प्रयत्नोंसे १८९८ में भारतीय अस्पतालकी स्थापना की गई। उसकी सहायताके लिए कांग्रेस-सदस्योंने चन्दा एकत्र किया और दो वर्षमें १६० पौंड या प्रतिमास ६ पौंड १३ शिलिंग ४ पेंस किराया देते रहना पक्का कर दिया। रस्मी तौरपर अस्पतालका उद्घाटन १४ सितम्बर १८९८ को किया गया।

जहाँतक कांग्रेसके अन्दरूनी कामका सम्बन्ध है, आज नजारा मनहूस है। १८९५–९६में जो उत्साह प्रदर्शित किया गया था उसका आधा भी अब सदस्योंमें नहीं रहा। बाहरके सभी जिलोंसे काफी समयसे चन्दा वसूल नहीं हुआ। फिर भी यह मानना कि कांग्रेसके कार्यके प्रति वह प्रत्यक्ष उपेक्षा सदस्यों द्वारा जानबूझकर की गई लापरवाहीके कारण हो रही है, सरासर अन्याय होगा। [भारतीय समाजको न केवल भयानक राजनीतिक संकटसे गुजरना पड़ा है, और गुजरना पड़ रहा है बल्कि, दूसरी जातियोंके साथ-साथ, युद्धके[1] कारण भी भारी कष्ट उठाने पड़े हैं। इन दोनोंने मिलकर स्वभावतः उसमें निराशाकी भावना भर दी है। लेकिन आशा है कि यह निराशा अस्थायी होगी और, स्थितिका शान्त होकर पर्यवेक्षण करनेके बाद, पुराना उत्साह दुगने वेगसे पुनरुज्जीवित हो जायेगा।] पहले कही बातोंसे स्पष्ट मालूम हो जायेगा कि इस स्थितिमें भी कुछ उज्ज्वल स्थल तो है ही।

कांग्रेसके नियमोंको एक नया रूप देनेकी आवश्यकता है। अब यह जरूरी लगता है कि उनके पालनमें कठोरतासे काम लिया जाये। जिन लोगोंने चन्दा नहीं दिया उन्हें अबतक सदस्य बने रहने दिया गया है और कांग्रेसके कामोंमें बोलनेका अधिकार भी रहा है। लेकिन यह प्रथा बहुत अवांछनीय है।

एशियाइयोंसे सम्बन्धित ट्रान्सवाल कानूनकी व्याख्या करनेके लिए परीक्षात्मक मुकदमेकी सुनवाई हो गई है।[2] दक्षिण आफ्रिकाके हमारे भाइयोंने सबसे अच्छे वकीलोंकी सेवाएँ लीं और अपनी ओरसे कुछ उठा नहीं रखा। किन्तु न्यायाधीशोंने हमारे खिलाफ निर्णय दिया। केवल जस्टिस जॉरिसेनने उनके साथ अपनी असहमति जाहिर की। इस निर्णयका क्या परिणाम होगा, इसके बारेमें भविष्यवाणी करना अभी बहुत जल्दी है। रोडेशियाई भारतीयोंके मामलेको लंदनकी मेसर्स जेरेमिया लॉयन ऐंड कम्पनीने अपने हाथमें लिया है। वे उत्साहके साथ काम कर रहे हैं और आशा करते हैं कि वे सफल हो जायेंगे। उन्होंने डर्बनके व्यापारियोंमें गश्तीपत्र तथा कागजात वितरित किये हैं।

[अंग्रेजीसे]

साबरमती संग्रहालय, एस० एन० २०९।

१. यह उल्लेख बोअर-युद्धके बारेमें है।

२. देखिए पृष्ठ १ तथा पृष्ठ १४।

## ५३. भारतीय शरणार्थियोंकी सहायता[1]

डर्बन
अक्टूबर १४, १८९९

श्रीमन्,

लगभग एक मास पूर्व ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोंकी ओरसे प्रिटोरिया-स्थित माननीय ब्रिटिश एजेंटको भेजे गये एक पत्रकी नकल प्रेषित करते हुए मुझे जोहानिसबर्गसे आये भारतीय शरणार्थियोंकी मदद करनेसे नेटाल-सरकारकी इनकारीकी कुछ कटु आलोचना[2] करनेका क्लेशमय कर्त्तव्य निभाना पड़ा था। प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियम उन लोगोंके प्रवेशका निषेध करता है, जो पहले नेटालके निवासी नहीं रहे और कोई एक भी यूरोपीय भाषा नही जानते। सरकारने उक्त कानूनके अन्तर्गत कुछ नियम मंजूर किये हैं, जिनके अनुसार भारतीय अर्जदारोंको दस-दस पौंडकी रकम जमा करानेपर अस्थायी अनुमति मिल सकती है। सरकारसे माँग की गई थी कि तनातनीके समयमें रकम जमा कराना स्थगित कर दिया जाये। सरकारने उसे कृपापूर्वक स्थगित कर दिया और ऐसा माननेके कारण मौजूद हैं कि उसने यह ब्रिटिश एजेंटके दबावमें आकर किया। परन्तु इसी बीच एक और कठिनाई आ खड़ी हुई। जोहानिसबर्गसे आनेवाले अधिकतर शरणार्थी जोहानिसबर्ग-डर्बन रेल-मार्गका लाभ उठाते थे। पिछले कुछ दिनोंसे वह मार्ग कट गया है और शरणार्थियोंके लिए डेलागोआ-बे जाकर वहाँसे डर्बन आना जरूरी हो गया है। यूरोपीय हजारोंकी संख्यामें डेलागोआ-बेसे यहाँ आते रहते हैं, परन्तु चूँकि जहाज़ी कम्पनियाँ सरकारी हिदायतोंके फल-स्वरूप किन्हीं भी भारतीय यात्रियोंको नही लेती हैं, इसलिए इस मौकेपर भी उन्हें लेनेको राजी नही हैं। अतएव सरकारसे राहत देनेका निवेदन किया गया था। उसने जहाजी कम्पनियोंको यह सूचना दे देनेकी कृपा कर दी है कि वे भारतीय शरणार्थियोंको इस शर्तपर डेलागोआ-बेसे ला सकती हैं कि वे यहाँ उतरनेपर अस्थायी परवाने बनवा लेंगे। नेटाल-सरकारके प्रति यह कर्तव्य माना गया कि जितने जोरोंसे उसकी इनकारीकी बात आपकी नजरोंमें लाई गई थी उतने ही जोरोंसे यह बात भी ला दी जाये। इससे हमें एक बार फिर यह अनुभव हुआ है कि *नेटालमें रहते हुए भी हम ब्रिटिश प्रजा ही है, और, कुछ हो, आपत्तिके समयके लिए तो इन जादू-भरे शब्दोंने अपना कोई जादू खोया नहीं है।* इस संकट-कालमें नेटालकी सरकारने जो रुख अपनाया है वह इस समय नेटाल और दक्षिण आफ्रिकाके अन्य भागोंमें हमारे सिरपर छाये हुए काले बादलोंमें एक आशाका चिह्न है। आशा है कि जिस भावनासे इस संकट-कालमें नेटाल-सरकारने भारतीयोंके साथ व्यवहार किया है वह इस कालके बीत जानेपर भी स्थिर रहेगी, और सब देशोंके ब्रिटिश प्रजाजनोंको इसी प्रकार शान्तिपूर्वक और परस्पर मेल-मिलापसे यहाँ रहने दिया जायेगा।

१. यह एक परिपत्र है, जो कुछ चुने हुए व्यक्तियोंको भेजा गया था। उन्हें पहले एक विशेष पत्र भेजा जा चुका था (जो अब उपलब्ध नहीं है)। उसके साथ ब्रिटिश एजेंटके नाम गांधीजीका २१ जुलाई, १८९९ का वह पत्र भी संलग्न था, जिसमें यहाँ उल्लिखित "कटु आलोचना" की गई थी। उपर्युक्त सामान्य परिपत्र सितम्बर १६, १८९९ का था।

२. देखिए अगला पृष्ठ।

यद्यपि भारतीय सेनाएँ अभीतक डर्बनमें नहीं उतरी, परन्तु वहाँकी सेनाओंके साथ संलग्न भारतीय, यूरोपीयोंतकसे अपनी प्रच्छन्न प्रशंसा करवा लेनेमें असफल नहीं रहे।

आपका आज्ञाकारी,
(ह०) मो० क० गांधी

पत्रमें उल्लिखित टिप्पणी यह थी:

"ट्रान्सवालमें बसे हुए लोग उसे यथासम्भव शीघ्र खाली करते जा रहे हैं। गत कुछ दिनोंमें जो लोग वहाँसे गये हैं उनकी संख्या २६,००० से कम नही है। एटलॉडर्स कौंसिल (इन्तेतर यूरोपियोंकी परिषद) के प्रमुख सदस्य, जोहानिसवर्गके अंग्रेजी पत्रोंके सम्पादक भी, वहाँसे जा चुके हैं। जोहानिसवर्गकी बड़ीसे-बड़ी पेढ़ियोंने अपना कारोबार बन्द कर दिया और अपने क्लार्कों तथा बही-खातोंको सीमा-पार भेज दिया है। ऐसे समय यदि भारतीय भी ट्रान्सवाल छोड़कर जाना चाहें तो किसीको आश्चर्य नहीं करना चाहिए। स्वभावतः वे डेलागोआ-बे नही जा सकते, क्योंकि वहाँकी हवामें मलेरिया हो जाता है। वे केप भी बड़ी संख्यामें नहीं जा सकते, क्योंकि एक तो वह स्थान दूर बहुत है, इसलिए वहाँ जानेमें खर्च बहुत बैठता है; दूसरे, वहाँ भारतीय आबादी थोड़ी है, वहाँ उनके रहनेके लिए कोई सार्वजनिक स्थान नहीं है, उन्हें अपने मित्रों-नातेदारोंका ही आश्रित होकर रहना पड़ेगा, और वे केवल नेटालमें ही मिल सकते हैं। उन्होंने नेटाल-सरकारसे प्रार्थना की है कि संकट-कालमें प्रवासी-प्रतिबन्धक कानूनपर अमल स्थगित कर दिया जाये। इसका उत्तर इस सप्ताह यह प्राप्त हुआ है कि सरकारको इस कानूनके अन्तर्गत ऐसा करनेका अधिकार नहीं है। पर यह सत्य नहीं हो सकता, क्योंकि एक और पत्रके उत्तरमें सरकारकी तरफसे लिखा गया है: "प्रवासी-प्रतिबन्धक कानूनपर अमल करने-न-करनेका निश्चय सरकार मानवताके विचारसे करेगी, और यदि लड़ाई छिड़ गई तो वह अपने अधिकारोंका प्रयोग निष्कारण और कठोरतापूर्वक नहीं करेगी।" जहाँतक इस उत्तरका सम्बन्ध है, यह अच्छा है; परन्तु इससे अभीष्ट सहायता नहीं मिलती। सचमुच लड़ाई छिड़ चुकनेपर अपनी जगहसे हिलना असम्भव हो जायेगा। सरकारसे पुनः प्रार्थना की गई है और देखना है कि वह क्या करती है। मैं यह सब, यह बतलानेके लिए लिख रहा हूँ कि दक्षिण आफ्रिकामें हमारी अवस्था कितनी भयंकर है। यह देखकर हृदय सचमुच फटा जाता है कि ब्रिटिश प्रजाजन खतरेसे बचनेके लिए ब्रिटिश भूमिपर ही आश्रय नहीं ले सकते। ब्रिटिश न्याय और "ब्रिटिश प्रजा" शब्दोंकी जादू-भरी शक्तिमें बेचारे भारतीयोंका विश्वास डिगानेके लिए नेटाल-सरकार अपनी शक्ति-भर जो कर सकती थी वह उसने कर लिया दीखता है। सौभाग्य इतना ही है कि वह सरकार सारे ब्रिटिश साम्राज्यकी प्रतिनिधि नहीं है। यह बात विचित्र तो अवश्य लगती है, परन्तु आज ही एक तार प्रकाशित हुआ है कि नेटाल-सरकारके बार-बार प्रार्थना करनेपर साम्राज्य-सरकारने नेटालकी रक्षाके लिए भारतसे १०,००० सैनिक भेजे जानेकी आज्ञा दे दी है — उसी नेटालकी रक्षा करनेके लिए जो ट्रान्सवालके भारतीयोंको अस्थायी शरण तक देनेसे इनकार कर रहा है। इससे अधिक टिप्पणी करना व्यर्थ है।"

छपी हुई मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३२९९) से।

## ५४. कांग्रेसका प्रस्ताव : शरणार्थियोंके सम्बन्धमें[1]

डर्बन
अक्टूबर १६, १८९९

निश्चय किया गया कि : ट्रान्सवालसे निकले हुए जो ब्रिटिश भारतीय शरणार्थी इस समय डेलागोआ-बेमें हैं उन्हें नेटाल आने और इस संकट-कालमें यहाँ रहनेकी सुविधा देनेकी कृपाके लिए, नेटाल भारतीय कांग्रेस सरकारको हार्दिक धन्यवाद देती है।

यह भी कि : अध्यक्षसे निवेदन किया जाये कि वे इस प्रस्तावकी एक प्रति सूचनार्थ नेटाल-सरकारको भेज दें।

(ह०) अब्दुल कादिर

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल ऑफ़िस रेकर्ड्स, साउथ आफ्रिका, जनरल १८९९।

## ५५. भारतीयोंका सहायता-प्रस्ताव

[डर्बन]
अक्टूबर १९, १८९९

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
मैरित्सबर्ग

श्रीमन्,

डर्बनके अंग्रेजी बोल सकनेवाले लगभग १०० भारतीयोंने कुछ ही घंटेकी सूचना मिलनेपर १७ तारीखको एकत्र होकर यह विचार किया था कि इस समय साम्राज्य-सरकार और दक्षिण-आफ्रिकाके दो गणराज्योंमें जो लड़ाई छिड़ी हुई है उसमें हमें सरकार या साम्राज्य-अधिकारियोंको अपनी सेवाएँ बिना किसी शर्त अथवा किन्तु-परन्तुके भेंट करनी चाहिए या नहीं।

फलतः, मुझे इस पत्रके साथ उन लोगोंमें से कुछके नामोंकी एक तालिका भेजनेका मान प्राप्त हुआ है, जो बिना किसी शर्तके अपनी सेवाएँ देनेको उद्यत हैं। डॉ० प्रिंसने इन सबकी बारीकीसे जाँच कर ली है।

शेष स्वयंसेवकोंकी जाँच वे कल करेंगे और उनमें से १० के परीक्षामें सफल हो जानेकी आशा है। परन्तु क्योंकि समयका मूल्य बहुत है, इसलिए अधूरी तालिका ही भेज देना उचित समझा गया।[2]

ये प्रार्थी अपनी सेवाएँ बिना किसी वेतनके प्रदान कर रहे हैं। यह अधिकारियोंके इच्छाधीन है कि वे जैसा उचित या आवश्यक समझें, इनमें से कुछकी या सबकी सेवा स्वीकार कर लें।

१. इसे नेटालके गवर्नरने लंदन भेज दिया था।

२. देखिए अगला पृष्ठ।

हम शस्त्र चलाना नहीं जानते। इसमें दोष हमारा नहीं। यह तो हमारा दुर्भाग्य है। परन्तु सम्भव है कि लड़ाईके मैदानमें अन्य भी अनेक ऐसे कर्त्तव्य हों जिनका महत्त्व शस्त्र-चालनसे कुछ कम न हो। वे कर्त्तव्य किसी भी प्रकारके क्यों न हों, हम उनका पालन करनेके लिए बुलाये जानेमें अपना सम्मान समझेंगे, और सरकार जब कभी हमें बुलायेगी हम तभी आनेके लिए तैयार रहेंगे। यदि अडिग कर्त्तव्यनिष्ठा और अपनी सम्राज्ञीकी सेवाकी चरम उत्कंठाके कारण, रण-क्षेत्रमें हमारा कुछ भी उपयोग हो सकता हो तो हमें निश्चय है कि हम चूकेंगे नहीं। हमसे और कोई काम न भी निकल सकता हो तो भी हम रण-क्षेत्रके चिकित्सालयों और रसद-विभागमें तो कुछ काम आ ही सकेंगे।

सेवाके इस विनम्र प्रस्तावका उद्देश्य यह सिद्ध करनेका प्रयत्न है कि, सम्राज्ञी दक्षिण आफ्रिका-निवासी अन्य प्रजाओंके समान भारतीय भी रण-भूमिपर सम्राज्ञीके प्रति कर्त्तव्य-पालन करनेको तैयार हैं। इसके द्वारा भारतीय अपनी राजनिष्ठाका आश्वासन देना चाहते हैं।

हम जितने आदमी, अधिकारियोंकी सेवामें पेश कर रहे हैं उनकी संख्या थोड़ी भले ही दिखाई दे, परन्तु उनमें डर्बनके खासे-अच्छे अंग्रेजी-शिक्षित भारतीयोंमें से शायद पच्चीस प्रतिशत शामिल हैं।

भारतीयोंका व्यापारी वर्ग भी राजभक्तिपूर्वक सेवा करनेके लिए आगे बढ़ आया है और अगर ये लोग मैदानमें जाकर कोई सेवा नहीं कर सकते, तो इन्होंने उन स्वयंसेवकोंके आश्रितोंके निर्वाहके लिए धन-दान किया है, जिन्हें अपनी परिस्थितियोंके कारण सहायता लेनेकी आवश्यकता पड़ेगी।

मुझे निश्चय है कि हमारी प्रार्थना मान ली जायेगी। इस कृपाके लिए प्रार्थी लोग सदा कृतज्ञ रहेंगे; और मेरी नम्र सम्मतिमें, जिस शक्तिशाली साम्राज्यपर हम इतना अभिमान करते हैं उसके विभिन्न भागोंको घनिष्ठ बन्धनमें बाँधनेके लिए यह सूत्रका काम देगी।[1]

आपका आज्ञाकारी सेवक,

मो० क० गांधी

### सूची : उन भारतीय स्वयंसेवकोंके नामोंकी जिन्होंने नेटाल-सरकार या साम्राज्य-अधिकारियोंको अपनी सेवाएँ अर्पित करनेका प्रस्ताव किया है

गांधी, मो० क०; पॉल, एच० एल०; पीटर्स, ए० एच०; खान, आर० के०; धनजी शाह, पी०; कूपर, पी० सी०; गॉडफ्रे, जे० डब्ल्यू०; बागवान, आर०; पीटर, पी०; ढुंडे, एन० पी०; लॉरेन्स, वी०; गैब्रियल, एल०; हैरी, जी० डी०; गोविन्दू, आर०; शाद्रक, एस०; रामटहल, होर्न, जे० डी०; नाजर, एम० एच०; नायडू, पी० के०; सिंह, के०; रिचर्ड्स, एस० एन०; लछमन पाँडे, एम० एस०; रायप्पन, जे०; क्रिस्टोफर, जे०; स्टीवेन्स, सी०; राबर्ट्स, जे० एल०; जैंपी, एच० जे०; डन, जे० एस०; गैब्रियल, वी०; रायप्पन, एम०; लाजरस, एफ०; मुडलै, आर०।

[अंग्रेजीसे]

गांधीजीके हस्ताक्षरोंमें पेन्सिलसे लिखे कच्चे मसविदे तथा टाइप की हुई दफ्तरी प्रतिकी फोटो नकलों (एस० एन० ३३०१–२) और *नेटाल मर्क्युरी*, ता० २५–१०–१८९९ से।

१. अपने अक्टूबर २३ के उत्तरमें मुख्य उप-सचिवने गांधीजीको लिखा था : "सम्राज्ञीके डर्बनवासी राजभक्त ब्रिटिश प्रजाजनोंने अपनी जो सेवाएँ अर्पित करनेका प्रस्ताव किया है उससे सरकार बहुत प्रभावित हुई है . . . . और अवसर आया तो सरकार प्रसन्नताके साथ उन सेवाओंका लाभ उठायेगी। कृपया, सम्बद्ध व्यक्तियोंको उनके प्रस्तावके प्रति सरकारकी सराहना सूचित करने दें।"

# ५६. दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय[1]

डर्बन
अक्टूबर २७, [१८९९]

[मैंने देखा कि नेटालके भारतीयोंकी शिक्षा[2] के सम्बन्धमें मेरे पिछले लेखने भारत तथा इंग्लैंडमें कुछ ध्यान आकर्षित किया है। उसमें मैंने कहा था कि यदि दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय प्रश्नकी ओर भारत तथा ब्रिटेनकी सरकारोंने जितना ध्यान अबतक दिया है उससे ज्यादा न दिया तो इस देशसे भारतीय समाजके मिट जानेमें सिर्फ समयकी कसर है। मैं जितना ही देखता हूँ उतना ही मेरा यह विश्वास दृढ़ होता जाता है। आज जब कि ब्रिटिश सेना और बोअरोंके बीच घोर युद्ध छिड़ा हुआ है, ट्रान्सवालके भारतीयोंकी उस स्थितिपर — मैं तो कहना चाहता था, नितान्त दयनीय स्थितिपर — जिसमें, कुछ समय पहले वहाँ भगदड़ मचनेपर, वे पड़ गये थे, संक्षेपमें विचार कर लेना अप्रासंगिक न होगा। आतंककी पहली अवस्थामें डचेतर यूरोपीय[3] हजारोंकी संख्यामें रोजाना जोहानिसबर्गसे भागते रहे। तथापि, भारतीय स्थिर रहे। बादमें डचेतर यूरोपीयोंकी परिषदके प्रमुख सदस्य चले गये। *स्टार*के सम्पादक तथा *टाइम्स*के संवाददाता श्री मनीपेनी और एक सुप्रसिद्ध सॉलिसिटर तथा परिषदके प्रमुख सदस्य श्री हलको वेश बदलकर भागना पड़ा था। *लीडर*के श्री पेकमनको राजद्रोहके आरोपमें गिरफ्तार कर लिया गया था और हवामें यह अफवाह व्याप्त थी कि नेटाल-सरकार आन्दोलनके नेताओंको बन्धकके रूपमें गिरफ्तार कर रखेगी। स्वभावतः ही यूरोपीयोंके साथ बेचारे भारतीय भी डर गये और वे भी ट्रान्सवाल छोड़कर किसी सुरक्षित स्थानमें जानेके लिए आतुर हो उठे। वे कहाँ जा सकते थे? केप कालोनीमें तो नहीं, क्योंकि वह दूर है और वहाँ भारतीयोंकी आबादी बहुत ही विरल है; डेलागोआ-बेमें भी नहीं, क्योंकि वह मलेरियाका अड्डा है, स्वच्छतासे रहित है और हदसे ज्यादा आबाद है। फिर नेटाल ही एक स्थान था जहाँ वे जा सकते थे। सो वहाँ, प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियम, जो पागलों, अपराधियों, वेश्याओं, कंगालों और यूरोपीय भाषाओंमें से किसी एकका भी ज्ञान न रखनेवालोंका आगमन निषिद्ध करता है, आड़े खड़ा था। अलबत्ता, अगर उक्त आखिरी वर्गके लोग नेटालके पूर्व-निवासी हों — इन शब्दोंका अर्थ कुछ भी निकले — तो बात दूसरी है। श्री चेम्बरलेनने कहा है कि वह अधिनियम रंग या प्रजातिके भेदभावके बिना सबपर लागू होता है और, इसलिए, वह कोई ऐसी चीज नहीं है, जिसपर आपत्ति की जा सके। परन्तु इसका यह निष्कर्ष बिलकुल नहीं निकलता कि यूरोपीय अपराधी, गुंडे या वेश्याएँ, जिनकी संख्या जोहानिसबर्गमें अच्छी-खासी मानी जा सकती है, नेटाल नहीं जा सकते थे। उनके लिए न केवल उपनिवेशके दरवाजे खुले हुए थे, बल्कि उनके स्वागतके लिए विशेष प्रबन्ध किया गया था — सहायता-समितियोंका संगठन किया गया था, और उनके संकटके समय उनको राहत पहुँचानेके लिए जो-कुछ भी किया जा सकता था वह सब इस उपनिवेशके लोगोंने किया था। यह स्वाभाविक और न्यायपूर्ण ही था।

१. देखिए पादटिप्पणी, पृष्ठ ६३।

२. देखिए "दक्षिण आफ्रिकामें भारतीय प्रश्न," जुलाई १२, १८९९।

३. गोरे विदेशी, आम तौरपर ब्रिटिश प्रजाजन, जो ट्रान्सवाल आकर बस गये थे।

सिर्फ भारतीय नही आ सके, और सिर्फ वे ही न आयें। उन्होंने कुछ राहत पानेके प्रयासमें सरकारसे अपील की। उन्होंने सुझाया कि उपर्युक्त कानूनके अन्तर्गत स्वीकार किये गये कठोर नियमोंका कुछ हिस्सा मुल्तवी कर दिया जाये; और यह माँग की कि संकट-कालमें उन्हें नेटालमें ठहरने दिया जाये। पहले-पहल तो नेटाल-सरकारने राहत देनेसे साफ इनकार कर दिया; बादमें उसने कहा कि अगर युद्ध छिड़ा तो वह मानवीय भावनासे प्रेरित होकर मानवताके काम करेगी। भारतीयोंने जोहानिसवर्गमें ब्रिटिश प्रतिनिधिसे भी प्रार्थना की थी। और, कहना ही होगा, वे मौकेपर काम आये और उन्होंने योग्य अधिकारियोंके सामने प्रश्नका साम्राज्यिक पहलू बहुत जोरोंके साथ पेश किया। इससे अभीष्ट राहत मिल गई।

नेटालने जो हास्यास्पद और अ-ब्रिटिश रुख ग्रहण किया था उसे भली भाँति समझनेके लिए उपर्युक्त नियमोंके बारेमें कुछ जान लेना जरूरी है। प्रवासी-प्रतिबन्धक विधेयकको पेश करते समय नेटालके मन्त्रियोंने कहा था कि उपनिवेशमें पहलेसे ही बसे हुए भारतीयोंको असुविधामें डालनेका उनका कोई इरादा नहीं है। परन्तु, जैसे ही विधेयक अधिनियमके रूपमें परिणत हुआ, सरकारने विपथ होकर भी विभिन्न जहाज-कम्पनियोंको सूचनाएँ भेजी, और उन्हें बताया कि यदि वे भारतीय यात्रियोंको लाईं तो उन्हें क्या दण्ड भोगना होगा। स्वाभाविक था कि इसका जहाज-कम्पनियोंने यह अर्थ लगाया कि उन्हें किसी भी भारतीय यात्रीको नही लाना है। इस दृष्टिसे, यह आवश्यक मालूम हुआ कि जो भारतीय उक्त कानूनके अन्तर्गत उपनिवेशोंमें आनेके हकदार थे, उन्हें कुछ राहत दी जाये। इसलिए सरकारने "अधिवास प्रमाणपत्र" (सार्टिफिकेट्स ऑफ़ डोमिसाइल) कहलानेवाले प्रमाणपत्र जारी किये। ये उन लोगोंको दिये जाते थे जिनके सम्बन्धमें प्रमाण पेश किया जा सके कि वे पहले उपनिवेशमें रहते थे। यहाँ यह बता देना अनुचित न होगा कि "अधिवास" शब्दकी व्याख्या जितनी हो सकी उतनी संकुचित कर दी गई है। इससे अब, व्यावहारिक रूपमें, प्रमाणपत्र चाहनेवाले भारतीयको इस आशयके दो हलफनामे पेश करने पड़ते हैं कि वह कमसे कम दो वर्षसे उपनिवेशमें कोई स्थायी व्यापार कर रहा है। खुद कानूनमें इस पाबन्दीके लिए कोई विधान नहीं है। ये प्रमाणपत्र खजानेमें ढाई शिलिंग (आधा क्राउन) शुल्क जमा करनेपर दिये जाते हैं। परन्तु पाठक आसानीसे कल्पना कर लेंगे कि जिस गरीब भारतीयको यह साबित करना है कि वह कानूनके अमलसे बरी है, उसे न सिर्फ आधा क्राउन देना पड़ता है, बल्कि हलफनामा बनानेवाले वकीलों आदिका शुल्क भी चुकाना पड़ता है।

इस सुविधासे — अगर इसे सुविधा कहा जा सके तो — सिर्फ वे भारतीय नेटालका टिकट पानेमें समर्थ हुए, जो पहले नेटालके बाशिन्दे थे। परन्तु नेटालवासी भारतीयोंके वे मित्र, रिश्तेदार या ग्राहक क्या करते, जो थोड़े ही दिनोंके लिए नेटाल आना चाहते थे और, इसलिए, यहाँ बसनेके इच्छुक नही थे? भारतीय अधिवासियोंकी सहूलियतके लिए ऐसी अस्थायी अनुमतिकी पूरी-पूरी जरूरत थी। जो दक्षिण आफ्रिकाके अन्य भागोंसे आवश्यक कार्यवश नेटाल आना चाहते थे उनकी ओरसे कुछ आवेदनपत्र सरकारको भेजे गये थे। और कुछ कठिनाईके बाद इस शर्तपर अनुमति दे दी गई कि उनकी यथोचित वापसीके लिए ५० पौंड तककी जमानत जमा की जाये: इस प्रकारकी अनुमति देनेमें जो त्रासदायक देरी होती थी और ऐसी भारी जमानत माँगी जाती थी कि लोग जमा ही न कर सकें, उसके खिलाफ बार-बार शिकायतें और चीख़-पुकार होती थी। कुछ बाकायदा राहतके लिए अर्जियाँ दी गईं और जब कानून पास होनेके बाद एक वर्षसे भी ज्यादा बीत गया तब सरकारने नियम बनाये, जिनमे अभीष्ट सन्तोष मिलनेके बजाय, जोरोंकी निराशा पैदा हुई। अगर कोई व्यक्ति, मान लीजिए जोहानिसबर्गसे, भारत जानेके

मार्गमें डर्बनसे गुजरे तो उसे २५ पौंड जमा करनेपर और अगर वह ज्यादासे ज्यादा छः सप्ताहतक नेटालमें ठहरना चाहे तो १० पौंड जमा करने पर परवाना दिया जाता था। ऐसे प्रत्येक परवानेपर पहली बार एक पौंडका शुल्क लगाया गया। इस तरह, अगर कोई गरीब भारतीय भारत जानेके लिए डर्बनमें जहाजपर सवार होना चाहता तो वह न सिर्फ जमा करनेके लिए २५ पौंड बल्कि सरकारको देनेके लिए भी १ पौंड जुटानेके लिए लाचार था; जबकि उसे जहाजकी छत (डेक) पर भारततक यात्रा करनेका किराया ज्यादासे ज्यादा पाँच गिनी और, कभी-कभी तो, सिर्फ दो गिनी ही देना पड़ता था। यह शुल्क लगानेके, और नेटालमें ठहरनेवालों तथा डर्बनसे सिर्फ जहाजपर सवार होनेवालोंके परवानोंके लिए जमा की जानेवाली रकमोंमें जो अन्तर था उसके, विरोधमें अर्जियोंपर अर्जियाँ भेजी गईं। परन्तु सरकारने कहा कि १ पौंडका शुल्क आवश्यक है, क्योंकि परवाने एक रिआयतके रूपमें दिये जाते हैं और उनसे सरकारका काम बहुत बढ़ता है; और जहाजपर सवार होनेके परवानोंके लिए ज्यादा रकम जमा करानेका आग्रह इसलिए रखा गया है कि सरकार उस रकमसे परवानेवालोंके लिए टिकट खरीदती है। परवानेवालोंने तो सरकारसे इस उपकारकी माँग कभी नहीं की और न कभी उसकी सराहना ही की। इसके विपरीत, अर्जदारोंका दावा था कि ऐसे परवानोंका दिया जाना बिलकुल आवश्यक है और यह जरूरत पूरी-पूरी उस कठोरतासे पैदा हुई है, जिससे प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियम (इमिग्रेशन रजिस्ट्रेशन ऐक्ट) को कार्यान्वित किया जाता है। उनका कहना था कि कानून तो प्रवासको — अर्थात् स्थायी निवासके लिए आनेको, न कि अस्थायी रूपसे ठहरनेके लिए आनेको — मना करता है और, इसलिए, उन्होंने परवानोंकी प्रथाको रिआयत माननेसे आदरपूर्वक इनकार कर दिया।

परन्तु, जबतक सरकारपर बहुत दबाव नहीं डाला गया और जबतक विक्रेता-परवाना अधिनियम-सम्बन्धी प्रार्थनापत्रमें अर्जदारोंने यह धमकी नहीं दी कि वे ब्रिटिश अधिकारियोंको प्रार्थनापत्र भेजेंगे तबतक सरकार नहीं मानी। बादमें उसने १ पौंडका शुल्क उठा लिया और जहाजपर सवार होनेके परवानोंकी २५ पौंड जमानतको घटाकर १० पौंड कर दिया। फलतः, जब ट्रान्सवालके भारतीयोंने राहतके लिए अपील की उस समय प्रत्येक यात्री या जहाजपर सवार होनेके परवानेपर १० पौंड शुल्क वसूल किया जाता था। (इस तरह, एक दूकानदारको जिसके, मान लीजिए, पाँच नौकर हैं, न सिर्फ अपना सारा माल पीछे छोड़ देना पड़ता, न सिर्फ लम्बे युद्धके दौरानमें भरण-पोषणका प्रबन्ध करना पड़ता — सो भी, किसी व्यापारकी संभावनाके बिना — और न सिर्फ यात्रा तथा फुटकर खर्चके लिए धन जुटाना पड़ता, बल्कि आतंकके समयमें, ट्रान्सवाल छोड़नेके पहले, सरकारी खजानेमें जमा करनेके लिए ६० पौंड भी पास रख लेने पड़ते — जो, घोर मुसीबतके समय असम्भवप्राय हो सकता है)। यह ध्यान देने योग्य बात है कि ये परवाने — यद्यपि हमें स्वीकार करना ही चाहिए कि ये अर्जी देनेपर बिना किसी कठिनाईके दे दिये जाते हैं — देना-न-देना उन अफसरोंके इच्छाधीन है, जो इन्हें देनेके लिए नियुक्त किये गये हैं। सम्बद्ध भारतीयोंने तो सिर्फ यह माँग की थी कि १० पौंडका शुल्क मुलतवी कर दिया जाये और सिर्फ संकट-कालमें उन्हें नेटालमें प्रवेश करने तथा रहनेकी अनुमति दी जाये। सरकारने पहले-पहल उसका जो रूखा उत्तर दिया उससे न सिर्फ जोहानिसबर्गके भारतीयोंको, बल्कि न्याय-बुद्धिवाले अनेक अंग्रेजोंको भी धक्का पहुँचा। मैं जानता हूँ कि ब्रिटिश उप-राजप्रतिनिधि बहुत नाराज थे। बोअरोंके पत्र *स्टैंडर्ड ऐंड डिगर्स न्यूज़*ने एक धज्जियाँ उड़ा देनेवाले लेखमें नेटालकी हँसी उड़ाई थी और साम्राज्य-सरकारके ट्रान्सवालको डचेतर यूरोपीयोंके प्रति न्याय करनेके लिए दबाने और नेटालको ब्रिटिश भारतीयोंके प्रति जैसा चाहे वैसा व्यवहार करने देनेमें जो विसंगति है,

उसे स्पष्ट किया था। और यह सत्यसे बिलकुल रहित नहीं था। भारतीयोंके लिए उस समय तो "ब्रिटिश प्रजा" शब्द अर्थशून्य हो गये थे। ब्रिटिश भारतीय ऐसे घोर संकटके समय ब्रिटिश-भूमिमें आश्रय न पा सकें, यह उनकी समझके बाहर था और वे 'क्या करें, कहाँ जायें' के चक्करमें पड़ गये थे। हालकी घटनाओंसे सावित हो जाता है कि भारतीयोंकी आशंकाएँ बिलकुल सही थी और आपके जिन पाठकोंने इस महाखण्डकी उत्तेजक घटनाओंका अनुशीलन किया है, उन्हें अबतक पता चल गया होगा कि जो लोग अन्तिम क्षणतक ट्रान्सवालसे भागना टालते रहे, उन्हें कैसी मर्मवेधी कठिनाइयाँ भोगनी पडी थीं। जोहानिसवर्ग-स्थित ब्रिटिश उप-राजप्रतिनिधिने मदद की। उन्होंने प्रिटोरिया-स्थित ब्रिटिश एजेंटको एक जोरदार खरीता भेजा। एजेंटने, अपनी वारीमें, ब्रिटिश उच्चायुक्तको तार दिया और उनकी एक सामयिक "सिफारिश" से नेटाल सरकारके होश ठिकाने आ गये तथा १० पौंडका शुल्क स्थगित कर दिया गया। आशा करें कि यह स्थगन स्थायी वन जायेगा। और अगर वर्तमान युद्धसे यूरोपीय ब्रिटिश प्रजाओंकी भावनाएँ उनके भारतीय वन्धु-प्रजाजनोंके प्रति ज्यादा अच्छी हो गईं — जैसा कि असम्भव नही मालूम होता — तो उसका एक अच्छा नतीजा तो हो ही जायेगा।

यह कह देना नेटाल-सरकारके प्रति हमारा कर्त्तव्य है कि सर आल्फ्रेड मिलनरकी लाभदायक सिफारिशके वादसे नेटाल-सरकारने भारतीयोके प्रति भेद-भाव न करनेकी सावधानी बराबर रखी है। जब जोहानिसवर्ग और डर्बनके बीच मुसाफिरोंका आना-जाना रुक गया तब शरणार्थियोंको डेलागोआ-वेके रास्ते आना पडता था। यूरोपीय तो विना किसी विघ्न-बाधाके डर्बन आ गये। उनके रहने और भोजन आदिकी व्यवस्था सरकार या सहायता-समितियोंको करनी पड़ी। परन्तु, ऊपर बताई हुई सूचनाके खयालसे, जहाज-कम्पनियाँ उन भारतीय शरणार्थियोको लानेकी हिम्मत करनेको तैयार नही हुईं, जिनमें से एकने भी सरकार या सहायता-समितिसे मददकी माँग नही की। सरकारसे निवेदन किया गया था कि उसने रकम जमा कराना तो स्थगित कर ही दिया है, अब जहाज-कम्पनियोंको भारतीय शरणार्थियोको लानेकी सूचना और दे दे। सरकारने लगभग तुरन्त यह कर दिया। कम्पनियोंको सूचना दी जाने और अधिवास-प्रमाणपत्रका नियम जारी किये जानेसे जो कष्ट हुए उनके कुछ उदाहरण दे देना अनुचित न होगा। जैसा कि मैंने पहलेके एक पत्रमें लिखा है, गिल्टीवाला प्लेग, उनके लिए वहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। नेटालके कठोर सूतक-अधिनियमने भारतसे आनेवाले किसी भी जहाजके लिए भारतीय यात्री लेना वहुत जोखिमका काम बना दिया है। फलतः, ऐसा मालूम होता है, वम्बईकी जहाज-कम्पनियाँ महीनोंसे नेटालके लिए सवारियाँ लेनेसे साफ इनकार करती आ रही हैं। इस तरह, खास तौरसे भारतीय व्यापारियोको, उनके साझेदारों या कर्मचारियोंके नेटालका टिकट प्राप्त न कर सकनेके कारण, जो हानि उठानी पड़ी और जो असुविधा हुई, वह वहुत गम्भीर है। सरकारसे सहायताकी माँग की गई है, परन्तु सरकार यह कह कर वच गई है कि वह जहाज-कम्पनियोंको कोई आश्वासन तो नही दे सकती, परन्तु भारतीय वन्दरगाहोंसे आनेवाले प्रत्येक व्यक्तिके वारेमें उसकी योग्यता-अयोग्यताके आधारपर विचार करेगी। दुर्भाग्यवश, डेलागोआ-वेके अधिकारियोंपर भी गिल्टीवाले प्लेगकी झक सवार हो गई है और उन्होंने, नेटालकी मतवाली चीख-पुकारके वश होकर, हालमें भारतीय सवारीवाले जहाजोंको वापस कर दिया है; उन्हें माल भी उतारने नही दिया। उनके मनमें कोई पूर्वग्रह नही है; परन्तु चूँकि पड़ोसी उपनिवेशके लोग चिल्ला रहे हैं कि वहाँ स्वच्छताकी व्यवस्था विलकुल रद्दी है और संक्रामक रोगोंके मरीजोंकी देखभालका प्रबन्ध और भी गया-बीता है, इसलिए वे वहुत ही जोर-जवरदस्तीसे काम चला रहे हैं। लगभग एक सप्ताह पूर्व फ्रंज़लर नामका जहाज वहुत-से भारतीय यात्रियोको बम्बईसे लेकर आया

था। उसे लौट जानेका आदेश दिया गया। इसी बीच, एक भारतीय सज्जनने जिनका मुंशी उक्त जहाजमें था, पोर्तुगीज अधिकारियोंसे भेंट करके उन्हें राजी कर लिया कि उसे उतरने दिया जाये। कहा जाता है कि उसको लानेके लिए सरकारकी जहाज खींचनेवाली नौका खास तौरसे भेजी गई। यह सचमुच बड़ी मनोरंजक बात है; कसर इतनी ही है कि यह बहुत सन्ताप-जनक भी है। इससे मालूम होता है कि पोर्तुगीज लोग भारतीयोंके प्रति रागद्वेषसे मुक्त हैं; और यह भी पता चलता है कि दुर्बलताके समयमें वे अन्याय कर सकते हैं।

यह दुर्भाग्यपूर्ण दशा है, दक्षिण आफ्रिकामें बेचारे भारतीयोंकी; और इसका मुख्य कारण है, नेटालकी भारतीय-विरोधी नीति। यदि प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियम और सूतक-अधिनियम (यह भी वास्तवमें भारतीय-विरोधी अधिनियम ही है) न होते, तो भारतीय यात्रियोंको लानेवाले सारेके सारे जहाजोंका बिना यह खयाल किये एकदम वापस कर दिया जाना कि भारतीयोंपर इसका क्या असर पड़ेगा, असम्भव होता। फिर भी मुझे लगता है कि स्थिति बिलकुल ही असाध्य नहीं है। भारतीय प्रश्नके परे, नेटालने निस्सन्देह, वर्तमान संकटका ठीक-ठीक मुकाबला किया है — यहाँतक कि श्री चेम्बरलेनने अपने हालके महान् भाषणमें उपनिवेशकी प्रशंसा की है, जिसका वह योग्य पात्र था। स्वयंसेवक दृढ़ताके साथ साम्राज्यके पक्षमें लड़ रहे हैं। मन्त्रियोंने अपना पूरा बल साम्राज्य-सरकारको प्रदान किया है। उपनिवेशके मुख्य नगरों — न्यूकैसिल, चार्ल्सटाउन और डंडीको कमसे कम अवधिकी सूचनापर बिलकुल खाली करना था; और ब्रिटिशोंने, जिनमें ब्रिटिश भारतीय भी शामिल थे ही, स्थितिको महसूस किया और अपना सब माल-मत्ता छोड़कर मूक समर्पण-भावसे इन स्थानोंको छोड़ दिया। इनमें व्यापारी तथा अन्य सभी लोग शामिल थे। यह सब राज-सिंहासनके प्रति गहरी निष्ठा-भक्तिका द्योतक है। इसलिए, अगर यूरोपीय उपनिवेशियोंको सिर्फ इतना समझा दिया जाये कि जबतक भारतीयोंके प्रति न्याय नहीं किया जाता तबतक उनकी निष्ठा-भक्ति अधूरी ही रहेगी, तो वे तदनुसार कार्य करनेमें चूकेंगे नहीं। साम्राज्यमें एकता की लहरके चिह्न दिखलाई पड़ रहे हैं — इसमें कोई भूल नहीं। वर्तमान युद्ध पूर्णतः डचेतर यूरोपीयोंके हितका है। उनकी यातनाएँ भारतीयोंकी यातनाओंकी तुलनामें नगण्य ठहरती हैं। जो स्वयंसेवक सम्राज्ञीके पक्षमें लड़नेके लिए रणभूमिपर गये हैं, उनमें से अधिकतर वे हैं, जिन्होंने १८९७ में डर्बनके भारतीय-विरोधी प्रदर्शनमें, जो अब काफी कुख्यात हो चुका है, प्रमुख भाग लिया था। कुछ दिन पहले अंग्रेजी बोलनेवाले कुछ स्थानीय भारतीयोंने एक सभा करके निश्चय किया था कि चूँकि वे ब्रिटिश प्रजा हैं और इस हैसियतसे अधिकारोंकी माँग करते हैं, इसलिए उन्हें अपने घरेलू मत-भेदको भुला देना चाहिए और, युद्धके न्यायान्यायपर उनका मत कुछ भी हो, इस संकटके समय रणभूमिपर कुछ सेवा करनी चाहिए — भले ही वह सेवा कितनी ही छोटी क्यों न हो, भले ही घायलोंको स्वयं-सेवक शिविरमें पहुँचानेका काम ही क्यों न करना पड़े। इन उत्साही युवकोंमें से अधिकतर मुंशी हैं, सुख-सुविधामें पले हैं और कठिन परिश्रम करनेके बिलकुल आदी नहीं हैं। उन्होंने सरकार या साम्राज्य अधिकारियोंको अपनी सेवाएँ बिना वेतन और बिना शर्तके देनेका प्रस्ताव किया है। उन्होंने कहा है कि हम हथियार चलाना नहीं जानते और अगर हम रणभूमिपर कोई काम कर सकें — चाहे वह निचले दर्जेकी टहल ही क्यों न हो — तो इसे एक विशेषा-धिकार मानेंगे। जिनको जरूरत पड़े उनके परिवारोंका पालन-पोषण करनेके लिए भारतीय व्यापारी आगे आ गये हैं। सरकारने बड़ा शिष्ट उत्तर देते हुए कहा है कि अगर अवसर आया तो वह प्रस्तावित सेवाओंका लाभ उठायेगी।

मुझे लगता है कि प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियमका अध्ययन करनेका कष्ट न तो भारतीय जनताने किया और न जहाज-कम्पनियोंने ही। क्योंकि, सरकारकी उपर्युक्त सूचनाके बावजूद,

कम्पनियाँ भारतीय यात्रियोंको लेनेसे ही इनकार करें, इसका कोई कारण मौजूद नहीं है। वे ऐसे व्यक्तियोंको बिना किसी जोखिमके ले सकती हैं, जो अंग्रेजी लिखना-पढना काफी अच्छी तरह जानते हैं। और किन्हीं ऐसे भारतीय यात्रियोंको लेनेमें भी कोई पसोपेश नहीं होना चाहिए, जो इस आशयका वादा करें — और जरूरत हो तो रुपया भी जमा कर दें — कि अगर उन्हें नेटालमें उतरने न दिया गया तो वे अपने खर्चसे वापस आ जायेंगे या आगेके बन्दरगाहमें उतर जायेंगे। हमारी महान कम्पनियोंको खुद ही गरीब भारतीय यात्रियोंको ऐसी सब सहूलियतें देना चाहिए, जो उनकी शक्तिमें हों; या फिर, व्यापार संघ (चेम्बर्स ऑफ़ कामर्स) जैसी सार्वजनिक संस्थाओंको, जिनके क्षेत्रमें ये बातें खास तौरसे आती हैं, उनसे ऐसा कराना चाहिए। मुझे भरोसा है कि वे इस सुझावपर सहानुभूतिके साथ विचार करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

*टाइम्स ऑफ़ इंडिया* (साप्ताहिक संस्करण), ९-१२-१८९९।

## ५७. पत्र : विलियम पामरको

[डर्बन
नवम्बर १३, १८९९ के बाद]

प्रिय श्री पामर,

आपके कृपापूर्ण पत्रके लिए बहुत धन्यवाद। पत्रसे मुझे आश्चर्य हुआ है।[1]

अगर सम्भव हो तो मैं उन महिलाओंके, जो चन्दा इकट्ठा करने गई थीं, और उन "अरबों" के, जिन्होंने सहायता देनेसे इनकार किया, नाम जानना चाहता हूँ।

बहुत सम्भव है कि वे लोग उन महिलाओंको या निधिके सच्चे उद्देश्यको न जानते हों।

जब भारतीयोंने रणभूमिपर सक्रिय सहायता करनेके लिए साम्राज्य-अधिकारियोंके सामने अपनी सेवाएँ प्रस्तुत कीं, उसके पहले मैं श्री जेमिसनके पास गया था और मैंने पूछा था कि ऐसा करना उचित है या नहीं। वे, स्वयंसेवकोंके हथियार चलानेमें असमर्थ होनेके कारण, ऐसा करनेकी सलाह देनेके अनिच्छुक मालूम पड़े; परन्तु उन्होंने आपके पत्रमें उल्लिखित निधिमें चन्दा देनेका सुझाव दिया। तबसे मैं बराबर सोचता आ रहा हूँ कि एक छोटी-सी निधि एकत्र करनेके लिए प्रमुख भारतीयोंको राजी कर लिया जाये। परन्तु, जैसा कि आप जानते हैं, सेवाएँ पेश कर दी गई हैं। इसमें एक शर्त यह है कि सक्रिय सेवाके दिनोंमें स्वयंसेवकोंके परिवारोंका भरण-पोषण किया जाये। इसके लिए जारी की गई निधिके और भारतीय व्यापारियोंपर पड़े हजारों भारतीय शरणार्थियोंके आर्थिक भारसे, व्यापारियोंके लिए विभिन्न निधियोंमें चन्दा देनेके सम्बन्धमें विवेकसे काम लेना आवश्यक हो गया है।

फिर भी मैं इस निधिकी ओर भारतीयोंका ध्यान अधिक व्यापक रूपमें खींचनेके मौकेकी राह देख रहा हूँ।

१. डर्बन महिला देशभक्त संघ (डर्बन वीमेन्स पैट्रिआटिक लीग) के कोषाध्यक्ष श्री विलियम पामरने १३ नवम्बर, १८९९ को गांधीजीको एक पत्र लिखकर शिकायत की थी कि "कुलियों" ने तो सड़क-सड़क घूमकर एकत्र की जानेवाली निधिमें तीन-तीन पेनी दान दिया, परन्तु "अरबों" (एशियाई व्यापारियों) ने "कोई भी सहायता देनेसे इनकार कर दिया है।"

कृपया उन आत्मत्यागी महिलाओंको आश्वासन दिलाइए कि सहानुभूतिके अभावके कारण कोई भारतीय मदद करनेसे इनकार नहीं कर सकता था। हम सबको एक ही भावना प्रचालित कर रही है — अर्थात्, साम्राज्यनिष्ठाकी भावना। और हम सब जानते हैं कि स्वयं-सेवकोंने, और वे जिन्हें अपने पीछे छोड़ गये हैं उन्होंने, क्या आत्मत्याग किया है। कुछ स्वार्थी लोगोंके अस्तित्वसे — अगर ऐसा अस्तित्व हो तो — मेरे नम्र मतानुसार, वे जिस वर्गके हों उस पूरे वर्गके बारेमें हमें अनुदारतासे नहीं सोचना चाहिए। और, आखिर, कुली भी तो उतने ही भारतीय हैं, जितने कि अरब।

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३३२३) से।

## ५८. डर्बन-निधिमें चन्दा

गांधीजीने अपने हाथसे लिखा हुआ नीचेका पर्चा लोगोंमें घुमाया था और चन्देकी माँग की थी।

डर्बन
नवम्बर १७, १८९९

हम, नीचे हस्ताक्षर करनेवाले, डर्बन महिला देशभक्त संघ (डर्बन विमेन्स पैट्रिऑटिक लीग) की निधिमें इसके द्वारा निम्नलिखित चन्दा देते हैं :

| | |
|---|---|
| ई० अबूबकर अमद ऐंड ब्रदर्स | ५– ५–० |
| एस० पी० मुहम्मद ऐंड कम्पनी | २– २–० |
| पारसी रुस्तमजी | ५–१०–० |
| मो० क० गांधी | ३– ३–० |

[यहाँ बयालीस अन्य हस्ताक्षर और हस्ताक्षरकर्ताओंके चन्देकी रकम दी गई है।]

योग : ६२– ७–३

चन्देकी मूल अंग्रेजी सूचीकी फोटो-नकल (एस० एन० ३३२६) से।

## ५९. नेटालके भारतीय व्यापारी[1]

डर्बन
नवम्बर १८, [१८९९]

दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थितिपर अबतक मैंने जो-कुछ लिखा है उसमें से कुछ भी उतना ध्यान देने योग्य नहीं है, जितना कि इस पत्रमें मैं जो-कुछ लिखनेवाला हूँ उसपर दिया जाना चाहिए। नेटाल विधानमंडलने १८९७ में अशोभनीय हड़बड़ीमें और ऐसे समयपर, जब कि डर्बनकी भीड़का क्रोध शान्त भी नहीं हुआ था, चार अधिनियम पास किये थे। उनमें से एक वह था, जो विक्रेता-परवाना अधिनियम (डीलर्स लाइसेंसेज़ ऐक्ट) के नामसे प्रसिद्ध है। इस अधिनियमसे, इसके अन्तर्गत नियुक्त परवाना-अधिकारीको पूरा अधिकार मिल

१. देखिए पादटिप्पणी, पृष्ठ ६३।

जाता है कि वह थोक या फुटकर व्यापारका परवाना स्वेच्छानुसार दे या देनेसे इनकार कर दे — चाहे परवाना दूकानदारकी हैसियतसे व्यापार करनेके लिए हो या फेरीवालेकी हैसियतसे। उसके निर्णयपर वही नगर-परिषद या नगर-निकाय पुनर्विचार कर सकता है, जिसे उसकी नियुक्ति करनेका अधिकार है। परवानोंके ऐसे मामलोंमें अपील-अदालतके तौरपर विचार करनेवाली इन संस्थाओंके निर्णयके खिलाफ अपील करनेका कोई अधिकार नही रखा गया है। परवानेके बिना व्यापार करनेका दण्ड २० पौंड है। दण्ड न देनेपर मजिस्ट्रेटको अधिकार है कि वह अपराधीको जेल भेज दे। यह अधिकार इसी अधिनियमके अन्तर्गत नही, बल्कि एक दूसरे कानूनके अन्तर्गत मजिस्ट्रेटको दिया गया है। वह कानून ऐसे मामलोंके लिए है जिनमें जेलकी सजा निश्चित रूपसे नही बताई गई है। आशा तो यह की गई थी कि न्याय-कार्य करनेवाली तमाम संस्थाओंके कार्यपर विचार करनेका जो अधिकार उपनिवेशके सर्वोच्च न्यायालयको है उससे उसके वंचित किये जानेको सम्राज्ञीकी न्याय-परिषद अवैध करार दे देगी; परन्तु, जैसा कि पाठकोंको याद होगा, उस परिषदने उलटा निर्णय दिया है। सर्वोच्च न्यायालयने भी यह निर्णय दिया है कि उक्त अधिनियमके मातहत दिये गये परवाने सिर्फ वैयक्तिक है और इसलिए वे, मान लीजिए किसी कम्पनीके पास, रह तो सकते है, परन्तु यदि उस कम्पनीकी साख (गुडविल) बेची जाये तो खरीदारको उस कम्पनीके परवानेपर शेष अवधितक व्यापार करनेका अधिकार नहीं रहेगा। इस तरह, अधिनियमके अन्तर्गत कहीं कोई छिद्र छोडा ही नहीं गया है और न्यायिक व्याख्याने, उससे प्रभावित होनेवाले पक्षोंके अधिकारोंको छोटेसे-छोटे दायरेमें सिकोड़ दिया है। बेचारे भारतीयोंने प्रार्थनापत्र भेजे है — दो उपनिवेश-मंत्रीको और एक लॉर्ड कर्जनको, जिनसे उन्होंने बहुत बड़ी आशा बाँध रखी है। वाइसरायके पाससे अभीतक कोई जवाब नहीं आया है और न आखिरी प्रार्थनापत्रका उपनिवेश-मंत्रीके पाससे ही। सिर्फ नेटाल-सरकारके पाससे इस आशयकी सूचना मिली है कि उपनिवेश-मंत्रालय उसके साथ पत्र-व्यवहार कर रहा है।

यह कहनेमें कोई जोखिम नही कि नेटाल-उपनिवेशमें ३०० से ज्यादा भारतीय दूकानें या दूकानदारोंके परवाने और लगभग ५०० भारतीय फेरीवालोंके परवाने जारी है। ये परवानेवाले भारतीय समाजके इज्जतदार लोग है और उपनिवेशके उन ४,००० स्वतंत्र भारतीयोंका प्रतिनिधित्व करते है, जो उन ५०,००० भारतीयों और उनके वंशजोंसे भिन्न है, जिन्हें गिरमिटिया प्रथाके अन्तर्गत मजदूर बनाकर नेटाल लाया गया है। अधिनियमने अपने अमलसे बहुतसे भारतीय दूकानदारोंको बरबाद कर दिया है और सभीके मनमें बेचैनी पैदा कर दी है। कुछ मामलोंमें परवाना-अधिकारियोंने अधिनियमको अधिकसे-अधिक तोड़ा-मरोड़ा है और यह कहनेमें जरा भी अतिशयोक्ति न होगी कि उन्होंने अपने अधिकारोंका उपयोग मनमाने और अत्याचारी ढंगसे किया है। और परवाना-निकायोंने उनकी इन कार्रवाइयोंकी उपेक्षा की है, और कभी-कभी तो उन्हें प्रोत्साहित किया है, और यहाँतक कि हुक्म देकर उनसे मनचाहा काम कराया है। सिर्फ नये परवाने देनेसे इनकार ही किया गया हो, सो बात नही; पुराने परवानोंके हस्तान्तरणकी मनाही भी की गई है; और पुराने परवानोंको नया नही कराने दिया गया, बल्कि कुछ मामलोंमें अन्यायके साथ अपमान भी जोड दिया गया है, और पीड़ित पक्ष अपने आपको बिलकुल शक्तिहीन महसूस करता रहा है। एक पुराना भारतीय अधिवासी मजदूरकी हैसियतसे उठकर इज्जतदार व्यापारी बन गया था। वह एक अन्दरूनी जिलेमें कई वर्षोंसे व्यापार कर रहा था। वह वहांसे डर्बन चला आया और उसने एक छोटी-सी जायदाद खरीद ली। उसने सोचा था कि वह डर्बनके भारतीय मुहल्लेमें व्यापारका परवाना ले लेगा, और मुख्यतः भारतीय ग्राहकोंकी जरूरतें पूरी करेगा। उसने परवानेकी अर्जी दी, बताया कि उसने हिसाब रखनेके

लिए एक यूरोपीय हिसाबनवीसको नियुक्त कर लिया है और अपनी इज्जतदारी और ईमानदारीके बारेमें ऐसे तीन सुप्रसिद्ध यूरोपीय व्यापारियोंके प्रमाणपत्र भी पेश किये, जिनके साथ उसका कारोबार चलता था। परन्तु परवाना-अधिकारीने परवाना देनेसे इनकार कर दिया। मामलेकी अपील डर्बन नगर-परिषदके सामने की गई और अर्जदारके न्यायवादीने परवाना-अधिकारीसे इनकारीके कारण बतानेके लिए कहा। परवाना-अधिकारीने कारण बतानेसे इनकार कर दिया। नगर-परिषदने परवाना-अधिकारीका फैसला बहाल रखा और वह उसे कारण बतानेके लिए बाध्य करनेको भी राजी नहीं हुई। जब कि मुकदमेकी सुनवाई हो ही रही थी, अदालत (अर्थात् — नगर-परिषद), परवाना-अधिकारी (जो प्रतिवादी था) और नगर-सॉलिसिटर सलाह-मशविरेके लिए एक निजी कमरेमें चले गये, और लौटने पर, यह भूलकर कि वकीलकी दलीलें अभी सुनी जानेको हैं, परिषदने अपना यह फैसला सुना दिया कि परवाना-अधिकारीका निर्णय बहाल रखा जाता है। अर्जदारके वकीलने इस अनियमितताकी ओर ध्यान खींचा और अदालतके सामने, जिसने पहलेसे ही अपना विचार बाँध लिया था, दलीलें करनेका स्वाँग होने दिया गया। नतीजा जरा भी बेहतर नहीं हुआ।

आग्रही अर्जदार अपने मामलेको सर्वोच्च न्यायालयके सामने ले गया। सर्वोच्च न्यायालयने, अधिनियमके अन्तर्गत हस्तक्षेप करनेका अधिकार न होनेके कारण, परिषदके फैसलेमें हस्तक्षेप करनेसे तो इनकार किया, परन्तु सारी कार्रवाईको रद करके मामलेको इस निर्देशके साथ फिरसे सुनवाई करनेके लिए वापस भेज दिया कि अर्जदारको इनकारीके कारण जाननेका अधिकार है। स्थानापन्न मुख्य न्यायाधीशने कहा:

> **मालूम होता है . . . कि इस मामलेमें परिषदकी कार्रवाई अत्याचारपूर्ण है। . . . मेरा खयाल है कि दोनों माँगें [लेखाकी नकल देने और कारण बतानेकी] नामंजूर करनेकी कार्रवाई अन्यायपूर्ण और अनुचित है।**

प्रथम उपन्यायाधीश मेसनने —

> **माना कि जिस मामलेकी अपील की गई है, उसकी कार्रवाई नगर-परिषदके लिए लज्जाजनक है; और उन्होंने इस कड़ी भाषाका प्रयोग करनेमें कोई संकोच नहीं किया। इस परिस्थितिमें उनका खयाल था, यह कहना कि नगर-परिषदके सामने कोई अपील हुई थी, शब्दोंका दुरुपयोग करना है।**

इस तरह, नगर-परिषदने फिरसे अपीलकी सुनवाई की और परवाना-अधिकारीसे इनकारीके कारण दिलावाये, जो ये थे: "डर्बनमें अर्जदारका किसी भी प्रकारका कोई हक नहीं है, क्योंकि वह जिस किस्मका व्यापार करता है, उसकी नगरमें काफी व्यवस्था है।" निर्णय वही रहा जो पहले मौकेपर दिया गया था, और वह अभागा आदमी बिना परवानेके पड़ा है। मुझे मालूम हुआ है कि अब वह गरीब हो गया है, क्योंकि उसे अपनी पूंजीपर गुजर करनी पड़ी है। साफ शब्दोंमें, परवाना-अधिकारीका दिया हुआ कारण बिलकुल झूठा था, क्योंकि उसके बाद बहुतसे यूरोपीयोंको परवाने दिये गये हैं, और अर्जदारने एक ऐसी जगहके लिए अर्जी दी थी, जिसे एक भारतीय दूकानदार छोड़ कर डर्बनसे चला गया था। एक दूसरे भारतीयने भी परवानेके लिए अर्जी दी थी। उसके बारेमें यह साबित हो चुका था कि वह पन्द्रह वर्षोंसे उपनिवेशमें रह रहा है, उसका रहन-सहन शरीफाना है, उपनिवेशके कई हिस्सोंमें उसका भारी व्यापार चलता है और अनेक यूरोपीय पेढ़ियोंमें उसकी अच्छी साख है। उसकी अर्जीका भी वही नतीजा रहा — इनकारी। सच्चा कारण पहली बार उसकी अपीलकी सुनवाईमें जबरदस्ती निकलवाया गया। परवाना अधिकारीने कहा:

जहाँतक मैं समझता हूँ, सन् १८९७ के कानून १८ को मंजूर करनेमें सरकारकी दृष्टि यह रही है कि कुछ वर्गोंके लोगोंके नाम, जिन्हें आम तौरपर अवांछनीय माना जाता है, परवाने देनेपर कुछ रोक रखी जाये। और चूँकि मुझे विश्वास है कि मैं यह माननेमें भूल नहीं कर रहा हूँ कि प्रस्तुत अर्जदार उन्हीं वर्गोंमें गिना जायेगा, और चूँकि डर्बनमें व्यापार करनेका परवाना उसके पास कभी नहीं रहा है, इसलिए परवाना देनेसे इनकार करना मैंने अपना कर्तव्य समझा है।

एक परिषद-सदस्यने परवाना-अधिकारीके निर्णयका समर्थन करते हुए कहा:

कारण यह नहीं है कि अर्जदार या मकान अनुपयुक्त है, बल्कि यह है कि अर्जदार एक भारतीय है। . . . व्यक्तिगत रूपमें मैं समझता हूँ कि उसे परवाना देनेसे इनकार करना अन्याय है। परिषदके सामने परवाना माँगनेके लिए हाजिर होनेके खयालसे अर्जदार बहुत ही उपयुक्त व्यक्ति है।

एक अन्य परिषद-सदस्य कार्रवाइयोंमें भाग लेनेको तैयार नहीं थे, क्योंकि:

हमें (परिषद-सदस्योंको) जो गन्दा काम करनेको कहा गया है उससे मैं असहमत हूँ। . . . अगर नागरिक चाहते हैं कि ये सब परवाने देना बन्द कर दिया जाये तो इस कामको करनेका एक साफ रास्ता मौजूद है: वह है कि, विधानसभासे भारतीय समाजको परवाने देनेके खिलाफ एक कानून पास करवा लिया जाये। परन्तु, अपील सुननेवाली अदालतका काम करते हुए, जबतक विरोधमें मजबूत कारण न हों, परवाने मंजूर किये ही जाने चाहिए।

अलबत्ता ऐसा हुआ नहीं, क्योंकि परिषदमें भारतीय-विरोधी लोगोंकी बहुत प्रबलता थी। न्यूकैसिल नगर-परिषदने १८९८ में एकबारगी ही सारेके-सारे भारतीय परवाने छीन लिये। इसके बाद ही मामला सर्वोच्च न्यायालयके सामने और वहाँसे सम्राज्ञीकी न्याय-परिषदमें ले जाया गया था, जिन्होंने फैसला दिया कि अधिनियमके अनुसार नगर-परिषदके निर्णयकी कोई अपील नहीं हो सकती। इस वर्ष उक्त नगर-परिषदने अधिकतर भारतीय परवाने दे दिये हैं, और उसकी प्रशंसामें इतना तो कहना ही होगा कि, जब प्रश्न सम्राज्ञीकी न्याय-परिषदके विचाराधीन था उस समय उसने भारतीयोंको अपना कारोबार करते रहने दिया। डंडी स्थानिक निकाय (लोकल बोर्ड)के अध्यक्षने इसी तरहकी एक अपीलका निबटारा करते हुए कहा कि वह अर्जदारको "कुत्तेके बराबर मौका" भी देना नहीं चाहता। इसके अलावा उसी निकायने गत वर्ष एक प्रस्ताव पास करके परवाना-अधिकारीको आदेश दिया कि वह जितने हो सकें उतने भारतीय परवानोंको रद कर दे। यह नेटालके सार्वजनिक अखबारोंके लिए भी असह्य हो उठा, और एक इशारा किया गया कि निकाय बहुत ज्यादा आगे बढ़ रहा है। नतीजा एक हदतक सन्तोषजनक रहा और इस वर्ष परवाने दे दिये गये हैं, हालाँकि यह शर्त लगा दी गई है कि अगले वर्ष उन्हीं मकानोंमें कारोबार करनेके परवाने नये नहीं किये जायेंगे। एक अन्य मामलेमें, दो भारतीय व्यापारियोंने अपना कारोबार भारतीयोंको बेच दिया और परवानेको खरीदारोंके नामपर बदल देनेकी माँग की, जो नामंजूर कर दी गई। अपील करनेपर स्थानिक निकायने वह निर्णय बहाल रखा। उपनिवेशके कुछ हिस्सोंमें गत वर्ष दिये गये परवाने इस वर्ष रोक लिये गये हैं। संक्षेपमें, यह है उक्त अधिनियमका परिणाम। उपनिवेश-मन्त्रालय और नेटाल-सरकारके बीच हुए पत्र-व्यवहारके फलस्वरूप नेटाल-सरकारने विभिन्न स्थानिक संस्थाओंसे कहा है कि यदि वे अपने अधिकारोंका

उपयोग अधिक विवेकपूर्वक नहीं करेंगी — जिससे कि निहित-स्वार्थोंपर आँच न आये — तो पीड़ित पक्षोंको सर्वोच्च न्यायालयमें अपील करनेका अधिकार दे दिया जायेगा। इस पत्रमें सरकारी तौरपर अन्यायको स्वीकार कर लिया गया है और उस उपायको भी मान लिया गया है, जो भारतीयोंने सुझाया है। परन्तु नेटालकी तीनों म्यूनिसिपैलिटियाँ इस पत्रकी उतनी ही कद्र करती हैं, जितनीके यह लायक है। वे नेटाल-सरकारकी ऐसी धमकीको शायद सुनती भी नहीं।

इस विषयमें न तो परवाना-अधिकारियोंका बहुत दोष है, न नगर-परिषदोंका। वे तो सिर्फ शिकार बन गये हैं। ऐसी ही स्थितिमें पड़ा हुआ कोई भी जन-समुदाय वैसा ही करेगा, जैसा कि नेटालके परवाना-अधिकारी और स्थानिक निकाय करते हैं। परवाना-अधिकारी या तो नगर-परिषदोंके क्लार्क हैं या खजांची। इसलिए, जैसा कि मुख्य न्यायाधीशने उपर्युक्त मामलेमें कहा है, वे अपनी उन संस्थाओंसे स्वतंत्र नहीं हैं, जिनके सदस्य, अपनी बारीमें, अपने पदोंके लिए उन लोगोंकी शुभेच्छापर निर्भर करते हैं, जो भारतीयोंके सीधे खिलाफ हैं। और उन संस्थाओंसे नेटालकी विधानसभाने कहा है :

> हम भारतीयोंको पूर्णतः आपकी दयापर छोड़ते हैं। बस, आपके कामपर कोई अँगुली न उठाये, फिर आप चाहे उन्हें अपने बीचमें ईमानदारीसे जीविका अर्जित करने दें, या उन्हें बिना कोई मुआवजा दिये उससे वंचित कर दें।

इसलिए जबतक इस कानूनको, जिसे नेटालके राजनीतिज्ञों तकको मिला कर सभी लोगोंने स्वतन्त्र व्यापार और ब्रिटिश संविधानके संचित सिद्धान्तोंके विपरीत माना है, उपनिवेशकी कानून-पुस्तकको कलंकित करने दिया जाता है, तबतक सरकार ऊपर बताये हुए पत्र जैसे कितने भी पत्र निगमोंको क्यों न भेजे, शिकायत बनी ही रहेगी। भारतीय बहुत उचित बात कहते हैं : "आप हमपर स्वच्छता-सम्बन्धी जो पाबन्दियाँ लगाना चाहें, लगा दें; आप चाहें तो हमारा हिसाब-किताब अंग्रेजीमें रखायें; आपकी इच्छा हो तो हमपर ऐसी दूसरी कसौटियाँ मढ़ दें, जिन्हें पूरा करनेकी हमसे उचित रूपमें अपेक्षा की जा सकती हो; परन्तु जब हम उन तमाम शर्तोंको पूरा कर दें तब हमें अपनी जीविका उपार्जित करने दीजिए, और अगर कानूनका अमल करानेवाले अधिकारी दखल दें तो हमें देशके सर्वोच्च न्यायाधिकरणके सामने अपील करनेका अधिकार दीजिए।" इस रुखमें दोष दिखाना सचमुच बहुत कठिन है, और उससे भी ज्यादा कठिन है — उपनिवेशके सर्वोच्च न्यायालयके प्रति नेटाल-विधानमंडलके अविश्वासको समझना। परवाने देनेका यह प्रश्न एक सड़ा हुआ घाव है, जिसको अच्छा करना ही होगा। वह वर्तमान भारतीय आबादीपर असर करता है, और काफी आसार दिखाई देते हैं कि अगर समयपर हस्तक्षेप न किया गया तो उसे बरबाद करके रहेगा। छोटे-छोटे भारतीय व्यापारियोंका, भले ही धीरे-धीरे क्यों न हो, निश्चित रूपसे मूलोच्छेद किया जा रहा है। इसका उनके पोषकों — बड़ी-बड़ी भारतीय पेढ़ियों और उनके आश्रितोंपर बहुत असर पड़ रहा है। भारतीय मकान-मालिक बहुत चिन्तित हैं, क्योंकि उनके मकान कितने ही अच्छे क्यों न बनाये गये हों, किरायेपर नहीं उठाये जा सकते। कारण यह है कि जब परवाने ही नहीं मिल सकते तो उन्हें ले कौन? वर्तमान वर्ष शीघ्र ही समाप्त हो रहा है, और सारेके-सारे भारतीय चिन्ताके साथ राह देख रहे हैं कि अगले वर्ष उनके परवाने नये किये जायेंगे या नहीं। युद्धके कारण नेटाल खाली हुआ जा रहा है, और यह कोई नहीं जानता कि व्यापार फिरसे कब शुरू होगा और लोग कबतक अपने घरोंको लौट सकेंगे। फिर भी भारतीय जनताको सावधान रहना चाहिए और लगातार कोशिश करके इस

बुराईको दूर करा देना चाहिए — इसके पहले कि, बहुत देर हो जाये और नेटालके भारतीय सिर्फ दमनके कारण भारतमें अपनी आवाजकी सुनवाई करानेमें भी समर्थ न रहें।

[अंग्रेजीसे]

*टाइम्स ऑफ़ इंडिया* (साप्ताहिक संस्करण), ६–१–१९००।

## ६०. पत्र : विलियम पामरको

१४, मर्क्युरी लेन
डर्बन
नवम्बर २४, १८९९

सेवामें
श्री विलियम पामर
कोशाध्यक्ष
डर्बन विमन्स पैट्रिऑटिक लीग
डर्बन

प्रियवर,

डर्बन महिला देशभक्त संघ (डर्बन विमन्स पैट्रिऑटिक लीग) के कोशमें दान देनेवाले भारतीयोंने हमसे इस पत्रके साथ संलग्न चेकें आपको भेज देनेका अनुरोध किया है। ये चेकें डर्बनके भारतीय व्यापारियों और दूकानदारोंने इस कोशके लिए जो विशेष चन्दा दिया है उसके हिसाबकी है।

हम अनुभव करते हैं कि हमने इस कोशमें पर्याप्त चन्दा नहीं दिया, परन्तु इस समय कई कारणोंसे हमारा आर्थिक सामर्थ्य पंगु हो गया है। जिन भारतीयोंने बोअर युद्धके स्वयंसेवकोंमें नाम लिखा लिया है उनको यदि सेवाके लिए बुला लिया गया तो उनके परिवारोंके निर्वाहका व्यय हमें उठाना पड़ेगा। उसके लिए हमने चन्दा इकट्ठा किया है। इस समय ट्रान्सवालसे और शत्रु द्वारा अधिकृत नेटालके अन्दरूनी जिलोंसे हजारों भारतीय शरणार्थी यहाँ आ गये हैं। उनको खिलाने-पिलाने और बसानेके व्ययका हमपर बहुत भारी बोझ पड़ रहा है। तिसपर, इस समय हमारा कारोबार प्रायः खत्म हो गया है। तथापि, हम जानते हैं कि जिन स्वयंसेवकोंने अपना जीवन इस उपनिवेश और साम्राज्यकी सेवाके लिए अर्पित कर दिया है और जिनको वे अपने पीछे यहाँ छोड़ गये हैं उन्होंने आत्मत्यागका एक ऐसा काम किया है, जिसकी तुलनामें हमने जो-कुछ भी किया है, वह सब तुच्छ सिद्ध होता है। इसलिए, हम जो छोटी-सी रकम इस पत्रके साथ भेज सके हैं वह हम सबके हेतु लड़नेवाले वीरोंके लिए हमारी हार्दिक सहानुभूति और सराहनाकी निशानी-मात्र है।

आपका, आदि,

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३३२५-६) व *इंडिया*, २६-१-'९९ से।

## ६१. तार : उपनिवेश-सचिवको

दिसम्बर ३, १८९९

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

अस्पतालोंके लिए भारतीयोंकी बाबत प्रवासी-संरक्षक मुझसे मिले। काम कैसा है, हमें कब चलना होगा तथा अन्य जरूरी बातें सरकार कृपा कर हमें बता दे तो, मेरा खयाल है, जिन्होंने सेवाएँ अर्पित की हैं उनमें से अधिकतर जानेको तैयार हो जायेंगे।

गांधी

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३३३२) से।

## ६२. तार : उपनिवेश-सचिवको

दिसम्बर ४, १८९९

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
मैरित्सबर्ग

तार मिला। संरक्षकसे मुलाकातके बाद ही और यह देखकर कि १९ अक्टूबरको आपको भेजी गई भारतीय स्वयंसेवकोंकी सूची सरकारने संरक्षकको भेज दी है, मैंने स्वयंसेवकोंको सूचना दे दी कि, मालूम होता है, सरकारको उनकी जरूरत पड़ेगी। उनसे यह भी कह दिया कि वे तैयार रहें और आपके अधिक निर्देशकी प्रतीक्षा करें। हमने पल-भरकी सूचनापर भी रवाना होनेका प्रबन्ध कर लिया है। मैं बता दूँ, हमसे जो हो सके वह सेवा बिना वेतन करनेको उत्सुक होनेके कारण हममें से कुछ डॉ० बूथके नीचे अस्पतालके कामकी तालीम ले रहे हैं। आपके आजके तारसे मालूम होता है कि सरकार सिर्फ मजदूर चाहती है। अगर तमाम इन्तजाम कर लेनेके बाद सरकार हमें स्वीकार नहीं करेगी तो बहुत बड़ी निराशा होगी। अक्टूबरमें भेजे पच्चीस नामोंके अलावा लगभग बीस और व्यक्ति स्वेच्छासे बिना वेतन सेवा करनेको तैयार हुए हैं। शीघ्र और अनुकूल उत्तरकी उत्सुकतासे प्रतीक्षा है।

गांधी

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३३३३) से।

गांधीजी : बोअर युद्धमें भारतीय आहत-सहायक दलके साथ बायेंसे पांचवें, उनकी दाहिनी ओर डॉ० बूथ

गांधीजीका तमग़ा, जो बोअर युद्ध-सम्बन्धी सेवाओंके लिए प्राप्त हुआ था।

(१) सीधी बाजू

(२) उलटी बाजू
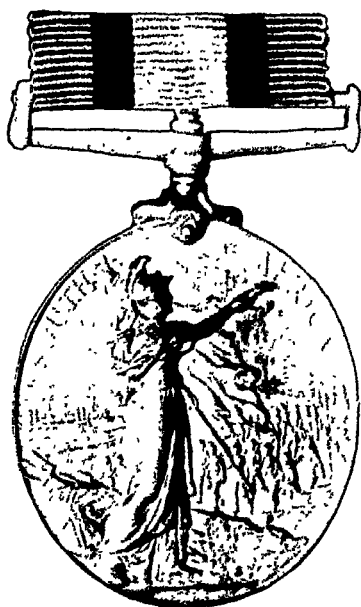
## ६३. पत्र : नेटालके धर्माध्यक्ष बेन्सको

[डर्बन
दिसम्बर ११, १८९९ के पूर्व]

श्रीमन्,

रेवरेंड डॉ० बूथ सूचित करते हैं कि श्रीमानकी सम्मतिमें उन्हें भारतीय आहत-सहायक दलके साथ तबतक नहीं जाना चाहिए जबतक कि वे स्वयं जाना अत्यावश्यक न समझते हों और उनकी सच्ची आवश्यकता न हो। वे यह भी कहते हैं कि मैं अभी तो दलके साथ नहीं जाऊँगा, परन्तु यदि सचमुच आवश्यकता हुई तो पीछे जा सकता हूँ।

मेरी नम्र सम्मतिमें डॉ० बूथके बिना दलका काम चल ही नहीं सकता। उनका चिकित्सा-ज्ञान हमारे लिए अधिकतम मूल्यवान है और अगर वे हमारे साथ नहीं गये तो हमारा लगभग १,००० लोगोंका दल बिना किसी चिकित्सक-सलाहकारके रहेगा। वे आहत-सहायकोंके नायकोंसे परिचित हैं और उन्हें काम उन्होंने ही सिखाया है। इस कारण उनके मौजूद रहनेसे नायकोंमें आत्मविश्वास उत्पन्न हो जायेगा। परन्तु यहाँ मैं इस लाभकी चर्चा नहीं करता। इस बातसे तो श्रीमान भी सहमत होंगे कि जो घायल व्यक्ति इन नायकोंके सुपुर्द किये जायेंगे उनकी चिकित्सा करनेमें डॉ० बूथसे अतुल सहायता मिलेगी। यहाँ तो उनकी जगह कोई और भी काम कर लेगा, परन्तु आहत-सहायक शिविरमें उनके बिना स्थान खाली ही रहेगा।

मुझे मालूम हुआ है कि डॉ० बूथ अभी मिशन छोड़कर नहीं जा रहे; कमसे-कम अगले जूनतक तो वे यहाँ हैं ही। इसलिए मुझे आशा है कि श्रीमान, इस बातका विचार करके कि मैदानमें उनकी आवश्यकता अधिक समयतक नहीं पड़ेगी, उन्हें जानेकी इजाजत दे देनेकी कृपा करेंगे।

श्रीमानका आज्ञाकारी सेवक,

एक मसविदेकी फोटो-नकल (एस० एन० ३३७२-बी) से।

## ६४. तार : प्रागजी भीमभाईको

[डर्बन]
दिसम्बर ११, १८९९

सेवामें
प्रागजी भीमभाई
बेलेयर

स्वयंसेवकोंसे कहिए तैयार हो जायें, संभवतः कल रवाना हों।

गांधी

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३३३८) से।

## ६५. तार : उपनिवेश-सचिवको[1]

[डर्बन]
दिसम्बर ११, १८९९

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

मैं और श्री गांधी कल प्रातः नौ बजे आपकी सेवामें उपस्थित होंगे।

[बूथ]

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३३३९) से।

## ६६. भारतीय आहत-सहायक दल

माननीय हैरी एस्कम्बने, जो १८९७ में नेटालके प्रधानमन्त्री थे, भारतीय आहत-सहायक दलके नेताओंको जोहानिसबर्गमें अपने घर आमन्त्रित किया था। यह दल उस दिन रणभूमिपर जा रहा था। श्री एस्कम्बके अनुरोधपर गांधीजीने जो भाषण दिया था उसका पत्रोंमें छपा संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है।

[जोहानिसबर्ग]
दिसम्बर १३, १८९९

जब ट्रान्सवालने लड़ाई छेड़नेकी अन्तिम सूचना दे दी तब हममें से कुछ लोगोंने सोचा कि अब हमें आपसी मत-भेद भुला देने चाहिए, और क्योंकि हम सम्राज्ञीकी प्रजा होनेके नाते अपने अधिकारों और विशेष सुविधाओंका आग्रह रखते हैं, इसलिए हमें कुछ करके दिखाना और अपनी राजभक्तिका प्रमाण पेश करना चाहिए। हथियार चलाना हममें से बहुत कम जानते हैं। यहाँ गोरखे और सिक्ख होते तो वे दिखला देते कि वे कैसा लड़ सकते हैं। हमने, अर्थात् अंग्रेजी बोल सकनेवाले भारतीयोंने, निश्चय किया कि हम उपनिवेश और साम्राज्य सरकारोंको अपनी सेवाएँ बिना किसी शर्तके और बिना कोई तनख्वाह लिये अर्पित करेंगे और जिस-किसी हैसियतमें हमसे काम लिया जायेगा हम उसीमें काम करके उपनिवेशियोंको दिखला देंगे कि हम सम्राज्ञीकी योग्य प्रजा हैं। हमने एक सभा की। उसमें इतना उत्साह था कि वहाँ उपस्थित प्रायः प्रत्येक व्यक्तिने अपना नाम सेवा करनेके लिए तैयार व्यक्तियोंकी सूचीमें लिखवा दिया। उस सूचीमें से हमने उपयुक्त व्यक्तियोंका चुनाव किया है। मैंने डॉ० प्रिससे प्रार्थना की कि आप सबकी डॉक्टरी जाँच कर लीजिए, जिससे पता चल जाये कि कितने लोग मैदानमें जाकर काम करनेके योग्य हैं। डॉ० प्रिसने २५ को पास किया, और हमने उनके नामोंकी सूची सरकारको भेज दी। वहाँसे जवाब मिला कि आपकी सेवा अभी स्वीकृत नहीं की जा सकती। इसके

१. दफ्तरी प्रतिसे मालूम होता है कि यह तार गांधीजीने लिखा और भेजा था।

कुछ ही समय बाद डॉ० बूथ द्वारा आहत-सेवाका वर्ग आरम्भ किया गया और हम प्रायः प्रति रात्रि उनके व्याख्यान सुनते रहे हैं। सरकारने हमें बतलाया था कि उसे ५० या ६० भारतीयोंको मैदानमें भेजनेकी आवश्यकता होगी; और जब प्रवासियोंके संरक्षक मुझसे मिलने आये तब मैंने उन्हें बतलाया कि हम चलनेकी सूचना मिलनेपर पल-भरमें चलनेको तैयार हो जायेंगे और हमसे जो-कुछ भी करनेको कहा जायेगा सो हम बिना कोई मेहनताना लिये करेंगे। परन्तु उपनिवेश-सचिवने यह काम हमारे लायक नहीं समझा। जब डॉ० बूथको यह पता लगा तब उन्होंने उपनिवेश-सचिवको स्वयं लिखा और बतलाया कि हम क्या काम कर सकते हैं। इसके बाद डॉ० बूथने मेरे साथ पीटरमैरित्सबर्ग जानेकी कृपा की और वहाँ हम बिशप बेन्स और कर्नल जॉन्स्टनसे मिले। कर्नल साहबका खयाल हुआ कि हम आहत-वाहक भारतीयोंके नायकोंका काम बहुत अच्छा कर सकेंगे। तब हमारा स्वप्न सिद्ध हो गया, और यद्यपि दुर्भाग्यवश हमें रण-क्षेत्रके अग्र-भागमें नहीं लगाया गया, तथापि हमें आशा है कि हम अपना काम अच्छी तरह करेंगे। डॉ० बूथने जो-कुछ किया उसके लिए हम उनके परम कृतज्ञ हैं। उन्होंने भी अपनी सेवाएँ सरकारको मुफ्त दी हैं और वे आज रात हमारे साथ चल रहे हैं।

[अंग्रेजीसे]
*नेटाल मर्क्युरी*, १४–१२–१८९९

## ६७. पत्र : डोनोलीको

[दिसम्बर १३, १८९९ के बाद][1]

श्री डोनोली
जिला इंजीनियर

प्रिय महाशय,

आपकी आज्ञासे मुझे भारतीय आहत-सहायक दलके कामके लिए पहले दर्जेके ५, दूसरे दर्जेके २० और तीसरे दर्जेके २८ रेल-टिकट दिये गये थे। उनमें से मैं पहले दर्जेका १ और तीसरे दर्जेके १० टिकट बिना काममें लिये इस पत्रके साथ वापस कर रहा हूँ।

तीसरे दर्जेके जो १८ टिकट काममें आ गये उनमें से तीन पीटरमैरित्सबर्गसे काममें लाये गये थे, क्योंकि तीन सेवक उस स्टेशनसे हमारे साथ शामिल हुए थे। उन तीनों टिकटोंके नम्बर क्रमशः ९३०३, ९२९० और ९२८५ थे। यह बात पीटरमैरित्सबर्गके स्टेशन मास्टरको, उसी समय, उन सेवकोंके गाड़ीमें बैठनेसे पहले, बतला दी गई थी।

गांधीजीके अपने हाथसे लिखे अंग्रेजी मसविदेकी फोटो-नकल (एस० एन० ३३५८) से।

१. गांधीजी १४ दिसम्बरकी रातको २.१० बजे युद्ध-स्थलके लिए रवाना हुए थे।

## ६८. पत्र : पी० एफ० क्लेरेन्सको

[डर्बन
दिसम्बर २७, १८९९]

श्री पी० एफ० क्लेरेन्स
सार्वजनिक निर्माण-विभाग
पीटरमैरित्सबर्ग

प्रियवर,

मैं इस पत्रके साथ पौंड . . .[1] का हिसाब भेज रहा हूँ। इसे आप जाँच लीजिए और यदि यह ठीक हो तो इतनी रकमका चेक मुझे भेज देनेकी कृपा कीजिए।

मुझे यह पता नहीं कि पीटरमैरित्सबर्गके श्री भायादने भी सेवकोंकी भरती करते हुए कुछ व्यय किया था या नहीं। मैंने उनको लिखा है और यदि श्री भायादका भी कुछ पावना निकला तो मैं उसका हिसाब फिर भेज दूँगा।

आपका,

[सहपत्र]

### खर्चका स्मृतिपत्र

डर्बन
दिसम्बर २७, १८९९

भारतीय आहत-सहायक दल (ऐम्बुलैंस कोर) के अधीक्षक
(सुपरिंटेंडेंट) द्वारा अधिकृत खर्चका स्मृतिपत्र

| | | |
|---|---|---|
| १२ दिसम्बर | गाड़ीवानको दिये, सुपरिंटेंडेंट आदिसे मिलने जानेके लिए | ० – ९ – ० |
| | स्वयंसेवकोंको तार दिये, तैयार रहने और झोले आदि ले जानेके लिए | . . . . |
| | किराया, पी० के० नाइडूको, दूसरे दर्जेका — वाहक भरती करनेके लिए डर्बन जानेको | ० – ११ – १० |
| | तार श्री विन्दनका उपनिवेश-सचिवको | ० – १ – १० |
| | सात वाहकोंका किराया — वेलेयरसे डर्बन | ० – ४ – १ |
| | किराया — स्वयंसेवकके वाहकोंके लिए वेलेयर जानेका | ० – १ – ९ |
| | किराया — एक स्वयंसेवकके वेलेयरसे आनेका | ० – १ – २ |
| | किराया — स्वयंसेवकके टोंगाटसे आनेका | ० – ५ – ० |

१. देखिए अगला पृष्ठ।

| | | |
|---|---|---|
| १४ दिसम्बर | भोजन-सामग्री — श्री अमदके बिल (क)[1] के अनुसार | १ – १६ – ० |
| १८ दिसम्बर | भोजन-सामग्री — बिल (ख)[2] के अनुसार | ० – १२ – ० |
| १९ दिसम्बर | पानी पीनेके प्याले वगैरह — स्ट [. .] क[3] के बिल (ग)[4] के अनुसार | ० – १९ – ० |
| | वाहकोंका भोजन बनानेके लिए काफिरोंका बर्तन — खियेवेलीमें दुर्जनको दिये; बर्तन सुपरको[5] दे दिया | ० – ७ – ० |
| | (१) गुलाबभाई (२) देसाई प्रागजी दयालजी (३) डाह्याभाई दाजी (४) देसाई गोविन्दजी प्रेमजी (५) नागर रतनजी (६) डाह्याभाई मोरारजी (७) देशाभाई प्रागजी (८) पेरुलामल[6] (९) पेरमल[7] — इन ९ वाहकोंको पुलिसके तौरपर २५/– के हिसाबसे नियुक्त किया; इनका एक सप्ताहका मिहनताना | ११ – ५ – ० |
| | वाहक सुखराजका मिहनताना | १ – ० – ० |
| | किराया एक स्वयंसेवकके टोंगाट जानेका | ० – ५ – ० |
| | | १७[8] – १६ – ८ |

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३३५६ और ३३५७) से।

१ और २. ये उपलब्ध नहीं हैं।

३. पढ़ा नहीं जाता।

४. यह उपलब्ध नहीं है।

५. सुपरिंटेंडेंट।

६ और ७. हिसाबके अन्तमें गांधीजीकी एक टिप्पणी है। उसमें इन वसीटमें लिखे नामोंके हिज्जे "पेरमल" किये गये हैं। देखिए, अगला शीर्षक।

८. योग १७–१८–८ है।

## ६९. हिसाबका ब्योरा[1]

[दिसम्बर २७, १८९९ के बाद]

श्री गांधीके लाये वाहकोंको (दिया)
स्वयंसेवकों — अवैतनिक कार्यकर्ताओं — को नहीं।

| संख्या | पद | नाम | अवधि | दिन संख्या | दर प्रति सप्ताह | रकम |
|---|---|---|---|---|---|---|
| १. | रात-पहरेदार | गुलाबभाई | १३ से २० | ८ | २०/– | १ – ५ – ० |
| २. | " | देसाई प्रागजी दयाल | " | " | " | १ – ५ – ० |
| ४[2]. | " | डाह्याभाई मो० | " | " | " | १ – ५ – ० |
| ५. | " | गोविन्दजी प्रेमजी | " | " | " | १ – ५ – ० |
| ६. | " | नागर रतनजी | " | " | " | १ – ५ – ० |
| ७. | " | दूलभभाई प्रागजी | " | " | " | १ – ५ – ० |
| ८. | " | डाह्याभाई दाजी | " | " | " | १ – ५ – ० |
| ९. | वाहक | पेरुलामल | " | " | " | १ – २ –१० |
| १०. | " | लेखराज | " | " | " | १ – २ –१० |
| ११. | " | पेरमल | " | " | " | १ – २ –१० |
| | | | | | | १२ –११ – २ |
| | | हिसाब संलग्न — फुटकर बँटवारा | .. | .. | .. | ५ –१३ – ४ |
| | | | | | पौं० | १८ – ४ – ६ |
| | | | | | | १७ –१६ –१० |
| | | घटाया — दोनों पेरुमलको आपने जो दिया | ... | | | २ – ५ – ८ |
| | | | | | | १५ –११ – २ |
| | | आपके चेकसे | ... | | | १८ – ४ – ६ |
| | | शेष आपका पावना | | | | २ –१३ – ४ |
| | | | | | | १८ – ४ – ६ |

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३३५९) से।

१. यह ब्योरा गांधीजीके एक साथीने तैयार किया था। गलतीसे उसने पौं० १–२–१० के साधारण हिसाबसे ११ वाहकोंका मिहनताना लगाया (देखिए, उदाहरण)। इसमें फुटकर बँटवारेके पौं० ५–१३–४ जोड़कर कुल पौं० १८–४–६ की माँग की गई और यह रकम सरकारसे वसूल कर ली गई। गांधीजीने हिसाबमें कुछ गलतियाँ निकालीं और उन्हें ठीक करके बताया कि पौं० २–१३–४ की रकम सरकारको वापस करनी चाहिए। यह ब्योरा सही हिसाबका है।

२. यह और इसके बादकी क्रम-संख्याएँ भूलसे अशुद्ध ही रह गई थीं।

## ७०. तार: कर्नल गालवेको

[डर्बन
जनवरी ७, १९०० से पूर्व][1]

सेवामें
कर्नल गालवे
पी० एम० ओ० का प्रधान कार्यालय
नेटाल

५०० स्वतंत्र भारतीय युद्धकी समाप्ति पर्यन्त पूर्ववत् आहतोंकी सहायताका कार्य और सेनापतिकी आज्ञाका पालन करनेके लिए तैयार हैं। उन्होंने अपने नाम मेरे कार्यालयमें लिखा दिये हैं और वे सूचना मिलते ही चलनेको तैयार हैं। पहलेके अधिकतर नायक भी तैयार हैं। डॉ० बूथ ने छुट्टी ले ली है और वे पूर्ववत् चिकित्साधिकारीका कार्य करेंगे। हमारे प्रार्थना करनेपर वे सुपरिंटेंडेंटके पदपर अथवा आप अन्य जिस किसी पदपर चाहें उसपर कार्य करना मान गये हैं। इस प्रकार अब हमारा डर्बनका दल अपने-आपमें पूरा हो चुका है और यदि काम करनेकी कोई गुंजाइश हो तो वह काम आरम्भ करनेके लिए उत्सुक है।

गांधी

गांधीजीके हस्ताक्षरोंमें दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३३७२–सी, नं० २) से।

१. दिसम्बर २९, १८९९ को गांधीजीको एक पत्र मिला था (एस० एन० ३३६०)। उसमें पूछा गया था कि डोली (स्ट्रेचर) लाने-ले जानेके कामके लिए वे कितने भारतीय दे सकते हैं। इसका उत्तर गांधीजीने उपर्युक्त तार द्वारा जनवरी, १९०० के पहले सप्ताहमें किसी दिन भेजा था। इस बीच उन्होंने एक उत्तर तार द्वारा (जो उपलब्ध नहीं है) इससे पहलेके सप्ताहमें भी भेजा था, जैसा कि उपर्युक्त (दूसरे) तारके पहले मसविदे (एस. एन. ३३७२–सी) में बताया गया है। जनवरी ७, १९०० को एस्टकोर्टमें दलका पुनर्गठन किया गया था।

## ७१. आहत-सहायक दल[1]

[डर्बन]
जनवरी ३०, १९००

प्रिय महोदय,

[स्पीयरमैनकी पहाड़ीपर, घोरतम युद्धके बीच, हमारे भारतीय आहत-सहायक दलने जो कार्य किया उसके विषयमें लेख लिखनेके लिए आपका पत्र मिला। हममें से कुछको डोलियोंकी जिम्मेदारी लेनेके अतिरिक्त दलकी भोजन-व्यवस्थाका कार्य भी करना पड़ रहा था। इसलिए हमें सोने या खाने-पीने तकका समय नहीं मिलता था। इसी कारण मैं अबतक आपके पत्रकी प्राप्ति भी स्वीकार नहीं कर सका। आशा है कि आप मेरी कठिनाई समझकर मुझे क्षमा करेंगे।

परन्तु मुझे समय मिल जाता तो भी मैं लेख न लिखता। कारण यह है कि कोलेंजोकी लड़ाईमें हमारे दलने जो कार्य किया था उसके विषयमें ऐडवर्टाइज़रमें प्रकाशित मेरी टिप्पणियाँ[2] देखकर, एक सम्मानित अंग्रेज मित्रने मुझे सलाह दी है कि भारतीय लोगोंको युद्धमें अपने कार्यके विषयमें स्वयं कुछ नहीं कहना चाहिए; उनका कर्तव्य मौन साधकर काम कर देने भरका है। उसके बादसे अबतक, अपने कामके विषयमें प्रकाशनके लिए कुछ भी लिखनेके प्रलोभनसे मैं बचता आया हूँ।]

आपका सच्चा,

गांधीजीके हस्ताक्षरोंमें एक मसविदेकी फोटो-नकल (एस० एन० ३३७२) से।

## ७२. पत्र : उपनिवेश-सचिवको

१४, मर्क्युरी लेन
डर्बन
फरवरी २२, १९००

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

श्रीमन्,

मैं देखता हूँ कि सैनिकों और स्वयंसेवकोंके लिए महारानीके पाससे प्राप्त चॉकलेट अब बाँटा जा रहा है। मुझे मालूम नहीं कि यह चॉकलेट उपनिवेशमें बने आहत-सहायक दलमें भी बाँटा जानेको है या नहीं। परन्तु हो या न हो, भारतीय स्वयंसेवक-नायकों (करीब ३०) ने, जो आहत-

१. *नेटाल ऐडवर्टाइज़र*के सम्पादकके जनवरी २२, १९०० के पत्रके उत्तरमें गांधीजीने उन्हें यह व्यक्तिगत पत्र लिखा था।

२. ये उपलब्ध नहीं हैं।

सहायक दलमें बिना वेतन भरती हुए हैं, मुझे आपसे प्रार्थना करनेको कहा है कि यदि सम्भव हो तो आप उनके लिए यह उपहार प्राप्त कर लें। इसकी वे बहुत कद्र करेंगे। और अगर जिन शर्तोंपर महारानीने कृपापूर्वक यह उपहार प्रदान किया है, उनके अन्तर्गत यह भारतीय नायकोंमें वितरित किया जा सके तो वे इसे मूल्यवान निधिके समान सचित रखेंगे।[1]

आपका आज्ञाकारी सेवक,

[अंग्रेजीसे] मो० क० गांधी

पीटरमैरित्सवर्ग आर्काइव्ज, सी० एस० ओ०, १४६२/१९००।

## ७३. तार: उपनिवेश-सचिवको

[डर्बन]
मार्च १, १९००

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
[पीटरमैरित्सबर्ग]

भारतीय आहत-सहायक दलके भारतीय स्वयंसेवक-नायक चाहते हैं, मैं उनकी ओरसे जनरल बुलरकी शानदार जीत और लेडीस्मिथकी मुक्तिपर उन्हें आदरपूर्ण बधाई प्रेषित करूँ।

[अंग्रेजीसे] गांधी

पीटरमैरित्सबर्ग आर्काइव्ज, सी० एस० ओ०, १६०५/१९०० तथा दफ्तरी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३४००) से।

## ७४. सर वि० वि० हंटरकी मृत्युपर

डर्बन
मार्च ८, १९००

सर विलियम हंटर गुजर गये। इससे हमारा जबरदस्त खैरख्वाह दुनियासे चला गया। कांग्रेसकी ओरसे लेडी हंटरको समवेदनाका संलग्न तार[2] भेजनेका विचार किया गया है। जो खर्च उठानेके पक्षमें हों वे कृपा कर सही कर दें।[3]

गांधीजीके हस्ताक्षरोंमें मूल अंग्रेजी तथा गुजराती परिपत्रकी फोटो-नकल (एस० एन० ३४०२) से।

१. प्रार्थना इस आधारपर नामंजूर कर दी गई थी कि इस उपहारका वितरण कमीशनके बिना भरती हुए अफसरों तथा सैनिकोंतक ही सीमित रखा गया है।

२. तारकी प्रति उपलब्ध नहीं है।

३. अंग्रेजी परिपत्रके नीचे लगभग उसी आशयका गुजराती परिपत्र दिया गया है। पत्रके अन्तमें प्रस्तावपर सम्मति देनेवाले आठ प्रमुख कांग्रेस-जनोंके हस्ताक्षर हैं।

## ७५. आम सभाका निमन्त्रण[1]

डर्बन
मार्च १०, १९००

प्रियवर,

बुधवार ता० १४ की रातको ८ बजे कांग्रेस-भवन, ग्रे स्ट्रीटमें उपनिवेश-वासी भारतीयोंकी एक सभा होगी। उसमें ब्रिटिश सेनाकी हालकी शानदार विजय और उसके फलस्वरूप लेडीस्मिथ तथा किम्बर्ले नगरोंके शत्रुकी घेराबन्दीसे मुक्त कर लिये जानेपर अभिनन्दनके प्रस्ताव पास किये जायेंगे। उसमें आपसे अपनी उपस्थितिका आनन्द देनेकी प्रार्थना है।

माननीय सर जॉन रॉबिन्सन, के० सी० एम० जी०, विधानसभा-सदस्यने कृपाकर उक्त अवसरपर अध्यक्ष बनना स्वीकार किया है।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी
अवैतनिक मंत्री, ने० भा० कां०

कृपया उत्तर दीजिए।

मूल छपे हुए अंग्रेजी परिपत्रकी फोटो-नकल (एस० एन० ३४०४) से।

## ७६. ब्रिटिश सेनापतियोंका अभिनन्दन

मार्च १० को गांधीजीने जो निमंत्रणपत्र भेजा था उसके फलस्वरूप भारतीयों और यूरोपीयोंकी एक बहुत बड़ी और प्रातिनिधिक सभा हुई। उसमें ब्रिटिश सेनापतियोंके अभिनन्दनका एक प्रस्ताव पास किया गया। प्रस्तावका समर्थन करते हुए गांधीजीने एक छोटा-सा भाषण दिया था। उसकी अखबारोंमें प्रकाशित रिपोर्ट नीचे दी जाती है।

डर्बन
मार्च १४, १९००

भारतीय कांग्रेसके मंत्री श्री मो० क० गांधीने प्रस्ताव[2]का समर्थन करते हुए कहा कि डर्बनके यूरोपीय समाजको भेजे गये निमन्त्रणपत्रोंकी जो शानदार प्रतिक्रिया हुई है, उसके लिए हम हृदयसे कृतज्ञ हैं। अमर्जिटो, वेरुलम, और अन्य केन्द्रोंके भारतीय भी उपस्थित हुए हैं। भारतीयोंकी एक विशेष सभाकी भी कुछ चर्चा चली है। मेरा खयाल है कि अगर भारतीयोंको अहंकार न हो जाये तो वे दक्षिण आफ्रिकामें ब्रिटिश विजयोंपर जितना भी उल्लास महसूस करें वह कम ही होगा। इस मामलेमें भारतीयोंकी विशेष दिलचस्पी है। कन्दहारके विजेता[3] लॉर्ड

१. निमंत्रण-पत्रोंमें शीर्षक दिया गया था — "कैसरे हिन्द दीर्घायु हों।" उसमें महारानी विक्टोरिया तथा बोअर-युद्धमें भाग लेनेवाले तीन प्रमुख ब्रिटिश सेनापतियोंकी तसवीरें भी थीं।

२. देखिए प्रस्ताव १, पृष्ठ १५३। इसे नेटाल भारतीय कांग्रेसके अध्यक्ष अब्दुल कादिरने पेश किया था और इसका अनुमोदन लुई पॉलने किया था।

३. सन् १८८० में लॉर्ड रॉबर्ट्सने काबुलसे कन्दहारपर अपना ऐतिहासिक धावा किया था।

रॉबर्ट्स, जो सेनाओंके प्रमुख थे और सर जॉर्ज व्हाइट, जिन्होंने इतनी वीरताके साथ लेडी-स्मिथकी घेराबन्दीका मुकाबला किया, काफी लम्बे समयतक भारतमें प्रधान सेनापति रहे हैं। अगर भारतीय इन दोनों सेनापतियोंके पराक्रमकी सफलतापर अपनी भावनाओंको प्रकाशित न करते तो वे अपने प्रति ही अपने कर्तव्यसे च्युत हो जाते। मुझे आशा है, आप मेरे इस कथनपर विश्वास करेंगे कि घटना-चक्रको सही-सही और दिलचस्पीके साथ समझनेमें अंग्रेजी भाषाके ज्ञानके अभावसे भारतीयोंको कोई रुकावट नहीं हुई। आज भारतीय ज्यादासे-ज्यादा गौरवके साथ शेखी मार रहे हैं कि वे ब्रिटिश प्रजा हैं। अगर न होते, तो दक्षिण आफ्रिकामें वे अपने पैर न जमा सकते।

[अंग्रेजीसे]

*नेटाल मर्क्युरी*, १५–३–१९००

*नेटाल ऐडवर्टाइज़र*, १५–३–१९००

## ७७. नेटालमें भारतीय आहत-सहायक दल[1]

[डर्बन
मार्च १४, १९०० के बाद]

बताया गया है कि सर विलियम ऑलफर्ट्सने कहा है:

> दक्षिण आफ्रिकामें लड़नेवाली हमारी सेनाओंकी वीरताके बारेमें जो आनन्दोत्साह प्रकट किया जा रहा है उसमें मैं पूरी तरह शामिल हूँ, किन्तु मेरा खयाल है कि डोली-वाहकोंकी निष्ठाकी ओर काफी ध्यान नहीं दिया गया। वे अपना दयाका काम रणभूमि-पर कर रहे हैं, गोलियोंकी घोरतम झड़ियोंके नीचे वे घायलोंको खोजते घूमते हैं और यद्यपि उनके पास रक्षाका कोई साधन नहीं है, फिर भी किसी चीजसे डरते नहीं। हमारे ये भारतीय बन्धु-प्रजाजन नेटालमें वह काम कर रहे हैं जिसके लिए सैनिकोंके साहससे भी ज्यादा साहसकी जरूरत है।

पिछला लेख[2] भेजनेके बाद अबतक मैं मोर्चेपर दो बार हो आया हूँ; और यद्यपि जनरल ऑलफर्ट्सने डोली-वाहकोंके बारेमें जो कुछ कहा है, वह सारेके-सारे भारतीय आहत-सहायक दलके सम्बन्धमें नहीं कहा जा सकता, फिर भी मुझे जरा भी सन्देह नहीं कि दलने एक ऐसा कार्य किया है जो कि बिलकुल जरूरी था। और, वह कार्य संसारके किसी भी आहत-सहायक दलके लिए श्रेयास्पद होगा। मैंने अपने २७ अक्टूबरके पत्रमें डर्बनके अंग्रेजी बोलनेवाले भारतीयोंके उस प्रस्तावका उल्लेख किया था जिसमें उन्होंने बिना वेतन और बिना किसी शर्तके रणभूमिमें सेवा करनेकी इच्छा प्रकट की थी। तबसे घटनाएँ ऐसी घटी हैं, जिनके फलस्वरूप प्रस्ताव मंजूर कर लिया गया है। इसका अनुमान पहले ही लगा लिया गया था कि कोलेंजोका युद्ध कम प्राणोंका बलिदान नहीं लेगा, और ज्यादा घायल सैनिकोंको सलामतीके साथ ले जानेका काम एक भयानक समस्या उपस्थित करेगा; क्योंकि यूरोपीय डोली-वाहकोंकी सीमित संख्या उतनी मेहनत बरदाश्त नहीं कर सकेगी, जितनी जरूरी होगी। इसलिए जनरल बुलरने नेटाल सरकारको लिखा कि वह एक भारतीय आहत-सहायक दल तैयार करे, जिसमें

१. देखिए पादटिप्पणी, पृष्ठ ६३।
२. देखिए "नेटालके भारतीय व्यापारी," नवम्बर १८, १८९९।

गोलीवारकी सीमाके अन्दर काम नहीं लिया जायेगा। सरकारने विभिन्न खेतों और बागोंके मालिकों (जिनके नियन्त्रणमें बहुतसे भारतीय मजदूर हैं) तथा भारतीय समाजके नेताओंको लिखा, और प्रतिक्रिया तुरन्त हुई। तीन दिनसे भी कम समयमें १,००० से भी अधिक भारतीयोंका एक डोली-वाहक दल तैयार कर लिया गया। इन डोली-वाहकोंका पुरस्कार २० शिलिंग प्रति सप्ताह तय किया गया, जबकि यूरोपीय डोली-वाहकोंको ३५ शिलिंग प्रति सप्ताह मिलता था। यह उल्लेखनीय है कि नायकोंके शक्तिशाली दलने अत्यन्त शुभ परिस्थितियोंमें अपना कार्य प्रारम्भ किया। स्व० श्री एस्कम्बने, जो किसी समय नेटालके प्रधानमन्त्री थे तथा जिन्होंने हीरक जयंतीके अवसरपर हुए उपनिवेशीय प्रधानमन्त्रियोंके सम्मेलनमें उपनिवेशका प्रतिनिधित्व किया था, अपने घरमें स्वयंसेवकोंका स्वागत किया। इस अवसरपर डर्बनके मेयर, जोहानिसवर्ग *लीडर*के श्री पेकमैन तथा अन्य गण्य-मान्य स्त्री-पुरुष निमन्त्रित किये गये थे। श्री एस्कम्बने अपने भाषणमें — जो कि उनका अन्तिम सार्वजनिक भाषण था — उनके प्रति प्रोत्साहक शब्द कहे और खुले हृदयसे अपने उद्‌गार व्यक्त किये कि भारतीय समाज अपने ढंगसे वफादारीके साथ उपनिवेश तथा साम्राज्यकी जो सेवा कर रहा है, उसे नेटाल भुला नहीं सकता। मेयरने भी अपने भाषणमें इसी आशयकी बातें कहीं। बादमें, उसी सन्ध्याको, डर्बनके श्री रुस्तमजीने मोर्चेपर जानेवाले नायकोंके सम्मानमें एक भोज दिया। इस अवसरपर विभिन्न वर्गोंका प्रतिनिधित्व करनेवाले सभी प्रमुख भारतीयोंने एक ही मेजपर भोजन किया। यह आहत-सहायक दल १५ दिसम्बरको ३.३० बजे शामको खियेवेली पहुँचा। जैसे ही ये लोग वहाँ गाड़ीसे उतरे, डोली-वाहकोंको रेडक्रासके चिह्न दे दिये गये और उन्हें हुक्म मिला कि वे मोर्चेके अस्पतालको कूच करें। अस्पताल वहाँसे ६ मीलसे भी अधिक दूर था। जिन अवस्थाओंमें इस दलने काम किया वे सम्भवतः साधारणसे कुछ अधिक खतरेकी थीं। जहाँ वे जाते, उन्हें आवश्यकताके अनुसार महीने या पखवारे भरकी भोजन-सामग्री अपने साथ ले जानी पड़ती। इसमें जलानेकी लकड़ी भी शामिल थी। इसके लिए पहले-पहल सामान-गाड़ी या पानीकी गाड़ी कुछ भी उपलब्ध नहीं थी। खियेवेली जिला अत्यन्त सूखा प्रदेश है और वहाँ आसानीसे पानी नहीं मिलता। नेटाल भरमें सड़कें ऊबड़-खाबड़ तथा कम-ज्यादा पहाड़ी हैं। मोर्चेके अस्पतालमें पहुँचनेपर हमने कोलेंजोके युद्धके बारेमें सुना। हमने देखा कि बीमारोंको ले जानेवाली गाड़ियाँ तथा यूरोपीय डोली-वाहक मोर्चेसे घायलोंको उठाकर मोर्चेके अस्पतालमें ला रहे हैं। इस सबसे दलके स्वयंसेवकों तथा नायकोंको स्थितिकी पूरी जानकारी हो गई। इससे पहले कि तम्बू डाले जा सकें (मेरा मतलब है, नायकोंके लिए — डोली-वाहकोंको तो जैसे भी बने, खुलेमें सोना पड़ता था, और कुछके पास तो कम्बल भी नहीं थे), या लोग कुछ खा-पी सकें, चिकित्सा-अधिकारीने चाहा कि ५० घायलोंको खियेवेली स्टेशन पहुँचा दिया जाये। ११ बजे राततक सभी घायल, जिन्हें कि चिकित्सा-अधिकारी तैयार कर सका, आदेशानुसार खियेवेली पहुँचा दिये गये। उसके बाद ही दलको भोजन मिल सका। इसके बाद दलके अधीक्षकने चिकित्सा-अधिकारीके पास जाकर और डोलियाँ ले जानेका प्रस्ताव रखा, किन्तु उसे धन्यवाद देकर कहा गया कि सुबह ६ बजे आदमियोंको तैयार रखा जाये। उस समयसे लेकर दोपहरतक आदमियोंने १०० डोलियाँ ढोईं। अपने कामको लौटते समय उन्हें आदेश मिला कि वे तम्बू उठाकर तुरन्त खियेवेली स्टेशन चले जायें और वहाँसे एस्टकोर्टकी गाड़ी पकड़ें। बेशक, यह पीछे हटना था। देखकर आश्चर्य होता था कि किस प्रकार घड़ीकी नियमितताके साथ १५,००० से भी अधिक व्यक्तियोंने अपना शिविर उठाकर भारी तोपों तथा परिवहनके साथ प्रस्थान किया। उनके पीछे टूटे कनस्तरों तथा खाली बक्सोंके अलावा और कोई चीजें नहीं छूटीं। कूचके लिए वह दिन बेहद गर्म था। नेटालका यह भाग पेड़ और पानी दोनोंसे खाली है। इस प्रकारकी

कठिन परिस्थितियोंमें दलने दोपहरको कूच शुरू किया। ३ बजेके लगभग स्टेशन पहुँचनेपर स्टेशन मास्टरने अधीक्षकको सूचना दी कि वह निश्चयपूर्वक नहीं बता सकता कि कब वाहन उनको मुहय्या कर सकेगा। वाहनसे मेरा मतलब खुले ठेलोंसे है, जिनमें आदमी ठूँस-ठूँस कर भरे जानेको थे। यूरोपीय आहत-सहायक दलके आदमियों तथा भारतीयोंको ८ बजे शामतक स्टेशनके अहातेके आसपास रुकना पड़ा। बादमें, यूरोपीयोंको एस्टकोर्टके लिए गाड़ीमें बिठा दिया गया और भारतीयोंसे कहा गया कि वे रातके लिए खुले मैदानमें चले जायें और उसका जितना उत्तम उपयोग हो सके, करें। थके-माँदे, भूखे और प्यासे (स्टेशनपर अस्पतालके बीमारों और स्टेशनके अमलेको छोड़कर और किसीके लिए भी पानी उपलब्ध नहीं था) आदमियोंको अपनी भूख-प्यास बुझाने तथा थोड़ी देर आराम करनेके लिए साधन ढूंढने थे। स्टेशनसे करीब आधा मील दूर एक तालाबसे वे गन्दा पानी ले आये और आधी रात होते-होते उन्होंने चावल पकाये। इस तरह जो-कुछ मिला उसे ही उन परिस्थितियोंमें सर्वोत्तम भोजन समझकर खानेके बाद वे सोना चाहते थे। परन्तु रातको जनरल बुलरकी लगभग सारी ही घुडसवार सेना वहाँसे गुजरी, इसलिए उन लोगोंको बहुत कम आराम मिला। दूसरे दिन वे ठसाठस खुले डिब्बोंमें लाद दिये गये और ५ घंटेतक प्रतीक्षा करनेके बाद गाड़ी एस्टकोर्टके लिए रवाना हुई। वहाँ दलको भयानक आँधी-पानीमें, धूप तथा हवाकी मार झेलते हुए, बिना किसी छायाके, दो दिनतक पड़े रहना पड़ा। इसके बाद आदेश मिला कि इस दलको अस्थायी तौरपर भंग कर दिया जाये। दलने जो सेवाएँ की थीं उन्हें जनरल वुल्फ-मरेने अधिकृत रूपसे मान्यता प्रदान की थी।

जनवरी ७ को दलका पुनर्गठन हुआ और उसने एस्टकोर्टकी ओर कूच किया। इस बार उसने कुछ अच्छी परिस्थितियोंमें प्रस्थान किया था, क्योंकि इस दलके नौ सौसे ऊपर डोली-वाहकोंको भी तम्बू दिये गये। किन्तु उनका असली काम पूरा पखवारा बीत जानेके बाद शुरू हुआ। इस बीच स्वयंसेवक और नायक अथक परिश्रमी डॉ० बूथकी देखरेखमें काम करनेका अभ्यास करते रहे। डॉ० बूथ भी नायकोंकी जैसी शर्तोंपर (अर्थात् बिना किसी पारिश्रमिकके) स्वेच्छया चिकित्सा-अधिकारीकी हैसियतसे इस दलके साथ आये थे। अभ्यासमें डोली-वाहकोंको सिखाया जाता था कि घायलोंको किस प्रकार उठाना तथा डोलीमें रखना और ले जाना चाहिए। उन्हें अत्यन्त ऊबड़-खाबड भूमिपर दूर-दूरतक ले जाया जाता था। यह प्रशिक्षण अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुआ। इसमें बहुत सख्त भी कुछ नहीं था। चूँकि यह दल न्यूनाधिक रूपमें सैनिक अनुशासनके लिए इस प्रकार तैयार कर लिया गया था, इसलिए जब उसे २ बजे रातको आदेश मिला कि वह ६ बजे फ्रीयर जानेके लिए गाड़ी पकड़े और ३ घंटोंके अन्दर डेरा उठाये, सामान दो डिब्बोंमें लाद दे तथा स्टेशनकी ओर कूच कर दे, तब उसे कोई कठिनाई अनुभव नहीं हुई। स्पीयरमैन छावनीके सदर मुकामपर पहुँचनेसे पहले फ्रीयरसे २५ मीलका सफर पैदल तय करना था। इस सफरके अनुभवों और कठिनाइयोंके बारेमें मैं *नेटाल विटनेस*के विशेष संवाददाताके शब्द ही उद्धृत करूँगा:

> तीसरे पहरके प्रारम्भमें क्षितिजपर घने बादल घिरने लगे थे और ३.३० बजे ऐसा लगा कि आँधी अभी आई। इसी बीच गाड़ियाँ आ गईं और उनमें सामान लाद दिया गया। प्रस्थान शुभ नहीं हुआ। स्टेशन तथा हमारे शिविरके बीचके पहले ही उतारमें हमारी आगेकी गाड़ी गहरी धँस गई। उसे वहाँसे निकालनेमें पूरा आधा घंटा खर्च हुआ। उसी समय भयानक आँधी आ गई। लगता था कि वह हमारी ओर आते हुए तूफानको हमसे दूर दक्षिणकी ओर उड़ा रही है।... पौन घंटेसे भी कम समयमें हवाने अचानक अपना रुख बदला और वह भयानक वेगसे तूफानको, और साथ-साथ ओलोंको, वापस ले आई।... कुछ देरके बाद ओले तो जरूर बन्द हो गये, लेकिन

मूसलाधार पानी बराबर बरसता रहा।... अन्तमें निर्णय हुआ कि रुका जाये और गाड़ियोंकी प्रतीक्षा की जाये। वर्षा अब बन्द हो गई थी — यद्यपि बादल बतला रहे थे कि अभी और वर्षा होगी — इसलिए वल्मीकके चूल्हे बनाये गये जिनपर हमने अपने गीले कपड़ोंको सुखानेकी कोशिश की (अधिकतर बिना सफलताके)।... ८ बजे जब कि हम कुछ-कुछ सूख गये थे और आगके प्रभावसे हममें ताजगी आ रही थी, अयनवृत्तकी मूसलाधार वर्षा पुनः प्रारम्भ हो गई। सारे समय जोरोंकी हवा चलती रही और, असुविधाके लिहाजसे, मुश्किलसे ही इससे बदतर हालत हमारी हो सकती थी। आगेकी गाड़ी हवासे उड़कर इकट्ठी हुई बालूके ढेरमें गहरी धँस गई, जिससे बैलों (३२) का संयुक्त बल भी उसे निकालनेमें बिलकुल असमर्थ रहा।... दूसरी सुबह ५० डोलियाँ अस्थायी अस्पतालके साथ निकल गईं। यहाँ मुख्य चिकित्सा-अधिकारीके सचिव मेजर बैप्टीने नायकोंको कहला भेजा कि यह उनकी इच्छापर निर्भर है कि वे डोलियोंको नदीके उस पार करीब दो मीलकी दूरीपर स्थित स्पियोन कोपके आधार-शिविरमें ले जायें या नहीं; क्योंकि वह स्थान बोअर गोलियोंकी पहुँचके भीतर है, और यह भी निश्चयसे नहीं कहा जा सकता कि वे एक-दो गोले नावके पुलपर भी न फेंक देंगे। यह भूमिका इसलिए बाँधी गई कि, जैसा मैंने ऊपर बताया है, लोगोंसे कहा गया था, उन्हें गोली-बारकी सीमासे बाहर काम करना पड़ेगा। किन्तु स्वयंसेवक तथा नायक सभी खतरेकी परवाह न करके आधार-शिविरमें जाने तथा वहाँका काम अपने हाथमें लेनेके लिए बिलकुल तैयार थे। शाम तक करीब सभी घायल स्थायी अस्पतालमें पहुँचा दिये गये। डोली-वाहकोंको अस्थायी अस्पतालसे अकसर तीन या चार बार आधार शिविर जाना पड़ता था। एकके बाद दूसरे अस्पताल — मुख्यतः स्थायी अस्पताल — को लगातार खाली करनेमें पूरे तीन सप्ताह लग गये। इस बीच ५ चक्कर फ्रीयरके लगाने पड़े। तीन बार तो वाहकोंको एक दिनमें पूरे २५ मील चलकर घायलोंको ले जाना पड़ा और दो बार उन्होंने स्प्रिंगफील्डके लिटिल टुगेला ब्रिज या उसके नजदीक यूरोपीय डोली-वाहकोंसे घायलोंको लेकर पहुँचाया।

दलको कुछ ऊँचे अफसरोंको ले जानेका भी सम्मान मिला। मेजर जनरल वुडगेट उनमें से एक थे। जब-जब "हलके पाँववाले, लचीले कदमवाले" डोली-वाहक चिलचिलाती धूपमें, कठिन मार्ग पार कर पूरे २५ मील घायलोंको उठाकर ले गये, तब-तब, प्रत्येक बार, खुले आम कहा गया कि यह करामात सिर्फ वे ही कर सकते थे। *नेटाल विटनेस*का विशेष संवाददाता लिखता है:

> एक आदमीके लिए जिसके पास अपना शरीर और अपने कपड़ोंके सिवा और कुछ भी बोझ न हो, ५ दिनमें १०० मील चलना, चलनेके लिहाजसे, काफी अच्छा माना जा सकता है। किन्तु जब आदमियोंको उससे आधी दूरीतक भी घायलोंको डोलियोंपर उठा कर ले जाना हो, और शेष मार्गका अधिकतर भाग भारी सामानके साथ पार करना हो, तब यह पैदल चलना, मेरे खयालमें, अत्यन्त सराहनीय कार्य माना जायेगा। इसी प्रकारका कठिन कार्य हाल ही में भारतीय आहत-सहायक दलने किया है और इस कार्यपर कोई भी व्यक्ति गर्व कर सकता है।

इस प्रकार सम्मानित तथा अपना कर्तव्य पूरा कर देनेके विचारसे सन्तुष्ट दलको दुबारा अस्थायी तौरपर भंग कर दिया गया। किन्तु हालकी घटनाएँ बताती हैं कि शायद इस दलकी सेवाओंकी पुनः आवश्यकता नहीं होगी।

भारतीय व्यापारियोंने घायलोंके लिए बड़ी मात्रामें सिगरेट, चुरुट, पाइप तथा तम्बाकू — सभी चीजें नायकोंको भेजी थीं और ये सब घायलोंमें खुले हाथों बाँटी गई थीं। और, बेशक, इन चीजोंका खूब स्वागत किया गया, विशेषकर इसलिए कि शिविरमें या शिविरके आसपास सिगरेट आदि कोई भी चीज नहीं मिल सकती थी। नायक और डोली-वाहक घायलोंको उनके लक्ष्यपर भली भाँति सुरक्षित पहुँचा देनेसे ही सन्तुष्ट नहीं थे, बल्कि लम्बे मार्गपर जहाँ भी वे ठहरते, खुद अपने आरामकी परवाह न करके भी, घायलोंकी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए कुछ भी उठा नहीं रखते थे। उदाहरणके लिए, वे उन्हें चाय पीने और फल खानेमें मदद देते — प्रायः अपने ही पैसों या अपनी ही राशनसे। भारतीय समाजने युद्धमें केवल यही भाग अदा नहीं किया। सभी नायक, जो बिना वेतनके गये थे, अपनी अनुपस्थितिमें अपने आश्रितोंका निर्वाह करनेमें समर्थ नहीं थे। इसलिए भारतीय व्यापारियोंने एक निधि खोली जिससे उन नायकोंके परिवारोंको सहायता दी गई, जिन्हें इसकी आवश्यकता थी। और स्वयंसेवकोंको उपकरणोंसे लैस करनेमें भी उन्होंने कम खर्च नहीं किया। देशभक्तिकी लहरके साथ अधिक प्रभावपूर्ण ढंगसे ऐक्य स्थापित करने तथा यह दिखानेके लिए कि आम खतरेके समय वे अपने मतभेदोंको भुला देनेमें समर्थ हैं, उन्होंने एक स्थानिक संगठन डर्बन महिला देशभक्त संघ (डर्बन विमेन्स पैट्रिऑटिक लीग) को, जो कि घायल सैनिकों तथा स्वयसेवकोंको चिकित्सा सुविधाएँ देनेके लिए बनाया गया था, ६५ पौंडकी एक भारी राशि चन्देमें दी। इन स्वयंसेवकोंमें से कुछ तो अत्यन्त उग्र भारतीय-विरोधी उपनिवेशी हैं। कुछ भारतीय महिलाएँ भी आगे आईं। उन्होंने भी इसी उद्देश्यसे भारतीय व्यापारियों द्वारा दिये गये कपड़ेके तकियेके गिलाफ तथा रूमाल तैयार किये। *नेटाल मर्क्युरीने* चन्देके बारेमें इस प्रकार लिखा है:

> स्त्रियोंकी देशभक्त-निधिमें धनके इस दानसे जो, विशेष रूपसे, रणभूमिपर बीमार और घायल स्वयंसेवकोंकी सेवाके लिए दिया गया है, भारतीयोंकी भावनाओंकी बहुत ही स्वागतके योग्य और मुखर अभिव्यक्ति हुई है। उनके विचारसे भारतीय शरणार्थियोंके विशाल समूहको ही सहायता दे देना — जैसा कि वे खुले हाथों कर रहे हैं — काफी नहीं है; बल्कि उन्हें, हमारा खयाल है, सम्राज्ञीके प्रति और जिस देशमें आकर वे रह रहे हैं उसके प्रति अपनी भक्तिके प्रतीकके रूपमें यह अतिरिक्त दान देना जरूरी मालूम हुआ है। हमारी आबादीका यह अंश — जिसकी ओरसे अक्सर बहुत कम बोला जाता है — जिस सच्ची भावनासे उत्प्राणित है, उसे ऐसे राजभक्ति-प्रदर्शनसे ज्यादा भली भाँति और कोई भी बात व्यक्त नहीं कर सकती।

भारतीयोंने हजारों भारतीय शरणार्थियोंके निर्वाहका भार पूरी तरह अपने कन्धोंपर ले लिया है। ये शरणार्थी न केवल ट्रान्सवालके हैं बल्कि नेटालके उन ऊपरी जिलोंके भी हैं जो कि अस्थायी तौरसे दुश्मनके हाथमें हैं। इस तथ्यने उपनिवेशके मस्तिष्कको इस तरह प्रभावित किया है कि डर्बनके मेयरने उसे निम्न शब्दोंमें सार्वजनिक रूपसे स्वीकार किया है:

> हम सब भली भाँति जानते हैं कि भारतीय राष्ट्रके लोगोंमें से अनेकको मजबूरन अपने स्थान छोड़कर शरणार्थियोंके रूपमें यहाँ आना पड़ा है। वे बड़ी संख्यामें आये हैं, और भारतीयोंने स्वयं ही उनका खर्च उठाया है। उसके लिए मैं उन्हें हृदयसे धन्यवाद देता हूँ।

इस अवसरपर इसका अपना एक विशेष महत्त्व है। लंदनकी केन्द्रीय समितिने तार दिया है कि उसने समर्थ शरीरवाले यूरोपीय शरणार्थियोंको सहायता देना बन्द कर दिया है और उसे केवल महिलाओं तथा अपंगोंतक ही सीमित रखा है। यह मामला डर्बनकी शरणार्थी सहायता

समितिके आर्थिक साधनोंको खूब निचोड़ रहा है। यहाँपर सैनिकोंके लिए सहानुभूतिके कुछ व्यक्तिगत उदाहरणोंका उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा। कहा जाता है कि एक भारतीय महिलाने जो प्रतिदिन फल बेचकर अपना निर्वाह करती है, सैनिकोंके डर्बन बन्दरगाहपर उतरनेपर अपनी टोकरीका सारा माल यह कहते हुए एक टॉमीके ठेलेमें उँड़ेल दिया कि आज देनेको मेरे पास इतना ही है। हमें यह नहीं बताया गया कि उस उदार हृदयवाली महिलाने उस दिन भोजन कहाँसे प्राप्त किया। इसी प्रकार कहा जाता है कि बहुत-से भारतीयोंने अत्यन्त उत्साहित होकर नेटालके योद्धाओंपर सिगरेट तथा अन्य स्वादिष्ठ वस्तुओंकी वर्षा की। जब किम्बर्ले और लेडीस्मिथके मुक्त होनेकी सूचना तार द्वारा सर्वत्र फैलाई गई, तब भारतीयोंने अपनी दूकानोंको सजानेके लिए देशभक्तिके उत्साहमें यूरोपीयोंसे स्पर्धा की। उन्होंने १४ अगस्तको एक सभा भी की। उसकी अध्यक्षता करनेके लिए उत्तरदायी सरकारके अधीन नेटालके सर्वप्रथम प्रधानमन्त्री माननीय सर जॉन रॉबिन्सन, के० सी० एम० जी० को आमन्त्रित किया गया और उन्होंने अत्यन्त अनुग्रहके साथ आमन्त्रण स्वीकार कर लिया। इस सभामें उपनिवेशके सभी भागोंसे १,००० से भी अधिक भारतीय और ६० से भी अधिक प्रमुख यूरोपीय शामिल हुए थे।]

[अंग्रेजीसे]

*टाइम्स ऑफ़ इंडिया* (साप्ताहिक संस्करण,) १६–६–१९००।

## ७८. पत्र : उपनिवेश-सचिवको

१४, मर्क्युरी लेन
डर्बन
मार्च १७, १९००

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

श्रीमन्,

मैं इसके साथ परमश्रेष्ठ गवर्नरके विचारार्थ, डर्बनके अमद अब्दुल्लाकी बीबी आवाका प्रार्थनापत्र[1] भेज रहा हूँ। उसने अपने पतिपर, जो इस समय डर्बनकी सेंट्रल जेलमें कैदकी सजा भोग रहा है, रहम करनेकी प्रार्थना की है। मेरा खयाल है कि इस आदमीको रिहा कर देनेका अर्थ इस स्त्रीकी इज्जतको बचा लेना होगा। यह अकेली है, जवान है और कुछ खुशहालीमें पाली-पोसी गई है; इसलिए प्रलोभनोंमें पड़ जानेके खतरेमें है, जो इसे हमेशाके लिए बरबाद कर सकते हैं।

इसने लेडीस्मिथकी मुक्तिके अवसरकी दोहाई दी है। उसे इस मामलेमें दयाके अधिकारका प्रयोग सार्थक करनेके लिए पर्याप्त माना जा सकता है।[2]

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पीटरमैरित्सबर्ग आर्काइव्ज, सी० एस० ओ०, ८६४६/१९०१।

१. यह उपलब्ध नहीं है।
२. अमद अब्दुल्लाकी सजा घटा दी गई थी; देखिए "पत्र: उपनिवेश-सचिवको," जून ११, १९००।

## ७९ : ब्रिटिश सेनापतियोंका अभिनन्दन

[मार्च २६, १९०० से पूर्व]

सेवामें
सम्पादक
*नेटाल विटनेस*

प्रिय महोदय,

मैं इसके साथ जनरल लॉर्ड रॉबर्ट्स, जनरल सर रेडवर्स बुलर और जनरल सर जॉर्ज व्हाइटके पाससे तार द्वारा प्राप्त सन्देशोंकी नकलें प्रकाशनार्थ भेज रहा हूँ। ये सन्देश गत १४ तारीखको डर्बनमें हुई भारतीयोंकी सभाके अध्यक्षकी हैसियतसे माननीय सर जॉन रॉबिन्सन, के० सी० एम० जी० को प्राप्त हुए हैं। ये अभिनन्दनके उन प्रस्तावोंके उत्तरमें हैं जो सभामें पास हुए थे और सभाके आदेशसे अध्यक्षने नामांकित सेनापतियोंको भेजे थे। उपर्युक्त प्रस्तावोंकी नकलें भी साथ भेज रहा हूँ।

आपका,
मो० क० गांधी
अवैतनिक मन्त्री, नें० भा० कां०

[प्रस्तावादि संलग्न]

प्रस्ताव १: सम्राज्ञीके भारतीय प्रजाजनोंकी यह सभा दक्षिण आफ्रिकी फौजोंके प्रधान सेनापति, परम माननीय फील्ड मार्शल फ्रेडरिक स्ले, कन्दहारके लॉर्ड रॉबर्ट्स, वी० सी०, के० पी०, जी० सी० वी०, जी० सी० एस० आई०, जी० सी० आई० ई० का आदरपूर्वक अभिनन्दन करती है। उन्होंने किम्बरलेको मुक्त कराया, एक घमासान युद्धके बाद जनरल क्रोंज तथा उनकी टुकड़ीको गिरफ्तार किया और इस प्रकार विजयश्रीका मुख ब्रिटिश फौजोंकी ओर फेर दिया। इस सभाको यह अंकित करते हुए भी हर्ष होता है कि दक्षिण आफ्रिकी सेनाओंको विजयके बाद विजयकी ओर ले जानेवाले वही कन्दहारके विजेता हैं, जो एक समय भारतीय सेनाओंके सेनापति थे।

प्रस्ताव २: सम्राज्ञीके भारतीय प्रजाजनोंकी यह सभा परम माननीय जनरल सर रेडवर्स हेनरी बुलर, वी० सी०, जी० आई० वी० का कृतज्ञतापूर्वक अभिनन्दन करती है। उन्होंने प्राकृतिक दृष्टिसे दुर्भेद्य मोर्चोंपर डटे हुए शत्रुपर, अजेय कठिनाइयोंके बावजूद, ज्वलन्त विजय प्राप्त की है और अस्थायी पराजयोंसे घबराये बिना लेडीस्मिथमें फँसी हुई सेनाको मुक्त कराया है। इस प्रकार उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यकी शक्ति और ब्रिटिश सैनिकोंके पराक्रमका मान रखा है।

प्रस्ताव ३: सम्राज्ञीके भारतीय प्रजाजनोंकी यह सभा सर्वशक्तिमान परमात्माको प्रार्थनामय धन्यवाद देती है कि उसने जनरल सर जॉर्ज स्टुवर्ड व्हाइट, वी० सी०, जी० सी० बी०, जी० सी० एस० आई०, जी० सी० आई० ई० और उनकी बहादुर टुकड़ीको साम्राज्यको फिरसे बख्शा। उस टुकड़ीमें इस भूमिके अनेक सपूत — नेटाल तथा दक्षिण आफ्रिकी अन्य प्रदेशोंके स्वयंसेवक

— भी शामिल थे। इन सबने लगभग चार महीनोंतक साहस और धैर्यके साथ घेरेकी कड़ी कसौटीको बर्दाश्त किया और शत्रुके आक्रमणोंको बार-बार पीछे हटाया। यह सभा वीर सेनापतिको अपनी आदरपूर्ण बधाई भी देती है कि उन्होंने असाधारण कठिनाइयोंसे भरी हुई परिस्थितियोंमें ब्रिटिश सम्मान और प्रतिष्ठाको कायम रखा। *यह सभा गौरवके साथ अंकित करती है कि* भारतके भूतपूर्व प्रधान सेनापति ही उपनिवेशको शत्रुके हाथमें जानेसे बचानेके कारण हुए।

१

मार्च १७, १९००

प्रेषक
लॉर्ड रॉबर्ट्स
ब्लूमफांटीन

सेवामें
सर जान रॉबिन्सन
डर्बन

नेटालके भारतीय समाजकी सभामें स्वीकृत प्रस्तावका जो तार आपने कृपापूर्वक भेजा, उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। उसमें व्यक्त की गई बधाई और शुभकामनाओंके लिए मैं हृदयसे कृतज्ञ हूँ।

२

मार्च १६, १९००

प्रेषक
जनरल बुलर
लेडीस्मिथ

सेवामें
सर जॉन रॉबिन्सन
डर्बन

आपने भारतीय समाजका जो अभिनन्दन कृपापूर्वक भेजा उससे मुझे बहुत आनन्द हुआ है।

३

मार्च १६, १९००

प्रेषक
सर जॉर्ज व्हाइट
ईस्ट लंदन

सेवामें
सर जॉन रॉबिन्सन
डर्बन

नेटालके भारतीय समाजकी सभाने जो अत्यन्त कृपापूर्ण प्रस्ताव पास किया है उसके लिए आप और भारतीय समाज मेरा हार्दिकतम धन्यवाद स्वीकार करें। भारतके साथ मेरा सम्बन्ध बहुत लम्बे समय तक रहा है और मेरे जीवनके सबसे अच्छे दिन वहीं व्यतीत हुए हैं। मेरे भारतीय बन्धु-प्रजाजनोंकी शुभकामनाएँ मेरे लिए बहुत सुखद हैं।

[अंग्रेजीसे]

*नेटाल विटनेस*, २६–३–१९००

## ८० भारतीय अस्पताल[१]

१४, मर्क्युरी लेन
डर्बन
अप्रैल ११, १९००

प्रिय . . .

मैं इस पत्रके साथ भारतीय अस्पतालकी मासिक कार्यवाहीकी एक प्रति भेज रहा हूँ। आपको ज्ञात ही है कि इस अस्पतालको स्थापित हुए लगभग १८ महीने हो चुके हैं।[२] इसकी सचमुच कितनी आवश्यकता है, यह इस कार्यवाहीसे प्रकट हो जायेगा। भारतीय समाजके सभी वर्गोंको इस अस्पतालसे लाभ पहुँचा है। गरीबोंके लिए तो यह एक वरदान ही है।

यदि डर्बनके भारतीय इसके लिए चन्दा न देते और डॉ० बूथ और डॉ० लिलियन रॉबिन्सन इसमें रोगियोंकी सेवा न करते तो इसे शुरू ही नहीं किया जा सकता था। यहाँके भारतीय इसके लिए ८४ पौंडका चन्दा दे चुके हैं। डॉ० रॉबिन्सन बीमार हैं, इस कारण उनके स्थानपर अब डॉ० क्लारा विलियम्स काम कर रही हैं।

अबतक चन्दा देनेका प्रायः सारा बोझ डर्बनवालोंपर ही पड़ता रहा है। इसलिए अब उपनिवेशके अन्य भागोंके भारतीयोंको भी गरीबोंकी सर्वोत्तम सम्भव तरीकेसे सेवा करने, अर्थात्, उनका शारीरिक कष्ट मिटानेके सौभाग्यका उपभोग करनेके लिए निमन्त्रित करना अनुचित नहीं होगा।

चिकित्सालयको दो वर्षतक चलाने और पिछला किराया चुकानेके लिए कमसे-कम ८० पौंडकी आवश्यकता है। परन्तु यदि इसे आगे भी चलाना हो तो इससे बहुत अधिक धन-राशिकी आवश्यकता पड़ेगी। अबतक इससे एक बहुत बड़ी आवश्यकताकी पूर्ति होती रही है, इसलिए मेरा तो खयाल है कि इसे आगे भी चलाना ही चाहिए।

मुझे पूरा विश्वास है कि आप अपना हिस्सा तो देंगे ही, औरोंको भी वैसा करनेके लिए प्रेरित करेंगे।

समस्त चन्देकी प्राप्ति स्वीकार की जायेगी और आय-व्ययका हिसाब दिया जायेगा।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

हस्तलिखित दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३७२५) से।

१. एक परिपत्र।
२. यह अस्पताल सितम्बर १४, १८९८ को खोला गया था।

## ८१. धनके लिए अपील[1]

१४, मर्क्युरी लेन
डर्बन
अप्रैल ११, १९००

महाशय,

आप सभी जानते है कि भारतीयोंके लिए जो अस्पताल डर्बनमें खोला गया है, उसे आज लगभग डेढ़ वर्ष हो गया है। उसमें डॉक्टर बूथ और एक अन्य डॉक्टर भाई मुफ्त काम करते हैं। अस्पताल खुलनेके पहले डर्बनसें एक सभा हुई थी। उसमें यह तय हुआ था कि अस्पतालके किराया-खातेमें प्रतिवर्ष ८५ पौंड भारतीय दें। यह निश्चय दो वर्षके लिए किया गया था। तुरन्त ही चन्दा किया गया, जिसमें ६१ पौंड वसूल हो गये। २४ पौंड वसूल करनेको बाकी है। परन्तु इतनेसे तो खर्च पूरा होनेवाला नहीं है। भाड़ेके ९ महीनोंसे ज्यादाके पैसे चढ़ गये हैं। डर्बनमें बहुत चन्दा उगाहा जा चुका है। बाकी पैसेका बोझ भी अकेले डर्बनपर डालना ठीक नहीं माना जायेगा, इसलिए यह पत्र लिखा है।

अस्पतालकी पहली छमाही कार्यवाही इसके साथ है। उससे आप देखेंगे कि अस्पताल कितने कामका है।

उसमें बहुत खराब हालतमें गई हुई मद्रासी स्त्रियाँ अच्छी होकर निकली हैं। गुजरातियोंको भी आश्रय उसमें मिला है। कोई कौम बाकी नही रही। हमेशा सैकड़ों लोग वहाँसे मुफ्त दवा ले जाते हैं। और निधिकी पेटी रखी है, उसमें मरीजोंसे जितना बनता है उतना डाल देते हैं; जिनसे नहीं बनता उनको भी दवा मिलती है। इस पेटीसे जो पैसा निकलता है उससे दवाएँ ली जाती हैं। जो घटता है उसे पादरी लोग पूरा कर देते हैं।

अगर हमसे मदद न हो सके तो अस्पताल बन्द करना पड़ेगा। दो डॉक्टर मुफ्त काम करते हैं, इसलिए थोड़े खर्चमें अस्पताल चल सकता है और बहुत-से गरीबोंको फायदा होता है। एक अन्धा, अपंग गुजराती बूढ़ा था। उसे बहुत दिनोंतक अस्पतालमें मुफ्त रखा गया था।

ऐसे काममें आपसे जितना बने उतना आपको देना ही चाहिए। और दूसरोंके पाससे भी वसूल करके भेजना चाहिए। जो भी पैसा मिलेगा उसकी रसीद भेजी जायेगी। आशा है, आप पूरी कोशिश करेंगे।

मो० क० गांधी

मूल गुजराती प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३७२५) से।

१. एक परिपत्र।

# ८२. भारतीय आहत-सहायक दल[1]

डर्बन
अप्रैल १८, [१९००]

बोअर-युद्धका जो विवरण दैनिक पत्रोंमें प्रतिदिन प्रकाशित होता रहता है उसे पढ़ते हुए आपका ध्यान शायद इस युद्धमें भारतीय लोगों द्वारा किये गये उस कामपर तो गया ही होगा जिसका समाचारपत्रोंने तारीखवार उल्लेख कर दिया है। परन्तु मैं जानता हूँ कि समाचारपत्र दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंके कामका पूरा विवरण प्रकाशित नहीं कर सके। मुझे यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि युद्धकी घोषणा होते ही भारतीयोंने, युद्धके औचित्यानौचित्यके विषयमें अपने मतका विचार किये बिना, इस संकट-कालमें अपने तुच्छ सामर्थ्यके अनुसार ब्रिटिश सरकारकी सहायता करनेका निश्चय कर लिया था। इससे मतभेद एक भी भारतीयका नहीं था। इस भावनाका फल यह हुआ कि तत्काल ही डर्बनके अंग्रेजी बोल सकनेवाले भारतीयोंकी एक सभा बुलाई गई। उसमें हाजिरी बहुत ही अच्छी थी, और जितने आदमियोंके लिए सम्भव था उतनोंने वहीं और उसी समय इस आशयकी घोषणापर हस्ताक्षर कर दिये कि हम अपनी सेवा, बिना किसी शर्त और तनख्वाहके, सैनिक अधिकारियोंके सुपुर्द करते हैं, वे हमें जिस लायक समझें वह काम हमसे ले लें। घोषणामें रण-क्षेत्रके चिकित्सालय और रसद-विभागका जिक्र विशेष रूपसे करके यह भी लिख दिया गया था कि हम शस्त्र चलाना नहीं जानते।

यह सहायता अन्तमें स्वीकार कर ली गई और सैनिक अधिकारियोंकी सलाहसे नेटालमें एक भारतीय आहत-सहायक दलका संगठन कर दिया गया। इस दलमें घायलोंको लाने-ले जानेवाले अधिकतर गिरमिटिया भारतीय थे; जिन्हें, गिरमिटिया-संरक्षक विभाग या ऊपर निर्दिष्ट स्वयंसेवकोंकी मारफत, नेटालके जायदादवालोंने दिया था। वाहकोंके नायक ये स्वयंसेवक ही थे। इन भारतीयोंको रण-क्षेत्रमें जाने या न जानेकी स्वतन्त्रता थी। इस प्रकार, कोलेंजोकी लड़ाईके बाद लगभग १,००० भारतीय वाहकों और ३० नायकोंने घायलोंको लाने-ले जानेका काम किया था (वस्तुतः इतनेसे अधिक नायकोंकी आवश्यकता नहीं थी)। उनके कठिन कामकी सभी सम्बद्ध लोगोंने प्रशंसा की थी, और घायल सिपाही तो उनकी सेवासे परम सन्तुष्ट हुए थे। इस दलके यूरोपीय सुपरिंटेंडेंट और इसके सम्पर्कमें आनेवाले अन्य यूरोपीयोंने निःसंकोच माना था कि नायकोंके बिना घायलोंको लाने-लेजानेका यह काम सन्तोषजनक रीतिसे नहीं हो सकता था। इस दलका संगठन, कोलेंजोके रास्ते लेडीस्मिथतक बढ़नेके लिए किया गया था, परन्तु जब सेनाको पीछे हटना पड़ा तब यह तोड़ दिया गया; और जब जनरल बुलरने स्पिओन कॉपके रास्ते बलपूर्वक बढ़ जानेका प्रयत्न किया तब इसका पुनर्गठन कर लिया गया था।

इस बार काम सम्भवतः अधिक कड़ा और निश्चय ही अधिक जोखिमका था। घोषणा तो यह की गई थी कि भारतीयोंको गोलाबारीकी सीमासे बाहर काम करना होगा, परन्तु प्रत्यक्ष काम इसके विपरीत हुआ। उन्हें घायलोंको गोलाबारीकी सीमासे ही लाना पड़ता था और कभी कभी तो उनसे सौ गजके अन्दर ही बम आकर गिरते थे। बेशक, इस सबका अनिवार्य कारण स्पिओन

१. गांधीजीका यह पत्र "भारतीय संवाददाता द्वारा प्रेषित" रूपमें *इंडिया*में प्रकाशित हुआ था। उन्होंने इसका पूरा विवरण *टाइम्स ऑफ़ इंडिया* (साप्ताहिक संस्करण) को पहले ही भेज दिया था। देखिए "नेटालमें भारतीय आहत-सहायक दल," १४-३-१९०० के बाद।

कोपकी पराजय और वाल क्रॉजसे पीछे हटना था। वाहकों और उनके नायकोंको स्पियरमन्स कैम्पसे फ्रीयरतक २५ मील घायलोंको लेकर जाना पड़ा था। और यह नेटालकी सड़कोंपर, जो, आप जानते ही हैं, वहुत ऊबड़-खावड़ और पहाड़ी हैं। एक वार तो उन्हें एक हफ्तेमें १२५ मीलका फासला तय करना पड़ा था। इसके अलावा, हमारे व्यापारियोंने घायलोंके लिए सिगरेट आदि भेजे, जो कि भारतीय आहत-सहायक दलका एक विलकुल विशिष्ट कार्य था। अनेक यूरोपीयोंने, जिन्हें इन सव वातोंका ज्ञान होना चाहिए, मुझसे कहा है कि भारतीय वाहकों और उनके नायकोंने भोजन तथा आश्रय-स्थलकी ऐसी गंभीर कठिनाइयोंके होते हुए भी घायलोंको लेकर एक-एक दिनमें जो पच्चीस-पच्चीस मीलका फासला तय किया, वैसा कोई भी यूरोपीय दल नहीं कर सकता था।

इतनेसे ही सन्तोष न मानकर, देशभक्तिकी भावनासे अधिक सफल ऐकात्म्य स्थापित करने और यह सावित करनेके लिए कि हम संकटके समय अपने स्थानिक मतभेदोंको भुला लेनेमें पूर्णतः समर्थ हैं, हमारे व्यापारियोंने ६५ पौंड चन्दा इकट्ठा किया और वह डर्वन महिला देशभक्त संघ (डर्वन विमन्स पैट्रिऑटिक लीग) को सौंप दिया। यह एक स्थानिक संघ है, जो घायल सैनिकों तथा स्वयंसेवकोंको — और स्वयंसेवकोंमें से कुछ तो घोर भारतीय-विरोधी हैं — दवा-दारूका आराम पहुँचानेके लिए बनाया गया है। हमारे व्यापारियोंने घायलोंके लिए कपड़ा भी दिया, जिससे हमारी भारतीय महिलाओंने तकियोंके गिलाफ और रूमाल वना दिये। सारेके-सारे, हजारों, भारतीय शरणार्थियोंका निर्वाह पूरी तरह भारतीय समाजने ही किया। यह एक ऐसा काम था जिसके लिए डर्वनके मेयरने सार्वजनिक रूपसे कृतज्ञता प्रकाशित की और इस वस्तुस्थितिका महत्त्व, इस समय जो-कुछ हो रहा है उसकी दृष्टिसे, और भी वढ़ जाता है। शरणार्थी-सहायक समितिको यूरोपीय शरणार्थियोंका भी पर्याप्त निर्वाह करना वहुत कठिन मालूम हो रहा है। लंदन-स्थित केन्द्रीय समिति अवतक बूढ़ों और कमजोरों तथा हृष्ट-पुष्ट मर्दों और औरतों सवको सहायता देती आ रही थी। अव उसने सहायता वन्द कर दी है और इसकी सूचना तार द्वारा भेजी है। जव किम्वर्ले और लेडीस्मिथके छुटकारेकी खुश-खवरी मिली थी तव भारतीयोंने, यूरोपीयोंके साथ-साथ, अपनी दूकानें वन्द करके, उनकी सजावट आदि करके, अपना हर्ष प्रकट किया था। उन्होंने एक सार्वजनिक सभा भी की थी। सर जॉन रॉविन्सनको, जो उत्तरदायी शासनमें नेटालके पहले प्रधानमन्त्री थे, अध्यक्षता करनेके लिए निमंत्रित किया गया था और उन माननीय महानुभावने वहुत कृपापूर्वक निमन्त्रण स्वीकार किया था। सभा खूब सफल रही। उसमें उपनिवेशोंके सभी हिस्सोंके लगभग १,००० भारतीय एकत्र हुए थे। साठसे ज्यादा प्रमुख यूरोपीय भी शामिल थे।

[अंग्रेजीसे]

*इंडिया*, १८–५–१९००

## ८३. पत्र : आहत-सहायक दलके नायकोंको

डर्बन
अप्रैल २०, १९००

रा०[1],

आप भारतीय आहत-सहायक दल [इंडियन ऐम्बुलेन्स कोर] में नायकके तौरपर शामिल हुए — इससे आपने स्वाभिमानका उत्साह बताकर अपने आपको तथा अपने देशको मान प्रदान किया है, और अपनी तथा अपने देश — दोनोंकी सेवा की है। अगर आप मानें कि यही बदला बस है, तो शोभनीय बात होगी।

परन्तु मैं समझता हूँ कि आपके शामिल होनेका कुछ कारण तो मेरे प्रति आपका प्रेम-भाव है। जिस अंशमें मेरे प्रति प्रेम-भावके ही कारण शामिल हुए उस अंशतक मैं आपका आभारी हुआ हूँ। उसका बदला मैं पैसा देकर चुका नहीं सकता। पैसा देनेका सामर्थ्य मुझमें नहीं है। परन्तु आपके प्रेमको मैं भूल नहीं गया हूँ। और देशकी सेवा करनेमें खरे समयपर आपने मेरी मदद की, उसके स्मरणार्थ नीचे लिखी हुई भेंट आपको अर्पित कर रहा हूँ। आशा करता हूँ कि आप इसे स्वीकार करेंगे और इससे जो लाभ लिया जा सकता हो, वह लेंगे।

आजसे एक वर्षतक या, इस बीच मुझे देश जाना हो तो, जबतक मैं दक्षिण आफ्रिकामें रहूँ तबतक, आपका या आपके मित्रका पाँच पौंड तकका ऐसा वकीली काम मुफ्त कर देनेको आबद्ध होता हूँ, जो डर्बनमें रहते हुए मुझसे बन सके।

मो० क० गांधी

मूल गुजराती पत्रकी फोटो-नकल (एस० एन० ३४४५) से।

## ८४. पत्र : डोली-वाहकोंको

[डर्बन
अप्रैल २४, १९००][2]

प्रियवर,

जब, युद्ध-क्षेत्रमें, हम घायलोंको लाने-ले जानेका काम कर रहे थे, मैंने अपने जिम्मेके डोली-वाहकोंसे वादा किया था कि यदि आपने अपना काम श्रेयास्पद ढंगसे किया तो मैं खुद आपको एक छोटी-सी भेंट अर्पित करूँगा।

अधिकारी आपके कामसे खुश हैं, जैसे कि सचमुच सभी वाहकोंके कामसे। इसलिए मेरे अपने वादेके अनुसार काम करनेका समय आ गया है। आपके कामकी सराहनाके चिह्न-स्वरूप मैं आपको साथकी भेंट[3] दे रहा हूँ। मुझे भरोसा है कि आप कृपापूर्वक इसे स्वीकार करेंगे।

१. गुजराती 'राजमान्य राजेश्री' का संक्षिप्त रूप।

२. यह तारीख एक डोली (स्ट्रेचर)-वाहक प्रागजी दयालके नाम लिखे इसी तरहके गुजराती पत्र (एस० एन० ३७२९) से ली गई है।

३. उपलब्ध कागजातसे यह पता नहीं चलता कि भेंट क्या थी।

आप रणभूमिपर गये, यह आपने समाजकी एक सेवा की है। यह दृढ़ विश्वास रखते हुए कि अपने देशवासियोंकी सेवा करनेमें अपनी भी सेवा होती ही है, आप हमेशा अच्छे काम करें, अपनी रोटी ईमानदारीसे कमायें और अपने कर्तव्योंका पालन करते रहें — यही प्रार्थना करता है, आपका शुभाकांक्षी —

मो० क० गांधी

गांधीजीके हस्ताक्षरयुक्त मूल अंग्रेजी साइक्लोस्टाइल्ड पत्र (सी० डब्ल्यू० २२३९) से।

## ८५. पत्र : उपनिवेश-सचिवको

१४, मर्क्युरी लेन
डर्बन
मई २१, १९००

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

श्रीमन्,

मैं इसके साथ प्रतिनिधि-भारतीयोंके एक सन्देशकी नकल भेज रहा हूँ, जिसमें उन्होंने महामहिमामयी सम्राज्ञीको, उनके इक्यासीवें जन्म-दिनके उपलक्ष्यमें, अपनी विनम्र तथा राजभक्तिपूर्ण बधाई अर्पित की है। प्रतिनिधि-भारतीय इसे इसी महीनेकी २४ तारीखको सम्राज्ञीके मुख्य उपनिवेश-मन्त्रीकी सेवामें तारसे भेजना चाहते हैं। उनकी इच्छा है, मैं आपसे निवेदन करूँ कि आप इसे आगे रवाना कर दें।

यह भी निवेदन है कि मुझे अधिकार दिया गया है, जो खर्च हो, उसकी सूचना आपके पाससे मिलनेपर आपको चेक भेज दूँ।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

[संलग्न सन्देश]

"नेटालके भारतीय सम्राज्ञीको, उनके इक्यासीवें जन्म-दिनके उपलक्ष्यमें, नम्रता और राजभक्तिपूर्वक बधाई देते है। हार्दिक प्रार्थना करते हैं कि सर्वशक्तिमान उनपर सर्वोत्तम सुख-समृद्धिकी वर्षा करे।"

[अंग्रेजीसे]

पीटरमैरित्सबर्ग आर्काइव्ज़, सी० एस० ओ०, ३७६०/१९००।

## ८६. पत्र : उपनिवेश-सचिवको

१४, मार्क्युरी लेन
डर्बन
जून ११, १९००

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

श्रीमन्,

मुझे आपके ९ तारीखके पत्रकी प्राप्ति स्वीकार करनेका मान प्राप्त है। उसमें यह सूचना दी गई है कि परमश्रेष्ठ गवर्नर महोदयने अमद अब्दुल्लाको दी गई ३ वर्ष कैदकी सजामें से १८ महीनेकी सजा माफ कर दी है।[1]

मैंने यह सूचना अमद अब्दुल्लाकी बीवीको दे दी है। यद्यपि उसने आशा तो यह की थी कि इतने आनन्द-उत्साहके बीच उसका पति उसको तुरन्त वापस कर दिया जायेगा, फिर भी परमश्रेष्ठने उसके पतिपर और उसपर जो दया की है उसके लिए वह अत्यन्त कृतज्ञ है।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पीटरमैरित्सबर्ग आर्काइव्ज़, सी० एस० ओ०, ८६४६/१९०१।

## ८७. परिपत्र : धन्यवादके प्रस्तावके लिए[2]

डर्बन
जुलाई १३, १९००

ईस्ट इंडिया असोसिएशनकी वार्षिक रिपोर्टमें हमारे बारेमें बहुत अच्छा लिखा गया है। असोसिएशनने अपना यह इरादा भी जाहिर किया है कि वह, जितना हो सकेगा, हमारे हकोंकी रक्षा करनेका प्रयत्न करेगा। इसके लिए उसके प्रति एक धन्यवादका प्रस्ताव[3] इसके साथ है। इस प्रस्तावको भेजनेकी सम्मति देनेवाले सज्जन नीचे अपनी सही कर दें।[4]

गांधीजीके हस्ताक्षरोंमें मूल गुजराती पत्रकी फोटो-नकल (एस० एन० ३४६७) से।

१. देखिए "पत्र: उपनिवेश-सचिवको," मार्च १७, १९०० ।
२. मूल पत्रमें गुजरातीके नीचे इसी आशयका परन्तु इससे छोटा अंग्रेजी पत्र भी है ।
३. स्वीकृत प्रस्ताव उपलब्ध नहीं है ।
४. परिपत्रमें प्रस्तावके पक्षमें अनेक सहियाँ हैं ।

## ८८. तार : गवर्नरके सचिवको

[डर्बन]
जुलाई २६, १९००

सेवामें
परमश्रेष्ठ गवर्नरके निजी सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

तार मिला। आपसे प्रतिकूल खबर न मिली तो मैं अगले शुक्रवारको प्रातः १०-३० बजे परमश्रेष्ठकी सेवामें उपस्थित हूँगा।

गांधी

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३४७४) से।

## ८९. भारतका अकाल

डर्बन
जुलाई ३०, १९००

सेवामें
*नेटाल ऐडवर्टाइज़र*
सम्पादक

महोदय,

भारतमें इस समय भयंकर अकाल फैल रहा है। उससे पीड़ित लोगोंके सहायतार्थ धन एकत्र करनेकी अपीलके पत्रक कलकत्ताके नेटाल-प्रवास-प्रतिनिधिने यहाँ भारतीय प्रवासियोंके संरक्षकके पास भेजे हैं कि वे उन्हें यहाँके गिरमिटिया तथा स्वतन्त्र भारतीयोंमें बाँट दें। मेरी सम्मतिमें इस अपीलका अर्थ भयानक है। इससे संकटकी तीव्रताका परिचय मिलता है। यह भी मालूम होता है कि एक विशाल साम्राज्यके साधनोंके रहते हुए भी गरीब भारतीयोंतक से उनका अंश-दान माँग लेना जरूरी समझा गया है।

यह स्मरणीय है कि जब १८९६ में भारतमें दूर-दूरतक अकाल फैल गया था तब सीधे दक्षिण आफ्रिकाके मेयरसे एक अपील की गई थी, और उसका इस महाद्वीपके सभी भागोंने तुरन्त ही अच्छा उत्तर दिया था।[1] इस बार वैसी सीधी अपील नहीं की गई। उसका कारण स्पष्ट है। हम स्वयं ही कठिनाईमें पड़े हुए हैं। यही कारण है कि नेटालके भारतीयोंने भी वैसी कोई अपील सब उपनिवेशवासियोंसे नहीं की। वे अबतक केवल अपना चन्दा भारतके शाखा-कार्यालयको सीधा भेजकर सन्तोष मानते रहे। उनको भारतके हालातकी जानकारी भी बहुत कम थी। परन्तु अब भारतके वाइसरायने लन्दनके लॉर्ड-मेयरके पास एक नई और करुणा-भरी अपील भेजी है। उसमें विशाल साम्राज्यके प्रत्येक भागसे सहायतार्थ आगे बढ़नेके लिए कहा गया है। उस अपीलकी प्रतियाँ और कलकत्ताके पत्रक यहाँ एक साथ ही पहुँचे हैं। इनसे स्थिति

१. देखिए खण्ड २, पृष्ठ १८९-९०।

बहुत बदल गई है। अब, मेरी नम्र सम्मतिमें, यहाँके भारतीयोंका कर्तव्य हो गया है कि वे स्वयं तो पुनः प्रयत्न करें ही, इस मामलेकी ओर उपनिवेशियोंका ध्यान भी आकृष्ट करें, जिससे कि वे भी अपने करोड़ों भूखे बन्धुजनोंकी सहायता करनेके सम्मानित अधिकारका (मैं इसे यही कहना पसन्द करता हूँ) प्रयोग कर सकें — और ये बन्धुजन भी तो उसी एक सम्राज्ञीकी प्रजा हैं जिसकी प्रजा उपनिवेशी हैं। साथ ही, इस समय इस तथ्यकी उपेक्षा करना भी बहुत अनुचित होगा कि इस उपनिवेशको युद्धके कारण बहुत कष्ट उठाना पड़ा है, और अभी और भी उठाना पड़ेगा। परन्तु मुझे यह कहनेके लिए क्षमा किया जाये कि भारतके करोड़ों लोगोंकी शोचनीय दशाकी तुलनामें हमारा देश बहुत अधिक समृद्ध है। उन्हें एक ऐसे युद्धमें उलझना है जिसमें जीत तो होती ही नही, कोई पारितोषिक मिलता है तो शायद, सिर्फ कष्ट उठाकर और तिल-तिल करके मर जानेका। भारतके अकाल-पीड़ित प्रदेशोंमें एक पेनी एक आदमीके दिन-भरके भोजनके लिए काफी होगी। इस उपनिवेशमें ऐसा आदमी कौन है जो बिना किसी कठिनाईके एक शिलिंग न बचा सके, और इस प्रकार एक दिनमें १२ भूखोंको भोजन न करा सके? यद्यपि यह सर्वथा सत्य है कि अकेले-अकेले बड़ी-बड़ी राशियाँ देनेमें समर्थ व्यक्ति बहुत नही है, परन्तु ऐसे तो सैकड़ों — नही हजारों — है, जिनमें से हरएक कमसे-कम कुछ शिलिंग दे सकता है।

युद्ध बुरा तो है ही, परन्तु नेटालके लॉर्ड बिशपने बतलाया है कि उससे एक भलाई भी हुई है। उसके कारण इस शक्तिशाली साम्राज्यके, जिसके प्रजाजन होनेका हमें गौरव है, विभिन्न अंग एक-दूसरेके अधिक निकट आ गये हैं। सम्भव है कि इसी प्रकार, भारतपर आया हुआ अकाल, प्लेग और हैजेका तिमुँहा संकट, अशुभ होते हुए भी, उस जंजीरमें एक कड़ी और जोड़ देनेका काम कर जाये, जिसने कि हम सबको एक सूत्रमें गूँथ रखा है।

अकेली सरकारको भारतमें कोई ६० लाख अकाल-पीड़ितोंकी सहायता प्रतिदिन करनी पड रही है। निजी दानकी उस धाराका तो कोई जिक्र ही नहीं, जिससे लाखोंके प्राण बच रहे है। *टाइम्स आफ़ इंडिया*के अनुसार, अकेले श्री आदमजी पीरभाई गत मईमें प्रतिदिन १६,३०० व्यक्तियोंको भोजन कराते थे। डॉ० क्लॉप्शने बतलाया है कि सहायतार्थियोंमें प्रतिदिन १०,००० की वृद्धि होती जा रही है।

अधिकतर अकाल-पीड़ित प्रदेशमें सुखदायी वर्षा हो गई है। परन्तु अभी तो उसके कारण सहायतार्थियोंकी संख्या बढ़ेगी ही। सरकारपर भी उसके कारण धन और जनके व्ययका बोझ बढ़ जायेगा। प्लेग अपना विनाशका कार्य गत चार वर्षसे निरन्तर कर रहा है; और अकालके दायें हाथ हैजा-राक्षसने इस विनाशकी रही-सही कमी भी पूरी कर दी है। विविध ब्रिटिश उपनिवेशो और बस्तियोंके अतिरिक्त, अमेरिकाने भी एक कोश एकत्रित किया है और उसका वितरण करनेके लिए डॉ० क्लॉप्शको अपना विशेप प्रतिनिधि बनाकर भेजा है। जर्मनी भी सहायताके लिए आगे बढ आया है। भारतका संकट इतना बड़ा है कि मित्र और अमित्र सभी उसके निवारणमें समान रूपसे सहायक हो सकते हैं। नेटाल ही पीछे क्यो रहे?

अन्तमें, मैं यह घोषणा कर देनेका प्रिय कर्तव्य पालन करना चाहता हूँ कि नेटालके परमश्रेष्ठ गवर्नर, माननीय महान्यायवादी, और माननीय सर जॉन रॉबिन्सनने भी भारतके करोड़ों भूखे लोगोंके साथ भारी सहानुभूति प्रकट की है और वचन दिया है कि उनकी सहायताके लिए जो भी कोश खोला जायेगा उसके वे संरक्षक बन जायेंगे।

आपका, आदि,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

*नेटाल ऐडवर्टाइज़र*, ३१–७–१९००

## ९०. पत्र : उपनिवेश-सचिवको

१४, मर्क्युरी लेन
डर्बन
जुलाई ३१, १९००

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

श्रीमन्,

नेटालके मुसलमान ब्रिटिश प्रजाजन अपने समाजके आध्यात्मिक नेता महामहिम तुर्की-सुलतानको, उनकी रजत-जयन्तीके अवसरपर, अभिनन्दन-पत्र अर्पित करनेका आयोजन कर रहे हैं। मुझसे सलाह माँगी गई है कि अभिनन्दन-पत्र भेजनेका सबसे अच्छा तरीका कौन-सा होगा। मुझे लगता है कि अधिक रस्मी और उचित तरीका उसे परमश्रेष्ठ गवर्नर महोदयके द्वारा भेजनेका होगा, क्योंकि वह सम्राज्ञीके प्रजाजनोंके पाससे यूरोपके एक अन्य सुलतानके पास भेजा जानेवाला है।

आप इस शिष्टाचारके सम्बन्धमें मेरा मार्ग-प्रदर्शन करनेकी कृपा करें तो मैं आभारी हूँगा।

अभिनन्दन-पत्र शनिवारको भेज देना होगा, इसलिए अगर आप शीघ्र सूचना दें तो मैं उपकार मानूँगा।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पीटरमैरित्सबर्ग आर्काइव्ज़, सी० एस० ओ०, ६०६१/१९००।

## ९१. पत्र : उपनिवेश-सचिवको

१४, मर्क्युरी लेन
डर्बन
जुलाई ३१, १९००

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

श्रीमन्,

मैं इसके साथ उस पत्र-व्यवहारकी नकल भेज रहा हूँ, जो अधिवास-प्रमाणपत्रकी एक अर्जीके सम्बन्धमें मेरे और प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिकारीके बीच हुआ है। इस पत्र-व्यवहारमें जिस नियमका उल्लेख हुआ है, वह हाल ही में मंजूर किया गया मालूम पड़ता है।

मैं समझता हूँ, इस नियमसे छुटकारा पानेके लिए, इसे सरकारकी नजरमें लानेकी धृष्टता करनेके सिवा कोई चारा नहीं है। जिन कारणोंसे यह नियम मंजूर किया गया है उन्हें प्रवासी-

अधिकारीसे जान लेनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त नहीं हुआ। परन्तु, मेरी नम्र रायमें, ऐसा कोई कारण हो नहीं सकता, जिससे ऐसे कठोर नियमका मंजूर किया जाना उचित ठहराया जा सके। यह तो, व्यवहारमें, नेटालके सच्चे निवासियोंको भी उपनिवेशमें आनेसे रोक देगा।

इसलिए, अगर सरकार कृपा कर प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिकारीको उक्त नियम उठा लेने और उसे दी गई अर्जीका निबटारा अर्जीकी पात्रताके आधारपर ही करनेका निर्देश दे देगी तो मैं आभारी हूँगा।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
वास्ते — मो० क० गांधी
वी० लॉरेन्स

[अंग्रेजीसे]

पीटरमैरित्सबर्ग आर्काइव्ज, सी० एस० ओ०, ६०६३/१९००।

## ९२. पत्र : उपनिवेश-सचिवको

१४, मर्क्युरी लेन
डर्बन
अगस्त २, १९००

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

श्रीमन्,

उपनिवेशके प्रतिनिधि ब्रिटिश भारतीयोंकी ओरसे मुझे आपसे प्रार्थना करनेका मान प्राप्त हुआ है कि आप निम्नलिखित सन्देश, महामहिमामयी सम्राज्ञीकी सेवामें पेश करनेके लिए, तार द्वारा उपनिवेश-मन्त्रीको भेज देनेकी कृपा करें :

"नेटालके ब्रिटिश भारतीय कृपामयी सम्राज्ञीके शोकमें उनके प्रति नम्रतापूर्वक समवेदना प्रकट करते हैं।"[1]

मुझे अधिकार दिया गया है कि सन्देश भेजनेपर होनेवाले व्ययके बारेमें आपसे सूचना मिलनेपर मैं व्ययकी रकम आपको भेज दूं।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पीटरमैरित्सबर्ग आर्काइव्ज, सी० एस० ओ०, ६१४२/१९००।

१. यह सन्देश महारानीके द्वितीय पुत्र मिस्र अल्फ्रेड ड्यूक ऑफ़ सैक्स-कोबर्ग-गोटाकी मृत्युपर ३१ जुलाईको भेजा गया था।

## ९३. तार : गवर्नरके सचिवको

[डर्बन]
अगस्त ४, १९००

सेवामें
परमश्रेष्ठ गवर्नरके निजी सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

आपका कलका [सन्देश] मिला। मैं सोमवारको प्रातः ११-३० बजे परमश्रेष्ठ की सेवामें उपस्थित हूँगा।

गांधी

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३४८०) से।

## ९४. पत्र*: उपनिवेश-सचिवको

१४, मर्क्युरी लेन
डर्बन
अगस्त ११, १९००

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

श्रीमन्,

आपका ९ तारीखका कृपापत्र मिला, जिसमें आपने मुझे सूचना दी है कि परमश्रेष्ठ गवर्नर महोदयने सम्राज्ञीके प्रति हमारा समवेदना-सन्देश, जो मेरे २ तारीखके पत्रमें निहित था, उपनिवेश-मंत्रीको भेज दिया है। इसके लिए मैं परमश्रेष्ठको धन्यवाद देता हूँ।

मैं इसके साथ संदेश भेजनेके खर्चके पौंड २-१४-० का चेक भेज रहा हूँ।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

* [अंग्रेजी]

पीटरमैरित्सबर्ग आर्काइव्ज़, सी० एस० ओ०, ६१४२/१९००।

## ९५. पत्र : उपनिवेश-सचिवको

१४, मर्क्युरी लेन
डर्बन
अगस्त १३, १९००

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

श्रीमन्,

आपका ११ तारीखका कृपापत्र मिला। उसमें यह सूचना दी गई है कि परमश्रेष्ठ गवर्नर महोदयको उपनिवेश-मंत्रीके पाससे एक तार मिला है जिसमें कहा गया है, सम्राज्ञीकी इच्छा है कि नेटालके ब्रिटिश भारतीयोंको, उनके समवेदना-सन्देशके लिए, सम्राज्ञीका धन्यवाद पहुँचा दिया जाये।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पीटरमैरित्सबर्ग आर्काइव्ज़, सी० एस० ओ०, ६१४२/१९००।

## ९६. पत्र : उपनिवेश-सचिवको

१४, मर्क्युरी लेन
डर्बन
अगस्त १४, १९००

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

श्रीमन्,

आपके १० तारीखके तारके उत्तरमें मुझे सूचित करना है कि रजत-जयन्तीका अवसर बहुत निकट आ रहा है, इसलिए महामहिम सुलतानके प्रति अभिनन्दन-पत्र[1] के आयोजकोंने वह अभिनन्दन-पत्र गत शनिवारको लन्दन-स्थित तुर्की राजदूतको भेज दिया है। यदि परमश्रेष्ठ गवर्नर महोदय मानते हैं कि अभिनन्दन-पत्र परम माननीय उपनिवेश-मन्त्रीके द्वारा भेजा जाना चाहिए, तो मेरा खयाल है, तुर्की राजदूतसे निवेदन किया जा सकता है कि वे उसे औपनिवेशिक कार्यालय लन्दनमें दे दें। किसी भी हालतमें, मुझे खुशी होगी, अगर ऐसे मामलोंमें भविष्यमें उपयोग करनेके लिए परमश्रेष्ठकी राय मुझे मिल जाये।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पीटरमैरित्सबर्ग आर्काइव्ज़, सी० एस० ओ०, ६०६१/१९००।

१. देखिए "पत्र : उपनिवेश-सचिवको", जुलाई ३१, १९००।

## १७. पत्र : उपनिवेश-सचिवको

१४, मर्क्युरी लेन
डर्बन
अगस्त १८, १९००

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

श्रीमन्,

डोसा देसा नामक व्यक्तिके अधिवास-प्रमाणपत्रकी अर्जीके बारेमें आपका इसी माहकी १४ ता० का कृपापत्र प्राप्त हुआ।

खेद है कि मुझे उस विषयमें फिरसे आपको कष्ट देना पड़ रहा है।

मैंने प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिकारीसे वे कारण जाननेकी कोशिश की, जिनसे सम्बद्ध नियम जारी करना जरूरी हुआ है। परन्तु मैं असफल रहा।

बिलकुल सम्भव है कि कुछ लोगोंने पहलेकी प्रथाका दुरुपयोग किया हो। और, हम मान लें कि वह दुरुपयोग अब भी होता है। ऐसी हालतमें अगर उसे भारतीयोंकी नजरमें लाया जाता, तो भले ही वह पूरी तरहसे रुकता नहीं, फिर भी कम तो हो ही जाता। अगर हलफनामे झूठे पेश किये गये हैं तो अपराधियोंको कानूनके अनुसार दण्ड दिया जा सकता है। परन्तु, निवेदन है कि, प्रश्नाधीन नियम, भले ही सख्त व बेमुरौवत न हो, वह ज्यादा गरीब लोगोंके लिए खास तौरसे भारी कठिनाई पैदा करनेवाला होगा। वर्तमान स्थितिमें भी उन्हें प्रमाणपत्र प्राप्त करनेमें बहुत खर्च उठाना पड़ता है, नया नियम तो बिलकुल नई ही बाधाएँ मार्गमें उत्पन्न कर देगा। व्यवहारमें यह सम्भव नहीं कि लोगोंसे भारतमें रहते हुए ही प्रमाणपत्रकी अर्जियाँ भेजनेकी अपेक्षा की जाये। पत्रको भारत पहुँचनेमें साधारणतः ३० दिन, और अक्सर इससे ज्यादा दिन लगते हैं। और अगर हलफनामेमें कोई नुक्स रह गया तो कहना मुश्किल है कि प्रमाणपत्र दिया जानेमें कितना समय नहीं लग जायेगा। इसके अलावा, यह आशा कैसे की जा सकती है कि प्रवासी-अधिकारी जिन थोड़े-से भारतीयोंको इज्जतदार मानता है, वे उन लोगोंको जानते हों, जिनके लिए अधिवास-प्रमाणपत्रोंकी जरूरत हो?

इन परिस्थितियोंमें, मेरा निवेदन है कि, प्रश्नाधीन नियम बिलकुल उठा लिया जाये और अगर प्रमाणपत्र देनेकी पुरानी प्रथामें प्रवासी-अधिनियमका[1] कोई दुरुपयोग होता हो तो उसका मुकाबला करनेके लिए साधारण तरीके काममें लाये जायें।

यह जिक्र कर देना अनुचित न होगा कि प्रमाणपत्रके अर्जदार, मेरे मुअक्किल, डोसा देसाको प्रमाणपत्र प्राप्त करनेमें विलम्बके कारण बहुत असुविधा हुई है।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पीटरमैरित्सबर्ग आर्काइव्ज़, सी० एस० ओ०, ६०६३/१९००।

१. देखिए खण्ड २, पृष्ठ २६८–२७३।

## १८. पत्र : उपनिवेश-सचिवको

१४, मर्क्युरी लेन
डर्बन
अगस्त ३०, १९००

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
पीटरमैरित्सवर्ग

श्रीमन्,

डोसा देसा नामक व्यक्तिके अधिवास-प्रमाणपत्रकी अर्जीके बारेमें आपका इसी माहकी २९ तारीखका कृपापत्र मिला।

मैं देखता हूँ कि सरकार एक नियमके अस्तित्वको मान बैठी है; और उसे लगता है कि उसका उल्लंघन करके कार्रवाई करनेके लिए काफी कारण नहीं बताये गये हैं। सच बात यह है कि जिस नियमकी शिकायत की गई है, वह जमी-जमाई प्रथामें एक नवीनीकरण है। उसे जारी करनेके कोई कारण उस समाजको नहीं बताये गये, जिसका उससे निकटतम सम्बन्ध है। उसके प्रणेताको तो यह समाज अबतक जानता ही नहीं।

तब, क्या मैं जान सकता हूँ कि हालतक ही जो प्रथा प्रचलित थी उसके अन्तर्गत प्रवासी-अधिनियमकी किस प्रकार अवहेलना की गई है?

मैं मानता हूँ कि यह नवीनीकरण जो असुविधा उत्पन्न कर रहा है उसके परिमाणको सरकार नहीं समझती।

अगर इसका असर सिर्फ उन लोगोंपर होता जो भविष्यमें उपनिवेशसे जानेवाले हों, तो इससे कोई कठिनाई पैदा न होती। परन्तु भारत गये हुए उन सैकड़ों भारतीयोंका, जो जाते समय इसके बारेमें कुछ जानते ही नहीं थे, और जिन्हें ऐसे प्रमाणपत्रोंकी जरूरत है, उपनिवेशमें आना बहुत कठिन होगा, हालाँकि यहाँ आनेका उनका अधिकार है।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पीटरमैरित्सवर्ग आर्काइव्ज, सी० एस० ओ०, ६०६३/१९००।

## ९९. पत्र : उपनिवेश-सचिवको

१४, मर्क्युरी लेन
डर्बन
सितम्बर ३, १९००

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

श्रीमन्,

मुझे डोसा देसा सम्बन्धी पत्र-व्यवहारके सिलसिलेमें आपको सूचित करना है कि हलफनामा-लेखकने अपनी विश्वसनीयताका प्रमाणपत्र प्राप्त कर लिया, और उसे इस अर्जीके समर्थनमें पेश करनेपर प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिकारीने अब प्रमाणपत्र दे दिया है।

तथापि, मेरी नम्र रायमें, इस अर्जीके निवटारेसे मेरे पिछली ३० तारीखके पत्रमें उल्लिखित नवीनीकरण-सम्बन्धी सामान्य प्रश्नका निवटारा नहीं होता।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पीटरमैरित्सबर्ग आर्काइव्ज़, सी० एस० ओ० ६०६३/१९००।

## १००. टिप्पणियाँ

### दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीयोंकी वर्तमान स्थितिपर टिप्पणियाँ[1]

[सितम्बर ३, १९०० के बाद][2]

दक्षिण आफ्रिका-सम्बन्धी प्रश्नोंका निर्णय निकट भविष्यमें हो जानेकी सम्भावना है, इसलिए एक सुझाव दिया जा रहा है कि दक्षिण आफ्रिकामें बसे हुए भारतीयोंके जो मित्र इंग्लैण्डमें रहते हैं उनको दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंकी शिकायतोंके विषयमें नवीनतम तथ्योंसे परिचित करा दिया जाये, जिससे वे मामलेको विचारके लिए सम्बद्ध अधिकारियोंके सामने उपस्थित कर सकें। एक सुझाव यह भी है कि उपनिवेश-मन्त्रीकी सेवामें एक प्रार्थनापत्र प्रस्तुत करके, उसका समर्थन सार्वजनिक सभाओं द्वारा कर दिया जाये जिससे कि इंग्लैण्डके कार्य-कर्त्ताओंका बल बढ़े। इस दूसरे सुझावको, भले प्रकार विचारके पश्चात्, छोड़ देनेका निश्चय

१. यह "एक नेटाल संवाददाता" से प्राप्त रूपमें १२-१०-१९०० के *इंडिया*में प्रकाशित हुआ था।

२. यह तारीख "टिप्पणियों" में किये गये प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियम (देखिए पृष्ठ १७३-१७४) सम्बन्धी उल्लेखके आधारपर निश्चित की गई है। उपनिवेश-सचिवको लिखे गये जुलाई ३१, अगस्त १८ तथा ३० एवं सितम्बर ३, १९०० के पत्रोंमें इस अधिनियमके अन्तर्गत एक विशिष्ट मामलेपर विचार किया गया है।

किया गया है। कारण यह है कि यदि इसे अपनाया गया तो यहाँ कई प्रकारके भ्रम फैल जायेंगे। यह कल्पना निराधार नहीं है। यहाँ सबकी धारणा यह है कि जबतक युद्ध समाप्त न हो जाये और उसके कारण उत्पन्न हुए झगड़ोंका अन्त न हो जाये, तबतक ऐसे किसी प्रश्नको नहीं उठाना चाहिए, या उसपर चर्चा नहीं करनी चाहिए, जिनका सम्बन्ध युद्धसे हो न हो। यह भी सम्भव है कि इस समय यूरोपीय और भारतीय लोगोंमें अच्छे सम्बन्ध दीखते हैं उनमें, इस प्रार्थनापत्रके कारण, गड़बड़ी उत्पन्न हो जाये।

आज यह बतलाना बहुत ही कठिन है कि भविष्यमें क्या होनेवाला है, अथवा शान्तिकी पुनः स्थापना होते ही पुरानी कटुता फिर तो नहीं जाग उठेगी। यह सन्देह निराधार नहीं है कि यूरोपीयोंका पुराना रुख बदलेगा नहीं। कुछ ही दिन हुए, *नेटाल विटनेसने* एक अग्रलेखमें लिखा था कि स्थानीय भारतीयोंने आहत-सहायकोंके रूपमें और अन्य प्रकारसे जो सेवाएँ की हैं, उनके कारण उपनिवेशवासियोंको भारतीय प्रश्नपर सदा तीखी नजर रखनेकी आवश्यकताकी ओरसे, अपनी आँखें मीच नहीं लेनी चाहिए। साथ ही उन्हें ध्यान रखना चाहिए कि सम्भव है, लॉर्ड रॉबर्ट्स अपने भारतीय सम्बन्धोंके कारण भारत-पक्षपाती विचार रखते हों। इसलिए कहीं ऐसा न हो कि उनके सेनापतित्वमें नेटालको जिस अस्थायी सैनिक-शासनमें रहना पड़ा है वह उस स्थितिमें भी हस्तक्षेप करने लगे जो कि नेटालने अबतक भारतीयोंके यहाँ प्रवेश और व्यापार करनेके सम्बन्धमें सफलतापूर्वक स्थिर रखी है। भारतीयोंने जो सेवाएँ की हैं वे उन्होंने इस सम्बन्धमें नेटालकी नीतिको न्यायपूर्ण मानकर ही की हैं, अपनी शिकायतोंको उचित माननेके बावजूद नहीं।

भारतीयोंने १,००० से ऊपर स्वयंसेवकोंका एक डोली-वाहक दल (वालंटियर स्ट्रेचर बेयरर कोर) संगठित किया था। उसके प्रत्येक स्वयंसेवकको प्रति सप्ताह १ पौंड मिलता था, जो कि यूरोपीय वाहकोंके पारिश्रमिकके आधे-से कुछ ही अधिक था। ३० से अधिक नायक उनकी सहायता बिना कोई पारिश्रमिक लिये करते थे। ये समाजके अत्यन्त प्रतिष्ठित व्यक्ति थे, और केवल सम्राज्ञीकी सेवा करनेके लिए अपना व्यापार तथा अन्य काम-काज छोड़कर स्वयंसेवक बने थे। इन्होंने वैसा करते हुए स्पष्ट कह दिया था कि हम शिकायतोंके होते हुए भी, इस समय घरेलू झगड़ोंको भुला देना अपना कर्तव्य समझते हैं। भारतीय व्यापारी यद्यपि स्वयंसेवक-दलमें सम्मिलित नहीं हो सके, फिर भी उन्होंने नायकोंको आवश्यक सामान देकर और उनमें से जिनके परिवारोंको सहायताकी आवश्यकता थी उनके निर्वाहका भार उठाकर, इस कार्य में योग दिया। इस दलने कोलेंजो, स्पियानकोप और वालक्रांजकी भाग्य-निर्णायक लड़ाइयोंमें सेवाका कार्य किया। इसके कामकी बहुत प्रशंसा हुई है। नेटालके प्रथम प्रधानमंत्री सर जॉन रॉबिन्सनने इसके विषयमें कहा है:

> इस संकटमें भारतीय लोगोंने जो योग दिया उसके विषयमें मैं इतना ही कह सकता हूँ कि वह आप सबके यश और देशभक्तिका द्योतक है। ऐसे कारण मौजूद थे — और उन्हें आप भली भाँति समझ सकते हैं — जिनसे रण-क्षेत्रमें ब्रिटिश सैनिकोंके अतिरिक्त अन्य सैनिकोंका प्रयोग नहीं किया जा सकता था। परन्तु आपके राजभक्तिपूर्ण उत्साहका जो कुछ उपयोग किया जा सकता था और आपकी साम्राज्यके पक्षमें कुछ कर दिखानेकी इच्छा तथा उत्सुकताकी पूर्तिके लिए जो अवसर दिया जा सकता था, उसके लिए अधिकारी प्रसन्नतापूर्वक तुरन्त तैयार हो गये। यद्यपि आपको मैदानमें लड़ने नहीं दिया गया, फिर भी आपने घायलोंकी शुश्रूषा करके बहुत अच्छा काम किया। आपके सुयोग्य देशवासी श्री गांधीने, ठीक समयपर, रण-क्षेत्रसे घायल सैनिकोंको लानेके लिए

स्वयंसेवकोंका संगठन करके जो निःस्वार्थ और अति उपयोगी काम किया, उसके लिए मैं उनका जितना भी हार्दिक धन्यवाद करूँ वह थोड़ा ही होगा। उन्होंने यह कठिन कार्य ऐसे समय किया जब कि इसकी भारी आवश्यकता थी; और अनुभवसे पता लगा कि यह काम जोखिमसे भी खाली नहीं था। जिस-जिसने यह सेवा की वे सब समाजकी कृतज्ञताके पात्र हैं।

भारतीयोंने देशभक्त महिला संघ (विमन्स पैट्रिऑटिक लीग)के कोशमें भी एक रकम (५७ पौंडसे ऊपर) दी, जिसे बहुत अच्छी रकम बतलाया गया है। *नेटाल मर्क्युरीने* इसके विषयमें लिखा था :

> स्त्रियोंकी देशभक्त-निधिमें धनके इस दानसे जो, विशेष रूपसे, रणभूमिपर बीमार और घायल स्वयंसेवकोंकी सेवाके लिए दिया गया है, भारतीयोंकी भावनाओंकी बहुत ही स्वागतके योग्य और मुखर अभिव्यक्ति हुई है। उनके विचारसे भारतीय शरणार्थियोंके विशाल समूहको ही सहायता दे देना — जैसा कि वे खुले हाथों कर रहे हैं — काफी नहीं है; बल्कि उन्हें, हमारा खयाल है, सम्राज्ञीके प्रति और जिस देशमें आकर वे रह रहे हैं उसके प्रति अपनी भक्तिके प्रतीकके रूपमें यह अतिरिक्त दान देना जरूरी मालूम हुआ है। हमारी आबादीका यह अंश — जिसकी ओरसे अक्सर बहुत कम बोला जाता है — जिस सच्ची भावनासे उत्प्राणित है, उसे ऐसे राजभक्ति-प्रदर्शनसे ज्यादा भली भाँति और कोई भी बात व्यक्त नहीं कर सकती।

भारतीय स्त्रियोंने इस सेवा-कार्यमें योग, घायलोंके लिए तकियोंके गिलाफ और रूमाल आदि बनाकर, दिया था। इनके लिए कपड़ा भी भारतीय व्यापारियोंने दिया था, जोकि उनके ऊपर उल्लिखित दानके अतिरिक्त था। इस सारे कठिन समयमें, भारतीय अपने देशवासी उन हजारों शरणार्थियोंकी भी सहायता करते रहे जो कि ट्रान्सवाल और इस उपनिवेशके बोअर-अधिकृत भागोंसे आये थे। और यह सब उन्होंने, लंदनसे आये हुए और यहाँ एकत्र किये हुए धनमें से कुछ भी लिये बिना किया। उस धनकी व्यवस्था शरणार्थी-सहायक समिति द्वारा पृथक् की जाती रही।

डर्बनके मेयरने इस सेवाकी प्रशंसा (गत मार्चमें कहे हुए) इन शब्दोंमें की थी :

> इस अवसरपर मेयरने भारतीय लोगोंको उनकी गत चार महीनोंके लगभगकी राजभक्तिके लिए धन्यवाद दिया। उनके बहुत-से बन्धुओंको उपनिवेशके ऊपरी भाग छोड़-कर, शरण लेनेके लिए, यहाँ आना पड़ा था। उन्हें इन्होंने अपने आपमें मिला लिया, और उनके निर्वाहका व्यय भी ये ही उठाते रहे। इस सबके लिए मेयरने उनको हार्दिक धन्य-वाद दिया।

यहाँ इस बातका उल्लेख भी बिना किसी अभिमानके किया जा सकता है कि ये सब सेवाएँ कोई पारितोषिक पानेकी इच्छासे नहीं की गई थीं। ब्रिटिश प्रजा होनेके कारण विशेषाधिकारोंका दावा करते हुए हम इन कर्तव्योंकी ओरसे मुँह नहीं मोड़ सकते थे। तिसपर ये सेवाएँ भी निःसन्देह तुच्छ ही थीं। इनका इनाम कुछ हो भी नहीं सकता था।

यह उल्लेखनीय होगा कि कैप्टेन ल्यूमान, आई० एम० एस० ने जो भारतीय सैन्य-सहायक कोश (इंडियन कैम्प फालोअर्स फंड) खोला था, उसमें भी स्थानिक भारतीयोंने अच्छी सहायता की थी। उनका दान ५० पौंडसे ऊपर था। उपनिवेशमें जन्मे भारतीयोंने इसी प्रयोजनसे एक नाटक

किया था और उसकी सारी आमदनी, जो २० पौंडसे अधिक थी, इस कोषमें दे दी थी। यूरोपीयों और भारतीयोंके सम्बन्ध कितने अच्छे थे, इसका एक उदाहरण यह है कि लेडीस्मिथ और किम्बरलेकी लड़ाइयाँ जीत लेनेपर ब्रिटिश सेनापतियोंको बधाई देनेके लिए भारतीयोंने जो बड़ी सभा की थी उसके सभापति सर जॉन रॉबिन्सन बने थे और उसमें पचाससे अधिक प्रमुख यूरोपीय नागरिक सम्मिलित हुये थे। उधर, भारतकी अकाल-पीड़ित जनताके लिए चन्देकी जो अपील निकाली गई थी उसका उत्तर नेटालके यूरोपीयोंने अति उदारतासे दिया था; उनके चन्देकी राशि २,००० पौंडसे ऊपरतक पहुँच गई थी। इस निधिके संरक्षक नेटालके गवर्नर, अध्यक्ष डर्बनके मेयर, अवैतनिक कोशाध्यक्ष प्रवासी भारतीयोंके संरक्षक, मन्त्री एक भारतीय सज्जन, और कार्यकारिणीके सदस्य अनेक प्रमुख यूरोपीय बाग-मालिक और व्यापारी हैं। एक वर्ष पूर्व ऐसा मेल मिलना असम्भव था।

नेटालके ब्रिटिश भारतीयोंके विषयमें प्रमुख यूरोपीयोंकी ये सम्मतियाँ उद्धृत करनेके पश्चात् शिकायतोंकी चर्चा करनेके लिए जमीन साफ हो गई है। २७ मार्च १८९७ की गश्ती चिट्ठी[1] के साथ-साथ, निम्न सारांशको भी पढ़ लेना अच्छा होगा :

ट्रान्सवाल और ऑरेंज रिवर उपनिवेशके विषयमें अभी इसके अतिरिक्त और कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं कि जिन सब शिकायतोंको दूर करनेमें उपनिवेश-कार्यालयने, इन दोनों राज्योंकी पहलेकी स्थितिके कारण, भारतीयोंके साथ कितनी ही सहानुभूति रखते हुए भी, पहले अपनी असमर्थता प्रकट की थी, उनमें से कोई भी अब नये शासन-प्रबन्धमें बिलकुल नहीं रहने दी जायेगी, क्योंकि इनमें, नेटालकी तरह, उपनिवेशके स्वशासित होनेकी भावनाका विचार भी नहीं करना पड़ेगा।

जूलूलैंड अब नेटालका ही एक भाग है। इस कारण उसकी पृथक् चर्चा करनेकी आवश्यकता नहीं। परन्तु यहाँ इतना अवश्य बतला देना चाहिए कि जब इसका शासन सीधा सम्राज्ञीके नामपर होता था तब कुछ नियम ऐसे थे जो जमीनोंकी नीलामीमें भारतीयोंको बोली लगानेसे रोकते थे। वे नियम, इसे इस उपनिवेशमें मिलानेसे पहले, हटा दिये गये थे।

नेटालमें स्थिति पूर्ववत् ही है। प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियमका पालन आजकी परिस्थितियोंमें जितनी कठोरतासे किया जा सकता है उतनी कठोरतासे किया जा रहा है।

इसके अनुसार, ऐसा कोई भी व्यक्ति इस उपनिवेशमें प्रविष्ट नहीं हो सकता जो, इस अधिनियमके साथ संलग्न फार्ममें, किसी यूरोपीय भाषामें, प्रार्थनापत्र न लिख सकता हो। अपवाद केवल उन व्यक्तियोंके लिए किया जाता है जो पहलेसे यहाँके निवासी बन चुके हों। अधिनियममें अनुमति न होते हुए भी, जहाजी कम्पनियोंको इस आशयकी चेतावनी दे दी गई है कि जिन भारतीयोंके पास यहाँका निवासी होनेके प्रमाणपत्र न हों उनको वे यहाँ न लायें। ये प्रमाणपत्र पहले सम्बद्ध व्यक्ति अथवा उसके किसी मित्र द्वारा मौखिक प्रार्थना करनेपर ही बिना मूल्य दे दिये जाते थे। फिर इनका २ शिलिंग ६ पेंस मूल्य लिया जाने लगा। इसके बाद, निवासी होनेके प्रमाणके रूपमें, हलफनामा माँगा जाने लगा। फिर दो हलफनामोंकी शर्त लगा दी गई; और इसका प्रमाण भी माँगा जाने लगा कि प्रमाणपत्र लेनेकी प्रार्थना करनेवाला व्यक्ति कमसे-कम दो वर्षसे इस उपनिवेशका नागरिक है। और अब सबसे नई बात यह की गई है कि या तो उपनिवेशमें प्रवेश पानेके अभिलाषी व्यक्तिको अधिवासका प्रमाणपत्र लेनेका प्रार्थनापत्र स्वयं देना चाहिए, या किसी ऐसे व्यक्तिको शपथ लेकर अधिवासका प्रमाण पेश करना चाहिए, जिसकी प्रतिष्ठा सुविदित हो। इस प्रकार प्रकट है कि प्रतिबन्धका बन्धन समय

१. देखिए खण्ड २, पृष्ठ ३३२।

बीतनेके साथ दृढ़से दृढ़तर होता गया है। इस सबका परिणाम व्यवहारमें यह है कि सम्पन्न *लोगोंके अतिरिक्त* सब लोगोंके लिए उपनिवेशमें आनेके द्वार बन्द हो गये हैं। इस सम्बन्धमें, सरकारकी ओरसे सफाई यह दी जाती है कि जो लोग अधिवासका प्रमाणपत्र लेना चाहते हैं उनके लिए, उपनिवेशसे बाहर जानेसे पूर्व, अपने हस्ताक्षरोंसे प्रार्थनापत्र देना कुछ कठिन नहीं होना चाहिए। यह सफाई सर्वथा संगत हो जाती, यदि नई पाबन्दी केवल उन लोगोंपर लगाई जाती जो कि अबके बाद उपनिवेशसे बाहर जानेवाले होते। जो पहलेसे उपनिवेशके बाहर हैं उनकी इसके कारण अवश्य ही भारी हानि हो जायेगी। भारतमें बैठा हुआ कोई व्यक्ति यदि यह प्रमाण-पत्र लेना चाहे, तो उसे एक वर्षतक भी राह देखनी पड़ सकती है। भारत और दक्षिण-आफ्रिकाके बीचमें डाकका आना-जाना जितना हो सकता है उतना अनियमित है। तिसपर इस बातका कोई निश्चय नहीं कि प्रवासी-अधिकारीके पास प्रार्थनापत्र पहुँच जानेपर अधिवासका प्रमाणपत्र मिल ही जायेगा; क्योंकि यह असम्भव नहीं है — ऐसा पहले कई बार हो चुका है — कि प्रार्थनापत्रको कोई वास्तविक अथवा कल्पित भूलें सुधारनेके लिए बार-बार भारत लौटाया जाता रहे। कहनेको तो, जिन नोटिसोंके पीछे कानूनकी ताकत नहीं, उनकी जहाजी कम्पनियाँ अवज्ञा कर सकती हैं, और जो भारतीय उपनिवेशमें आना चाहते हैं वे ऐसे अधिवास-प्रमाणपत्र लेनेसे इनकार कर सकते हैं, जिनका कानूनमें विधान नहीं है; परन्तु व्यवहारमें जहाजी कम्पनियाँ उक्त प्रमाणपत्र देखे बिना यात्राका टिकट देनेसे इतनी दृढ़तापूर्वक इनकार कर देती हैं कि जो लोग अंग्रेजीमें प्रार्थनापत्र लिखनेकी योग्यताके बलपर टिकट खरीद सकते हैं उनको भी उक्त प्रमाणपत्र दिखलाये बिना टिकट नहीं दिया जाता; कम्पनियाँ कानूनकी इस शर्तपर कोई ध्यान नहीं देतीं कि ऐसे व्यक्तियोंके लिए अधिवास-प्रमाणपत्र लेनेकी आवश्यकता नहीं। इन लम्बे-चौड़े प्रतिबन्धोंको लगानेका कारण यह बतलाया जाता है कि कोई कानूनसे बचकर न निकल जाये। इस प्रकार बच-निकलनेके कुछ मामले हुए अवश्य हैं, परन्तु इस सम्बन्धमें निवेदन है कि उनका उपयोग, स्वभावतः कठोर कानूनको अनुचित रूपसे और भी कठोर बनानेके लिए और ब्रिटिश संविधानके आधारभूत सिद्धान्तोंका उल्लंघन करनेके लिए, नहीं किया जाना चाहिए। कानूनको बरकानेकी खुल्लम-खुल्ला निन्दा करनी चाहिए। आवश्यकता हो तो उसके लिए दण्ड भी देना चाहिए। अधिनियममें ही इसके लिए पर्याप्त व्यवस्था कर दी गई है। दुर्भाग्यवश, इस व्यवस्थाका लाभ नहीं उठाया गया। इसका परिणाम यह है कि उन थोड़े-से अपराधी व्यक्तियोंके दोषके कारण निरपराधियोंको परेशान होना पड़ रहा है। कानूनकी कठोरतामें कमी करानेके उद्देश्यसे स्थानीय अधिकारियोंको प्रेरित करनेके लिए जो कुछ किया जा सकता है वह सब किया गया है, और किया जा रहा है। और यहाँ इस बातका जिक्र न करना अनुचित होगा कि अधिकारियोंने भारतीयोंकी इच्छा पूरी करनेका प्रयत्न एक हदतक किया भी है। परन्तु उपनिवेश-कार्यालयके दबावसे, इससे अधिक बहुत-कुछ किया जा सकता है — अभी नहीं तो युद्धकी समाप्तिके पश्चात्। हमने देखा है कि सरकारने भूतकालमें उपनिवेश-कार्यालयकी बात मानी भी है।

इस कानूनका एक और परिणाम यह है कि जो लोग इस उपनिवेशसे गुजरना या यहाँ कुछ समय रहकर जाना चाहते हैं, उनपर कष्टदायक प्रतिबन्ध लगाये जा रहे हैं; यद्यपि ये दोनों ही काम कानून द्वारा निषिद्ध नहीं हैं। परन्तु सरकारने भारतीयोंका कानूनसे बचकर उपनिवेशमें बसना रोकनेके लिए दो प्रकारके परवाने चला दिये हैं। एकको आगमन-पत्र (विज़िटिंग पास) और दूसरेको प्रस्थान-पत्र (एम्बार्केशन पास) कहा जाता है। यह शायद उसने ठीक ही किया है। इस कारण आपत्ति इन परवानोंपर इतनी नहीं है, जितनी इन्हें जारी करनेकी शर्तोंपर

है। पहले, यात्रा-पत्र देनेके लिए २५ पौंडकी जमानत जमा करवाई जाती थी, और आगमन-पत्र या प्रस्थान-पत्र देते हुए १ पौंडकी फीस ली जाती थी। पीछे, भारतीय लोगोंके प्रार्थना करनेपर, सरकारने २५ पौंडकी रकम घटाकर १० पौंड कर देने और १ पौंडकी फीस हटा देनेकी कृपा कर दी। १० पौंडकी जमानत अब भी ली जाती है। यह रकम सरकारकी दृष्टिमें भले ही छोटी हो, परन्तु इसके कारण यहाँ आनेके अभिलाषियोंको बहुत कठिनाई होती है, और उनमें से सब उसे दे भी नहीं सकते। इस अधिनियमके कारण ही, ट्रान्सवालके भारतीय शरणार्थियोंसे भरे हुए एक जहाजको डेलागोआ-बेसे अपना मार्ग बदल लेना पड़ा था। इन शरणार्थियोंको नेटाल आने दिया जाता तो इनका युद्धके बाद भारतसे डेलागोआ-बेतक लौटनेका खर्च तो बच ही जाता; पहले ही जो भारत अकालसे पीड़ित है, उसपर इनका भी बोझ न पड़ता।

दूसरा अधिनियम है — विक्रेता-परवाना अधिनियम (डीलर्स लाइसेन्सेज़ ऐक्ट)। इसे 'दूसरा' कहनेसे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि इसका नम्बर महत्त्वकी दृष्टिसे भी दूसरा ही है। यह तो सबसे खराब है। हाँ, इस समय इसके दुष्प्रभावका अनुभव नहीं हो रहा है। टागेलासे परेका देश अब भी अर्ध-सैनिक शासन में है। न्यूकैसिल, लेडीस्मिथ और डंडीके निगम (कारपोरेशन) १८९८ में इस अधिनियमका क्रूरता तथा कठोरतापूर्वक प्रयोग करनेके कारण बदनाम हो गये थे। वे, दुर्भाग्यवश, अबतक बोअरोंके शासनके कष्टोंसे मुक्त नहीं हो सके। डर्बन और मैरित्सबर्गके परवाना-अधिकारियोंने बहुत परेशान नहीं किया। जनवरीमें जब नये परवाने लेनेका समय आयेगा तब क्या होगा, यह अभीसे बतलाना कठिन है। परन्तु व्यापारी बेचारे अभीसे घबरा रहे हैं, क्योंकि उन्हें इस अधिनियमके कारण प्रतिवर्ष अनिश्चित अवस्थाओंका सामना करना पड़ता है। लन्दनके मित्रोंको स्मरण होगा कि श्री चेम्बरलेनने नेटाल-सरकारको सुझाया था कि वह उस कानूनमें इस आशयका संशोधन करवा दे कि जिस धाराके अनुसार सर्वोच्च न्यायालयको परवाना-अधिकारियों या निगमोंके फैसलोंके विरुद्ध अपील सुननेके अधिकारसे वंचित कर दिया गया है, उसे अधिनियममें से निकाल दिया जाये। इसपर नेटाल-सरकारने सब नगरपालिकाओंको लिखा था कि यदि आपने इस अधिनियमके द्वारा मिले हुए अधिकारोंका प्रयोग न्यायपूर्वक न किया तो सरकारको इसमें उक्त संशोधन कर देना पड़ेगा। यहाँतक जितना-कुछ हुआ वह अच्छा ही हुआ, परन्तु आशा करनी चाहिए कि उपनिवेश-कार्यालय इतने मात्रसे सन्तुष्ट नहीं होगा। न्यूनतम आवश्यकता यह है कि प्रत्येक भारतीय परवानेदारके सिरपर अनिश्चितताकी जो तलवार लटक रही है उसे हटा लिया जाये, और यह काम सर्वोच्च न्यायालयको उसके अधिकार पुनः देकर ही किया जा सकता है। प्रिटोरियामें जब श्री क्रूगरने उच्च न्यायालयके अधिकार छीनकर अपने हाथमें ले लिये थे तब बड़ा शोर मचा था (और ठीक ही मचा था)। परन्तु इस छीना-झपटीसे थोड़ी-बहुत रक्षा शायद ट्रान्सवालके संविधानके रद्दीपनके कारण ही हो जाती थी। परन्तु नेटालका संविधान सुव्यवस्थित है, उनमें सब सावधानताएँ विद्यमान हैं, इस कारण देशके सर्वोच्च न्यायालयको अधिकार-च्युत कर दिये जानेपर संविधानसे सहायता नहीं मिल सकती, और खतरा बहुत भारी, वास्तविक तथा भयंकर हो जाता है, क्योंकि उसे विधान-मण्डलकी भी गम्भीर अनुमति मिल चुकी है।

इस कथनकी यथार्थताको समझनेके लिए इतना स्मरण कर लेना पर्याप्त होगा कि ट्रान्सवालमें कानूनोंकी अनिश्चितता होते हुए भी वहाँ क्या-कुछ होना सम्भव हो गया था। यहाँकी नगर-परिषदें ब्रिटिश संस्थाएँ होनेके कारण, न्यायालयोंसे डरती और उनका सम्मान अवश्य करती हैं, परन्तु जब उनपर न्यायालयोंका स्वस्थ प्रतिबन्ध नहीं रहेगा तो वे क्या-कुछ कर डालनेका प्रयत्न करेंगी, इसकी कल्पना सुगमतासे की जा सकती है। युद्धके कारण इन मामलेमें

उपनिवेश-कार्यालयतक जानेका रास्ता भी बन्द पड़ा है। इस सम्बन्धमें स्थानीय सरकारसे हमारा पत्र-व्यवहार चल ही रहा था कि युद्ध छिड़ गया, और यह उचित समझा गया कि बादलोंके बिखर जानेतक अगली कार्रवाई रोक दी जाये।

९ बजेके बाद घरोंसे बाहर न रहनेके नियम और अन्य अनेक कठिनाइयोंका गश्ती-चिट्ठीमें जिक्र किया जा चुका है। उन्हें यहाँ दुहरानेकी आवश्यकता नहीं। उनसे यह पता चल ही जाता है कि इस उपनिवेशमें भारतीयोंको क्या-क्या कष्ट उठाने पड़ते हैं। ब्रिटिश प्रजा होनेके कारण, कागज-पत्रोंमें तो हम और उपनिवेशवासी एक ही हैं, परन्तु वास्तविकता ऐसी नहीं है। सचमुच एक हो जायें, इसके लिए तो हम बहुत-कुछ देनेको तैयार हैं। यदि प्रवासी-प्रतिबन्धक और विक्रेता-परवाना कानूनोंकी परेशानियाँ दूर हो गईं, तो अपेक्षाकृत छोटी-छोटी और शिकायतोंके कारण लन्दनके अपने मित्रोंको कष्ट देनेके लिए बहुतेरा समय मिल जायेगा।

एक बात हमारे हृदयको प्रतिदिन बड़ा कष्ट पहुँचा रही है, और वह है भारतीय बालकोंकी शिक्षाका प्रश्न। यहाँका शासन बहुमतसे चलता है। इस कारण शायद सरकार भी भारतीयोंकी सहायता करनेमें अपनेको असमर्थ पाती है। यह अस्वाभाविक भी नहीं है। परन्तु इसका परिणाम यह हो रहा है कि भारतीय बालकोंके लिए साधारण प्राइमरी और हाईस्कूलोंके दरवाजे बिलकुल बन्द हो गये हैं। सुनते हैं कि डर्बन हाईस्कूलके मुख्याध्यापकने कुछ समय पूर्व शिक्षा-मन्त्रीको लिखा था कि यदि एक भी भारतीयको दाखिल किया गया तो सब माता-पिता अपने बालकोंको निकाल लेंगे। परन्तु हमारा तर्क यह है कि सरकारी स्कूल जिन करोंके द्वारा चलाये जाते हैं उन्हें भारतीय और यूरोपीय, दोनों देते हैं, इसलिए उपनिवेश-कार्यालयको चाहिए कि वह स्थानीय सरकारको स्पष्ट बता दे कि इन स्कूलोंमें शिक्षण पानेका भारतीयों और यूरोपीयोंका अधिकार समान है। मुख्याध्यापकने जो धमकी दी है (वह धमकीसे कम कुछ नहीं है), उसका तर्क-संगत परिणाम यह होगा कि यदि जीवनके हरएक पहलूमें उसपर अमल किया जाने लगा तो उपनिवेशमें भारतीयोंकी मान-मर्यादा बिलकुल नहीं रहेगी। यदि उपनिवेशमें किसी व्यापारिक स्थानके थोड़े-से यूरोपीय व्यापारियोंका गिरोह सरकारको यह धमकी देने लगे कि हमारे पड़ोसके कुछ भारतीय व्यापारियोंको हटा दो, वरना हम सारा बाजार खाली कर देंगे, तो उन्हें ऐसा करनेसे रोक कौन सकेगा?

आवश्यकता हो तो अधिक जानकारीके लिए निम्न वस्तुओंका संकेत दिया जाता है:

प्रार्थनापत्र (प्रवेश और व्यापारके परवानों आदिके विषयमें), २ जुलाई १८९७।

प्रार्थनापत्र (व्यापारके परवानोंके विषयमें), ३१ दिसम्बर १८९८।

सामान्यपत्र (परवाने), ३१ जुलाई, १८९९।

*टाइम्स ऑफ़ इंडिया* (साप्ताहिक संस्करण) के ११ मार्च १८९९, १५ और २२ अप्रैल १८९९, १९ अगस्त १८९९, ९ दिसम्बर १८९९, ६ जनवरी १९०० और १६ जून १९०० के अंकोंमें दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंकी समस्याओंपर प्रकाशित विशेष लेख और सम्पादकीय टिप्पणियाँ।[1]

छपी हुई मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३४७४-ए) से।

१. उपर्युक्त दोनों प्रार्थनापत्र, सामान्यपत्र, नेटाल-गवर्नरके नाम प्रार्थनापत्र तथा विशेष लेख इस खण्डमें तिथि-क्रमसे दिये गये हैं।

## १०१. पत्र : टाउन क्लार्कको

२४, मर्क्युरी लेन
डर्बन, नेटाल
सितम्बर २४, १९००

सेवामें
श्री विलियम कूली
टाउन क्लार्क
डर्बन

महोदय,

जैसे ही यह प्रकट हुआ था कि नगर-परिषद एक ऐसा उपनियम जारी करना चाहती है, जिससे कि "सिर्फ यूरोपीयोंके लिए" लिखी हुई तख्तीवाले रिक्शोंमें रंगदार लोगोंको बैठाना रिक्शा चलानेवालोके लिए अपराध ठहरा दिया जाये, वैसे ही अनेक भारतीयोंने मुझसे एक विरोध-पत्र लिखनेको कहा था। परन्तु उस समय मुझे लगा था कि ऐसा करना उचित नही होगा। मैंने सोचा था कि जबतक भारतीयोंके लिए भी वैसी ही सवारियाँ उपलब्ध है तबतक, अगर यूरोपीय उनके साथ स्थान बँटानेमें आपत्ति करते है तो, भारतीयोंका उनके द्वारा काममें लाये जानेवाले रिक्शोंमें बैठनेके अधिकारका आग्रह करना, भारतीय समाजके स्वाभिमानके विपरीत है। परन्तु अब मै महसूस करने लगा हूँ कि मैंने वह सलाह देनेमें एक गम्भीर गलती की।

उपनियमके व्यावहारिक प्रयोगसे सभी वर्गोके भारतीयोंमें चिढ़ पैदा हुई है, और हो रही है। उसे परिषदकी नजरमें न लाना मेरी हिमाकत होगी।

मैं निस्संकोच स्वीकार करता हूँ कि समस्याका हल आसान नहीं है। फिर भी शायद वह बिलकुल ही हलके परे नही है। इस पत्रमें मैं कानूनी प्रश्न उठाना नही चाहता, हालांकि मेरी नम्र मान्यता यह है कि उक्त उपनियम गैर-कानूनी है। मैं, अगर सम्भव हो तो, परिषदकी सद्भावनाको प्रेरित करके आंशिक राहत प्राप्त करना चाहता हूँ।

मुझे भरोसा है कि आपत्ति सवारीके रंगपर उतनी नही की जाती, जितनी कि उसके गंदे कपड़ों या रूपपर। अगर यह सही है तो क्या रिक्शा चलानेवालोंको यह निर्देश दे देना सम्भव न होगा कि वे ऐसी सवारियोंको न लें? मुझे बताया गया है कि रिक्शा चलानेवाले ऐसे निर्देशोको समझने और उनका पालन करनेके लिए काफी चतुर है। यह सुझाव स्पष्टत: कठिन है, और दिक्कतो व अन्यायसे मुक्त तो होगा ही नही; परन्तु इससे अभीकी तीव्र कटुता कम हो जानेकी सम्भावना है।

उपनियम बहुत कठोरतासे काममें लाया जा रहा है। ऐसी हालतमें वह अपने ही उद्देश्यको विफल कर सकता है। और, मेरी नम्र रायसे, उसको संघर्षके बिना तभी कार्यान्वित किया जा सकता है, जब कि उसके प्रयोगमें विवेकका खासा अच्छा पुट हो। मेरा निवेदन है, यह कोई छोटी बात नही है कि जो सैकड़ों रंगदार लोग अबतक रिक्शोंको स्वतंत्रतापूर्वक एक प्रकारके वाहनके रूपमें काममें लाते रहे हैं, वे अब एकाएक अपने-आपको उनके उपयोगसे वंचित पाते हैं; क्योंकि, मुझे मालूम हुआ है, ऐसे रिक्शे बहुत ही कम हैं, जिनमें उपर्युक्त तख्ती न लगी हो।

क्या मैं आपसे निवेदन कर सकता हूँ कि इस पत्रको, जितनी जल्दी मौका मिले, मेयर महोदय तथा परिषद-समितिके सामने पेश कर दें? और क्या मैं आशा कर सकता हूँ कि इसकी विषय-वस्तु जितना ध्यान देने लायक है उतना ध्यान इस पत्रपर दिया जायेगा? मुझे यह भरोसा भी है कि इसपर उसी भावनासे विचार किया जायेगा, जिससे इसे लिखा गया है।

आपका आज्ञाकारी,

मो० क० गांधी

टाउन-कौंसिल, डर्बनके कागजातमें उपलब्ध मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकलसे।

## १०२. दादाभाई नौरोजीको[1]

डर्बन, नेटाल
अक्टूबर ८, १९००

*एकान्त विश्वासका*

मान्यवर,

कांग्रेसका[2] अधिवेशन नजदीक आ रहा है। इस दृष्टिसे, कांग्रेस क्या करे, इस बारेमें हम यहाँके लोग जो-कुछ सोचते हैं उसकी ओर आपका और आपके द्वारा हमारे अन्य नेताओंका ध्यान खींच देना अनुचित न होगा। मैं जानता हूँ कि हम लोगोंको, जो देशके प्रति आपकी सेवाओंका मूल्य समझते हैं, देखना चाहिए कि हम अनावश्यक रूपसे आपके ध्यानपर दखल न जमायें, जिससे कि आपका स्वास्थ्य ही बिगड़ जाये। इसलिए, अगर आप खुद इस विषयपर ध्यान न दे सकें, तो मुझे कोई संदेह नहीं, आप यह पत्र या इसकी नकलें, योग्य व्यक्तियोंके पास भेज देंगे। प्रस्तुत विषयपर विचार इस दृष्टिसे किया गया है कि उसका असर भारतीयोंके समग्र देशान्तर-प्रवासपर पड़ता है। इस दृष्टिसे यह अधिकतम राष्ट्रीय महत्वका विषय मालूम होता है। कांग्रेसके सामने पेश करनेके लिए एक प्रस्तावका मसविदा इसके साथ संलग्न है।[3] लन्दनमें रहनेवाले मित्रोंके लिए खास तौरसे तैयार की गई टिप्पणियों[4] की कुछ

१. यह दादाभाई नौरोजीके नाम लिखे हुए एक पत्रकी, साबरमती संग्रहालयके पत्रोंमें पाई गई अधूरी नकल है। (दादाभाई नौरोजी, देखिए खण्ड १ पृष्ठ ३९३)।

२. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस।

३. कांग्रेसने "दक्षिण आफ्रिकाके प्रश्नपर," निम्न प्रस्ताव स्वीकार किया था:

निश्चय हुआ: कि, यह कांग्रेस एक बार फिरसे भारत-सरकार और भारत-मन्त्रीका ध्यान दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंकी शिकायतोंकी ओर आकृष्ट करती है; और हार्दिक आशा करती है कि, उस महाखण्डमें सीमाओंका पुनर्निर्धारण हो जाने और भूतपूर्व बोअर गणराज्योंके ब्रिटिश प्रदेशमें मिला लिये जानेके कारण अब वे निर्योग्यताएँ नहीं रहेंगी, जो उन गणराज्योंमें भारतीयोंको सहन करनी पड़ती थीं और जिनको दूर करानेमें, उन गणराज्योंके आन्तरिक मामलोंमें स्वतन्त्र होनेके कारण, सम्राज्ञी-सरकार असमर्थता महसूस करती थी; और यह कि नेटालमें, दूसरे कानूनोंके साथ-साथ प्रवासी-प्रतिबन्धक तथा विक्रेता-परवाना अधिनियमोंके कारण, जो कि ब्रिटिश विधानके मूलभूत तत्वों तथा १८५८की घोषणाके स्पष्टतः प्रतिकूल हैं, वहाँ बसे हुए भारतीयोंको जो गंभीर असुविधाएँ हो रही हैं उनको यदि बिलकुल दूर नहीं, तो भी बहुतांशमें कम तो कर ही दिया जायेगा।

४. "टिप्पणियाँ: दक्षिण आफ्रिकावासी ब्रिटिश भारतीयोंकी वर्तमान स्थितिपर", सितम्बर ३, १९००के बाद।

नकलें भी मैं अलग लिफाफेमें भेज रहा हूँ। ये टिप्पणियाँ सर विलियम वेडरबर्नकी इच्छासे तैयार की गई थीं। इनसे वर्तमान स्थितिकी कुछ कल्पना मिल जायेगी और जो सज्जन प्रस्तावकी जिम्मेदारी लेंगे उनके शायद कुछ काम आयेंगी। बेशक, प्रस्तावमें विषय-समिति जो परिवर्तन या संशोधन करना उचित समझे वह किया जा सकता है।

इस विषयका महत्त्व केप-विधानमंडलके एकाएक और अनपेक्षित रूपसे सजग हो उठनेके कारण विशेष बढ़ गया है। आप जानते ही हैं कि उसके सदस्य बहुत तुल्यबलके दो दलोंमें बँटे हुए हैं। यों तो उनके विचार एक-दूसरेके बिलकुल विरोधी हैं, परन्तु भारतीय प्रश्नपर दोनों दल एकमत दिखलाई पड़ते हैं। *केप टाइम्स*की एक कतरन[1] इसके साथ नत्थी है। उसमें केप विधान-सभामें हुई बहसकी कार्यवाही प्रायः पूर्ण रूपमें दी गई है। उससे आपको कुछ कल्पना हो जायेगी कि दक्षिण आफ्रिकाके उस हिस्सेमें क्या हो रहा है। स्पष्टतः केपके सभासद नेटालसे भी आगे बढ जानेको आतुर हैं, मानो नेटालने भारतसे आनेवाले नये लोगोंके लिए अपने दरवाजे करीब-करीब बिलकुल ही बन्द न कर दिये हों। वे तो भारतीय मात्रको बरदाश्त करना नहीं चाहते — फिर वे व्यापारी हों, मुंशी हों या मजदूर हों। श्री चेम्बरलेनके रूपमें उन्हें एक ऐसे उपनिवेश-मन्त्री मिल गये हैं, जो स्वशासित उपनिवेशोंकी इच्छाओंको मान देनेके लिए किसी भी हदतक बढ़नेको तैयार हैं। दूसरी ओर, इंडिया आफिस भयंकर रूपसे निष्क्रिय दिखलाई पड़ता है। परन्तु, यह देखते हुए कि इस प्रश्नपर भारतीयों और आंग्ल-भारतीयोंके बीच ऐकमत्य है, उक्त कार्यालयको उचित रूपसे काम करनेके लिए जगा देना और कुछ राहत प्राप्त कर लेना सम्भव हो सकता है। एक प्रभावशाली शिष्टमंडल लॉर्ड कर्जनसे मिले तो, संभव है, इष्ट दिशामें बहुत-कुछ हो जाये।

केप उपनिवेशका रुख यह बतलाता मालूम होता है कि भारतने जो सेवाएँ प्रदान की हैं वे बिलकुल भुला दी जायेंगी और, अगर केप उपनिवेशके लोगोंकी बात चली तो, भारतीयोंके साथ सामाजिक कोढ़ियों जैसा व्यवहार किया जायेगा। भारत द्वारा प्रदान की गई सेवाएँ ये थीं कि, जो आदमी शत्रुकी सफल बाढ़को रोकनेके लिए सबसे पहले आगे गया वह था, अपनी भारतीय टुकड़ीके साथ, सर जॉर्ज व्हाइट; और लेडीस्मिथके घेरेमें तथा प्रारम्भिक पराजयोंमें जो जरूरत पर काम आये — और इसे सबने मंजूर किया है — वे थे सैकड़ों डोली-वाहक।[2] इनके अलावा, स्वयंसेवकों (लुम्सडेन्स हॉर्स) का, जिनका सारा साज-सामान भारतीयोंके चन्देसे खरीदा गया था, भिश्ती-दलका और अन्य भारतीय सेवकोंका, जो जहाज भर-भर कर भारतसे भेजे गये थे, और उस डोली-वाहक दलका तो, जो स्थानिक रूपसे संगठित किया गया था, कहना ही क्या है।

नेटाल फिलहाल नाराज नहीं मालूम होता। परन्तु उसकी नाराजी फूट पड़नेमें और, भय है, भारतीय-विरोधकी असली स्थितिपर उसके लौट आनेमें बहुत-कुछ जरूरी न होगा। जो सज्जन प्रस्तावपर भाषण दें उनसे कह दिया जाये कि वे कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करें, भारतीय अकाल-निधिमें नेटालने उदारतापूर्ण योग दिया है और प्रभुसिंहके लिए १०० पौंड चन्दा भी इकट्ठा किया है। प्रभुसिंह एक गिरमिटिया भारतीय है, जिसने लेडीस्मिथमें बिलकुल अनोखी सेवा की थी और जिसकी बहादुरीकी सर जॉर्ज व्हाइटने सार्वजनिक रूपसे प्रशंसा की थी। (यही वह आदमी है, जिसके लिए लेडी कर्जनने एक "चोगा" भेजा था। वह पिछले दिनों सार्वजनिक

१. यह उपलब्ध नहीं है।
२. स्ट्रेचर-वाहक।

सभामें उसे भेंट किया गया था )। अकाल-निधिका चन्दा ४,५०० पौंडसे ज्यादा है। उसका करीब आधा हमारे समाजने दिया है।

ट्रान्सवाल और ऑरेंज रिवर उपनिवेशके द्वार भारतीयोंके लिए बिलकुल खुले होने चाहिए। परन्तु हम सब इस मामलेमें घबराये हुए हैं कि क्या होगा, क्या नहीं।

यह बतानेके लिए कि दक्षिण आफ्रिकाके लोग किस हदतक बढ़नेको तैयार होंगे, एक साल पहले उमतली, रोडेशिया, में जो-कुछ हुआ था[1] . . . ।

[अपूर्ण]

[अंग्रेजीसे]

साबरमती संग्रहालय, एस० एन० ३७४३।

## १०३. पत्र : उपनिवेश-सचिवको

१४, मर्क्युरी लेन
डर्बन
अक्तूबर २६, १९००

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

श्रीमन्,

मैं आदरपूर्वक पूछना चाहता हूँ कि भारतीयोंको सम्राज्ञी-सरकारकी जमीन बेचनेपर कोई प्रतिबन्ध है या नहीं।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पीटरमैरित्सबर्ग आर्काइव्ज, सी० एस० ओ०, ८६५८/१९००।

## १०४. पत्र : उपनिवेश-सचिवको

१४, मर्क्युरी लेन
डर्बन
नवम्बर ८, १९००

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

श्रीमन्,

मेरे पिछले महीनेकी २६ तारीखके पत्रके उत्तरमें आपका ७ तारीखका कृपापत्र प्राप्त हुआ। मैंने आपसे पूछा था कि भारतीयोंको सम्राज्ञी-सरकारकी जमीन बेचनेपर कोई प्रतिबन्ध है या नहीं, और आपने जो पूरा-पूरा उत्तर देनेकी कृपा की है तथा साथमें जो कागजात भेजे हैं उनके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ।

१. देखिए "रोडेशियाके भारतीय व्यापारी," मार्च ११, १८९९।

मुझे पता चला है कि पोर्ट शेप्स्टनके श्री जान मुहम्मदने वहींके श्री बार्नेज़से मई १८९८ में ४५ नम्बरकी मकानकी जमीन खरीदी थी। इसकी विज्ञप्तियाँ तैयार करके उनपर हस्ताक्षर भी कर दिये गये थे। मुझे यह भी बताया गया है कि जब विज्ञप्तियाँ बड़े पैमाइश-अफसरके दफ्तरमें ले जाई गईं, उस अफसरने हस्तान्तरणको दर्ज करनेसे इनकार कर दिया। मालूम होता है कि विज्ञप्तियोंको दफ्तरमें श्री पिचर ले गये थे। उनसे पूछ-ताछ करनेपर मुझे पता चला है कि उक्त अफसरने अपनी इनकारीका कारण यह बताया था कि जिसको जमीन दी जा रही है वह व्यक्ति एक भारतीय है। और आगे पूछनेपर कि क्या बड़े पैमाइश-अफसरने अपने फैसलेका कोई कानूनी आधार बताया था, श्री पिचरने मुझसे कहा कि उसने बताया था, वह सरकारी आदेशोंके अनुसार कार्रवाई कर रहा है।

उपर्युक्त जानकारी आपके पत्रमें निहित जानकारीके विरुद्ध दिखलाई पड़ती है।

क्या मैं जान सकता हूँ कि इस खास मामलेके सम्बन्धमें क्या हुआ और क्या सरकार बड़े पैमाइश-अफसरको कृपा कर यह आदेश भेज देगी कि वह हस्तान्तरणको दर्ज कर ले? मुझे बताया गया है कि मेरा मुअक्किल जमीनकी कीमतका कुछ हिस्सा पहले ही श्री बार्नेज़को दे चुका है।

आपका आज्ञाकारी सेवक,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पीटरमैरित्सबर्ग आर्काइव्ज़, सी० एस० ओ०, ८६५८/१९००।

## १०५. तार: गवर्नरके सचिवको

[डर्बन]

नवम्बर ३०, १९००

सेवामें

परमश्रेष्ठ गवर्नरके निजी-सचिव

पीटरमैरित्सबर्ग

लॉर्ड रॉबर्ट्सके डर्बन आने पर ब्रिटिश भारतीय उन्हें एक नम्र अभिनन्दनपत्र देना चाहते हैं। क्या मैं परमश्रेष्ठ गवर्नर महोदयसे निवेदन कर सकता हूँ, वे लॉर्ड महोदयसे पता कर दें कि वे अभिनन्दनपत्र स्वीकार करनेकी कृपा करेंगे या नहीं। यदि करेंगे तो कृपया समय और स्थान नियत कर दें।

गांधी

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३५४२) से।

## १०६. तार: "गुल[1]"

[डर्बन]
दिसम्बर ६, १९००

सेवामें
गुल
केपटाउन

केपके भारतीयोंकी ओरसे लॉर्ड रॉबर्ट्सको अभिनन्दनपत्र दें। उनके पुत्रकी मृत्युका जिक्र नहीं करना चाहिए। दक्षिण आफ्रिकामें उनके शानदार कामों पर उन्हें बधाई दें। राजनीतिकी कोई चर्चा न हो।

गांधी

नकल: अलीको
मारफत डर्बन रोड
मोब्रे

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३५५१) से।

## १०७. भाषण: भारतीय विद्यालयमें

डर्बनके उच्चतर श्रेणी (हायर ग्रेड) भारतीय विद्यालयके मध्य ग्रीष्मावकाश समारोहका पत्रोंमें छपा संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है।

दिसम्बर २१, १९००

प्रधानाध्यापकके कार्यके बारेमें बोलते हुए श्री गांधीने कहा कि अच्छीसे अच्छी संस्था भी निकम्मी हो सकती है, अगर उसे जीवन देनेवाले कोई व्यक्ति न हों। उच्चतर श्रेणी (हायर ग्रेड) भारतीय स्कूल इस बातका अच्छा उदाहरण है। भारतीय पालकोंको चाहिए कि वे सरकारको धन्यवाद दें, उसने उनके स्कूलके लिए श्री कोनोली जैसे प्रधानाध्यापकको भेजा, जिन्होंने स्कूलको अपना लिया। उनके इस महान् कार्यमें श्रीमती कोनोलीने भी उनकी मदद की है, और श्री कोनोलीके भाईने भी, जो हाल ही में इंग्लैण्डसे आये हैं, कृपापूर्वक अपनी वाणीकी सेवा स्कूलको सौंप दी है। श्री कोनोली और उनके साथी जिस लगन और उत्साहके साथ अपना काम कर रहे हैं उसके लिए सचमुच भारतीय समाज उनका आभारी है। स्कूलका अपना खेलका मैदान नहीं है। इसको लक्ष्य करते हुए श्री गांधीने कहा कि सिंगल और डबल बारकी टूटदार तथा हटाने-सरकाने लायक जोड़ी और डम्बल जोड़ियाँ बहुत कम खर्चमें मिल सकती हैं। इनसे कुछ अंशोंमें खेलके मैदानकी कमी पूरी हो जायेगी। श्री पॉलने माता-पिताओंको अपने ही बच्चोंके लिए खोले गये स्कूलका फायदा उठानेकी जो प्रेरणा दी है, उसका श्रेय उन्हें दिये बिना रहा नहीं जा सकता।

[अंग्रेजीसे]
*नेटाल ऐडवर्टाइज़र*, २२-१२-१९००

१. हामिद गुल, केपटाउनके एक प्रमुख भारतीय।

# १०८. प्रार्थनापत्र : नेटालके गवर्नरको

डर्बन
दिसम्बर २४, १९०० के पूर्व

सेवामें
परमश्रेष्ठ, माननीय
सर वाल्टर फ्रान्सिस हेली-हचिन्सन
सेंट माइकेल और सेंट जॉर्जके परम प्रतिष्ठित संघके नाइट
ग्रैंडक्रॉस, गवर्नर, प्रधान सेनापति तथा उपनौ-सेनापति, नेटाल
और देशी आबादीके सर्वोच्च अधिकारी

डर्बनवासी ब्रिटिश भारतीयोंके निम्नहस्ताक्षरकर्ता प्रतिनिधियोंका नम्र प्रार्थनापत्र

नम्र निवेदन है कि,

प्रार्थी परमश्रेष्ठका ध्यान संलग्न उपनियमकी ओर आकृष्ट करना चाहते हैं। इसे हाल ही में नगर-परिषदने स्वीकार किया है और परमश्रेष्ठने अनुमति प्रदान की है।

जब उक्त उपनियम प्रकाशित करनेका विचार किया जा रहा था उस समय भारतीय, जो आम तौरसे रिक्शोंका उपयोग करते हैं, भयभीत हो उठे थे। परन्तु उस समय यह आशा की गई थी कि उस उपनियमका प्रयोग बिना भेदके सब गैर-यूरोपीयोंपर नहीं किया जायेगा।

आपके प्रार्थियोंने सोचा था कि अगर यूरोपीय समाजके लोग नहीं चाहते कि भारतीय उन्हीं रिक्शोंपर बैठें, जिनपर यूरोपीय बैठते हैं, तो जबतक काफी संख्यामें ऐसे रिक्शे बाकी हैं, जिन्हें किसी खास समाजके लिए बैठनेके लिए अलग नहीं कर दिया गया, तबतक भारतीय, अपने स्वाभिमानके अनुरूप, ऐसे रुखपर आपत्ति नहीं कर सकते।

परन्तु अभी उपनियमको अमलमें लाये जाते थोड़ा ही समय हुआ है; और इतनेमें व्यावहारिक रूपमें यह देखा गया है कि "सिर्फ यूरोपीयोंके लिए" की तख्तीके बिना कोई रिक्शा पाना बहुत कठिन है। कुछ समयतक — और सिर्फ कुछ ही समयतक — कोई खास कठिनाई महसूस नहीं की गई थी, क्योंकि उक्त तख्तीके बिना बहुत-से रिक्शे थे और जो रिक्शेवाले साफ कपड़े पहने हुए लोगोंको ले जाते थे उन्हें पुलिस बेकार छेड़ती नहीं थी। परन्तु, बादमें नगर-परिषदने पुलिसको निश्चित निर्देश दिये कि उक्त उपनियमका पालन सख्तीसे होना चाहिए। इससे स्थिति शीघ्र ही बदल गई और नतीजा यह हुआ कि बहुत बड़ी संख्यामें ऐसे भारतीय, जिन्हे प्रार्थी स्वच्छ वस्त्रधारी कहनेकी धृष्टता करते हैं, अकस्मात् उपर्युक्त सवारियोंके उपयोगसे वंचित हो गये और यह उनके लिए बहुत असुविधा और सन्तापका कारण बना।

नगर-परिषदसे इस बारेमें फरियाद की गई। उद्देश्य यह नहीं था कि उक्त उपनियमको रद करा दिया जाये, बल्कि यह था कि उसका अमल ऐसे ढंगसे कराया जाये, जिससे कि भारतीय लोग रिक्शोंके उपयोगसे सर्वथा वंचित न हों।[1]

परन्तु नगर-परिषदने वह प्रार्थना मंजूर करनेसे इनकार कर दिया है।

प्रार्थियोंका निवेदन है कि उक्त उपनियम १८७२ के कानून नं० १९ के खण्ड ७५ के अनुसार अवैध है, क्योंकि वह ब्रिटिश संविधान और उपनिवेशके कानूनोंकी सामान्य भावनाके खिलाफ है।

१. देखिए "पत्र: टाउन क्लार्कको," सितम्बर २४, १९०० ।

इन आधारोंपर हमारी प्रार्थना है कि उक्त नियमको रद कर दिया जाये या उसमें ऐसा संशोधन कर दिया जाये जिससे कि जिन असुविधाओंकी शिकायत की गई है, वे उससे न हों।

और न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए आपके प्रार्थी सदैव दुआ करेंगे, आदि आदि।

एम० सी० कमरुद्दीन ऐंड कम्पनी
और पच्चीस अन्य

[अंग्रेजीसे]

डर्बन टाउन कौन्सिल रेकर्ड्स, १९०१।

## १०९. पत्र : प्रवासी-संरक्षकको

डर्बन, नेटाल
जनवरी १६, १९०१

प्रवासी-संरक्षक
डर्बन

महोदय,

चेल्लागाडु और विल्किन्सन[1]

यह मामला पुनर्विचारके लिए सर्वोच्च न्यायालयके सामने प्रस्तुत हुआ था। न्यायालयने निर्णय किया कि किसी मजिस्ट्रेटके निर्णयके विरुद्ध अपील करनेपर दौरा अदालत (सर्किट कोर्ट) के न्यायाधीशने जो निर्णय किया हो उसपर पुनर्विचार करनेका इस (सर्वोच्च) न्यायालयको अधिकार नहीं है।

इससे तबादलेके सम्बन्धमें कानूनकी व्याख्याका प्रश्न वहीं अटक गया है, जहाँ न्यायाधीश व्यूमॉटने उसे छोड़ा था। इस मामलेको लेकर जब मैं आपकी सेवामें उपस्थित हुआ था तब आपने यह वचन देनेकी कृपा की थी कि यदि सर्वोच्च न्यायालयने यह निर्णय किया कि उसे इसपर विचार करनेका अधिकार नहीं है तो आप गवर्नरसे सजाको माफ कर देनेकी सिफारिश करेंगे। यह एक ऐसा तथ्य है, जो स्वयं प्रकट करता है कि न्यायाधीश व्यूमॉटका निर्णय ठीक नहीं है।

इसलिए, अब मैं इस मामलेको आपपर ही छोड़कर, इसके कागज-पत्र इसके साथ नत्थी कर रहा हूँ।

आपका, आदि,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

नेटालके गवर्नर द्वारा, १९ फरवरी, १९०१ को सम्राटके मुख्य उपनिवेश-मन्त्रीके नाम भेजे गये खरीता नं० ४९ का सहपत्र।

कलोनियल ऑफ़िस रेकर्ड्स, साउथ आफ्रिका, जनरल, १९०१।

१. चेल्लागाडु नामके एक गिरमिटिया भारतीयको विल्किन्सन नामक व्यक्तिकी चीनीकी आढ़तमें काममें लापरवाही करनेके अभियोगमें १ पौंड जुर्माने या, जुर्माना न देनेपर, कैदकी सजा दी गई थी। चूँकि चेल्लागाडुके मालिकने विल्किन्सनके पास उसका तबादला कर दिया था, गांधीजीने यह दलील पेश की कि किसी भी गिरमिटिया भारतीयका तबादला प्रवासी-संरक्षककी अनुमतिसे ही किया जा सकता है। दौरा अदालत (सर्किट कोर्ट) के न्यायाधीशने उनकी यह दलील अस्वीकार कर दी और सजा बहाल रखी।

## ११०. महारानी विक्टोरियाकी मृत्यु

[डर्बन]
जनवरी २३, १९०१

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

नेटालकी भारतीय कांग्रेस-समितिने मुझे आपसे निवेदन करनेका निर्देश दिया है कि आप उसका निम्नलिखित सन्देश तार द्वारा राज-परिवारको भेज दें: "नेटालके ब्रिटिश भारतीय राज-परिवारके प्रति उसके शोकमें अपनी विनम्र समवेदना प्रकट करते हैं, और पृथ्वीकी महानतम तथा सबसे अधिक प्रिय सम्राज्ञीकी मृत्युके रूपमें साम्राज्यकी जो क्षति हुई है उसपर शोक मनानेमें सम्राज्ञीकी दूसरी सन्तानोंके साथ शामिल हैं।"

गांधी

[अंग्रेजीसे]

पीटरमैरित्सबर्ग आर्काइव्ज, सी० एस० ओ०, १०७१/१९०१।

## १११. महारानीकी मृत्युपर शोक

[डर्बन]
फरवरी १, १९०१

सेवामें
हाजी जमालखाँ
डंडी

आपका पत्र। हम शनिवारको सुबह महारानीकी प्रतिमापर फूल-माला चढ़ानेके लिए एक विराट जुलूस ले जा रहे हैं[1]। कृपया वहाँ भी कुछ ऐसा ही करें, जैसे कि स्मृतिमें प्रार्थना। ध्यान रहे, सारा कारोबार बन्द रहना चाहिए।

गांधी

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३७९६) से।

१. गांधीजी तथा नाजर जुलूसका नेतृत्व कर रहे थे। वे ही अपने कन्धोंपर फूल-माला लिये थे।

## ११२. महारानीकी मृत्युपर शोक

[डर्बन]
फरवरी १, १९०१

सेवामें

(१) अमद भायाद
(२) गॉडफ्रे, अमगेनी न्यायालय
(३) स्टीफन, सर्वोच्च न्यायालय
पीटरमैरित्सबर्ग

हम कोशिश कर रहे हैं, महारानीकी प्रतिमापर पुष्प-माला चढ़ानेके लिए शनिवारको सवेरे भारतीयोंका एक भारी जुलूस ग्रे स्ट्रीटसे निकाला जाये। कृपया वहाँ भी कुछ ऐसा ही करें। ध्यान रहे, कल सारा कारोबार बिलकुल बन्द रहना चाहिए।

गांधी

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३७६७) से।

## ११३. महारानी विक्टोरियाको श्रद्धांजलि

डर्बनमें फूल-माला चढ़ानेके अवसरपर गांधीजीने एक भाषण दिया था। निम्न सारांश समाचारपत्रोंमें प्रकाशित उसके संक्षिप्त विवरणके आधारपर दिया जा रहा है।

[फरवरी २, १९०१]

श्री मो० क० गांधीने स्वर्गीया महारानीके उदात्त गुणोंका बखान किया। उन्होंने १८५८ की भारतीय घोषणा तथा भारतीय कार्योंमें महारानीकी गहरी दिलचस्पीका जिक्र किया और बताया कि किस प्रकार बुढ़ापेमें उन्होंने हिन्दुस्तानी भाषाका अध्ययन प्रारम्भ किया था और यद्यपि वे अपनी प्यारी प्रजासे मिलनेके लिए स्वयं भारत नहीं जा सकीं, फिर भी, किस प्रकार उन्होंने अपना प्रतिनिधित्व करनेके लिए अपने पुत्रों तथा पौत्रोंको वहाँ भेजा था।

[अंग्रेजीसे]
*नेटाल ऐडवर्टाइज़र*, ४–२–१९०१

## ११४. तार: तैयबको[1]

[डर्बन]
फरवरी ५, १९०१

सेवामें
तैयब
मारफत गुल
केपटाउन

आपका तार। चार नाम[2] हैं—कमरुद्दीनवाले अब्दुल गनी, हाजी हबीब, सलीम (हलीम?) मुहम्मद और अब्दुल रहमान। अब्दुल हक साहबवाले शम्शुद्दीनके लिए भी कोशिश करें। हाजी हबीब प्रिटोरिया और दूसरे जोहानिसबर्ग जाना चाहते हैं। उत्तर दें।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

साबरमती संग्रहालय, एस० एन० ३७७०।

## ११५. तार: तैयबको

[डर्बन]
फरवरी ६, १९०१

सेवामें
तैयब
मारफत गुल
केपटाउन

सम्भव हो तो कृपा कर करोड़ियाके लिए भी कोशिश करें।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

साबरमती संग्रहालय, एस० एन० ३७७१।

१. केपटाउनके एक प्रमुख भारतीय।
२. ये उन भारतीय व्यापारियोंके नाम हैं जिनकी ट्रान्सवालमें बहुत सम्पत्ति थी और जो बोअर-युद्धके समाप्त हो जानेपर वहाँ लौटना चाहते थे।

## ११६. तार: तैयबको

[डर्बन]
फरवरी ९, १९०१

सेवामें
तैयब
मारफत गुल
केपटाउन

केन्द्रीय समितिको जोहानिसबर्ग व प्रिटोरियाकी भारतीय दूकानों और सम्पत्तिकी जानकारी चाहिए। क्या आपको कुछ जानकारी है? है, तो ठीक-ठीक बताइए क्या है। दूकानदारोंकी संख्या और उनकी सम्पत्तिके बारेमें अपना अन्दाज भी बताइए। आपसे नाम माँगनेवाले अफ़सरका नाम सूचित कीजिए।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

साबरमती संग्रहालय, एस० एन० ३७७३।

## ११७. अकाल-निधि[1]

१४, मर्क्युरी लेन
डर्बन
फरवरी १६, १९०१

प्रिय महोदय,

उपनिवेशमें संगृहीत अकाल-निधिको अब चूँकि बन्द कर दिया गया है, इसलिए शायद आपको यह बता देना अच्छा होगा कि इसका प्रारम्भ कैसे हुआ था। जब यहाँके भारतीय समाजमें इस बातको लेकर हलचल मच रही थी कि दक्षिण आफ्रिकामें वर्तमान स्थितियोंके बावजूद सन् १८९७ की भाँति प्रयत्न करना सम्भव होगा या नहीं, तभी वाइसरायका लन्दनके मेयरके नाम और अधिक सहायताकी माँगका पत्र स्थानीय समाचारपत्रोंमें प्रकाशित हुआ। और लगभग उसी समय नेटालके कलकत्ता-स्थित एजेंटने भारतीय प्रवासियोंके संरक्षकसे यह प्रार्थना की कि वे गिरमिटिया भारतीयोंसे चन्दा इकट्ठा करें। इससे हम सजग हुए और भारतीय समाजकी ओरसे परमश्रेष्ठ गवर्नरके पास पहुँचे ताकि उनका संरक्षण प्राप्त हो। उन्होंने बड़ी खुशीके साथ इस प्रकार निर्मित निधिका संरक्षक बनना स्वीकार कर लिया और २० पौंड चन्दा देकर चन्दा-सूचीमें सर्वप्रथम अपना नाम लिखानेका वादा किया। नेटालके भूतपूर्व

१. यह पत्र १५-३-१९०१ के *इंडिया* तथा १६-३-१९०१ के गुजराती पत्र *मुंबई समाचार*में छपा था, और आम तौरपर सभी पत्रोंको भेजा गया था।

प्रधानमंत्री सर जॉन रॉबिन्सन और महान्यायवादी (अटर्नी जनरल) माननीय हेनरी बेन्सने इस आन्दोलनका बहुत सरगरमीसे समर्थन किया। एक मजबूत केन्द्रीय समिति गठित की गई जिनके अध्यक्ष डर्बनके मेयर और अवैतनिक कोषाध्यक्ष प्रवासी-संरक्षक थे। समाचारपत्रोंमें धनके लिए अपील की गई और समाचारपत्रोंने भी बहुत सहायता की। एक स्थानीय चित्रकारने वास्तविकताको लेकर एक व्यंग चित्र बनाया, जिसे नेटाल मर्क्युरीने विशेष रूपसे छापना स्वीकार किया। *टाइम्स ऑफ़ इंडिया*के उत्कृष्ट चित्रमय स्तम्भोंका भी उपयोग किया गया। फलस्वरूप लगभग ५,००० पौंड इकट्ठे हुए, जिनमें से लगभग ३,००० पौंड यूरोपीयों ने, १,००० पौंड भारतीयोंने और ३०० पौंड वतनी लोगोंने दिये। समितिके सदस्योंके अलावा विभिन्न विभागोंके मजिस्ट्रेटों, स्थानिक निकायोंके अध्यक्षों, पादरियों और भारतीय कार्यकर्ताओंकी टोलीने चन्दा इकट्ठा करनेमें एक-दूसरेसे खूब होड़ की। श्रीमती रॉबिन्सनने भी अपने मित्रोंके सहयोगसे अमूल्य सहायता प्रदान की। उस समय सब रंग-विद्वेष भुला दिया गया और इस मामलेमें सामाजिक चरित्रके सर्वोत्तम संस्कारोंका लाभ उठाया गया। सन् १८९७ में अकाल-निधिमें यूरोपीयोंका भाग २०० पौंडसे अधिक था और भारतीयोंका लगभग १,२०० पौंड। उस समय यूरोपीयोंमें धनसंग्रह करनेके लिए कोई संगठन नही बनाया गया था।

वाइसरायने नेटालकी दानशीलता बहुत ही उपयुक्त शब्दोंमें स्वीकार की है।

आपका सच्चा,

मो० क० गांधी

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३७७७) से।

## ११८. तार : उपनिवेश-सचिवको

डर्बन

मार्च ७, १९०१

सेवामें

श्री सी० बर्ड

स्वर्गीय श्री एडनवाला, सी० आई० ई० के पुत्र श्री के० सी० दिनशा, एडमिरल्टी एजेंट, लोरेंसो माक्विस, एक पखवारा पूर्व डर्बनसे केपटाउन गये थे। वे अब स्काट जहाज द्वारा लौट आये हैं। परन्तु रंगदार यात्री होनेके कारण उतरनेसे रोके जा रहे हैं। श्री दिनशाके पास केपके पोर्ट-अफसरका प्रमाणपत्र है। डॉ० फर्नेंडर कहते है, उन्होंने सरकारसे पत्र-व्यवहार किया है। क्या मैं आपसे मांग कर सकता हूँ कि श्री दिनशाके उतरनेकी इजाजत तार द्वारा भेज दें? मामला बहुत जल्दीका है, अतः समय बचानेके लिए मैं आपको व्यक्तिगत रूपसे तार दे रहा हूँ।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

पीटरमैरित्सबर्ग आर्काइव्ज, सी० एस० ओ०, १९२९/१९०१।

## ११९. तार : उपनिवेश-सचिवको

[डर्बन
मार्च ८, १९०१]

सेवामें

माननीय उपनिवेश-सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

आपके आजके तारके लिए जिसके द्वारा आपने उसमें बताई शर्तोंपर श्री दिनशाके उतरनेकी इजाजत दी है, आपको धन्यवाद देता हूँ।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

पीटरमैरित्सबर्ग आर्काइव्ज़, सी० एस० ओ०, १९२९/१९०१।

## १२०. भारतीय विद्यालयोंके मुखियोंको
### (परिपत्र)

डर्बन
मार्च १९, १९०१

प्रियवर,

आप जानते हैं कि श्री रसेलने नगर-भवनमें भारतीय बच्चोंके सामने हमारी प्रिय, स्वर्गीया सम्राज्ञी कैसरे-हिन्दके शासनपर एक भाषण दिया था, और भारतीय जनताकी ओरसे बच्चोंको एक स्मृति-चिह्न[1] भेंट किया गया था। समितिका विचार है कि जो भारतीय बच्चे उत्सवमें सम्मिलित नहीं हो सके थे उनको भी यह स्मृति-चिह्न दिया जाये। वह सँभालकर रखने योग्य है; इसलिए मेरा सुझाव है कि उसकी एक प्रति मढ़ाकर स्कूलके कमरेमें टाँग दी जाये; और प्रत्येक विद्यार्थीको प्रेरित किया जाये कि यदि वह खर्च उठा सके तो उसे मढ़ाकर, और यदि ऐसा न कर सके तो, किसी अच्छेसे गत्तेपर चिपकाकर, उसे अपने कमरेमें टाँगे।

कृपया मुझे बतलाइए कि आपके स्कूलमें कितने विद्यार्थी हैं; जिससे कि मैं स्मृति-चिह्नकी उतनी प्रतियाँ आपको भेज दूँ।

यदि आप स्थानीय दूकानदारोंको इस बातके लिए तैयार कर सकें कि वे इस चिह्नको सुन्दर चौखटेमें मढ़वाकर अपनी दूकानमें सजाकर लटका देंगे, तो आपको इसकी कुछ अधिक

१. इस स्मृति-चिह्नमें रानी विक्टोरियाका चित्र देकर उसके ऊपर भारतीय जनताके नाम उनकी १८५८की घोषणाका एक उद्धरण दिया गया था; और नीचे, भारतके साथ उनके सम्बन्धकी ६ ऐतिहासिक तारीखें दी गई थीं। साथ ही, १९०१ के भारतका मानचित्र देकर दिखलाया गया था कि सारे देशपर ब्रिटेनका राज है। जब विक्टोरिया १२ वर्षकी थीं और उन्हें बताया गया था कि भविष्यमें आप इंग्लैंडकी रानी बनेंगी, तब उन्होंने कहा था: "मैं अच्छी रानी बनूँगी।" यह बात भी चित्रमें दिखलायी गयी थी।

प्रतियाँ भी भेजी जा सकती हैं। परन्तु हमारे पास प्रतियाँ सीमित संख्यामें ही हैं। इसलिए कृपाकर ठीक उतनी ही प्रतियाँ मँगवाइये, जितनीकी आपको आवश्यकता हो।

मेरा सुझाव तो यह भी है कि आपको श्री रसेलका भाषण ध्यानसे पढ़कर, उसे अपने विद्यार्थियोंको समझा देना चाहिए, जिससे उन्हें इस चिर-स्मरणीय शासनका अच्छा परिचय हो जाये।

आपका विश्वासपात्र,
**मो० क० गांधी**

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३७८९) से।

## १२१. तार : उच्चायुक्तको

[डर्बन]
मार्च २५, १९०२

सेवामें
परमश्रेष्ठ उच्चायुक्तके निजी सचिव
जोहानिसबर्ग

कुछ ब्रिटिश भारतीय, जो इस समय प्रिटोरिया और जोहानिसबर्गमें हैं, भारतीय शरणार्थी-समितिको लिखते हैं कि उनको विशेष बस्तियोंमें चले जानेके नोटिस मिले हैं; उनको पैदल-पटरियोंपर चलनेकी अनुमति नहीं है और प्रायः पिछले गणराज्यके भारतीय-विरोधी कानून कड़ाईके साथ अमलमें लाये जा रहे हैं। मुझसे अनुरोध किया गया है, मैं आदरपूर्वक परमश्रेष्ठ उच्चायुक्तका ध्यान इस ओर आकर्षित करूँ कि सम्राटकी सरकारने स्वीकार किया है कि ऐसे कानून आपत्तिजनक हैं और वक्तव्य दिया है कि वह इनको रद करानेका प्रयत्न करेगी। प्रतीत होता है, पुराने शासनमें ये कानून अबकी भाँति कभी भी लागू नहीं किये गये थे। जबतक इनके सम्बन्धमें अन्तिम निर्णय न हो तबतकके लिए समिति राहतकी प्रार्थना करती है।

गांधी

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३७९२) से।

# १२२. तार : परवानोंके बारेमें

[डर्बन]
मार्च २५, १९०१

सेवामें
परवाना[1]
केपटाउन

आपका २१ तारीखका तार। कल शरणार्थियोंकी भारी सभा हुई थी। उसमें परवाने पानेके लिए इन व्यक्तियोंको नामजद किया गया : मुहम्मद कासिम कमरुद्दीन ऐंड कम्पनीके श्री अब्दुलगनी, जोहानिसबर्गके श्री एम० एस० कबाड़िया, प्रिटोरियाके श्री हाजी हबीब हाजी दादा, पॉचिफ़स्ट्रूमके श्री अब्दुल रहमान। सभाकी नम्र रायमें, विशाल हितोंको खतरेमें देखते हुए, कमसे-कम इतने लोगोंको तो परवाने मिलने ही चाहिए। सभा एक परवानेको बहुत कम मानती है। चार परवाने देना असम्भव हो तो उपर्युक्त प्रतिनिधि श्री अब्दुलगनीको सबसे पहले जानेको नियुक्त करते हैं।

मुझसे अनुरोध किया गया है कि मैं निवेदन कर दूं, सैकड़ों अन्य शरणार्थियोंको परवाने मिल गये हैं और अब प्रिटोरिया तथा जोहानिसबर्गकी लगभग सभी यूरोपीय दूकानें खुल गई हैं। यह देखते हुए, भारतीयोंको बहुत बुरा लगा है कि उन्हें उनके परवानोंका उचित भाग नहीं मिला। और चार परवानोंसे भी उनकी जरूरत पूरी नहीं होगी। परन्तु यदि परमश्रेष्ठ चार परवानोंके बारेमें भी सभाकी प्रार्थना स्वीकार कर सकें तो इस उपकारकी बहुत कद्र की जायेगी।

गांधी

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३७९३) से।

१. केपटाउन-स्थित उच्चायुक्तके परवाना-सचिवका सांकेतिक पता।

## १२३. पत्र : उपनिवेश-सचिवको

१४, मर्क्युरी लेन
डर्बन
मार्च ३०, १९०१

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

श्रीमन्,

मैं आपके १८ तारीखके पत्रकी प्राप्ति स्वीकार करता हूँ।

क्या मैं पूछ सकता हूँ कि श्री दिनशाके मामलेमें परमश्रेष्ठ गवर्नर महोदयने तत्सम्बन्धी कानून[1]के खण्ड १ के अन्तर्गत कोई निर्देश दिया था या स्वास्थ्य-अधिकारीने उस कानूनके खण्ड २ के अन्तर्गत अपनी जिम्मेदारीपर ही कार्रवाई की थी? और समाचारपत्रोंमें प्रकाशित इस आशयकी खबर सही है या नहीं कि, जहाज-कम्पनियोंको निर्देश दिया गया है कि वे केपटाउनसे, तथा बीचके बन्दर-स्थानोंसे, किसी एशियाई यात्रीको डर्बन आनेके लिए न लें?

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पीटरमैरित्सबर्ग आर्काइव्ज, सी० एस० ओ० १९२९/१९०१।

## १२४. पत्र : उपनिवेश-सचिवको

१४, मर्क्युरी लेन
डर्बन
मार्च ३०, १९०१

सेवामें
उपनिवेश-सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

श्रीमन्,

एक कृपालु मित्रने जनरल बुलरके खरीतेके एक अंशकी नकल मुझे भेजी है। उसमें उल्लिखित अफसरोंमें मेरा नाम भी इस परिचयके साथ शामिल है: "श्री गांधी, असिस्टेंट सुपरिटेंडेंट, इंडियन ऐम्बुलैन्स कोर।" अगर यह उद्धरण पूरा है तो, मेरे पत्र-प्रेषकके कथनानुसार, उस दलके किसी अन्य अफसरके नामका उल्लेख इस तरह नहीं किया गया। अगर यह नहीं है, और जो श्रेय दिया गया है वह असिस्टेंट सुपरिटेंडेंटके पदपर काम करनेवाले व्यक्तिको है, तो उसके अधिकारी श्री शायर हैं। दलमें सिर्फ उन्हें ही असिस्टेंट सुपरिटेंडेंटके रूपमें पहचाना जाता

१. अधिनियम नं. २६, १८९९।

था। और अगर पदका उल्लेख कोई महत्त्व न रखता हो और मैं अपना कर्तव्य पालन करनेके लिए किसी श्रेयका पात्र माना गया होऊँ, तो उसके अधिकारी बहुतांशमें डॉ० बूथ — अब, सेंट जॉन्सके डीन — और श्री शायर हैं। दलको जो सफलता मिली उसतक उसे पहुँचानेमें उन्होंने कोई प्रयत्न उठा नहीं रखा। यदि मैं उनके कामका अन्दाजा लगाने लगूँ तो [यह कहना] उनके प्रति [मेरा कर्तव्य होगा कि डॉ० बूथकी सेवाएँ — खास तौरसे चिकित्सा-अधिकारीके और आम तौरसे सलाहकार तथा मार्गदर्शकके रूपमें — अतुलनीय थीं। और, खास तौरसे अन्दरूनी व्यवस्था तथा अनुशासनके सम्बन्धमें, श्री शायरकी सेवाएँ भी वैसी ही थीं।]

क्या मैं निवेदन कर सकता हूँ कि आप इस पत्रकी बातें सैनिक अधिकारियोंकी[1] दृष्टिमें ला दें?

आपका आज्ञाकारी सेवक,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पीटरमैरित्सबर्ग आर्काइव्ज़, सी० एस० ओ० १९०१/२८८८।

## १२५. तार : परवानोंके बारेमें[2]

[डर्बन]

अप्रैल १६, १९०१

सेवामें

(१) इनकाज़
(२) पूर्व भारतीय संघ (ईस्ट इंडिया असोसिएशन)
(३) सर मंचरजी भावनगरी

लन्दन

सैकड़ों यूरोपीय स्त्री-पुरुष नागरिकोंको ट्रान्सवाल वापस जानेकी अनुमति दे दी गई है। भारतीय दूकानोंके अलावा और सभी दूकानें खुली हैं। अधिकारियोंने एक मास पूर्व हजारों भारतीय शरणार्थियोंके लिए दो परवाने देनेका वादा किया था। अभी तक एक भी दिया नहीं गया। भारी हानि उठा रहे हैं। कृपया भारतीय समिति[3]को सहायता दें।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

साबरमती संग्रहालय, एस० एन० ३८१०।

१. नेटालके कमांडिंग आफिसरने, मुख्य उपसचिवके नाम एक पत्रमें इसपर निम्नलिखित टिप्पणी की थी: "मैं सोचता हूँ कि इसका उद्देश्य श्री गांधीके स्वराष्ट्रिकोंकी प्रशंसा करना था, जिनसे यह आहत सहायक दल बना था। इसमें सन्देह नहीं कि अन्य सज्जनोंके काम भी उतने ही मूल्यवान थे, परन्तु सब नामोंको सम्मिलित करना सम्भव नहीं है।" उपनिवेश-सचिवका १६ अप्रैलका उत्तर जिसकी प्राप्ति गांधीजीने अपने १८ अप्रैलके पत्र (देखिए, अगला पृष्ठ) में स्वीकार की है, प्राप्य नहीं है।

२. इस तारकी सम्पादित नकलें बादमें १९-४-१९०१ के *इंडिया* तथा कुछ ब्रिटिश पत्रोंमें भी प्रकाशित हुई थीं।

३. भारतीय शरणार्थी-समिति।

## १२६. पत्र : उपनिवेश-सचिवको

१४, मर्क्युरी लेन
डर्बन
अप्रैल १८, १९०१

सेवामें
उपनिवेश-सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

श्रीमन्,

जनरल बुलरके खरीतेमें स्थानिक रूपसे संगठित भारतीय स्वयंसेवक दलके अधिकारियोंके विशेष उल्लेखके सम्बन्धमें मैं अपने गत ३० तारीखके पत्रके उत्तरमें आपके १६ अप्रैलके पत्रकी प्राप्ति स्वीकार करता हूँ और उसके लिए आपको धन्यवाद देता हूँ।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
**मो० क० गांधी**

[अंग्रेजीसे]

पीटरमैरित्सबर्ग आर्काइव्ज, सी० एस० ओ० १९०१/२८८८।

## १२७. एक परिपत्र[1]

डर्बन
अप्रैल २०, १९०१

श्रीमन्,

ट्रान्सवाल और ऑरेंज रिवर कालोनीमें ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थिति इतनी गंभीर है कि उसका बयान करना आवश्यक हो गया है, ताकि आप उसके विषयमें कुछ कार्रवाई कर सकें। आपको याद होगा, श्री चेम्बरलेनने हाल ही में घोषणा की थी कि भूतपूर्व दक्षिण आफ्रिकी गणराज्य और ऑरेंज फ्री स्टेटके कानूनोंको, साम्राज्य-सरकार "यथासम्भव" मंजूर कर लेगी। इसपर हमारे मनमें एकदम प्रश्न उठा कि "यथासम्भव" क्रियाविशेषणमें क्या पुरानी सरकारोंके भारतीय-विरोधी कानून भी सम्मिलित हैं। यदि वर्तमान शासन ही भविष्यकी भी कसौटी हो तो उक्त प्रश्नका उत्तर मिल चुका है, और उससे दक्षिण आफ्रिकाका प्रत्येक भारतीय अत्यन्त भयभीत है। ट्रान्सवालमें सभी भारतीय-विरोधी कानूनोंको अज्ञातपूर्व कठोरतासे लागू किया जा रहा है। पुरानी सरकारकी ढील पूर्णतः हमारे अनुकूल थी। यद्यपि बस्तियोंका कानून तब भी मौजूद था, और गाड़ियोंके नियम तथा पटरियों आदिके अनेक उपनियम भी कानूनकी किताबमें

1. यह इंग्लैंडमें भारतके चुने हुए मित्रोंको लिखा गया था। इसकी एक नकल उपनिवेश-मन्त्रीको भी भेजी गई थी। यह परिपत्र "भारतीय संवाददाताके" नामसे कुछ परिवर्तनोंके साथ २४-५-१९०१ के इंडियामें छपा था।

लिखे हुए थे, फिर भी अमलमें उनका अर्थ प्रायः कुछ नहीं था। बस्तियोंका कानून लागू करनेकी धमकी बार-बार दी जाती थी, परन्तु उसका प्रयोग सम्मानित भारतीयोंके विरुद्ध कभी नहीं किया जाता था। दूकानदारों और दूसरे लोगोंमें से थोड़ोंको — बहुत थोड़ोंको — ही पटरियों और दूसरे उपनियमोंके कारण अपमानका सामना करना पड़ता था। अब सब-कुछ बदल गया है। पुरानी सरकारके एक-एक भारतीय-विरोधी अध्यादेश (आर्डिनेन्स) को खोदकर निकाला जा रहा है और कठोर ब्रिटिश नियमशीलताके साथ, उसके शिकारोंपर लागू किया जा रहा है। जो मुट्ठीभर गरीब भारतीय युद्ध छिड़नेसे पहले ट्रान्सवाल छोड़कर नहीं जा सके थे और जो इसी कारण अब वहाँ रह गये हैं, उन्होंने इन कानूनोंको लागू करनेका विरोध किया है, परन्तु अबतक उसका फल कुछ नहीं निकला। गत २५ मार्चको उच्चायुक्त (हाई कमिश्नर) के नाम निम्न तार भेजा गया था:

परमश्रेष्ठ उच्चायुक्तके निजी सचिव: प्रिटोरिया और जोहानिसबर्गमें इस समय मौजूद कुछ ब्रिटिश भारतीयोंने भारतीय शरणार्थी समितिको लिखा है कि उन्हें बस्तियोंमें चले जानेका नोटिस मिला है; उन्हें पटरियोंपर नहीं चलने दिया जाता और पुराने गणराज्यके भारतीय-विरोधी कानूनोंका आम तौरपर कठोरतासे प्रयोग किया जाता है। मुझसे कहा गया है कि मैं परमश्रेष्ठका ध्यान सम्राट्-सरकारके द्वारा यह मान लिया जानेकी ओर आदरपूर्वक खींच दूँ कि उक्त प्रकारके कानून आपत्तिजनक हैं, और वह उन्हें हटा देनेका प्रयत्न करेगी। ये कानून अब जैसी कठोरतासे लागू किये जा रहे हैं वैसे शायद पुराने शासनमें कभी नहीं किये गये थे। समितिकी प्रार्थना है कि जबतक आम निबटारा न हो जाये तबतक रियायत की जाये।

हम इसके उत्तरकी व्यग्रतासे प्रतीक्षा कर रहे हैं। ऊपर पुराने गणराज्यके अधिकारियोंकी जिस ढीलका जिक्र किया गया है उसका एक बड़ा कारण इस प्रकारके कानूनोंके विरुद्ध उस समयके ब्रिटिश एजेंट और उपनिवेश-मन्त्री द्वारा किये हुए प्रतिवाद भी थे। भारतीय लोगोंने बस्तियोंके कानूनके विरुद्ध जो प्रार्थनापत्र दिया था उसका उत्तर श्री चेम्बरलेनने बहुत सहानुभूतिपूर्ण दिया था। उससे प्रकट होता है कि वे इसे बहुत नापसन्द करते थे और तभी चुप हुए थे जब कि वे विवश हो गये। उनके उत्तरके कुछ अंश ये हैं:

> मेरी सहानुभूति प्रार्थियोंके साथ है; इसलिए मुझे अत्यन्त खेद है कि मैं अपने सामने उपस्थित प्रार्थनापत्रका उत्तर अधिक उत्साहवर्धक नहीं दे पा रहा हूँ। मेरा विश्वास है कि वे सब शान्ति-प्रेमी, कानूनका पालन करनेवाले और पुण्यशील लोग हैं। अब तो मैं इतनी आशा ही कर सकता हूँ कि इस समय जो हालात हैं उनके होते हुए भी वे अपने निरन्तर परिश्रम, असन्दिग्ध बुद्धिमत्ता और अदम्य दृढ़तासे उन बाधाओंको पार करनेमें सफल हो जायेंगे जिनका उन्हें इस समय अपने पेशोंमें सामना करना पड़ रहा है।
>
> अन्तमें मैं इतना ही कहता हूँ कि मेरी इच्छा पंच-फैसलेका पालन ईमानदारीसे करनेकी है, और मैं चाहता हूँ कि उसके द्वारा दोनों सरकारोंके बीचके कानूनी और अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ोंका अन्त हो जाये। परन्तु उसके पश्चात् भी, मैं दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यके सामने इन व्यापारियोंकी मित्रतापूर्वक वकालत करने और शायद उस सरकारसे यह कहनेके लिए तो स्वतन्त्र रहूँगा ही कि अपने कानूनी अधिकारोंका निर्णय करा चुकनेपर क्या उसके लिए स्थितिपर नई दृष्टिसे पुनर्विचार कर लेना बुद्धिमत्ताका कार्य न होगा? और यदि वह भारतीयोंके साथ अधिक उदारतासे व्यवहार करनेका निश्चय करे और

व्यापारिक ईर्ष्याको जरा भी सहारा न दे, तो क्या यह उसके अपने नागरिकोंके लिए भी अधिक अच्छा न होगा? मेरा विश्वास है कि व्यापारिक ईर्ष्या या प्रतिस्पर्धाकी भावनाका उदय गणराज्यके शासकवर्गकी ओरसे नहीं होता।

इससे स्पष्ट है कि भारतीयोंकी कठिनाइयोंसे उपनिवेश-मन्त्री कितने क्षुब्ध हुए थे। अभीतक सब-कुछ उनके अधिकारमें है। फिर भी क्या भारतीयोंको इन तमाम निर्योग्यताओंके नीचे कराहते रहना पड़ेगा? भारतीयोंका एक शिष्टमण्डल, युद्ध छिड़नेसे कुछ ही सप्ताह पहले प्रिटोरियामें ब्रिटिश एजेंटसे मिला था। उसे उन्होंने विश्वास दिलाया था कि सिर्फ युद्धकी घोषणा छोड़कर मैं सब-कुछ करके देख चुका हूँ, बातचीत अब भी चल रही है, और यदि कहीं दुर्भाग्यवश सम्भावित युद्ध छिड़ ही गया तो आपको इस सम्बन्धमें फिर चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी। लॉर्ड लैंसडाउनने सार्वजनिक रूपसे घोषणा की है कि भारतीय-विरोधी कानून युद्धका एक प्रधान कारण है। तो क्या जिन बुराइयोंका प्रतिकार करनेके लिए युद्ध आरम्भ हुआ है उनमें से एकको ब्रिटिश झंडेकी छायामें ही जारी रखा जायेगा? अब तो उपनिवेश-कार्यालय यह बहाना भी नहीं कर सकता कि स्वशासित उपनिवेशोंपर हमारा पूरा वश नहीं है। ट्रान्सवाल और ऑरेंज रिवर कालोनीमें से किसीको भी अभी स्वशासनके अधिकार नहीं मिले।

ब्रिटिश संसदका उद्घाटन करते हुए, सम्राट्ने अपने भाषणमें विशेष रूपसे कहा है कि आगामी समझौतेके समय सरकारका एकमात्र लक्ष्य, जम्बेजी नदीके दक्षिणमें बसी हुई "गोरी जातियों" के साथ समान और वतनी जातियोंके साथ उचित व्यवहारका रहेगा। हमने सम्राट्के इस भाषणको बड़े खेद और शंकाके साथ सुना है। युद्धसे पहले यह लक्ष्य "दक्षिण आफ्रिकावासी सब सभ्य जातियोंके समान अधिकार" बतलाया जाया करता था। इसलिए यदि अब लक्ष्यमें जान-बूझकर परिवर्तन करके "गोरी जातियाँ" कर दिया गया है तो यह गम्भीर चिन्ताका विषय है।

इसके साथ हम पुराने गणतन्त्री राज्योंके उन कानूनोंका सार नत्थी कर रहे हैं, जिनका प्रभाव भारतीयोंपर पड़ता है। यह प्रश्न अति गंभीर और हमारी स्थिति अति कष्टदायक है। अत्याचारका जुआ खींचते-खींचते हम इतने थक चुके हैं कि हममें और प्रयत्न करने तकका उत्साह नहीं रहा। अब तो हम दर्दके मारे केवल कराह सकते हैं। अब इस दारुण भारसे मुक्त होनेमें हमारी मदद करना आपका काम है। हम अधिक अच्छे व्यवहारके अधिकारी बननेके लिए सब-कुछ कर चुके हैं। युद्धमें हमने उपनिवेशियोंके साथ कन्धेसे-कन्धा भिड़ाकर योग दिया है — भले ही वह कितना ही तुच्छ क्यों न हो। हमने यह सिद्ध कर दिखानेका यत्न किया है कि जहाँ हम ब्रिटिश प्रजाओंके अधिकार और विशेषाधिकार पानेके लिए उत्सुक हैं, वहाँ उनके कर्तव्योंकी ओरसे भी विमुख नहीं हैं। हमने निर्विवाद रूपसे यह भी सिद्ध कर दिया है कि दक्षिण आफ्रिकामें हमें जो तिरस्कार सहना पड़ता है उसका औचित्य प्रतिपादित करनेवाला एक भी कारण विद्यमान नहीं है।

भारतमें सार्वजनिक संस्थाएँ तथा जनताके पत्र और इंग्लैंडमें हमारे मित्र यदि मिलकर जोरोंसे प्रयत्न करें तो न्याय मिले बिना नहीं रह सकता। हमारे पक्षके न्यायसंगत होनेके बारेमें दो रायें नहीं हैं — हो नहीं सकतीं; इसलिए यह पूर्णतः सम्भव है। अवसर भी या तो अभी है या कभी नहीं होगा; क्योंकि, अनुभवसे स्पष्ट है कि, निबटारा हो जानेके बाद राहत मिलना असम्भव हो जायेगा।

आपका आज्ञाकारी सेवक,

मुहम्मद कासिम कमरुद्दीन ऐंड कं०

और उन्नीस अन्य

## कानूनोंका सारांश

भूतपूर्व दक्षिण आफ्रिकी गणराज्य और ऑरेंज फ्री स्टेटके उन कानूनोंका सारांश जो सिर्फ भारतीयोंपर असर करते हैं।

---

### *दक्षिण आफ्रिकी गणराज्य*

प्रत्येक भारतीयको ३ पौंड देकर अपनी रजिस्ट्रीका टिकट लेना होगा।

जब सरकारी अधिकारी भारतीयोंके साथ इस देशके वतनियों जैसा व्यवहार करते थे तब वे उन्हें एक शिलिंगका यात्रा-परवाना लेनेके लिए मजबूर करते थे।

रेलवेके नियम भारतीयोंको पहले या दूसरे दर्जेमें यात्रा करनेसे रोकते हैं।

कोई भी भारतीय अपने पास न तो देशी सोना रख सकता है, न सोना निकालनेका परवाना पा सकता है। (इस कानूनके कारण भारतीयोंको किसी कठिनाईका सामना नहीं करना पड़ा, क्योंकि उन्होंने सोनेका सट्टा कभी नहीं किया)।

कानून ३, १८८५ सरकारको अधिकार देता है कि वह सफाईके खयालसे भारतीयोंके निवासके लिए कुछ पृथक् बस्तियाँ तय कर सकती है। युद्धसे पहले एक बार जोहानिसबर्गके सब भारतीयोंको, नगरके मध्य-भागसे पाँच मील दूरकी एक बस्तीमें भेजनेका प्रयत्न किया गया था। यह विचार भी किया गया था कि उनके व्यापारको उसी क्षेत्रमें सीमित कर दिया जाये।

प्रिटोरियाके कुछ उपनियम भारतीयोंको प्रिटोरियामें पैदल-पटरियोंपर चलने और सार्वजनिक गाड़ियोंमें बैठनेसे रोकते हैं।

---

*ज्ञातव्य :* पूर्ण जानकारीके लिए देखिए, पत्र : ब्रिटिश एजेंटको, २१ जुलाई १८९९ तथा प्रार्थनापत्र : उपनिवेश मंत्रीको, [१६] मई, १८९९।

---

### *ऑरेंज फ्री स्टेट*

१८९० के अध्याय ३३ के अनुसार, कोई भी एशियाई (१) राज्यके अध्यक्षकी अनुमतिके बिना दो महीनेसे अधिक समयतक राज्यमें नहीं रह सकता; (२) जमीनका मालिक नहीं हो सकता; और (३) व्यापार या खेती नहीं कर सकता।

यदि उपर्युक्त प्रतिबन्धोंके साथ राज्यमें रहनेकी अनुमति मिल जाती थी तो, अध्याय ७१ के अनुसार, १० शिलिंग वार्षिकका व्यक्ति-कर देना पड़ता था।

---

*ज्ञातव्य :* पुरानी ऑरेंज फ्री स्टेटके एशियाई-विरोधी कानूनोंका पूर्ण पाठ फरवरी २४, १८९६ के सामान्य पत्रमें दिया गया है।[1]

छपी हुई मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३८१४-५) से।

१. यह पत्रक उपलब्ध नहीं है।

## १२८. अभिनन्दनपत्र : बम्बईके भूतपूर्व गवर्नरको

डर्बनके भारतीयोंने मेयरकी अध्यक्षतामें एक सत्कार-समारोह करके लॉर्ड जॉर्ज कैनिंग हैरिसको निम्न अभिनन्दनपत्र भेंट किया था। लॉर्ड हैरिस किसी समय बम्बईके गवर्नर थे और वे लंदन जाते हुए डर्बनमें ठहरे थे।

डर्बन
अप्रैल २०, १९०१

परमश्रेष्ठकी सेवामें निवेदन है,

हम, नेटालवासी ब्रिटिश भारतीयोंके निम्न-हस्ताक्षरकर्ता प्रतिनिधि, अपने बीच महानुभावका आदरपूर्वक स्वागत करते हैं। भारतके साथ और विशेषतः बम्बईके साथ महानुभावके घनिष्ठ सम्बन्धसे हम परिचित हैं; इसलिए हम महसूस करते हैं कि अगर हमने आप महानुभावके प्रति अपना आदर प्रकट करनेके अवसरका लाभ न लिया होता, तो हम अपना कर्तव्य पालन करनेमें चूक जाते। हम महानुभावके प्रति कृतज्ञता अनुभव करते हैं कि आपने इतने थोड़े समयकी सूचना पानेपर भी कृपापूर्वक हमसे मिलना मंजूर किया और हमें अपनी प्रिय कैसरे-हिन्दके भूतपूर्व भारत-स्थित प्रतिनिधिके प्रति अपना आदर-भाव सिद्ध करनेका अवसर दिया।

हम कामना करते हैं कि महानुभावकी यात्रा सुखद हो और आप हमारे कृपालु महाराजाकी सेवाके लिए दीर्घ जीवन पायें। हम यह आशा करनेकी धृष्टता भी करते हैं कि आप महानुभाव इस उद्यान-उपनिवेशमें बसे हुए भारतीयोंके लिए, कुछ स्थान अपने हृदयमें सदैव रखेंगे।

विनीत,

[अंग्रेजीसे]

*नेटाल ऐडवर्टाइज़र*, २२-४-१९०१।

## १२९. भारतीय और परवाने[1]

पी० ऑ० बॉक्स १८२
डर्बन
अप्रैल २७, १९०१

प्रिय महोदय,

मैं इसके साथ उस तार[2]की एक प्रतिलिपि भेजता हूँ जो ट्रान्सवालके भारतीय शरणार्थियोंकी ओरसे आपको भेजा गया है। ट्रान्सवाल जानेके लिए परवाने पानेवाले यूरोपीयोंकी सूची दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है, किन्तु इस पत्रके लिखनेतक भारतीय शरणार्थियोंको एक भी परवाना नहीं दिया गया है। लॉर्ड रॉबर्ट्स जब दक्षिण आफ्रिकामें थे तब उनसे और उच्चायुक्तसे भी निवेदन किया गया था; किन्तु सब व्यर्थ हुआ। श्री एच० टी० ओमाने (अवसर-प्राप्त आई० सी० एस०), जो उच्चायुक्तके परवाना-सचिव नियुक्त किये गये हैं, हमारे लिए भी कुछ परवाने प्राप्त करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। गत मास उन्होंने यहाँतक किया था

१. यह पत्र उन्हीं लोगोंको लिखा गया था, जिन्हें १६-४-१९०१ का तार भेजा गया था।

२. १६ अप्रैल, १९०१ का तार।

कि तार देकर डर्बन और केपटाउनके एक-एक प्रतिनिधि-व्यापारीका नाम मँगवाया। एक नाम उसी वक्त इस विरोधके साथ उन्हें दिया गया कि एक परवाना करीब-करीब बेकार है; किन्तु वह भी मंजूर नहीं किया गया है।

मैं आशा करनेकी धृष्टता करता हूँ कि आपने इस मामलेमें कार्रवाई कर ही दी होगी और उसके फलस्वरूप आपके पास इस पत्रके पहुँचनेसे पहले कुछ राहत दे दी जायेगी।

तारकी नकल नीचे लिखे व्यक्तियोंको भेज दी गई है...।[1]

गत सप्ताह आपको भेजे गये गश्ती पत्र[2] के सिलसिलेमें मैं उन थोड़ेसे ब्रिटिश भारतीयोंके आवेदनपत्रोंपर आये उत्तरोंकी[3] प्रतिलिपि इसके साथ भेज रहा हूँ, जो इस समय प्रिटोरिया और जोहानिसबर्गमें हैं और जो लड़ाई छिड़नेसे पहले ट्रान्सवालसे नहीं जा सके थे।

आपका सच्चा,

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३८१७) से।

[संलग्नपत्र]

शाही सरकार, म्युनिसिपैल्टी
जोहानिसबर्ग
नवम्बर २४, १९००

सेवामें
श्री एन० जी० देसाई और अन्य प्रार्थी
पो० ऑ० बॉक्स ३३४८
जोहानिसबर्ग

महाशयगण,

आपका इसी माहकी २२ तारीखका पत्र मिला। आपने जिन विनियमोंका उल्लेख किया है उन्हें भूतपूर्व नगर-परिषदने मंजूर किया था; और सैनिक अधिकारियोंका यह इरादा नहीं है कि जो विनियम ब्रिटिश अधिकारकी तारीखसे पहले मौजूद थे उनमें से किसीमें परिवर्तन किया जाये।

मैं सुझाव देनेकी इजाजत लेता हूँ कि इसी प्रकारका प्रार्थनापत्र प्रथम नियुक्त नगर-परिषदको भेजा जाये।

आपका विश्वासपात्र,
(हस्ताक्षर) ओ' मियारा मेजर
स्थानापन्न नगराध्यक्ष

---

प्रिटोरिया
मार्च १५, १९०१

प्रेषक
भारतीय प्रवासी पर्यवेक्षक

सेवामें
ई० उस्मान लतीफ
पो० ऑ० बॉक्स ४४२०
जोहानिसबर्ग

मैं आपको सूचना देनेकी इजाजत लेता हूँ कि, सैनिक गवर्नरने पहले जो निर्णय दिया था कि मुसलमान और हिन्दू — सब "एशियाइयों" को जो "अभी" प्रिटोरियामें हैं, कुली-बस्तियोंमें रहना ही होगा, वह बिना

१. इस पत्रकी दफ्तरी नकलसे पता नहीं चलता कि यह किनको-किनको भेजा गया था।
२. अप्रैल २०, १९०१ का पत्र।
३. ये उत्तर, इस पत्रके उद्धरणोंके साथ, २४-५-१९०१ के *इंडिया* में प्रकाशित हुए थे।

हेर-फेरके बरकरार है। जहाँतक "बड़ा व्यापार करनेवाले" एशियाई व्यापारियोंका सम्बन्ध है, उनके शहरोंमें रहने दिये जानेके निवेदनपर विचार किया जा सकता है। परन्तु ऐसे वर्गके कोई लोग इस समय प्रिटोरियामें नहीं हैं; इसलिए यह हुक्म बरकरार है कि प्रिटोरियामें अभी मौजूद सब एशियाइयोंको पृथक् बस्तियोंमें रहना होगा। सैनिक गवर्नरने कृपाकर यह अनुमति दे दी है कि दो आदमी "मसजिद" की हिफाजत करनेके लिए उसमें रह सकते हैं। आज मैंने सब एशियाइयोंको, जो इस समय नगरमें रह रहे हैं, पृथक् बस्तीमें चले जाने और वहीं रहनेका आदेश दे दिया है।

(हस्ताक्षर) जे० ए० गिलम

## १३०. पत्र : उपनिवेश-सचिवको

१४, मर्क्युरी लेन
डर्बन
अप्रैल ३०, १९०१

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

श्रीमन्,

मैं इस सप्ताहके सरकारी *गज़ट*में प्रकाशित भारतीय प्रवासी-अधिनियम संशोधन विधेयकपर आपको लिखनेकी धृष्टता कर रहा हूँ।

विधेयकके पहले खण्डमें कहा गया है कि किसी भी भारतीय स्त्रीको १८९५ के कानूनके अनुसार जिस दरसे मजदूरी दी जायेगी वह उस कानूनमें बताई हुई दरकी आधी होगी। या फिर, ऐसी विशेष दरसे दी जायेगी, जो मालिक और उस स्त्रीके बीच तय हो जाये। मैं मानता हूँ कि सरकारका इरादा यह है कि १८९५ के कानूनमें बताई गई दरकी आधी दर कमसे-कम हो। परन्तु मेरा खयाल है कि उक्त खण्डके शब्दोंसे यह इरादा काफी स्पष्ट नहीं होता। क्या मैं सुझा सकता हूँ कि उसमें ये शब्द जोड़ दिये जायें — "परन्तु किसी भी हालतमें यह दर पूर्वोक्त दरकी आधीसे कम न होगी।"[1]

मैं आपका ध्यान इस तथ्यकी ओर खींचनेकी इजाजत लेता हूँ कि १८९१ के कानून २५ में भारतीय स्त्रीकी मजदूरी पुरुषोंकी मजदूरीसे आधी निश्चित की गई है। मुझे आशा है कि सरकार न्यूनतम दरमें कोई फर्क करना नहीं चाहती।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पीटरमैरित्सबर्ग आर्काइव्ज, सी० एस० ओ० ३४८६/१९०१।

१. सुझाव मंजूर कर लिया गया था।

## १३१. पत्र : बम्बई-सरकारको

डर्बन
मई ४, १९०१

सेवामें
माननीय आर० जे० सी० लॉर्ड
[बम्बई-सरकार
बम्बई]

[प्रिय महोदय,]

मुझसे खास अनुरोध किया गया है कि मैं संलग्न पत्र[1] आपको भेज दूं और नम्रतापूर्वक सुझाऊँ कि भारतकी विभिन्न विधानपरिषदोंमें इस बाबत कुछ कार्रवाई की जाये। प्रवासियोंकी बहुत बड़ी संख्या बम्बई, मद्रास और कलकत्तेसे दक्षिण आफ्रिकाको भेजी जाती है। इस दृष्टिसे तो कोई कारण नही है कि स्थानिक सरकारें उन निर्योग्यताओंपर विचार न करें, जिनसे ब्रिटिश भारतीय पीड़ित है। फिर भी, अगर यह संभव न हो तो वाइसरायकी परिषदमें ही कार्रवाई की जाये।

यह प्रश्न उनमें से है, जिनके बारेमें भारतीय और आंग्ल-भारतीय लोकमत एक है। और, मेरा खयाल है कि गैर-सरकारी सदस्योंकी संयुक्त कार्रवाई हमारी उद्देश्य-पूर्तिमें बहुत सहायक होगी। इसमें बहुत कम शक है कि सरकारी पक्षकी सहानुभूति हमारे साथ होगी। और लॉर्ड कर्ज़नके रूपमें हमें जो जबरदस्त और सहानुभूतिशील वाइसराय मिले है, उनके शासनमें हमारी निर्योग्यताओंकी तहमें समाये प्रश्नका अनुकूल निबटारा हुए बिना रह नहीं सकता। लंदन *टाइम्स*ने प्रश्नको इस प्रकार पेश किया है:

> **क्या ब्रिटिश भारतीयोंको, जब वे भारत छोड़ते हैं, कानूनके सामने वही दर्जा मिलना चाहिए, जिसका उपभोग अन्य ब्रिटिश प्रजाएँ करती हैं? वे एक ब्रिटिश प्रदेशसे दूसरेको स्वतंत्रतापूर्वक जा सकते हैं या नहीं, और सहयोगी राज्योंमें ब्रिटिश प्रजाके अधिकारोंका दावा कर सकते हैं या नहीं?**

जरूरत इतनी ही है कि यह प्रश्न पर्याप्त रूपमें परमश्रेष्ठकी नजरमें ला दिया जाये।

[अंग्रेजीसे]

भारतमंत्रीके नाम भारत-सरकारके खरीता नं० ३५, १९०१ का अंश।
कलोनियल ऑफ़िस रेकर्ड्स: साउथ आफ्रिका, जनरल, १९०१।

---

१. अप्रैल २०, १९०१ का परिपत्र। बम्बई-सरकारने गांधीजीका पत्र और उसके साथके कागजात भारत सरकारको भेज दिये थे, जिसने उन्हें भारतमंत्रीके पास भेज दिया। भारतमंत्रीके कार्यालयने उक्त पत्रमें एक टिप्पणी जोड़ दी। वह इस आशयकी थी कि प्रार्थनापत्रके सिलसिलेमें श्री चेम्बरलेनने उत्तर दे दिया है कि ट्रान्सवाल तथा ऑरेंज फ्री स्टेट उपनिवेशमें ब्रिटिश भारतीयोंकी मान-मर्यादाका प्रश्न लॉर्ड मिल्नरके, जब वे दक्षिण आफ्रिका लौटें, विचारके लिए छोड़ रखा गया है।

## १३२. प्रार्थनापत्र : सैनिक गवर्नरको[1]

पी० ऑ० बॉक्स ४४२०
जोहानिसबर्ग
मई ९, १९०१

सेवामें
परमश्रेष्ठ
कर्नल कॉलिन मैकेंजी
सैनिक गवर्नर
जोहानिसबर्ग

परमश्रेष्ठ ध्यान देनेकी कृपा करें,

हम, जोहानिसबर्गके भारतीय समाजके नीचे हस्ताक्षर करनेवाले सदस्य, सम्मानपूर्वक आपको बताना चाहते हैं कि *जोहानिसबर्ग गज़ट*में एक महत्त्वपूर्ण सूचना छपी है। [उसमें कहा गया है कि] सभी एशियाइयोंसे व्यवहार करनेके लिए एक भारतीय प्रवास-कार्यालय खोला गया है। उसीके जरिये इस प्रकारके सभी प्रजाजनोंको अपने परवाने बदलवाने होंगे और ऐसे सब सरकारी मामले निपटाने होंगे जिनमें वे दिलचस्पी रखते हों।

हम बताना चाहते हैं कि अबतक सम्राट्के अधिकारियोंके साथ हमारा सीधा व्यवहार किसी शिकायतके बिना चलता रहा है और हमें भय है कि इस नये परिवर्तनसे हमारे बहुतसे साथी-प्रजाजनोंमें असन्तोष उत्पन्न होगा।

हमने विदेशोंके प्रजाजनोंके परवाने बदलवानेके सम्बन्धमें कोई सूचना नहीं देखी है, इस-लिए हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि यह भेदभाव किया जा रहा है। यदि ऐसा हो तो हमें बहुत दुःख होगा।

हम सदैव वफादार रहे हैं और अबतककी भाँति सीधे साम्राज्यीय अधिकारियोंके अधीन रहना चाहते हैं, जिनके व्यवहार और दयालुताकी हम बहुत सराहना करते हैं।

हमें भरोसा है कि परमश्रेष्ठ इस मामलेपर गम्भीरतासे विचार करेंगे और हमारी विनीत प्रार्थना स्वीकार कर लेंगे।

परमश्रेष्ठके अत्यन्त विनीत और
आज्ञाकारी सेवक,

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३८२२-३) से।

१. इसी प्रकारकी अर्जी दूसरे दिन ब्रिटिश उच्चायुक्त और ट्रान्सवालके गवर्नरको भी भेजी गई थी, जिसपर उस्मान हाजी अब्दुल लतीफ तथा १२९ अन्य व्यक्तियोंके हस्ताक्षर थे।

## १३३. पत्र : ईस्ट इंडिया असोसिएशनको

पो० ऑ० बॉक्स १८२
डर्बन
मई १८, १९०१

सेवामें
अवैतनिक मन्त्री
ईस्ट इंडिया असोसिएशन
लंदन

प्रिय महोदय,

मैं यह पत्र विशेष रूपसे यह सुझानेके लिए लिख रहा हूँ कि श्री चेम्बरलेन और सर ऑल्फ्रेड मिलनरसे एक शिष्टमंडलका मिल लेना उचित होगा। यदि श्री चेम्बरलेनसे नहीं, तो भी सर ऑल्फ्रेड मिलनरसे मिल लेना तो उचित मालूम ही होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि दोनों राजनयिकोंमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मामलोंपर बातचीत होगी, और यदि सब प्रकारके विचारोंका प्रतिनिधित्व करनेवाला एक सबल शिष्टमंडल भारतीयोंका प्रश्न उनके सामने प्रस्तुत करे तो उससे हित ही होगा। उसमें सर लेपेल[1], श्री दादाभाई, सर विलियम वेडरबर्न, सर मंचरजी, सर्वश्री रमेशदत्त[2], परमेश्वरम् पिल्ले और गस्ट जैसे व्यक्ति हो सकते हैं। लॉर्ड नॉर्थब्रुक और रे से मेरी जो बातचीत होती थी उससे मेरा यह खयाल होता है कि यदि उन दोनोंमें से किसी एकसे कहा जाये तो वे प्रतिनिधिमण्डलका नेतृत्व अवश्य करेंगे। जिन तथ्योंकी आपको आवश्यकता होगी, वे सभी पहले ही भेजे जा चुके हैं।

उसी आशयके पत्र भारतीय राष्ट्रीय महासभाकी ब्रिटिश समिति आदिको भी भेजे जा रहे हैं।

आपका सच्चा,

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एम० एन० ३८२५) से।

१. सर लेपेल ग्रिफिन।
२. रमेशचन्द्र दत्त, प्रसिद्ध भारतीय हाकिम और कांग्रेसके लखनऊ अधिवेशन (१८९०) के अध्यक्ष।

## १३४. तार : अनुमतिपत्रोंके बारेमें

[डर्बन]
मई २१, १९०१

सेवामें
परमिट्स
जोहानिसबर्ग

आपका बीस तारीखका तार। और परवानोंके लिए श्री हाजी हबीब प्रिटोरिया; सर्वश्री एम० एस० कुवाडिया और आई० एम० करोडिया, जोहानिसबर्ग; श्री अब्दुल रहमान, पोचेफस्ट्रूमके नाम पेश करता हूं। दो नामोंके लिए केपटाउनको तार दे दिया है। चार नाम नेटालके शरणार्थियोंके समझे जायें, डर्बनके नहीं। अधिकतर प्रमुख शरणार्थी डर्बनमें रहते हैं। ये नाम प्रतिनिधि-रूप हैं और शरणार्थियोंकी सभामें चुने गये हैं। सादर निवेदन है, नेटालके लिए चार अनुमतिपत्र भी बहुत कम हैं।

गांधी

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३८२७) से।

## १३५. पत्र : अनुमतिपत्रोंके बारेमें

[डर्बन]
मई २१, १९०१

सेवामें
श्री एच० टी० ओमानी
अनुमतिपत्र कार्यालय
जोहानिसबर्ग

महोदय,

मुझे आपके इस मासकी २० तारीखके तारकी प्राप्ति-सूचना देनेका मान प्राप्त हुआ है। भारतीय शरणार्थी-समितिने मुझे यह भी निर्देश दिया है कि मैं तारके लिए उसकी ओरसे आपको धन्यवाद दूं।

मैं अब नेटालके लिए निम्नलिखित चार नाम पेश करनेकी इजाजत लेता हूं : हाजी हबीब हाजी दादा, प्रिटोरिया; एम० एस० कुवाडिया, जोहानिसबर्ग; आई० एम० करोडिया, जोहानिसबर्ग और अब्दुल रहमान, पोचेफस्ट्रूम। इन शरणार्थियोंमें से तीन डर्बनमें हैं और एक (श्री अ० रहमान) लेडीस्मिथमें। ये प्रतिनिधियोंके नाम हैं और इनका चुनाव भारतीय शरणार्थियोंकी एक बैठकमें किया गया है। बैठकमें अनुमतिपत्रोंके लिए जो कमसे-कम नाम निर्धारित किये गये थे वे इनसे ज्यादा थे। इसलिए, उस संख्याको चार तक घटानेके लिए पर्चियां डालनी पड़ीं। अधिकतर

भारतीय शरणार्थी डर्बनमें हैं; इसलिए मुझे आपका ध्यान इस तथ्यकी ओर आकर्षित करनेके लिए कहा गया है कि नेटालके लिए चार अनुमतिपत्र बहुत कम हैं।

केपटाउनके दो नामोंके लिए मैंने तार दे दिया है।

आपका आज्ञाकारी सेवक,

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३८२९) से।

## १३६. तार: तैयबको

[डर्बन]
मई २१, १९०१

सेवामें
तैयब
मारफत गुल
केपटाउन

अनुमतिपत्र सचिवको भेजनेके लिए कृपया बाकायदा चुने दो शरणार्थियोंके नाम भेजें।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

साबरमती संग्रहालय, एस० एन० ३८२८।

## १३७. पत्र: रेवाशंकर झवेरीको

१४, मर्क्युरी लेन
डर्बन
मई २१, १९०१

मुरब्बी भाई रेवाशंकर[1],

[कविश्री[2] के गुजर जानेकी खबर भाई मनसुखलाल[3] के पत्रसे मिली। उसके बाद अखबारमें भी वही देखा। बात मान सकों ऐसी नहीं है। मनसे बिसारते नहीं बनती। विचार करनेका भी इस देशमें थोड़ा ही अवकाश है। टेबिलपर बैठा था कि खबर पाई। पढ़कर एक मिनिट उदास हुआ। फिर तुरत आफ़िसके काममें लग गया। ऐसी यहाँकी जिन्दगी है पर जब भी जरा-सी फ़ुरसत मिलती है तब यही विचार चलता है। झूठा कहो चाहे सच्चा, मुझे उनसे बड़ा

१. रेवाशंकर जगजीवनराम झवेरी, गांधीजीके आजीवन मित्र।

२. राजचन्द्र रावजीभाई महेता या रायचन्दभाई महेता, जो कवि तथा सत्यान्वेषी सन्त थे। गांधीजीने अपनी आत्मकथामें उनपर एक अध्याय (भाग २, अध्याय १) लिखा है।

३. श्री राजचन्द्रके भाई। देखिए पादटिप्पणी २।

मोह था और उनमें मेरी भक्ति भी बहुत थी। वह सब गया। इसलिए मैं स्वार्थवश रोता हूँ। ऐसी हालतमें आपको क्या धीरज बँधाऊँ।

मोहनदासके प्रणाम

मूल गुजराती प्रति (सी० डब्ल्यू० २९३६) से।

## १३८. पत्र : उपनिवेश-सचिवको

१४, मर्क्युरी लेन
डर्बन
मई २१, १९०१

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

श्रीमन्,

कारा त्रीकम नामके एक भारतीयकी थैली, जिसमें ४० पौंड थे, ६ तारीखको वेस्ट स्ट्रीटमें दिन-दहाड़े कुछ यूरोपीयोंने लूट ली थी। उनमें से एक आदमी पकड़ लिया गया था और १० तारीखको उसका कुछ मुकदमा हुआ था। जिस आदमीपर मुकदमा चला था वह जमानतपर छोड़ा गया था और वह जमानत जब्त हो गई थी। मैंने खुफिया पुलिसके दफ्तरमें अर्जी दी थी कि जमानतकी रकममें से ४० पौंड दे दिये जायें। मुझसे कहा गया कि मैं उसके लिए सरकारको लिखूं।

अब मैं आवेदन करता हूँ कि जमानतकी रकममें से ४० पौंड मेरे मुअक्किलको दे दिये जायें। मेरे मुअक्किलके पास ४० पौंड थे, इस सम्बन्धमें जो प्रमाण मजिस्ट्रेटके सामने दर्ज किया जा चुका है, उससे ज्यादा भी किसी प्रमाणकी जरूरत हो, तो मैं सरकारके सामने पेश करनेको तैयार हूँ।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पीटरमैरित्सबर्ग आर्काइव्ज, सी० एस० ओ० ४२५८/१९०१।

## १३९. तार : तैयबको

[डर्बन]
जून १, १९०१

सेवामें
तैयब
मारफत गुल
केपटाउन

२१ तारीखका जवाब क्यों नहीं? फौरन जवाब दें।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

साबरमती संग्रहालय, एस० एन० ३८३५।

## १४०. अनुमतिपत्रोंके लिए संयुक्त कार्रवाई[1]

डर्बन, नेटाल
जून १, १९०१

महोदय,

इस सप्ताह प्राप्त पत्रोंमें यह खबर है कि श्री चेम्बरलेनने भारतीय शरणार्थियोंको ट्रान्सवाल वापसीके अनुमतिपत्रोंके सम्बन्धमें श्री केनके एक प्रश्नके उत्तरमें सूचित किया कि वे इस मामलेमें सर मंचरजीकी प्रार्थनापर सर ऑल्फ्रेड मिलनरको पहले ही तार दे चुके हैं।

इस सप्ताह प्राप्त रायटरकी खबर में कहा गया है कि श्री चेम्बरलेनने एक अन्य प्रश्नके उत्तरमें कहा कि पिछले दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यके भारतीय-विरोधी कानून तबतक जारी रहेंगे जबतक उनमें संशोधन नहीं कर दिया जाता। श्री चेम्बरलेनने यह नहीं कहा जान पड़ता कि कानून अमलमें नहीं लाये जायेंगे, क्योंकि वे पिछले प्रशासनमें अमलमें नहीं थे। इस प्रकारका कोई आश्वासन न होनेके कारण आजकी हालत पुरानी हालतसे भी बदतर होगी। मैं मानता हूँ कि इस खबरने हमें निराश किया है।

यद्यपि यहाँके कार्यकर्ताओंने अपना उत्साह और कर्त्तव्यके विचार कांग्रेस-नेताओंकी त्यागमय निष्ठासे ग्रहण किये हैं और वे कांग्रेस-आदर्शके अनुकरणमें सन्तोष मानते हैं, फिर भी उन्होंने सहायताकी माँग सभी दलोंसे की है। और उनके उद्देश्यकी न्याय्यताके सम्बन्धमें भी कोई मतभेद प्रतीत नहीं होता। यह विचार रखते हुए, हम अनुभव करते हैं कि हमारा पक्ष विभिन्न मित्रोंकी संगठित कार्रवाईके अभावसे ग्रस्त है।

१. इस पत्रकी विषय-सामग्री तथा अन्य सम्बन्धित कागजातसे ज्ञात होता है कि यह पत्र भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी ब्रिटिश समितिको लिखा गया था।

पूर्वी भारत संघ (ईस्ट इंडिया असोसिएशन) संयुक्त कार्रवाईका सुझाव पहले ही दे चुका है। इसलिए मैं सादर निवेदन करता हूँ कि यदि सभी मतोंके लोगोंका प्रतिनिधित्व करनेवाली एक छोटी-सी समिति बना दी जाये और सदा संगठित कदम उठाये जायें तो हमें बहुत-कुछ सफलता मिलेगी।

उपनिवेश-मन्त्रीके असहानुभूतिपूर्ण उत्तरसे यहाँ बुरा प्रभाव पड़ा है और भारतीयोंके प्रति विरोधको और भी प्रोत्साहन मिला है। इसलिए श्री चेम्बरलेनको या तो पत्र लिखा जाये या उनसे व्यक्तिगत भेंट की जाये। मेरी तुच्छ रायमें जानकारी प्राप्त करनेका यही एक तरीका हमारे मामलेकी परिस्थितियोंके अधिक अनुकूल पड़ता है। रायटर द्वारा तारसे भेजे गये श्री चेम्बरलेनके उपर्युक्त उत्तरसे कुछ बिगाड़ होनेका अनुमान है। उसका अर्थ यह लगाया गया है कि वे लोगोंकी चीख-पुकारके सामने झुक जायेंगे और भारतीयोंको बिलकुल त्याग देंगे।

मैं जानता हूँ कि हम जो मौकेपर मौजूद हैं, अदूरदर्शितासे ग्रस्त हैं। और इसके फलस्वरूप हो सकता है कि हम संकुचित और सीमित दृष्टि अपना लें और वहाँकी परिस्थिति या हमारी ओरसे काम करनेवाले नेताओंकी स्थितिकी ओर उचित ध्यान न दें। इसलिए यदि मेरे सुझावमें कोई ढिठाईकी बात हो तो मुझे विश्वास है कि आप कृपाकर उसकी ओर ध्यान न देंगे।

मैं इस पत्रकी एक प्रतिलिपि माननीय दादाभाई नौरोजीको भेज रहा हूँ।

आपका सच्चा,

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३८३६) से।

## १४१. एक चेकके बारेमें दफ्तरी टीप

डर्बन
जून २, [१९०१]

यह चेक कांग्रेसके प्रस्तावकी रूसे दिया गया है। प्रस्ताव यह था कि श्री डनकी शालाके लिए चन्दा किया जाये और अगर चन्देसे पूरा न पड़े तो कांग्रेस, शेख फरीदकी जायदाद लेनेके बाद, जो पैसा बचे वह श्री डनको दे दे। चंदा अब बढ़ेगा, ऐसा नहीं लगता। इसलिए चेक दे देनेकी जरूरत मालूम होती है। सो, आजके दिन चेक काटा है।

प्रस्ताव, २३ नवम्बर, १९००।

मो० क० गांधी

मूल गुजराती प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३८३७) से।

## १४२. तार : अनुमति-पत्रोंके बारेमें

[डर्बन]
जून १४, १९०१

सेवामें
कमरुद्दीन
बॉक्स २९९
जोहानिसबर्ग

अनुमति-पत्र नही आये। जाँच करें।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

साबरमती संग्रहालय, एस० एन० ३८४७।

## १४३. तार : अनुमति-पत्रोंके बारेमें

[डर्बन]
जून २०, १९०१

सेवामें
डगलस फॉर्स्टर
रैंडक्लब
जोहानिसबर्ग

कृपया पूछताछ कीजिए, वादा किये अनुमति-पत्र अबतक नहीं आये — नाजर।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

साबरमती संग्रहालय, एस० एन० ३८४९।

## १४४. पत्र : मंचरजी मेरवानजी भावनगरीको

पो० ऑ० बॉक्स १८२
डर्बन, नेटाल
जून २२, १९०१

प्रिय सर मंचरजी,

मैंने गत सप्ताह आपके दो पत्रोंकी प्राप्ति स्वीकार की थी। उसके बाद मुझे आपका गत मासकी २४ तारीखका पत्र मिला है। आपके पत्रोंने हमारे उत्साहको फिरसे जगाया है, और आप जो महान् कार्य कर रहे हैं उसके लिए दक्षिण आफ्रिकाके गरीब पीड़ितोंकी ओरसे मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। हम यहाँके लोग आपसे पूरी तरह सहमत हैं कि जहाँतक बन सके काम मैत्रीपूर्ण मुलाकातोंसे, जैसी कि आप श्री चेम्बरलेन और अन्य लोगोंसे कर रहे हैं, सिद्ध किया जाये; क्योंकि संसदमें किसी प्रश्नका असहानुभूतिपूर्ण उत्तर देनेसे अधिक क्षतिके सिवा और कुछ नहीं हो सकता — जब कि न्याय पूरी तरह हमारे पक्षमें है और विभिन्न दलोंमें कोई मतभेद भी नहीं है। अभीष्ट परिणाम पानेके लिए बस इतना ही जरूरी है कि अधिकारियोंको लगातार याद दिलाते रहा जाये और निरन्तर चौकसी रखी जाये। हमने पहले ही जान लिया था कि आप भारतमें संयुक्त आन्दोलन छेड़नेका सुझाव देंगे। इसलिए हमने वहाँके नेताओंको पत्र[1] लिख दिये हैं और उनसे प्रार्थना की है कि वे स्मरणपत्र लिखते रहें, और वाइसरायकी परिषदमें प्रश्न उठाते रहें। साथ ही, मुझे सफलताकी ज्यादा आशा नहीं, क्योंकि वहाँ कोई ऐसी सगठित समिति नहीं है, जो कि सिर्फ दक्षिण आफ्रिकी सवालको या, यों कहें कि, प्रवासी भारतीयोंकी शिकायतोंके सवालको हाथमें ले। परन्तु, यदि पूर्व भारत संघ (ईस्ट इंडिया असोसिएशन) और कांग्रेस समिति मिलकर भारत-कार्यालयसे जोरदार निवेदन करे तो यह भारतमें जो कुछ किया जाये उसका पूरक हो सकता है, या उसका स्थान ग्रहण कर सकता है।

मैं जानता हूँ कि हमारी निर्योग्यताओंके इस मामलेको आप बहुत महसूस करते हैं। ये निर्योग्यताएँ शान्तसे-शान्त चित्तमें भी सात्त्विक रोष उत्पन्न कर देनेके लिए काफी बुरी हैं। किन्तु क्या मैं आपसे यह निवेदन कर सकता हूँ कि आप अपने इस उत्तम कार्यमें, जिसे आप वहाँ कर रहे हैं, गरमागरम बहस छेड़कर तबतक बाधा न आने दें, जबतक कि आपको कामयाबीकी पूरी उम्मीद न हो। हम पूरी तरह अनुभव करते हैं कि इस कार्यमें आपकी गहरी दिलचस्पी, संसदमें आपके स्थान, अधिकारियोंपर आपके प्रभाव और, सबसे अधिक, कार्य करनेमें आपकी तत्परताके कारण इसके प्रति न्याय करनेके लिए आपसे अधिक योग्य व्यक्ति इंग्लैंडमें और कोई नहीं है।

मैं यह कहनेका साहस करता हूँ कि परवानोंकी बाबत आपको भेजे गये तार[2]के सम्बन्धमें ट्रान्सवालके अधिकारियोंने श्री चेम्बरलेनको जो जानकारी दी है वह भ्रामक है। मैं अब भी कहता हूँ कि तार सही है। यह जानकारी उस रिपोर्टसे ली गई थी जो स्थानीय समाचारपत्रोंके विशेष संवाददाताओंने भेजी थी। मैं कल खुद डर्बनर गोरोंकी समितिके मन्त्रीसे मिलने गया था। उसने मुझे निश्चयपूर्वक बताया कि अधिकांश दूकानें खुली हुई हैं और यह मांग कि लोग

१. ये उपलब्ध नहीं हैं।
२. अप्रैल १६, १९०१ का तार।

'रैंड राइफल्स' में भर्ती हों, न्यूनाधिक रूपमें उपचार-मात्र है। वास्तवमें यदि वे यह नहीं चाहते कि भारतीय 'रैंड राइफल्स' में भर्ती हों तो कमसे-कम इसे उनकी वापसीमें रुकावट डालनेके लिए उपयोगमें न लाया जाये। यह स्मरण रहे कि बहुत-सी यूरोपीय महिलाओंको जानेकी अनुमति दे दी गई है। और रोजाना ट्रान्सवालके लिए परिवारके-परिवार गाड़ियोंमें बैठते दिखाई देते हैं। आपको सूचना देते हुए मुझे खेद होता है कि यह पत्र लिखनेके समयतक और कोई अनुमति-पत्र नहीं मिला, यद्यपि छः अनुमति-पत्र देनेका वादा किया गया है — चार नेटालके और दो केपटाउनके लिए। किन्तु वास्तवमें अनुमति-पत्रोंका सवाल तो आखिर अर्थहीन और केवल अस्थायी है, यद्यपि जबतक यह मौजूद है तबतक इस सर्वग्राही प्रश्नकी तुलनामें कि नई हुकूमतमें भारतीयोंकी क्या स्थिति है, कठिनाई और भी अधिक महसूस होगी। अभीतक इस आशयकी घोषणा नहीं की गई है कि कमसे-कम वर्तमान कानूनमें तो बहुत-कुछ सुधार कर ही दिया जायेगा। हमारे लन्दनके मित्र लॉर्ड मिलनरकी उपस्थितिका लाभ उठाकर वहाँ जो कुछ कर लेंगे उसीमें हमारी आशाएँ केन्द्रित हैं।

आशा है अगले सप्ताह आपको अधिक लिख सकूँगा। तबतक आपको पुनः धन्यवाद।

आपका बहुत सच्चा,

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३८५३) से।

## १४५. भाषण : भारतीय विद्यालयमें

डर्बनमें भारतीय उच्च शिक्षा विद्यालय (हायर-ग्रेड इंडियन स्कूल) के पुरस्कार वितरण समारोहमें गांधीजीने जो भाषण दिया था उसका पत्रोंमें प्रकाशित संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है। समारोहके अध्यक्ष नेटालके गवर्नर सर हेनरी मैक-कैलम थे।

[डर्बन
जून २८, १९०१ के पूर्व]

परमश्रेष्ठ गवर्नर महोदयके प्रति धन्यवादका प्रस्ताव पेश करते हुए श्री गांधीने कहा कि परमश्रेष्ठने अपने कार्य-कालके प्रारम्भमें ही और इतने सौजन्यके साथ भारतीयोंके सम्पर्कमें आनेकी जो कृपा की इसपर भारतीय समाज अगर गर्व और सन्तोष अनुभव करे तो यह उचित ही है। इस प्रसंगपर श्री गांधीने लॉर्ड रॉबर्ट्सके आगमनके समय आयरिश असोसिएशन और भारतीय समाजके बीच जो होड़ चल पड़ी थी उसका हवाला देते हुए कहा — तब आयरिश असोसिएशन कहता कि लॉर्ड रॉबर्ट्स आयरिश हैं, और भारतीय कहते कि वे भारतीय हैं। परमश्रेष्ठको तो पहले ही स्कॉटलैंडके लोग अपना बता चुके हैं। परन्तु सर हेनरीको दत्तक प्रथाके अनुसार भारतीय कहनेके पर्याप्त कारण उनके पास हैं (हँसी)। श्री गांधीने आशा प्रकट की कि सरकारने जो व्यायामशाला, संगीत-वर्ग वगैरह विद्यालयमें खोलनेका आश्वासन दिया है उसकी वह शीघ्र ही पूर्ति कर देगी। उन्होंने यह भी आशा प्रकट की कि हायर ग्रेड स्कूलके समान ही लड़कियोंके लिए भी एक ऐसा विद्यालय सरकार खोलनेकी कृपा करेगी।

[अंग्रेजीसे]
*नेटाल मर्क्युरी*, २८-६-१९०१

## १४६. तार : अनुमति-पत्रोंके बारेमें

[डर्बन]
जुलाई २, १९०१

सेवामें
परमिट्स
जोहानिसबर्ग

मेरा २१ मईका पत्र। भारतीय शरणार्थी-समिति सादर निवेदन करती है, वादा किये अनुमति-पत्रोंके बारेमें जानकारी दें। आपका २५ मईका तार।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

साबरमती संग्रहालय, एस० एन० ३८५८।

## १४७. तार : उपनिवेश-सचिवको

[डर्बन]
जुलाई २६, १९०१

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

क्या मैं पूछ सकता हूँ कि भारतीय प्रार्थियोंने निगम-विधेयक (कारपोरेशन्स बिल) की जिन धाराओंपर आपत्ति की है वे कमेटीके हाथोंसे गुजर चुके हैं या नहीं? अगर नहीं तो क्या सरकारका विचार कोई कार्रवाई करनेका है?

गांधी

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३८६६) से।

## १४८. तार : हेनरी बेलको

[डर्बन]
अगस्त ८, १९०१

सेवामें
सर हेनरी बेल
पीटरमैरित्सबर्ग

महामहिम सम्राट् द्वारा आपको पदवी दी जानेके उपलक्ष्यमें अपने देशवासियोंकी ओरसे नम्रतापूर्वक बधाइयाँ देता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

साबरमती संग्रहालय, एस० एन० ३८७६।

## १४९. तार : सी० बर्डको

[डर्बन]
अगस्त ८, १९०१

सेवामें
श्री सी० बर्ड
सी० एम० जी०
पीटरमैरित्सबर्ग

महामहिम सम्राट् द्वारा आपको पदवी दी जानेके उपलक्ष्यमें आपको बधाइयाँ देता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

साबरमती संग्रहालय, एस० एन० ३८७७।

## १५०. अभिनन्दन-पत्र : शाही मेहमानोंको

कॉर्नवाल तथा यॉर्कके ड्यूक और डचेसके नेटाल आनेपर डर्बनके भारतीयोंने उन्हें निम्नलिखित अभिनन्दन-पत्र भेंट किया था। अभिनन्दन-पत्र एक चाँदीकी ढालपर खुदा था, जिसपर ताजमहल, बम्बईकी कारला गुफाओं, बुद्ध गया मन्दिर तथा नेटालके गन्नोंके खेतोंमें काम करते हुए गिरमिटिया भारतीयोंके चित्र अंकित थे।

[डर्बन
अगस्त १३, १९०१]

*महाविभव कॉर्नवाल तथा यॉर्कके ड्यूक और डचेसको अभिनन्दन-पत्र*

महाविभवकी सेवामें निवेदन है :

इस उपनिवेशके निवासी ब्रिटिश भारतीयोंकी ओरसे हम, नीचे हस्ताक्षर करनेवाले, इन सागरतीरपर आप महाविभवोंका नम्रतापूर्वक अभिनन्दन करते हैं। अपनी इस यात्रामें आप जिन देशोंमें गये उनमें नेटाल एक ऐसा देश है जहाँ ब्रिटिश भारतीय बड़ी संख्यामें रहते हैं। और, यह देखते हुए कि भारतको महाविभवोंकी यात्राका सम्मान प्राप्त करनेवाले देशोंमें शामिल नहीं किया गया, आप महाविभवोंको श्रद्धांजलि भेंट करना हमारा दोहरा कर्त्तव्य हो जाता है।

इससे व्यक्त होता है कि महामहिम सम्राट् अपनी प्रजाओंका बहुत मान करते हैं, क्योंकि ऐसे अवसरपर जब कि हमारी प्रिय कैसरे-हिन्दके हमारे बीचसे उठ जानेके कारण राज-परिवारके साथ करोड़ों प्रजाजन महान् शोक-सागरमें डूबे हुए हैं, उन्होंने आप महाविभवोंको न केवल आस्ट्रेलिया बल्कि महान् साम्राज्यके अन्य भागोंकी भी यात्रा करनेका आदेश दिया है। हम सम्मानपूर्वक कहनेका साहस करते हैं कि इस यात्राने उस पवित्र सूत्रको जिससे ब्रिटिश राज्यके विभिन्न भाग एक साथ बँधे हैं और भी कस दिया है।

हम उदार ब्रिटिश शासनके लाभको पूर्ण रूपसे समझते हैं। भारतसे बाहर पाँव रखनेकी जगह हमें इसीलिए मिली है कि हम सर्वसंग्रही यूनियन जैकके अंकमें हैं।

हम आपसे नम्रतापूर्वक प्रार्थना करते हैं कि आप महामहिम सम्राट्को — हमारे महाराजको — हमारे राजभक्तिपूर्ण अनुरागका विश्वास दिलायें। हमारी हार्दिक कामना है कि आप दक्षिण आफ्रिकाके इस उपवनमें आनन्दके साथ समय बितायें और हम सर्वशक्तिमानसे प्रार्थना करते हैं कि वह यात्राकी समाप्तिपर आपको सकुशल घर पहुँचा दे और आपपर उत्तमोत्तम सुख-समृद्धिकी वर्षा करे।

आपके विनीत तथा वफादार सेवक,
अब्दुल कादिर, एम० सी०
कमरुद्दीन ऐंड कम्पनी
तथा लगभग ६० अन्य

[अंग्रेजीसे]

नेटाल ऐडवर्टाइज़र १७-८-१९०१

## १५१. भारतीय और ड्यूक

मर्क्युरी लेन
डर्बन
अगस्त २१, १९०१

सेवामें
सम्पादक
*नेटाल मर्क्युरी*

महोदय,

"अंग्रेजी बोल सकनेवाले तथा अन्य भारतीयोंकी विरोध-सभा" के अध्यक्षके नाते संयोजकके पाससे सभाके प्रस्तावोंकी जैसी नकल मुझे मिली है, मैं इसके साथ भेज रहा हूँ। आवरक-पत्रकी नकल भी संलग्न है। मैं उस सभाका सभापति जरूर था; परन्तु उन प्रस्तावोंसे मुझे जरा भी सहानुभूति नहीं है, क्योंकि उनमें वस्तुस्थिति बतानेकी कई महत्त्वपूर्ण भूलें हैं और वे भ्रमोत्पादक हैं। परन्तु [मैं मानता हूँ कि सही या गलत शिकायतोंको मैदानमें लाकर रख देनेसे जोश कुछ ठंडा ही होता है।] मैं उन्हें आपके पास भेज रहा हूँ। आप जैसा उचित समझें, उनका उपयोग करें।

आपका, आदि,
मो० क० गांधी

*[ प्रस्ताव ]*

गत २ तारीखको कांग्रेसके सभा-भवनमें अंग्रेजी-भाषी और अन्य भारतीयोंकी एक विरोध-सभा हुई थी। श्री मो० क० गांधी सभापति थे। सभामें संयोजक श्री जे० एल० रॉबर्ट्सने नीचे लिखे प्रस्ताव पेश किये और श्री डी० सी० एंड्रयूजने उनका समर्थन किया। प्रस्ताव सर्वानुमतिसे स्वीकृत हुए।

१. कॉर्नवाल तथा यॉर्कके ड्यूक और डचेसको मानपत्र देनेके लिए प्रतिनिधियोंका चुनाव जिस ढंगसे किया गया उसपर यह सभा जोरदार विरोध प्रकट करती है। क्योंकि, चुनावके लिए की गई सभाकी सूचना केवल मुसलमानोंको दी गई थी। इस तरह दूसरे भारतीयोंको उसमें भाग लेनेसे वंचित रखा गया।

२. यह सभा इस बातका भी जोरदार विरोध करती है कि महाविभवोंको अभिनन्दन-पत्र देनेके लिए की गई सभामें भाग लेनेके लिए जो प्रतिनिधि चुने गये हैं उनमें अधिकांश मुसलमान हैं। उपनिवेशमें दूसरे भारतीयोंकी संख्या मुसलमानोंसे अधिक है। अतः उनके प्रतिनिधियोंकी संख्या कमसे-कम मुसलमान प्रतिनिधियोंके बराबर तो होनी ही चाहिए थी।

३. जिन आठ अधिक प्रतिनिधियोंको निमन्त्रण भेजनेके लिए चुना गया है (अगर स्वागत-समिति उसे अपनी स्वीकृति प्रदान कर दे) उनमें से छः मुसलमान हैं। इस प्रकार अन्य भारतीयोंको पुनः न्याययुक्त प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया है।

४. यह सभा मुसलमानोंके इस रिवाजका भी घोर विरोध करती है कि वे अपना प्रतिनिधित्व करनेवाले व्यक्तियोंका चुनाव कर लेनेके बाद, हमेशा और बगैर अपवादके, अंग्रेजी-भाषी और अन्य भारतीयोंका प्रतिनिधित्व करनेके लिए एक श्री एच० एल० पालको ही चुना करते हैं। इस तरह वे सदा सम्बन्धित भारतीयोंकी इच्छाके विरुद्ध काम करते हैं।

५. उपर्युक्त प्रस्तावोंकी प्रतिलिपियाँ यॉर्कके ड्यूक और डचेसके सचिव (सेक्रेटरी) को, भारतीय स्वागत समितिको, डर्बनके मेयरको, और नेटालके अखबारोंको भी भेज दी जायें।

[अंग्रेजीसे]

*नेटाल मर्क्युरी*, २३-८-१९०१

## १५२. भारतीय या कुली[1]

[ लेडीस्मिथ ]
सितम्बर ११, १९०१

श्री गांधीने मांग की कि उन्हें इतनी कार्रवाई हो जानेपर भी वकीलके रूपमें उपस्थित होने दिया जाये, क्योंकि यह मुकदमा भारतीय समाजके लिए महत्त्वका है और पुलिस भारतीयोंकी मान-मर्यादाके बारेमें भ्रममें पड़ी मालूम होती है। कुछ दिन पूर्व उसने नेटालमें जन्मे ऐसे अनेक भारतीयोंको गिरफ्तार किया था, जिन्होंने गिरफ्तारीकी शरमके कारण ही अपनी जमानत जब्त करा दी थी। प्रतिवादीको, जो भारतीय है और जो स्वेच्छासे नेटाल आया था, "कुली" बताकर कानूनकी धारामें फांसनेकी कोशिश की गई है। धाराके शब्द हैं : "९ बजे रातके बाद", "अगर अपने मालिकसे प्राप्त परवाना न दिखा सके।" वह ऐसा कैसे कर सकता था, जब कि अपना मालिक वह खुद था? उन्होंने *श्रीमती विन्दन बनाम लेडीस्मिथ-निगम* मुकदमेके फैसलेका कुछ अंश पढ़कर सुनाया, जिसमें सर्वोच्च न्यायालयने कहा था कि उक्त शब्दका भाषान्तर "गिरमिटिया भारतीय" किया जा सकता है।

न्यायमूर्तिने कहा : जो नजीर दी गई है उसके खयालसे वे और कुछ कहना जरूरी नहीं समझते। वे कोई सख्त व पुख्ता नियम नहीं बना सकते, क्योंकि ऐसे मामलोंपर उनके गुण-दोषोंके आधारपर ही विचार करना होगा। कानून कठिन है। यद्यपि अभियुक्त साफ-साफ एक रंगदार व्यक्ति है, फिर भी कानून उसे वैसे नहीं पुकारता, इसलिए उसे बरी किया जाता है।

[ अंग्रेजीसे ]
*नेटाल मर्क्युरी*, १२–९–१९०१

## १५३. पत्र : टाउन क्लार्कको

१४, मर्क्युरी लेन
[ डर्बन ]
सितम्बर १७, १९०१

सेवामें
श्री विलियम कूली
टाउन क्लार्क
डर्बन

प्रिय महोदय,

प्लेग-निरोधके हेतु स्वीकृत उपायोंके सम्बन्धमें भारतीय चौकसी-समिति (इंडियन विजिलैन्स कमिटी) जो-कुछ कर सकी उसके लिए आपका १२ तारीखका धन्यवाद-पत्र मिला। मैं आपका कृतज्ञ हूँ।

१. भवानी नामके एक भारतीय नाईपर रातको निकलनेके परवाना-कानूनके अन्तर्गत मुकदमा चलाया गया था। जिस दिन लेडीस्मिथका मजिस्ट्रेट मुकदमेका फैसला करनेवाला था उस दिन गांधीजीने अभियुक्तकी ओरसे पैरवी की थी।

मेरा निवेदन है कि समितिने जो-कुछ किया वह उसका कर्तव्य-मात्र था। और, अगर फिर कभी कोई अवसर आया तो नगर-परिषद नगरके स्वास्थ्यके हितमें जो भी उपाय करेगी उसमें भारतीय समाजका सहयोग पूर्ववत् तत्परतासे प्राप्त होगा।

आपका विश्वासपात्र,

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३९१०) से।

## १५४. नेटाल भारतीय कांग्रेसका चिट्ठा

नेटाल भारतीय कांग्रेसका ३१ अगस्त, १९०१ तकका आय-व्ययका चिट्ठा जब कांग्रेसके सामने पेश करनेके लिए तैयार किया गया, तब गांधीजीने देखा कि चन्दे और दानकी ७२३ रकमोंकी सूचीमें, जिसका योग ३,४०४ पौंड था, कुछ अंकोंकी भूल है। उन्होंने अपनी सहीके साथ निम्नलिखित टीप लिख दी और अपने ही अक्षरोंमें चिट्ठेमें नीचे बताया हुआ परिवर्धन कर दिया।

सितम्बर [?] १९०१

### टीप

खातेके जोड़ और आय-व्ययके चिट्ठेमें दिखाई गई रकममें, जो कि सही रकम है, अन्तर रोकड़-बहीसे रकमें खताते समय की गई किसी भूलका नतीजा है। मुझे यह कार्य करनेका समय नही मिला, यद्यपि रोकड़-बही दो बार जाँच ली गई है। यह भूल शायद इसलिए हुई कि बहुतसे लोगोंका नाम रसीदें ले लेनेपर भी चन्दा न देनेके कारण काट दिया गया है। रोकड़-बही जाँच ली गई होती तो इस भूलका पता तुरन्त लग जाता।

मो० क० गांधी

*[आय-व्ययके चिट्ठेमें परिवर्धन]*

(आय-व्ययके चिट्ठेमें जोड़ें)

सूचीके अनुसार चन्दे तथा दानसे ३१ अगस्त, १९०१ तक प्राप्त हुई रकम, जिसमें १८२ पौंडके ऋणकी रकम भी शामिल है। अन्तरका कारण चिट्ठेके नीचे दी हुई टीपमें देखें।

[अंग्रेजीसे]

साबरमती संग्रहालय, जिल्द ९६६।

## १५५. टिप्पणी : वकीलकी सलाहके लिए

डर्बन
अक्तूबर २, १९०१

१८९७ का अधिनियम १८, थोक और फुटकर व्यापारियोंको परवाने देनेका नियमन और नियन्त्रण करनेके लिए है।

१८७२ के कानून १९ की धारा ७१ उपधारा (क) में जिन परवानोंका जिक्र है उनमें, इस अधिनियमकी धारा १ द्वारा, थोक व्यापारियोंके परवाने भी शामिल कर दिये गये है। हमारा कथन है कि यह इसलिए किया गया है कि थोक व्यापारियोंके परवाने भी निगम (कारपोरेशन) के नियन्त्रणमें आ जायें।

इस अधिनियमकी धारा ३ की रचना विशेष रूपसे इस प्रकार की गई है कि "फुटकर व्यापारियों" शब्दोमें फेरीवालोकी गिनती हो। हमारा कथन है कि इसका मतलब यह निकलता है कि शेष सब व्यापारी इस गिनतीसे बाहर हो गये।

वकीलकी रायमें, इस अधिनियमके अनुसार रोटीवालों या कस्सावोंकी गिनती फुटकर व्यापारियोंमें होगी या थोक व्यापारियोंमें? उनके परवानोंपर यह अधिनियम लागू होगा या नही?

वकीलका ध्यान इस तथ्यकी ओर आकृष्ट किया जाता है कि १८७२ के कानून १९ में रोटीवालों और कस्सावोंके परवानोंके लिए दरोंकी तालिका फुटकर दूकानदारोंके परवानोंकी तालिकासे अलग है; और कमसे-कम आम लोगोका खयाल तो यह है कि रोटीवालोंके परवाने, रोटी पकाने-बेचनेके रोजगारसे असम्बद्ध कारोबारपर लागू नही होते। और इसी प्रकार फुटकर व्यापारीका परवाना रोटी पकाने-बेचनेके कारोबारपर लागू नही होता।

मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३९१५) से।

## १५६. पत्र : उपनिवेश-सचिवको

१४, मर्क्युरी लेन
डर्बन
अक्टूबर ८, १९०१

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

श्रीमन्,

मैंने गत नवम्बर मासमें पोर्टशेप्स्टनकी एक जायदादका वहाँके जान मुहम्मदके नाम तबादला करनेके बारेमें सरकारकी सेवामें एक पत्र भेजा था।

सरकारने कृपापूर्वक यह निर्णय किया था कि यदि पट्टेकी शर्तें पूरी कर दी गई हैं तो सामान्य रीतिसे तबादलेका हुक्म हो जायेगा। सब किस्तोंकी अदायगी हो जानेपर मैंने अपने पी० मै० बर्गके एजेंटकी मारफत तबादलेके अन्तिम दस्तावेजके लिए प्रार्थनापत्र भेजा और उसने २१ अगस्तको मुझे लिखा कि सरकारने स्वत्वाधिकारकी आज्ञा देनेसे इनकार कर दिया है, क्योंकि "*बिक्री और खरीदके प्रमाणपत्रमें जो निर्माण-सम्बन्धी धारा है, उसका पालन नहीं हुआ है।*"

मैं अपने मुअक्किलसे लिखा-पढ़ी करता रहा हूँ और मैं देखता हूँ, यह सच है कि उसने मजिस्ट्रेटसे लिखित अनुमति पहले लिये बिना ही लकड़ी और लोहेकी इमारतें निर्मित की हैं। परन्तु मुझे मालूम हुआ है कि ऐसी इमारतें उस स्थानमें सर्वत्र निर्मित हुई हैं। इतना ही नहीं, मजिस्ट्रेटने इमारतके मूल्यके विषयमें अपना प्रमाणपत्र दिया है जो कि महासर्वेक्षक (सर्वेयर जनरल) के सामने पेश किया गया था।

मुझे और भी मालूम हुआ है कि, इसी परिस्थितिमें दूसरोंको स्वत्वाधिकारके दस्तावेज दिये गये हैं; कि. लकड़ी और लोहेकी इमारत खड़ी करनेसे पहले मेरे मुअक्किलने ईंटें बनानेकी आज्ञा माँगी थी; कि, आज्ञा न मिलनेपर ही उसने लकड़ी और लोहेकी इमारत खड़ी की; कि, उल्लिखित इमारत बड़े प्रतिष्ठित किरायेदार अर्थात् स्टैंडर्ड बैंकके कब्जेमें है; और यह कि, मेरा मुअक्किल उस भूमिपर ईंट और पत्थरकी इमारतें भी खड़ी कर रहा है।

इन परिस्थितियोंमें मैं निवेदन करता हूँ कि स्वत्वाधिकारकी रजिस्ट्री करानेके बारेमें मेरे मुअक्किलके प्रार्थनापत्रपर पुनः विचार किया जाये। मुझे भरोसा है कि गवर्नर महोदय कृपापूर्वक इसे मंजूर करेंगे।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पीटरमैरित्सबर्ग आर्काइव्ज़, सी० एस० ओ० ८६५८/१९००।

## १५७. विदाई-सभामें भाषण

गांधीजीको, उनके भारत रवाना होनेसे पूर्व, नेटाल भारतीय कांग्रेस और अन्य भारतीय संस्थाओंकी ओरसे मानपत्र दिये गये थे। डर्बनके कांग्रेस-भवनकी विराट सभामें कई प्रमुख यूरोपीय नागरिक भी शामिल थे। इस अवसरपर गांधीजीने जो भाषण दिया उसका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है।

[डर्बन]
अक्टूबर १५, १९०१

श्री गांधीने उस भव्य और बहुमूल्य मानपत्रके[1] लिए सच्चे हृदयसे धन्यवाद दिया। उन्होंने अनेक उपहारोंके दाताओंको, और उनको भी धन्यवाद दिया, जिन्होंने उनकी प्रशंसामें बढ़-चढ़ कर भाषण दिये थे। उन्होंने कहा कि मैं इस प्रश्नका कोई संतोषजनक उत्तर नहीं ढूंढ़ सका कि इस सबका अधिकारी मैं कैसे बन गया हूँ? सात या आठ वर्ष हुए,[2] हम लोग एक खास सिद्धान्त लेकर चले थे और मैंने इन उपहारोंको इस संकेतके रूपमें स्वीकार किया है कि हम उसी सिद्धान्तपर बढ़ते रहेंगे, जिसे लेकर उस समय चले थे। नेटाल भारतीय कांग्रेसने उपनिवेशमें बसनेवाले यूरोपीय और भारतीयोंके बीच सद्भाव बढ़ानेका काम किया है। उसमें हमने प्रगति की है, भले वह थोड़ी ही क्यों न हो। पिछले चुनाव-सम्बन्धी भाषणोंमें हमने भारतीयोंके विरुद्ध बहुत-कुछ सुना। दक्षिण आफ्रिकामें आवश्यकता गोरे लोगोंके देशकी नहीं, गोरे भ्रातृमण्डलकी भी नहीं, बल्कि एक साम्राज्यगत भ्रातृमण्डलकी है। प्रत्येक व्यक्तिका, जो साम्राज्यका मित्र है, यही लक्ष्य होना चाहिए। इंग्लैंड पूर्वमें अपने अधीन प्रदेशोंको कभी नहीं छोड़ेगा और जैसा कि लॉर्ड कर्जनने कहा है, भारत ब्रिटिश साम्राज्यका उज्ज्वलतम रत्न है। हम दिखाना चाहते हैं कि हम समाजके एक ग्राह्य अंग हैं; और यदि हमने जो कार्य प्रारम्भ किया था उसे जारी रखेंगे तो "जब कुहरा छँट जायेगा, हम एक-दूसरेको ज्यादा अच्छी तरह जानेंगे।" इसके बाद श्री गांधीने उनकी देशी भाषामें भाषण दिया, और भारतीयोंके उस विशिष्ट देशबन्धुके प्रति हर्षोल्लासके साथ सभा समाप्त हुई।

[अंग्रेजीसे]
*नेटाल ऐडवर्टाइज़र*, १६-१०-१९०१

### [संलग्न पत्र १]

*[अभिनन्दन-पत्र]*

सेवामें
श्री मोहनदास करमचंद गांधी,
बैरिस्टर
अवैतनिक मन्त्री, नेटाल भारतीय कांग्रेस, आदि आदि
महानुभाव,

हम नीचे हस्ताक्षर करनेवाले नेटालवासी सब वर्गोंके भारतीयोंके प्रतिनिधिरूपमें, आपके भारत-प्रस्थान करनेके अवसरपर आपकी सेवामें यह अभिनन्दन-पत्र भेंट करनेकी आज्ञा चाहते हैं। हमारे पास यद्यपि

१. देखिए संलग्न पत्र १ और २।
२. यह उल्लेख १८९४ में नेटाल भारतीय कांग्रेसकी स्थापनाका है।

शब्दोंकी कमी है, तथापि हम अति संक्षेपमें आपके प्रति अपनी कृतज्ञताके गहरे भावको व्यक्त करना चाहते हैं। आठ सालसे अधिक हुए, जब इस उपनिवेशमें आपका आगमन हुआ था तबसे आपने अथक रूपसे और प्रसन्नतापूर्वक बहुमूल्य सेवाएँ की हैं, और अपने साथी देशवासियोंके हितोंकी रक्षा और वृद्धिके लिए आपने सदैव ही प्रसन्नतापूर्वक अनुकरणीय आत्मत्यागका परिचय दिया है।

आपका अनोखा चरित कितने ही उज्ज्वल पाठ पढ़ाता है और आपने जो उदात्त उदाहरण उपस्थित किया है उसीके आदर्शपर हम अपने कार्य आगे बढ़ानेकी आशा करते हैं। जो-कुछ भी आपने किया उस सबमें आप उच्च आदर्शोंसे प्रेरित रहे और कर्तव्यके प्रति अपनी स्थिर निष्ठाके कारण आपके तरीके और आपके काम बहुत ही कुशल सिद्ध हुए।

हम अनुभव करते हैं कि आपका सम्मान करके हम स्वयं अपना सम्मान कर रहे हैं।

हम सच्चे हृदयसे आशा करते हैं कि जिन पारिवारिक कर्तव्योंके कारण आपका भारत जाना आवश्यक हो गया है, उनसे छुट्टी पानेके बाद आप पुनः हमारे सुख-दुःखके साथी बनेंगे, और उस कार्यको जारी रखेंगे जिसको कि आप इतने प्रशंसनीय ढंगसे करते रहे हैं।

अन्तमें हम आपके लिए सुखद समुद्र-यात्राकी कामना करते हैं और सर्वशक्तिमानसे प्रार्थना करते हैं कि वह आप और आपके आत्मीयोंको अपनी श्रेष्ठतम कृपासे अनुगृहीत करे।

डर्बन, १५ अक्तूबर, १९०१

सदैव आपके कृतज्ञ,
अब्दुल कादिर (और अन्य)

छपी हुई मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३९१८) से।

## [संलग्न पत्र २]

### *[प्रस्ताव]*

नेटाल भारतीय कांग्रेसकी यह सभा अपने अवैतनिक मंत्री श्री मो० क० गांधीके त्यागपत्रको गहरे दुःखके साथ स्वीकार करती है। उन्होंने लगभग आठ वर्ष पूर्व अपने आगमनके समयसे अथक भावसे, बिना आडम्बरके और प्रसन्नतापूर्वक प्रवासी भारतीयोंकी बहुमूल्य सेवाएँ की हैं। उन्होंने नेटालमें खास तौरसे और दक्षिण-आफ्रिकामें आम तौरसे अपने देशवासियोंके हितोंकी रक्षा और वृद्धिके लिए सदैव प्रसन्नतापूर्वक कष्ट सहे हैं, और त्याग किया है। कर्तव्यके प्रति उनकी अटल निष्ठा प्रशंसनीय है और अकेले उसीसे उनके समस्त कार्योंका दिशा-दर्शन हुआ है। यह सभा अपना परम कर्तव्य समझती है कि इस सबके लिए उनके प्रति अपनी कृतज्ञताके गहरे भावको प्रकट करे।

अंग्रेजी मसविदेकी फोटो-नकल (एस० एन० ३९३०) से।

## १५८. तार : उपनिवेश-सचिवको

[डर्बन
अक्टूबर १८, १९०१]

सेवामें
उपनिवेश-सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

डर्बनका भारतीय समाज लॉर्ड मिलनरको आदरयुक्त अभिनन्दन-पत्र देना चाहता है। क्या लॉर्ड साहब उसे स्वीकार करेंगे?

गांधी

[अंग्रेजीसे]

पीटरमैरित्सबर्ग आर्काइव्ज़, सी० एस० ओ० ९०३८/१९०१।

## १५९. पत्र : पारसी रुस्तमजीको

डर्बन
अक्टूबर १८, १९०१

सेवामें
श्री पारसी रुस्तमजी
अवैतनिक मंत्री
अभिनन्दन-पत्र समिति
डर्बन

प्रिय श्री रुस्तमजी,

मैं सोच रहा हूँ, मेरे साथी देशवासियोंने मुझे जो सुन्दर और मूल्यवान अभिनन्दन-पत्र दिया है उसका क्या लिखित उत्तर दूं। गहरे सोच-विचारके बाद इस परिणामपर पहुँचा हूँ कि समय-समयपर किये गये अपने वादोंके अनुरूप मुझे केवल यह कहकर ही सन्तोष नहीं कर लेना चाहिए कि मैं इन उपहारोंको नहीं, बल्कि उस प्रेमको मूल्यवान समझता हूँ जिससे प्रेरित होकर ये दिये गये हैं। इसलिए मैंने ये अलंकार, जिनकी सूची साथमें लगी है, इस निर्देशके साथ आफ्रिकी बैंकिंग कारपोरेशनको सौंप देनेका फैसला किया है कि वह इन चीजोंको नेटाल भारतीय कांग्रेसको दे दे और फिलहाल एक रसीद, जिसपर अध्यक्ष और अवैतनिक मन्त्री या मन्त्रियोंके हस्ताक्षर हों, ले ले।

मैं इन्हें निम्नलिखित शर्तोंपर कांग्रेसको सौंपता हूँ:

(१) ये अलंकार या इनका मूल्य एक आपात-निधिके रूपमें रखा जाये। इस निधिका उपयोग तभी किया जाये जब कांग्रेसके पास दो भू-सम्पत्तियोंके सिवा खर्चके लिए कोई निधि न हो।

(२) इनमें से किसी भी अलंकारको, या ऐसे अलंकारोंको, जिनका उपयोग न किया जा सका हो, कांग्रेसके क्षेत्रमें या उसके बाहर किसी भी लाभप्रद कार्यके लिए मुझे वापस लेनेका अधिकार हो।

जब इन अलंकारोंके उपयोगकी जरूरत पड़े तब मेरे लिए यह सम्मानकी बात होगी कि कांग्रेस, हो सके तो, मुझसे सलाह ले कि जिस कार्यके लिए इनका उपयोग होगा वह मेरी रायमें, पत्रके अर्थके अनुसार, आपात-कार्य है या नहीं। किन्तु कांग्रेस मुझसे पूछे बिना किसी भी समय इन अलंकारोंको निकालनेके लिए स्वतन्त्र है।

मैंने जान-बूझकर और प्रार्थनापूर्वक उक्त कदम उठाया है। मैं यह अनुभव करता हूँ कि इन मूल्यवान उपहारोंका व्यक्तिगत उपयोग न तो मैं कर सकता हूँ और न मेरा परिवार। ये इतने पवित्र हैं कि मैं या मेरे *उत्तराधिकारी* इन्हें बेच भी नहीं सकते। यह देखते हुए कि दूसरी सम्भावनाके विरुद्ध कोई गारंटी नहीं हो सकती, मेरी रायमें अपने लोगोंके प्रेमका प्रतिदान देनेका केवल एक ही उपाय है कि मैं एक पवित्र उद्देश्यके लिए इन सबका समर्पण कर दूँ। और चूँकि वास्तवमें कांग्रेसके सिद्धान्तोंके प्रति ये श्रद्धांजलिके परिचायक हैं, इसलिए मैं इन्हें कांग्रेसको ही वापिस देता हूँ।

अन्तमें मैं फिर आशा करता हूँ कि हमारे लोग (संस्थाके प्रति) अपने अच्छे इरादोंको, जिनका कि हालका उपहार-प्रदान एक उपलक्षण था, कार्य-रूपमें परिणत करेंगे।

मेरी हार्दिक प्रार्थना है कि कांग्रेस साम्राज्य और समाजकी सेवा करती रहे और मेरे उत्तराधिकारियोंको वही समर्थन प्राप्त हो जो मुझे प्राप्त हुआ है।

आपका सच्चा,

## [ अलंकारोंकी सूची ]

सन् १८९६ में दिया गया स्वर्णपदक।

सन् १८९६ में तमिल भारतीयों द्वारा दी गई स्वर्ण-मुद्रा।

सन् १८९९ में जोहानिसबर्ग समिति द्वारा भेंट की गई सोनेकी जंजीर।

श्री पारसी रुस्तमजी द्वारा भेंट की गई सोनेकी जंजीर, गिन्नियोंकी थैली और सात स्वर्ण-मुद्राएँ।

श्री दादा अब्दुल्ला ऐंड कम्पनीके श्री जूसुब द्वारा भेंट की गई सोनेकी घड़ी।

हमारे समाज द्वारा समर्पित हीरेकी अँगूठी।

गुजराती हिन्दुओं द्वारा समर्पित सोनेका हार।

स्टैंजरवासी काठियावाड़ी हिन्दुओं द्वारा भेंट किया गया चाँदीका प्याला तथा तश्तरी और श्री अब्दुल कादिर तथा अन्य सज्जनों द्वारा भेंट किया गया हीरेका पिन।

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३९२२–३) से।

## १६०. पत्र : उपनिवेश-सचिवको

१४, मर्क्युरी लेन
डर्बन
अक्टूबर १८, १९०१

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
पीटरमैरित्सबर्ग

श्रीमन्,

आज शामको प्रतिनिधि भारतीयोंकी ओरसे मैंने सेवामें निम्नलिखित तार भेजा है:

डर्बनका भारतीय समाज लॉर्ड मिलनरको आदरयुक्त अभिनन्दन-पत्र देना चाहता है। क्या लॉर्ड महोदय उसे स्वीकार करेंगे?

इस आशासे कि परमश्रेष्ठकी अनुमति मिल जायेगी, मुझे प्रस्तावित विनम्र मानपत्र[1]की प्रति परमश्रेष्ठकी स्वीकृतिके लिए भेजनेका अधिकार दिया गया है।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
**मो० क० गांधी**

[अंग्रेजीसे]

पीटरमैरित्सबर्ग आर्काइव्ज़, सी० एस० ओ० ९०३८/१९०१।

## १६१. अभिनन्दन-पत्र : लॉर्ड मिलनरको

डर्बन
अक्टूबर १८, १९०१

परमश्रेष्ठकी सेवामें निवेदन है कि,

हम नीचे हस्ताक्षर करनेवाले, इस उपनिवेशके निवासी ब्रिटिश भारतीयों और ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय शरणार्थियोकी ओरसे, इस नगरमें पधारनेपर परमश्रेष्ठका सादर स्वागत करते हैं। महामहिम सम्राट् द्वारा महान् पदवी दी जानेके उपलक्ष्यमें हम परमश्रेष्ठको हार्दिक बधाई भी देते हैं।

हम सर्वशक्तिमानसे हार्दिक प्रार्थना करते हैं कि वह परमश्रेष्ठको स्वास्थ्य और दीर्घ जीवन प्रदान करे जिससे कि परमश्रेष्ठने ब्रिटिश झंडेके नीचे दक्षिण आफ्रिकाकी अलग-अलग जातियोंको एक सूत्रमें बांधनेका जो साम्राज्यीय कार्य हाथमें लिया है, उसको जारी रखने और सफल बनानेमें परमश्रेष्ठ समर्थ हों।

१. देखिए अगला शीर्षक।

क्या हम परमश्रेष्ठका ध्यान नये उपनिवेशोंमें ब्रिटिश भारतीयोंकी दशाके प्रश्नकी ओर खींच सकते हैं? इसे परमश्रेष्ठके हाथों ही हल होना है। हमें विश्वास है कि इस बारेमें किसी निर्णयपर पहुँचते समय परमश्रेष्ठ हमारे जन्मके देशकी परम्पराओं, राजगद्दीके प्रति हमारी अटल और प्रामाणिक राजभक्ति और हमारी मानी हुई नियम-पालनकी प्रकृतिका ध्यान रखेंगे। परमश्रेष्ठकी व्यापक सहानुभूति, उदार स्वभाव और सम्राट्के विशाल साम्राज्यके विविध भागोंके निकट परिचयको जानते हुए हमें दृढ़ विश्वास है कि नये उपनिवेशोंमें बसनेवाले भारतीयोंका प्रश्न सम्भवतः परमश्रेष्ठसे ज्यादा अच्छे हाथोंमें नहीं हो सकता।

हम सैकड़ों ब्रिटिश भारतीय शरणार्थियोंकी ओरसे परमश्रेष्ठसे सादर प्रार्थना करते हैं कि यदि सम्भव हो तो उनकी वापसीके लिए जल्दी की जाये, और खास कर इस बातको ध्यानमें रखते हुए जल्दी की जाये, कि, सामान्य सहायता-कोशसे उन्होंने लाभ नहीं उठाया।

अन्तमें हम परमश्रेष्ठसे अनुरोध करते हैं कि राजगद्दीके प्रति हमारी श्रद्धा-भक्तिका महामहिम सम्राट्की सेवामें निवेदन करें।

परमश्रेष्ठके अत्यन्त नम्र और आज्ञाकारी
सेवक,

[अंग्रेजीसे]

पीटरमैरित्सबर्ग आर्काइव्ज, सी० एस० ओ० ९०३८/१९०१।

## १६२. भाषण: मॉरिशसमें

दक्षिण आफ्रिकासे भारत आते हुए गांधीजी मॉरिशसके पोर्ट लुई नगरमें रुके थे। वहाँके भारतीय समाजने उनका स्वागत किया था। इस अवसरपर गांधीजीने जो भाषण दिया उसका स्थानिक पत्रोंकी रिपोर्टोंके आधारपर तैयार किया गया ब्योरा नीचे दिया जाता है।

नवम्बर १३, १९०१

श्री गांधीने समारोहमें उपस्थित मेहमानों और खास तौरपर मेजबानको धन्यवाद दिया। उन्होंने कहा कि द्वीपके चीनी उद्योगको जो अभूतपूर्व सफलता मिली है उसका श्रेय प्रवासी भारतीयोंको है। उन्होंने जोर दिया कि भारतीयोंको अपनी मातृभूमिमें होनेवाली घटनाओंका परिचय रखना अपना कर्त्तव्य मानना चाहिए तथा राजनीतिमें भी दिलचस्पी लेते रहना चाहिए। उन्होंने बच्चोंकी शिक्षापर तुरन्त ध्यान देनेकी आवश्यकतापर बहुत ही जोर दिया।

[अंग्रेजीसे]
*स्टैंडर्ड*, १५-११-१९०१
*ल रैडिकल*, १५-११-१९०१

## १६३. अपील : वाइसरायकी सेवामें शिष्टमण्डल भेजनेके लिए

गांधीजी दिसम्बरके मध्यमें भारत पहुँचे। यह दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोंके प्रश्नपर उनका पहला सार्वजनिक वक्तव्य था।

बम्बई
दिसम्बर १९, १९०१

सेवामें
सम्पादक
*टाइम्स ऑफ़ इंडिया,*
बम्बई

महोदय,

दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय बड़ी उत्सुकतासे प्रतीक्षा कर रहे हैं कि वे उस उपमहाद्वीपमें जीवित रहनेके लिए भयंकर विषमताओंके विरुद्ध जो संघर्ष कर रहे हैं उसमें भारतीय जनता उनकी सहायता किस प्रकार करेगी। आपको ज्ञात ही है कि पूर्व भारत संघ (ईस्ट इंडिया असोसिएशन) ने लॉर्ड जॉर्ज हैमिल्टनको जोरदार शब्दोंमें एक प्रार्थनापत्र भेजा है। सर मंचरजी भावनगरी पीड़ितोंकी अत्यन्त लाभदायक सेवा कर रहे हैं। वे, मौका हो या न हो, ब्रिटिश लोकसभाके भीतर और बाहर, अपनी वाणी और लेखनीसे हमारी शिकायतोंको दूर करानेका प्रयत्न करते रहते हैं। और उन्हें सफलता भी मिली है। आपने, श्रीमन्, हमारी सहायता निरन्तर की है। भारतीय और आंग्ल-भारतीय जनता भी सदा हमारी सहायक रही है। कांग्रेस[1] भी हमारे प्रति सहानुभूतिके प्रस्ताव प्रतिवर्ष पास करती रहती है। परन्तु मेरी नम्र सम्मति है कि इससे कुछ अधिक करनेकी जरूरत है। दक्षिण आफ्रिकाके प्रमुख भारतीयोंने मुझे यह सुझानेको कहा है कि कुछ वर्ष पूर्व, स्वर्गीय सर विलियम विल्सन हंटरकी प्रेरणासे, जैसा एक शिष्टमण्डल श्री चेम्बरलेनकी सेवामें गया था, हमारे प्रतिनिधियोंका वैसा ही शिष्टमंडल वाइसरायकी सेवामें जाये। यह तो स्पष्ट ही है कि भारतमें वाइसराय और इग्लैंडमें हमारे कार्यकर्त्ताओंका बल बढ़ानेकी आवश्यकता है। यहांके और डाउनिंग स्ट्रीट [लंदन] के अधिकारी सहानुभूति-रहित नहीं हैं — वे वैसे हो नहीं सकते।

दक्षिण आफ्रिकाके यूरोपीय उपनिवेश-कार्यालयपर दबाव डालनेका भरसक प्रयत्न कर रहे हैं। वे चाहते हैं कि उन्हें ब्रिटिश भारतीयोंके विरुद्ध मनमाने कानून बनानेका अबाध अधिकार मिल जाये। इसलिए यदि एक शिष्टमण्डल भेज दिया जाये और, सम्भव हो तो, उसका समर्थन सभाओं द्वारा भी कर दिया जाये, तो उसका फल अवश्य निकलेगा। वस्तुस्थितिको समझ लेनेमें हमें भूल नहीं करनी चाहिए। हम आशा करें कि श्री चेम्बरलेनने सदाके लिए घोषणा कर दी है कि, भारतीयोंपर विशेष प्रतिबन्ध लगानेके रूपमें, वे सम्राट्के करोड़ों प्रजाजनोंका अपमान किया जाना सहन नहीं करेंगे। इसीलिए नेटालवाले अपना मतलब प्रवासी-प्रतिबन्धक और विक्रेता परवाना-अधिनियमों[2] जैसे अप्रत्यक्ष उपायों द्वारा हल करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। कहनेको तो ये कानून सबपर लागू होते हैं, परन्तु अमलमें इनका प्रयोग केवल भारतसे आनेवालोंपर किया जाता है।

१. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस।
२. देखिए खण्ड २, पृ० ३७९ से ३८६।

केप कालोनीके विधि-निर्माता भी अपने यहाँ नेटाल जैसे प्रतिबन्ध लागू करना चाहते हैं।

ट्रान्सवाल और ऑरेंज रिवर कालोनीमें बहुत कठोर भारतीय-विरोधी कानून पहलेसे लागू हैं। ट्रान्सवालमें भारतीय लोग जमीनके मालिक नहीं हो सकते, उन्हें केवल बस्तियोंमें रहना और व्यापार करना पड़ता है, और वे पटरियोंपर नहीं चल सकते, इत्यादि। ऑरेंज रिवर कालोनीमें तो वे, विशेष अनुमति प्राप्त किये बिना, प्रविष्ट भी नहीं हो सकते; और प्रविष्ट होनेकी अनुमति भी केवल घरोंके नौकरों या मजदूरोंको मिलती है। पुराने दोनों उप-निवेशोंको पूर्ण स्वशासनके अधिकार प्राप्त हैं। नवीन अधिकृत प्रदेशोंको ये अधिकार प्राप्त नहीं हैं। उनपर सीधा उपनिवेश-कार्यालयका नियन्त्रण है, और वहाँ ही समस्या सबसे ज्यादा जोरदार है। सर मंचरजीके पूछनेपर श्री चेम्बरलेनने जो जवाब दिया है वह, भाषा मित्रतापूर्ण होनेपर भी, सन्तोषजनक बिलकुल नहीं है। स्पष्ट है कि वे पुराने गणराज्योंके कानूनोंपर कलम फेरना नहीं चाहते। लॉर्ड मिलनरसे कहा गया है कि वे विचार करके बतलायें कि उन कानूनोंमें क्या परिवर्तन करना चाहिए और क्या नहीं। इसलिए भारतको इसी समय, यह बतलाकर कि वह ब्रिटिश साम्राज्यका अभिन्न अंग है, दक्षिण आफ्रिकामें अपने देशवासियोंके लिए ब्रिटिश नागरिकोंके पूरे अधिकारोंका दावा करना चाहिए। निश्चय ही यह प्रश्न साम्राज्य-व्यापी महत्त्वका है। स्वर्गीय सर विलियम विल्सन हंटरके शब्दोंमें प्रश्न यह है कि भारतसे बाहर निकलते ही, ब्रिटिश भारतीयोंको ब्रिटिश प्रजाकी स्थितिका पूरा-पूरा लाभ उठानेका अधिकार है या नहीं? इस प्रश्नका उत्तर बहुत दूरतक उस कार्रवाईपर निर्भर करेगा जो कि भारतकी जनता अपने देशमें करेगी। यह समय विशेष है, क्योंकि ब्रिटिश साम्राज्यके एक कोनेसे दूसरे कोनेतक इस समय साम्राज्य-भावनाकी लहर फैल रही है। इसलिए इस समय भारतकी जनता दृढ़, संयत और सर्वसम्मत स्वरसे जिस लोकमतका स्थिरतापूर्वक प्रकाशन करेगी उसकी उपेक्षा उपनिवेश भी नहीं कर सकेंगे।

इसलिए मैं दक्षिण आफ्रिकामें बसे हुए भारतीयोंकी ओरसे, आपसे और आपके सहयोगियोंसे अपील करता हूँ कि आप हमारी अभीष्ट सहायता कीजिए। मैं आपके सहयोगियोंसे प्रार्थना करता हूँ कि यदि सम्भव हो तो वे भी इस पत्रको उद्धृत करें।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

*टाइम्स ऑफ़ इंडिया*, २०-१२-१९०१

# १६४. भाषण : कलकत्ता कांग्रेसमें

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके कलकत्तेमें हुए १७ वें अधिवेशनमें दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंकी मान-मर्यादाके सम्बन्धमें प्रस्ताव पेश करते हुए गांधीजीने निम्नलिखित भाषण दिया था।

[कलकत्ता
दिसम्बर २७, १९०१]

सभापतिजी और प्रतिनिधि भाइयो,

मैं जो प्रस्ताव आपके विचारार्थ पेश करना चाहता हूँ वह इस प्रकार है :

**यह महासभा दक्षिण आफ्रिकामें बसे भारतीयोंके साथ उनके अस्तित्व-सम्बन्धी संघर्षमें, सहानुभूति प्रकट करती है और वहांके भारतीय-विरोधी कानूनोंकी ओर परम-श्रेष्ठ वाइसरॉयका ध्यान आदरपूर्वक आकर्षित करते हुए भरोसा करती है कि ट्रान्सवाल और ऑरेंज रिवर उपनिवेशमें बसे ब्रिटिश भारतीयोंकी मान-मर्यादाका प्रश्न जब अभी माननीय उपनिवेश-मन्त्रीके विचाराधीन ही है, परमश्रेष्ठ उसका न्यायपूर्ण और योग्य निबटारा करा देनेकी कृपा करेंगे।**

सज्जनो, मैं आपकी सेवामें एक प्रतिनिधिकी हैसियतसे नहीं, बल्कि अधिक तो दक्षिण आफ्रिकामें बसे एक लाख भारतीयोंकी तरफसे, और शायद उन भावी प्रवासी भारतीयोंकी तरफसे भी, जो, हम चाहते हैं, विदेशोंमें जायें और ब्रिटिश प्रजाजनोंकी मान-मर्यादाके साथ जायें, एक अर्जदारके रूपमें उपस्थित हुआ हूँ। सज्जनो, आप जानते हैं कि दक्षिण आफ्रिका लगभग भारत जितना ही बड़ा देश है और वहाँ लगभग एक लाख ब्रिटिश भारतीय रहते हैं। इनमें से पचास हजार केवल नेटाल उपनिवेशमें बसे हुए हैं। दक्षिण आफ्रिकामें वही एक ऐसा उपनिवेश है जो बाहरसे गिरमिटिया मजदूरोंको लाता है। और जहाँतक दक्षिण आफ्रिकाका सम्बन्ध है, इन मजदूरोंका प्रश्न एक बहुत बड़ी समस्या बन गया है। सज्जनो, समस्त दक्षिण आफ्रिकामें हमारी शिकायतें दो प्रकारकी हैं। पहले वर्गकी शिकायतें तो यूरोपीय उपनिवेशियोंके भारतीय-विरोधी रुखसे पैदा होती हैं। और दूसरे प्रकारकी शिकायतें उस भारतीय-विरोधी भावनासे उत्पन्न होती हैं जो दक्षिण आफ्रिकाके चारों उपनिवेशोंके कानूनोंमें उतारी गई है। पहले वर्गकी शिकायतोंका एक उदाहरण यह है कि तमाम भारतीय — फिर वे कोई भी क्यों न हों — वहाँ कुलियोंकी जमातमें शामिल किये जाते हैं। अगर हमारे सुयोग्य सभापतिजी[1] भी दक्षिण आफ्रिका जायें तो वे भी, मुझे डर है, कुली — एशियाकी अर्ध-सभ्य जातियोंके एक व्यक्ति — माने जायेंगे। सज्जनो, मैं आपके सामने केवल दो उदाहरण पेश करूँगा, जिनसे आपको मालूम हो जायेगा कि इस कुली शब्दके प्रयोगने सारे दक्षिण आफ्रिकामें कितना उपद्रव किया है। कुछ दिन पहले, मेरा खयाल है पिछले वर्ष, बम्बईके महान् आदमजी पीरभाईके सुपुत्र, जो खुद भी बम्बई निगम (कारपोरेशन) के सदस्य हैं, नेटाल आये। वहाँ उनके कोई मित्र नहीं थे। जान-पहचान भी नहीं थी। उन्होंने कई होटलोंमें जगह पानेकी कोशिश की। कुछ होटल मालिकोंने, जो शिष्ट थे, कहा कि हमारे पास जगह खाली नहीं है। किन्तु दूसरे होटल मालिकोंने

१. दिनशा ईदुलजी वाछा। देखिए खण्ड २, पृष्ठ ४२१।

साफ-साफ कह दिया कि "हम अपने होटलोंमें कुलियोंको नहीं ठहराते।" सज्जनो, इसी प्रकार एक बार अदनके स्व० कावसजी दिनशाके सुपुत्र श्री कैकोवाद भी नेटाल गये थे। बादमें वे केपटाउन चले गये थे। केपटाउनसे वे नेटाल लौट रहे थे; परन्तु उन्हें बेहद कठिनाइयोंके बाद कहीं जमीनपर कदम रखने दिया गया। उन दिनों दक्षिण आफ्रिकामें प्लेग-सम्बन्धी पाबन्दियाँ थी। नेटाल जानेके लिए उन्होंने पहले दर्जेका टिकट तो किसी तरह पा लिया, परन्तु पहुँचनेपर उनपर क्या बीती? प्लेग-अधिकारीने उनसे साफ कह दिया: "आप तो भारतीय जैसे दीखते हैं। मैं आपको जहाजसे नहीं उतरने दे सकता। मुझे आदेश है कि किसी भी रंगदार आदमीको उतरने न दिया जाये।" और आप विश्वास करेंगे? नेटालके उपनिवेश-सचिवको इसके लिए तार भेजना पड़ा, तब कहीं उन्हें जमीनपर कदम रखने दिया गया। और यह सब इसलिए कि उनकी चमड़ीका रंग काला था।

अब दूसरे वर्गकी शिकायतोंकी बात लीजिए। जहाँतक नेटालका सम्बन्ध है, मुझे भय है, वहाँ कुछ नहीं हो सकता। कानून पहले ही मंजूर हो चुका है। उसमें लिखा है कि जो भारत-वासी, स्त्री या पुरुष, प्रवासी-अधिनियमके साथ जुड़े हुए फार्मको यूरोपकी किसी भाषामें नहीं भर सकता उसे नेटालमें प्रवेश नहीं मिलेगा। यह कानून बहुत बड़ी संख्यामें भारतीयोंको नेटालमें जाकर रहनेसे रोकता है। नेटाल-उपनिवेशमें एक और कानून है, जिसे "विक्रेता-परवाना अधिनियम" (डीलर्स लाइसेन्सेज़ ऐक्ट) कहा जाता है। यह कानून परवाना-अधिका-रियोंके हाथोंमें निरंकुश सत्ता सौंप देता है। वे जिसे चाहें विक्रेता-परवाना दे सकते हैं और जिसे न देना चाहें उसे इनकार कर सकते हैं। उनके निर्णयपर अपीलके लिए कहीं कोई गुंजाइश नहीं रखी गई है। केवल स्थानिक निकायों (लोकल बोर्डों) और निगमों (कारपोरे-शनों) के —जो कि इन अधिकारियोंको नियुक्त करते हैं— सामने जाकर वे अपना दुखड़ा रो सकते हैं। इनमें से कुछने तो इन अधिकारियोंको स्पष्ट आदेश दे रखे हैं कि वे किसी भी भारतीयके नाम विक्रेता-परवाने जारी न करें। शुभाशा अन्तरीप (केप ऑफ गुड होप) उपनिवेशमें बहुत अधिक भारतीय-विरोधी कानून नहीं हैं। परन्तु जहाँतक ट्रान्सवाल और ऑरेंज रिवर उपनिवेशकी बात है, वहाँ तो, हमारे दुर्भाग्यवश, पुराने कानून ही अब भी बरते जा रहे हैं। ट्रान्सवालमें तो भारतीयोंको पृथक् बस्तियोंमें ही रहना और व्यापार करना पड़ता है। वे पैदल-पटरियोंपर नहीं चल सकते। पृथक् बस्तियोंसे बाहर कहीं भी वे जमीन-जाय-दाद नहीं खरीद सकते। ऑरेंज रिवर उपनिवेशमें तो हम केवल मजदूरोंकी हैसियतसे ही प्रवेश कर सकते हैं। अब, बम्बई प्रदेशके बिना मुकुटके राजा[1] के प्रति उचित आदर प्रकट करते हुए, मैं मानता हूँ कि ट्रान्सवाल और ऑरेंज रिवर उपनिवेशमें हमारी हालत इतनी खराब इसलिए है कि ब्रिटिश प्रजाजनोंके नाते हमारे अधिकारोंकी रक्षा करनेके लिए उचित कदम नहीं उठाये गये। और अगर नेटालमें कुछ न किया गया होता, तो वहाँ भी हमारी हालत आजकी अपेक्षा बेहद खराब होती। समस्त दक्षिण आफ्रिकामें यही स्थिति है।

अब सवाल यह है कि इस विषयमें कांग्रेस क्या कर सकती है? जहाँ तक ट्रान्सवालका प्रश्न है, श्री चेम्बरलेनके दिलमें अबतक हमारे प्रति बहुत सहानुभूति रही है। पिछली हुकूमतके दिनोंमें उन्होंने हमारे दुखड़ोंके प्रति सहानुभूति प्रकट की थी। परन्तु उस समय वे प्रत्यक्ष कुछ नहीं कर सके थे, क्योंकि वे लाचार थे। अब ऐसी स्थिति नहीं है। वे सर्वेसर्वा हैं। उन्होंने लॉर्ड मिलनरसे सलाह-मशविरा करनेका वादा किया है कि पुराने क़ानूनको किस प्रकार बदला जा सकता है। इसलिए हम दक्षिण आफ्रिकावालोंके लिए अगर कुछ हो सकता है तो

१. फीरोजशाह मेहता।

अभी, नही तो कभी कुछ नही हो सकेगा। यह सलाह ले लेने और जो फेरफार उन्हें करने हैं उनके एक बार हो जानेके बाद तो कुछ भी नही हो सकेगा। इंग्लैंडमें जो हमारे हितैषी है, वे अपने पत्रोंमें मुझे लिखते है : "भारतकी जनतामें आन्दोलन कीजिए। वह सभाएँ करे। अगर सम्भव हो तो वाइसरायके पास शिष्टमण्डल भेजिए और यहाँ हमारे हाथ मजबूत करनेके लिए जो-जो भी वहाँ किया जा सकता हो, कीजिए। अधिकारियोंको हमदर्दी है और आपको न्याय मिल सकता है।" यह एक तरीका है, जिससे आप हमारे प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट कर सकते हैं। परन्तु हम केवल जवानी सहानुभूति नही चाहते। हम आपसे धन भी नही चाहते। धनके मामलेमें तो दक्षिण आफ्रिकामें बसे हुए हमारे देशभाइयोंने यहाँके अकाल-पीड़ितोंकी खासी सहायता की है। *टाइम्स ऑफ़ इंडियामें* अकाल-पीड़ितोंके जो चित्र छपे थे उन्हें वहाँकी जनताके लिए हमने पुनः मुद्रित किया था। आप यह सुनकर आश्चर्य करेंगे कि उपनिवेशमें जो भाई पैदा हुए हैं उन्होंने जब इन चित्रोंको देखा तब उनकी आँखोंमें आँसू आ गये। केवल भारतीयोंने २,००० पौंड चन्दा दिया था। और मुझे स्वीकार करना चाहिए कि उस समय यूरोपीयोंने भी अच्छी मदद दी थी। परन्तु मै तो प्रस्तुत विषयपर आऊँ। हमारे प्रतिनिधियोंमें प्रभावशाली पत्रोंके सम्पादक हैं, बैरिस्टर हैं, व्यापारी हैं, राजा-महाराजा आदि हैं। ये सब बहुत व्यावहारिक मदद कर सकते हैं। सम्पादक इस विषयमें सही-सही जानकारी एकत्र करके अपने पत्रोंमें प्रवासी भारतवासियोंके सारे प्रश्नका और हमारे दुखड़ोंका व्यवस्थित विवरण दे सकते हैं। भिन्न-भिन्न प्रकारका व्यवसाय करनेवाले लोग दक्षिण आफ्रिकामें जाकर बस सकते हैं और इस तरह अपनी और अपने देशभाइयोंकी सेवा कर सकते हैं। मै मानता हूँ कि कांग्रेस दूसरी बातोंके साथ-साथ यह भी प्रमाणित कर सकती है कि विदेशोंमें जाकर तरह-तरहके साहसिक काम करने और स्वशासन सम्बन्धी योग्यतामें हम संसारकी दूसरी सभ्य जातियोंकी अपेक्षा किसी प्रकार कम नहीं है। अब, अगर हम यूरोपीयोंके प्रवासपर नजर डालें तो देखेंगे कि शुरू-शुरूमें साहसिक लोग दूसरे देशोंमें जा पहुँचते हैं। उनके बाद व्यापारी वहाँ जाते हैं। इनके पीछे-पीछे मिशनरी, डॉक्टर, वकील, कारीगर, इंजीनियर और खेती करनेवालों आदिका ताँता बँध जाता है। ऐसी सूरतमें वे जहाँ-कहीं जाकर बसते है वहाँ स्वतन्त्र, वैभवशाली और स्व-शासित कौमोंके रूपमें अगर जम जायें तो इसमें कौन बड़ी आश्चर्यकी बात है? हमारे व्यापारी दक्षिण आफ्रिका, जंजीबार, मॉरिशस, फीजी, सिंगापुर, आदि संसारके भिन्न-भिन्न भागोंमें हजारोंकी संख्यामें गये हैं। क्या उनके पीछे भारतीय धर्मोपदेशक, बैरिस्टर, डॉक्टर, तथा अन्य पेशे करनेवाले भारतीय भी वहाँ गये है? कितने दुःखकी बात है कि इन गरीब प्रवासी भारत-वासियोंको धर्मकी शिक्षा देनेका प्रयास यूरोपीय धर्मोपदेशक करते है। यूरोपीय वकील-बैरिस्टर उनकी कानूनी सहायता करते हैं और यूरोपीय डॉक्टर जो उनकी भाषा भी नही जानते उनका इलाज करनेका प्रयास करते हैं। इन दूर देशोंमें बसे भारतीय व्यापारियोंको अपने अधिकारोंका कुछ भी ज्ञान नहीं। दिलमें खूब उत्साह है। परन्तु उसका उपयोग कहाँ और किस प्रकार करें यह वे नही जानते। बेचारे अपरिचित लोगोंके बीच पड़े हुए हैं। वहाँके लोगोंमें उनके बारेमें जाने क्या-क्या गलत धारणाएँ बनी हुई हैं और उन्हें दूर करनेमें वे अपने-आपको असमर्थ पाते हैं। ऐसी सूरतमें अगर वे अपने-आपको अंधेरेमें टटोलते हुए पायें और अपमान तथा अवमाननाओंके शिकार बनें तो इसमें आश्चर्यकी बात क्या है? बेचारे यह सब चुपचाप सहते रहते हैं। आज शामको इस अधिवेशनका प्रारम्भ एक गीतके साथ हुआ, जिसके अन्तिम पद्यमें कहा गया है कि हमें विदेशोंमें जाना चाहिए। हमारे अन्दर नैतिक साज-सज्जाके रूपमें शुद्ध प्रामाणिकता और स्वदेश-प्रेम हो, पूंजीके रूपमें ज्ञान हो और राष्ट्रीय बलके स्रोतके रूपमें एकता

हो। सज्जनो, आज मैं जिन सुयोग्य पुरुषोंको अपने सामने देख रहा हूँ इनमें से अगर कुछ भी इस भावनासे दक्षिण आफ्रिका चले जायें तो हमारी सारी शिकायतोंका अन्त हो सकता है।

[अंग्रेजीसे]

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित "सेवन्टीन्थ इंडियन नेशनल कांग्रेस" (१९०२) से।

## १६५. भाषण: कलकत्तेकी सभामें[1]

कलकत्ता
जनवरी १९, १९०२

श्री गांधीने आम तौरसे दक्षिण आफ्रिकाकी चर्चा करते हुए उस महाखण्डके निवासी ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थितिपर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि नेटालमें प्रवासी-प्रतिबन्धक-अधिनियम, परवानोंसे सम्बन्धित कानून और सरकार द्वारा भारतीय बच्चोंकी शिक्षाका प्रबन्ध चिन्ताके मुख्य विषय हैं। ट्रान्सवालमें भारतीय जमीन-जायदाद नहीं रख सकते और न पृथक् बस्तियोंके सिवा कहीं अन्यत्र व्यापार कर सकते हैं। वे पैदल-पटरियोंपर भी नहीं चल सकते। ऑरेंज रिवर कालोनीमें तो भारतीय मजदूरोंके सिवा और किसी रूपमें घुस भी नहीं सकते। और मजदूरोंकी हैसियतसे भी खास मंजूरी लेकर ही घुस सकते हैं। उन्हें दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंके साथ होनेवाले व्यवहारकी बहुत-सी बातें, जो अखबारोंमें पहले ही छप चुकी थीं, दोहरानी पड़ीं। किन्तु उन्होंने कहा कि, मैं आप लोगोंके सम्मुख स्थितिका भयानक पक्ष, जिससे कि आप आंशिक रूपसे पहले ही परिचित हैं, प्रस्तुत करनेके उद्देश्यसे नहीं आया हूँ, बल्कि आया हूँ उसका उज्ज्वल, खुशनुमा पक्ष रखनेके लिए। बादमें उन्होंने बताया कि किस प्रकार वे लड़ाई छिड़नेके समयसे कुछ उपनिवेशियोंकी सहानुभूति प्राप्त करनेमें सफल हुए हैं। उनके विचारमें भारतीयोंका मामला कुछ प्रगति कर रहा है। किन्तु उन्होंने उस भारतीय-विरोधी कार्रवाईकी जोरदार निन्दा की जिसका उद्देश्य ऐसे प्रत्येक भारतीयको, जो कोई भी यूरोपीय भाषा नहीं पढ़ सकता, उपनिवेशसे निकाल बाहर करना है। सभामें उपस्थित सज्जन, जो सभी कमसे-कम अंग्रेजी भाषा जानते हैं, सम्भव है, यह न समझ सके हों कि स्थिति कितनी गम्भीर है; किन्तु इसका असर उस लोक-समुदायपर घातक होगा, जिसका बहुत बड़ा भाग निरक्षर है और जो केवल भारतीय देशी भाषाएँ जानता है। बेशक उन लोगोंके प्रति उपनिवेशियोंका द्वेष तीव्र है, परन्तु, श्री गांधीने कहा, मेरा इरादा उस द्वेषको प्रेमसे जीतनेका है।

वक्ताने श्रोताओंसे अनुरोध किया कि वे उनके इस वक्तव्यको केवल औपचारिक न समझें। दक्षिण आफ्रिकी भारतीय इस सिद्धान्तपर विश्वास करते हैं और इसपर चलनेका प्रयत्न करते हैं। पिछला युद्ध दूसरोंके लिए अवश्य ही विनाशक सिद्ध हुआ होगा, किन्तु भारतीयोंके लिए वह वरदान बनकर आया, क्योंकि उसमें उन्हें अपनी क्षमता दिखानेका अवसर मिला। लड़ाईसे पहले उपनिवेशी उन्हें ताना मारा करते थे कि जब खतरेका वक्त आयेगा, भारतीय गीदड़ोंकी भाँति दुम दबा कर भाग जायेंगे; और ये ही लोग हमारे समान अधिकारोंकी माँग करते हैं! किन्तु युद्धने दिखा दिया कि भारतीय दुम दबाकर भागे नहीं। उन्होंने पहियेमें अपने कन्धोंका

१. गांधीजीने अल्बर्ट हाल, कलकत्तामें हुई एक सार्वजनिक सभामें भाषण दिया था, यह उसी भाषणका पत्रोंमें प्रकाशित संक्षिप्त विवरण है।

बल लगाया और वे अन्योंके साथ बराबरीकी जिम्मेदारी उठानेके लिए तैयार हो गये। जब लड़ाई शुरू हुई, तब अपनी इस रायका खयाल किये बिना ही कि युद्ध उचित है या अनुचित (उनका खयाल था कि उसके लिए सम्राट् और केवल सम्राट् ही उत्तरदायी है), उन्होंने सरकारको अपनी सेवाएँ मुफ्त देना स्वीकार किया और इसी विचारसे उन्होंने सरकारको एक प्रार्थनापत्र दिया। किन्तु उनकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की गई। परन्तु इसके तुरन्त बाद ही कर्नल गालवेने, जिसे कोलेंजोकी लड़ाईका कुछ पूर्वाभास मिल गया था, एक प्रमुख भारतीय[1] को एक आहत-सहायक दल संगठित करनेके लिए लिखा और वह दल बनाया गया, जिसमें ३६ भारतीय नायकोंके रूपमें और १,२०० भारतीय आहत-वाहकोंके रूपमें शामिल हुए। भारतीयोंने देशकी कैसी सेवा की, यह वे सभी जानते हैं और उसकी प्रशंसा उन उग्रपंथी उपनिवेशियोंको भी करनी पड़ी, जिन्होंने उस समय पहली बार भारतीयोंमें अच्छे संस्कारोंकी झाँकी देखी।

श्री गांधीने आगे कहा कि उपनिवेशियोंमें भारतीयोंके विरुद्ध जो घृणा-भाव उत्पन्न हुआ उसके लिए एक अर्थमें स्वयं भारतीय ही दोषी हैं। यदि भारतीय प्रवासियोंके पीछे कुछ अधिक अच्छे वर्गके भारतीय भी गये होते, जो जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें उपनिवेशियोंकी बराबरी कर सकते, तो इतना मनोमालिन्य उत्पन्न न हुआ होता। किन्तु अब भावनाएँ सुधर रही हैं। वे यहाँतक सुधर गई हैं कि भारतके पिछले अकालमें सहायता देनेके लिए कुछ भारतीयोंने एक राष्ट्रीय अकाल-कोश खोलकर जो ५,००० पौंड इकट्ठे किये थे, उनमें से ३,३०० पौंड उपनिवेशियोंने दिये थे।

वक्ताने अपना कथन समाप्त करते हुए कहा कि इस सभामें मेरा उद्देश्य केवल इतना था कि दोनों समुदायोंकी अच्छाइयोंको प्रकाशमें लाया जाये। वैसे कड़वाहट भी है, किन्तु अच्छाइयोंका खयाल करना ज्यादा अच्छा है। भारतीय आहत-सहायक दल उसी भावनासे संगठित किया गया था। यदि भारतीय लोग ब्रिटिश प्रजाके अधिकार माँगते हैं तो उन्हें उस स्थितिके दायित्वोंको भी स्वीकार करना चाहिए। जिस आहत-सहायक दलमें भारतीय मजदूरोंने मजदूरी लिये बिना काम किया था उसके कामका उल्लेख जनरल बुलरके खरीतोंमें विशेष रूपसे किया गया है।

[अंग्रेजीसे]

*इंग्लिशमैन*, २०-१-१९०२

*अमृत बाजार पत्रिका*, २१-१-१९०२

१. यह गांधीजी स्वयं थे। देखिए "पत्र: कर्नल गालवेको", जनवरी ७, १९००।

## १६६. पत्र: छगनलाल गांधीको

इंडिया क्लब[1]
[कलकत्ता]
जनवरी २३, १९०२

चि० छगनलाल,

तुम्हारी चिट्ठी मिली। पढ़कर खुश हुआ हूँ। तुम अंग्रेजीमें ही लिखते रहना। मेहताजी[2] को वेतन चुका देना। पैसा अपनी काकीसे ले लेना।

चि० गोकलदास[3] और हरिलाल[4] को तुम [कहानी सुनाते हो तो *काव्यदोहन*[5] में से पढ़कर सुनाना ज्यादा अच्छा है। *काव्यदोहन*के सारे भाग मेरी किताबोंमें हैं। उनमें से सुदामा-चरित्र, नलाख्यान, अंगदविष्टि [अंगदका दौत्य] आदि जो कथाएँ हैं, वे अर्थसहित सुनाओ तो बहुत अच्छा। हरिश्चंद्रकी कथा जबानी या किताबमें से पढ़कर सुनाओ। अंग्रेजी कवियोंके नाटक अभी सुनाना जरूरी नहीं है। उनमें रस भी बहुत नहीं मिलेगा। इसके अलावा, हमारी प्राचीन कथाओंमें जितना सार ग्रहण करनेको है उतना अंग्रेजी कवियोंकी रचनाओंमें नहीं मिल सकता।

कक्षामें बच्चोंका बरताव ठीक रहे, इसका खयाल रखना। तुम और किनको पढ़ाने जाते हो और क्या मिलता है सो लिखना।

चि० मणिलालका क्या हाल है यह भी लिखना। बच्चोंको बिलकुल कुटेव न लगे इसका ध्यान रखना। जिससे हमेशा सत्यके प्रति अतिप्रेम रहे ऐसा झुकाव रखाना।

पढ़ानेके साथ कसरत भी माकूल कराते रहना।]

मुरब्बी खुशालभाई तथा देवभाभीको दण्डवत्।

शुभचिन्तक,
मोहनदासके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० २९३७) से।

१. कलकत्ता आकर पहले गांधीजी क्लबमें रुके; बादमें श्री गोखलेके पास चले गये।
२. गांधीजीके मुंशी।
३. गांधीजीके भानजे
४. गांधीजीके सबसे बड़े पुत्र।
५. महाभारत, भागवत आदिकी कथाओंपर आधारित गुजराती काव्य-कथाओंका संग्रह।

## १६७. पत्र : दलपतराम भवानजी शुक्लको

[ कलकत्ता ]
जनवरी २५, १९०२

प्रिय शुक्ल,

मैं अगले मंगलको रंगून रवाना हो रहा हूँ।

मैं एक तरहसे सफल हुआ हूँ। बंगाल व्यापार-संघ (चेम्बर ऑफ कॉमर्स) के अध्यक्षसे मिला था। उन्होंने इस मामले[1] में खुद दिलचस्पी ली और वाइसरायसे भेंटकी प्रार्थना की। वाइसरायने शिष्टमण्डलसे मिलनेके बजाय अत्यन्त सहानुभूतिपूर्ण उत्तर[2] दिया है। अध्यक्षने, जब भी जरूरी हो, एक स्मरणपत्र भेजनेका वचन भी दिया है।

मैंने भाषण भी दिये हैं।[3] नेताओंने निश्चय ही इस प्रश्नमें दिलचस्पी लेना शुरू कर दिया है।

मेरे घर जानेके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। कृपया कभी-कभी वहाँ जाते रहें। ऐसा लगता है कि सभी लड़कोंको बारी-बारीसे बुखार आ रहा है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (जी० एन० २३२८) से।

## १६८. कलकत्तेमें भाषण[4]

[ कलकत्ता
जनवरी २७, १९०२ ]

सभापतिजी और सज्जनो,

गत रविवारको समाप्त हुए सप्ताहमें मुझे अपने दक्षिण आफ्रिकाके अनुभव आपको सुनानेका सम्मान प्राप्त हुआ था। आपको याद होगा कि अपने भाषणमें मैंने बताया था कि वहाँ हमारे देश-भाइयोंने अपनेपर लगी कानूनी बन्दिशोंके सम्बन्धमें जिस नीतिसे काम लिया है, उसका सार दो नीति-वचनोंमें बताया जा सकता है। वे वचन हैं : चाहे कितनी भी कीमत चुकानी पड़े, सत्यपर दृढ़ रहना और द्वेषको प्रेमसे जीतना। यह हमारा आदर्श है, जिसे

१. दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंका प्रश्न।

२. उत्तर यह था कि वाइसराय व भारत-सरकारके विचार कई बार ब्रिटिश सरकारके सामने जोरोंसे रखे जा चुके हैं और उपनिवेश-मन्त्रीके द्वारा ही कोशिशें करना उचित है। निर्णय आखिर उन्हें ही करना है, और उनकी सहानुभूतिका आश्वासन मिल चुका है (एस० एन० ३९३१)।

३. एक भाषण उन्होंने १९ जनवरीको एक सार्वजनिक सभामें दिया था।

४. अल्बर्ट हॉल, कलकत्ताके इस दूसरे भाषणमें प्रमुख रूपसे बोअर-युद्धमें भारतीय आहत-सहायक दल द्वारा किये गये कार्योंपर प्रकाश डाला गया है।

हम प्राप्त करना चाहते हैं। उस दिन आपसे मैंने याचना की थी और आज फिर कर रहा हूँ कि, आप विश्वास रखें, हमारे लिए ये सिर्फ तकियाकलाम नहीं है, बल्कि इन तमाम पिछले वर्षोंमें हमने इन आदर्शोंके अनुसार चलनेका प्रयत्न किया है। वर्तमान युद्धमें स्थानिक भारतीयोंका योगदान शायद इस कार्यसरणीका सबसे अच्छा उदाहरण है।

आप जानते ही हैं, जब सन् १८९९ में बोअरोंने अन्तिम चुनौती दी, उस समय ब्रिटिश सरकार तैयार नहीं थी। ब्रिटिश सरकारका जवाब मिलते ही अपनी पहलेसे निश्चित योजनाके अनुसार बोअर नेटालकी सीमाको लाँघकर अन्दर घुस आये। सर डब्ल्यू० पेन सिमन्सने जानको झोंककर दुश्मनकी फौजोंको तालाना टेकड़ीके पास कुछ समयके लिए रोका। और सर जॉर्ज व्हाइट[1]ने अपने १०,००० वीरोंके साथ लेडीस्मिथमें अपने आपको घिर जाने दिया। ये घटनाएँ इस तरह अनपेक्षित और आश्चर्यजनक रीतिसे और एकके बाद एक ऐसी तेजीसे घटीं कि लोगोंको मुड़कर देखने और विचार करनेका समय नहीं मिला। मेफ़िकिंग और किम्बरले पर एक साथ ही घेरा पड़ गया। आधा नेटाल बोअरोंके हाथोंमें था। और हम अक्सर सुनते थे कि बोअर मैरित्सबर्ग लेकर डर्बनपर कब्जा करनेवाले हैं। परन्तु लोगोंको शायद आश्चर्य होगा कि सर जॉर्ज और उनकी फौजने अपने आपको घिरवाकर नेटालको बचा लिया और इस तरह बोअर-सेनापति और उसकी सेनाकी उत्तम टुकड़ीको वहीं उलझा रखा। यह थी उस उपनिवेशको ब्रिटिश भारतकी सहायता।

नेटालकी जनताने इन तमाम घटनाओंका जिस शान्ति और दृढ़तासे मुकाबला किया उसकी जितनी तारीफ की जाये, थोड़ी है। और इससे ब्रिटिश शक्तिका रहस्य प्रकट होता है। कोई हलचल नहीं थी। व्यापार-व्यवसाय इस तरह चल रहा था मानो कुछ हुआ ही नहीं। नेटालकी सरकार जरा भी विचलित नहीं हुई थी। यद्यपि खजाना लगभग खाली था, तथापि नौकरोंको बराबर तनख्वाहें दी जा रही थीं। अंग्रेजी जीवनके साधारण शिष्टाचारोंका पालन किया जा रहा था। खाकी वर्दीवाले पुरुषोंकी इतनी बड़ी उपस्थिति और बन्दरगाहपर असाधारण हलचल न होती तो आपको यह खयाल भी नहीं हो सकता था कि डर्बनके हाथसे निकल जानेका खतरा सरपर है।

स्वयंसेवकोंकी माँग हुई और पुकारके २४ घण्टेके अन्दर डर्बन अपने सर्वोत्तम पुत्रोंसे खाली हो गया। सवाल यह था कि ऐसे संकटकालमें उपनिवेशमें रहनेवाले ५०,००० भारतीय क्या रुख धारण करें? इसका उत्तर निश्चित उत्साहके रूपमें सामने आया। ब्रिटिश प्रजाजनोंके नाते हम विशेषाधिकार माँग रहे थे। अब उस हैसियतकी जिम्मेदारियाँ अदा करनेका समय आ गया। जिस नीतिका शुरूमें जिक्र किया जा चुका है उसपर अगर अमल करना है तो हमें स्थानीय मतभेद भुलाने ही होंगे। लड़ाई सही है या गलत, इस प्रश्नसे हमें कुछ मतलब नहीं था। इसका निर्णय करना बादशाहका काम था। इसी उद्देश्यके लिए निमन्त्रित एक बड़ी सभामें आपके देशभाइयोंने इस तरहके विचार प्रकट किये। उपनिवेशमें भारतीयोंके बारेमें अक्सर कहा जाता था कि यदि युद्ध होगा तो ये भारतीय गीदड़ोंकी तरह भाग जायेंगे। इस आरोपके जवाब देनेका अवसर आ पहुँचा। उस सभामें निश्चय किया गया कि तमाम उपस्थित लोग अपनी सेवाएँ सरकारको अर्पित कर दें और उससे कह दें कि लड़ाईमें जो भी काम उनकी योग्यतानुसार उनको दिया जायेगा उसे वे बगैर किसी वेतनके करेंगे। सरकारने इन स्वयंसेवकोंको धन्यवाद देते हुए अपने जवाबमें कहा कि अभी उनकी

१. सर जॉर्ज व्हाइट पहले भारतीय सेनाके प्रधान सेनापति थे।

सेवाकी जरूरत नहीं है। इस बीच इंग्लैंडसे वहाँ एक ऐसे सज्जन पधारे जिन्होंने चर्च ऑफ इंग्लैंडके मातहत भारतमें बीस वर्षतक ईसाई मिशनके डॉक्टरकी हैसियतसे काम किया था। उनका नाम है कैनन बूथ। आजकल वे सेंट जॉनके डीन हैं। उन्हें यह देखकर आनन्द हुआ कि भारतीय लड़ाईमें साम्राज्यकी सेवा करनेके लिए तैयार हैं। उन्होंने उन्हें शुश्रूषा-दलके नायकोंके रूपमें प्रशिक्षण देनेका प्रस्ताव किया। और भारतीय स्वयंसेवक डॉक्टर बूथसे कई हफ्तोंतक घायलोंकी प्राथमिक परिचर्याका पाठ पढ़ते रहे। इस बीच जनरल बुलरकी फौजके मुख्य चिकित्साधिकारी कर्नल गालवेको यह खयाल हुआ कि कोलेंजोमें एक भयंकर लड़ाई होने-वाली है। अतः उसके घायलोंकी सेवाके लिए तैयार रहनेके हेतु उन्होंने एक यूरोपीय शुश्रूषा-दल खड़ा करनेके लिए सूचनाएँ जारी कीं। इसपर हमने सरकारको तार द्वारा सूचित किया कि किस प्रकार हम स्वयं अपने-आपको इस कामके योग्य बना रहे हैं। सरकारसे हमको सूचना मिली कि हमें भारतीय आहत-सहायक दल बनानेमें प्रवासी भारतीयोंके संरक्षककी मदद करनी चाहिए। चार पाँच दिनके अन्दर भिन्न भिन्न जायदादोंसे कोई एक हजार भारतीय एकत्र कर लिये गये। वास्तवमें वे इस तरह अपनी सेवाएँ देनेके लिए बँधे नहीं थे और न उनपर किसी प्रकार जरा भी दबाव ही डाला गया था। बिलकुल खुशी-खुशी वे अपनी सेवाएँ देनेको तैयार हो गये थे। यूरोपीय स्वयंसेवकोंके साथ उन्हें भी, जबतक वे कामपर रहते थे, भोजनके अलावा हफ्तेमें एक पौंड दिया जाता था। परन्तु मैं आपको बता देना चाहता हूँ कि इन डोली (स्ट्रेचर) उठानेवालोंमें कितने ही भारतीय व्यापारी थे और वे चार पौंड मासिकसे कहीं अधिक पैदा करते थे। इससे उनकी सेवाओंके मूल्यकी आप ठीक-ठीक कल्पना कर सकेंगे। परन्तु जैसा कि एक अधिकारीने कहा था, यह युद्ध अनेक बातोंमें आश्चर्योंका युद्ध था। यूरोपीय स्वयंसेवकोंमें भी बड़ेसे-बड़े प्रतिष्ठित पुरुष थे, जो घायलोंको ढोनेका यह काम कर रहे थे। घायलोंकी सेवा करना एक विशेष सम्मानका काम समझा जाता था। और यह सही भी है।

परन्तु प्रशिक्षण-प्राप्त नायक कोई पुरस्कार नहीं लेते थे। सुयोग्य डॉ० बूथ भी हमारे साथ बगैर किसी वेतनके नायकका काम कर रहे थे। कर्नल गालवेने बादमें उनको इन दलोंका चिकित्साधिकारी (मेडिकल आफिसर) नियुक्त किया। नायकोंमें दो भारतीय बैरिस्टर[1], आढ़-तियोंकी लन्दन-स्थित एक प्रसिद्ध दूकानसे सम्बन्धित एक भद्र पुरुष, दूकानदार और मुंशी थे।

इस प्रकार जो दल बना वह कोलेंजोकी लड़ाईके तुरन्त बाद अपने काममें जुट गया। भूखे, प्यासे और थके, हम गोधूलिवेलामें चियेवेलीकी छावनीमें पहुँचे। दुश्मनकी छिपी हुई फौजके साथ अभी-अभी एक भयंकर लड़ाई समाप्त हुई थी। कर्नल गालवे हमें देखते ही दलके अधीक्षक (सुपरिंटेंडेंट) के पास आये और उन्होंने पूछा कि क्या हम अभी, इसी क्षण, घायलोंको स्थायी अस्पतालमें पहुँचा सकेंगे? अधीक्षकने अपने नायकोंपर प्रश्नात्मक नजर डाली और नायकोंने फौरन जवाब दिया कि वे तैयार हैं। रातके १२ बजे तक कोई तीस घायल अफसर तथा सिपाही अस्पताल पहुँचाये गये। काम इतनी मुस्तैदीसे किया गया कि अब वहाँसे उठानेके लिए कोई घायल नहीं बचा था। मध्य रात्रिमें १२ बजे थे, जब अधिकतर स्वयंसेवकोंने अपने मुँहमें अन्न डाला। इनमें कई ऐसे लोग थे जिनको इस तरहका परिश्रम करने और भूखे रहनेकी कभी आदत नहीं थी।

फासला पाँच मीलका था। यूरोपीय शुश्रूषा-दल, जो सेनासे सम्बन्धित था, लड़ाईके मैदानसे घायलोंको मोर्चेके अस्पतालतक लाता था। वहाँ उनके घावोंकी मरहम-पट्टी होती

१. गांधीजी और उनके सहयोगी, खान।

थी। हम उनको स्थायी अस्पतालमें पहुँचाते थे। प्रत्येक डोली (स्ट्रेचर) के लिए छः उठानेवाले और ऐसे तीन दलोंपर एक नायक होता था, जिसका काम उठानेवालोंका मार्गदर्शन करना तथा घायलोंका दवा-पानी करना था।

दूसरे दिन सुबह नाश्ता करनेसे पहले ही फिर काममें लग जानेकी आज्ञा मिली। काम दिनके ११ बजेतक चलता रहा। घायलोंको हटानेका काम मुश्किलसे पूरा हो पाया था कि हमें डेरा उखाड़ने और कूच करनेकी आज्ञा हो गई। कर्नल गालवेने शुश्रूषा-दलको उसकी सेवाओंके लिए व्यक्तिगत रूपसे धन्यवाद दिया और उसका विघटन कर विश्वास प्रकट किया कि अगर फिर कहीं काम पड़ा तो उन्हें ऐसा ही सहयोग मिलेगा। इस बीच जनरल बुलर लेडीस्मिथ पहुँचनेके लिए स्पिओन कॉपके बीचसे होकर अपनी फौजोंको टुगेलाके उस पार लिये जा रहे थे। दस दिनके विश्रामके बाद दलोंके मुख्य चिकित्साधिकारी (पी० एम० ओ०) ने शुश्रूषा-दलोंको फिर संगठित करनेकी आज्ञा भेजी। और तीन दिनके अन्दर फिर एक हजारसे ऊपर आदमी एकत्र हो गये।

स्पिओन कॉप फ्रीअरसे कोई २८ मील है। फ्रीअर रेलवेका मूल केन्द्र और स्टेशन था। रेल द्वारा घायलोंको साधारण अस्पतालोंमें पहुँचानेके लिए पहले उन्हें यहीं लाना पड़ता था। स्पिओन कॉप, अर्थात् स्पिओनकी टेकरी, एक जंगलकी आड़में है। वहीं मोर्चेका अस्पताल बनानेके लिए तम्बू खड़े किये गये थे। वहाँ मरहमपट्टी हो जानेके बाद घायलोंको कोई तीन मीलके फासलेपर स्पिअरमैनकी छावनीमें ले जाया जाता था। स्पिअरमैनकी बाड़ी (फार्म) और मोर्चा-अस्पतालके बीच एक तंग-सी नदी पड़ती थी। इस नदीपर पीपोंका एक अस्थायी पुल बनाया गया था, जो बोअर-तोपोंकी मारके अन्दर पड़ता था। और स्पिअरमैनकी छावनी तथा फ्रीअरके बीचका रास्ता पहाड़ी और कुछ अधिक ऊबड़खाबड़ था।

तोपोंकी मारके अन्दर न तो यूरोपीय दलोंको और न भारतीय दलोंको काम करना था। परन्तु यूरोपीय दलोंको कोलेंजो और स्पिओन कॉपमें तोपोंकी मारके अन्दर काम करना पड़ा और भारतीय दलोंको केवल स्पिओन कॉप और वालक्रांजमें। कर्नल गालवेके सचिव मेजर बैप्टीका बड़े-बड़े खतरोंका सामना करनेके कारण बड़ा आदर था। वे विक्टोरिया क्रॉससे विभूषित थे। उन्होंने हमें सम्बोधन करते हुए कहा :

> सज्जनो, आपको तोपोंकी मारके बाहर काम करनेके लिए नियुक्त किया गया है। मोर्चेके अस्पतालमें बहुतसे घायल पड़े हैं, जिनको वहाँसे हटानेकी जरूरत है। इसकी आशंका है, यद्यपि वह बहुत दूर है, कि उस पीपोंवाले पुलपर बोअर एक-दो गोले डाल दें। इस छोटे-से खतरेके बावजूद भी अगर आप उस पुलको लाँघ कर जानेको तैयार हों तो बड़ी खुशीसे मैं आपका नेतृत्व करूँगा। परन्तु चाहें तो आप इनकार करनेके लिए स्वतंत्र हैं।

ये शब्द इतने उत्साहसे और इतनी कृपालुता तथा सुजनतासे कहे गये थे कि मैंने, जितना मुझसे बन पड़ा, ठीक उसी तरह आपको सुनानेकी कोशिश की है। इस वीर मेजरका अनुगमन करना नायकों और आदमियोंने एक स्वरसे स्वीकार कर लिया। स्पिओन कॉपमें ब्रिटिश फौजोंकी आकस्मिक हारसे हमको वहाँ लगातार तीन हफ्ते काम करना पड़ा, यद्यपि दलको वहाँ नौ हफ्तेसे ऊपर कामपर रहना पड़ा था। घायलोंके अनमोल बोझको लेकर हमें तीन-चार बार पच्चीस मीलका फासला प्रतिदिन तय करना पड़ा था। और अगर आप मुझे इजाजत दें तो बिना किसी आत्मप्रशंसाके मैं कहूँगा कि इस दलका काम सारी उम्मीदोंके बाहर इतना

अच्छा साबित हुआ कि जो इसपर राय देनेके अधिकारी हैं खुद उन्होंने स्वीकार किया है कि घायलोंको उठाकर पच्चीस-पच्चीस मील चलना एक रिकार्ड कायम करनेकी बात है। खुद कर्नल गालवेने हमें दो दिनमें यह फासला तय करनेकी छूट दी थी।

जनरल बुलरने अपने खरीतोमें इस दलके कामोंका सम्मानपूर्वक उल्लेख किया है।

यह है, नेटालके भारतीय आहत-सहायक दलकी सेवाओंका, संक्षेपमें, लेखा।

जो भारतीय व्यापारी अपने व्यापारको छोड़कर दलमें शरीक नहीं हो सकते थे उन्होंने जरूरतमन्द स्वयंसेवक-नायकोंके परिवारोंके निर्वाहके लिए धन इकट्ठा किया और उनके लिए वर्दियाँ मुहैया कर दी।

डर्बन देशभक्त महिला संघ कोश (डर्बन विमन्स पैट्रिऑटिक लीग फंड) को भी एक अच्छी रकम लड़ाईपर गये स्वयंसेवकोंके लिए भेजी गई थी। भारतीय महिलाओंने तकियोंके गिलाफ, वास्कट वगैरा बनाकर लड़ाईमें अपना हिस्सा अदा किया।

घायलोंको देनेके लिए व्यापारियोने हमें सिगरेटें भी भेजी। यह सब धन ऐसे समय एकत्र किया गया था जब कि नेटालका भारतीय समाज, सामान्य शरणार्थी सहायता कोशको छुए बिना, ट्रान्सवाल तथा शत्रु द्वारा अधिकृत नेटालके भागोंसे आये हुए हजारों शरणार्थी भारतीयोंका उदर-पोषण कर रहा था।

इस मौकेपर अगर मैं आपको यह न बताऊँ कि जब ब्रिटिश सैनिक कामपर होता है अथवा अस्थायी पराजयकी स्थितिमें होता है तब उसका जीवन कैसा होता है, तो मैं अपने प्रति सच्चा नही हूँगा। पिछले रविवारको समाप्त होनेवाले सप्ताहमें मैंने आपको ट्रैपिस्ट मठकी प्रशान्त स्तब्धताका वर्णन सुनाया था। हममें से कुछको सुनकर आश्चर्य होगा, परन्तु उन विशाल छावनियोंके अन्दर भी ऐसी ही स्तब्धता विद्यमान थी, यद्यपि वहाँ अधिकसे-अधिक हलचल थी। परन्तु उस दिलको हिला देनेवाले समयमें कोई एक मिनट भी बेकार नही खो रहा था। सर्वत्र सम्पूर्ण व्यवस्था और सम्पूर्ण स्तब्धता थी। उस समय अंग्रेज सिपाही बहुत प्यारा लग रहा था। वह हमसे और हमारे आदमियोंसे बिलकुल खुले दिलसे मिलता-जुलता था। जब कभी उसे कोई अच्छी भोजन आदिकी चीज मिलती, हमें उसका हिस्सेदार बनाता था। एक बार इस खियेवेलीकी छावनीमें ऐसा किस्सा हो गया जिसे कभी भुलाया नहीं जा सकता। उस दिन बहुत गरमी पड़ रही थी। पानीकी बेहद कमी थी। केवल एक कुआँ था। एक अधिकारी प्यासोंको टीनके डिब्बोंमें थोड़ा-थोड़ा पानी बाँट रहा था। इस समय कुछ डोली (स्ट्रेचर) वाले अपना काम करके लौटे। अंग्रेज सिपाही जो पानी पी रहे थे, हमारे इन आदमियोंको खुशीके साथ अपने हिस्सेमें से पानी देने लगे। और मैं कैसे बताऊँ, वर्ण और धर्मकी अपेक्षा न करनेवाला वह भाईचारा! लाल क्रॉस या खाकी वर्दीने सबके बीच एकता पैदा कर दी, चाहे इनके धारण करनेवालेकी चमड़ी गोरी रही हो या गेहुँए रंगकी।

[एक हिन्दूकी हैसियतसे मैं लड़ाईमें विश्वास नहीं करता। परन्तु अगर कोई बात मुझे उसका कुछ समर्थक बना सकती है तो वह है, यह कीमती अनुभव, जो हमने लड़ाईके मोर्चेपर प्राप्त किया। निश्चय ही जो हजारों आदमी लड़ाईके मैदानपर गये उसका कारण खूनकी प्यास नही थी।] यदि मैं आपकी भावनाओंको यत्किंचित् ठेस पहुँचाये बिना एक अत्यन्त पवित्र पुरुषका नाम ले सकूँ तो मैं कहना चाहता हूँ कि उन्हें अर्जुनके समान विशुद्ध कर्तव्यकी भावना युद्धक्षेत्रमें ले गई थी। और इसने कितने जंगली, घमण्डी और उद्धत जनोंको सिखा कर भगवानके नम्र जीवोमें नही बदल दिया है?

लड़ाईके सिलसिलेमें अपने देशभाइयोंके कामकी मैं सराहना कर रहा था। अब मैं दूसरी ओरकी बातें बतानेके लिए आपको थोड़ा रोकना चाहता हूँ। मुझे लगता है कि असली काम अब शुरू हो गया है। सिपाहियों और स्वयंसेवक सिपाहियोंको जिन कठिनाइयोंसे गुजरना पड़ा है और जो अभी खतम नहीं हुई हैं, उनकी तुलनामें हमारा वह काम आखिर बहुत छोटा था। उसकी प्रशंसा हो रही है, क्योंकि हमसे ऐसी कभी आशा नहीं की जा सकती थी। किन्तु हमने ये जो कुछ अपेक्षाएँ पैदा कर दी हैं उनको क्या हम भविष्यमें पूरा कर सकेंगे? बस, यही कारण है, जिससे मुझे लगता है, [हममें आत्म-प्रशंसाका भाव पैदा होनेके बजाय नम्रताका भाव पैदा होना चाहिए।] इसलिए जहाँ शायद मेरा कर्तव्य था कि अपने देशभाइयोंने जो थोड़ा-सा काम किया उसकी तरफ आपका ध्यान दिलाऊँ वहीं मेरा यह भी कर्तव्य है कि अब हमें आगे क्या-क्या करना है इसकी भी सबको याद दिलाऊँ। परम माननीय श्री हेनरी एस्कम्ब और कुछ दूसरे हमारे कामके बारेमें बहुत उदारतापूर्वक सोचते रहे हैं। अतः अगर अब मैं उनके शब्द आपको सुनाऊँ तो मुझे विश्वास है, आप मुझे अवश्य क्षमा करेंगे। जब हम मोर्चेपर जा रहे थे तब श्री एस्कम्बने हमारी प्रार्थनापर हमें आशीर्वाद दिया था। उन्होंने कहा था:

> आप लोग लड़ाईके मैदानपर जा रहे हैं। इस अवसरपर विदाईके संदेशके रूपमें दो शब्द कहनेके लिए आपने जो मुझे बुलाया इसे मैं अपना विशेष सम्मान समझता हूँ। आप अपने साथ न केवल हम उपस्थित लोगोंकी, बल्कि नेटालके समस्त निवासियोंकी, और सम्राज्ञीके महान् साम्राज्यकी शुभ कामनाएँ लिये जा रहे हैं। इस महत्त्वपूर्ण युद्धकी अनेक घटनाओंमें यह घटना किसी प्रकार भी कम दिलचस्प नहीं है। यह सभा प्रकट करती है कि साम्राज्यकी एकता और दृढ़ताके लिए जो-कुछ भी किया जा सकता है वह स्वेच्छासे करनेके लिए नेटालके भारतीय प्रजाजन कृत-निश्चय हैं। और हम स्वीकार करते हैं कि नेटालमें जो अधिकारोंकी माँग कर रहे हैं वे अपने देशके प्रति कर्तव्य भी अदा कर रहे हैं। युद्धमें आपका स्थान उतना ही सम्मानपूर्ण होगा जितना कि लड़नेवालोंका। क्योंकि, अगर युद्धमें घायलोंकी देखभाल करनेके लिए कोई नहीं होगा तो युद्ध अबकी अपेक्षा कहीं अधिक भयानक बन जायेगा।... यह बात कभी भुलाई नहीं जा सकेगी कि आप नेटालके भारतीयोंने — जिनके साथ न्यूनाधिक अन्याय हुआ है — अपने कष्टोंको भुला दिया और आप अपनेको साम्राज्यका अंग मानकर उसकी जिम्मेवारियोंको भी उठानेके लिए तैयार हो गये। आज क्या हो रहा है, इसका जिनको ज्ञान है उनकी हार्दिक शुभ कामनाएँ आपके साथ हैं। और आपके इस कामके समाचार जहाँ-जहाँ भी पहुँचेंगे, उनसे समस्त साम्राज्यमें सम्राज्ञीके भिन्न-भिन्न वर्गोंके प्रजाजनोंको एक दूसरेके नजदीक लानेमें मदद मिलेगी।

और *नेटाल ऐडवर्टाइज़र*ने यह लिखा था:

> भारतीय आबादीने जो प्रशंसनीय भावना प्रकट की है इसके लिए उसे बधाई दी जानी चाहिए। उपनिवेशने भारतीयोंके प्रवासके बारेमें, और आम तौरपर भारतीयोंके प्रति, जो रुख धारण कर रखा है उसे देखते हुए तो और भी अधिक प्रशंसाकी बात है। भारतीय समाज बड़ी आसानीसे उदासीनताका रुख धारण करके कह सकता था कि 'हम दुश्मनकी मदद नहीं करेंगे परन्तु हम आपकी भी मदद नहीं करेंगे, क्योंकि आप

सदा हमारा विरोध ही करते आये हैं।' परन्तु भारतीयोंने ऐसा नहीं किया। उन्होंने इस अवसरपर जहाँ मदद दे सकते थे वहाँ मददगार होनेकी कोशिश की। लड़ाईके विभिन्न मोर्चोंपर उन्होंने उदारतापूर्वक मदद दी। उनकी महिलाओंने घायलों और बीमारोंके लिए आरामकी चीजें देकर मदद की। और उनमें से बहुतसे लड़ाईके मैदानपर पहुँच कर जिस-किसी रूपमें उनसे बनता है, हमारी फौजोंकी मदद कर रहे हैं। यह बरताव उनके पक्षमें प्रशंसाके साथ याद रखने लायक है। ऐसे नाजुक समयमें अपनी रंगदार आबादीकी वफादारीपर हम विश्वास कर सकते हैं। यह कोई छोटी बात नहीं है। इससे हमें उन छोटे-छोटे दोषोंको सह लेनेमें मदद मिलनी चाहिए, जिनको हम शान्तिके समयमें बहुत बड़ा रूप देने लग जाते हैं।

सज्जनो, यह उस समुदायके पक्षमें प्रमाण है जो सचाई और प्रेमके मार्गपर चलनेका प्रयत्न कर रहा है।

[अंग्रेजीसे]

*इंग्लिशमैन*, २८-१-१९०२

## १६९. पत्र : गो० कृ० गोखलेको

"एस० एस० गोआ" से,
जनवरी ३०, १९०२

प्रिय प्रोफेसर गोखले,

आशा है, हम कल रंगून पहुँच जायेंगे। मौसम बहुत अच्छा रहा। कैसी इच्छा होती है कि आप भी जहाजमें होते! आपकी खाँसी दो दिनमें ही चली जाती। लेकिन मैं आशा करता हूँ कि आपकी तबीयत पहलेसे अच्छी होगी और आपने मुनासिब सलाह ले ली होगी।

जबतक आपके घर रहा,[1] आपने बड़ी मेहरबानी दिखाई। इस सबके लिए आपको कैसे धन्यवाद दूँ? अपने और मेरे बीचकी दूरीको मिटानेके लिए आप कितने चिन्तित रहे, यह मैं आसानीसे नहीं भूल सकता। आपके विश्वास और मार्गदर्शनका विशेषाधिकार पा लेनेके बाद मुझे बिलकुल सन्तुष्ट हो जाना चाहिए। इससे अधिकका मैं अधिकारी नहीं। यह मेरी सच्ची सम्मति है — और मैं अपनी सच्चाईमें किसीके सामने झुक नहीं सकता — कि आपने देशके प्रति मेरी सेवाओंका मूल्यांकन करनेमें हदसे ज्यादा उदारतासे काम लिया। आपने मेरे जीवनकी छोटी-छोटी घटनाओंको बढ़ा-चढ़ाकर बताया है। फिर भी जब मैं यह सोचने लगता हूँ तो मुझे महसूस होता है कि सोमवारकी शामको आपकी रुचिपर शंका करनेका मुझे कोई अधिकार नहीं था। मैंने बड़ी धृष्टता की। यदि मुझे मालूम होता कि इससे मैं आपके हृदयको ठेस पहुँचाऊँगा, जो मैंने पहुँचाई है, तो निश्चय ही मैंने यह अविनय न की होती। मुझे भरोसा है कि आप मुझे मेरी इस मूर्खताके लिए क्षमा कर देंगे।[2]

१. गांधीजी गोखलेके साथ कलकत्तेमें एक मास ठहरे थे। (गोखलेके लिए, देखिए खण्ड २, पृष्ठ ४१७)।

२. गोखले कलकत्तेमें इधर-उधर जानेके लिए ट्रामगाड़ीकी अपेक्षा घोड़ागाड़ीको अधिक पसन्द करते थे, क्योंकि उनकी विस्तृत लोकप्रियताको देखते हुए उनके लिए ट्रामगाड़ीमें बैठकर जाना परेशानीका कारण बनता। इसलिए गांधीजीने कारण जाने बिना ही उनकी इस पसन्दगीपर जो टीका-टिप्पणी की, उससे उन्हें दुःख हुआ। (देखिए *आत्मकथा*, गुजराती, १९५२, पृष्ठ २३१-३२)।

शिक्षाके निमित्त आपने महान् कार्य किया है। उसके प्रशंसक इस छोटे-से जहाजमें भी मौजूद हैं।

मैं कोचवानको इनाम देना भूल गया। क्या आप कृपया श्री भाटेसे कह देंगे कि वे उसको एक रुपया और साईसको एक अठन्नी दे दें?

कृपया डा० प्रफुल्लचन्द्र राय[1]को मेरी याद दिलायें।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (जी० एन० ३७२३) से।

## १७०. पत्र: गो० कृ० गोखलेको

७, मुगल स्ट्रीट,
रंगून
फरवरी २, १९०२

प्रिय प्रोफेसर गोखले,

चूँकि सोमवारसे पहले कलकत्तेको डाक नहीं जानेवाली थी, इसलिए मैंने जहाजमें लिखा पत्र डाकमें डालना मुल्तवी कर दिया था। उसे मैं इस पत्रके साथ ही बन्द कर रहा हूँ।[2]

सौभाग्यसे प्रोफेसर काथवटे[3] मुझे मिल ही गये। वे कल सुबह मद्रासको रवाना हुए। प्रोफेसर साहबको रंगूनकी आबोहवा पसन्द नहीं आई। वह उनके लिए बहुत कष्टप्रद रही। उनको स्फूर्तिदायक जलवायुकी आवश्यकता है। रंगूनका जलवायु ऐसा प्रतीत नहीं होता।

सफाईकी दृष्टिसे यह बहुत अच्छी जगह है। सड़कें चौड़ी और सु-आयोजित हैं। नालियोंकी व्यवस्था भी काफी अच्छी दिखाई देती है।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (जी० एन० ३७२४) से।

१. भारतीय देशभक्त और वैज्ञानिक डा० (सर) प्रफुल्लचन्द्र राय, १८६१–१९४४।

२. देखिए पिछला शीर्षक।

३. गोखलेके एक मित्र, जिनसे गांधीजीकी कलकत्तेमें भेंट हुई थी।

## १७१. पत्र : पुरुषोत्तम भाईचन्द देसाईको

[राजकोट
फरवरी २६, १९०२ के बाद]

परशोत्तम भाईचन्द देशाई
टोंगाट
डर्बन, द० आ०

रा० रा० परशोत्तम भाईचन्द देशाई,

बड़ी दिलगीरीकी बात है कि मुझे भरोसा देकर आप अपना वचन पाल नही सके। आपसे मैंने कहा था कि इस पैसे पर मैं कितना निर्भर करूँगा। और फिर लिखता हूँ कि मुझे पूरी-पूरी जरूरत है और यदि भेजेंगे तो मेहरबानी मानूँगा। तीन महीनोंकी किस्तें चढ़ गई हैं। ये सारीकी-सारी भेजिये और फिर बाकी नियमसे हर महीने आयें तो बहुत मदद हो सकेगी। मैं सोचता था उससे देशकी स्थिति खराब है। विशेष लिखनेकी जरूरत नहीं होगी। आपका व्यापार कैसा चल रहा है सो लिखिए। फकत।

गांधीजीके हस्ताक्षरोंमें दफ्तरी गुजराती प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३९७०) से।

## १७२. पत्र : देवकरन मूलजीको

[राजकोट
फरवरी २६, १९०२ के बाद]

देवकरण मूलजी
टकारा [काठियावाड़]

रा. रा. देवकरन मूलजी,

आपका २१ जनवरीका पत्र यहाँ आया। पर मेरे उत्तर भारतमें होनेसे आजतक बिना जवाबके पड़ा है। मुझे लगता है कि आपको इस समय तुरत नेटाल जानेमें बडी मुश्किल होगी। लड़ाईकी वजहसे जिस आदमीके पास नकद रु० १५०० हों वही वहाँ जा सकता है। ऐसी स्थिति आपकी न हो तो तबतक वहाँ नही जा सकते। समझ लीजिए, जबतक लड़ाई है तबतक निकलना सभव नहीं होगा। किंतु अगर आप बाहर-देश जाना ही चाहते हों तो मैं अभी रंगून होकर आया हूँ[१]; यदि वहाँ जायें तो मेरे अनुभवसे ऐसा लगता है कि पेट भरने योग्य कमा सकेंगे। यह देश आबाद है और उपजाऊ है; इसलिए अगर आदमी तन्दुरुस्त हो और शरीर-श्रम करनेमें शरमाये नही, आलस न करे और सचाईसे चले तो ऐसे देशमें रोटी कमाना मुश्किल हो ही नही सकता। रंगूनमें उतरनेकी एक भारतीय गृहस्थने बहुत अच्छी सुविधा कर रखी है। इसलिए आपको इस तरहकी कोई अड़चन नही होगी। मद्रास अथवा कलकत्तेके रास्ते जा सकते हैं। जानेका खर्च ३० से ४० रु० तक पड़ता है।

दफ्तरी गुजराती प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३९३८) से।

१. यह पहला पत्र उपलब्ध नहीं है।

# १७३. पत्र : पारसी रुस्तमजीको

[राजकोट
मार्च १, १९०२][1]

सेठ श्री पारसी रुस्तमजी जीवनजी,

आपके ३१ दिसंबर, ७ जनवरी और १० फरवरीके तीनों पत्र मिले। आपने २५ पौंडकी हुंडी काठियावाड़में अकालपीड़ितोंको खिलाने-पिलाने या किसी दूसरे परमार्थमें, जो मुझे ठीक लगे, लगानेके लिए भेजी सो मिली है।

मैं उत्तर भारतसे तीन दिन हुए आया हूँ। आपके तीनों पत्र यहीं मिले। एक पत्र रंगूनमें मिला था पर वह अभी मेरे सामानके साथ है। और सामान सारा कलकत्तेसे लौटकर नही आया है। किंतु उसमें कोई खास जवाब देने लायक बात मुझे याद नही पड़ती। काठियावाड़में भुखमरी बहुत ही है। अभीतक किस दरजेतक भूखसे मरते हुए लोगोंको मदद मिल रही है, इस बातकी पूरी जानकारी इकट्ठी नही कर पाया हूँ। इकट्ठी कर लेनेपर आपकी भेजी हुई हुंडीका उपयोग करूँगा। यदि अभी-हाल एकदम जरूरी नहीं जान पड़ा तो इस पैसेका उपयोग जूनके बाद करनेका विचार है, क्योंकि सच्ची तंगी तो अभी बादमें आयेगी और यदि दैवयोगसे जूनमें बरसात नहीं हुई तो जैसा सत्तावनवेमें हुआ था वैसा इस समय भी हो सकता है। इसलिए जितना पैसा हो उतना सब काममें आ सकेगा ऐसी समझके साथ बिना बहुत जरूरतके इस समय इस पैसेका उपयोग करना मैं ठीक नही मानता। इस बातमें फेरफार होनेपर मैं लिखकर सूचित करूँगा। यह हुंडी कल यहाँके एक साहूकारके यहाँ ८ आना सैकड़ा ब्याजपर[2] रख दी है। जो करूँगा सो खुद सामने रहकर। इसलिए इस विषयमें चिन्ता नही करेंगे।

श्री खान और श्री नाजर आपका काम बराबर नहीं देखते यह बात मैं समझ नहीं पाता। धीरज रखकर जो काम लिया जा सके सो लेते रहना चाहिए। हमेशा सब लोगोंकी बोल-चाल और दूसरी रीत-भाँत एक जातकी नहीं हो पाती, किंतु इसपर से विरुद्ध अनुमान करना मेरी समझमें ठीक नही है। जबतक कोई दिया हुआ काम सावधानीसे करता हो तबतक वह बोल-चाल कैसी करता है इस तरफ ध्यान देना जरूरी नहीं है।

यहाँ अबतक जो कुछ काम हुआ है उसका अहवाल सेक्रेटरीको भेज चुका हूँ। वह आपने देखा होगा। इसलिए उसे नहीं दुहराता। वहाँके गवर्नरने अपनी ओरसे मानपत्र लेना अस्वीकार कर दिया है और जो यह कहा है कि भारतीय नेटालकी बस्तीके एक भाग हैं, तो किस भावार्थमें उसने कहा है सो लिखें। संसदमें हम लोगोंके बारेमें सवाल पूछा गया और श्री चेम्बरलेनने उसका जवाब दिया सो आपने देखा होगा।

लॉर्ड मिलनर क्या लिखते है इसको तुरत ही मुझे खबर दें। बंगाल व्यापार संघ (चेम्बर आफ़ कामर्स) हम लोगोंका काम हाथमें लेनेको तैयार ही है। वहाँसे जो कागज-पत्र, अखबार

१. यह पत्र कलकत्तेसे लौटनेके तीन दिन बाद बुधवार फरवरी २६ को लिखा गया। देखिए "पत्र : गोखलेको," मार्च ४, १९०२।

२. भारतीय साहूकार ब्याजकी महीनेवार दरें तय करते हैं, किन्तु वसूली सालके अन्तमें की जाती है।

आदि भेजने हों उनकी एक-एक नकल जिस तरह आप अन्य सज्जनोंको भेजते हैं उसी तरह माननीय प्रोफेसर गोखलेको पूना भी भेजते रहें। ये साहब अभी बड़ी कौंसिलके मेम्बर हो गये हैं और हम लोगोंके लिए बहुत-कुछ करते रहते हैं।

वहाँ कांग्रेसका काम ढीला पड़ गया है यह पढ़कर बहुत दिलगीर हुआ हूँ। आपसे जितना बने उतना करें। मान-अपमान, अड़चनें वगैरा धीरजसे सहन करते हुए नम्रताके साथ जो फर्ज समझमें आये उसे अदा करना, इतना बस है। मैं दूर बैठकर और अधिक क्या लिख सकता हूँ?

सर मचरजीको बुलानेका विचार छोड़ दिया गया है यह बात हर तरहसे दिलगीरीकी है। यदि और मेहनत करके उन्हें आमंत्रण दिया जा सके तो अच्छा हो।

जब बंबई जाऊँगा तब आपके यहाँ भी जा सकूँगा और बच्चोंकी खबर जानूँगा। जाना कब होगा यह तय नहीं है। मेरा सब बहुत अव्यवस्थित है। यदि खर्च पुसाता दिखा तो बंबईमें रुकनेका इरादा है। यहाँसे बैठकर सामाजिक काम करना जरा मुश्किलकी बात है। जो हो जाये सो ठीक। फिलहाल दो-तीन महीना तो डॉक्टर मेहताका खयाल ऐसा ही है कि मुझे पूरा-पूरा आराम लेना चाहिए।

बाल-बच्चे यहीं हैं। फिलहाल यहींकी शालामें जाते हैं। अंगरेजी चौथी कक्षामें चि० गोकलदास और हरिलाल हैं। चि० मणिलाल घरपर अभ्यास करता है। शालामें किसी कक्षामें दाखिल नहीं हुआ। सलाम बाँचना। आपकी तबीयत अब बिलकुल ठीक हो गई होगी ऐसी आशा करता हूँ। स्वास्थ्यको ठीकसे सँभालकर रखना जरूरी है। खानेपीनेमें मिताहार और नियमपालन मुख्य आवश्यकताकी बातें हैं। जो साहब मुझे याद करें उन्हें मेरे सलाम कहिए।

दफ्तरी गुजराती प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३९३७) से।

## १७४. पत्र: गो० कृ० गोखलेको

राजकोट
मार्च ४, १९०२

प्रिय प्रोफेसर गोखले,

गाड़ीमें पाँच रात बितानेके बाद मैं पिछले बुधको — अर्थात् बीचके स्टेशनोंपर रुके बिना मैं जिस दिन पहुँचता उससे सिर्फ एक दिन बाद — यहाँ पहुँचा।

बड़ी मुश्किलसे ड्योढ़े दर्जेके एक डिब्बेमें जगह मिली, वह भी यह वादा करने पर कि अगर जरूरत होगी तो मैं सारी रात खड़ा रहूँगा। दर हकीकत, कुछ मुसाफिरोंके दोस्तोंकी यह एक चाल थी। उन्होंने और अधिक मुसाफिरोंको घुसनेसे रोकनेके लिए सब बची-खुची जगह घेर ली थी। गार्डके गाड़ी छोड़नेके लिए सीटी देते ही वे उतर गये। तीसरे दर्जेके डिब्बोंमें तो कतई जगह न थी। आप भद्र पुरुषोंकी तरह शान और आरामके साथ तीसरे दर्जेमें सफर नहीं कर सकते। किन्तु बनारससे तो मैंने सिर्फ तीसरे दर्जेमें सफर किया। आपके शब्दोंमें कहूँ तो पहली ही डुबकी ऐसी थी जो कठिन थी। उसके बादका परिणाम सब सुखद

रहा। दूसरे मुसाफिरोंकी और मेरी बातचीत खुलकर हुई और कभी-कभी हम गहरे दोस्त भी बनें। गरीब मुसाफिरोंके लिए बनारस शायद सबसे बुरा स्टेशन है। रिश्वतका दौरदौरा है। जबतक आप पुलिस सिपाहियोंको घूस देनेके लिए तैयार न हों तबतक अपना टिकट पाना बहुत कठिन है। वे दूसरोंके साथ-साथ मेरे पास भी कई बार आये और बोले कि अगर हमें इनाम (या रिश्वत?) दें तो हम आपके टिकट खरीद देंगे। कई लोगोंने इस प्रस्तावका फायदा उठाया। हममें से जिन्होंने यह मंजूर नहीं किया उन्हें खिड़की खुलनेके बाद भी करीब-करीब एक घंटे तक राह देखनी पड़ी। तब कहीं टिकट मिले। यदि हम कानूनके इन संरक्षकोंकी एक-दो ठोकरोंका उपहार लिये बिना ही बैसा कर पाये तो यह हमारा सौभाग्य ही समझिए। इसके विपरीत मुगलसरायमें टिकट-मास्टर बहुत सज्जन था। उसने कहा कि मैं राजा और रंकमें भेद नहीं करता।

हम किसी तरह डिब्बोंमें भर गये। हालांकि डिब्बोंमें सूचनाएँ लगी थीं, फिर भी संख्याके सम्बन्धमें कोई रोक-थाम नहीं थी। ऐसी स्थितिमें रातका सफर तीसरे दर्जेके गरीब मुसाफिरोंके लिए भी बहुत असुविधाजनक हो जाता है।

तीन जगहोंपर अलग-अलग प्लेगकी जाँच की गई। लेकिन मैं नहीं कह सकता कि जाँचमें कोई सख्ती बरती गई हो। मेरा अनुभव बहुत थोड़ा है; किन्तु इन मुसाफिरोंकी भयंकर दशाकी जो तसवीर मैंने कल्पनासे खींची थी, वह कुछ हलकी पड़ गई है। कोई सही नतीजा निकालनेके लिए पाँच दिनोंमें मुश्किलसे ही काफ़ी मसाला जुट सकता है। फिर भी, इस *अनुभवसे* मेरा हौंसला बढ़ा और मजबूत हुआ है और पहला मौका आते ही मैं इसे पुनः प्राप्त करूँगा।

मैं बनारस, आगरा, जयपुर और पालनपुरमें उतरा। सेंट्रल हिन्दू कॉलेज कोई बुरी संस्था नहीं, यद्यपि जल्दीमें किये गये निरीक्षणके आधारपर विश्वासके साथ ऐसा कहना बड़ा कठिन है। "संगमरमर-निर्मित सपना" ताजमहल सचमुच देखने लायक है। जयपुर अद्भुत जगह है। कलकत्तेके अजायबघरसे अल्बर्ट अजायबघरकी इमारत बहुत ज्यादा अच्छी है और उसका कला-विभाग स्वतः ही अध्ययनकी चीज है। ऐसा मालूम होता है कि जयपुरी चित्रकला अपने बंगीय अधीक्षकके अधीन खूब फूल-फल रही है।

अब मेरे पत्रका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हिस्सा आता है। पालनपुरमें जानेका मेरा एक-मात्र उद्देश्य था राज्यके कारबारी[१] से भेंट करना। वे मेरे निजी मित्र हैं। मैं संयोगसे उनसे यह चर्चा कर बैठा कि शायद अगली अप्रैलमें रानडे[२] स्मृति-कोशके लिए चन्दा इकट्ठा करनेमें मैं उनके साथ सम्मिलित हो जाऊँ। राज्यके कारबारी श्री पटवारी एक सच्चे आदमी हैं। वे कहते हैं कि कोश-संग्रहका काम अप्रैलमें शुरू करना भारी गलती होगी, खासकर अगर हम गुजरातमें भी करना चाहते हैं। उनका खयाल है कि इससे हमें कमसे-कम १०,००० रुपयेका घाटा होगा। सभी राज्य अकालके असरसे कम-ज्यादा कराह रहे हैं। उनकी यह पक्की राय है कि धन-संग्रह अगले दिसम्बर या जनवरी मासमें किया जाये। मैं उनके मन्तव्यको वह जिस लायक हो उसके लिए, आपके सम्मुख रखता हूँ।

काठियावाड़के कई हिस्सोंमें प्लेग जोरोंपर है।

मेहरबानी करके प्रोफेसर रायको मेरी याद दिलायें।

१. कार्य-अधिकारी।

२. देखिए खण्ड २, पृष्ठ ४२०।

कृपया खराब टाइप करनेके लिए क्षमा करें। वहाँ मेरे पास जो टाइप-राइटर था उससे यह बिल्कुल भिन्न है। मेरी चीजें अभी कलकत्तेसे नहीं आई हैं।[1]

आपका सच्चा,
**मो० क० गांधी**

मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ३७२२) से।

## १७५. पत्र: पुलिस कमिश्नरको

राजकोट, काठियावाड़
मार्च १२, १९०२

सेवामें
पुलिस कमिश्नर
बम्बई

महोदय,

क्या आप मेहरबानी करके मुझे यह बतायेंगे कि जो लोग दक्षिण आफ्रिका जाना चाहते हैं उन्हें किन शर्तोंपर अनुमति-पत्र दिये जाते हैं?

आपका आज्ञाकारी सेवक,
**मो० क० गांधी**

[अंग्रेजीसे]

साबरमती संग्रहालय (एस० एन० ३९४१) से।

## १७६. पत्र: विलियम स्प्रॉस्टन केनको[2]

राजकोट
मार्च २६, १९०२

सेवामें,
श्री वि० स्प्रॉ० केन

प्रिय महोदय,

आपका इस मासकी १४ तारीखका पत्र मुझे अभी मिला है। *इंडिया*-सम्पादकके अनुरोधपर मैंने दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीयोंकी अबतककी स्थितिपर एक संक्षिप्त विवरण तैयार किया है। उसकी एक नकल इसके साथ भेजता हूँ[3] — यद्यपि मेरा अनुमान है

१. यह अनुच्छेद गांधीजीने हाथसे लिखा है।
२. ब्रिटिश संसदके एक सदस्य, देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९१।
३. देखिए अगले शीर्षककी सामग्री, जो २७ मार्चको टाइप होकर तैयार थी। इसके बाद ही वि० स्प्रॉ० केनके नाम यह पत्र डाकमें डाला गया होगा।

कि सम्पादकने आपकी ओरसे ही अनुरोध किया था। मुझे लगता है कि विभिन्न उपनिवेशोंमें ब्रिटिश भारतीयोंके साथ व्यवहारके समस्त प्रश्नपर बहसके लिए जोर देनेसे लाभके बजाय हानि होनेकी ही ज्यादा सम्भावना है; क्योंकि विभिन्न उपनिवेशोंमें स्थिति एक जैसी नहीं है। उदाहरणके लिए नेटालमें प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियम, विक्रेता-परवाना अधिनियम और इसी प्रकारके दूसरे अधिनियम, जिनकी नकलें समय-समयपर ब्रिटिश समितिको भेजी गई हैं, पहलेसे ही लागू हैं। नेटालके नमूनेका अनुकरण आस्ट्रेलिया और कैनडा दोनोंमें किया जा रहा है। इन स्थितियोंमें नेटालमें इनको रद कराना या आस्ट्रेलिया और कैनडामें नेटालके अनुकरणके प्रयत्नको विफल करना अगर असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य होगा। इसकी चाबी श्री चेम्बरलेनके उस भाषणमें मिलती है, जो उन्होंने हीरक-जयन्तीके अवसरपर प्रधान-मन्त्री सम्मेलनमें दिया था। उसके उद्धरणकी एक नकल[1] आपके पढ़नेके लिए भेजता हूँ। उन्होंने उपनिवेशोंको आधी रियायतें दी हैं; परन्तु शायद ये आधी रियायतें पूरी रियायतोंसे कहीं ज्यादा खतरनाक हैं। क्योंकि, उनकी अप्रत्यक्ष विधानकी मंजूरीसे ऐसी शरारतकी सम्भावनाओंका मार्ग खुल गया है, जिनका कभी सपनेमें भी खयाल न था, यह आप मेरे वक्तव्यसे जान लेंगे। श्री चेम्बरलेनने अभी हालमें जो कुछ कहा है वह भी आशाजनक नहीं है। उससे औपनिवेशिक सरकारोंके भारत-विरोधी रुखको महज ताकत मिलेगी। इसलिए जहाँतक नेटालका सम्बन्ध है, इसका इलाज उस उपनिवेशके निवासी भारतीयोंके हाथोंमें है कि वे उपनिवेशकी सरकारको उचित व्यवहारके लिए राजी करें। यह न्यूनाधिक रूपमें पुराने क़ानूनोंके प्रशासनका मामला है। जहाँ औपनिवेशिक सरकार नये प्रतिबन्ध-कानून बनानेका प्रयत्न करे वहाँ वे ब्रिटेनकी सरकारसे अपील करें, और उनके मित्रोंका काम है कि वे उनकी सहायता करें। औपनिवेशिक कार्यालयके लगातार दबाव और ब्रिटेनके समाचारपत्रोंमें सहानुभूतिपूर्ण चर्चा — ये ही मुख्य प्रभाव हैं जिनसे, अनुमान है कि, नेटालके मन्त्री पसीजेंगे। मेरा खयाल है कि इंग्लैंड और भारतमें मित्रोंकी सहायतासे हम कुछ हदतक सफल हुए हैं। आस्ट्रेलिया और कैनडाका जहाँतक सम्बन्ध है, उपाय यह है कि वहाँ प्रस्तावित कानून, जिनका मसविदा दुर्भाग्यसे मैं नहीं देख पाया हूँ, हाथमें लिये जायें और उनकी तफ़सीलोंका विरोध किया जाये, जिससे वे यथासम्भव नरम हो सकें। प्रमुख मुद्दोंपर श्री चेम्बरलेनसे कोई सहायता नहीं मिलेगी। यदि बहसके लिए जोर डाला गया तो वे ऐसी तकरीर करेंगे जिससे उपनिवेशियोंका भारत-विरोधी रुख और कड़ा हो जायेगा।

दक्षिण आफ्रिकाके नये उपनिवेशोंमें हमारी स्थिति दूसरी जगहोंके मुकाबले बहुत ज्यादा मजबूत है, और होनी भी चाहिए। इसमें औपनिवेशिक कार्यालयका हाथ भी ज्यादा खुला है। इसी भारतीय-विरोधी कानूनके खिलाफ़, जो अब लागू किया जा रहा है, श्री क्रूगरको भेजी गई पिछली आपत्तियोंकी शर्म ही श्री चेम्बरलेनको बिलकुल दूसरा रुख अपनानेके लिए बाध्य कर देगी। ट्रान्सवाल-कानूनपर हमारे प्रार्थनापत्रका उन्होंने जो उत्तर दिया, उसका एक उद्धरण साथमें भेजता हूँ।[2] तब उन्होंने मदद नहीं की थी। क्योंकि वे असमर्थ थे। अब वे पूरी तरह समर्थ हैं और मदद कर सकते हैं। उनके खिलाफ ऐसा निष्कर्ष निकालना, जो सराहनीय न हो, अनुचित प्रतीत हो सकता है। फिर भी हमें बहुत भय है कि अब उनका प्रेम पहले जैसा नहीं रहा; इसलिए यदि उचित निगरानी न रखी गई तो दोनों नये उपनिवेशोंमें वे हमारी स्थितिपर सम्भवतः झुक जायेंगे।

१. देखिए खण्ड २, पृष्ठ ३९६–८।
२. यह यहाँ नहीं दिया गया है।

हमारे मित्र इंग्लैंडमें जो कुछ कर सकते हैं, उसके बारेमें मेरा खयाल है, वे फिलहाल अपनी सारी कोशिशें ट्रान्सवाल और ऑरेंज रिवर कालोनीकी शिकायतें दूर करवानेमें केन्द्रित करें। इस समय नेटालमें राहत नहीं मिल सकती। आस्ट्रेलिया और कैनडामें कोई भारतीय निवासी नहीं, जो हानि उठायें। वहाँ प्रश्न केवल सिद्धान्तका है। वह निस्सन्देह एक बड़ा प्रश्न है। ट्रान्सवालमें सिद्धान्तका प्रश्न तो है ही, बहुत बडा भारतीय स्वार्थ निहित होनेके कारण वर्तमान शिकायतें साफ और सच्ची हैं। वहाँ राहत भी मिल सकती है। शर्त एक यही है कि श्री चेम्बरलेन इधर-उधर कहीं कोई वचन न दे बैठे हों और लॉर्ड लैंसडाउनका तो कहना है कि ब्रिटिश भारतीयोंके साथ व्यवहार युद्धके कारणोंमें से एक था।

इस बारेमें कोई मतभेद नहीं है। पूर्व भारत संघ (ईस्ट इंडिया असोसिएशन) ने हमारी ओरसे काम किया है और इसी प्रकार लंदन *टाइम्स* और सर मंचरजीने भी। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि औपनिवेशिक विद्वेषके विरुद्ध आपने जो जिहाद शुरू किया है उसमें आप उनके साथ मिलकर काम करेंगे।

अगर मैं सुझाव देनेका साहस करूँ तो पसन्द करूँगा कि हमारे मित्र उपनिवेशोंके प्रधानमन्त्रियोंसे, जिनकी ताजपोशी-समारोहमें आनेकी आशा है, भेंट करने और उनके साथ स्थितिपर चर्चा करनेका प्रयत्न करें।

इस प्रश्नको उठाते समय वर्तमान युद्धमें नेटाली भारतीयोंके अंशदानका ध्यान रखा जाये। इसके साथ मैं एक कतरन[1] भेजता हूँ जिससे आपको उनके कार्यका कुछ आभास मिल जायेगा।

मैंने आपको विस्तारसे और खुलकर सारी बातें लिखनेकी स्वतंत्रता ली है। विश्वास है, इसके लिए आप मुझे कृपापूर्वक क्षमा करेंगे। यदि आपको और अधिक जानकारीकी आवश्यकता हो तो उसे आपकी सेवामें प्रस्तुत करते हुए मुझे प्रसन्नता होगी।

आपका विश्वासपात्र,

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३९४५) से।

## १७७. टिप्पणियाँ : भारतीयोंकी स्थितिपर

*एकान्त विश्वासका*

[राजकोट
मार्च २७, १९०२]

दक्षिण आफ्रिकामें ब्रिटिश भारतीयोंकी
वर्तमान स्थितिपर टिप्पणियाँ

पत्रोंको दक्षिण आफ्रिकासे यहाँतक पहुँचनेमें बहुत समय लगता है, यह देखते हुए जो कुछ नीचे लिखा गया है वह इस तारीखसे दो महीने पहलेकी स्थितिपर ही लागू होता है। इसे ध्यानमें रखना आवश्यक है, क्योंकि दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय अब भी एक संकटसे गुजर रहे हैं, जैसा कि नीचेके विवरणसे प्रकट होगा।

१. गांधीजीने २७ जनवरी, १९०२ को एक भाषण दिया था। अनुमानतः उसी भाषणके पत्रोंमें छपे विवरणकी एक कतरन।

नेटाल और दोनों नये उपनिवेशोंके भारतीयोंके प्रश्नोंमें फर्क करनेकी जरूरतपर अधिक जोर नहीं दिया जा सकता। फिलहाल केप उपनिवेशका खयाल छोड़ा जा सकता है। लोक-सभा (हाउस ऑफ कॉमन्स) में नेटालके नये उपनिवेशोंके सम्बन्धमें पूछा गया दुहरा प्रश्न, मेरी नम्र सम्मतिमें, कार्य-नीतिकी दृष्टिसे एक बड़ी भूल थी। श्री चेम्बरलेनके इस उत्तरसे कि नेटालमें पहलेसे ही लागू भारतीय विरोधी-कानूनके सम्बन्धमें मैं फिलहाल नेटाल-सरकारको कुछ कहनेका इरादा नहीं रखता, और कुछ नहीं तो, उपनिवेशमें एक दुर्भाव उत्पन्न हो गया है और उप-निवेशियोंका भारतीय-विरोधी रुख और भी कड़ा हो गया है। श्री चेम्बरलेनके सुविदित विचारोंको ध्यानमें रखते हुए नेटालका परवाना-कानून केवल उनके और सहानुभूति रखनेवाले मित्रोंके बीच निरन्तर पत्र-व्यवहारका विषय हो सकता है।

अब नेटालके बारेमें। प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियम और विक्रेता-परवाना अधिनियम ब्रिटिश भारतीयोंको हानि पहुँचानेवाले मुख्य कानून हैं। इनमें दूसरा कानून खास तौरसे हानि-कर है, क्योंकि उससे परवाना-अधिकारियोंको परवाना देनेके बारेमें असीमित अधिकार मिल जाते हैं और उनके निर्णयोंके विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालयमें अपील भी नहीं की जा सकती। नवीनतम सूचना और घटनाओंका असर यह होता है कि उन्हें भारतीयोंके अधिकार कम करनेकी शक्ति मिल जाती है। नेटाल नागरिक सेवा (सिविल सर्विस) अधिनियमसे नागरिक सेवा निकाय (सिविल सर्विस बोर्ड) को उसके अन्तर्गत उम्मीदवारोंकी परीक्षा आदिके विषयमें उप-नियम पास करनेका अधिकार मिल जाता है। और संविधान-अधिनियम अपेक्षा रखता है कि सब वर्गीय विधान कानून बननेसे पहले सम्राट्से मंजूर कराये जायें। इसके अलावा यह साफ है कि कानूनके मूल सिद्धान्तोंको बदलनेके लिए उसके अन्तर्गत उपनियम नहीं बनाये जा सकते। नेटाल-सरकार सिर्फ एक उपनियम, जोकि नेटाल नागरिक सेवा अधिनियमकी ठेठ जड़तक पहुँचता है, प्रकाशित करके वर्गीय कानूनोंकी मंजूरीके लिए उपनिवेश-मन्त्रीके पास जानेसे बच निकली है।

प्रस्तुत उपनियम किसी भी ऐसे व्यक्तिको, जिसे संसदीय मताधिकारके लिए अयोग्य ठह-राया गया हो, अन्य बातोंके साथ-साथ नागरिक सेवाके लिए उम्मीदवार बननेसे रोकता है। मताधिकार-अपहरण अधिनियम सुविदित है। इसके अन्तर्गत नेटाल-सरकार कहेगी कि भारतीय मताधिकारके उपयोगके लिए अयोग्य ठहराये गये हैं, इसलिए वे नेटाल नागरिक सेवाकी प्रतियोगितामें बैठनेके लिए भी अयोग्य हैं। निस्सन्देह बहुत कम भारतीय ऐसे हैं जो उस परीक्षामें बैठते हैं। फिर भी सिद्धान्तका प्रश्न तो है ही। और इसके लिए जो तरीका अपनाया जाता है वह अत्यन्त खतरनाक है। उससे उपनिवेशी भारतीय प्रवासियोंको और अधिक सतानेकी बहुत बड़ी छूट पा जाते हैं। सम्भवतः यह मामला पत्र-व्यवहार द्वारा श्री चेम्बरलेनके ध्यानमें लाया जाये।

श्री चेम्बरलेनके उत्तरको ध्यानमें रखते हुए ट्रान्सवाल और ऑरेंज रिवर कालोनीके सम्बन्धमें स्थिति अत्यन्त नाजुक है। दोनों उपनिवेशोंमें सभी भारतीय-विरोधी कानून पूरी तरह लागू हैं। उनके अन्तर्गत ट्रान्सवालमें भारतीय पृथक् बस्तियोंके अलावा दूसरी जगह न ज़मीनकी मिल्कियत ले सकते हैं और न व्यापार कर सकते हैं। उनको काफिर लोगोंकी भाँति यात्रा-सम्बन्धी और अन्य परवाने रखने पड़ते हैं। ऑरेंज रिवर कालोनीमें वे प्रवेश नहीं कर सकते। हाँ, घरेलू नौकर बनकर अवश्य जा सकते हैं। श्री चेम्बरलेनके उत्तरके अनुसार, इन्हीं कानूनोंके बारेमें लॉर्ड मिलनर उन्हें सलाह देनेवाले हैं और परमश्रेष्ठका रुख, भय है, बिलकुल वैसा मैत्रीपूर्ण नहीं रहा, जैसेकी एक समय अपेक्षा की जाती थी। उन्होंने एक अश्वेत परवाना-कानूनकी, जो पुराने ट्रान्सवाल परवाना-कानूनसे अच्छा माना जाता है, घोषणा की है। नया कानून उसीकी जगह

बनाया गया है। हालकी इस घोषणाकी नकल इसके साथ संलग्न[1] है। इससे यह मालूम हो जायेगा कि इसके द्वारा जो राहत मिलती है उसका लाभ प्रायः काफिर उठा सकते हैं, यद्यपि उसमें दिये गये "अश्वेत व्यक्ति" शब्दोंमें पहलेकी तरह भारतीयोंका भी समावेश है। पुराने शासनमें परवाना-कानून भारतीयोंके विरुद्ध बहुत कम लागू होता था। ब्रिटिश शासनमें, जहाँ नियमोंका पालन कठोरतासे होता है, स्थिति क्या होगी, उसकी कल्पना आसानीसे की जा सकती है। यदि दी जानेवाली राहत उपर्युक्त किस्मकी है तो स्पष्ट है कि वह राहत होगी ही नहीं। ट्रान्सवाल-सरकारने लंदन-समझौतेकी १४वीं धाराका उल्लंघन कर ऐसे कानून बनाये हैं, जिनमें व्यावहारिक रूपसे भारतीयोंका वर्गीकरण आफ्रिकी वतनी लोगोंके साथ किया है। स्मरण रहे, स्वर्गीय लॉर्ड लॉक और सर हर्क्युलीज रॉबिन्सनने इस प्रकारके वर्गीकरणके विरुद्ध आपत्ति प्रकट की थी और उक्त धाराके अन्तर्गत माँग की थी कि भारतीयोंको दूसरी ब्रिटिश प्रजाओंके समान ही अधिकार दिये जायें। (देखिए दक्षिण आफ्रिकी ब्लू बुक, *ग्रीवैन्सेज़ ऑफ़ ब्रिटिश इंडियन्स — ब्रिटिश भारतीयोंकी शिकायतें*)। इसलिए अगर इन दोनों उपनिवेशोंमें सब भारतीय-विरोधी कानून वापस न भी लिये जायें तो कमसे-कम ब्रिटिश भारतीयों और जूलू लोगोंमें अन्तर तो किया ही जा सकता है। इन स्थितियोंमें सारी उपलब्ध शक्ति फिलहाल इन दो उपनिवेशोंके प्रश्नको हल करनेमें लगानी चाहिए। अगर वहाँ पूरा न्याय हो जायेगा तो नेटाल भी जल्दी ही उन्हींकी पंक्तिमें आ जायेगा।

इन टिप्पणियोंको तैयार करनेमें तथ्योंकी अनावश्यक पुनरुक्तिसे बचनेके लिए यह बात मान ली गई है कि सहानुभूति रखनेवाले मित्रोंको स्मरणपत्रों आदिकी जानकारी पहलेसे हो है।

टाइप की हुई अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३९४६) से।

## १७८. पत्र: गो० कृ० गोखलेको

राजकोट
मार्च २७, १९०२

प्रिय प्रोफेसर गोखले,

यह जानकर बहुत दुःख हुआ कि आपको बुखार आ गया है। कहनेकी जरूरत नहीं कि आपके कर्तव्योंमें एक सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण कर्तव्य है अपने देशकी खातिर अपनी तन्दुरुस्तीको कायम रखना। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि आप ज्यादा फिक्र या ज्यादा काम करनेसे बीमार नहीं हुए होंगे। अगर मुझे कुछ कहनेकी इजाजत दें तो मैं कहूँगा कि अपने घरमें अत्यन्त कड़ाईके साथ नियमितता बरतनेसे न केवल आपको, बल्कि आपके अलावा उनको भी फायदा होगा जिन्हें आपके सम्पर्कमें आनेका विशेष अधिकार प्राप्त हो। सम्भव है मैं गलतीपर होऊँ, किन्तु मैं निश्चित रूपसे महसूस करता हूँ कि इसका पालन बहुत कठिन नहीं है।

मैंने अखबारोंमें पढ़ा है कि वाइसरायकी परिषदमें कारीगरों, बजरिया दवाफरोशों वगैरहके प्रवासको नियन्त्रित करनेके लिए एक विधेयक पेश किया जानेवाला है। यह क्या हो सकता है? क्या यह उपनिवेशियोंको रियायत है या सचमुच इसका उद्देश्य हमारा हित करना है?

१. यहाँ यह नहीं दी गई है।

सुना है, श्री वाडिया राजकोटसे गुजरे थे और रानडे स्मारकके लिए कुछ सौ रुपये इकट्ठा कर ले गये हैं। आशा करता हूँ, आप अपनी अगले कुछ दिनोंकी हलचलोंके बारेमें मुझे लिखेंगे।

क्या मैं आपको यह कष्ट दे सकता हूँ कि आप श्री भाटेसे कह दें कि आखिरकार कलकत्तासे मेरी चीजें मुझे मिल गई हैं?

आपका सच्चा,

मो० क० गांधी

*[पुनश्च]* श्री टर्नरने आखिरकार निजी सचिवके पत्रकी एक प्रतिलिपि मुझे भेज दी है। उसकी नकल साथ भेज रहा हूँ।

मो० क० गां०

मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (जी० एन० ३७२१) से।

## १७९. आवरकपत्र: "टिप्पणियों" के लिए

राजकोट

मार्च ३०, १९०२

सेवामें

सम्पादक

*इंडिया*

प्रिय महोदय,

आपका २८ फरवरीका पत्र मिला। वह बम्बईसे पता बदलकर पुनः भेजा गया था। आपके अनुरोधके अनुसार दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीयोंकी यथासम्भव अबतककी स्थितिपर टिप्पणियाँ[1] इसके साथ भेजता हूँ। यह मानते हुए कि समय-समयपर आपको भेजे गये सब कागजात आपके पास होंगे ही, मैंने सारा पूर्व इतिहास नहीं दुहराया। मैं इसकी नकल सर मंचरजीको भी भेज रहा हूँ। मेरा खयाल है कि ब्रिटिश समिति इस मामलेमें उनका सहयोग माँगेगी ही।

आपका सच्चा,

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३९४८) से।

१. "टिप्पणियाँ: भारतीयोंकी स्थितिपर," मार्च २७, १९०२।

## १८०. पत्र: मंचरजी भावनगरीको

राजकोट
मार्च ३०, १९०२

सेवामें
सर मंचरजी मेरवानजी भावनगरी, के० सी० आई० ई० एम० आदि
लंदन

प्रिय सर मंचरजी,

आप जानते ही हैं, बम्बईमें आपसे मिलकर मैं कलकत्ता चला गया था और कांग्रेसमें शामिल हुआ। वहाँ यह प्रस्ताव पास किया गया:

*दक्षिण आफ्रिकी भारतीय*

> ६. यह महासभा दक्षिण आफ्रिकामें बसे भारतीयोंके साथ, उनके अस्तित्व-सम्बन्धी संघर्षमें, सहानुभूति प्रकट करती है और वहांके भारतीय-विरोधी कानूनोंकी ओर परमश्रेष्ठ वाइसरायका ध्यान आदरपूर्वक आकर्षित करते हुए भरोसा करती है कि ट्रान्सवाल और ऑरेंज रिवर उपनिवेशमें बसे ब्रिटिश भारतीयोंकी मान-मर्यादाका प्रश्न जब अभी माननीय उपनिवेश-मन्त्रीके विचाराधीन ही है, परमश्रेष्ठ उसका न्यायपूर्ण और योग्य निबटारा करा देनेकी कृपा करेंगे।

इसके पश्चात् मैं कुछ समय कलकत्तामें ठहरा, ताकि बंगाल व्यापार-संघ (चेम्बर ऑफ कॉमर्स) के अध्यक्ष माननीय श्री टर्नरकी मार्फत परमश्रेष्ठ वाइसराय महोदयके पास एक शिष्टमंडल ले जानेका प्रयत्न कर सकूँ। वाइसरायके पास पहुँचकर श्री टर्नरको जो उत्तर मिला, उसकी नकल[1] साथ भेज रहा हूँ। ऐसे उत्तरको देखते हुए शिष्टमंडल ले जानेका विचार त्याग देना आवश्यक था। मैं अभी राजकोट लौटा हूँ और अब दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोंकी वर्तमान स्थितिके सम्बन्धमें कांग्रेसके निर्देशसे तैयार किया वक्तव्य[2] भेज रहा हूँ। मैं आशा करता हूँ कि जबतक यह सारा मामला सन्तोषजनक रूपसे तय नहीं हो जाता तबतक आप इसमें वैसी ही उत्साहपूर्ण दिलचस्पी लेते रहनेकी कृपा करेंगे, जैसी अबतक लेते आये हैं।

आपका सच्चा,

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३९४७) से।

१. यहाँ नहीं दी गई।
२. देखिए "टिप्पणियाँ: भारतीयोंकी स्थितिपर," मार्च २७, १९०२।

# १८१. पत्र : खान और नाज़रको

राजकोट
मार्च ३१, १९०२

प्रिय श्री खान तथा नाज़र,

आपको अरसेसे मुझे पत्र लिखनेकी फ़ुरसत नहीं मिली, यह बहुत खेदजनक है। अब मैं इसके साथ वाइसराय द्वारा श्री टर्नर[1] को लिखे गये पत्रकी नकल भेज पा रहा हूँ। *इंडिया*-सम्पादकके अनुरोधपर कांग्रेसकी ब्रिटिश समितिके लिए तैयार की गई टिप्पणीकी[2] नकल भी साथमें भेजता हूँ। इसकी एक नकल मैंने सर मंचरजीको भी भेजी है। अगर किसी गुमनाम दोस्तने मुझे *जोहानिसबर्ग गज़ट* और एक अखबार, जिसमें नागरिक सेवा (सिविल सर्विस) के नये नियम थे, न भेजे होते तो टिप्पणीमें ये दो बातें शामिल न की जा सकतीं। मुझे अब भी आशा है कि सर मंचरजी बुलाये जायेंगे। मैं अपने उस अनुरोधको, जो मैंने रंगूनसे अपने पत्र[3]में किया था, फिर दोहराता हूँ कि यदि हमारे लोग मेरे वादे[4]को पूरा कराना चाहते हैं तो यह तबतक कर लेना चाहिए जबतक मेरी योजनाएँ अनिश्चित हैं, यद्यपि मैं जानता हूँ कि मेरे वादेके साथ ऐसी कोई शर्त नहीं है। यदि उसे निकट भविष्यमें पूरा नहीं कराया जाता तो मुझपर बड़ी कृपा होगी कि मुझे उससे मुक्त कर दिया जाये। यदि आपने अबतक बकाया रकम ड्राफ्टसे न भेजी हो तो कृपया यह पत्र पाते ही भेज दें। आप दोनोंके क्या हाल हैं? पुस्तिकाओंकी प्रतियाँ अबतक आ ही रही हैं। वैसे ही, पत्रोंकी नकलें भी, जो जेम्स मेरे लिए तैयार करनेवाले थे। इस सबके पीछे या तो अविचल निष्ठा है या पैसा बनानेकी कोशिशें। मैं आशा करता हूँ कि यह पैसेके लिए है। आज आये *टाइम्स*के एक तारमें दक्षिण आफ्रिकाके बिना ताजके बादशाह[5]की मृत्युकी खबर है। उनके सभी दोषोंके बावजूद उनकी मृत्युपर आँसू रोकना असम्भव है।

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३९४९) से।

१. देखिए पादटिप्पणी २, पृष्ठ २३५।

२. "टिप्पणियाँ : भारतीयोंकी स्थितिपर," मार्च २७, १९०२।

३. यह पत्र उपलब्ध नहीं है।

४. दक्षिण आफ्रिका छोड़ते समय गांधीजीने वादा किया था कि यदि दक्षिण आफ्रिकाका भारतीय समाज चाहेगा तो वे एक वर्षके अन्दर वापस चले जायेंगे। (आत्मकथा, गुजराती, १९५२, पृष्ठ २१७)

५. सेसिल रोड्स, जिनकी मृत्यु २२ मार्चको हुई थी।

## १८२. पत्र: मॉरिसको

राजकोट
मार्च ३१, १९०२

प्रिय श्री मॉरिस,

मुझे आपके दो पत्र कलकत्तेमें मिले और तीसरा कलकत्तेसे पता बदलकर रंगून भेज दिया गया था, वहाँ मिला। आपके पिछले पत्रसे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि मैंने आपके पहले पत्रका जो उत्तर भेजा था, वह उस तारीखतक भी आपको नहीं मिला था। किन्तु आशा है, दक्षिण आफ्रिकाके लिए जहाजमें बैठनेसे पहले वह आपको अवश्य मिल गया होगा।

आपकी यात्राको यथासम्भव सुखमय बनानेके लिए कलकत्तेमें मुझसे जो कुछ बन पड़ा हो उसके लिए आपने मुझे धन्यवाद देना उचित समझा है। मैं नहीं जानता कि मैं इसके योग्य हूँ। मैंने अपना कर्त्तव्य पालन करनेके अलावा और कुछ नहीं किया। काश, मैं कुछ और कर सका होता!

बहुत अधिक कठिनाइयोंके बाद मैं व्यापार-संघ (चेम्बर ऑफ कामर्स) के अध्यक्षको तैयार कर सका। उसके फलस्वरूप वाइसरायसे एक बहुत ही सहानुभूतिपूर्ण उत्तर मिला है। मगर, बेशक, सिर्फ सहानुभूतिसे बहुत काम न चलेगा। उसके अनुसार कार्रवाई करवानेके लिए आवश्यक है कि भारतीय जनता एक भारी प्रयत्न करे।

क्या ही अच्छा होता कि रंगूनकी समुद्र-यात्रा और उत्तर-पश्चिमकी तीसरे दर्जेकी रेल-यात्रामें आप मेरे साथ होते। आपके पत्रसे मेरी सारी इच्छा मर-सी गई, किन्तु मैंने सोचा कि मैं पहले बने कार्यक्रमको पूरा करनेके लिए बँधा हूँ, इसलिए मैंने वैसा किया। यह बताते हुए मुझे खुशी होती है कि इसके फलस्वरूप जो अनुभव हुआ उससे मेरी ज्ञान-वृद्धि हुई है। मैं मानता हूँ कि तीसरे दर्जेके मुसाफिरोंकी गन्दी आदतोंके सम्बन्धमें मैं आपसे पूर्ण-रूपसे सहमत नहीं हूँ। मैं नहीं जानता कि आपने मेरी तरह यूरोपीय रेलोंमें तीसरे दर्जेमें बैठकर यात्रा की है या नहीं। मैं यूरोपीय रेलोंकी अपेक्षा भारतीय रेलोंमें तीसरे दर्जेमें बैठना पसन्द करता हूँ, क्योंकि यूरोपीय रेलोंमें कभी-कभी तीसरे दर्जेके मुसाफिरोंका साथ स्वच्छताकी तथा अन्य दृष्टियोंसे भी मुझे बहुत अप्रिय लगा है। सो, श्री रोड्स चल बसे। उनकी नीतिको कोई चाहे कितना ही नापसन्द क्यों न करे, अब जबकि वे संसारमें नहीं हैं, आँसुओंको रोकना असम्भव है। इससे इनकार करना बहुत कठिन होगा कि वे साम्राज्यके सच्चे मित्र थे। आशा है, आप फिर केपटाउनमें स्थिर हो गये होंगे और आपका और आपके परिवारका स्वास्थ्य अच्छा होगा। यदि आपने पत्र न लिखा हो तो अब लिखिए।

आपका सच्चा,

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३९५०) से।

## १८३. पत्र: गो० कृ० गोखलेको

राजकोट
अप्रैल ८, १९०२

प्रिय प्रोफेसर गोखले,

आपके महान् बजट-भाषणपर मैं आपको सादर बधाई देता हूँ। उसकी एक प्रति मुझे मिली है। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि मेरी प्रशंसा जानकारीपर आधारित नहीं है, फिर भी वह सच्ची तो है ही। यदि सम्भव हो तो मैं चाहूँगा कि नेटालके मित्रोंमें बाँटनेके लिए मुझे आपके भाषणकी कुछ प्रतियाँ मिल जायें।

रानडे स्मारकके चन्देके बारेमें अपने पिछले पत्रके उत्तरमें मैं आपके पत्रकी, जिसका आपने वचन दिया था, प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (जी० एन० ३७१९) से।

## १८४. पत्र: गो० का० पारेखको

[राजकोट]
अप्रैल १६, १९०२

माननीय श्री गोकलदास कहानदास पारेख
महाबलेश्वर लॉज
महाबलेश्वर

प्रिय पारेखजी,

आपका इसी ९ तारीखका पत्र मिला। उसके लिए आपको धन्यवाद देता हूँ। जब मेरे बम्बईमें होनेकी सम्भावना होगी, मैं आपको पहले ही उचित सूचना दे दूँगा।

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३९५६) से।

## १८५. दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय

राजकोट
अप्रैल २२, १९०२

सेवामें
सम्पादक
*टाइम्स ऑफ़ इंडिया*

महोदय,

आपके १० तारीखके अंकमें एक तार इस आशयका छपा है कि नेटालकी विधान-सभामें एक ऐसे विधेयकका द्वितीय वाचन पूरा हो चुका है जिसके द्वारा उस उपनिवेशमें गिरमिटिया भारतीयोंकी सन्तानोंपर भी वही सब प्रतिबन्ध लगा दिये जायेंगे जो उनके माता-पिताओंपर लगाये जाते हैं।

इस विधेयककी पूरी नकल न होनेसे इसकी आलोचना करना कठिन है, परन्तु चूँकि दक्षिण आफ्रिकाकी डाकका यहाँ आना इतना ज्यादा अनिश्चित है और मैं जानता हूँ कि उस उपनिवेशमें विधेयक कितनी तेजीसे कानूनका रूप ले सकते हैं, इसलिए मैं इसपर कुछ कहनेका साहस करता हूँ।

मेरा खयाल है, १८९३ में नेटाल-सरकार द्वारा नियुक्त प्रतिनिधि भारत-सरकारको इसलिए राजी करने भारत आये थे कि वह एक ऐसा कानून पास करनेकी अनुमति दे दे जिसके अनुसार गिरमिटिया भारतीय अपना गिरमिट समाप्त हो जानेपर या तो भारत लौट आयें, या प्रति वर्ष २५ पौंड व्यक्ति-कर (पोल टैक्स) दिया करें। इस प्रतिनिधिमण्डलके यहाँ आनेका एक लम्बा इतिहास है। वह दुःखदायी होते हुए भी मनोरंजक है। परन्तु अपनी बात संक्षेपसे कहनेके लिए, मुझे उसे छोड़ना पड़ रहा है। उस समयके वाइसराय परमश्रेष्ठ लॉर्ड एल्गिनने जहाँ २५ पौंड व्यक्ति-कर लगाने देनेसे बिलकुल इनकार कर दिया था, वहीं दुर्भाग्यवश उसे घटाकर ३ पौंड व्यक्ति-कर लगानेकी मंजूरी दे दी और इस प्रकार उसके सिद्धान्तको स्वीकार कर लिया। मुझे आशंका है कि उन्हें पता नहीं था कि बीस वर्ष पूर्व भी इसी प्रकारका एक असफल प्रयत्न किया गया था। उन्हें यह ज्ञात होता तो शायद वे अपनी स्वीकृति न देते।

मुझे भय है कि जो काम १८९३ का प्रतिनिधिमण्डल नहीं कर सका था उसे, कुछ हदतक, इस विधेयक द्वारा पूरा करनेकी बात सोची गई है, क्योंकि इसके अनुसार गिरमिटिया माँ-बापोंकी सब सन्तानोंको (गोदके शिशुओंको भी) ३ पौंड कर देना पड़ा करेगा। यदि किसी गिरमिटिया भारतीयके सात बच्चे होंगे, जो कि कोई अनहोनी बात नहीं है, तो उसे अपने और अपने बच्चोंके लिए २४ पौंड प्रति वर्ष देने पड़ेंगे, जो उसके सामर्थ्यसे सर्वथा बाहरकी बात होगी। इस कठोर करके कारण लोगोंके आचार-विचारपर जो भारी दुष्प्रभाव पड़ेगा, मेरा हृदय तो उसकी कल्पना करके ही काँपने लगता है। जिस देशमें इन लोगोंको सचमुच निमन्त्रित किया गया है, अथवा मैं तो कहूँगा कि बहकाकर ले जाया गया है, उसमें ही जीवित रहने मात्रकी अनुमति पानेके लिए अब इन्हें इतना भारी दण्ड भरनेके लिए कहा जा रहा है।

लॉर्ड एल्गिनने १८९३ में जो कर लगानेकी इजाजत दी थी उसके अन्यायका आपने भली-भाँति वर्णन किया था। स्वर्गीय सर वि० वि० हटरने भी उसकी निन्दा की थी और गिरमिटकी

दशाको अर्धदासता बतलाया था। जब मजदूरोंको स्वदेश लौटनेके लिए विवश करनेका प्रस्ताव पहले-पहल रखा गया था तब नेटालके विधि-निर्माताओंने जो मत प्रकट किया था, मैं उसे भी यहाँ उद्धृत करनेकी अनुमति चाहता हूँ।

स्वर्गीय श्री सॉडर्सने, जो एक प्रतिष्ठित उपनिवेशी और एक समय नेटाल विधान-परिषद्के सदस्य थे, प्रस्तावकी निम्नलिखित टीका की थी:

> यद्यपि आयोगने ऐसा कानून बनानेकी कोई सिफारिश नहीं की कि अगर भारतीय अपने गिरमिटकी अवधि पूरी होनेके बाद नया इकरार करनेको तैयार न हों तो उन्हें भारत लौटनेके लिए बाध्य किया जाये, फिर भी मैं ऐसे किसी भी विचारकी जोरोंसे निन्दा करता हूँ। मेरा पक्का विश्वास है कि आज जो अनेक लोग इस योजनाकी हिमायत कर रहे हैं वे जब समझेंगे कि इसका अर्थ क्या होता है तब वे भी मेरे समान ही जोरोंसे इसे ठुकरा देंगे। भले ही भारतीयोंका आना रोक दीजिए और उसका फल भोगिए, परन्तु ऐसा कुछ करनेकी कोशिश मत कीजिए जो, मैं साबित कर सकता हूँ, भारी अन्याय है।
>
> यह इसके सिवा क्या है कि हम अपने अच्छे और बुरे दोनों तरहके नौकरोंका ज्यादासे-ज्यादा लाभ उठा लें और जब उनकी अच्छीसे-अच्छी उम्र हमें फायदा पहुँचानेमें कट जाये तब (अगर हम कर सकें तो, मगर कर नहीं सकते) उन्हें अपने देश लौट जानेके लिए बाध्य करें और इस प्रकार उन्हें अपने पुरस्कारका सुख भोगने देनेसे इनकार कर दें? और आप उन्हें भेजेंगे कहाँ? उन्हें उसी भुखमरीकी परिस्थितिको झेलनेके लिए फिर क्यों वापस भेजा जाये, जिससे अपनी जवानीके दिनोंमें भागकर वे यहाँ आये थे? अगर हम शाइलॉकके समान एक पौंड मांस ही चाहते हैं तो, विश्वास रखिए, शाइलॉकका ही प्रतिफल भी हमें भोगना होगा।

इस उपनिवेशके भूतपूर्व प्रधानमन्त्री स्वर्गीय श्री एस्कम्बने, भारतीय प्रश्नपर विचार करनेके लिए नियुक्त आयोगके सामने गवाही देते हुए कहा था:

> जहाँतक अवधि पूरी कर लेनेवाले भारतीयोंका सम्बन्ध है, मैं नहीं समझता कि किसी व्यक्तिको, जबतक वह अपराधी न हो और उस अपराधके लिए उसे देशनिकाला न दिया गया हो, दुनियाके किसी भी भागमें जानेके लिए बाध्य किया जाना चाहिए। मैंने इस प्रश्नके बारेमें बहुत-कुछ सुना है। मुझसे बार-बार अपना दृष्टिकोण बदलनेको कहा गया है, परन्तु मैं वैसा नहीं कर सका। एक आदमी यहाँ लाया जाता है। सिद्धान्ततः रजामन्दीसे, व्यवहारतः बहुधा बिना रजामंदीके लाया जाता है। वह अपने जीवनके सर्वश्रेष्ठ पाँच वर्ष खपा देता है। नये सम्बन्ध स्थापित करता है। पुराने सम्बन्धोंको भुला देता है। शायद यहाँ अपना घर बसा लेता है। ऐसी हालतमें मेरे न्याय और अन्यायके विचारसे, उसे वापस नहीं भेजा जा सकता। भारतीयोंसे जो-कुछ काम आप ले सकते हैं वह लेकर उन्हें चले जानेका आदेश दें, इससे तो यह कहीं अच्छा होगा कि आप उनको यहाँ लाना ही बिलकुल बन्द कर दें। ऐसा दीखता है कि उपनिवेश या उपनिवेशका एक भाग भारतीयोंको बुलाना तो चाहता है, परन्तु उनके आगमनके परिणामोंसे बचना चाहता है। जहाँतक मैं जानता हूँ, भारतीय हानि पहुँचानेवाले लोग नहीं हैं।

कुछ बातोंमें तो वे बहुत परोपकारी हैं। फिर, ऐसा कोई कारण तो मेरे सुननेमें कभी नहीं आया, जिससे किसी व्यक्तिको पाँच वर्षतक चाल-चलन अच्छा रखनेपर भी देशनिकाला दे दिया जाये, और इस कार्यको उचित ठहराया जा सके। मैं नहीं समझता कि किसी भारतीयको, उसकी पाँच वर्षकी सेवा समाप्त होनेपर पुलिसकी निगरानीमें रखना चाहिए। हाँ, अगर वह अपराधी वृत्तिका हो तो बात दूसरी है। मैं नहीं जानता कि अरबोंको क्यों पुलिसकी निगरानीमें यूरोपीयोंकी अपेक्षा अधिक रखा जाना चाहिए। कुछ अरबोंके सम्बन्धमें तो यह बात बिलकुल हास्यास्पद है। वे बहुत साधन-सम्पन्न हैं। उनके सम्बन्ध भी बहुत फैले हुए हैं। अगर उनके साथ कारोबार करना दूसरोंकी अपेक्षा ज्यादा फायदेमन्द हो, तो व्यापारमें उनका उपयोग हमेशा किया जाता है।

मुझे मालूम है कि बादको चुनावके हालातसे दबकर इन माननीय सज्जनने "अपना दृष्टिकोण बदल लिया था।" इन उद्धरणोंका सम्बन्ध निःसन्देह गिरमिटिया लोगोंकी जबरन वापसीसे है, परन्तु व्यक्ति-करका उद्देश्य भी क्योंकि गिरमिटियोंको इस प्रकार वापस आनेके लिए विवश करनेका है, इसलिए ये उसपर भी लागू होते हैं। और, विवादास्पद विधेयकका एक आवश्यक परिणाम यह होगा कि यदि भारतीय गिरमिटिया व्यक्ति-कर देनेको तैयार न होंगे तो उनके बच्चोंको यहाँसे वापस जाना पड़ेगा।

आपने और आपके अन्य सहयोगियोंने प्रवासी भारतीयोंकी शिकायतें प्रायः प्रकाशित करके उनको अपना बड़ा आभारी बना लिया है। परन्तु प्रतीत होता है कि जबतक एक-एक भारतीयको नेटालसे निकाल नहीं दिया जायेगा तबतक वहाँके यूरोपीय उपनिवेशी प्रसन्न नहीं होंगे। इस कारण भारतीयोंके लिए यह एक जीवन-मरणका संघर्ष हो गया है। उनके पक्षको पूर्णतया न्याययुक्त मानना पड़ेगा। और भी अनेक परिस्थितियाँ ऐसी हैं जिनसे उनके साथ न्याय होनेकी आशा है। हमारे वाइसराय बहुत जबरदस्त व्यक्ति हैं। उपनिवेश-मन्त्रीने भी बहुधा सहानुभूति प्रकट की है। क्या आप इन सब शक्तियोंको गतिमान् करनेकी कृपा करेंगे? यह समय इसके लिए अपरिपक्व नहीं है। शायद जबतक कागज-पत्र नेटालसे यहाँ आयेंगे तब-तक यह विधेयक भी मंजूरीके लिए उपनिवेश-कार्यालय पहुँच चुकेगा। इसलिए अब प्रतीक्षा करनेका समय नहीं है। मैं यहाँ इतना और बतला दूँ कि उपनिवेशके संविधानके अनुसार समस्त गरवेत कानूनोंके लिए इंग्लैंडकी सरकारसे मंजूरी मिलना जरूरी है।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

*टाइम्स ऑफ़ इंडिया*, १-५-१९०२

## १८६. पत्र : गो० कृ० गोखलेको

राजकोट
अप्रैल २२, १९०२

प्रिय प्रोफेसर गोखले,

क्या मैं आपको नेटालके प्रवासी भारतीयोंके सम्बन्धमें कष्ट दे सकता हूँ? आपने इस मासकी १० तारीखके *टाइम्स ऑफ़ इंडिया*में छपा तार पढ़ा होगा। इसपर मैंने सम्पादकको चिट्ठी लिखी है। मैंने इस विषयपर एक प्रार्थनापत्रकी नकल भी भेजी है, ताकि वे इस प्रश्नका इतिहास समझ सकें। यदि मैं सलाह देनेकी धृष्टता करूँ तो मुझे लगता है, सबसे ज्यादा कारगर उपाय, जिसमें सम्भवत: आप हमारी सहायता कर सकते हैं, यह है कि आप सम्पादकसे मिलें और उनसे इस स्थितिपर बातचीत करें। इस समय कार्रवाईका एक ही तरीका है कि अखबारोंमें जोरोंसे और सूझबूझके साथ आन्दोलन चलाया जाये। नेटालसे कागजात मिलते ही सम्भवत: यह आवश्यक होगा कि श्री टर्नरको उनके वादेकी याद दिलाई जाये और वाइसरायको एक प्रातिनिधिक प्रार्थनापत्र भेजनेमें साथ देनेके लिए कहा जाये। मुझे बहुत दु:ख है, मैं आपको उल्लिखित प्रार्थनापत्रकी नकल भी नहीं भेज सकता; किन्तु यदि प्रेसिडेन्सी असोसिएशनने समय-समयपर प्रेषित पत्रोंकी फाइल रखी होगी तो आपको वहाँसे नकल मिल जायेगी। मैं इसके बारेमें श्री मुंशीको लिख रहा हूँ। आशा है मैं आपके समयपर अनुचित दखल नहीं दे रहा हूँ।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (जी० एन० ३७२०) से।

## १८७. पत्र : जॉ० रॉबिन्सनको

राजकोट
अप्रैल २७, १९०२

प्रिय सर जॉन,

आपके ११ मार्चके कृपापूर्ण और सुखद पत्रके लिए, तथा फोटोग्राफके लिए भी, जिसे मैं बहुत ही मूल्यवान समझूँगा, धन्यवाद।

प्रोफेसर मैक्समूलरकी पुस्तक आपने पसन्द की यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई। मेरे खयालसे, साम्राज्य-परिवारकी पश्चिमी और पूर्वी शाखाओंके बीच सद्भाव बढ़ानेवाली इससे अच्छी दूसरी कोई बात नहीं हो सकती कि वे एक-दूसरेकी अच्छीसे-अच्छी बातोंको जानें।

आपने मेरे स्वास्थ्यके बारेमें पूछा, इसके लिए धन्यवाद। उसमें बराबर सुधार होता जान पड़ रहा है।

भारतके आम लोगोंकी बढ़ती हुई गरीबीके बारेमें कुछ वक्ता और लेखक जो कहते हैं, मुझे भय है, उसमें बहुत-कुछ सत्य है। कुछ वर्ग निश्चय ही अधिक समृद्ध हो गये हैं, लेकिन

करोड़ों बरबाद होते दीख रहे हैं। मैं १८९६ में यहाँ था। तब मैंने जो कुछ देखा और अब मैं जो कुछ देखता हूँ उसमें बहुत बड़ा अन्तर है। कष्ट अवर्णनीय है; किन्तु इससे जरूरी तौरपर यह सिद्ध नहीं होता कि गरीबीका वही कारण है जो ये लेखक और वक्ता बताते हैं। फिर भी, अकबरकी शासन-पद्धतिपर वापस लौटनेसे अकाल और प्लेगसे उत्पन्न मुसीबत कुछ हदतक कम हो सकती है। इस विषयपर मेरे कथनमें सुधारकी गुंजाइश है, क्योंकि मैं इस प्रश्नका जितना पूरा अध्ययन करना चाहता था, उतना अभीतक नहीं कर सका हूँ।

आशा है, आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। प्रभुसे प्रार्थना है कि वह आपको बहुत साल जीवित रखे, ताकि दक्षिण आफ्रिका अपनी बहुत-सी समस्याओंके सम्बन्धमें, जो अभीतक हल नहीं हुई हैं, आपके भारी अनुभवका लाभ उठा सके।

आपको और श्रीमती रॉबिन्सनको अभिवादन।

आपका सच्चा,

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३९६१) से।

## १८८. पत्र: गो० कृ० गोखलेको

राजकोट
मई १, १९०२

प्रिय प्रोफेसर गोखले,

आपके कृपा-पत्रके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। यह तो मैं अच्छी तरह समझ सकता था कि आपके मौनका जरूर कोई अपरिहार्य कारण होगा; किन्तु तीन दिन पहले जब मैं श्री वाडियासे मिला तबतक मैंने यह नहीं सोचा था कि कारण आपकी बीमारी है। आशा है, आप जल्दी ही अपना साधारण स्वास्थ्य प्राप्त कर लेंगे। यह जानकर आपको प्रसन्नता होगी कि मैंने फिलहाल राज्य स्वयंसेवक प्लेग समिति (स्टेट वालंटियर प्लेग कमिटी) के मन्त्रीका बहुत उत्तरदायित्वपूर्ण पद स्वीकार कर लिया है। यह समिति राजकोटमें प्लेग फैलनेकी आशंकासे स्थापित की गई है। इसलिए मैं सोचने लगा था कि यदि मुझे आपके पाससे रानडे स्मारकके लिए धन-संग्रहका बुलावा मिल गया तो मैं क्या करूँगा। यह कहना जरूरी नहीं है कि जब कभी आप कार्य आरम्भ करें, आप भरोसा कर सकते हैं कि मैं आपका सहायक बन जाऊँगा — अलबत्ता, उस समय आपको मेरी जरूरत हो तो।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (जी० एन० ३७१८) से।

## १८९. टिप्पणियाँ: भारतीय प्रश्नपर

राजकोट
मई ६, १९०२

इस चर्चामें केवल नेटाल और दो नये उपनिवेशोंसे सम्बद्ध भारतीय प्रश्नपर ही विचार किया गया है।

### नेटाल

नेटाल एक स्वशासित उपनिवेश है। उसके संविधानके अनुसार, रंग-भेदके सब कानूनोंपर अमल आरम्भ होनेसे पहले, महामहिम सम्राट्की मंजूरी मिल जाना आवश्यक है। संविधानका एक साधारण नियम यह भी है कि उपनिवेशके विधानमण्डल द्वारा पास किये हुए किसी भी कानूनको, पास होनेके पश्चात् दो वर्षके भीतर, नामंजूर किया जा सकता है।

इस उपनिवेशमें गोरे लोगोंकी आबादी ६०,००० है, और इतनी ही संख्यामें वहाँ ब्रिटिश भारतीय बसे हुए हैं। वहाँके देशी लोग, जूलू, खासे अच्छे लोग हैं, परन्तु वे बड़े आलसी हैं। उनसे लगातार ६ महीने तक भी काम लेना कठिन है। इसलिए जब वहाँ बसे हुए गोरे स्थायी और भरोसेके मजदूर मिलनेकी समस्याके कारण परेशान थे और उपनिवेशका दिवाला निकला जा रहा था, तब वहाँके विधानमण्डलने भारतीय मजदूरोंका सहारा लिया। कुछ शर्तोंकी बातचीतके बाद भारत सरकारने गिरमिटिया भारतीयोंको नेटाल ले जानेकी इजाजत दे दी। इस बातको कोई ४० वर्ष हो गये। धीरे-धीरे भारतीय मजदूरोंकी माँग बढ़ती गई। उपनिवेशकी समृद्धि भी उसी हिसाबसे बढ़ने लगी। इन मजदूरोंके गिरमिटकी शर्त यह होती थी कि जिस किसी मालिकके सुपुर्द इन्हें कर दिया जाये उसकी सेवा ये ५ वर्षतक करें, और वह इन्हें पहले वर्ष तो १० शिलिंग मासिक मजदूरी दे, और उसके बाद प्रतिवर्ष १ शिलिंग वार्षिक बढ़ाता जाये। इस इकरारनामेमें मुफ्त निवास और चिकित्सा और इकरारनामेकी समाप्तिपर मुफ्त वापसीकी भी शर्तें शामिल थीं।

मालिकों और मजदूरोंके सम्बन्धोंका नियन्त्रण एक अति कठोर नियमावलीके द्वारा किया जाता है। उसके अनुसार मजदूरोंपर कुछ बहुत सख्त पाबन्दियाँ लागू हो जाती हैं, और उनका उल्लंघन करना फौजदारी अपराध होता है।

स्वभावतः, इन मजदूरोंके पीछे स्वतन्त्र भारतीय भी वहाँ पहुँचे, अर्थात् वे अपना मार्ग-व्यय खुद देकर व्यापारादि करनेके लिए उपनिवेशमें गये। गिरमिटिया भारतीयोंमें से भी अधिकतरने स्वतन्त्र हो जानेके पश्चात् मुफ्त वापस लौट आनेकी शर्तका लाभ उठानेके बदले उपनिवेशमें ही रहकर कारीगर, छोटे व्यापारी और किसान आदि बन जाना पसन्द किया। इस कारण गोरे लोग उनसे तीव्र व्यापारिक ईर्ष्या करने लगे; और उन्होंने आसानीसे उनकी बड़ीसे-बड़ी बुराइयोंको ढूँढ़ लिया, जैसे कि घिचपिच ढंगसे तंग बस्तियोंमें रहना, आबादियोंको मैला रखना और कुछ असंस्कृत रीति-रिवाज या अन्धविश्वास। इनका बखान खूब बढ़ा-चढ़ाकर किया जाता और अखबारोंमें इनकी चर्चा कर-करके हमें खूब नुकसान पहुँचाया जाता था। यहाँतक कि, आम लोगोंमें भी भारतीय प्रवासियोंके विरुद्ध भ्रम फैल गया। प्रवासी भारतीय अशिक्षित थे। उनका ऐसा कोई मित्र भी नहीं था जो उनका पक्ष लोगोंके सामने पेश करता। इस कारण इस भ्रमका निवारण किसीने नहीं किया। १८९४ से पहलेतक नेटाल सम्राट्

द्वारा शासित उपनिवेश था; इस कारण इस भ्रमका लाभ उठाकर कानून बनानेके प्रयत्न सफल नहीं हो पाये। परन्तु जब इस उपनिवेशको पूर्ण स्वशासनके अधिकार मिल गये तब यह भारतीय विरोधी कानून पास करनेमें सफल हो गया। पहली ही कोशिश, विशेष रूपसे भारतीयोंपर लागू होनेवाले कानून बनानेकी हुई। उदाहरणार्थ, एक विधेयक, भारतीयोंको मताधिकारका प्रयोग करनेसे रोकनेके लिए पेश किया गया। इसपर भारतीयोंने आपत्ति की और अन्तमें उपनिवेश-मन्त्रीने इसे नामंजूर कर दिया। जब इस विधेयकके विरुद्ध आन्दोलन चल रहा था तब भारतीयोंने यह सर्वथा स्पष्ट कर दिया था कि उनकी इच्छा उपनिवेशमें कोई राजनीतिक अधिकार प्राप्त करनेकी नहीं है; परन्तु वे इसका विरोध इस कारण कर रहे हैं कि यह ब्रिटिश भारतीय निवासियोंके अधिकारोंको कम करनेका पहला कदम है। आगे चलकर उनकी यह बात सत्य भी सिद्ध हो गई। यद्यपि यह विधेयक तब नामंजूर कर दिया गया, फिर भी बादमें इसकी जगह एक और कानून बना दिया गया। वह यदि इससे अधिक बुरा नहीं तो इतना ही बुरा अवश्य था। इस दूसरे कानूनके अनुसार, जिन लोगोंने अभीतक अपने देशमें संसदीय मताधिकारका प्रयोग नहीं किया था वे इस उपनिवेशमें मत देनेके अयोग्य ठहरा दिये गये हैं। इस प्रकार परोक्ष कानून बनानेका द्वार खुल गया। उदाहरणके लिए, प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियम और विक्रेता-परवाना अधिनियम स्वीकार किये गये। प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियम उन लोगोंको उपनिवेशमें प्रविष्ट होनेसे रोकता है जो पहलेसे वहाँके निवासी न हों, या इस प्रकारके किसी व्यक्तिकी पत्नी या सन्तान न हों, या किसी यूरोपीय भाषामें छपे हुए फार्मपर शर्तें भरकर प्रार्थनापत्र न लिख सकते हों। विक्रेता-परवाना अधिनियममें उसके द्वारा नियुक्त परवाना-अधिकारियोंको पूरा-पूरा अधिकार दे दिया गया है कि वे जिसे चाहें व्यापार करनेका परवाना दें, जिसे चाहें न दें। उनके फैसलेकी अपील केवल उन म्यूनिसिपल निगमोंमें हो सकती है जो इन अफसरोंको नियुक्त करते हों। इन निगमों (कॉर्पोरेशनों) में ज्यादा-तर संख्यामें उन्हीं व्यापारियोंके प्रतिनिधि होते हैं जो अपने वश-भर अधिकसे-अधिक भारतीय व्यापारियोंको परवानोंसे वंचित रखनेके प्रयत्नमें जुटे रहते हैं। यहाँतक कि ये निगम अपने अधिकारियोंको हिदायतें देते हैं कि किसको परवाना दें और किसको न दें। इस कानूनकी हदतक सर्वोच्च न्यायालयका अपीलें सुननेका परम्परागत अधिकार विशेष रूपसे समाप्त कर दिया गया है। परवाना-कानून एक नित्य बनी रहनेवाली परेशानीका सबब हो गया है; क्योंकि परवाने हर साल लेने पड़ते हैं, और जैसे-जैसे नया वर्ष पास आने लगता है भारतीय व्यापारी डर और चिन्तासे काँपने लगते हैं। इन सब कष्टदायक निर्योग्यताओंके होते हुए भी मुझे आशंका है कि इस समय प्रत्यक्ष रूपसे कुछ नहीं किया जा सकता; क्योंकि ये सब कानून नेटालके हैं और इन्हें ब्रिटिश सरकार बाकायदा मंजूरी दे चुकी है। परन्तु यूरोपीयोंको जितना मिल चुका है वे उतनेसे ही सन्तुष्ट नहीं हैं। वे अप्रत्यक्ष उपायोंसे भारतीयोंपर और भी कानूनी निर्योग्यताएँ लादनेको उत्सुक हैं। मेरे पास नेटालसे जो समाचारपत्र आये हैं उनसे पता चलता है कि हालमें नेटाल नागरिक सेवा निकाय (सिविल सर्विस बोर्ड) ने एक उपनियम अपनी परीक्षामें बैठनेवाले उम्मीदवारोंकी छँटाईके लिए बनाया है। उसके अनुसार जो माता-पिता ऊपर बताये हुए मताधिकार-अपहरण कानूनके दायरेमें आते हैं उनके बालक इस परीक्षामें नहीं बैठ सकेंगे। मेरी सम्मतिमें यह उपनियम अवैध है, क्योंकि इससे उपनिवेशके संविधानके मूलपर ही कुठाराघात हो जाता है। यदि यह कानून नेटालके विधान-मण्डलने पास किया होता तो इसकी मंजूरी ब्रिटिश-सरकारसे लेनी पड़ती। साधारण सिद्धान्त यह है कि कोई उपनियम, जिस कानूनके अनुसार वह बना है, उस कानून या अधिनियमके क्षेत्रको न घटा सकता है, न बढ़ा सकता है।

मैंने नागरिक सेवा अधिनियम (सिविल सर्विस ऐक्ट) पढ़ा है और उसमें मुझे इस प्रकारका उपनियम बनानेकी इजाजत कहीं दिखाई नहीं दी। मैंने यह उदाहरण केवल यह दिखलानेके लिए दिया है कि अप्रत्यक्ष कानून बनानेके सिद्धान्तको कहाँतक खींचा गया है। निःसन्देह यदि आवश्यकता हुई तो नेटालमें भारतीयोंको इस उपनियमकी वैधता परखनी पड़ेगी। मैंने उन्हें उपनिवेशके गवर्नरकी सेवामें भी प्रार्थनापत्र भेजनेकी सलाह दी है।

समाचारपत्रोंमें हालमें प्रकाशित एक तार[1] से पता चलता है कि इस समय यूरोपीय एक नई दिशामें प्रवृत्तिशील हैं। १८९५ में गिरमिटिया प्रवासी-कानूनमें संशोधन करके गिरमिटकी मियाद बढ़ाकर १० वर्ष कर दी गई थी, और उसकी समाप्तिपर या तो भारत लौटना या, यदि उपनिवेशमें ही रहा जाये तो, ३ पौंड वार्षिक व्यक्ति-कर देना अनिवार्य कर दिया गया था। अब प्रकाशित तारके अनुसार वे यह व्यक्ति-कर, गिरमिटिया प्रवासीके अतिरिक्त, उसकी सन्तानोंसे भी वसूल करना चाहते है।

## ट्रान्सवाल और ऑरेंज रिवर कालोनी

ट्रान्सवालमें भारतीय न तो जमीन खरीद सकते हैं और न पृथक् बस्तियोंके सिवा कहीं रह सकते हैं। वे सड़कोंकी पटरियोंपर नहीं चल सकते। उन्हें काफिरोंकी भाँति परवाने लेने पड़ते हैं। जब बस्ती-कानून पास हुआ था तब इसके विरुद्ध दिये गये भारतीय प्रार्थना-पत्रके जवाबमें और उसके बाद भी कई बार श्री चेम्बरलेनने बहुत सहानुभूतिपूर्ण बातें कही थीं। उन्होंने यहाँतक कहा था 'कि यदि वे अपने पूर्ववर्ती अधिकारीकी कार्रवाइयोंसे बँधे हुए न होते तो भारतीयोंको कहने लायक सुविधा दे सकते थे। इसके सिवाय लॉर्ड लैंसडाउनने तो यहाँतक कहा बतलाते हैं कि वर्तमान युद्धका एक कारण भारतीय लोगोंकी कानूनी निर्योग्यताएँ भी थीं।

इन परिस्थितियोंमें यह आशा स्वाभाविक थी कि जब देशपर ब्रिटिश शासन हो जायेगा तब भारतीयोंकी कानूनी निर्योग्यताएँ हटा दी जायेंगी। परन्तु डर है कि अब यह आशा पूरी नहीं होगी। लगता है श्री चेम्बरलेन टालमटोल कर रहे हैं। वे कहते हैं कि मैं लॉर्ड मिलनरसे सलाह कर रहा हूँ और पूछ रहा हूँ कि पुराने कानूनोंमें क्या-क्या परिवर्तन किये जा सकते हैं। ऐसा रुख बहुत खतरनाक है। ऐसे सलाह-मशविरेकी जरूरत ही क्या है? निश्चय ही पहला काम यह होना चाहिए कि सब ब्रिटिश प्रजाओंका दर्जा समान घोषित कर दिया जाये और फिर यह विचार किया जाये कि प्रजाका कोई भाग विशेष व्यवहारका अधिकारी तो नहीं है। फिर भी मैं इस स्थितिको समझता हूँ और एक हदतक इसके साथ सहानुभूति भी रखता हूँ। १८९६ में जब उन्होंने अपना उपर्युक्त खरीता लिखा था तब यह नहीं सोचा था कि युद्ध इतनी जल्दी छिड़ जायेगा और वह भी इतने तीव्र रूपमें कि सारा देश उनके हाथमें आ जायेगा। अब उन्हें एक ओर तो भारतीयोंकी अति उचित और सर्वथा न्यायसंगत माँगें पूरी करनेमें और अपने खरीतेके अनुसार चलनेमें और दूसरी ओर भारतीय-विरोधी भावनाओंको सन्तुष्ट करनेमें कठिनाईका अनुभव हो रहा होगा। वे यह भी देख रहे मालूम पड़ते हैं कि उनके ही जीवन-काल और कार्यकालमें शायद दक्षिण आफ्रिकी संघका संघटन पूरा हो जाये। भारतीय प्रश्न उसकी पूर्तिमें अवश्य बाधक होगा; और यदि वे दक्षिण आफ्रिकामें भारतीय-विरोधी कानूनकी समस्या हल कर सकेंगे तो यह कठिनाई दूर हो जायेगी। मैं यदि भूल नहीं करता तो वे इसी कारण 'टालमटोल' कर रहे हैं। वे इस प्रश्नपर केप और

१. देखिए "पत्र: *टाइम्स ऑफ़ इंडिया*को," अप्रैल २२, १९०२।

नेटालका रुग जानना चाहते हैं और पुराने कानूनोंमें उतना ही परिवर्तन करना चाहते हैं जितना इन दोनों उपनिवेशोंको पसन्द हो।

तो यह स्पष्ट है कि भारतीय राजनीतिक पत्रकारोंको कौन-सा मार्ग अपनाना चाहिए। उन्हें अपनी समस्त उपलब्ध शक्तिका प्रयोग नये उपनिवेशोंमें ही करना चाहिए; और यदि वहाँ कोई सन्तोषजनक हल निकल आया तो नेटालको झुकना ही पड़ेगा। मेरी तुच्छ सम्मतिमें तो आन्दोलनका ढंग [. . . .][1] भारतीय पत्र इस मामलेको जनता और सरकारके ध्यानमें निरन्तर लाते रहें। आंग्ल-भारतीयोंकी सहानुभूति भी इस मामलेमें हमारे साथ है, और हमें सब जोखिम उठाकर भी उन्हें अपने साथ रखना चाहिए। मैं इसके साथ श्री टर्नरके नाम लिखे हुए वाइसरायके एक पत्रकी नकल नत्थी कर रहा हूँ। उससे उनके विचारोंका तो पता लगता ही है, यह भी पता लगता है कि बंगाल व्यापार-संघ (बंगाल चेम्बर ऑफ कॉमर्स) कुछ करनेको तैयार है। सब सार्वजनिक संस्थाओंको मिल जाना चाहिए। [यदि कोई संस्था विदेशोंमें जाकर बसनेके प्रश्नका अध्ययन विशेष रूपसे अपना ले तो वह सारे आन्दोलनका संचालन ठीक प्रकारसे कर सकती है;] और तब ब्रिटिश सरकार भी इस प्रश्नकी सुगमतासे उपेक्षा नहीं कर सकेगी।

[दक्षिण आफ्रिकामें हमें जीनेका अधिकार प्राप्त करनेके लिए एक ऐसी जातिके साथ संघर्ष करना पड़ रहा है जो अत्यन्त क्रियाशील और सम्पन्न है और जो हार मानना जानती ही नहीं। हमारी ओरसे भी इसी प्रकार निरन्तर प्रयत्न जारी रखा जानेकी आवश्यकता है। अन्तमें हमें सफलता अवश्य मिलेगी।]

कई नेताओंने मेरे साथ बात करते हुए निराशा दिखाई है। भले ही परिस्थिति बहुत कठिन है और किसी भी गलत कदमसे सफलतामें बाधा पड़ सकती है, फिर भी मैं उनके निराशामय विचारोंसे सहमत नहीं हूँ। इस आशावादिताका औचित्य सिद्ध करनेके लिए ही मैं यहाँ इस तथ्यका जिक्र करना चाहता हूँ कि कई मामलोंमें दक्षिण आफ्रिकाके यूरोपीय अपनी बात मनवानेमें सफल नहीं हुए हैं। उदाहरणार्थ, नेटालके एक भाग जूलूलैंडमें भारतीयोंको जमीन खरीदनेके अधिकारसे वंचित करनेका कानून[2] पास भी हो गया था, परन्तु उसे नामंजूर कर दिया गया। प्रवासी-प्रतिबन्धक कानून और विक्रेता-परवाना कानून भी समझौते ही हैं। इन दोनों कानूनोंके मूल विधेयक इनसे बहुत बढ़कर थे। यह तो निरन्तर आन्दोलनका फल है कि नेटाल और ट्रान्सवालमें भारतीयोंको जैसे-तैसे पाँव रखनेकी जगह मिल गई। उपनिवेशोंमें हम पारस्परिक भ्रमोंका निवारण करके, उपनिवेशियोंकी कठिनाइयोंमें छोटे रूपमें ही क्यों न हो, उनके साथ सहानुभूति प्रकट करके और युद्धमें भाग लेकर उन्हें समझाने-बुझानेका यत्न करते रहे हैं।

ऑरेंज रिवर कालोनीमें हमारी कठिनाइयाँ कहीं अधिक गम्भीर हैं। वहाँ भारतीयोंको किसी भी प्रकारके कोई अधिकार नहीं हैं। परन्तु मेरा खयाल है कि वहाँके भी कानून वैसे ही होंगे जैसे ट्रान्सवालके।

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३९६३) से।

१. यह भाग पढ़ा नहीं जाता।
२. देखिए खण्ड १, पृष्ठ २९९-३००।

## १९०. पत्र : अब्दुल कादरको[1]

राजकोट
मई ७, १९०२

प्रिय श्री अब्दुल कादर,

श्री रुस्तमजी और मियाखाँको लिखा गुजराती पत्र[2] भेज रहा हूँ। आशा करता हूँ आप इसे ठीक-ठीक पढ़वा लेंगे और समझ लेंगे। मुझे इसमें आगे और कुछ जोड़नेकी जरूरत नहीं। आपने मेरे किसी भी पत्रकी पहुँच नही दी। मेरे बिलकी बाकी रकमका ड्राफ्ट भेजें तो आपको धन्यवाद दूँगा। मुझे रुपयेकी सख्त जरूरत है।

आपका सच्चा,

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३९६४) से।

## १९१. नेटालके भारतीय

राजकोट
मई १०, १९०२

सेवामें
सम्पादक
*टाइम्स ऑफ् इंडिया*
बम्बई

महोदय,

आपके १ तारीखके अंकमें नेटालके ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थितिके विषयमें मेरा जो पत्र छपा है, उसके सम्बन्धमें मुझे अब नेटालसे वे अखबार मिल गये हैं जिनमें तत्सम्बन्धी विधेयकका पाठ दिया गया है। मैं उसे नीचे देता हूँ :

> भारतीय प्रवास संशोधन अधिनियममें संशोधनके लिए विधेयक, जिसके द्वारा यह विधान किया जाता है कि प्रत्येक भारतीय बालकको वयस्क (बालक १६ वर्ष और बालिका १३ वर्ष) हो जानेपर लाजिमी होगा — (क) भारत लौटना या (ख) नेटालमें बादके अधिनियमों द्वारा संशोधित १८९५ के अधिनियम सं० १७ के अनुसार गिरमिटके अन्तर्गत रहना, जो उसी प्रकार दोबारा जारी करवाया जा सकता है, या (ग) इस उपनिवेशमें रहनेके लिए वर्ष-प्रतिवर्ष १८९५ के अधिनियम सं० १७ की धारा ६ के अनुसार परवाना लेना।
>
> परन्तु, यदि ऐसा कोई बालक अपने पिताका पहला या पीछेका गिरमिट पूरा होनेसे पहले ही वयस्कता प्राप्त कर लेगा तो उस गिरमिटके पूरा होनेतक इस धारापर अमल रोक दिया जायेगा। जिस बालकका पिता मर गया होगा या नेटालमें नहीं

१. डर्बनके एक प्रमुख व्यापारी, जो १८९४ में नेटाल भारतीय कांग्रेसके उपाध्यक्ष तथा १८९९ में अध्यक्ष थे।
२. उपलब्ध नहीं है।

होगा, या जिसकी माता उसके जन्मके समय अविवाहित होगी, उसके मामलेमें पिताके गिरमिटपर लागू ऊपरकी व्यवस्था उसकी माताके गिरमिटपर लागू होगी। जिस बालकपर यह अधिनियम लागू होगा वह भारत जानेका मुफ्त मार्ग-व्यय पानेका अधिकारी होगा, जिससे वह अपने पिताके (या यदि वैसी स्थिति हो तो अपनी माताके) पहले या पिछले गिरमिटके पूरे हो जानेपर भारत लौट सके। परन्तु मुफ्त मार्ग-व्यय पानेका यह अधिकार नष्ट हो जायेगा, यदि (क) पिता अथवा वैसी स्थिति हो तो माताका गिरमिट, बालककी अवयस्क अवस्थामें ही समाप्त हो जाये और वह न तो भारत लौटे और न १८९५ के अधिनियम सं० १७ के अनुसार अपना गिरमिट फिर जारी करवाये, (ख) बालक वयस्क हो जानेपर अथवा इस अधिनियमके अनुसार किया हुआ गिरमिट पूरा हो जानेपर, भारत लौट जानेके लिए उपलब्ध प्रथम अवसरका लाभ उठाकर भारत न लौटे। जो लोग इस अधिनियमके अमलमें आनेसे पहले ही वयस्कता प्राप्त कर चुके होंगे उनपर यह अधिनियम लागू नहीं होगा। लेकिन इस बातसे कोई फर्क नहीं पड़ता कि बालक माता-पिताके नेटाल पहुँचनेके बाद उत्पन्न हुआ या पहले।

यदि यह जानकर किसीको कुछ सन्तोष हो सकता हो तो वह जान ले कि यह विधेयक गोदके बालकोंपर लागू नहीं होता। तथापि, इसपर जितना विचार करें यह उतना ही अन्यायपूर्ण लगता है।

एक ध्यान देनेकी बात यह है कि जिन बालकोंने उपनिवेशमें प्रारम्भिक शिक्षण प्राप्त कर लिया हो उनसे भी इस विधेयकमें, हृष्ट-पुष्ट खेत-मजदूरोंके समान, परन्तु बाजार-दरसे भी कम मजदूरीपर, 'सूर्योदयसे सूर्यास्ततक' मशक्कत करनेकी आशा रखी गई है; और तथाकथित नियम-विरुद्ध संयोग द्वारा उत्पन्न हुए बालक भी इस विधेयकमें शामिल कर लिये गये हैं। इसका फल यह होगा जिस गिरमिटिया स्त्रीने अपने धार्मिक मत या रीति-रिवाजोंके अनुसार किसी स्वतन्त्र भारतीयसे विवाह कर लिया होगा, परन्तु जिसका विवाह पंजीकृत (रजिस्टर्ड) न होनेके कारण उपनिवेशमें कानून-सम्मत न माना गया होगा, उसके बालकोंपर भी गिरमिटिया भारतीयोंकी ही पाबन्दियाँ लागू हो जायेंगी। परन्तु [जिस कानूनका आधारभूत सिद्धान्त ही उस न्यायके साधारण नियमों तकसे असंगत हो, जिसे कि ब्रिटिश संविधानकी परम्पराओंमें पालित-पोषित लोग न्याय समझते हैं, उसपर विस्तारसे विचार करना समयको नष्ट करना है।]

जिस डाकसे इस विधेयककी प्रति मुझे मिली है उसीसे यह समाचार भी मिला है कि आगामी जूनमें सरकार स्कूलोंमें पढनेवाले सब यूरोपीय बालकोंको जो ताजपोशी स्मृति-पदक देगी, वह उपनिवेशके स्कूलोंमें पढ़नेवाले भारतीय बालकोंको नहीं दिया जायेगा। निश्चय ही, भारतीय बालकोंका यह बहिष्कार आर्थिक कारणोंसे नहीं किया जा रहा है, क्योंकि मेरा खयाल है कि यूरोपीय बालकोंकी संख्या जहाँ २०,००० है वहाँ भारतीय बालक लगभग ३,००० ही है। स्पष्ट है कि ताजपोशीके उत्सवका दिन भारतीय बालकोंको यथासम्भव अधिक स्पष्टतासे यह अनुभव करवाकर मनाया जायेगा कि इस उपनिवेशकी सरकारकी दृष्टिमें खालके रंगका गेहुँआ होना हीनता और पतनकी पक्की निशानी है।

[अंग्रेजीसे]

मो० क० गांधी

*टाइम्स ऑफ़ इंडिया*, १४–५–१९०२

## १९२. पत्र: श्री दिनशा वाछाको

राजकोट
रविवार, १८ मई, १९०२

प्रिय श्री वाछा,

आपका पत्र मिला। आपने जिस वाक्यका उल्लेख किया है वह, मैं सोचता हूँ, ज्यों-का-त्यों रह सकता है। किन्तु आपको अनावश्यक लगा है — शायद इस खयालसे कि भाषाकी तनिक-सी अत्युक्ति भी बचायी जानी चाहिए। इसलिए मैं उसके स्थानमें यह सुझाता हूँ: "अब साफ तौरपर यह प्रयत्न किया जा रहा है कि गिरमिटिया भारतीयोंके बच्चोंपर कृत्रिम वयस्कता प्राप्त करते ही कर लगाकर यथासम्भव वही रकम प्राप्त की जाये।" मेरा खयाल है, आप प्रार्थनापत्र[1] छाप रहे हैं। यदि ऐसा हो तो, आशा है, मुझे कुछ प्रतियाँ भेज देंगे।

आपका सच्चा,

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३९६७) से।

## १९३. पत्र: ईस्ट इंडिया असोसिएशनको

राजकोट
मई १८, १९०२

सेवामें
श्री मन्त्री,
ईस्ट इंडिया असोसिएशन
वेस्टमिन्स्टर
लंदन

प्रिय महोदय,

संलग्न-पत्र[2] अपनी कहानी आप कहेंगे। पूर्व भारत संघ (ईस्ट इंडिया असोसिएशन) ने दक्षिण आफ्रिकामें बसे ब्रिटिश भारतीयोंके मामलेकी वकालत करके उन्हें अत्यन्त अनुगृहीत किया है। उसने पहले ही माँग की है कि यदि आम निर्योग्यताओंके सम्बन्धमें दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोंकी शिकायतें दूर नहीं की जाती तो भारतसे गिरमिटिया लोगोंका देशान्तरण बन्द कर दिया जाये। यह माँग अत्यन्त उपयुक्त होगी, क्योंकि संलग्न-पत्रमें उल्लिखित विधेयकका सीधा प्रभाव गिरमिटिया लोगोंके हितोंपर पड़ता है। मेरा खयाल है कि यहाँका प्रेसिडेंसी

१. "प्रार्थनापत्र: लॉर्ड हैमिल्टनको," जून ५, १९०२।

२. स्पष्टतः साथके प्रलेख उनके उन दो पत्रोंकी नकलें थीं, जो उन्होंने अप्रैल २२ और मई १०, १९०२ को प्रवासी-विधेयकपर *टाइम्स ऑफ़ इंडिया*को लिखे थे।

असोसिएशन इस मामलेमें कार्रवाई कर रहा है। क्या मैं उक्त असोसिएशनसे भी किसी ऐसी ही कार्रवाईकी प्रार्थना कर सकता हूँ? संयुक्त कार्रवाई निश्चय ही सफल होगी।

आपका सच्चा,

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३९६६) से।

## १९४. पत्र: मंचरजी मेरवानजी भावनगरीको

राजकोट
मई १८, १९०२

प्रिय सर मंचरजी,

आशा है, आपको मेरा ३० मार्चका पिछला पत्र मिला होगा। उसके बाद नेटाल-सरकारने उपनिवेशके ब्रिटिश भारतीय प्रवासियोंपर अधिक निर्योग्यताएँ लादनेका एक और प्रयत्न किया है। साथके कागजात[1] से स्थिति पूर्णतः स्पष्ट हो जायेगी। मेरे विचारसे यदि प्रवासियोंके पक्षमें सब उपलब्ध शक्तियाँ क्रियाशील हो जायें तो नेटाल सरकारका यह प्रयत्न निश्चय ही व्यर्थ होगा। यदि यह विधेयक नामंजूर नहीं किया जाता तो नेटालमें भारतीयोंका प्रवास बन्द करनेकी माँग पूर्णतः न्याय-संगत होगी, क्योंकि अब तो यह सारा मामला गिरमिटिया लोगोंसे ही सम्बन्धित है। आप जानते ही हैं, पूर्व भारत संघ (ईस्ट इंडिया असोसिएशन) ने तो दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंपर लगी आम निर्योग्यताओंके सम्बन्धमें भी गिरमिटिया लोगोंका प्रवास रोकनेकी माँग की है। वर्तमान मामलेमें तो यह और अधिक आवश्यक होना चाहिए। मेरा विश्वास है, प्रेसिडेंसी असोसिएशनने इस मामलेमें कार्रवाई आरम्भ कर दी है। मैं इन गरीब लोगोंके लिए आपकी जबरदस्त मददकी प्रार्थना करता हूँ।

आपका सच्चा,

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३९७१) से।

१. देखिए पिछले शीर्षककी पादटिप्पणी।

# १९५. नेटालके भारतीय

राजकोट
मई २०, १९०२

सेवामें
सम्पादक
इंग्लिशमैन

[महोदय,]

मैं आपके पत्रमें थोड़ा-सा स्थान माँगनेका साहस करता हूँ, ताकि मैं जनताका ध्यान नेटाल विधानमण्डल द्वारा उस उपनिवेशमें बसे ब्रिटिश भारतीयोंपर और निर्योग्यताएँ लादनेकी नई कोशिशकी ओर खींच सकूँ।

नेटालकी संसदने एक विधेयक पास किया है, जिसके अन्तर्गत गिरमिटिया भारतीयोंके बच्चे (१६ वर्षीय बालक और १३ वर्षीय बालिकाएँ) अपने माता-पिताकी तरह बाध्य हो जायें :

(क) भारतको लौटनेके लिए, या

(ख) गिरमिटिया मजदूर बननेके लिए, या

(ग) ३ पौंड वार्षिक व्यक्ति-कर देनेके लिए।

जब लॉर्ड एलगिन वाइसराय थे, तब नेटालसे एक शिष्टमण्डल[1] उन्हें इस बातपर रजामन्द करनेके लिए आया था कि वे गिरमिटको भारतमें पूरा करने और इस तरह उपनिवेशमें गिरमिटिया भारतीयोंकी स्थायी बसावट रोक देने, या प्रत्येक गिरमिटिया भारतीयपर, जो उपनिवेशमें स्वतन्त्र व्यक्तिके रूपमें रहना चाहे, २५ पौंड सालाना व्यक्ति-कर लगानेका कानून बनानेकी इजाजत दे दें। सौभाग्यसे वाइसराय महोदयने इस तरहके किसी प्रस्तावपर ध्यान नहीं दिया। लेकिन दुर्भाग्यवश, और मेरा खयाल है, शायद कुछ खास परिस्थितियोंसे अपरिचित होनेके कारण, उन्होंने अनिच्छापूर्वक ३ पौंड वार्षिक व्यक्ति-कर लगानेकी मंजूरी देकर स्वतन्त्रताके मूल्यके रूपमें करका सिद्धान्त स्वीकार कर लिया। अब यदि उल्लिखित विधेयक कानून बन जाता है तो नेटाल-सरकार प्रायः वह चीज हासिल करनेमें सफल हो जायेगी, जिसे वह आठ साल पहले हासिल करनेमें असफल रही थी।

साम्राज्यकी दुहाई हर एककी जबानपर है, खास तौरसे उपनिवेशोंमें। युगके महानतम ब्रिटिश राजनीतिज्ञ तो इस समस्याको हल करनेका प्रयत्न कर रहे हैं कि ब्रिटिश उपनिवेशोंके विभिन्न भागोंको मिलाकर उन्हें एक सुन्दर अटूट सम्पूर्णतामें कैसे बदला जाये, और फिर भी, यहाँ एक ऐसा उपनिवेश मौजूद है, जो ब्रिटिश प्रजाके दो वर्गोंमें बहुत ही उत्तेजक तरीकेसे द्वेषजनक भेदभाव बरपा कर रहा है।

गिरमिटिया भारतीयोंके प्रति नेटाल-सरकारका रुख हर दृष्टिसे अनुचित है। ये लोग नेटालमें उस उपनिवेशके बुलावेपर उसकी प्रगतिमें ठोस सहायता देनेके लिए जाते हैं। अभी गत मास ही आपने इस आशयका एक तार छापा था कि भारतसे गिरमिटिया लोगोंका प्रवास बन्द करनेके सुझावके उत्तरमें उपनिवेशके प्रधानमन्त्रीने कहा है कि इस प्रकारका कदम उपनिवेशके उद्योगोंको ठप्प कर देगा। नेटाल विधानमण्डलके एक सदस्यके शब्दोंमें, "भारतीय मजदूर तब लाये गये थे, जब उपनिवेशका भाग्य डावाँडोल था। इससे भाव चढ़े, राजकीय

१. १८९३-४ का बिन्स-मेसन आयोग।

आय बढ़ी, मजदूरी और वेतनमें भी वृद्धि हुई।" जिन्होंने इस तरह अपने जीवनके सर्वोत्तम पाँच वर्ष उपनिवेशको दे दिये और वह भी मजदूरीकी उस दरपर, जो प्रचलित दरसे बहुत कम थी, उनके प्रति यह व्यवहार न्यायपूर्ण और उचित नहीं हो सकता। उपनिवेशमें भी एक सज्जन थे भूतपूर्व महान्यायवादी (अटर्नी-जनरल) श्री मोरकॉम, के० सी०, जिन्होंने विधेयकका विरोध किया था, यद्यपि वह नक्कारखानेमें तूतीकी आवाजमात्र था। उनके शब्द थे:

> जो भारतीय बच्चे उपनिवेशमें उत्पन्न हुए हैं, उनको निर्वासित होना पड़ेगा, या जीवनभरके लिए गिरमिटिया बनना पड़ेगा, या प्रतिवर्ष ३ पौंड परवाना-शुल्क देना होगा। उपनिवेशमें मजदूरीके लिए भारतीयोंकी जैसी बाढ़ आई है, उससे कई अवांछनीय स्थितियाँ पैदा होनी सम्भव हैं; किन्तु सदनके लिए न्याय या कानूनी औचित्यकी उपेक्षा किये बिना इन बच्चोंको, जिनको इस उपनिवेशमें पैदा होनेका दुर्भाग्य मिला है, निर्वासित करना असम्भव है।

[जबतक नेटालमें श्री मोरकॉम जैसे व्यक्ति हैं, जो विद्वेषसे अन्धे नहीं बने, तबतक वहाँ कभी-न-कभी न्याय-प्राप्तिकी आशा बनी ही रहेगी। किन्तु जबतक वहाँ न्याय और औचित्यके पक्षमें लोकमत नहीं बनता तबतक यह बहुत आवश्यक है कि भारतीय जनता जागृत रखी जाये और ब्रिटेनकी सरकार भारतीयोंके साथ न्याय करानेका आग्रह करे।]

श्री मोरकॉमके शब्दोंमें, "विचार यह प्रतीत होता है कि इस प्रणालीके सभी लाभ उठा लिये जायें और इसकी हानियाँ भुला दी जायें।" लेकिन, नेटाल विधानमण्डलके एक दूसरे सदस्यके शब्दोंमें, "भारतीयोंसे जितना काम लिया जा सके उतना लेकर उन्हें भाग जानेका आदेश देनेकी अपेक्षा क्या यह कहीं ज्यादा अच्छा न होगा कि आगेसे उनका यहाँ आना बिलकुल रोक दिया जाये?"

यह ऐसा प्रश्न है जिसपर दो रायें न तो हैं और न हो सकती हैं। क्या मैं आपसे अर्ज कर सकता हूँ कि आप प्रस्तावित अन्यायके विरुद्ध अपनी जोरदार आवाज उठायें? मैं यह भी कह दूँ कि यह विधेयक उपनिवेशके कानूनका रूप लेनेसे पहले ब्रिटिश सरकारकी मंजूरीके लिए खास तौरसे सुरक्षित रखा गया है।

आपका, आदि,
**मो० क० गांधी**

[अंग्रेजीसे]

*इंग्लिशमैन*, २६-५-१९०२

# १९६. भारत और नेटाल[1]

जहाँ-जहाँ अंग्रेजी राज्य है, सब जगह इस समय साम्राज्य-भक्ति जोरोंसे लहरें मार रही है। ताजपोशीके अवसरपर उन सभी जगहोंमें खूब खुशियाँ मनाई जायेंगी, जहाँ यूनियन जैक फहराता है। ऐसे अवसरपर, जो लोग सम्राट् सप्तम एडवर्डका आधिपत्य मानते हैं, उन सबकी कामना यही होनी चाहिए कि समस्त ब्रिटिश प्रजामें शान्ति और सद्भावका प्रसार हो। [जबतक सब ब्रिटिश प्रजाजनोंमें एकता, हेलमेल और सहिष्णुता नहीं है, तबतक सच्ची साम्राज्य-भावना हो नहीं सकती।] नेटालको अभिमान है कि वह दक्षिण आफ्रिकाके उपनिवेशोंमें सबसे अधिक ब्रिटिश है; अतः हम देखें कि वह साम्राज्यगत भाईचारा सिद्ध करने और सबके बीच शान्ति तथा सद्भावके प्रसारमें मदद करनेकी बात किस तरह सोचता है। इस सुन्दर भूमिमें बसे हुए भारतीयोंके साथ नेटालकी सरकारने जो अन्याय किया है, उसकी ओर ध्यान आकर्षित किया जा चुका है। स्थिति कितनी गम्भीर हो गई है, यह समझनेके लिए हमें नेटालमें भारतीयोंके प्रवासका इतिहास जानना होगा।

अनेक प्रयोगोंके बाद नेटाल उपनिवेशको १८६२ में ही यह पता चल गया था कि जबतक वह अपने कृषि-साधनोंके विकासके निमित्त भारतीय मजदूर नहीं बुलायेगा, तबतक "अपने पैरोंपर खड़ा" नहीं हो सकेगा। देशके चार लाख मूल निवासी आलसी और निकम्मे सिद्ध हो चुके थे। दूसरी ओर, वहाँकी आबोहवामें गोरोंके लिए खुले मैदानोंमें ज्यादा काम करना बहुत कष्टप्रद था। इसलिए जब "उपनिवेशका भाग्य ही डावाँडोल" था तब भारत सरकारसे प्रार्थना की गई कि वह उपनिवेशको इस कठिनाईसे उबारे। प्रथम भारतीय प्रवासियोंको सभी प्रकारके प्रलोभन दिये गये, और भारतसे उपनिवेशमें लगातार प्रवासी आने लगे। बादमें जब उपनिवेशमें भारतीयोंको लानेकी उपयोगितापर शंका की गई तब इस सम्बन्धमें छानबीन करनेके लिए एक आयोग नियुक्त किया गया। उस आयोगके एक सदस्य श्री सॉंडर्सने अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया था:

> भारतीय प्रवासियोंके आनेसे समृद्धि आई। भाव बढ़ गये। लोगोंको अब न-कुछ भावोंपर फसलें बोने या बेचनेसे सन्तोष नहीं रहने लगा। वे अब ज्यादा कमा सकते थे। युद्ध और ऊन, चीनी आदिके ऊँचे भावोंसे समृद्धि कायम रही। भारतीय जिन स्थानिक पैदावारोंका व्यापार करते हैं उनके भाव भी ऊँचे बने रहे। . . .
>
> हमारे और दूसरे उपनिवेशोंके कागज-पत्र साबित करते हैं कि भारतीय मजदूरोंके आनेसे भूमिकी और उसके खाली क्षेत्रोंकी छिपी हुई शक्ति प्रकट और विकसित होती है और गोरे प्रवासियोंके लिए लाभप्रद रोजगार-धन्धेके अनेक नये क्षेत्र खुलते हैं। अगर हम १८५९ के सालपर गौर करें तो हम देखेंगे कि भारतीय मजदूरोंका हमें जो आश्वासन मिला था उससे राजस्वमें तुरन्त वृद्धि हुई और कुछ ही वर्षोंमें राजस्व

१. गांधीजीका यह लेख (देखिए पृष्ठ २७६) पहली बार *वॉइस ऑफ़ इंडिया*में प्रकाशित हुआ था। इसका टाइप किया हुआ मसविदा गांधीजीके भतीजे और दक्षिण आफ्रिकाके साथी श्री छगनलाल गांधीके पास था। वह कई शाब्दिक परिवर्तनोंके साथ २३-१०-४९ के *हरिजन*में पुनः छापा गया था।

चौगुना बढ़ गया। . . . परन्तु कुछ वर्ष बाद आतंक फैला कि भारतीय मजदूरोंका आना सब जगह एक साथ स्थगित कर दिया जायेगा; बस राजस्व और मजदूरीमें गिरावट हो गई। . . . और फिरसे एक परिवर्तन हुआ, भारतीयोंका प्रवास पुनः शुरू होनेके आसारोंने अपना असर किया, और फिरसे राजस्वमें वृद्धि हो गई . . . इस तरहके लेखे स्वयं स्पष्ट होने चाहिए और इनसे छुकरपनकी तुनुकमिजाजी और क्षुद्र ईर्ष्याओंका अन्त हो जाना चाहिए।

उपनिवेशके वर्तमान प्रधानमन्त्रीने हमें अभी-अभी सूचित किया है कि भारतीय प्रवासियोंका आगमन बन्द करनेसे उपनिवेशके उद्योग-धन्धे ठप्प हो जायेंगे। इसका अर्थ है कि उपनिवेशके कल्याणके लिए भारतीय मजदूर निश्चय ही अनिवार्य हैं। सन् १८६२ में और वैसे ही १८९९ में भी भारतने ही सकटकी अवस्थामें उपनिवेशकी रक्षा की थी। यदि नेटालके अपने ही विधानसभा-सदस्योंकी दी हुई जानकारी सही है, तो १८६२ में भारतीय मजदूरोंके अभावमें उपनिवेशका दिवाला निकल जाता। उधर, सारा संसार जानता है, १८९९ में यदि भारतीय सेना नेटालकी रक्षाके लिए न जाती, तो नेटालकी राजधानी और उसका बन्दरगाह बोअरोंके हाथोंमें होते।

इन सब सेवाओंके पुरस्कारके रूपमें नेटाल संसदने एक विधेयक पास किया है। उसके अनुसार गिरमिटिया भारतीय मजदूरोंके बच्चोंको (१६ सालके लड़कों और १३ सालकी लड़कियोंको) या तो ३ पौंड वार्षिक कर देना होगा, या यह कृत्रिम वयस्कता प्राप्त करते ही उपनिवेश छोड़ देना पड़ेगा, या जबतक उपनिवेशमें रहें तबतक बार-बार गिरमिटिया मजदूर बनना पड़ेगा। यहाँ हम यह भी कह दें कि गिरमिटिया मजदूरोंकी मासिक मजदूरी कमसे-कम १० शिलिंग और ज्यादासे-ज्यादा १ पौंड होती है। मजदूरीकी यह दर प्रचलित बाजार-दरसे बहुत कम है। इसके अतिरिक्त यदि गिरमिटिया मजदूर इन गिरमिटोंका भंग करें तो उनपर फौजदारी मुकदमा कायम किया जा सकता है, जब कि सामान्य शर्तनामोंके उल्लंघनका फैसला सिर्फ दीवानी अदालतमें हो सकता है।

हमें यह याद करके दुःख होता है कि प्रवासियोंके बच्चोंपर व्यक्ति-कर लगानेका मार्ग प्रशस्त करनेवाली लॉर्ड एलगिनकी सरकार थी। उसने ही यह स्वीकार किया था कि उनके माता-पिताओंपर कर लगा दिया जाये। लेकिन हमें यह कहनेमें कोई झिझक नहीं है कि माता-पिताओंपर कर लगानेके आधारपर वैसा ही कर बच्चोंपर भी लगाना उचित नहीं ठहरता; क्योंकि माता-पिता तो उन शर्तोंसे परिचित माने जाते हैं जिनके अधीन वे नेटालमें आते हैं, और वकील कह सकते हैं कि यदि वे ऐसी कठिन शर्तें स्वीकार करते हैं, तो यह उन्हींके सोचनेकी बात है। लेकिन क्या यह भी माना जा सकता है कि बच्चोंको भी इन शर्तोंकी खबर थी? वे ऐसे माता-पिताओंसे पैदा हुए, यह बेशक एक भारी बदकिस्मती है। दुर्भाग्यसे उनका इसमें कुछ वश नहीं है। फिर माता-पिता तो यह भी जानते हैं कि गिरमिटिया मजदूरी क्या है, और भारत क्या है। लेकिन यही बात उपनिवेशमें उत्पन्न उनके बच्चोंके सम्बन्धमें नहीं कही जा सकती। कदाचित् कुछ शिक्षा प्राप्त कर लेने और उपनिवेशमें उनका मूल्य जाननेके बाद उनसे यह आशा करना परले दरजेकी क्रूरता है कि वे या तो भारत चले जायें, या वह दरजा स्वीकार करें जिसे स्वर्गीय सर विलियम विल्सन हंटरने अर्धदासताका नाम दिया है।

यह प्रत्यक्ष है कि उपनिवेश गरीब भारतीयोंसे जो कुछ निचोड़ सकता है, निचोड़ लेना चाहता है। साथ ही वह भारतीय मजदूरोंको उपनिवेशमें लानेके परिणामोंसे बचना भी चाहता

है। यदि वह भारतीयोंको जैसे वे हैं वैसे ही लेना नहीं चाहता, तो अधिक सीधा रास्ता यह होगा कि वह उनके श्रमके बिना ही काम चलाये। ऐसा रुख एकदम समझमें आने योग्य और सन्तोषजनक होगा। हम अपने देशवासियोंको उसके ऊपर जबरन लादना नहीं चाहते; किन्तु जो लोग उपनिवेशमें बुलाये जाते हैं उनके प्रति न्यायसंगत ब्रिटिशोचित व्यवहारकी आशा करना उचित ही है। यदि भारत-सरकारके लिए प्रवासियोंके प्रति न्यायसंगत व्यवहार कराना सम्भव नहीं है, और उपनिवेश खुद भी भारतीय मजदूरोंका राज्य-नियन्त्रित प्रवास नहीं रोकता, तो हमारी सरकारका यह स्पष्ट कर्त्तव्य है कि वह ऐसा करनेमें उसकी मदद करे। सौभाग्यसे हमें लॉर्ड कर्जन जैसे जागरूक और कुशल वाइसराय मिले हैं और हमें आशा है कि परमश्रेष्ठ कोई गम्भीर अन्याय नहीं होने देंगे। और, क्या खुद उपनिवेशके संजीदा लोगोंसे भी हम अपील नही कर सकते? हम देखते हैं कि नेटाल संसदके कमसे-कम एक सदस्य श्री मोरकॉम उस विधेयकसे कोई सरोकार न रखेंगे, जिसका अब्रिटिश रूप उन्होंने जोरदार भाषामें स्पष्ट किया है। हमें निश्चय है कि और भी कितने ही ऐसे व्यक्ति हैं जो श्री मोरकॉमके समान ही सोचते हैं। वे सभी उन्हीके समान क्यों न बोलें और बेचारे ब्रिटिश भारतीयोंके विरुद्ध निर्मित विद्वेषकी इस दीवारको क्यों न ढा दें? किन्तु इसी बीच हमें श्री चेम्बरलेनसे यह आशा करनेका अधिकार है कि वे न्याय और औचित्यके पक्षमें उपनिवेशोंपर अपना शक्तिशाली प्रभाव अवश्य डालेंगे।

[अंग्रेजीसे]

*वॉइस ऑफ़ इंडिया*, ३१-५-१९०२

## १९७. पत्र: जेम्स गॉडफ्रेको

[राजकोट
जून ३, १९०२ के पूर्व]

[सेवामें]
जेम्स गॉडफ्रे
[डर्बन]

प्रिय जेम्स,

आपका २५ अप्रैलका पत्र मिला। उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि आप इतनी अच्छी तरहसे काम कर रहे हैं। अपनी सेवाओंके लिए पुरस्कारका खयाल कभी न करें। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि *यदि उसके लिए हम व्याकुल नहीं होते*[1] तो वह आता ही है। भले ही वह वैसे न आये जैसे हम सोचते हैं, किन्तु इससे कुछ अन्तर नही पड़ता। सच कहें तो हम जिसे अपना कर्तव्य समझते हैं उसे भरसक पूरा कर रहे हैं, इसकी चेतना ही सबसे बड़ा पुरस्कार है। मेरी कामना है कि आपको अध्ययनमें हर तरहकी कामयाबी हासिल हो। किसी भी हालतमें आप शीघ्रलिपि (शार्टहैंड)की उपेक्षा न करें। मैंने उपनिवेशमें जन्मे अपने कुछ मित्रोंको एक पत्र[2] लिखा है। चूंकि मुझे नकलें करनेकी वैसी

१. तिरछे अक्षरोंमें दिये गये ये शब्द मूल दफ्तरी प्रतिमें रेखांकित हैं।
२. यह उपलब्ध नहीं है।

सुविधाएँ प्राप्त नहीं है, जैसी मैं चाहता हूँ, इसलिए मैंने आपको या आपके पिताको नकल नहीं भेजी। उसे कृपया सर्वश्री पॉल, डन, अम्बू या लॉरेंससे लेकर पढ़ लें। वह सभीके लिए है। मुझे प्रसन्नता है कि जॉर्जको जोहानिसवर्गमें कुछ काम मिल गया है। उससे मुझे पत्र लिखनेको कहें। आपके पिता अब बिलकुल स्वस्थ हैं, इससे भी मुझे प्रसन्नता है। श्रीमती गांधी प्रायः श्रीमती गॉडफ्रे और आपकी बहनोंको याद करती हैं। अपने परिवारके सब सदस्योंको हमारी याद दिलाएँ। मुझे जब-तब पत्र अवश्य लिखते रहें।

आपका सच्चा,

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३९५७) से।

## १९८. पत्र : नाज़र तथा खानको

राजकोट
जून ३, १९०२

प्रिय श्री नाज़र और श्री खान,

मैं अब इसके साथ नेटाल सम्बन्धी कामके खर्चका एक लेखा[1] भेजता हूँ। आप देखेंगे कि इसका कुल जोड ३७८ रु० ७ आ० ९ पाई है, जो ड्राफ्टसे प्राप्त ३७५ रु० से कुछ अधिक है। अभी हालमें दक्षिण आफ्रिका-सम्बन्धी काम बहुत बढ़ गया है। मैं फरवरीके अन्तमें कलकत्तेसे लौटा था। तबसे मैंने मामूली शर्तोंपर एक मुंशी रख लिया है। उसको नकलका मेहनताना मिलता है जो अधिकतर मामलोंमें मुअक्किल देते हैं। फिलहाल मैं विश्राम कर रहा हूँ, यही मानना चाहिए। यदि नियमित कार्यालय भी खोल लूं, तो भी काठियावाड़में मेरे लिए ज्यादा काम न होगा। इसलिए मुंशीकी सहायताका वास्तविक उपयोग सार्वजनिक कार्यमें ही कर सकता हूँ। अबतक टाइप की हुई सामग्रीके सौ पृष्ठोंकी नकल की जा चुकी है। इसमें कार्बनी प्रतियाँ शामिल नहीं हैं। इसके अतिरिक्त बहुत-सा गुजराती पत्र-व्यवहार और दूसरा काम भी हुआ है। इस कामके लिए नकल-मेहनतानेके रूपमें अबतक केवल १५ रुपये दिये गये हैं। यहाँ सामान्य तौरपर आठ आना प्रति लिखित पृष्ठ लिया जाता है। उसको औसतन ३ घण्टे प्रतिदिन लगाने पड़े हैं; यह कहते हुए, मेरा खयाल है, मैं कामको कम कूत रहा हूँ। इन स्थितियोंमें मेरे विचारसे यह पैसा बहुत कम है। मैं चाहूँगा कि उसको अबतकके सारे कामका कमसे-कम ४० रुपये दे सकूँ। इसके अतिरिक्त अभी काम चल ही रहा है। यदि मेरे पास पैसा होता तो मैं साहित्य अधिक विस्तृत रूपसे बाँट सकता। वर्तमान हालतमें तो मुझे बिना पैसेके जैसा काम करना पड़ रहा है। मैं बहुत चाहता हूँ कि एक या दो अखबारोंका ग्राहक बन जाऊँ, उदाहरणके लिए *इंडिया*, *इंग्लिशमैन* आदिका, जो राजकोटके पुस्तकालयमें नहीं आते। निर्देशिकाओं (डाइरेक्टरियों) का ग्राहक भी होना चाहता हूँ। बम्बई पहुँचते ही मैंने २०० रुपये टाइपराइटरमें लगा दिये। यह मशीन पूरी तरह सार्वजनिक काममें ही आई है। इसलिए मैं कांग्रेसके सामने नीचे लिखी तीन तजवीजें पेश करता हूँ :

१. यह उपलब्ध नहीं है।

१: वह मेरा बाकी हिसाब और क्लार्ककी फीसके २५ रुपये अर्थात् कुल २८ रुपये ७ आने ९ पाई मंजूर कर दे।

२: कांग्रेस टाइपराइटरको खरीद ले और उसे मैं उसी कीमतमें खरीदनेकी स्थितिमें होनेपर वापस ले सकूँ, बशर्ते कि कांग्रेस उसे मेरे पाससे पहले ही ले न जाये।

३: कांग्रेस भावी खर्च पूरा करनेके लिए २५ पौंडकी रकम और मंजूर कर दे।

यदि ये तीनों तजवीजें मंजूर कर ली जाती हैं तो आपको २५ पौंड, टाइपराइटरका मूल्य और २८ रुपये ७ आने ९ पाई मुझे भेजने होंगे। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि यदि मैं २५ पौंडसे ज्यादा खर्च करूँ तो वह मेरी अपनी जिम्मेदारी है। टाइपराइटर खरीदते समय यह तजवीज मेरे खयालमें बिलकुल नहीं थी जिसे मैं अब पेश कर रहा हूँ, क्योंकि तब मैंने यह आशा नहीं की थी कि मेरी आर्थिक स्थिति ऐसी खराब हो जायेगी जैसी कि अब है। इसलिए यह बिलकुल कांग्रेसकी इच्छापर निर्भर है कि वह मेरी पहली दो तजवीजोंको माने या रद कर दे। मेरा मतलब यह है कि कांग्रेस मेरी तजवीजें समझकर ही उन्हे मंजूर करनेका खयाल न करे। यदि वे अपनी पात्रताके आधारपर उचित प्रतीत होती हों, और यदि नया टाइपराइटर खरीदनेकी बात हो और कांग्रेसको उसमें अब भी रुपया लगाना ही हो, केवल तभी इन दो तजवीजोंपर विचार किया जाये। मैं यह भी कह दूं कि जो क्लार्क मेरे साथ काम कर रहा है, वह मेरा भतीजा है और यदि काम इतना ज्यादा न होता तो मैंने उसको लेखन-कार्यका खर्च देनेका खयाल न किया होता। वह स्वयंसेवक नहीं है, जिससे बिना वेतनके किसी भी हदतक काम करनेकी आशा की जा सके। मेरी मार्फत जितनी आय होती है उसके अतिरिक्त उसके पास आयका कोई अन्य साधन नहीं है। इसलिए, जहाँ-तक तीसरी तजवीजका सवाल है, यदि वह मंजूर कर ली गई तो खर्चकी जरूरत होनेपर मैं इसके बलपर सार्वजनिक कार्य ज्यादा अच्छी तरह कर सकूँगा।

साथमें प्रेसिडेंसी असोसिएशनके प्रार्थनापत्र[1] की नकल और *इंग्लिशमैन*[2] के लिए अपना पत्र और *वॉइस ऑफ़ इंडिया*[3] के लिए लिखा हुआ लेख नत्थी करता हूँ। आपके प्रवासियों सम्बन्धी स्मरणपत्र[4] की कमसे-कम सौ प्रतियोंकी तथा कुछ चित्रों और ताजपोशी-भाषणकी प्रतियोंकी भी प्रतिदिन प्रतीक्षा है। दूसरे स्मरणपत्रोंकी प्रतियों, दक्षिण आफ्रिकी सरकारी रिपोर्टों (ब्लू बुक्स) आदिकी प्रतीक्षा भी कर रहा हूँ। बर्डका नेटालका इतिहास (*ऐनल्स ऑफ़ नेटाल*) और शिक्षा-अधीक्षक (सुपरिंटेंडेंट ऑफ़ एजुकेशन) की नई रिपोर्ट भी मेरे पास हो तो बहुत अच्छा होगा। *सरकारी गज़ट* और *नेटाल मर्क्युरी* साप्ताहिक अवश्य मिलने चाहिए।

आपका सच्चा,

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३९७६) से।

१. देखिए "प्रार्थनापत्र: लॉर्ड हैमिल्टनको," जून ५, १९०२।

२. देखिए "नेटालके भारतीय," मई २०, १९०२।

३. देखिए "भारत और नेटाल," मई ३१, १९०२।

४. यह प्रार्थनापत्र वह है, जो नेटालके भारतीयोंने १८९५ के भारतीय प्रवासी विधेयकके संशोधनके सम्बन्धमें जून १९०२ में चेम्बरलेनको दिया था। (देखिए *इंडिया*, १९-९-१९०२)।

## १९९. पत्र : मदनजीतको[1]

राजकोट
[जून ३, १९०२][2]

रा० रा० भाई मदनजीत,

जूनागढ़ जानेका मौका मिलनेसे मैं आपके भाइयों, सास और सालेसे मिल आया हूँ। उन्हें जहाँतक बन सका समझाया है और शान्त किया है। आपकी सास शिकायत करती थी कि आप पत्र नहीं लिखते। यह ठीक नहीं है। [वक्त-वक्तपर चिट्ठी-पत्री लिखते रहना चाहिए। इससे संतोष रहता है और दिलासा मिलता है।] बहुत करके लाभशंकर आपकी बहूको लेकर आयेगा और जो आपकी सास इस तरह भेजनेकी हाँ एकदम न करें तो वह अकेला आयेगा; और काम सँभाल सके ऐसी स्थितिमें आनेपर आप यहाँ आकर बहूको ले जा सकते हैं। आपकी सास किसी और तरीकेसे भेजनेमें बहुत आनाकानी करती जान पड़ती हैं। भाई नाजरको आज पत्र लिखा है सो पढ़ लेना। उससे समझमें आ जायेगा कि मुझे पैसेकी कितनी जरूरत होगी। आपकी तरफसे नियमित पैसा आना शुरू हो तभी मुझसे बम्बई रहते बनेगा, ऐसा हाल जान पड़ता है। फकत।

दफ्तरी गुजराती प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३९५८) से।

## २००. प्रार्थनापत्र : लॉर्ड हैमिल्टनको[3]

बम्बई प्रेसिडेंसी असोसिएशन
अपोलो बन्दर,
बम्बई
जून ५, १९०२

सेवामें
परम माननीय लॉर्ड जॉर्ज हैमिल्टन
सम्राट्के मुख्य भारत-मन्त्री, सपरिषद
लंदन

महानुभाव,

बम्बई प्रेसिडेंसी असोसिएशनकी परिषदके निर्देशसे हम श्रीमानका ध्यान एक विधेयककी ओर आकर्षित करना चाहते हैं, जिसका दूसरा वाचन नेटाल विधानसभामें हो चुका है। उसका नाम है: "भारतीय प्रवास संशोधन कानून संशोधक विधेयक।"

१. मदनजीत व्यावहारिक, दक्षिण आफ्रिकामें गांधीजीके सहयोगी। इन्होंने गांधीजीके सुझावपर १८९८में डर्बनमें 'इंटरनेशनल प्रिंटिंग प्रेस' शुरू किया। १९०३ में गांधीजीकी मददसे *इंडियन ओपिनियन* निकाला, जिसे १९०४ में गांधीजीने ले लिया।

२. पत्रकी दफ्तरी नकलमें तारीख नहीं है; किन्तु श्री नाजर तथा खानको उसी दिन पत्र लिखा ऐसा उल्लेख है। उन पत्रोंसे यह तारीख निश्चित होती है।

३. इसकी एक अग्रिम प्रति *इंडिया*को भेज दी गई थी। उसपर तारीख २४ मई पड़ी थी। किन्तु भारत-मन्त्रीको भेजनेके लिए यह आवेदन बम्बई-सरकारके सम्मुख ५ जूनको पेश किया गया था।

व्यवहारतः विधेयकका अभिप्राय उन ब्रिटिश भारतीयोंके बालिग बच्चों (१६ वर्षके लड़कों और १३ वर्षकी लड़कियों) को [अपने अन्तर्गत] लाना है जो १८८५ के अधिनियम १७ के अनुसार गिरमिटमें बँधे हैं। उससे वे भी अपने माता-पिताओंके समान इनमें से किसी भी मार्गका अवलम्बन करनेके लिए बाध्य होंगे :

(क) उपनिवेशके खर्चसे भारत लौट जायें, या
(ख) गिरमिटिया मजदूरीमें शामिल हो जायें, या
(ग) ३ पौंड वार्षिक व्यक्ति-कर दें।

यह कहना कठिन है कि विधेयक अन्ततः दोनों सदनोंमें मंजूर होगा और स्वीकृतिके लिए औपनिवेशिक कार्यालयमें पहुँचेगा या नहीं। किन्तु दक्षिण आफ्रिकासे डाकका यहाँ प्राप्त होना अनिश्चित होनेके कारण परिषद उचित समझती है कि समयसे कुछ पहले ही नेटाल सरकारके ब्रिटिश भारतीयोंकी स्वतंत्रतापर कठोर प्रतिबन्ध लगानेके नये प्रयत्नोंके विरुद्ध अपना यह विनम्र विरोधपत्र पेश कर दे।

श्रीमान जानते हैं कि सन् १८९४ में लॉर्ड एलगिनने, जो तब वाइसराय थे, अत्यन्त अनिच्छापूर्वक गिरमिटिया भारतीयोंपर ३ पौंड कर लगानेकी अनुमति दी थी। इस करको आलंकारिक भाषामें "उपनिवेशमें रहनेके पास या परवानेका शुल्क" कहा जाता है। यद्यपि नेटाल सरकार मूलतः २५ पौंड कर लगानेकी अनुमति लेना चाहती थी, किन्तु यह स्वीकार कर लिया गया है कि यह कर ही बहुत कठोर है।

अब, स्पष्टतः, यह प्रयत्न किया जा रहा है कि गिरमिटिया मजदूरोंके बच्चोंपर उक्त कृत्रिम वयस्कता प्राप्त करते ही कर लगाकर यथासम्भव वही रकम वसूल कर ली जाये।

परिषदको ज्ञात हुआ है कि कानून द्वारा भारतीय आबादीके प्रवासको नियन्त्रित करनेका उद्देश्य विदेशियोंकी बसावटको प्रोत्साहित करना और ऐसे अधिवासियोंको संरक्षण देना है। नेटाली विधान-मण्डलके सदस्योंके शब्दोंमें, यदि भारतीय मजदूर अपने जीवनके सर्वोत्तम पाँच वर्ष उपनिवेशमें देनेके पश्चात् भारतको लौटनेके लिए बाध्य किये जायेंगे तो यह उद्देश्य स्पष्टतः असफल हो जायेगा।

जिनका पालन-पोषण भारतमें हुआ है उन्हींको यदि भारत लौटनेसे कठिनाई होती है तो उनको कितनी कठिनाई न होगी जो उपनिवेशमें दूध-पीते बच्चोंके रूपमें गये थे, या वहीं उत्पन्न हुए थे। विधेयकके उद्देश्यके सम्बन्धमें कोई भ्रम नहीं हो सकता। यह कर राजस्वमें वृद्धिके उद्देश्यसे नहीं लगाया जा रहा है। इसका उद्देश्य यह है कि यह इतना कठोर कर दिया जाये जिससे प्रस्तावित कानूनके क्षेत्रमें जो भी आते हैं वे भारत लौटनेके लिए बाध्य हो जायें।

वस्तुतः नेटाली यूरोपीय तो ऐसा कानून बनानेका प्रयत्न कर रहे हैं जिससे ये गिरमिट भारत वापस पहुँचनेपर समाप्त हों। अभी हालके तारोंके अनुसार उपनिवेशके प्रधानमन्त्रीने कहा है कि उपनिवेशमें भारतीयोंका आना बन्द करनेसे नेटालके उद्योग-धन्धे ठप्प हो जायेंगे। परिषद आदरपूर्वक पूछती है कि जो लोग उपनिवेशकी सुख-समृद्धिके लिए इतने अपरिहार्य हैं और जिन्होंने उसको वर्तमान अवस्था प्राप्त करनेमें ठोस सहायता दी है, उनको ही क्या विशेष करके लिए छाँटा जायेगा?

इसके अतिरिक्त परिषद महानुभावका ध्यान इस तथ्यकी ओर आकर्षित करती है कि ये गिरमिटिया मजदूर ही तत्काल सेवाकी आवश्यकता पड़नेपर स्वेच्छापूर्वक डोली (स्ट्रेचर)-वाहकोंके रूपमें सैनिक अधिकारियोंकी सहायता करनेके लिए आगे आये थे। नेटाली भारतीयोंके

स्वयंसेवक आहत-सहायक दलके कार्यसे महानुभाव भली भाँति परिचित हैं। खरीतोंमें उनके इन कार्योंका प्रशंसाके साथ उल्लेख किया गया है।

परिषदका खयाल है कि ऐसे लोग उपर्युक्त ढंगका वार्षिक कर लगानेकी अपेक्षा अधिक अच्छे व्यवहारके अधिकारी हैं।

उक्त कानूनका सिद्धान्त इतना साफ अन्यायपूर्ण है कि परिषद उसकी तफसीलोंकी जाँच-पड़ताल करना आवश्यक नहीं समझती।

जबसे उपनिवेशको स्वशासन प्राप्त हुआ है, तभीसे वहाँके भारतीय अधिवासी, फिर वे चाहे स्वतन्त्र हों या गिरमिटिया, इस प्रकारके "कोंच-टोंच" कानूनोंसे चैनकी साँस नहीं ले पाये हैं। ऐसे कानूनोंकी ओर महानुभावका ध्यान विविध सार्वजनिक संस्थाओं और प्रेसिडेन्सी असोसिएशनने भी आकर्षित किया ही है।

यदि इस स्वशासित उपनिवेशको साम्राज्यीय विचारोंकी उपेक्षा करने और ब्रिटिश प्रजाओंको विदेशी समझनेसे रोकना कठिन जान पड़े तो जिस प्रकार पूर्व भारत संघ (ईस्ट इंडिया असोसिएशन) ने अभी हालमें महानुभावसे प्रार्थना की थी, उसी प्रकार परिषद भी सम्मानपूर्वक यह विचार प्रकट करती है कि अब समय आ गया है जब महानुभाव भारतसे नेटाल उपनिवेशको भारतीयोंका राज्य-नियन्त्रित प्रवास रोकनेकी कार्रवाई करें। उल्लिखित विधेयकसे हानि भी इन्हीं लोगोंकी होती है, यह देखते हुए उक्त कार्रवाई करना और भी आवश्यक हो गया है।

आपके, आदि,

फीरोजशाह एम० मेहता

अध्यक्ष

दिनशा ईदुलजी वाछा

अमीरुद्दीन तैयबजी

चिमनलाल सीतलवाड

अवैतनिक मन्त्रीगण

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स, सी० ओ० १७९, जिल्द २२५, इंडिया ऑफिस।

## २०१. पत्र : मेहताको[1]

[राजकोट
जून ३०, १९०२ के पूर्व][2]

प्रिय मेहता,

मुझे आपके दो पत्र मिले। मैंने किस तरहका काम हाथमें लिया है सो साथके पत्रसे विदित होगा[3]। मैं देखता हूँ, इन किताबोंको खपाना बहुत ही कठिन है, लेकिन हमारा मुख्य उद्देश्य इनकी जानकारी लोगोंको देना है; इसलिए मैंने आधा दर्जन प्लेग स्वयंसेवकोंको इनकी प्रतियाँ भेज दी हैं। मैं अपना वजन करानेका प्रयत्न करूँगा। [मैं यह तो नहीं कह सकता कि अब अपने आपमें काफी ताकत महसूस करता हूँ, किन्तु जिन लोगोंने मुझे नेटालमें देखा था और अब यहाँ देखा है, उन्हें मेरे स्वास्थ्यमें काफी सुधार नजर आता है। मुझे हफ्तेमें एक-दो बार 'फ्रूट सॉल्ट' लेना पड़ता है। मैं जितनी सम्भव हो उतनी कसरत करनेकी कोशिश करता हूँ, लेकिन गर्मी इसमें रुकावट डालती है।]

यदि उमियाशंकर[4] को टेकनिकल इन्स्टिट्यूटमें भरती होना है, तो मैं जानता हूँ कि उसके लिए मैट्रिक पास करना जरूरी नहीं है। मेरी रायमें अगर आप खर्च देनेके लिए तैयार हों तो यह खयाल बहुत ही अच्छा है। वह संस्थामें जितनी जल्दी दाखिला ले ले उतना ही अच्छा। इंजीनियरिंग या कपड़ेका काम सीखनेके लिए शुल्क ३६ रुपये सालाना है। दूसरा सत्र हर साल जूनके आखिरी सोमवारको शुरू होता है। शिक्षा-योग्यता छठे दर्जेतककी जरूरी है। यदि आप उमियाशंकरको मैट्रिक कराना भी चाहें, तो मुझे निश्चय है वह पास नहीं होगा। उसका मन उसमें नहीं है। मेरी समझमें वह काफी मेहनती भी नहीं है। और उसे थोड़ा टोंचते रहनेकी जरूरत हो सकती है। यहाँके टेकनिकल स्कूलमें बहुत पढ़ाई नहीं हो रही है। तार-शिक्षाकी कक्षा बन्द कर दी गई है, इसलिए वह इस समय सिर्फ टाइप करना ही सीख रहा है। बहीखाता सिखानेका प्रबंध भी बड़ा ढीला है।

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ३९५९) से।

१. रंगूनके डॉ० प्राणजीवन मेहता : लन्दनके छात्रजीवनसे गांधीजीके मित्र।

२. इस दफ्तरी प्रतिमें तारीख नहीं है, किन्तु "जूनके अंतिम सोमवार" (अर्थात् ३० तारीख) को टेकनिकल इंस्टिट्यूटके दूसरे सत्रके आरम्भका उल्लेख इस अनुमानकी पुष्टि करता है।

३. साथका पत्र उपलब्ध नहीं है। उस समय गांधीजी प्लेग समितिके मन्त्री थे; देखिए "पत्र : गो० कृ० गोखलेको," मई १, १९०२।

४. डॉ. प्राणजीवन मेहताका भतीजा।

## २०२. पत्र : दलपतराम भवानजी शुक्लको

आगाखाँ बिल्डिंग, दूसरी मंजिल
उच्च न्यायालयके सामने
बम्बई, फोर्ट
[जुलाई ११, १९०२ के बाद][1]

प्रिय शुक्ल,

थरादके ठाकुर मुझसे अभी मिले हैं। मैं कागजोंको एक सरसरी निगाहसे देख गया हूँ। मुझे याद है आपने सम्राट्की न्याय-परिषद (प्रिवी कौंसिल) में अपीलकी सलाह दी थी; किन्तु किस फैसलेके खिलाफ? पोलिटिकल सुपरिटेंडेंटके फैसलेके खिलाफ तो नहीं! और, मैं नहीं समझता, बम्बई-सरकारके फैसलेके खिलाफ अपील हो सकती है। ठाकुर मेहताकी सलाह लेनेके लिए उत्सुक हैं। आज दोपहरको मैं मेहतासे मिलनेका विचार कर रहा हूँ।

मैंने आखिर उक्त पतेपर दफ्तर ले लिया है। कृपया उत्तर यहीं भेजें। एक कमरेके २० रुपये मासिक देने पड़ेंगे। भारत-सरकारको अपील भेजनेकी अवधि क्या है?[2]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० २३२५) से।

## २०३. पत्र : गो० कृ० गोखलेको

आगाखाँ बिल्डिंग, दूसरी मंजिल
उच्च न्यायालयके सामने
बम्बई, फोर्ट
अगस्त १, १९०२

प्रिय प्रोफेसर गोखले,

मेरा खयाल है, मैंने आपको बता दिया है कि यदि मुझे नेटालसे प्रतीक्षित धन मिल गया तो मैं बम्बईमें जम जाऊँगा। तीन हजारसे ऊपर रुपये मिल चुके हैं, इसलिए मैंने यहाँ कार्यालय खोल दिया है और यहाँ एक साल रहकर देखना चाहता हूँ।

मेरे यह आश्वासन दुहरानेकी जरूरत नहीं कि मैं सदैव आपके आज्ञाधीन हूँ। आशा करता हूँ, आपका शरीर-स्वास्थ्य अच्छा होगा।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (जी० एन० ३७१७) से।

१. गांधीजी १० जुलाईको राजकोटसे बम्बईके लिए इस विचारसे रवाना हुए थे कि वे वहाँ जाकर अपनी वकालत जमायेंगे। दूसरे दिन वे वहाँ पहुँच गये। (जीवननुं परोढ, श्री प्रभुदास छगनलाल गांधी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, पृष्ठ ५९)।

२. यह वाक्य गांधीजीके स्वाक्षरोंमें है।

## २०४. पत्र: देवचन्द पारेखको[1]

उच्च न्यायालयके सामने
बम्बई, फोर्ट
अगस्त ६, १९०२

प्रिय देवचन्दभाई,

मैं यह सुझाव नहीं देना चाहता था कि श्री इन्द्रजीतको कोई जिम्मेदारीका काम दे दिया जाये। उनकी इच्छा यह है कि आपके पैसा पानेवाले सहयोगीके रहते हुए ही सहायक वकीलका काम करें। मुझे लगता है, वे सिर्फ इतना कह सकनेका मौका चाहते हैं कि उन्होंने सम्राट्की न्याय-परिषद (प्रिवी कौंसिल) के एक मुकदमेमें छोटे वकीलकी हैसियतसे पैरवी की है। शायद वे कुछ अमली ज्ञान भी प्राप्त करना चाहते हैं।

मैंने पेन, गिल्बर्ट, सयानी व मूस कम्पनीसे एक कमरा कार्यालयके लिए और गिरगाँव बैंक रोडपर केशवजी तुलसीदासके बंगलेका एक भाग रहनेके लिए ले लिया है। अभी तक तो मैंने इतनी ही प्रगति की है।

जब मैं राजकोटमें था, शुक्लने मुझे मसविदा बनानेका सुखकर काम भेजा था। वह मैंने अभी समाप्त किया है। अब मैं उच्च न्यायालयमें मटरगश्तीके लिए मुक्त हो गया हूँ। इससे सॉलिसिटर जान सकेंगे कि बे-मुकदमा बैरिस्टरोंकी पंक्तिमें एककी बढ़ती हो गई है।

मेहताके पास जब आशिष लेने गया तो उन्होंने मुझे दुराशिष ही दी जो, उनके कहनेके अनुसार, शुभाशिष सिद्ध हो सकती है। मेरी आशाओंके विपरीत उनका खयाल है कि मैंने नेटालमें जो थोड़ी-सी बचत की थी, उसे अपनी मूर्खतासे बम्बईमें बरबाद कर दूँगा।

वाछासे मैं अभीतक नहीं मिल सका हूँ। गोखले यहाँ हैं नहीं। जिन सॉलिसिटरोंसे मैं मिला हूँ वे कहते हैं कि मुझे बहुत समयतक प्रतीक्षा करनी होगी, तब वे मुझे कुछ राय दे सकेंगे। प्रधान न्यायाधीश नये बैरिस्टरोंकी प्रगतिके सम्बन्धमें बहुत व्यग्र हैं। गत सप्ताह ही उन्होंने उनके लाभार्थ फर्जी मुकदमोंपर अभ्यासार्थ बहसके लिए एक वाद-विवाद समिति स्थापित की है। किन्तु मैं निराश नहीं हूँ। संक्षेपमें, मेरी परिस्थिति यही है। [बम्बईमें मनुष्य नियमित जीवन और संघर्षके लिए बाध्य हो जाता है; इसे मैं एक तरहसे पसन्द ही करता हूँ। इसलिए जबतक यह असह्य ही नहीं हो जाता, तबतक शायद मैं बम्बईसे और कहीं जानेकी बात नहीं सोचूँगा।]

यह जानकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई कि मणिलालका काम ऐसा अच्छा चल रहा है।

यह सच है कि पहले-पहल मेरे भतीजेने बनारससे निराशाजनक खबरें भेजी थीं। वहाँ दिनमें केवल दो बार भोजन दिया जाता है, यह अब भी मुझे एक कमी ही दिखाई देती है। किन्तु अभी इस या उस पक्षमें फैसला करनेका समय नहीं हुआ। वह अपनी बिलकुल नई परिस्थितियोंका अभ्यस्त हो जानेपर ही मुझे अधिक विश्वस्त खबरें भेज सकेगा।

१. गांधीजीके एक मित्र, जिन्होंने बादमें रियासती राजनीतिमें भाग लेने और गांधीजीके रचनात्मक कार्यमें योग देनेके लिए वकालत छोड़ दी थी।

यदि इस बार भी काठियावाड़में वर्षा न हुई तो अवस्था बहुत ही गम्भीर हो जायेगी। मुझे भय है कि जोशी[1] और मौसमकी भविष्यवाणी करनेवाले अन्य लोग तो केवल बुरी खबरें फैलानेमें ही अच्छे हैं।

कृपया यह पत्र शुक्लको दिखा दीजिए।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

*महात्मा*, जिल्द १; एक अंग्रेजी फोटो-नकलसे।

## २०५. पत्र : दलपतराम भवानजी शुक्लको

आगाखाँ भवन
उच्च न्यायालयके सामने
बम्बई
नवम्बर ३, १९०२

प्रिय शुक्ल,

आपका पत्र मिला। हाँ, मुझे नेटालसे तार मिला है। पूछा गया है कि क्या मैं यहाँसे लन्दन और लन्दनसे ट्रान्सवाल जा सकता हूँ। मैंने उत्तर दिया है, जबतक बिलकुल जरूरी ही न हो, ऐसा नहीं कर सकूँगा। ठीक उसी समय मेरे बच्चे बीमार थे, और कैसा भी हो, अभी मैं इतनी ताकत तो महसूस करता ही नहीं कि लन्दन और दक्षिण आफ्रिकाकी यात्रामें जो मानसिक श्रम होगा उसे बर्दाश्त कर सकूँ। मेरे इस तारका जवाब मुझे अभी नहीं मिला है।

अभीतक मैं कह नहीं सकता कि मुझे यहाँ अपने रास्तेका अन्दाज हो गया है, लेकिन मैं भविष्यके बारेमें चिन्तित नहीं हूँ। अबतक तो दफ्तरी कामसे मेरा खर्च निकलता रहा है। मुझे लगता है यह खर्च हम वहाँ जितना सोचते थे उससे ज्यादा पड़ेगा।

नाजावाला मुकदमेमें आप इस्तगासेकी ओरसे पैरवीके लिए बाँध लिये गये हैं इससे मुझे बहुत प्रसन्नता हुई है। एक नहीं, अनेक कारणोंसे मुझे आशा है, आप अपराधीको दण्ड दिलानेमें सफल होंगे।

मैं नहीं जानता कि पत्रोंपर छपे सरनामे बैरिस्टरकी सुरुचिको प्रकट करते हैं। करें या न करें, मुझे तो ये डर्बनसे भेंटमें मिले हैं, इसलिए मैं इनका उपयोग कर रहा हूँ — अलबत्ता अभीतक दफ्तरके काममें इनका उपयोग नहीं किया।

प्लेगने राजकोटकी शक्ल ही बदल दी होगी। आशा है, उसका जोर अब घट रहा होगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (जी० एन० २३२९) से।

१. ज्योतिषी।

## २०६. पत्र: दलपतराम भवानजी शुक्लको

आगाखाँ भवन
उच्च न्यायालयके सामने
बम्बई
नवम्बर ८, १९०२

प्रिय शुक्ल,

मुझे रुपयोंके साथ एक सन्देश[1] मिला है जिसमें अनुरोध किया गया है कि मैं तुरन्त नेटाल रवाना हो जाऊँ। वहाँकी कठिनाइयोंका सामना करनेके लिए काफी शक्ति मुझमें नहीं रही है, इसलिए जाना निश्चित करनेके पहले मैंने कुछ सवाल पूछे हैं जिससे आजकी हालतमें कमसे-कम आन्तरिक व्यवस्थाकी हदतक मेरा मार्ग यथासम्भव निर्विघ्न हो सके। निन्यानवे प्रतिशत सम्भावना तो जानेकी ही है, और वह भी १९ तारीखको ही। इसलिए शायद भारतसे आपको यह मेरा अन्तिम पत्र होगा। देवचन्द पारेखको अलगसे लिखनेका समय नहीं है, इसलिए कृपा करके यह पत्र उनको दिखा दीजिए। यदि वे स्वयं या वाणीचन्द, जिनका जिक्र उन्होंने मुझसे किया था, जानेके लिए तैयार हों तो मैं यथाशक्ति सब करनेके लिए तैयार हूँ। दक्षिण आफ्रिकामें अधिक नहीं तो छः भारतीय बैरिस्टरोंकी गुंजाइश हो सकती है। इसलिए अगर कुछ बैरिस्टर — अलबत्ता, सही किस्मके — एक दृष्टि अपनी आजीविकापर और दूसरी सार्वजनिक कार्यपर रख कर आयें, तो बहुत-सा भार बँट जायेगा, और यहाँके दबावमें कमी होगी, सो तो होगी ही। मैं एक दूसरे व्यक्तिसे भी पत्र-व्यवहार कर रहा हूँ।

अब अपने बारेमें। मेरी पत्नी मेरे साथ जायेंगी या नहीं, यह डर्बनसे उत्तर मिलनेपर तय होगा। लेकिन वे जायें या न जायें, मैं दोनों लड़कों — गोकुलदास और हरिलालको यहीं छोड़ जाना चाहता हूँ। राजकोटमें प्लेग खत्म होते ही, वे वहाँ चले जायेंगे। बनारसको मैं देख चुका हूँ। वह अनुकूल नहीं पड़ता। गोंडलमें कोई खास आकर्षण नहीं है। इसलिए सबसे अच्छा यही होगा कि उन्हें काठियावाड़ हाई स्कूलमें रखा जाये और उनकी शिक्षा-दीक्षाकी देखभाल करनेके लिए कोई भरोसेका आदमी वेतनपर रख दिया जाये। आपसे केवल यही कहना है कि कृपया लड़कोंकी देखभाल करें, उन्हें जब-तब देख लिया करें और यदि आपको आपत्ति न हो तो उन्हें समझायें कि वे आपके अपने टेनिस-मैदानका उपयोग किया करें। यदि मैं उनके लिए ठीक आदमीकी खोज न कर पाया तो मुझे शायद इसके लिए भी आपको कष्ट देना पड़ेगा।

अब वहाँ प्लेगका क्या हाल है?

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (जी० एन० २३३०) से।

१. निम्नलिखित तार उन्हें डर्बनसे भेजा गया था: "बैरिस्टर गांधी, राजकोट: समिति अनुरोध करती है, वादा पूरा करें। रुपये भेजते हैं।" (एस० एन० ४०१३)

## २०७. पत्र : गो० कृ० गोखलेको

उच्च न्यायालयके सामने
बम्बई
नवम्बर १४, १९०२

प्रिय प्रोफेसर गोखले,

मैं बम्बईमें जम गया हूँ, ऐसा मुझे लगा ही था कि नेटालसे एक सन्देश मिला जिसमें मुझसे तुरन्त वहाँ आनेको कहा गया था। हमारे नेटाली बन्धुओं और मेरे बीच तारोंकी जो अदला-बदली हुई है, उससे मेरा खयाल होता है कि वहाँ मेरी जरूरत श्री चेम्बरलेनकी आगामी दक्षिण आफ्रिका-यात्राके सम्बन्धमें हुई है। मैं जो जहाज पहले मिले उसीसे रवाना हो जाना चाहता हूँ। शायद २० तारीखको रवाना हो जाऊँ।

मेरी इच्छा थी रवाना होनेसे पहले आपसे मिल सकता; किन्तु यह असम्भव जान पड़ता है।

आशा है, आप दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोंके प्रश्नपर निगाह रखेंगे। जबतक मैं वहाँ रहूँगा, स्थितिसे आपको परिचित रखना अपना कर्तव्य समझूँगा। मेरे खयालसे लॉर्ड जॉर्ज हैमिल्टनका उत्तर आशाप्रद ही है। और यदि भारतमें आन्दोलन अच्छी तरहसे चलाया गया तो मुझे निश्चय है कि इस कार्यको बहुत लाभ पहुँचेगा।

आशा है, आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। कुछ समय पहले श्री वाछाने मुझे बताया था कि आप आबोहवा बदलनेके लिए महाबलेश्वर जा रहे हैं।

आपका सच्चा,
**मो० क० गांधी**

मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (जी० एन० २२४५) से।

## २०८. शिष्टमण्डल : चेम्बरलेनकी सेवामें

नेटाल भारतीय कांग्रेस
पो० आ० बॉक्स १८२
कांग्रेस-भवन
डर्बन
दिसम्बर २५, १९०२

प्रिय श्री मेयर,

परम माननीय श्री चेम्बरलेनसे कल जो भारतीय शिष्टमण्डल मिलनेवाला है उसके सामने एक अलंघ्य कठिनाई है। कल जुम्मा है और नमाजका भी वही वक्त है। शिष्टमण्डलमें जो सज्जन शामिल होनेवाले हैं उनमें से अधिकांश नमाज छोड़नेमें बिलकुल असमर्थ होंगे। इस स्थितिमें अगर आप भारतीय शिष्टमण्डलके लिए शनिवारको कोई समय निश्चित करनेकी कृपा करेंगे तो मैं बहुत ही कृतज्ञ होऊँगा।

आपका सच्चा,

साबरमती संग्रहालय : दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ४०२०) से।

## २०९. प्रार्थनापत्र : चेम्बरलेनको[1]

डर्बन
दिसम्बर २७, १९०२

सेवामें
परम माननीय जोज़ेफ़ चेम्बरलेन
सम्राट्के मुख्य उपनिवेश-मन्त्री
डर्बन

परम माननीय महोदय,

हम निम्न हस्ताक्षरकर्ता, नेटाल-निवासी ब्रिटिश भारतीयोंके प्रतिनिधि, उनकी ओरसे आदरपूर्वक आपका ध्यान निम्नांकित कानूनी निर्योग्यताओंकी ओर आकृष्ट करना चाहते हैं, जिनके कारण परम कृपालु महामहिम सम्राट्की भारतीय प्रजाओंको भारी कष्ट उठाना पड़ रहा है।

विक्रेता-परवाना अधिनियम २९ मई १८९७ को जारी किया गया था। इसके अनुसार नियुक्त परवाना-अधिकारीको प्राय: ऐसा एकाधिकार प्राप्त हो जाता है कि वह चाहे जिस दूकानदार या फेरीवालेके परवाना-प्रार्थनापत्रको स्वीकृत या अस्वीकृत कर दे। यह बहुत बड़े अत्याचारका उपकरण है और इसका प्रभाव उपनिवेशमें बसे हुए भारतीय लोगोंमें से बहुत-से सम्मानित और सम्पन्नतम व्यक्तियोंपर पड़ता है।

परवाना-अधिकारियोंके निर्णयोंके विरुद्ध अपील स्थानीय निगमों (कारपोरेशनों), निकायों (बोर्डों) अथवा परवाना देनेवाले निकायोंमें — इनमें से जहाँ जो हो — की जा सकती है। इस सम्बन्धमें, इन लोक-निर्वाचित निकायोंके निर्णयोंके विरुद्ध अपील सुननेका स्वाभाविक अधिकार इस कानूनमें सर्वोच्च न्यायालयसे छीन लिया गया है। यह बतलानेकी तो हमें आवश्यकता ही नहीं कि ये लोक-निर्वाचित निकाय कभी-कभी अपने प्राप्त अधिकारोंका कैसा दुरुपयोग करते हैं। इसी विषयपर अपने पिछले प्रार्थनापत्रमें हमें आपका ध्यान इस कानूनके अमलसे होनेवाली कठिनाइयोंके यथार्थ उदाहरणोंकी ओर खींचनेका सम्मान प्राप्त हुआ था। परोक्ष रूपमें, इसके कारण बहुत-सा भारतीय उद्यम रुक जाता है। गरीब व्यापारी परवानेके लिए प्रार्थनापत्र देने तकका साहस नहीं करते; और सब भारतीय व्यापारियोंको एक वर्षकी समाप्तिसे लेकर अगले वर्षकी समाप्तितक दुविधामें लटकते रहना पड़ता है, क्योंकि इन परवानोंको प्रतिवर्ष फिर जारी करवाना पड़ता है, और इस कानूनके अनुसार किसी भी वर्ष उन्हें जारी करनेसे इनकार किया जा सकता है। हमें ज्ञात हुआ है कि एक बार एक निगमने पहले तो सभी भारतीय प्रार्थनापत्र अस्वीकृत कर दिये थे और जब यह भय होने लगा कि अधिकतर स्थानीय निकाय एकदम सभी भारतीय व्यापारियोंका सफाया न कर दें तब आपके कहनेपर नेटाल सरकारने उन्हें लिखा कि यदि तुमने कानून द्वारा प्राप्त इस मनमाने अधिकारका प्रयोग न्याय और निष्पक्षतासे न किया तो शायद इसे मन्सूख कर देना पड़े। हमें मानना पड़ता

१. उपनिवेश-मन्त्रीकी दक्षिण आफ्रिकाकी यात्राके समय नेटाली भारतीयोंके एक शिष्टमण्डलने यह प्रार्थनापत्र उन्हें दिया था। इस शिष्ट-मण्डलका नेतृत्व गांधीजीने किया था।

है कि उनके बाद, साधारणतया, पुराने परवानोंको फिर जारी करनेसे इनकार नहीं किया गया; परन्तु यह कानून ऐसा है कि कभी भी कितने ही व्यापारियोंके सर्वनाशका कारण बन सकता है, इसलिए जबतक इसे सुधारा न जायेगा तबतक हमारे लिए चैनसे बैठ सकना कठिन होगा। यहाँ हम इस कानूनसे हालमें हुए भारी अन्यायका एक उदाहरण देनेका साहस करते हैं। श्री अमद इब्राहीम नामके एक सज्जन इस उपनिवेशमें १७ वर्षसे व्यापार करते आ रहे हैं, वे अंग्रेजी भाषा भली प्रकार पढ़, लिख और बोल सकते हैं, और उन्हें ग्रेटाउनमें व्यापार करनेका परवाना छः वर्षसे मिला हुआ है। परन्तु इस वर्ष, पुरानी इमारतसे एक नई और अच्छी इमारतमें दूकान बदलनेका उनका प्रार्थनापत्र, १३८ नगर-निवासियों द्वारा सिफारिश करनेपर भी बिना कोई उचित कारण बतलाये, अस्वीकृत कर दिया गया। पिछले साल ग्रेटाउन-निकायने भारतीय व्यापारियोंके विषयमें यह प्रस्ताव पास किया था :

> वर्तमान अरब व्यापारियोंके परवाने तभीतक फिरसे जारी किये जायेंगे जबतक कि वे उन्हीं व्यापारियोंके पास हैं। उन्हें फिरसे जारी करना या न करना निकायकी इच्छापर निर्भर है; परन्तु जो स्थान कोई व्यापारी खाली कर देगा उसके लिए किसी नये अरब व्यापारीको परवाना नहीं दिया जायेगा।

उसी व्यापारीको ग्रेटाउनकी अपनी जमीनपर व्यापार करनेके लिए भी परवाना देनेसे इनकार कर दिया गया है। इसकी शिकायत परमश्रेष्ठ गवर्नरसे भी की गई थी, परन्तु उन्होंने बीचमें पड़नेसे इनकार कर दिया।

हमारी प्रार्थना केवल इतनी है कि ऊपर निर्दिष्ट निकायोंके निर्णयोंपर विचार करनेका अधिकार फिर सर्वोच्च न्यायालयको दे दिया जाये, क्योंकि अक्सर निकायोंके सदस्य स्वयं व्यापारी होते हैं और इस कारण उनका इन मामलोंमें स्वार्थ रहता है। हमारा जहाँतक वश था वहाँ तक हमने सब उपाय करके देख लिये। हम सम्राट्की न्याय-परिषदतक भी गये थे, परन्तु उसने निर्णय दिया कि इस कानूनमें सर्वोच्च न्यायालयको कहने लायक सुविधा देनेका अधिकार नहीं है। हमारा खयाल है कि भारतीय लोग कानूनकी सफाई-सम्बन्धी शर्तें पूरी करनेके लिए सदा तैयार रहते हैं। डर्बनके परवाना-अधिकारी और स्वास्थ्य-निरीक्षकतकने इसे माना है। इस सबके बाद भी जब हमें व्यापार करनेके परवाने नहीं मिलते तब हमें बहुत चोट लगती है और हमारा खयाल है कि ऐसा केवल हमारी खालके रंगके कारण होता है।

प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियम ८ मई १८९७ को लागू किया गया था। उन ब्रिटिश भारतीयोंपर तो इसका प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता ही है जो इस उपनिवेशमें आना चाहते हैं, परन्तु अप्रत्यक्ष रूपसे वे भी इससे प्रभावित होते हैं जो यहाँ पहलेसे बस चुके हैं। यहाँ बसनेके इच्छुकोंपर जिस धाराका ज्यादा सख्त असर होता है वह शिक्षाकी शर्त लगानेवाली धारा है, जिसमें किसी-न-किसी यूरोपीय भाषाका ज्ञान होना जरूरी माना गया है। कोई भारतीय भाषा भली भाँति जाननेवाला व्यापारी इस कानूनके अनुसार निषिद्ध प्रवेशार्थी माना जायेगा। परन्तु इसके कारण सबसे अधिक परेशानी तब होती है जब कि उपनिवेशमें बसे हुए व्यापारी, कोठा-रियों, विक्रेताओं, सहायकों, मुंशियों, रसोइयों और घरेलू नौकरों आदिको स्वदेशसे बुलाना चाहते हैं। जो लोग पहलेसे यहाँ बसे हुए हैं वे अंग्रेजी जानें चाहे न जानें, उन्हें इस कानूनके अनुसार आने-जानेकी स्वतन्त्रता अवश्य है, परन्तु उनमें से हमेशा अभीष्ट कार्यकर्ता नहीं मिल पाते। नेटाल-सरकारसे बहुधा प्रार्थना की जाती रहती है कि स्थानीय आवश्यकताकी पूर्तिके लिए उक्त प्रकारके व्यक्तियोंको आने दिया जाये, परन्तु केवल कुछ असाधारण अपवादोंको

छोड़कर, वह सदा अस्वीकृत कर दी जाती है। इसके अतिरिक्त, उपनिवेशमें बसा हुआ कोई भी व्यक्ति, अपनी पत्नी और नाबालिग बालकोंको छोड़ कर, अपने माता-पिता आदि अन्य सम्बन्धियोंको अपने पास नहीं रख सकता, वे अपने निर्वाहके लिए उसपर निर्भर ही क्यों न करते हों। कानून गहरी शरारतोंकी संभावनाओंसे भरा पड़ा है। एक उदाहरण लीजिए। युद्धके समय ट्रान्सवालके सैकड़ों शरणार्थियोंके लिए १० पौंड बिना जमा कराये, इस उपनिवेशमें से गुजरनातक मुश्किल हो गया था। जब बात बहुत बढ़ गई तब दो बार सरकारसे प्रार्थना की गई, और आखिर परमश्रेष्ठ उच्चायुक्तके बीचमें पड़नेपर ही इन शरणार्थियोंको उपनिवेशमें से गुजरनेकी इजाजत दी गई। ब्रिटिश प्रजाजन, अपराधी या भुखमरे न होते हुए भी, महामहिमके साम्राज्यके किसी भागमें जानेतक न पायें, यह बात समझमें आना बहुत कठिन है।

भारतीय बालकोंकी शिक्षाका प्रश्न दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक पेचीदा बनता जा रहा है। यह तथ्य भी हमसे छिपा नहीं है कि सरकारको जनताके प्रबल द्वेष-भावका सामना करना पड़ रहा है। फिर भी, हालतें कैसी भी क्यों न हों, सादर निवेदन यह है कि उपनिवेशकी भारतीय जनता भी यहाँकी सार्वजनिक आयमें अपना भाग देती है, इसलिए उसका अधिकार है कि उसे नेटालमें उत्पन्न हुए भारतीय बालकोंको — जिनका स्वदेश नेटाल ही है — शिक्षित करनेके लिए उचित सुविधाएँ प्रदान की जायें। जो सज्जन उत्तरदायी सरकारी पदोंपर नियुक्त हैं, पूरी तरह यूरोपीय ढंगसे रहते हैं, जिनकी मातृभाषा भी अंग्रेजी है, उन्हें भी अपने बालकोंको साधारण सरकारी स्कूलोंमें दाखिल करानेके अधिकारसे वंचित कर दिया गया। उच्चतम अधिकारियोंसे प्रार्थना करनेका फल भी कुछ नहीं निकला। सरकारने हालमें एक उच्च श्रेणीका (हायर ग्रेड) भारतीय स्कूल डर्बनमें और एक मैरित्सबर्गमें खोलनेकी कृपा की है। इन दोनोंमें आरंभिक शिक्षा दी जाती है; परन्तु इनसे निकलनेके बाद भारतीय बालकोंके लिए आगे शिक्षाकी कोई सुविधा नहीं है।

इस उपनिवेशकी समृद्धि गिरमिटिया भारतीयोंपर निर्भर है। परन्तु अपना गिरमिट पूरा कर लेनेके बाद यदि वे इस उपनिवेशमें रहना चाहें तो उन्हें ३ पौंड व्यक्ति-कर प्रतिवर्ष देना पड़ता है। हमारी नम्र सम्मतिमें यह बहुत अनुचित है। परमश्रेष्ठ लॉर्ड एलगिन भी इसे अनुचित बतला चुके हैं। परन्तु अब नेटालकी संसदने एक विधेयक पास किया है। उसके अनुसार यह व्यक्ति-कर गिरमिटियोंके बालकोंपर भी लाद दिया जायेगा — लड़कियोंपर १३ वर्षकी हो जानेपर और लड़कोंपर १६ वर्षके हो जानेपर। यह विधेयक इस समय विचारके लिए आपके सामने प्रस्तुत है। इसके विषयमें हम जो भी कह सकते थे सो सब अपने प्रार्थनापत्रमें आपकी सेवामें निवेदन कर चुके हैं। यह ब्रिटिश परम्पराओंके इतना विरुद्ध है कि, हमें विश्वास है, इसे सम्राट्की स्वीकृति प्राप्त नहीं होगी।

कानूनी निर्योग्यताएँ तो और भी हैं। परन्तु शायद उनका महत्त्व गौण है, इसलिए हम उनकी चर्चा करना नहीं चाहते। उदाहरणार्थ, दिन और रात, शहर और गाँव, सब जगह परवाना लेकर चलनेकी पाबन्दी बड़ी दुःखदायी है। हम मानते हैं कि जबतक यहाँ गिरमिटिया भारतीय आबादी मौजूद है तबतक परवानेके कानूनकी जरूरत पड़ेगी, परन्तु इसका इलाज यह है कि उस कानूनपर अमल सोच-समझ कर किया जाये। हालमें, प्रतिष्ठित स्त्री-पुरुषोंको भी गिरमिटिया होनेके सन्देहमें गिरफ्तार कर लिया गया था। एक आदमीकी पत्नीके बच्चा होनेवाला था, वह डॉक्टरकी तलाशमें निकला था, उसे भी गिरफ्तार कर लिया गया। इन सबको जमानतपर भी नहीं छोड़ा गया। जब मामला सरकारके सामने पेश किया गया तब उसने कहा कि कानूनी कार्रवाई करो।

हमें इस उपनिवेशमें जीवित रहनेके लिए निरन्तर संघर्ष करना पड़ रहा है। पता नहीं, हमारी कानूनी निर्योग्यताओंकी तालिका पूरी कब होगी। इन दिनों गम्भीरतासे यह सोचा जा रहा है कि जिन गिरमिटिया भारतीयोंकी मियाद खत्म हो चुकी है उन्हें जबरन भारत लौटा दिया जाये और भारतीय निवासियोंको यहाँ जमीन न खरीदने दी जाये। यहाँके निवासी भारतीयोंके राजनीतिक अधिकार प्राय: कुछ नहीं हैं; राजनीतिक अधिकार पानेकी उनकी इच्छा भी नहीं है। कई वर्ष पूर्व जब हमने अपने मताधिकार छीने जानेका विरोध किया था तब हमने दो कारणोंसे वैसा किया था। एक तो उससे हमारा तिरस्कार होता था और दूसरे, यह स्पष्ट था कि यह बादको बनाये जानेवाले भारतीय-विरोधी कानूनोंका सूचक था। जब माननीय सर जॉन रॉबिन्सनने यह मताधिकार छीननेका विधेयक पेश किया था तब उन्होंने उक्त आशंकाओंका उत्तर यह दिया था कि ऐसी कोई आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि मताधिकार छीन लिया जानेके पश्चात्, मताधिकार-हीनोंके हितोंकी रक्षा करना विधान-निर्माताओंका एक विशेष कर्तव्य हो जायेगा। परन्तु ऊपर जिन कानूनी निर्योग्यताओंकी चर्चा की गई है उनसे प्रकट होता है कि इन माननीय सज्जनका आश्वासन कितना निष्फल हुआ है। व्यापारिक प्रतिस्पर्धाके अनुचित भयके कारण उत्पन्न हुई रंग-द्वेपकी भावना बहुत प्रबल सिद्ध हुई है।

प्रथम दो कानूनोंको शाही स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है, फिर भी हमने यहाँ उनकी चर्चा इस आधारसे कर दी है कि वे दोनों हमारी निरन्तर परेशानीका कारण बने हुए हैं और इसलिए हमारा वैसा करना बेमौका नहीं समझा जायेगा। इस बातसे भी हम अपरिचित नहीं हैं कि ब्रिटिश सरकार स्वशासित उपनिवेशोंपर कमसे-कम नियन्त्रण रखती है। परन्तु हम साहसपूर्वक ऐसा मान कर चल रहे हैं कि हमने आपकी सेवामें जो समस्या पेश की है वह इतने महत्त्वकी और इस प्रकारकी है कि उसके कारण ब्रिटिश सरकारको स्वशासित उपनिवेशोंपर जो भी अधिकार प्राप्त हों उनका प्रयोग किया जा सकता है।

आखिर हमारे प्रश्नका सम्बन्ध केवल कुछ हजार भारतीयोंसे नहीं, महामहिम सम्राट्की भारतीय प्रजाओंकी मान-मर्यादासे है। स्व० सर विलियम विल्सन हंटरके [लंदन टाइम्समें प्रकाशित] शब्दोंमें :

> क्या ब्रिटिश भारतीयोंको, जब वे भारत छोड़ते हैं, कानूनके सामने वही दर्जा मिलना चाहिए, जिसका उपभोग अन्य ब्रिटिश प्रजाएँ करती हैं? वे एक ब्रिटिश प्रदेशसे दूसरेको स्वतन्त्रतापूर्वक जा सकते हैं या नहीं, और सहयोगी राज्योंमें ब्रिटिश प्रजाके अधिकारोंका दावा कर सकते हैं या नहीं?

नेटालके विषयमें लॉर्ड रिपनने अपने एक खरीतेमें हमें विश्वास दिलाया था कि :

> सम्राज्ञी-सरकारकी इच्छा है कि सम्राज्ञीकी भारतीय प्रजाओंके साथ उनकी अन्य प्रजाओंकी बराबरीका व्यवहार किया जाये।

यहाँ हम यथाशक्ति यत्न करते रहते हैं कि हम अधिक अच्छे व्यवहारके योग्य बन जायें; और हमें सन्देह नहीं है कि मन्त्रीगण भी आपको ऐसा ही बतलायेंगे। भारतीय प्रवासियोंके संरक्षकने, यद्यपि उसका सम्बन्ध हमारे देशके केवल निम्नतम या, यों कहें कि, निर्धनतम लोगोंके साथ है, अपने पिछले प्रतिवेदनमें कहा है :

> मुझे यह बतलाते हुए प्रसन्नता होती है कि इस उपनिवेशमें आकर बसे हुए भारतीय कुल मिलाकर कानूनका पालन करनेवाले, व्यवस्थित और सम्मानित लोग हैं। उनको साधारणतया समृद्ध भी माना जा सकता है।

हमें अधिक कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं। हम जानते हैं कि आपकी सहानुभूति हमारे साथ है। हमारी प्रार्थना इतनी ही है कि आप कृपा करके अपने प्रभावका उपयोग हमारे पक्षमें करनेका कष्ट करें।

आपके आज्ञाकारी और विनम्र सेवक,
मो० क० गांधी
तथा पन्द्रह अन्य

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल ऑफ़िस रेकर्ड्स: पिटिशन्स ऐंड मेमोरियल्स, १९०२, सी० ओ० ५२९/१।

## २१०. पत्र: उपनिवेश-सचिवको

३३८, प्रिन्सज़ स्ट्रीट
प्रिटोरिया
जनवरी २, १९०३

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
प्रिटोरिया

श्रीमन,

ट्रान्सवाल-निवासी ब्रिटिश भारतीय समाज परम माननीय श्री जोज़ेफ़ चेम्बरलेनके सामने उन कानूनी निर्योग्यताओंके विषयमें अपने विचार प्रस्तुत करना चाहता है जिनसे वह इस उपनिवेशमें तथा ऑरेंज रिवर उपनिवेशमें त्रस्त है।

भारतीय समाजकी ओरसे मैं आपसे सादर पूछना चाहता हूँ कि क्या परम माननीय महानुभाव इस मामलेमें एक शिष्टमंडलसे भेंट करनेकी कृपा करेंगे और यदि हाँ तो कब?

१८९४ से १९०१ के मध्यतक यहाँ रहनेवाले मेरे देशवासी श्री मो० क० गांधी एडवोकेटकी सलाहसे काम करते रहे हैं। इस बीचमें उपनिवेश कार्यालयके सामने जो प्रार्थनापत्र आदि रखे गये थे उनमें से अधिकतर उन्हींके तैयार किये हुए थे।

माननीय सहायक उपनिवेश-सचिव जिनसे मैंने और मेरे मुंशी श्री हाजी हबीबने, और श्री गांधीने भी, आज सबेरे भेंट की थी, कहते हैं कि श्री गांधीको, ट्रान्सवाल-निवासी न होनेके कारण, श्री चेम्बरलेनके सम्मुख हमारा प्रतिनिधित्व न करने दिया जायेगा। परन्तु हमारे बीच दूसरा कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसने भूतपूर्व गणराज्यके भारतीय-विरोधी कानूनोंका इतना अध्ययन किया हो जितना श्री गांधीने किया है, और वे कर रहे हैं। और इसीलिए वे खास तौरसे बम्बईसे बुलाये गये हैं। मैं सादर प्रार्थना करता हूँ कि यदि परम माननीय महानुभाव उदारतापूर्वक शिष्टमंडलसे भेंट करना स्वीकार करें तो उसके साथ श्री गांधीको भी आनेकी अनुमति प्रदान करें।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
तैयब हाजी खान मुहम्मद

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ४०२३) से।

## २११. पत्र: ट्रान्सवालके गवर्नरको

कलकत्ता हाउस
प्रिटोरिया
जनवरी ६, १९०३

सेवामें
निजी सचिव
परमश्रेष्ठ गवर्नर महोदय
प्रिटोरिया

महोदय,

गत २ जनवरीको ब्रिटिश भारतीय समितिके अध्यक्षकी हैसियतसे मैंने माननीय उपनिवेश-सचिवकी सेवामें एक पत्र भेजा था। उसमें पूछा था कि क्या परम माननीय जोज़ेफ़ चेम्बरलेन इस उपनिवेशमें रहनेवाले मेरे देशबन्धुओंपर लगी निर्योग्यताओंके सम्बन्धमें ब्रिटिश भारतीयोंके एक शिष्टमंडलसे भेंट करनेकी कृपा करेंगे। सहायक उपनिवेश-सचिवने श्री मो० क० गांधी एडवोकेटको उसका प्रवक्ता होनेकी अनुमति देनेसे जो इनकार कर दिया था, पत्रमें उसके विरुद्ध आपत्ति भी प्रकट की गई थी। उन्होंने, कई बार जबानी और लिखित रूपसे याद दिलानेपर, और ४ दिनके विलम्बसे, संलग्न उत्तर[1] भेजा है। माननीय उपनिवेश-सचिवको लिखे पत्रकी नकल[2] भी साथ नत्थी है।

मैं नम्रतापूर्वक पुनः निवेदन करता हूँ कि श्री गांधीको हमारा प्रवक्ता होनेकी अनुमति दी जाये। मैं यह भी उचित आदरके साथ निवेदन कर दूँ कि यह नामंजूरी मेरी समितिको अत्यन्त असाधारण कार्यवाही जान पड़ती है। सम्भवतः परमश्रेष्ठ महानुभावको मालूम होगा कि अब-तक श्री गांधीको ब्रिटिश अधिकारियोंके सम्मुख ब्रिटिश भारतीयोंका प्रतिनिधित्व करने दिया गया है। उदाहरणके लिए, उन्होंने प्रिटोरिया-स्थित ब्रिटिश एजेंटके सामने कई मौकोंपर तथा युद्ध आरम्भ होनेसे पहले जोहानिसबर्ग-स्थित ब्रिटिश उपप्रतिनिधि (वाइस कॉन्सल) के सामने हमारा प्रतिनिधित्व किया था।

भूतपूर्व गणराज्य-सरकार हमारे हितोंकी विरोधी थी। फिर भी, श्री गांधीको उसके सदस्योंके सामने हमारा प्रतिनिधित्व करने दिया जाता था।

मेरी समिति यह भी चाहती है कि मैं यहाँ नम्रतापूर्वक एशियाई-पर्यवेक्षक (सुपरवाइज़र ऑफ एशियाटिक्स) को बलात् हमारा व्याख्याकार और प्रवक्ता बनानेके विरोधमें समितिकी आपत्ति प्रकट कर दूं। हमारी सदासे ही यह मान्यता है कि परम माननीय महानुभाव ऐसे शिष्ट-मण्डलोंसे भेंट करना चाहते हैं, जिनके प्रतिनिधियोंपर कोई सरकारी नियंत्रण न हो। किन्तु उक्त अधिकारीकी उपस्थितिसे शायद ही इस उद्देश्यकी सिद्धि हो सके।

१. यह पत्र नहीं दिया जा रहा है।
२. देखिए पिछला शीर्षक।

मेरी प्रार्थना है कि आप इस पत्रको परमश्रेष्ठके सम्मुख उपस्थित कर दें। मुझे भरोसा है कि परमश्रेष्ठ इस मामलेमें मेरी समितिको निर्देश देनेकी कृपा करेंगे।[1]

आपका आज्ञाकारी सेवक,
तैयब हाजी खान मुहम्मद

[अंग्रेजीसे]

प्रिटोरिया आर्काइव्ज़: एल–टी० जी० ९२ और एल० जी० २१३२, नं० ९७-१-२: एशियाटिक्स, १९०२/१९०६

## २१२. अभिनन्दनपत्र: चेम्बरलेनको[2]

प्रिटोरिया
जनवरी [७], १९०३[3]

सेवामें
परम माननीय जोज़ेफ़ चेम्बरलेन
सम्राट्के मुख्य उपनिवेश-मंत्री
प्रिटोरिया

महोदय,

हम नीचे हस्ताक्षर करनेवाले प्रार्थी अति कृपालु सम्राट्के भारतीय प्रजाजनोंकी ओरसे, उनके प्रतिनिधि-रूपमें आपका ध्यान सादर निम्नलिखित विवरणकी ओर आकृष्ट करते हैं। यह उन कानूनी निर्योग्यताओंके विषयमें है, जिनसे हमारे देशवासी इस उपनिवेशमें पीड़ित हैं।

भूतपूर्व गणराज्यके कानूनोंके अनुसार ब्रिटिश भारतीय:

(१) पृथक् बस्तियोंके सिवा और कहीं अचल सम्पत्ति नही रख सकते;
(२) अपने आगमनके आठ दिनके भीतर एक पृथक् रजिस्टरमें अपना नाम दर्ज कराने और उसके लिए ३ पौंड देनेके लिए बाध्य हैं;
(३) पृथक् बस्तियोंमें ही व्यापार और निवास करनेके लिए बाध्य हैं;
(४) विशेष अनुमतिके बिना रातको ९ बजेके बाद घरसे बाहर नहीं निकल सकते;
(५) रेलगाड़ियोंमें तीसरे दर्जेके सिवा किसी और दर्जेमें यात्रा नहीं कर सकते;
(६) जोहानिसबर्ग और प्रिटोरियामें पैदल-पटरियोंपर नही चल सकते;
(७) जोहानिसबर्ग और प्रिटोरियामें किरायेकी गाड़ियोंमें यात्रा नहीं कर सकते;
(८) देशी सोना नहीं रख सकते और न खनकोंके परवाने पा सकते हैं।

१. अपने जनवरी ७ के उत्तरमें लेफ्टिनेंट गवर्नरने खेदपूर्वक लिखा कि वे गांधीजीको शिष्टमंडलमें शामिल करनेकी आज्ञा नहीं दे सकते, और न उन्हें एशियाई पर्यवेक्षककी उपस्थितिपर आपत्तिका कोई कारण ही दिखाई देता है (एस० एन० ४०२७)। गांधीजीने अपनी आत्मकथा (गुजराती, १९५२, पृष्ठ २५४–५५) में इस घटनाका वर्णन किया है।

२. गांधीजीने अपनी आत्मकथा (गुजराती, १९५२, पृष्ठ २५३) में उल्लेख किया है कि इसका मसविदा उन्होंने ही बनाया था।

३. अभिनन्दनपत्र जनवरी ७ को भेंट किया गया था।

जहाँतक हम जान सके हैं, ऐसा है भारतीय-विरोधी विधान, जो साम्राज्य-सरकारको भूतपूर्व गणराज्यसे विरासतमें मिला है। और [वह] अभीतक बरकरार है।

इन नियमों और उपनियमोंमें से कर्फ्यू, रेलयात्रा, पैदल-पटरी और किरायेकी गाड़ी-सम्बन्धी नियम यद्यपि युद्धके तुरन्त बाद कड़ाईके साथ लागू किये गये थे, तथापि बादको बहुत-कुछ ढीले कर दिये गये। परन्तु जबतक ये रद नहीं किये जाते तबतक किसी भी क्षण कड़ाईके साथ लागू किये जा सकते हैं। और, किसी भी अवस्थामें, भारतीय समाजको अनावश्यक अपमानका पात्र तो बना ही सकते हैं।

जैसा सभी जानते हैं, भूतपूर्व बोअर-सरकारने ये सारे भारतीय-विरोधी कानून दक्षिण आफ्रिकाके मूल निवासियोंके साथ हमारी गणना करनेके उद्देश्यसे बनाये थे। लंदन-समझौतेके बाद ही उस सरकारने "दक्षिण आफ्रिकी मूल निवासियों" की व्याख्यामें ब्रिटिश भारतीयोंको शामिल कर लिया था। ऐसी व्याख्या और उसपर आधारित व्यवहारके विरुद्ध स्वर्गीया सम्राज्ञीकी सरकारकी ओरसे लगातार आपत्ति की जाती रही। इसमें केवल एक बार दुर्भाग्य-पूर्ण व्यतिक्रम हुआ, और वह भी गलतफहमीसे।

फिर इसमें ब्रिटिश सरकार हमारे पक्षमें दखल दे सकती है, इसका लाभप्रद भय लगातार बना रहा। नतीजा यह हुआ कि यद्यपि हमारे विरुद्ध मुख्य कानून १८८५[1] में पास हुआ था और हमें एक बड़ी दुविधा और अनिश्चयकी दशामें रहना पड़ा, फिर भी हममें से अधिकतर लोग इस अन्तिम प्रहारसे बचनेमें समर्थ रहे। परन्तु अब इन कानूनोंके गिर्द ऐसी कोई आश्वासन-प्रद बातें नहीं रही हैं। एशियाई विभागका एकमात्र कर्तव्य हमपर प्रभाव डालनेवाले कानूनोंको लागू करना और यह बताना है कि उपनिवेशमें प्रवेशके लिए परवाने किन्हें दिये जायेंगे। अतः जहाँ यूरोपीयोंको, चाहे वे ब्रिटिश-प्रजा हों चाहे और कोई, व्यवहारतः माँगते ही प्रवासी-परवाने मिल जाते हैं, वहीं भारतीय शरणार्थियोंको एशियाई पर्यवेक्षककी सेवामें प्रार्थनापत्र भेजने पड़ते हैं और वही यह निर्णय करता है कि वह केप, नेटाल, या डेलागोआ-बेके, जहाँका भी मामला हो, परवाना-अधिकारीको अमुक परवाना जारी करनेकी अनुमति दे अथवा न दे। और फिर, मानो इतना काफी न हो, भारतीय शरणार्थियोंसे अपेक्षा रखी जाती है कि वे अपने आग-मनके बाद रिहायशी परवाने भी लें, यद्यपि ये परवाने अब शेष निवासियोंके लिए आवश्यक नहीं रहे हैं।

यद्यपि ढीलेढाले बोअर-शासनमें बहुतेरे भारतीय व्यापारी, अधिकारियोंकी पूरी जानकारीमें, अपने परवानोंके लिए कुछ भी शुल्क दिये बिना व्यापार करते थे, तथापि जागरूक ब्रिटिश शासनमें तो ऐसी बात स्वभावतः ही असम्भव है।

श्रीमानके सामने जब हमारी ओरसे प्रार्थनापत्र पेश किया गया था उस समय श्रीमानने कृपापूर्वक हमसे कहा था कि हमारी शिकायत निश्चय ही न्यायसंगत है और हमें श्रीमानकी सहानुभूति प्राप्त है। फिर भी, उस समय श्रीमान तत्कालीन दक्षिण आफ्रिकी सरकारसे मैत्रीपूर्ण निवेदन कर देनेसे ज्यादा कुछ करनेमें असमर्थ थे। इसके अलावा, जब युद्ध छिड़ा तब सरकारी तौरपर यह घोषणा कर दी गई कि ब्रिटिश भारतीयोंकी निर्योग्यताएँ युद्धका एक कारण हैं।

इसलिए युद्धका अन्त होनेके साथ ही हमने सोचा था कि हमारी कठिनाइयोंका भी अन्त हो जायेगा। परन्तु दुर्भाग्यसे अभीतक यह आशा फलवती नहीं हुई। ये उल्लिखित कानून जो प्रत्यक्षतः अब्रिटिश हैं, अब सामान्यतः ब्रिटिश-नियमिततासे साथ लागू किये जा रहे हैं। कर्फ्यू

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९२।

और दूसरे कानून, जो ढीले कर दिये गये हैं, पुराने शासनमें भी कभी कड़ाईके साथ लागू नहीं किये गये थे।

"एशियाई मामलोंका मुहकमा" (डिपार्टमेंट ऑफ एशियाटिक अफेयर्स) के नामसे एक नया मुहकमा खोला गया है। उसकी स्थापनाके पीछे कितने ही अच्छे इरादे क्यों न हों, व्यवहारतः यह पुरानी पद्धतिका नया रूप ही है और हमारे हितोंके बहुत खिलाफ है।

जब यह खोला गया, तब हमने इसके विरुद्ध सादर आपत्ति प्रकट की थी, परन्तु ज्ञात यह हुआ कि यह केवल अस्थायी विभाग है और नियमित कामकाज आरम्भ हो जानेपर बन्द कर दिया जायेगा। पुराने शासनमें केवल भारतीय मामलोंकी देखभालके लिए अलग कोई विभाग नहीं था।

इसलिए अब पहलेकी अपेक्षा भारतीय व्यापारी और दूकानदार कम हो गये हैं। और रुख अभी और भी कड़ाईकी ओर है। ब्रिटिश अधिकार शुरू होनेपर कुछ परवाने उन लोगोंके नाम जारी किए गये थे, जिनके पास युद्धसे पहले परवाने नहीं थे। सरकारने अब सूचना निकाली है कि ऐसे लोगोंको परवाने देनेका उसका इरादा नहीं है। इस तरह हममें से बहुतोंके सम्मुख, जो युद्धके पहले परवानोंके बिना व्यापार करते थे और जिन्हें गत वर्ष परवाने मिले थे, अब परवाने रद हो जानेकी सम्भावना उपस्थित है। पीटर्सबर्गमें ऐसे परवानेदारोंको ताकीद मिल चुकी है कि उन्हें केवल तीन महीनोंके लिए अस्थायी परवाने मिलेंगे, जिससे वे अपना माल बेच डालें।

वाकर्स्ट्रूमके आवासी (रेजिडेंट) मजिस्ट्रेटने व्यापार-संघ (चेम्बर ऑफ कॉमर्स) को सूचित किया है कि चालू भारतीय परवाने इस वर्ष बदले नहीं जायेंगे। हम जानते हैं, हमारे लिए ठीक मार्ग यह है कि ऐसे मामलोंमें आपकी सेवामें प्रार्थनापत्र भेजनेसे पहले हम स्थानीय उच्चाधिकारियोंसे मिलें। इनका जिक्र हम केवल यह दिखानेके लिए करते हैं कि हमारी हालत पहलेकी अपेक्षा कितनी ज्यादा बुरी है। और इसका कारण एशियाई मामलोंका पृथक् प्रशासन है, जिससे विभिन्न वर्गोंके बीच भेदभाव भी बढ़ता है।

इस समय हमारी हालत पहलेकी अपेक्षा कितनी अधिक खराब हो गई है, इसका एक और उदाहरण यह है कि, एक सरकारी अफसरके बच्चोंको बोअर-शासन कालमें साधारण यूरोपीय स्कूलमें पढ़नेकी अनुमति थी; किन्तु अब, ब्रिटिश अधिकारके बाद, वे उस स्कूलसे निकाल दिये गये हैं।

युद्ध छिड़नेसे ठीक पहले बोअर-सरकार जोहानिसबर्गकी वर्तमान भारतीय बस्तीको शहरसे बहुत दूर एक स्थानपर हटानेका प्रयत्न कर रही थी। इसका विरोध किया गया[1]। तत्कालीन उप-राजप्रतिनिधि श्री ईवान्सने हमारी ओरसे बीच-बचाव किया और यह मामला जहाँका-तहाँ रहने दिया गया। किन्तु अब यह इतना आगे बढ़ गया है कि इससे बस्तीके निवासी आतंकित हो उठे हैं। हम जानते हैं कि वर्तमान स्वास्थ्य-अधिकारीने इस बस्तीकी बेहद निन्दा की है। परन्तु, उनके कहनेके अनुसार, यदि यह गंदी हालतमें है तो जाहिर है, इसमें भारतीयोंका चौथाई कसूर भी नहीं है। बोअर-शासनमें इसकी आवश्यकताओंकी उपेक्षा की गई थी। भारतीय समाजके विरुद्ध गन्दगीके इलजामकी हमारे पिछले प्रार्थनापत्र[2]में पूर्ण रूपसे मीमांसा की जा चुकी है और आशा है, हमने इसका पूरे तौरसे खंडन भी कर दिया है। नीचे हम प्रतिष्ठित चिकित्सकोंके दो डॉक्टरी प्रमाणपत्र उद्धृत करते हैं।

१. देखिए "पत्र: ब्रिटिश एजेंटको," जुलाई २१, १८९९।

२. देखिए खण्ड १, पृष्ठ १८९–२११ और यह खण्ड, पृष्ठ ६८–७१।

डॉक्टर एम० प्रायर्वाल्ड बी० ए०, एम० बी० बी० सी० (कैंटब), इस प्रकार प्रमाणित करते हैं :

मैंने उनके [भारतीयोंके] शरीरोंको आम तौरसे स्वच्छ और उन लोगोंको गंदगी तथा लापरवाहीसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंसे मुक्त पाया है। उनके मकान साधारणतः साफ रहते हैं और सफाईका काम वे राजी-खुशीसे करते हैं। वर्गकी दृष्टिसे विचार किया जाये तो मेरा यह मत है कि निम्नतम वर्गके भारतीय निम्नतम वर्गके यूरोपीयोंकी तुलनामें बहुत अच्छे उतरते हैं। अर्थात्, निम्नतम वर्गके भारतीय निम्नतम वर्गके यूरोपीयोंकी अपेक्षा ज्यादा अच्छे ढंगसे, ज्यादा अच्छे मकानोंमें और सफाईकी व्यवस्थाका ज्यादा खयाल करके रहते हैं।

मैंने यह भी देखा है कि जिस समय शहर और जिलेमें चेचकका प्रकोप था — और जिलेमें अब भी है — तब प्रत्येक जातिके एक या अधिक रोगी कभी-न-कभी संक्रामक रोगोंके चिकित्सालयमें रहे, परन्तु भारतीय कभी एक भी नहीं रहा।

मेरे खयालसे आम तौरपर भारतीयोंके विरुद्ध सफाईके आधारपर आपत्ति करना असम्भव है। शर्त हमेशा यह है कि सफाई-अधिकारियोंका निरीक्षण भारतीयोंके यहाँ उतना ही कठोर और नियमित हो, जितना कि यूरोपीयोंके यहाँ होता है।

डॉक्टर एफ० पी० मैरेस, एम० डी० (एडिन०) प्रमाणित करते हैं :

इन लोगोंमें चिकित्साका बहुत बड़ा धन्धा करनेके कारण मैं व्यक्तिगत अनुभवसे कह सकता हूँ कि गरीब यूरोपीयोंकी अपेक्षा ये ज्यादा साफ-सुथरे होते हैं, और यदि सफाईके अभावके कारण रंगदार लोग हटाये जाते हैं तब तो कुछ गरीब यूरोपीयोंको भी उसी दुर्भाग्यका शिकार होना पड़ेगा।

परन्तु इस विषयपर हम और अधिक विचारकी आवश्यकता नहीं समझते, क्योंकि हमारे प्रार्थनापत्र[1]के उत्तरमें आपने इस बातपर अपना संतोष प्रकट किया था कि हमारी स्वतंत्रतापर जो नियंत्रण लगाये गये हैं वे व्यापारिक ईर्ष्याके परिणाम हैं। उपनिवेशके कुछ भागोंमें गोरे लोगोंके संघ कायम हुए हैं। कदाचित् उनका जिक्र करना भी हमारे लिए व्यर्थ है। यह तो भाग्यकी एक विचित्र विडम्बना है कि जब डचेतर गोरोंका प्रसिद्ध प्रार्थनापत्र इंग्लैंडकी सरकारको भेजा गया था तब बोअर कुशासनके विरोधमें हम भाई-भाईकी हैसियतसे शामिल होनेके लिए आमन्त्रित किये गये थे और हमसे कहा गया था कि सम्राट्का शासन स्थापित होनेपर हमारी निर्योग्यताओंका निवारण हो जायेगा। अब ये सज्जन प्रस्ताव पास करके साम्राज्य-सरकारसे माँग कर रहे हैं कि वे ही निर्योग्यताएँ कायम रखी जायें।

यदि ऑरेंज रिवर उपनिवेशमें भारतीय-विरोधी विधानका उल्लेख करनेकी अनुमति हो तो हम उसे नीचे संक्षेपमें देना चाहेंगे।

१८९० का अध्याय ३३ प्रत्येक एशियाईको रोकता है :

(१) अध्यक्षकी आज्ञाके बिना राज्यमें २ महीनेसे अधिक रहनेसे;

(२) अचल सम्पत्तिका स्वामित्व ग्रहण करने से;

(३) व्यापार या खेती करनेसे। और जब उपर्युक्त प्रतिबन्धोंके अधीन अनुमति दे दी गई हो तब अध्याय १० के अन्तर्गत १० शिलिंग वार्षिक व्यक्ति-कर लगता है।

१. देखिए पादटिप्पणी २, पृष्ठ २९४।

वहाँ आबाद बहुतसे भारतीय व्यापारियोंमें से तीन अन्त समयतक अपने अस्तित्वके लिए संघर्ष करते रहे। भूतपूर्व सरकार द्वारा वे, उपर्युक्त अध्यादेशके अनुसार, देशसे निकाल दिये गये और उन्हें नौ हजार पौंडसे अधिककी क्षति हुई।

इन सब कठिनाइयोंमें हमें इस बातसे सान्त्वना मिलती रही है कि इनकी ओर आपका और परमश्रेष्ठ उच्चायुक्तका सूक्ष्म और सहानुभूतिपूर्ण ध्यान गया है।

अखबारी खबरोंके अनुसार, विराट् दिल्ली दरबारमें महामहिम सम्राट्ने भारतनिवासियोंको सन्देश देते हुए अपना यह आश्वासन फिर दुहराया है कि वे भारतीयोंकी स्वतन्त्रता, अधिकारों और भलाईका खयाल रखेंगे।

और अब, महानुभाव, चूँकि आप नये उपनिवेशोंमें, अन्य बातोंके साथ-साथ, भारतीय प्रश्नका भी अध्ययन करनेके लिए पधारे है, क्या हम आशा करें कि निकट भविष्यमें वह अनुग्रहपूर्ण आश्वासन हमारे लिए अन्य ब्रिटिश प्रजाजनोंके साथ-साथ स्वतंत्रताके कानूनमें परिणत किया जायेगा, जिससे हम उपर्युक्त प्रतिबन्धों और तिरस्कारोंके लक्ष्य बने बिना नये उपनिवेशोमें अपनी जीविका अर्जित कर सकें?

आपके अत्यन्त आज्ञाकारी और
विनम्र सेवक,

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल ऑफ़िस रेकर्ड्स : पिटिशन्स ऐंड मेमोरियल्स १९०३, सी० ओ० ५२९, जिल्द १।

## २१३. प्रार्थनापत्र : लॉर्ड कर्ज़नको

डर्बन, नेटाल
जनवरी [?], १९०३[1]

सेवामें
परमश्रेष्ठ परम माननीय केडल्स्टनके लॉर्ड कर्ज़न, पी० सी०,
जी० एम० एस० आई०, जी० एम० आई० ई०, इत्यादि
वाइसराय तथा गवर्नर-जनरल, भारत, कलकत्ता

नेटाल उपनिवेशवासी ब्रिटिश भारतीय समाजके निम्न हस्ताक्षरकर्ता
प्रतिनिधियोंका नम्र प्रार्थनापत्र

सादर निवेदन है कि,

प्रार्थी परमश्रेष्ठकी सेवामें उस आयोगके विषयमें निवेदन करना चाहते हैं, जो भारत-सरकारको इस बातके लिए रजामन्द करनेके उद्देश्यसे अभी नेटालसे रवाना हुआ है कि, जो गिरमिटिया भारतीय नेटाल आते हैं उनका गिरमिट पूरा होनेपर वह उनको अनिवार्य रूपसे भारत लौटानेकी मंजूरी दे दे।

प्रार्थी परमश्रेष्ठका ध्यान इस तथ्यकी ओर आकृष्ट करते है कि १८९४ में नेटाल-सरकारने दो सज्जनोंको प्रतिनिधि बनाकर इसी उद्देश्यसे भारत-सरकारके साथ बातचीत करनेके लिए भेजा

१. मूल प्रतिमें तारीख नहीं दी गई।

था। उन्होंने आपके पूर्वाधिकारीको, उनकी इच्छाके बहुत-कुछ विपरीत, गिरमिटिया भारतीयोंके गिरमिटोंमें एक शर्त जोड़नेके लिए राजी कर लिया था। उन शर्तके अनुसार गिरमिटिया भारतीय इस बातके लिए पाबन्द हो जाते हैं कि वे जबतक उपनिवेशमें रहें तबतक या तो गिरमिटोंमें बँध कर मजदूरी करते रहें, या भारत लौट जायें, या प्रतिवर्ष ३ पौंड व्यक्ति-कर दें।

उक्त आयोगके सदस्योंने नेटाल लौटकर यह सूचना दी थी कि यद्यपि भारत-सरकारने गिरमिटियोंकी अनिवार्य वापसीकी शर्त नहीं मानी है, फिर भी हमारा उद्देश्य सफल समझा जा सकता है, "क्योंकि जिन देशोंको कुली जाते हैं उनके बार-बार भारत-सरकारसे अनुरोध करनेपर भी उनमें से किसीको दुबारा गिरमिट लिखानेकी अनुमति नहीं मिली; और न किसी मामलेमें गिरमिटकी समाप्तिपर अनिवार्य वापसीकी शर्त ही मंजूर की गई है।"

इसलिए, यह देखते हुए कि १८९४ में भारत-सरकार जिस हदतक गई थी, वहाँतक बहुत अनिच्छासे गई थी, प्रार्थियोंको पूरा विश्वास है कि परमश्रेष्ठ उस आयोगकी बातपर ध्यान न देंगे जो इस वर्ष भारत आ रहा है।

फिर भी, प्रार्थी आपके सामने संक्षेपमें नेटालकी परिस्थितिका विवेचन करना चाहेंगे और यह विचार भी करेंगे कि यह आयोग आपकी सेवामें जो उग्र प्रस्ताव पेश करनेवाला है, उनके परिणाम क्या हो सकते हैं।

भारतीय प्रवासी-संरक्षकके पिछले प्रतिवेदनमें इस तथ्यपर खास जोर दिया गया है कि भारतीय मजदूरोंकी माँग दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।

बताया गया है कि, नेटाली किसान-सभा (फार्मर्स असोसिएशन) के अध्यक्ष श्री टी० एल० हिस्लॉपने गत वर्ष अपने वार्षिक अभिभाषणमें कहा था :

> उपनिवेशमें भारतीयोंके प्रवेशके विरुद्ध कभी-कभी हमें बड़ा शोर-गुल सुनाई देता है। किन्तु हम यह तथ्य पूरी तरह ध्यानमें रखें कि, हम कुलियोंके बिना काम चलाना कितना ही पसन्द क्यों न करें, उपनिवेशमें उनके आगमनको रोकनेके प्रयत्नका परिणाम होगा देशके उद्योगोंका विनाश। अजान लोग बड़ी-बड़ी बातें बनाते हैं कि हमें भारतीयोंके साथ यह करना चाहिए और वह करना चाहिए, परन्तु इस सचाईकी ओरसे आँखें मींचनेमें कोई फायदा नहीं कि इस मामलेमें हम बहुत ज्यादा भारत-सरकारके अधीन हैं। मेरा खयाल है, यह एक सचाई है कि इस देशमें हालमें बने कानूनोंसे और, उनसे भी बढ़कर, हमारे कुछ विधान-निर्माताओंके अविचारपूर्ण भाषणोंसे भारतमें बहुत असन्तोष फैल गया है। इसलिए इस समय और अधिक रियायतोंकी प्रार्थना व्यर्थ है। मुझे पता लगा है कि भारत-सरकारके सामने इस प्रस्तावके सुने जानेकी कोई गुंजाइश नहीं है कि गिरमिटिया भारतीयोंको अपने गिरमिटोंकी अवधि भारत लौट कर समाप्त करने दी जाये।

नेटाल मर्क्युरीने श्री हिस्लॉपके भाषणपर टिप्पणी करते हुए एक अग्रलेखमें लिखा है :

> भारत-सरकारको हमारी सुविधाओंकी अपेक्षा उन लोगोंकी सुख-सुविधाका विचार अधिक करना है जिनकी वह संरक्षक है; और यदि हमारी संसद भोंड़े कानून मंजूर करती है और उसके सदस्य अविचारपूर्ण भाषण देते हैं, तो हमें भारतसे आवश्यक मजदूर प्राप्त करनेमें संभवतः भारी रुकावटोंका सामना करना पड़ेगा।

किसी समय केवल गन्ना-उत्पादक ही भारतीय मजदूरोंका बहुत उपयोग करते थे, किन्तु अब तो देशके भीतरी भागके किसानोंको भी उनकी सेवाओंकी उतनी ही आवश्यकता है; और केवल किसानोंके लिए ही नहीं, बल्कि खान-मालिकों, ठेकेदारों, कारखानेदारों और व्यापारियोंके लिए भी वे आवश्यक हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि नेटाली लोकमतके अधिक विचारवान् नेता इस प्रस्तावका अनौचित्य भली प्रकार समझते हैं और यह आशा नहीं करते कि भारत-सरकार इसे स्वीकार कर लेगी। किन्तु यदि यह अन्यथा हो, तो भी प्रार्थियोंकी विनम्र सम्मतिमें इस प्रश्नपर भारतीय दृष्टिकोणके सम्बन्धमें दो मत नहीं हो सकते। यदि भारतीय मजदूर भारत लौटनेके लिए विवश किया गया तो भारतमें ही प्रवास-कानूनके निर्माणका उद्देश्य नष्ट हो जायेगा। यह भारतीय प्रवासियोंके संरक्षण और लाभकी दृष्टिसे बनाया गया था, उपनिवेशोंके लाभके लिए नहीं। प्रार्थियोंकी विनम्र सम्मतिमें नेटाल अब भी अत्यन्त अनुकूल शर्तोंका उपभोग कर रहा है। इस साझेदारीमें उसे पहलेसे ही सिंहभाग प्राप्त है। किन्तु वह अब उससे भी कई कदम आगे बढ़ना चाहता है। उसकी महत्त्वाकांक्षाका चरम लक्ष्य तो यह है कि "कुली उपनिवेशमें या तो गुलाम बनकर रहें या, वे स्वतंत्र रहना चाहते हों तो, भारत लौट जायें।" भारत लौटनेपर उन्हें, नेटालके एक विधानमंडल-सदस्य स्वर्गीय श्री सांडर्सके शब्दोंमें, "भुखमरीका सामना करना पड़ सकता है"— इसपर विचार करना उपनिवेशके लिए जरूरी नहीं है।

अनिवार्य वापसीके समर्थनमें मुख्य दलील यह दी जाती है कि जिन शर्तोंको पूरा करनेका इकरार कोई आदमी स्वेच्छासे करता है उनमें कठिनाईका कोई प्रश्न नहीं उठना चाहिए। परन्तु नेटाल-सरकार द्वारा नियुक्त एक आयोगके सामने गवाही देते हुए, नेटालके एक-कालीन प्रधानमंत्री परम माननीय स्वर्गीय श्री हैरी एस्कम्बने कहा था :

> एक आदमी यहाँ लाया जाता है। सिद्धान्ततः रजामन्दीसे, व्यवहारतः बहुधा बिना रजामंदीके लाया जाता है। वह अपने जीवनके सर्वश्रेष्ठ ५ वर्ष दे देता है। नये सम्बन्ध स्थापित करता है। शायद पुराने सम्बन्धोंको भुला देता है। ऐसी हालतमें, मेरे न्याय और अन्यायके विचारसे, उसे वापस नहीं भेजा जा सकता।

इस दलीलका उत्तर स्वयं भारत-सरकारने ही दे दिया है। उसने नियम बना दिया है कि ये लोग, सरकारी निगरानीमें ही, देशसे बाहर जा सकते हैं। अन्यथा इनका प्रवास निषिद्ध है। इसका अर्थ यह है कि इनकी दशा अभी उन छोटे बालकों जैसी है जो अपना भला-बुरा आप नहीं समझ सकते।

प्रार्थी परमश्रेष्ठका ध्यान सादर उस प्रार्थनापत्रकी ओर दिलाना चाहते हैं जो इस प्रार्थना-पत्रमें निर्दिष्ट ३ पौंडके व्यक्ति-कर[1] के विषयमें, आपके पूर्वाधिकारीको भेजा गया था, और जिसमें यह दिखलानेके लिए साक्षियाँ संगृहीत थीं कि किस प्रकार १८८७ में नेटाल-सरकारके एक आयोग द्वारा इस प्रश्नपर पूरा-पूरा विचार किया जा चुका है और किस प्रकार उसने गिर-मिटियोंकी अनिवार्य वापसीके विरुद्ध सिफारिश की थी। नेटालमें भी प्रत्येकका मत इसके विरुद्ध था। इसलिए प्रार्थियोंको भरोसा है कि परमश्रेष्ठ नेटालके एक-पक्षीय लाभके लिए भारतीय मजदूरोंका शोषण नहीं होने देंगे।

इस कारण प्रार्थियोंकी नम्र प्रार्थना है कि यदि यह उपनिवेश गिरमिटिया भारतीयोंको ब्रिटिश नागरिकताके प्रारम्भिक अधिकार, अर्थात्, उपनिवेशमें बसनेकी स्वतंत्रता भी देनेको तैयार

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ २२३।

न हो तो परमश्रेष्ठ इस उपनिवेशको यह सलाह देनेकी कृपा करें कि वह भारतीय मजदूरोंको अपने यहाँ बुलाना बन्द कर दे।

और इस न्याय और दयाके कार्यके लिए प्रार्थी अपना कर्तव्य समझकर सदा दुआ करेंगे, आदि-आदि।

छपी हुई मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ४०३१) से।

## २१४. पत्र : दादाभाई नौरोजीको[1]

१४, मर्क्युरी लेन
डर्बन
जनवरी ३०, १९०३

[माननीय दादाभाई नौरोजी
लन्दन]

[महोदय,]

श्री चेम्बरलेनसे नेटालमें भारतीयोंके दो प्रतिनिधि-मण्डल मिले थे — एक डर्बनमें और दूसरा मैरित्सबर्गमें। निम्नलिखित विवरण[2] उन्हें डर्बनके प्रतिनिधि-मण्डलने दिया था, जिसपर टीका-टिप्पणी करनेकी आवश्यकता नही है।

परम माननीय महोदयका खयाल है कि जिन कानूनोंपर यहाँ पहलेसे अमल हो रहा है उनके विषयमें वे कुछ नही कर सकते, क्योंकि इस उपनिवेशमें "उत्तरदायित्वपूर्ण" (?) शासन स्थापित है। यह उत्तर कुछ अंशोंमें यथार्थ है। उन्होंने यह भी कहा था कि गिरमिटिया भारतीयोंके बच्चोंपर ३ पौंड व्यक्ति-कर लगानेका जो विधेयक हालमें पास किया गया है उसके सम्बन्धमें वे भारत-कार्यालय (इंडिया-आफिस) की सलाहके अनुसार चलेंगे। शिष्ट-मंडलके साथ भेंटके समय, आपसे लॉर्ड जॉर्ज हैमिल्टनने जो कुछ कहा था उससे आशा होती है कि यह विधेयक अस्वीकृत कर दिया जायेगा। वे उपनिवेशियोंके इस भयसे सहमत जान पड़ते हैं कि यदि स्वतन्त्र भारतीयोंका यहाँ आगमन नियन्त्रित न किया गया और गिरमिटिया भारतीयोंको उनका गिरमिट पूरा हो जानेपर भारत वापस न भेजा गया तो यह उपमहाद्वीप भारतीय लोगोंसे पट जायेगा। एक प्रकारसे वे उपनिवेशियोंके रुखका समर्थन करते प्रतीत होते थे। जब उन्होंने शिष्ट-मण्डलके सामने भाषण दिया तब मैं भी मौजूद था। मेरा विचार था कि मैरित्सबर्गमें शिष्ट-मण्डलसे भेंटके समय उनके दो-एक भ्रमोंका निवारण कर दूँ, परन्तु मुझसे कहा गया कि मैं किसी भी मामलेपर बहस न करूँ। इसलिए डर्बनमें उनसे जो निवेदन किया गया था मैंने उसका ही समर्थन कर दिया, और श्री चेम्बरलेनने भी वही दुहरा दिया जो उन्होंने वहाँ कहा था।

हालमें नेटाल-सरकारने एक आयोग इसलिए भारत भेजा है कि वह गिरमिटोंकी समाप्ति भारतमें ही की जानेकी व्यवस्था करा ले, जिससे कि गिरमिटिया भारतीयोंको नेटालमें बसनेका मौका ही न मिले। यदि यह बात लॉर्ड कर्जनने मान ली तो निस्सन्देह अन्यायकी पराकाष्ठा हो जायेगी। इसका उदाहरण अबसे पहले कोई नहीं मिलता, और यह कुछ वर्षकी विशुद्ध दासता

१. यह पत्र दादाभाई नौरोजीके नाम लिखा गया था।
२. "प्रार्थनापत्र : चेम्बरलेनको," दिसम्बर २७, १९०२।

होगी। श्री चेम्बरलेन द्वारा साम्राज्य-भक्तिका उपदेश दिया जानेके पश्चात् भी, नेटाल इकरारनामेके उचित सिद्धान्तोंकी सर्वथा उपेक्षा करके एकमात्र अपने लाभके लिए भारतीय मजदूरोंके शोषणका यत्न करेगा, यह बात हमारी समझ-शक्तिसे परे है और इससे प्रकट होता है कि इस उपनिवेशकी ब्रिटिश भारतीय-विरोधी वृत्ति तनिक भी परिवर्तित नहीं हुई है। इसका समर्थन इस तथ्यसे भी होता है कि मैरित्सबर्गकी नगर-परिषद भारतीयोंको भूमिका स्वामित्व प्राप्त करनेके अधिकारसे वंचित करनेका प्रयत्न कर रही है। इस समस्याका सरल और कारगर हल यह है कि गिरमिटिया भारतीयोंका नेटाल आना रोक दिया जाये — जैसा लॉर्ड जॉर्ज हैमिल्टनने भी सुझाया है।

आपका सच्चा,

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ४०३५) से।

## २१५. पत्र: छगनलाल गांधीको

जोहानिसबर्ग
गुरुवार, फरवरी ५, १९०३

चिरंजीव छगनलाल,

यद्यपि मैं ऊपरके ठिकानेपर हूँ, फिर भी पत्र तो डर्बनके पतेपर ही लिखना।

तुम्हारा लम्बा पत्र मिला। चिरंजीव मगनलाल[1] तथा चिरंजीव आनन्दलाल[2]ने दूकान[3] खोली है। इसलिए मुझे ऐसा नहीं लगता कि अब वह[4] यहाँ आयेगा। मैंने उसे लिखा है कि उसकी मरजी हो, तो आये। नौकरीका योग ठीक है। अगर मेरा यहाँ रहना हो गया, तो ठीक नौकरी मिल सकेगी। फिर भी यह बात मैंने उसकी मरजीपर छोड़ी है। उसे जहाज पर हलका बुखार था, किन्तु उसमें तुम्हें खबर देने जैसी कोई बात नहीं थी।

मेरे बारेमें बहुत-कुछ अनिश्चित है। यद्यपि कोशिश बहुत करता हूँ, तो भी तुम्हें अधिक सन्तोषजनक खबर नहीं दे पाता। यदि यहाँ रहना नहीं हुआ तो मैं, सम्भव है, मार्चमें यहाँसे निकलूँ। यदि रहना निश्चित हुआ तो तुम सबको ६ महीने बाद बुलाना सम्भव हो जायेगा। तुरन्त बुलवानेकी सम्भावना नही है। फिर भी यदि उससे कर्तव्यमें कोई कसर पड़ती नहीं दिखी, तो मैं भरसक घर वापस आनेकी कोशिश करूँगा। यहाँ कोई फूलोंकी सेज नहीं है। अभी इससे अधिक निश्चित समाचार नहीं दे सकता। यदि मैं आया तो तार दूँगा। यदि मेरा रुकना निश्चित हुआ तो भी तुम सबके सन्तोषके लिए तार दे दूँगा।

चिरंजीव मणिलालकी फीसकी चिन्ता नहीं, उसे तारका बाजा सीखनेके लिए भेजना ही चाहिए। उसे वहाँ भेजना बन्द कर दिया, यह ठीक नहीं हुआ। किन्तु इसमें दोष तुम्हारा नहीं, तुम्हारी काकीका है।

रा. रा. नरभेरामके पाससे पुस्तकें मिली होंगी।

१. छगनलाल गांधीके भाई।
२. गांधीजीके भतीजे।
३. यह दूकान टोंगाटमें खोली थी।
४. मगनलाल गांधी।

श्री दफ्तरी[1]को प्रणाम पहुँचाना और उनसे पत्र लिखनेको कहना। मुझे समय मिलेगा, तब मैं उन्हें अलग पत्र लिखूंगा।

रु० ०–८–० भेजा, वह व्यवहार था। मगर अब तो वह मामला खत्म हो चुका है।

मोहनदासके आशीर्वाद

पुनश्च : जगह छोड़नेकी जल्दी करना जरूरी नहीं है।[2]

गांधीजीके हस्ताक्षरोंमें मूल गुजराती प्रति (सी० डब्ल्यू० २९३८) से।

## २१६. पत्र : उपनिवेश-सचिवको

पोस्ट बॉक्स नं० २९९
जोहानिसबर्ग
फरवरी १८, १९०३

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
प्रिटोरिया

महोदय,

उपनिवेशके मुख्य शहरोंमें *बाजार*-प्रणाली स्थापित करनेके प्रस्तावके विषयमें परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नर[3] तथा आपने भारतीय मत जाननेकी इच्छा प्रकट की थी। उसके अनुसार मैं आपके सामने भारतीयोंका मत पेश कर रहा हूँ।

मेरे नम्र विचारसे भारतीय समाजको इस प्रकारकी व्यवस्था इन शर्तोंपर स्वीकार होगी :

(१) *बाजार* (एक या अनेक) शहरकी सीमाके अन्तर्गत ऐसे व्यापारिक क्षेत्रमें स्थित हों जहाँ साधारणतः सभी वर्गोंके लोग — यूरोपीय भी — प्रायः आते जाते हों।

(२) भारतीय समाजपर *बाजार*में रहने या व्यापार करनेकी कोई कानूनी बाध्यता नहीं होनी चाहिए।

(३) शहरोंमें इस समय जो भारतीय व्यापारी और व्यवसायी रहते या व्यापार करते हैं और जो युद्धसे पूर्व उपनिवेशके किसी कस्बेकी सीमाओंमें व्यापार करते या रहते थे, उनसे इन *बाजारों*में किसी भी अवस्थामें रहने या व्यापार करनेकी आशा न की जानी चाहिए।

(४) सरकार द्वारा निश्चित भवन-निर्माण और स्वच्छता संबंधी नियम स्वीकार कर लेनेपर, भारतीय समाजको ऐसे किसी भी *बाजार*में गुमटी लेनेकी इजाजत मिल सकनी चाहिए।

यदि उक्त सिद्धान्तके आधारपर *बाजार* स्थापित किये जायें, तो भारतीय समाज इन संस्थानोंको सफल बनानेमें सरकारसे सादर सहयोग करेगा।

१. बम्बईमें गांधीजीके साथ काम करनेवाले एक वकील।
२. वकालतके लिए बम्बईमें जो जगह गांधीजीने किरायेपर ले रखी थी।
३. गांधीजी लेफ्टिनेंट गवर्नरसे मिले थे।

स्वाभाविक है कि इन बाजारोंमें जो मकान बनेंगे वे सस्ते और आरामदेह होंगे। परम-श्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नर महोदयने जिन भारतीयोंको बे-घरबारका कहा है वे खुशीसे इन मकानोंका फ़ायदा उठायेंगे।

इस सम्बन्धमें और जानकारी अथवा मेरी उपस्थितिकी जरूरत होनेपर मैं जानकारी भेजूँगा या हाजिर होऊँगा।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

प्रिटोरिया आर्काइव्ज, फाइल एल–टी० जी० ९४।

## २१७. भारतीय प्रश्न[1]

पोस्ट बॉक्स नं० २९९
जोहानिसबर्ग
फरवरी २३, १९०३

### ट्रान्सवाल और ऑरेंज रिवर उपनिवेशके भारतीयोंके मसलेसे सम्बन्धित लघु वक्तव्य

श्री चेम्बरलेन कदाचित् इस हफ्तेमें इंग्लैंडको रवाना हो जायेंगे, मगर भारतीयोंकी स्थिति अभीतक जैसीकी तैसी है।

परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नर, ट्रान्सवालकी सेवामें एक छोटा-सा शिष्ट-मण्डल उपस्थित हुआ था।[2] परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेन्ट गवर्नरने उससे कहा था कि जब परिवर्धित विधान-परिषदका गठन होगा, तब सारे प्रश्नपर पूरा-पूरा विचार किया जायेगा। उनका व्यवहार बहुत शिष्ट था।

श्री चेम्बरलेनने एक भारतीय-विरोधी शिष्ट-मण्डलसे कहा बताते हैं कि यह ऐसा प्रश्न है जिसको अन्तिम निर्णयसे पूर्व ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलके सम्मुख पेश करना होगा। परमश्रेष्ठके उपर्युक्त उत्तर और इस उत्तरको एक साथ रख कर देखनेसे यह अन्दाज लगता है कि श्री चेम्बरलेन इंग्लैंडकी सरकारसे सलाह-मशविरा करनेके बाद कोई विधान-योजना बनायेंगे और वह विधानसभामें पेश की जायेगी। यदि यह विधान भारतीयोंके हितोंके विरुद्ध भी हुआ, तो पास होनेके बाद उसके विरुद्ध कोई सुनवाई लगभग असम्भव होगी। इसलिए नये उपनिवेशोंके लिए प्रस्तावित विधानसे सम्बन्धित समस्त प्रयत्नोंके एकीकरणकी अत्यन्त आवश्यकता है।

भारतीय-विरोधी विधानका स्वरूप श्री चेम्बरलेनके सामने रखे गये वक्तव्य[3]से, जिसकी नकलें इंग्लैंडके मित्रोंको भेजी जा चुकी हैं, स्पष्ट हो जाता है।

एक जिम्मेदार सूत्रसे सूचना मिली है कि चूँकि, सरकार उपनिवेशियोंको खुश करनेके लिए जरूरतसे ज्यादा फिक्रमन्द है, अतः वह भारतीय हितोंकी उपेक्षा कर देगी और ऐसा विधान पेश करेगी जो केप, नेटाल और ट्रान्सवालकी योजनाओंके कान काटेगा।

१. यह वक्तव्य दादाभाई नौरोजीको भेजा गया था। इसे उन्होंने भारत-मन्त्रीको भेज दिया था। इसकी एक प्रति सर विलियम वेडरबर्नको भेजी गई थी, जिन्होंने उसे भारतके वाइसरायके पास भेज दिया था।

२. देखिए "पत्र: उपनिवेश सचिवको," फरवरी १८, १९०३।

३. देखिए "अभिनन्दनपत्र: चेम्बरलेनको" जनवरी ७, १९०३।

उतने ही जिम्मेदार एक दूसरे सूत्रसे खबर मिली है कि यह विधान नेटालके एशियाई-विरोधी विधानके आधारपर बनाया जायेगा।

श्री चेम्बरलेनने भारतीय शिष्ट-मण्डलसे ऐसा कुछ कहा था: "यदि मैं आज ऐसा विधान पास कर दूँ, जो दो या तीन सालमें उत्तरदायी शासन देनेके बाद रद हो जायेगा, तो उससे क्या लाभ होगा? इसलिए आप लोगोंको जनमतसे समझौता करके और ट्रान्सवालके अधिकारियोंके साथ मिलकर काम करनेका प्रयत्न करना चाहिए।" भारतीय-विरोधी शिष्ट-मण्डलसे उन्होंने कहा बताते हैं: "भारतीय हमारे सहप्रजाजन हैं और न्यायोचित तथा सम्मानपूर्ण व्यवहारके अधिकारी हैं। साथ ही भारतसे लाखों भारतीयोंके अबाध प्रवासके विरुद्ध आपत्तिमें आपके साथ मेरी सहानुभूति है। ये प्रवासी भारतीय सुगमतासे आपके ऊपर छा सकते हैं, इसलिए मैं आइंदा बेजा संख्यामें भारतीयोंके प्रवासपर रोक लगानेकी सिफारिश करूँगा। किन्तु जो लोग उपनिवेशमें बस चुके हैं, मैं उनपर किसी तरहकी कानूनी निर्योग्यताएँ लगानेकी जिम्मेवारी नहीं ले सकता।"

श्री चेम्बरलेनने भारतीय-विरोधी शिष्ट-मण्डलसे यदि ऐसा कहा है तो यह बहुत सन्तोषकी बात है।

भारतीय उपनिवेशको पाट नहीं सकते। वे इतनी बड़ी संख्यामें यहाँ नहीं आयेंगे। ट्रान्सवालमें १२,००० से अधिक भारतीय नहीं, जबकि अकेले जोहानिसबर्गमें यूरोपीयोंकी संख्या एक लाख है। किन्तु फिर भी यदि सरकारको भारतीयोंके मनमानी संख्यामें उपनिवेशोंमें आ बसनेका भय है और वह अपने इस भयको कानूनी मान्यता देना चाहती है तो, अगर हमारी सुनी जाये, हम अधिकसे-अधिक इस बातपर राजी हो सकते हैं कि विधान, कुछ संशोधनोंके साथ, नेटालके आधारपर बनाया जाये।

नेटालका कानून सामान्य स्वरूपका है, जो सबपर लागू होता है। उसके अनुसार उपनिवेशमें ऐसा कोई नया व्यक्ति आकर नहीं बस सकता जो उपनिवेशमें बसे हुए किसी व्यक्तिकी पत्नी या नाबालिग बच्चा न हो, अथवा जिसे एक-न-एक यूरोपीय भाषा न आती हो।

यदि 'यूरोपीय भाषा' के स्थानपर 'साम्राज्यमें प्रयुक्त या बोली जानेवाली कोई भी भाषा' कर दिया जाये, तो इसमें सम्भ्रान्त व्यापारियों आदिके लिए स्थान खुला रहेगा और साथ ही लाखों अपढ़ लोगोंके प्रवेशपर पाबन्दी भी लग जायेगी। एक उपनियम ऐसा भी जोड़ा जाना चाहिए कि यहाँ आबाद समाजके हितकी दृष्टिसे वैध रूपसे आवश्यक घरेलू नौकरों और रसोइयों आदिको विशेष अनुमति दे दी जायेगी — भले ही वे अपढ़ हों, किन्तु पुराने बसे लोगोंके लिए नितान्त आवश्यक हों। इसके अतिरिक्त, जो दक्षिण आफ्रिकामें बस चुके हैं उनपर इन कानूनोंका कोई असर न पड़ना चाहिए।

मुझे यह बात दुहरानेकी जरूरत नहीं कि हम विगत गण-राज्योंसे प्राप्त निकम्मे भारतीय-विरोधी विधानके खिलाफ लड़ रहे हैं, उसके अमलके खिलाफ नहीं। इसलिए मैं अपने इस वक्तव्यको रोजमर्राके अन्यायोंके असंख्य उदाहरण देकर विस्तार न दूँगा। इन अन्यायोंका निवारण कराना तो वृक्षकी शाखाओंको छाँटनेके समान होगा। इसलिए हम माँग करते हैं कि वृक्षको ही जड़मूलसे उखाड़ फेंका जाये; क्योंकि जो कानून स्वतः बुरे हैं उन्हें कड़ाईसे अमलमें न लानेके सम्बन्धमें इंग्लैंडसे प्रेषित सान्त्वनाओंसे क्या लाभ?

मैं आशा करता हूँ लॉर्ड जॉर्ज द्वारा शिष्ट-मण्डलको बताये गये बस्तियोंके सिद्धान्त स्वीकार न किये जायेंगे। केपटाउन और नेटालके स्वशासित उपनिवेशोंमें भी उनपर अमल नहीं होता है, तब क्या वे ट्रान्सवाल और ऑरेंज रिवरके इंग्लैंडकी सरकार द्वारा शासित उपनिवेशोंमें लागू किये जा सकते हैं?

मैं आशा करता हूँ कि जो संयुक्त समिति[1] लॉर्ड जॉर्जसे मिली थी वह इतना पूछनेकी कोशिश करेगी कि पुराने कानूनको रद करनेका कानून कब और किस आधारपर बनाया जायेगा। यह काम जल्दी कर लेना आवश्यक है। भारतीय मामलोंकी व्यवस्थासे सम्बन्धित कुछ अधिकारियोंका रुख बहुत ही असहानुभूतिपूर्ण है; इसलिए उनके रहते भारतीयोंको बहुत बड़ी कठिनाइयोंमें होकर गुजरना पड़ेगा। अगर इसमें देर लगेगी तो शायद कुछ खास तौरसे कठिन मामलोंकी ओर हमें मित्रोंका ध्यान अवश्य खींचना पड़ेगा। अभी हम यहाँ ही न्याय प्राप्त करनेका प्रयत्न कर रहे हैं।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडिया आफिस: ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स, ४०२।

## २१८. पत्र: गो० कृ० गोखलेको

बॉक्स २९९
जोहानिसबर्ग
फरवरी २३, १९०३

प्रिय प्रोफेसर गोखले,

इस देशमें घटनाएँ बड़ी तेजीसे घट रही हैं और स्वाभाविक है कि मैं घमासानके बीचमें हूँ। संघर्ष मेरी अपेक्षासे बहुत अधिक जोरदार है।

इसके साथ प्रिटोरियामें श्री चेम्बरलेनके सामने पेश किया गया वक्तव्य[2] भेज रहा हूँ, और आजतककी स्थितिके लंदन भेजे गये वक्तव्य[3]की नकल भी। यहाँ दबी-छुपी कार्रवाइयाँ बहुत हो रही हैं। पुराने कायदे सख्तीसे लागू किये जा रहे हैं, जिसका शायद यह मतलब है कि मुझे यहाँ मार्चके बाद भी रुकना पड़ेगा।

श्री चे०[4] से जो शिष्ट-मण्डल मिलनेवाला था, बड़े मौकेपर मैं उसमें जा मिला। आशा है कि आपको शि० मं०[5] के वक्तव्य[6] की नकलें मिल चुकी होंगी।

आप वहाँ भरसक कोशिश करेंगे — मैं ऐसी उम्मीद करता हूँ। पत्रोंमें लगातार और समझके साथ इसपर चर्चा होती रहे तो लाभ होगा। आशा है आप अच्छे हैं।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ४१००) से।

१. ईस्ट इंडिया असोसिएशन और ब्रिटिश समितिने यह संयुक्त समिति दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंसे सम्बन्धित मामलोंपर कार्रवाईके लिए बनाई थी।

२. "अभिनन्दन-पत्र: चेम्बरलेनको," जनवरी ७, १९०३।

३. "भारतीय प्रश्न," फरवरी २३, १९०३।

४. चेम्बरलेन।

५. शिष्ट-मण्डल।

६. "प्रार्थना-पत्र: चेम्बरलेनको," दिसम्बर २७, १९०२।

# २१९. नये उपनिवेशोंमें भारतीयोंकी स्थिति[1]

जोहानिसबर्ग
मार्च १६, १९०३

## नये उपनिवेशोंमें भारतीयोंकी स्थितिसे सम्बन्धित लघु वक्तव्य

जो घटनाएँ आजकल प्रतिदिन घट रही हैं उनसे दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंमें भयका संचार होता जा रहा है।

### *ट्रान्सवाल*

कुछ पता नहीं कि ट्रान्सवालके वर्तमान भारतीय-विरोधी कानूनोंमें परिवर्तनका जो वादा किया गया है वह कब पूरा किया जायेगा।

इस बीच यहाँ निम्न घटनाएँ घटित हो चुकी हैं:

हुसेन अमद दस वर्षसे वाकरस्ट्रूममें व्यापार करता था। उसकी दूकान जबरन बन्द कर दी गई और उसे व्यापारका परवाना देनेसे भी इनकार कर दिया गया। उस शहरमें एकमात्र भारतीय दूकान उसकी ही है। अब वह दो महीनेसे अधिक समयसे बन्द है।

सुलेमान इस्माइलको पिछले साल परवाना दिया गया था, परन्तु इस वर्ष उसे परवाना देनेसे इनकार कर दिया गया। उसकी दूकान[2] एक महीनेसे अधिक समयसे बन्द पड़ी है।

इन दोनोंकी दूकानोंमें बहुत माल भरा है। इनको पहले ही बहुत नुकसान हो चुका है, और यदि इन्हें अपनी दूकानें न खोलने दी गईं तो ये दोनों बरबाद हो जायेंगे।

एक दूकानका परवाना दूसरीके नाम और एक व्यक्तिका दूसरेके नाम करनेकी इजाजत देनेसे इनकार किया जा रहा है। एक भारतीय किसी किरायेके स्थानपर व्यापार करता है। मकान-मालिक उसे स्थान खाली करनेकी सूचना देता है। वह भारतीय अपनी दूकान किसी दूसरी जगह ले जाना चाहता है। परवाना-अधिकारी उसे ऐसा नहीं करने देता। अब दूकानदार या तो बस्तीमें जाये या दूकान बिलकुल बन्द कर दे। एक और भारतीय कारोबारसे निवृत्त होना चाहता है। उपनिवेशका एक पुराना निवासी उसका चलता कारोबार खरीद लेनेके लिए तैयार है। परन्तु परवाना-अधिकारी परवानेको उस खरीदारके नाम नहीं करता। इसलिए पहले मालिकके पास अपना माल नीलाममें बेच डालनेके अलावा कोई चारा नहीं रह जाता। इस सबका अर्थ यह है कि नये परवाने नहीं दिये जा रहे हैं।

एशियाई दफ्तर लोगोंके लिए एक आतंककी वस्तु बना हुआ है। इसका काम ही लोगोंको सतानेके नयेसे-नये ढंग निकालना है। जो लोग फिर लौटनेके विचारसे देशसे बाहर जाना चाहें उनके लिए भी परवाने लेना आवश्यक है और उन परवानोंपर उनके फोटो लगाये जाते हैं। इस प्रकार, भारतीयोंके साथ अपराधियोंका-सा व्यवहार किया जाता है।

१. यह निवेदन कुछ शब्दोंको परिवर्तित कर तथा कुछको छोड़कर १७-४-१९०३ के *इंडिया*में प्रकाशित हुआ था।

२. यह रस्टेनबर्गमें थी।

निःसन्देह, फोटो लगानेका प्रयोजन यह है कि परवानोंका प्रयोग कानूनके खिलाफ न किया जा सके। परन्तु परवानोंका धोखेसे प्रयोग करनेवाले कुछ लोगोंके कारण, सभी लोगोंको दाग लगाया जा रहा है। मुसलमानोंका धर्म उनको अपना फोटो खिंचवानेसे बिलकुल मना करता है; किन्तु यह नियम लागू करनेमें उनकी इस धार्मिक आपत्ति तकका कोई विचार नहीं किया गया।

ब्रिटिश भारतीय संघ (ब्रिटिश इंडियन असोसिएशन) के अध्यक्ष दक्षिण आफ्रिकाकी प्रधान भारतीय पेढ़ी एन० सी० कमरुद्दीन ऐंड कम्पनीके प्रबन्धकर्त्ता-साझेदार हैं। उनको पिछले सप्ताह जोहानिसबर्गमें पटरीसे नीचे उतर कर चलनेकी आज्ञा दी गई थी। वे अड़ गये और हटनेको तैयार नहीं हुए। परन्तु इसके कारण उनको बड़ा अपमान सहना पड़ा। अब यह मामला पुलिस कमिश्नरके सामने है। वास्तविकता यह है कि जबतक पटरीका उपनियम कानूनकी किताबमें लिखा रहेगा तबतक इस प्रकारकी घटनाएँ होती ही रहेंगी।

नेटालमें थोड़ा-सा प्लेग फैल गया है। अधिकारियोंने उसे ही वहाँसे भारतीय लोगोंका यहाँ आना रोकनेके लिए एक बहाना बना लिया है। इसका फल यह हुआ है कि जिन शरणार्थी भारतीयोंको यहाँ आकर अपना दावा साबित करना पड़ता है वे भी बाहर ही रह गये हैं, जबकि यूरोपीय और काफिर निर्बाध चले आ रहे हैं। ध्यान देनेकी बात यह है कि प्लेगका आक्रमण तो सभी वर्गोंपर हो रहा है।

उपर्युक्त तो भारतीय शिकायतोंकी लम्बी तालिकामें से चुनी हुई कुछ बातें हैं। ये सिर्फ भावनाकी बातें नहीं, सब सच्ची और प्रामाणिक हैं। ये जीवन-मरणके संघर्षको प्रकट करती हैं।

युद्धके समय जब हमने सब मतभेद भुलाकर स्वयंसेवकोंका आहत-सहायक दल बनाया था तब तो हम "आखिरकार साम्राज्यकी सन्तान ही" थे। युद्ध छेड़नेका एक कारण हमारी शिकायतें भी थीं और उन्होंने लॉर्ड लैन्सडाउनका खून खौला दिया था।

अब भावी प्रवासियोंका प्रश्न भी सामने नहीं है। प्रश्न तो उन निवासियोंका है जिनके विषयमें श्री चेम्बरलेनने भारतीय प्रतिनिधिमण्डलको विश्वास दिलाया था कि वे "न्यायोचित और सम्मानास्पद व्यवहारके अधिकारी हैं।"

हमें यह कहनेमें संकोच नहीं कि पुराने गणतन्त्री शासनके अधीन समाजके अधिकसे-अधिक अन्धकारमय दिनोंमें भी उसके साथ वह व्यवहार नहीं किया गया था जिसका सामना उसे अब करना पड़ रहा है। एक और बात यह है कि तब ब्रिटिश सरकार किसी भी गम्भीर अन्यायका प्रतिरोध करनेके लिए अमोघ ढालका काम दिया करती थी। परन्तु पहले जिधरसे हमारी रक्षा हुआ करती थी अब उधरसे ही आक्रमण होने लगे, तो हम उससे बचनेके लिए ढाल कहाँसे लायें?

## ऑरेंज रिवर उपनिवेश

ऑरेंज रिवर कालोनीमें पुराने कड़े कानूनोंपर अमल अब भी हो रहा है। उनमें ढील कोई नहीं हुई। सरकार अपवाद भी किसीके लिए नहीं कर रही, और यह बतलानेसे इनकार करती है कि इन कानूनोंका सुधार या अन्त कब किया जायेगा। इन कानूनोंके बननेसे पहले जो भारतीय वहाँ व्यापार किया करते थे उनको भी व्यापार नहीं करने दिया जा रहा है।

## केप कालोनी : ईस्ट लन्दन

यहाँ भारतीयोंकी संख्या थोड़ी ही है, इसलिए उन्होंने हमारे यहाँकी समितिसे सहायताकी प्रार्थना की है। १८९५ में ईस्ट लन्दनकी नगरपालिकाको जब काले लोगोंको पटरियोंपर

चलनेसे रोकनेके नियमोपनियम बनानेका अधिकार मिला तब वहाँ भारतीय बस्ती बहुत ही थोड़ी थी। इस कारण तब इस कानूनपर किसीका ध्यान नहीं गया। पिछले महीने, वहाँकी नगरपालिकाने उक्त अधिकारका प्रयोग करके एक उपनियम बना दिया, और अब वहाँके भारतीयोंको पटरियोंसे उतर कर चलनेके अपमानका सामना करना पड़ रहा है। जो लोग इस नगरमें ७५ पौंडतकके मूल्यकी भूमिके पंजीकृत (रजिस्टर्ड) मालिक हों, या उतनी भूमिपर काबिज हों, वे इस उपनियमके प्रभावसे मुक्त हैं। ज्यों ही भारतीयोंको इस नियमका पता लगा त्यों ही वे गवर्नरके पास दौड़े गये। परन्तु गवर्नरने जवाब दिया कि अब तो मौका हाथसे निकल चुका। अब वे क्या करें? उन्होंने गवर्नरकी सेवामें एक प्रार्थनापत्र फिर भेजा है और अपने मित्रोंको लन्दन तार दिया है। यह उपनियम बनानेका कारण काफिरोंका कथित या वास्तविक औद्धत्यपूर्ण और कभी-कभी अशिष्ट व्यवहार है। काफिरोंके विषयमें चाहे जो कुछ कहा जाये, भारतीयोंके विषयमें आजतक किसीने कानों-कान भी यह नहीं कहा कि वे शिष्टताके विपरीत व्यवहार करते हैं। जैसा कि संसारके इस भागमें प्रायः होता है, उन्हें जरा भी उचित कारणके बिना काफिरोंके साथ घसीट लिया गया है।

### *नेटाल*

नेटालमें गिरमिटिया भारतीयोंके बालकोंपर कर लगानेके विधेयकको, हमारी आशाओंके विपरीत, सम्राट्की स्वीकृति मिल गई दीखती है।

### *टिप्पणी*

जहाँतक ट्रान्सवालका सम्बन्ध है, यह कह देना अनुचित न होगा कि उपर्युक्त विभिन्न मामलोंमें भारतीय समाजने गवर्नरसे फरियाद की है। परमश्रेष्ठ अभी उसपर विचार कर रहे हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफ़िस : ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स, ४०२।

## २२०. पत्र : "वेजिटेरियन" को

बॉक्स २९९
जोहानिसबर्ग
[मार्च २१, १९०३ के बाद]

सेवामें
सम्पादक
*वेजिटेरियन*
[लंदन]

महोदय,

आपके पत्रलेखक "के" ने गत मासकी २१ तारीखके अंकमें जो जानकारी चाही है, उसके सम्बन्धमें निवेदन है कि शायद नीचे दी हुई सामग्री उनके काम आ जाये।

दक्षिण आफ्रिकामें मकईके आटेको छोड़कर, जो इसी देशकी पैदावार है, जीवनके लिए जरूरी हर चीज इंग्लैंडसे महँगी है। छड़े आदमीके मामूली ठीक रहन-सहनका मासिक खर्च कमसे-कम १५ पौंड आँका जा सकता है। एक आदमीके सोने लायक कमरेका माहवारी किराया आसानीसे ४ पौंड पड़ता है। साधारण अच्छे भोजनका माहवारी खर्च १२ पौंडसे कम नही होता।

नेटालमें एक दूकानदार कुछ विशेष शाकाहारी चीजें बाहरसे मँगा रखता है, किन्तु जहाँतक मुझे मालूम है ऑरेंज रिवर कालोनीमें वे चीजें कोई नहीं मँगाता। अगर आपके पत्र-लेखक ऐसी कुछ चीजें थोड़ी-बहुत मात्रामें अपने पास रख छोड़ें तो सुभीता होगा।

कूनेके सिद्धान्तोंके अनुसार कुशलतासे चलाया जानेवाला एक शाकाहारी भोजनालय जोहानिसबर्गमें है। मै यह भी कह दूँ कि चूँकि इस देशमें फलोंकी बहुतायत है, शाकाहारी भोजनके सम्बन्धमें यहाँ कोई कठिनाई नहीं है।

दक्षिण आफ्रिकामें रोजी-रोटीकी सम्भावनाओंके सम्बन्धमें आशावान होनेके खिलाफ आपके पत्रलेखकको चेतावनी दे देना फिजूल नही होगा। हर जगह मनुष्य-संख्याकी रेल-पेल बहुत है। बेकारोंकी संख्या बहुत बड़ी है, व्यापार मंदा है और लोगोंकी समझमें नही आता कि अगर निकट भविष्यमें खदानोंमें काम करनेवाले मजदूरोंका प्रश्न हल नही हुआ तो क्या होगा।

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

*वेजिटेरियन*, २५-४-१९०३

## २२१. पत्र: विलियम वेडरबर्नको

बॉक्स २९९
जोहानिसबर्ग
मार्च २२, १९०३

सर विलियम वेडरबर्न, बैरोनेट आदि
अध्यक्ष,
भा० रा० का० समिति[1]
[लंदन]

महोदय,

कल आपकी मारफत ब्रिटिश भारतीय समितिकी ओरसे स्वर्गीय श्री केन[2] के कुटुम्बके साथ हमारी आदर-भरी सहानुभूति जाहिर करनेवाला तार[3] भेजा गया था।

पिछले हफ्तेके अपने पत्रमें[4] मैं यह लिखना भूल गया था कि सुलेमान इस्माइलकी जो दूकान जबरदस्ती बन्द की गई है वह इस उपनिवेशके रस्टेनवर्गमें है। हालत अब भी जैसीकी-तैसी ही है। समितिकी अर्जीका, परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नरने अभीतक उत्तर नहीं दिया है।

आपका आज्ञाकारी,
मो० क० गांधी

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० २२८२) से।

## २२२. पत्र: दादाभाई नौरोजीको

बॉक्स २९९
जोहानिसबर्ग
मार्च ३०, १९०३

सेवामें
माननीय दादाभाई नौरोजी
[लंदन]

प्रिय महोदय,

पत्रके लिए धन्यवाद स्वीकार करें। अब मैं इसके साथ आजतककी हालतका एक बयान[5] भेज रहा हूँ। इसका मंशा सिर्फ यह है कि मित्रोंको यहाँकी भयानक परिस्थितिसे अवगत रखा जाये।

१. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी ब्रिटिश समिति।
२. डब्ल्यू० एस० केन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी ब्रिटिश समितिके एक प्रमुख सदस्य थे।
३. यह उपलब्ध नहीं है।
४. देखिए "नये उपनिवेशोंमें भारतीयोंकी स्थिति," मार्च १६, १९०३।
५. देखिए अगला शीर्षक।

ईस्ट लंदनके लोगोंकी प्रार्थनापर उनके मामलेके सम्बन्धमें मैं आज सर विलियमको २० पौं०का ड्राफ्ट भेज रहा हूँ। वहाँकी हालत ठीक वैसी ही है। यों, मैंने सुना है कि लोगोंके कहने-सुननेपर पैदल-पटरियों-सम्बन्धी नियमका पालन पुलिस सख्तीसे नहीं करवा रही है।

आपका आज्ञाकारी,
**मो० क० गांधी**

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० २२५६) से।

## २२३. ट्रान्सवालमें भारतीयोंकी स्थिति

जोहानिसबर्ग
मार्च ३०, १९०३

### ट्रान्सवालमें ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थितिके बाबत

रस्टेनबर्गमें सुलेमान इस्माइलको परवाना मिल गया है।

वाकर्स्ट्रूमके हुसैन अमदके परवानेके बारेमें परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नर हस्तक्षेप करना मंजूर नहीं करते, क्योंकि वहाँ पृथक् बस्ती मौजूद है। अगर यह सिद्धान्त मान लिया जाये तो करीब-करीब हर भारतीय दूकानदार दिवालिया हो जायेगा। इसके सिवा, वाकर्स्ट्रूममें जो बस्ती है वह भारतीयोंके लिए नहीं है। पिछली सरकारने एक जगह तय बेशक की थी, किन्तु अभीतक वहाँ कोई बसा नहीं है। फिर वह जगह है भी शहरसे दो मील दूर। ये तथ्य पुनर्विचारकी प्रार्थनाके साथ परमश्रेष्ठके सामने रख दिये गये हैं।

पीटर्सबर्गमें (कृपया श्री चेम्बरलेनको दिये गये वक्तव्य[1] की सामग्रीके सन्दर्भमें पढ़ें) कुछ भारतीयोंको, जो वहाँ लड़ाईके पहले व्यापार नहीं करते थे, गत वर्ष नगरमें व्यापार करनेके परवाने दिये गये थे। उन्होंने परदेशसे बहुत माल मँगा लिया है। पिछले दिसम्बरमें उन्हें मजिस्ट्रेटने सूचना दी कि उन्हें ३१ मार्चके बाद बस्तीके सिवा कहीं और व्यापार करनेका परवाना नहीं दिया जायेगा। श्री चेम्बरलेनका ध्यान इसपर आकर्षित किया गया, किन्तु एशियाइयोंके पर्यवेक्षकने उनसे कहा कि उसने मजिस्ट्रेटसे बात कर ली है, उस सूचनापर अमल नहीं किया जायेगा।

इस आश्वासनके बाद भी मजिस्ट्रेटने फिर परवाना पानेकी अर्जी देनेवाले हर भारतीयको उपर्युक्त सूचना देनेका आग्रह रखा, इसलिए यह बात पर्यवेक्षकके ध्यानमें लाई गई। उसने वही बात दुहराई जो श्री चेम्बरलेनके सामने कही थी; किन्तु उसने कहा, चूँकि सहायक उप-निवेश-सचिव अर्जदारोंके खिलाफ हैं, वह लाचार है।

तब प्रिटोरियाके एक सुप्रसिद्ध सॉलिसिटर श्री ल्युनान और श्री गांवीने यह बात उप-निवेश-सचिवके सामने रखी। उपनिवेश-सचिवने कहा कि भले ही मजिस्ट्रेट तिमाही परवाने देनेके पहले उक्त सूचना देना जरूरी समझते हों फिर भी वे प्रबंध कर देंगे कि जिनके पास परवाना था उन्हें फिरसे परवाना मिल जाये। उस समय वह बात वहीं खत्म हो गई।

१. देखिए पृष्ठ २९२।

पिछली फरवरीमें तिमाही परवाने दे दिये गये। मजिस्ट्रेटने उसके पहले कोई सूचना नहीं दी।

किन्तु, २३ मार्चको उसने दूकानदारोंको दिसम्बरकी उपर्युक्त सूचनाकी याद दिलाते हुए एक सूचना दी। उपनिवेश-सचिवको अर्जी दी गई। उसका जवाब सहायक उपनिवेश-सचिवने दिया कि, दिसम्बरकी सूचनाका पालन होना ही चाहिए। इसलिए उपनिवेश-सचिव श्री डेविडसनको व्यक्तिगत तार किया गया है, क्योंकि श्री ल्युनान और श्री गांधीको आश्वासन देनेवाले अफसर वही थे। यह बात परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नरकी निगाहमें भी लाई गई है। तिमाही अगले मंगलवारको समाप्त होती है। लिखनेके वक्ततक कोई जवाब नहीं मिला है। इस बातका उल्लेख कर देना अनुचित न होगा कि केवल भारतीयोंको तिमाही परवाने दिये गये हैं, यह अपने-आपमें एक बड़ी शिकायतकी बात है। किन्तु जिस जीवन-मरणके संघर्षकी तसवीर ऊपरके उदाहरणोंसे खिचती है उसके सामने ये बातें तुच्छ पड़ जाती हैं। और ये सब रोगके लक्षण मात्र हैं। एशियाई-विरोधी कानून तो अभी है ही। कानूनके रहते हुए भी भारतीय एकदम अफसरोंकी दयाके मोहताज हैं। परमश्रेष्ठने कहा है कि परिवर्धित विधान-परिषदके बननेपर कानूनोंके सारे प्रश्नका निपटारा किया जायेगा। ये टीपें मित्रोंको केवल इसलिए भेजी जा रही हैं कि क्या हो रहा है, इसकी खबर उन्हें रहे, जरूरी तौरपर किसी तात्कालिक कार्रवाईके लिए नहीं। क्योंकि, मुमकिन है, जबतक ये टीपें मित्रोंको मिलें तबतक सरकार राहत देना मंजूर कर ले। किन्तु यदि भविष्यमें तार भेजना जरूरी हो जाये तो इनसे उन्हें समझनेमें मदद मिल सकती है।

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स: सी० ओ० २९१/६१।

## २२४. ट्रान्सवालवासी भारतीय[1]

### भारतीय पक्ष

इस ब्रिटिश उपनिवेशमें भारतीय यूरोपीयोंके साथ विशेष अधिकारोंके लिए समान रूपसे हकदार हैं; इस आधारपर कि, पहले तो वे ब्रिटिश प्रजा हैं और दूसरे वे हर तरहसे वांछनीय नागरिक हैं। श्री गांधीने स्टारके प्रतिनिधिसे कहा कि इससे प्रयोजन नहीं कि वे संसारके किस भागमें गये हैं, उन्होंने अपने व्यवहारसे सिद्ध किया है कि वे नियन्त्रण मानते हैं। वे उस देशकी राजनीतिमें कभी दखल नहीं देते और इसके अतिरिक्त वे उद्यमी, मितव्ययी और शराबसे परहेज करनेवाले हैं।

उनको पूर्ण नागरिकताका अधिकार देनेकी वांछनीयतापर बोलते हुए श्री गांधीने कहा कि वे जानते हैं, उनकी तथाकथित गन्दी आदतोंको उनको पृथक् रखनेका एक कारण बताया जाता है। परन्तु उन्होंने दावा किया कि, स्थितिका वास्तविक रूपसे अध्ययन करनेपर यह सचाई सामने आ जायेगी कि भारतीय इतने गन्दे नहीं होते कि उनका सुधार ही न हो सके; और यह कि, उनके घरों और आदतोंमें जो गन्दगी पाई जाती है उसके लिए अधिकारी ही

1. यह एक लेखका उद्धरण है जो पहले *नेटाल विटनेस*में प्रकाशित हुआ था और फिर *टाइम्स ऑफ़ इंडिया*में छपा।

उत्तरदायी हैं। कोई समुदाय हो, इस दिशामें उसकी पूर्ण उपेक्षा की गई तो उसका कुछ हिस्सा आपत्तिजनक अवस्थामें पहुँच ही जायेगा।

इस समय सबसे बड़ी बात, जिसके लिए श्री गांधी आग्रह कर रहे हैं और जिसपर अपना ध्यान लगाये हुए हैं, उस कानूनको रद कराना है जिसको वे "वर्गगत कानून" कहते हैं और जो पर्यवेक्षकके कार्यालय और नगर-परिषद (टाउन कौन्सिल) द्वारा लागू किये गये नियन्त्रणोंमें परिलक्षित है। उनके विचारसे दक्षिण आफ्रिकामें एशियाइयोंके बहुत बड़ी संख्यामें आनेकी कतई गुंजाइश नहीं है। प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियम (इमिग्रेशन रिस्ट्रिक्शन्स ऐक्ट) के द्वारा देशान्तरवास नियन्त्रित है। यह नेटालमें भारतीयोंके विरुद्ध उचित रीतिसे लागू किया गया है। इसी तरहका एक कानून केप उपनिवेशमें जारी हुआ है और डेलागोआ-बेके अधिकारियोंने जो कानून चलाये हैं वे अपने प्रयोगमें और भी कड़े हैं। इन कानूनोंके अनुसार प्रवासीको तभी जहाजसे उतरने दिया जाता है, जब कि वह सिद्ध कर दे कि वह पहले इस देशमें स्थायी रूपसे रह चुका है, अथवा कोई-न-कोई यूरोपीय भाषा पढ़ने और लिखनेकी योग्यता रखता है। इस सम्बन्धके कानून अकेले भारतीयोंके विरुद्ध ही लागू नहीं हैं, और चूंकि कानूनकी पुस्तकमें ऐसे एक विधानका दर्ज होना अवश्यम्भावी है, श्री गांधीको इस स्थितिको स्वीकार कर लेनेके लिए विवश होना पड़ा है और उनका सुझाव है कि स्थानीय कानून थोड़े परिवर्तनके साथ नेटालके कानूनके ढंगपर हों। वे उन कानूनोंको हटानेपर जोर देंगे जिनमें भारतीयोंके लिए पृथक् बस्तियोंकी व्यवस्था है। इसके पक्षमें वे यह तर्क पेश करते हैं कि भारतीयोंके ज्यादा गरीब तबके स्वयं अपनी इच्छासे किसी भी स्थानमें रहेंगे, जो उनके लिए निर्दिष्ट कर दिया जायेगा; और केवल थोड़े-से अधिक धनी और समृद्ध व्यापारी शहरमें रहेंगे। चूंकि ट्रान्सवाल एक शाही उपनिवेश है, वे भारतीयोंको व्यापार करनेके परवाने जारी किये जानेके नियन्त्रणोंको हटानेकी वांछनीयतापर जोर दे रहे हैं। नेटाल और केप उपनिवेश स्वशासित हैं और अपने आन्तरिक मामलोंके सम्बन्धमें अपने-खुदके कानून बना सकते हैं। परन्तु उनकी दलील है कि साम्राज्य-सरकारको ट्रान्सवालमें सम्राट्के प्रजाजनोंको व्यापार और कार्यकी स्वतन्त्रता देनेकी अपनी सामान्य नीति अवश्य ही लागू करनी चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

*टाइम्स ऑफ़ इंडिया*, ६-४-१९०३

## २२५. दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीय[1]

जोहानिसबर्ग
अप्रैल १२, १९०३

इस समय ट्रान्सवालमें ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थिति निम्न प्रकार है:

स्टैंडर्टनमें पैदल-पटरियोंकी शिकायत अस्थायी रूपसे दूर हो गई है; सरकारने सेनाधिकारीको हिदायत कर दी है कि वह भद्र वेश और भद्राचरणवाले एशियाइयोंके विरुद्ध उपनियमका प्रयोग न करे।

साथमें नत्थी सरकारी सूचनासे परवानोंकी स्थितिका पता चलता है। इसके कारण लोगोंमें भय फैल गया है, क्योंकि:

१. यह "एक संवाददाता द्वारा प्रेषित" रूपमें *इंडिया*में प्रकाशित हुआ था।

(१) लगता है, उसके द्वारा पुरानी सरकारके भारतीय-विरोधी कानूनोंको रद करनेका प्रश्न अनिश्चित कालके लिए टाल दिया गया है।

(२) जो भारतीय व्यापारी युद्ध छिड़नेपर व्यापार नहीं कर रहे थे, परन्तु जिनको गत वर्ष परवाने दे दिये गये थे, उनको इसने दुविधामें डाल दिया है। श्री चेम्बरलेनने तो कहा था कि इन परवानोंको कोई छू भी नहीं सकेगा।

(३) कहनेको तो इसके द्वारा उन व्यापारियोंके निहित स्वार्थोंका लिहाज किया गया है जो युद्ध छिड़नेके समय व्यापार कर रहे थे, परन्तु वस्तुतः उनकी जड़ ही काट डाली गई है; क्योंकि इसमें एक स्थान या व्यक्तिके परवानेको दूसरे स्थान या व्यक्तिके नामपर बदलनेका निषेध है। इसका फल यह होगा कि पहली हालतमें दूकानदारोंको मकान-मालिकोंकी कृपापर अवलम्बित रहना पड़ेगा और दूसरी हालतमें वे अपने कारोबारको, चलते कारोबारके रूपमें बेचकर, लाभ नहीं कमा सकेंगे।

(४) इसके द्वारा सारीकी-सारी जातिको कलंकित किया गया है, क्योंकि इसकी ध्वनि यह है कि प्रत्येक भारतीय सभ्य लोगोंकी बस्तीमें रहनेके अयोग्य है — वह अपने आपको योग्य सिद्ध करे तब बात दूसरी है।

यह सूचना प्रकाशित होनेके पश्चात् ये सब बातें परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नरके ध्यानमें लाई जा चुकी हैं और अब उनके उत्तरकी प्रतीक्षा है।

पीटर्सबर्गके विषयमें सरकारने बड़ी कठिनाईके बाद, इस आशयका सामान्य निर्णय किया है:

(१) भारतीय व्यापारियोंके सब वर्तमान परवाने चालू तिमाहीके लिए अस्थायी रूपसे फिर जारी कर दिये जायेंगे;

(२) किसी भारतीयको नया परवाना नहीं दिया जायेगा — वह युद्धसे पहले व्यापार करता रहा हो, या नहीं;

(३) जबतक इस सारे प्रश्नका विचार नहीं हो जाता तबतक वर्तमान परवानोंमें से किसीका न तो स्थान बदला जा सकेगा और न नाम।

इस प्रकार चिन्ता और दुविधाका समय फिर बढ़ा दिया गया है। चालू तिमाहीकी समाप्तिपर वर्तमान परवाने फिर जारी किये जायेंगे या नहीं, इसका कुछ निश्चय नहीं है। श्री चेम्बरलेनने हमें निश्चित आश्वासन दिया था कि निहित अधिकारोंको छेड़ा नहीं जायेगा। ऊपर जिन दो निर्णयोंकी चर्चा की गई है उनका निष्कर्ष यह है कि यदि कोई मकान-मालिक किसी दूकानदारको दूकान खाली करनेकी सूचना दे दे तो उस दूकानदारको अपना कारोबार बन्द ही कर देना पड़ेगा; और क्योंकि उसका परवाना किसी दूसरेके नाम नहीं किया जा सकता इसलिए वह अपनी दूकानको चलते हुए कारोबारके रूपमें बेच भी नहीं सकेगा। जिला-सेनाधिकारीने वहाँके भारतीय लोगोंके नाम निम्न सूचना जारी की है:

> जिन कुलियोंके पास परवाने हों वे सब पुलिसके दफ्तरमें प्रार्थनापत्र देकर, स्टैंडर्टन नगरकी पैदल पटरियोंपर चलनेका अनुमतिपत्र ले सकते हैं। जो कुली या काला आदमी १ अप्रैलके बाद स्टैंडर्टनकी पटरियोंपर बिना अनुमतिपत्रके चलता पकड़ा जायेगा उसके विरुद्ध कानूनके अनुसार मुकदमा चलाया जायेगा।

सभी भारतीयोंके लिए "कुली" शब्दका प्रयोग करके उनके प्रति जो घृणा और उनकी भावनाओंके प्रति जो उपेक्षावृत्ति प्रकट की गई है उसपर ध्यान दीजिए। बोअर राजमें, पटरियोंपर चलते हुए भारतीय लोगोंके साथ किसी प्रकारकी छेड़छाड़ नहीं की जाती थी; छूटका अनुमतिपत्र

तो उन्हें लेना ही नहीं पड़ता था। जब इस उपनियमको लागू करनेका यत्न किया जाने लगा तब तुरन्त ही ब्रिटिश सरकारने हस्तक्षेप करके उसे रोक दिया था। इस सूचनाका प्रतिवाद सरकारको भेज दिया गया है।

नेटालके डर्बन और मैरित्सबर्ग नगरोंमें इक्के-दुक्के लोगोंको प्लेगकी गिल्टी निकली है। रोगका अधिक आक्रमण काफिर लोगोंपर हुआ है। यूरोपीयोंको भी यह रोग हुआ है। फिर भी इन दोनोंको, बिना किसी प्रतिबन्धके, ट्रान्सवाल आने दिया जा रहा है। परन्तु भारतीयोंका ट्रान्सवालमें आगमन, सारे ही नेटालसे — केवल रोगाक्रान्त नगरोंसे नहीं — पूर्णतया निषिद्ध कर दिया गया है। भारतीय शरणार्थियोंको भी नेटालसे इस उपनिवेशमें नहीं आने दिया जाता।

यहाँके भारतीय, श्री चेम्बरलेनकी सलाहपर चलकर धैर्यपूर्वक अपनी शिकायतें स्थानीय अधिकारियोंसे दूर करवानेका यत्न कर रहे हैं। और, यहाँ यह उल्लेख कर देना उचित है कि परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नरकी वृत्ति परस्पर-विरोधी स्वार्थोंको समान न्याय देनेकी है।

ईस्ट लंदन (केप कालोनी) में पैदल-पटरीकी शिकायत अबतक दूर नहीं हुई। परमश्रेष्ठ गवर्नरने हमारे अन्तिम प्रार्थनापत्रका जवाब अभीतक नहीं दिया। परन्तु इस उपनियमको वहाँ कठोरतासे लागू नहीं किया जा रहा।

*[ सहपत्र ]*

## सरकारकी सूचना

### *संख्या ३५६, सन् १९०३*

सर्वसाधारणकी जानकारीके लिए सूचना दी जाती है कि परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नर और उनकी कार्यकारिणी परिषद्ने, व्यापार करनेके परवानोंके लिए एशियाई लोगोंके प्रार्थनापत्रोंपर निर्णय दिया है कि, १२ अगस्त १८८६ को कार्यकारिणी परिषद के प्रस्ताव अनुच्छेद सं० १६४ के द्वारा संशोधित और १२ अगस्त १८८६ को लोकसभा (फोक्सराट) के प्रस्ताव अनुच्छेद सं० १४१९ द्वारा सम्पुष्ट, १८८५ के कानून सं० ३ के विधानोंको, उन एशियाई लोगोंके निहित स्वार्थोंका मुनासिब लिहाज रखकर लागू किया जायेगा जो पिछली लड़ाई छिड़नेपर *बाजारों*से बाहर व्यापार कर रहे थे; और इसलिए उन्होंने निश्चय किया है कि :

(१) सरकार तुरन्त ही ऐसे उपाय करे जिनसे कि प्रत्येक नगरमें उन *बाजारों*को पृथक् नियत किया जा सके जिनमें कि केवल एशियाई लोग रहेंगे और व्यापार करेंगे; यह काम उपनिवेश-सचिवके सुपुर्द किया जाता है कि वह इन *बाजारों*का निश्चय, आवासी (रेजिडेंट) मजिस्ट्रेटकी अथवा जहाँ नगर-परिषद या स्वास्थ्य-निकाय (हेल्थ बोर्ड) हो वहाँ उसकी सलाहसे करे।

(२) किसी भी एशियाईको निश्चित *बाजारों*के सिवा कहीं और व्यापार करनेके लिए नया परवाना नहीं दिया जायेगा।

(३) जिन एशियाई व्यापारियोंके पास किसी ऐसे स्थानपर व्यापार करनेके परवाने पिछली लड़ाई छिड़नेके समय रहे होंगे, जो सरकार द्वारा विशेष रूपसे नियत नहीं किया गया, उनके परवाने उन्हीं शर्तोंपर तबतकके लिए फिर जारी किये जा सकेंगे जबतक कि वे इस उपनिवेशमें रहते रहेंगे। परन्तु ये परवाने किसी दूसरे व्यक्तिको नहीं दिये जा सकेंगे और किसी परवानेदारको किसी एक ही नगरमें उतनेसे अधिक परवाने नहीं दिये जायेंगे जितने कि उसके पास लड़ाई छिड़नेके समय थे।

एशियाइयोंका निवास, ऊपर निर्दिष्ट कानून द्वारा, उन्हीं गलियों, मुहल्लों और बस्तियोंतक सीमित है जो इस प्रयोजनके लिए पृथक् नियत कर दिये गये हों; परन्तु अब परमश्रेष्ठने निर्णय किया है कि उनके लिए

अपवाद किया जा सकेगा, जो अपनी बौद्धिक उन्नति अथवा सामाजिक गुणों और रहन-सहनकी आदतोंके कारण उसके अधिकारी जान पड़ेंगे; और इसलिए उन्होंने निश्चय किया है कि जो एशियाई, उपनिवेश-सचिवको प्रमाणपूर्वक सन्तुष्ट कर देगा, कि उसके पास इस या अन्य किसी ब्रिटिश उपनिवेश अथवा ब्रिटेनके अधीन देशके शिक्षा-विभागका दिया हुआ उच्च शिक्षणका प्रमाणपत्र है, अथवा वह रहन-सहनका ऐसा तर्ज अपनानेके लिए समर्थ और इच्छुक है जो यूरोपीय विचारोंको नापसन्द और स्वास्थ्यके नियमोंका विरोधी न हो, वह उपनिवेश-सचिवसे छूटका पत्र देनेकी प्रार्थना कर सकेगा; और उस पत्रके मिल जानेपर वह एशियाइयोंके लिए विशेष रूपसे पृथक् किये गए स्थानके अतिरिक्त भी कहीं रह सकेगा।

डब्ल्यू० एच० मूअर
(सहायक उपनिवेश-सचिव)

उपनिवेश-सचिवका कार्यालय,
प्रिटोरिया, ८ अप्रैल, १९०३

[अंग्रेजीसे]

*इंडिया*, १५-५-१९०३

## २२६. पत्र : उपनिवेश-सचिवको

### ब्रिटिश इंडियन असोसिएशन

बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
अप्रैल २५, १९०३

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
प्रिटोरिया

श्रीमन्,

एक पत्रका निम्नलिखित अनुवादित अंश मैं आपके ध्यानमें लाना चाहता हूँ। यह पत्र हाइडेलबर्गके भारतीय निवासियोंने ब्रिटिश भारतीय संघ (ब्रिटिश इंडियन असोसिएशन) को भेजा है और इसपर इसी महीनेकी २३ तारीख पड़ी है।

> आज सवेरे ५-३० बजे पुलिसके सिपाहियोंने प्रत्येक वस्तु-भाण्डारको घेर लिया। वे दरवाजे खोलकर अन्दर घुस आये और कमरोंमें जो लोग सो रहे थे उन सबको उन्होंने जगा दिया, और 'बाहर निकलो, बाहर निकलो' चिल्ला-चिल्ला कर उन्हें भयभीत कर दिया। उनको न तो मुँह-हाथ धोने दिया और न चाय-नाश्ता करने दिया। बहुतोंने यह सोचकर अपनी दूकानें ६ बजे खोलीं कि दो या तीन व्यक्ति दूकानोंमें रह जायेंगे और दूसरे पुलिसके साथ जायेंगे। परन्तु मालिक पहले ही पकड़ लिये गये थे। जब आदमियोंने दूकानोंको बन्द करनेसे इनकार किया तब पुलिसने उन्हें बाहर घसीट कर स्वयं दरवाजे बन्द कर दिये, उन्हें चाबियाँ पकड़ा दीं और फिर अपने हमराह कर लिया। इस तरह हर आदमी गिरफ्तार कर लिया गया, जैसे कि वह कोई अपराधी हो। एक ही अन्तर था कि हम लोगोंके हथकड़ियाँ नहीं लगाई गई थीं।

इस तरह सब लोग ८ बजे सवेरे अभियोग-कक्ष (चार्ज आफिस) में ले जाये गये और हिरासतमें रखे गये। प्रत्येक व्यक्ति पृथक् रूपसे दफ्तरके कमरेमें ले जाया गया, उससे परवाना दिखानेको अथवा उस देशका स्थायी निवासी रह चुकनेका सबूत देनेको कहा गया। जो अपने दावोंको सिद्ध कर सके उन्हें नये परवाने दिये गये। उसके बाद उन्हें सदर दरवाजेसे विदा किया गया। परवाने पा चुकनेपर भी पहले-पहल वे लोग रोके गये थे, परन्तु जब हमने इसका प्रतिवाद किया तब वे जाने पाये। इस तरह जो मुक्त किये गये थे, उनसे वे लोग, जो बन्धनमें थे, कोई बातचीत नहीं करने पाये। इस तरह, सवेरेसे जो लोग हिरासतमें ले लिये गये हैं, वे वैसे ही भूखे-प्यासे बने हैं और अभी १२.३० बजे दोपहरतक रिहा नहीं किये गये हैं। यह पत्र १२.३० बजे दोपहरमें लिखा जा रहा है। अभी कुछ व्यापारी हिरासतमें हैं। सम्मानित भारतीय दूकानदारोंकी बड़े सवेरे गिरफ्तारी और सड़कोंसे उनके पैदल चलाकर ले जाये जानेका दृश्य शहरमें सामान्य चर्चाका विषय बन गया है।

इस तरह पुलिसने अभद्रतापूर्वक और बिना आज्ञाके सब कमरोंमें प्रवेश किया और हमारी इस चेतावनीपर कि कुछ कमरोंमें परदानशीन स्त्रियाँ हैं, बिलकुल ध्यान नहीं दिया। जब उनसे पूछा गया कि हम किस हुक्मसे गिरफ्तार किये जा रहे हैं तब जवाब मिला — 'कप्तानके हुक्म से; औरतों और बच्चोंको छोड़कर हम हर एकको ले चलेंगे और अगर तुम खुशीसे नहीं चलोगे तो हम जबरदस्ती ले चलेंगे।' उनसे लिखित आज्ञा दिखानेको कहा गया; पर उन्होंने इनकार कर दिया।

यह तो हाइडेलबर्गमें पुलिसके व्यवहारका विवरण है। मैं बता दूँ कि एक ऐसी ही घटना जोहानिसबर्गमें भी घटी थी। मामला कप्तान फ़ाउलके ध्यानमें लाया गया था और खयाल यह किया गया था कि दुबारा ऐसी कोई बात न होगी। फिर भी पाँचेफस्ट्रूममें यह दोहराई गई। तब भी हमने इसे चुपचाप गुजर जाने दिया। परन्तु अब हमारी समितिके लिए चुप रहना असम्भव हो गया है।

पुराने शासनके हमारे बुरेसे-बुरे दिनोंमें भी हम ऐसे शारीरिक दुर्व्यवहारोंके शिकार नहीं बनाये गये। जहाँतक मेरी समितिको पता है, हमारे समाजने कोई अपराध नहीं किया है; फिर भी उसे लोगोंकी दुर्भावना और उसका परिणाम ही नहीं, बल्कि अब तो उनका दुर्व्यवहार भी भोगना पड़ रहा है, जिनसे हमारी रक्षाकी आशा की जाती है।

मेरी समिति विनम्रतापूर्वक जाँचकी प्रार्थना करती है और चाहती है कि पुलिसके जिस दुर्व्यवहारका ऊपर उल्लेख किया गया है उसपर सरकार अपनी सम्मति प्रकट करे।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
अब्दुल गनी
अध्यक्ष
ब्रिटिश भारतीय संघ

[अंग्रेजीसे]

*रैंड डेली मेल*, २८–४–१९०३

## २२७. भारतीयोंके साथ व्यवहार

### ब्रिटिश इंडियन असोसिएशन

बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
अप्रैल २७, १९०३

सेवामें
संपादक
*रैंड डेली मेल*
जोहानिसबर्ग

महोदय,

मैं इसके साथ सरकारको भेजे गये एक पत्रकी[1] नकल प्रकाशनार्थ प्रेषित कर रहा हूँ। यह पत्र हाइडेलबर्गमें वहाँके ब्रिटिश भारतीय निवासियोंके साथ पुलिस द्वारा किये गये व्यवहारसे सम्बन्ध रखता है। इस पत्रपर टिप्पणी करना व्यर्थ है। उपनिवेशमें ब्रिटिश भारतीयोंकी सामाजिक स्थितिके बारेमें आपके पत्रकी नीति चाहे जो हो, मुझे विश्वास है कि पत्रमें उल्लिखित शारीरिक दुर्व्यवहारपर आपको मेरे देशवासियोंके साथ सहानुभूति हुए बिना न रहेगी। ब्रिटिश विधानमें यदि किसी एक वस्तुका लगनके साथ पोषण किया गया है तो वह है सम्राट्के प्रजाजनोंमें, चाहे वे गोरे हों चाहे काले, छोटेसे-छोटेकी भी व्यक्तिगत स्वतंत्रताके प्रति आदर। जहाँतक ब्रिटिश भारतीयोंका सम्बन्ध है, उपनिवेशमें यह प्रत्यक्षतः जोखिममें है।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
अब्दुल गनी
अध्यक्ष
ब्रिटिश इंडियन असोसिएशन

[अंग्रेजीसे]
*रैंड डेली मेल*, २८–४–१९०३

१. देखिए पिछला शीर्षक।

## २२८. पत्र : लेफ्टिनेंट गवर्नरको[1]

### ब्रिटिश इंडियन असोसिएशन

बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
मई १, १९०३

सेवामें
निजी सचिव
परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नर
प्रिटोरिया

श्रीमन्,

मैं ब्रिटिश भारतीय संघ (ब्रिटिश इंडियन असोसिएशन) की ओरसे संलग्न प्रार्थनापत्र[2] प्रेषित कर रहा हूँ। परमश्रेष्ठके नाम लिखा गया यह प्रार्थनापत्र उनकी सेवामें प्रेषित कर देनेका काम श्री विलियम हॉस्केन और जोहानिसबर्गके अन्य प्रमुख निवासियोंने, जिनके नाम प्रार्थनापत्रके अन्तमें दिये गये हैं, संघको सौंपा है।

प्रार्थनापत्र प्रेषित करते हुए मैं बता दूँ कि इस प्रार्थनापत्रका कारण उल्लिखित महानुभावोंसे संघका यह निवेदन है कि वे १९०३ की विज्ञप्ति ३५६ के बारेमें अपने विचार सरकारके सामने रखें और सामान्यतः भारतीय प्रश्नके बारेमें अपना मत प्रकट करें। यह उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक किया है।

मैं यह उल्लेख करनेकी आज्ञा चाहूँगा कि समस्त यूरोपीयोंने, जिनके सम्पर्कमें हम आये है, वैसे ही भाव व्यक्त किये हैं जैसे कि इन प्रार्थियोंके हैं। जिन्होंने ऐसा नहीं किया उन यूरोपीयोंकी संख्या बहुत ही कम है। कुछने विज्ञप्तिको ठीक माना है। परन्तु इसका कारण यह है कि वे, जो कानून लागू करना है, उसकी स्थितिसे अनभिज्ञ हैं। साथ ही इसके अर्थकी वास्तविक व्याप्तिके बारेमें उन्हें भ्रम है।

प्रार्थनापत्रकी विषय-वस्तुकी हदतक मेरी समिति थोड़े रूपान्तरके साथ उस विधानके सिद्धान्तको माननेके लिए तैयार हो जायेगी जिसे प्रार्थियोंने नमूनेके तौरपर प्रस्तुत किया है। सामान्यतः सम्बन्धित विज्ञप्तिके उद्देश्यकी पूर्ति इससे हो जायेगी। और निश्चय ही परवाने देनेके कार्यको नियमित करनेमें ब्रिटिश भारतीयोंके अत्यन्त उत्कट विरोधीको भी इससे सन्तोष हो जायेगा। क्योंकि, इसके अनुसार अत्यावश्यक मामलोंमें सर्वोच्च अदालतका नियन्त्रण रहेगा और शेष सभी नये परवानोंके जारी करनेका नियम चुनी हुई लोकप्रिय संस्थाएँ बनायेंगी और इसके साथ ही वे कानूनकी किताबसे सम्राट्के भक्त भारतीय प्रजाजनोंको अनावश्यक रूपसे अपमानित करनेवाले वर्तमान विधानको हटायेंगी। इसके सिवा यह प्रस्तावित विधान भावी प्रवासको नियमित करेगा, जिसकी विज्ञप्तिमें व्यवस्था नहीं है।

उक्त यूरोपीय सज्जनोसे बात करके मेरी समितिने यह भी मालूम किया है कि उनका विरोध भारतीयोंके प्रति उतना नहीं है जितना कि चीनियोंके प्रति है। इसका एक ज्वलन्त

१. इस पत्रकी एक नकल गांधीजीने भारतमन्त्रीकी सेवामें प्रेषित करनेके लिए दादाभाई नौरोजीको भेजी थी।
२. देखिए सहपत्र, अगला पृष्ठ।

उदाहरण यह है कि, जब दक्षिण आफ्रिका संघ (साउथ आफ्रिका लीग)की जोहानिसबर्ग शाखा द्वारा प्रकाशित पर्चेमें छपा एशियाइयों-सम्बन्धी वक्तव्य उक्त संघकी कार्यकारिणीके ध्यानमें लाया गया तब उसके सदस्योंने तुरन्त ही स्वीकार किया कि एशियाई शब्दका प्रयोग भूलसे हुआ है। उनकी आपत्ति पूर्णरूपसे चीनियोंके खिलाफ थी, ब्रिटिश भारतीयोंके खिलाफ बिल्कुल नहीं।

आपका आज्ञाकारी सेवक,

अध्यक्ष

ब्रिटिश इंडियन असोसिएशन

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफिस . ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स, ४०२।

[सहपत्र][1]

नीचे ब्रिटिश भारतीय संघ (ब्रिटिश इंडियन असोसिएशन)के उपर्युक्त प्रार्थनापत्रमें उल्लिखित डब्ल्यू० एम० हॉस्केन और अन्य लोगोंके हस्ताक्षरोंसे दी गई अर्जीका मजमून प्रस्तुत है :—

सेवामें
परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नर
ट्रान्सवाल
प्रिटोरिया

नीचे हस्ताक्षर करनेवाले ट्रान्सवाल उपनिवेशवासियोंका प्रार्थनापत्र

नम्र निवेदन है कि,

प्रार्थियोंने एशियाइयोंके बारेमें हालमें प्रकाशित सरकारी विज्ञप्ति पढ़ी है और इस प्रश्नपर वे विनीत भावसे अपनी सम्मति नीचे लिखे अनुसार प्रकट करना चाहते हैं :

१. प्रार्थी यह आवश्यक मानते हैं कि उपनिवेशमें एशियाइयोंका देशान्तरवास कानून द्वारा विनियमित किया जाना चाहिए, और इसलिए वे सुझाव देते हैं कि वर्तमान एशियाई-विरोधी विधानके स्थानपर नेटाल-अधिनियम या केप-अधिनियमकी सुविधासे नकल की जा सकती है। यह वर्ग और रंगके प्रश्नका अन्त कर देगा; साथ ही इससे किसी राष्ट्रके अवांछनीय लोगोंके बड़ी संख्यामें आनेका भय भी नहीं रहेगा।

२. परन्तु प्रार्थियोंकी उल्लिखित विज्ञप्ति, यदि उद्देश्य उसे स्थायित्व प्रदान करनेका है, स्वर्गीया सम्राज्ञीकी युद्धके पहलेकी घोषणाओंके विपरीत जान पड़ती है, क्योंकि तब उनकी सरकार, जहाँतक ब्रिटिश भारतीयोंका सम्बन्ध था, भूतपूर्व गणराज्यके एशियाई-विरोधी कानूनोंके विरुद्ध थी और उसने इन कानूनोंको लागू करनेका विरोध किया था।

३. जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, प्रार्थी उपनिवेशमें भारतीयोंकी अनियन्त्रित बाढ़को उचित नहीं मानते, किन्तु साथ ही उनकी सम्मतिमें वर्तमान निवासी न्याययुक्त और सम्मानपूर्ण व्यवहारके अधिकारी हैं।

४. वर्तमान परवानोंको एक व्यक्तिसे दूसरे व्यक्ति, या एक स्थानसे दूसरे स्थानके नाम बदलनेकी इजाजत न देना वर्तमान परवानेदारोंको भारी घाटा सहने और आगे-पीछे अपना कारोबार बन्द कर देनेपर बाध्य करनेके समान है।

५. विचाराधीन विज्ञप्तिसे यह स्पष्ट नहीं है कि समस्त वर्तमान परवाने समय-समयपर नये किये जायेंगे या नहीं। उन भारतीयोंको जिन्हें गत वर्ष ब्रिटिश अधिकारियोंसे परवाने मिले थे, निर्दिष्ट बाजारोंके बाहर व्यापार करनेकी अनुमति न देना, उनके साथ अन्याय करना होगा।

१. यह २५-९-१९०३ के *इंडियन ओपिनियन*में छपा था।

६. आपके प्रार्थियोंके विनम्र मतसे इस पेचीदा सवालका सर्वोत्तम हल यह होगा कि नेटालकी तरह नगर-परिषदों या स्वास्थ्य-निकायोंको अधिकार दे दिया जाये कि वे नये प्रार्थियोंको परवाने दें अथवा न दें। परन्तु इसके दुरुपयोगसे बचनेके लिए पीड़ित पक्षको उनके निर्णयोंके विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालयमें अपील करनेका अधिकार रहे। चालू परवानोंका बदला जाना भी साल-ब-सालकी सफाई-रिपोर्टपर आधारित हो।

७. आपके प्रार्थियोंके विनम्र मतसे इस उपनिवेशमें रहनेवाले ब्रिटिश भारतीय व्यवस्थाप्रिय, कानूनको माननेवाले और समाजके उपयोगी अंग हैं। वे ईमानदारी और संजीदगीमें उनके सर्वथा समान हैं जो ब्रिटिश प्रजा नहीं हैं और फिर भी जो व्यापार और अन्य अधिकारोंका पूर्ण उपभोग करते हैं।

८. स्पष्ट है कि भारतीय एक जरूरी कमीको पूरा करते हैं क्योंकि सामान्य जनता उनकी समर्थक है। इसलिए प्रार्थी निवेदन करते हैं कि जो तर्क यहाँ प्रस्तुत किये गये हैं उनको दृष्टिमें रखते हुए प्रस्तावित विज्ञप्ति पर पुनः विचार हो अथवा सम्राट्के भारतीय प्रजाजनोंको अन्य उचित सहायता प्रदान की जाये।

न्याय और दयाके इस कार्यके लिए आपके प्रार्थी, कर्तव्य समझकर, सदैव दुआ करेंगे, आदि–आदि।

जोहानिसबर्ग, अप्रैल, १९०३

डब्ल्यू० एम० हॉस्केन
एल० डब्ल्यू० रिच
और अनेक अन्य

[अंग्रेजीसे]

## २२९. तार: "इंडिया" को[1]

जोहानिसबर्ग
मई ९, [१९०३]

छः तारीखको ट्रान्सवालके सब भागोंके भारतीयोंकी सार्वजनिक सभा हुई। उसमें भू० पू० गणराज्यके भारतीयोंको *बाजारों* आदिमें सीमित करनेवाले भारतीय-विरोधी कानून लागू करनेके विरोधमें सर्वसम्मतिसे एक प्रस्ताव पास किया गया। आधार यह था कि इन कानूनोंको लागू करना सरकारकी उन घोषणाओंसे असंगत है जो कि उसने युद्ध छिड़नेपर और उसके बाद की थी; और ये कानून १८५७की घोषणा[2] और ब्रिटिश नीतिके, यहाँतक कि, स्वशासित उपनिवेशोंमें भी ब्रिटिश नीतिके विरुद्ध हैं।

प्रस्तावके अन्तमें सरकारसे इन कानूनोंको रद करके इनके स्थानपर ब्रिटिश परम्पराओंसे संगत कानूनोंकी प्रार्थना की गई।

[अंग्रेजीसे]

*इंडिया*, १५–५–१९०३

१. यह 'एक संवाददाता द्वारा प्रेषित' रूपमें प्रकाशित हुआ था।
२. स्पष्टतः यह भूल है; उक्त घोषणा १८५८ में की गई थी।

## २३०. टिप्पणियाँ : अबतककी स्थितिपर

पो० ऑ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
मई ९, १९०३

विज्ञप्ति ३५६[1] अभी जारी है। साथके सब पत्र अधिकतम महत्त्वके हैं।

हाइडेल्बर्गमें पुलिसकी कार्रवाइयोंकी शिकायत[1] (सहपत्र १) से भारतीय समाजका महान धैर्य प्रकट होता है। जोहानिसबर्ग और हाइडेलबर्गमें पुलिसके अत्याचारपूर्ण कार्योंको पीड़ितोंके प्रतिवाद करनेपर भी हमने इस आशासे नजरअन्दाज कर दिया कि यह उदाहरणीय सहनशीलता निकट-सम्बन्धित अधिकारियोंके मनपर अच्छा असर डालेगी। जाहिर है कि इस मौनको उन्होंने गलत समझा। इसलिए यह आवश्यक हो गया है कि हाइडेलबर्गकी घटनापर और गंभीरताके साथ विचार किया जाये। सरकार इसकी जाँच कर रही है और परिणामकी उत्सुकताके साथ प्रतीक्षा की जा रही है।

सहपत्र न० २[2] से प्रकट होता है कि यूरोपीय समुदायके अत्यंत प्रतिष्ठित लोग भारतीयोंके साथ न्याय किया जानेके विरुद्ध नहीं हैं। श्री विलियम हॉस्केन, जो प्रार्थनापत्रके प्रथम हस्ताक्षरकर्ता हैं, ट्रान्सवालके एक अति प्रमुख नेता हैं। हालकी ब्लूमफॉटीन-परिषदमें वे प्रतिनिधिकी हैसियतसे शामिल थे और नई विधान-परिषदके गैर-सरकारी नामजद सदस्य हैं। दूसरे सब हस्ताक्षरकर्ता भी ऊँचीसे-ऊँची हैसियतके व्यापारी हैं। यह प्रार्थनापत्र अब परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नरके हाथोंमें है।

सहपत्र ३ और ४[3] भारतीय समाजके भावोंकी तीव्रता प्रकट करते हैं। उस विशाल भवनके प्रत्येक भागमें लोग भरे थे। जिस बातको हम सबसे अधिक अनुभव करते हैं, वह द्वेषजनित असुविधा नहीं है, बल्कि वह घोर अपमान है जो भारतीयोंको एक वर्गके रूपमें निर्दिष्ट स्थानों या बाजारोंमें रहनेके लिए बाध्य किये जानेके कारण सहना पड़ रहा है। वर्तमान कानून वर्गके रूपमें भारतीयोंपर एक ऐसा सिद्धान्त लागू करता है जिसका श्री चेम्बरलेन एकसे अधिक बार विरोध कर चुके हैं।

नेटालके ढंगपर बना विधान इन शर्तोंके साथ मान्य होगा : (१) शिक्षा-सम्बन्धी कसौटीमें किसी एक भारतीय भाषाका ज्ञान शामिल होना चाहिए। यह कसौटी भी लाखों भारतीयोंको दूर रखेगी और यह लाखोंकी संख्या ही तो यूरोपीयोंके लिए हौआ बनी हुई है। सरकारके हाथमें यह अधिकार भी सुरक्षित रहना चाहिए कि वह उन भारतीयोंको विशेष अनुमति दे दे जो किसी भाषाका ज्ञान न रखते हुए भी स्थायी रूपसे बसनेवाले भारतीयोंके कामके लिए खास तौरसे आवश्यक हैं।

(२) जहाँतक व्यापारियोंके परवानोंका प्रश्न है, वर्तमान परवानोंको छूना नहीं चाहिए। परन्तु नये आवेदन-पत्रोंका निपटारा, चाहे वे यूरोपीयोंके हों चाहे भारतीयोंके, स्थानीय संस्थाओं द्वारा किया जाना चाहिए। शर्त यह है कि घोर अन्यायके मामलोंमें सर्वोच्च अदालतको उनके

१. देखिए "दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीय," १२-४-१९०३ का सहपत्र।
२. देखिए "पत्र : उपनिवेश-सचिवको", अप्रैल २५, १९०३।
३. देखिए "पत्र : लेफ्टिनेंट गवर्नरको," मई १, १९०३ का सहपत्र।
४. यह स्थानीय सभाकी अखबारी रिपोर्टोंका है, जो यहाँ नहीं दी जा रही है।

निर्णयोंपर पुनर्विचार करनेका अधिकार हो। ऐसे विधानमें भारतीय अधिवासियोंके विरुद्ध उठाई जा सकनेवाली प्रत्येक उचित आपत्तिका विचार शामिल होगा।

**ईस्ट लंदन**

स्पष्टतः, पैदल-पटरी सम्बन्धी उपनियम अब अमलमें है। एक भारतीयको, जो स्वच्छ वस्त्र पहने था, पैदल-पटरियोंपर चलनेके कारण २ पौंड जुर्माना किया गया है। ईस्ट लंदन भारतीय संघने ब्रिटिश समिति और सर मंचरजीको इस सजाके बारेमें तार भेजा है।

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफ़िस: ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स, ४०२।

## २३१. पत्र: दादाभाई नौरोजीको

फोर्ट चेम्बर्स, रिसिक स्ट्रीट
पो० ऑ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
मई १०, १९०३

माननीय दादाभाई नौरोजी
लंदन

प्रिय महोदय,

आपके गत १६ अप्रैलके पत्रके लिए मैं आपका बहुत आभारी हूँ।

लॉर्ड जॉर्जका उत्तर जितना है उतना संतोषजनक है। परन्तु वांछित विधानके पास होनेमें जितनी ही देर लगेगी उतनी ही ज्यादा कठिनाइयाँ बढ़ेंगी। हम इस कथनका पूरी तौरसे समर्थन करते हैं कि सस्ते मजदूरोंकी बेकार भरमारपर रोक लगानी चाहिए। भारतीय मजदूर इस उपनिवेशमें बड़ी संख्यामें आते भी नहीं हैं। परन्तु जैसा कि आप उन महत्त्वपूर्ण कागजोंसे देखेंगे जिन्हें मैं इसके साथ नत्थी कर रहा हूँ, हम, अपनी प्रामाणिकता दिखानेके लिए, नेटालके आधारपर बना विधान माननेको तैयार हैं। पर उसमें वे उचित सुधार अवश्य हो जाने चाहिए जो साथके कागजोंमें सुझाये गये हैं। *बाजारों*के बारेमें, मुझे यह कहना है कि एक भी भारतीयने *बाजारों*में जबरदस्ती रखे जानेके सिद्धान्तको स्वीकार नहीं किया है। परन्तु यदि इसका प्रयोग नये प्रार्थियोंके लिए किया जाये तो हम *बाजार*-प्रथाको सफल बनानेके लिए सरकारसे सहयोग करनेको तैयार हैं। असली बात यह है कि इस तरहका कोई कानून न होना चाहिए जो भारतीयमात्रको *बाजार*-प्रथा मंजूर करनेके लिए मजबूर करे। इतना मैं यहाँ और कहना चाहता हूँ कि यहाँके लोगोंकी दृष्टिमें *बाजार* बस्तियोंका केवल एक खुशनुमा नाम है। मैं इसके साथ एक पत्र नत्थी करता हूँ, जो मैंने इस प्रश्नपर सरकारको भेजा था। वह पत्र भी नत्थी है जो ट्रान्सवालके यूरोपीयोंके प्रार्थनापत्रके साथ उसे भेजा था। यूरोपीयोंका यह प्रार्थनापत्र भी भेज रहा हूँ।

१. साथके कागज ये थे: "पत्र: उपनिवेश-मन्त्रीको", फरवरी १८, १९०३; "पत्र: लेफ्टिनेंट गवर्नरको", मई १, १९०३; "टिप्पणियाँ: अवतककी स्थितिपर", मई ९, १९०३ और लेफ्टिनेंट गवर्नरको यूरोपीयोंका प्रार्थनापत्र, अप्रैल १९०३, देखिए सहपत्र पृष्ठ ३१९–२०।

मैं जानता हूँ कि मैं आपको, आपके अन्य कार्योंके बीचमें कागजपत्रों और दस्तावेजोंमें लाद रहा हूँ। इसके लिए मेरे पास एक यही बहाना है कि यह प्रश्न बड़े महत्त्वका है।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफिस : ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स, ४०२।

## २३२. पत्र : गो० कृ० गोखलेको

कोर्ट चेम्बर्स, रिसिक स्ट्रीट
पो० ऑ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
मई १०, १९०३

प्रिय प्रोफेसर गोखले,

मैं यहाँ रुककर बहुत बड़ी मुश्किलोंमें पड़ा हूँ। अब समस्याने बड़ा गम्भीर रूप धारण कर लिया है, इसलिए उसपर बहुत बारीकीसे ध्यान देनेकी जरूरत है। मुझे कबतक रुकना पड़ेगा, यह कहना कठिन है। स्वयं अपने बारेमें लिखनेके लिए मेरे पास समय है ही नहीं।

साथ बन्द कतरनें अत्यन्त महत्त्वकी है। मैं देखता हूँ कि बम्बई व्यापार-संघ (चेम्बर ऑफ कॉमर्स) ने सख्त विरोध-पत्र भेजा है। परन्तु, मुझे भय है, वह जानकारीसे रहित है। केप-अधिनियम निश्चय ही बुरा है। उसमें संशोधनकी आवश्यकता है। परन्तु दरवाजेको बिलकुल खुला रखना लगभग असम्भव जान पड़ता है। उसके अधीन बहुतसे विदेशी गोरे निकाले जा चुके हैं। उपनिवेशियोंकी यह निश्चित नीति जान पड़ती है कि वे अपने यहाँ देशान्तरवासको नियंत्रित करेंगे। इसलिए [हमारा सच्चा और कारगर कदम यह होना चाहिए कि हम रंगके आधारपर बने विधानका विरोध करें।] केप-अधिनियम और नेटाल-अधिनियम तत्त्वतः सभीपर लागू होनेवाले हैं। वे हमपर कड़ी चोट इसलिए करते हैं कि शिक्षाकी कसौटीमें भारतीय भाषाओंका ज्ञान सम्मिलित नहीं है। केप-अधिनियमका मसविदा तो ऐसा बनाया गया था कि उसमें भारतीय भाषाओंका ज्ञान शामिल हो जाये; परन्तु समितिने इसमें संशोधन कर दिया। *यहाँका* विधान भारतीयोंके विरुद्ध है (उसमें भारतीयोंको 'एशियाकी आदिम जातियोंके लोग' बताया गया है) और वह उन्हें जायदाद आदि रखनेके अधिकारसे वंचित करता है। आपको इन कानूनोंके पूरे पाठ पहले भेजे गये कागजोंमें मिलेंगे।

यदि आपका स्वास्थ्य अच्छा हो और आप समय निकाल सकते हों तो कृपया इस प्रश्नका अध्ययन करें और भारतमें इसके विरुद्ध आन्दोलन चलायें। [जितना ही मैं अपने लोगोंके देशान्तरवासका असर उनके चरित्रपर देखता हूँ उतना ही मेरा यह विश्वास दृढ़ होता है कि सबपर लागू किये जाने योग्य साधारण नियंत्रणोंके अधीन भी उपनिवेशोंमें हमारे देशान्तरवासके लिए दरवाजा खुला रखा गया तो हमारे लिए महान संभावनाएँ हैं।]

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४१०१) से।

## २३३. टिप्पणियाँ

बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
मई १६, १९०३

### ट्रान्सवालकी स्थिति

अभी कलमकी स्याही सूखने भी नहीं पाई है कि सरकारी तौरपर सूचना आ गई कि सरकार ३ पौंडके पंजीकरण (रजिस्ट्रेशन) कर को १८८५ की धारा ३ के अनुसार लागू करना चाहती है। लंदनवासी मित्रोंसे मिली सूचनासे प्रकट होता है कि इस कानूनमें परिवर्तन होगा। यदि ऐसा है तो यह कल्पना करना मुश्किल है कि यह ३ पौंडी पंजीकरण-कर वसूल करनेका प्रस्ताव ही अभी क्यों किया जा रहा है। बोअर-शासनमें यह अनिवार्य रूपसे कभी नहीं वसूल किया गया था।

यह समझसे परे है कि जिस करसे ब्रिटिश सरकार हमारी रक्षा करती थी, वही अब उसके नामपर जमा क्यों किया जाये; इस करके पक्षमें तो अभी जनताके राग-द्वेषका बहाना भी नहीं किया जा सकता। यूरोपीयोंका आन्दोलन व्यापारी परवानोंके विरुद्ध है। एशियाई-विरोधी सभाओंमें किसीने इस करकी वसूलीके बारेमें कानाफूसी भी नहीं की।

परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नरके पास हमने एक आदरयुक्त विरोध-पत्र भेजा है और यह सम्भव नहीं जान पड़ता कि उसके लन्दन पहुँचनेसे पहले करकी वसूली स्थगित कर दी जायेगी। परन्तु स्थिति इतनी नाजुक हो गई है कि आगे जो-कुछ भी हो, उसकी खबर लंदनको भेजते रहना उचित माना गया है।

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफ़िस: ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स, ४०२।

## २३४. ब्रिटिश भारतीय संघ और लॉर्ड मिलनर

गत मासकी २२ तारीखको ब्रिटिश भारतीय-संघ (ब्रिटिश इंडियन असोसिएशन) का एक शिष्ट-मंडल लॉर्ड मिलनरसे मिला था। उसकी भेंटका नीचे लिखा ब्यौरा लॉर्ड मिलनरने पत्रोंमें छपनेके लिए भेजा है।

उपस्थित: परमश्रेष्ठ गवर्नर ट्रान्सवाल और सर्वश्री मो० क० गांधी, अब्दुल गनी, हाजी हबीब, एच० ओ० अली, एस० वी० टॉमस और इमाम शेख अहमद।

श्री मो० क० गांधीने कहा कि मैं शिष्ट-मण्डलकी तरफसे इस भेंटके लिए परमश्रेष्ठको धन्यवाद देना चाहता हूँ। हम तीन पौंडी व्यक्ति-कर और भारतीयोंके सामान्य प्रश्नपर चर्चा करना चाहते हैं। जब हमने परमश्रेष्ठका म्यूनिसिपल कांग्रेसमें दिया हुआ भाषण पढ़ा तो हमारे मनमें परमश्रेष्ठके वहाँ प्रकाशित भावोंके लिए कृतज्ञता पैदा हुई और हमने सोचा, अब

हमारी मुसीबतोंका अन्त दीखने लगा है। परन्तु दूसरे ही दिन सुबह हमें परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नर, ट्रान्सवालका पत्र मिला जिससे मालूम हुआ कि सरकार सन् १८८५का तीसरा कानून लागू करनेवाली है और उसमें बिल्कुल तबदीली न की जायेगी। यह बिलकुल सच है कि कुछ एशियाइयोंने पिछली हुकूमतमें यह कर चुकाया था। असलमें यह कर चुकाये बिना उन्हें यहाँ व्यापार करनेका परवाना ही न मिल सकता था। लेकिन उसपर कभी नियमपूर्वक अमल नहीं किया गया। सन् १८८५ में जब यह कानून मंजूर हुआ तब ब्रिटिश भारतीयोंकी तरफसे शिकायतोंका ताँता बँध गया और उपनिवेश कार्यालयसे बोअरोंके इस करको लगाने और कानून बनानेके अधिकारके सम्बन्धमें बहुत कुछ पत्र-व्यवहार हुआ। अन्तमें पिछली हुकूमत पंच-फैसलेके लिए राजी हो गई; परन्तु पंचोंने अपना फैसला[1] भारतीयोंके खिलाफ दिया। फिर भी श्री चेम्बरलेनने कहा कि वे ट्रान्सवाल-सरकारसे मित्रवत् प्रार्थनाका अपना अधिकार तो सुरक्षित रखते हैं। उन्होंने ट्रान्सवाल-सरकारसे भी यह कह दिया कि ब्रिटिश भारतीयोंके साथ उनकी हार्दिक सहानुभूति है। आखिर यह कानून कभी पूरी तरह लागू नहीं किया गया। जब सन् १८९९ में बस्ती-कानूनपर अमल करनेका प्रयत्न किया गया, तब एक शिष्ट-मण्डल सर कनिंघम ग्रीन और एमरिस इवान्ससे मिला। एमरिस इवान्स पीछे सरकारी वकील डॉक्टर क्राउसे मिले। डॉ० क्राउजने उनको यह आश्वासन दिया कि बस्तियोंमें जानेसे इनकार करनेपर लोगोंके खिलाफ मुकदमे दायर करनेके बारेमें उनको कोई निर्देश नहीं मिले हैं। परन्तु अब तो स्थिति पूरी तरह बदल गई है और हम कर देने और बाजारोंमें जानेके लिए मजबूर किये जाने-वाले हैं। मैं नम्रतापूर्वक निवेदन करता हूँ कि भारतीयोंके लिए यह बोझा बहुत दुःखदायी होगा। भारतीय बड़ी संख्यामें हजूरियो, घरेलू नौकरों और बैरोंका काम करते हैं और लगभग ३ पौंड मासिक वेतन पाते हैं। इस तरह उनकी साल भरकी आयका बारहवाँ हिस्सा इस करके रूपमें निकल जायेगा। फिर यह कर एक तरहकी सजाकी कार्रवाई भी है, क्योंकि अगर भारतीय यह कर अदा नहीं करेंगे तो कानूनमें यह व्यवस्था है कि उनपर १० पौंडसे १०० पौंडतक जुर्माना किया जा सकता है और जुर्माना न देने पर उन्हें चौदह दिनसे लेकर छः महीनेतककी कैदकी सजा दी जा सकती है।

लॉर्ड मिलनर: क्या यह कर सालाना है?

श्री गांधीने कहा: यह कर सालाना नहीं है। यह सिर्फ एक बार दिया जाना है। इसका उद्देश्य इस देशमें भारतीयोंका प्रवास रोकना है। परन्तु हमें इस बातसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि जो लोग इस उपनिवेशमें बसे हुए हैं, यह उनपर भी लगाया जा रहा है।

पासोंके बारेमें श्री गांधीने कहा: शुरू-शुरूमें जब भारतीय शरणार्थी ट्रान्सवालमें वापस लौटे तब एशियाई दफ्तरने उनसे पुराने अनुमति-पत्र ले लिये और उन्हें अस्थायी नये पास दे दिये। अगर कोई ट्रान्सवाल-निवासी भारतीय दक्षिण आफ्रिकाके किसी दूसरे हिस्सेमें अपने मित्रसे मिलना चाहता तो उसके लिए भी पास आवश्यक था। ये पास कितने दिनके लिए हों, यह पास-अधिकारी तय करता था। इसके अलावा और भी बहुत-सी अनावश्यक मुसीबतें थीं। इसके बाद ये पास फिर अनुमति-पत्रोंके रूपमें बदल दिये गये। इस आशयकी सूचना अखबारोंमें देनेके बजाय भारतीय केवल यही बतानेके लिए दफ्तरमें लाये जाते थे। एक बार तो सुबह चार बजे कुछ भारतीय अपने घरोंमें से घसीट कर लाये गये और केवल यह बात सुनानेके लिए साढ़े नौ बजेतक दफ्तरमें खड़े रखे गये कि उनके पास अब कामके नहीं रहे, अतः उनके बजाय

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ १७७–७८ और १९०–९४।

अनुमति-पत्र ले लेने चाहिए। भारतीय समाजको पासों और अनुमति-पत्रोंकी लगातारकी हेरा-फेरीसे राहत देनेकी आवश्यकता है।

यह है हमारी स्थिति और हम परमश्रेष्ठकी सेवामें वर्तमान परवाना-पद्धति और ३ पौंडी व्यक्ति-करसे मुक्तिकी प्रार्थना करनेके लिए ही आये हैं। यह कानून हमारे लिए अत्यन्त दु:खदायी है। सरकारने इसे लागू करके यह प्रकट कर दिया है कि वह इसे स्थायी कानून बना देना चाहती है। यह स्थिति हमारे लिए और भी दु:खद है। यह खुले तौरपर कहा गया है कि लड़ाईका एक कारण ट्रान्सवालकी पिछली सरकार द्वारा इस करको हटानेसे इनकार करना था। लेकिन आज हम क्या देखते हैं? यही कि, नई सरकार सन् १८८५ का तीसरा कानून हमपर ऐसे रूपमें लागू करना चाहती है जैसा कि वह पिछली सरकारके दिनोंमें कभी लागू नहीं किया गया था। चूँकि स्थिति ऐसी है, इसलिए इसका मतलब यह होता है कि अब *बाजारों* और बस्तियोंके अतिरिक्त ट्रान्सवालमें अन्यत्र कहीं हमें जमीन-जायदाद रखनेकी अनुमति कभी नहीं दी जायेगी। मैं अत्यन्त आदरके साथ कहता हूँ कि यह ब्रिटिश संविधानके आधारभूत सिद्धान्तोंके बिलकुल विपरीत है। किसी भी अन्य ब्रिटिश उपनिवेशमें यह प्रचलित नहीं है। अब इस दिशामें एक नया शाही उपनिवेश मार्गदर्शन करा रहा है। मैं इस सिलसिलेमें एक दूसरी कठिनाईका भी उल्लेख करना चाहूँगा। प्रिटोरिया और जोहानिसबर्गमें जिन जमीनोंपर मसजिदें बनी हुई हैं वे बरसों पहले खरीदी गई थीं, परन्तु इस कानूनके कारण ये जमीनें भारतीयोंको नहीं दी जा सकती। हाइडेलबर्गकी मसजिदके सम्बन्धमें भी यही कठिनाई है। हमने लॉर्ड रॉबर्ट्ससे प्रार्थना की। उन्होंने बताया कि अभी यहाँ फौजी कानून लागू है; लेकिन उन्हे आशा है, गैर-फौजी हुकूमत आते ही तमाम ब्रिटिश प्रजाजनोंके साथ एक-सा व्यवहार किया जायेगा। फिर भी वर्तमान हुकूमत द्वारा ठीक यही कानून हमारे विरुद्ध लागू किया जा रहा है।

इसके अलावा, बाहर जानेके पासोंपर फोटो लगानेकी परेशानी भी है। अगर कोई भारतीय किसी दूसरे उपनिवेशमें अपने मित्रसे भेंटके लिए जाना चाहता है तो उसे उस उपनिवेशमें जाने और वहाँसे वापस आनेका पास तभी दिया जा सकता है जब वह पहले अपने फोटोकी तीन नकलें एशियाई दफ्तरमें भेजे। ऐसे परवानोंका जाली प्रयोग रोकनेके लिए यह उपाय आवश्यक हो सकता है; परन्तु मैं अर्ज करना चाहता हूँ कि कुछ भारतीयों द्वारा परवानोंके जाली प्रयोगकी संभावनाके आधारपर यह मान लेना उचित नही है कि सभी भारतीय अपराधी प्रवृत्तिके होते हैं। जो ऐसी प्रवृत्तिके हो उन्हें जरूर पकड़कर कड़ी सजाएँ दी जायें। इस पद्धति तथा एशियाई दफ्तरकी संचालन-विधिके विरुद्ध हमने बार-बार शिकायतें की हैं। *स्टार*में एक मुलाकातका हाल छपा है। कहते हैं, इसमें वहाँके अधिकारीने कहा था कि इस दफ्तरका उद्देश्य एशियाइयोंके हितोंकी रक्षा करना नही, बल्कि श्वेत-संघके विचारोंको कार्य-रूप देना है।

जब श्री चेम्बरलेन यहाँ आये थे, तब भी ब्रिटिश भारतीयोंका शिष्ट-मंडल उनसे मिला था। श्री चेम्बरलेनने शिष्ट-मण्डलसे कहा था कि जबतक यूरोपीय लोगोंकी भावनाएँ भारतीयोंके अधिकारोंमें बाधक नही होतीं तबतक वे उन भावनाओंसे सहमत होकर चलना अपना कर्त्तव्य बना ले। हमने उनकी यह सलाह हृदयंगम कर ली है। लेकिन श्वेत-संघ माँग करता है कि भारतीय इस देशसे बिलकुल निकाल ही दिये जायें। मैं परमश्रेष्ठको विश्वास दिला सकता हूँ कि हम श्री चेम्बरलेनकी सलाहका, जहाँतक वह हमारे स्वाभिमानपर चोट नहीं पहुँचाती, पालन करनेका प्रयत्न करते रहे हैं। मैं परमश्रेष्ठको श्री चेम्बरलेनके शब्दोंका स्मरण दिलाता हूँ। उन्होंने कहा था कि इस देशमें इस समय जो भारतीय हैं उनके साथ न्यायोचित और

सम्मानपूर्ण व्यवहार किया जायेगा। अब हमारी माँग भी यही है। मैं समझता हूँ कि मुझे सम्राज्ञीकी सेवामें इससे अधिक कुछ नहीं कहना है।

श्री एम० आं० अलीने शिकायत की कि हम जहाँ चाहते हैं वहाँ हमें व्यापार नहीं करने दिया जाता और हम अपने परवाने बदलवा नहीं सकते।

इमाम मीर अहमदने कहा कि कुछ महीने पहले मैंने एक मुल्लाके लिए परवाना माँगा था; लेकिन मुझे साफ इनकार मिला। निश्चय ही कोई भी देश अपनी आबादीके एक वर्गके धार्मिक कृत्य करानेके लिए आनेवाले मुल्ला या पुजारीको प्रवेशकी अनुमति देनेसे इनकार नहीं कर सकता। मैंने सदा ही देखा है कि जब हम अफसरोंसे मिलनेके लिए किसी भी सरकारी दफ्तरमें जाते हैं तब हमारी राहमें बड़े रोड़े अटकाये जाते हैं। उदाहरणके लिए, मैं उपनिवेश-सचिवसे मिलनेके लिए कभी अन्दर नहीं जा सका।

लॉर्ड मिलनरने कहा: मेरा खयाल है, जो कुछ कहा गया है वह एशियाई-विभागकी स्थापनाकी आवश्यकता बताता है। यह हो सकता है कि वर्तमान एशियाई दफ्तर, जो एक नई संस्था है, बहुत अच्छी तरह काम न कर पा रहा हो। लेकिन मेरा विचार यह है कि इस देशमें बसे एशियाइयोंको अपने मामलोंकी सुनवाईके लिए उपनिवेश-सचिवके जैसे व्यस्त कार्यालयका ध्यान खींचनेमें अन्य इतनी संस्थाओंसे स्पर्धा करनेके बजाय यदि एक विशेष सरकारी सदस्य मिल जाये तो यह उनके लिए बहुत ही सुविधाजनक होगा। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि यह विशेष अफसर खुदको एशियाइयोंसे सम्बन्धित कानूनोंपर अमल करानेवाला व्यक्ति ही न समझे, बल्कि उनके हितोंका रक्षक भी समझे और जब वे कोई शिकायत लेकर पहुँचें तो उनके साथ अच्छी तरह पेश आये। मैं समझता हूँ कि इस तरहका एशियाई-विभाग बहुत वांछनीय है और उसकी स्थापनासे फायदा ही होगा। आजकी चर्चाका विषय बहुत-कुछ ३ पौंडी कर ही रहा। मेरा खयाल है कि दूसरे अधिक महत्त्वपूर्ण विषयोंकी तुलनामें यह एक छोटी बात है। ३ पौंडी करपर इतना जोर देनेका कारण केवल यह है कि वह मौजूदा कानूनका हिस्सा है। मैं आपको यह भी बता दूँ कि मैं उसे हर हालतमें मुनासिब मानता हूँ। जो कानून हमारे सामने जिस शक्लमें हैं उनको हम उसी शक्लमें लागू कर रहे हैं। लेकिन मैं आपको एक बात और बता दूँ कि हम सन् १८८५ के तीसरे कानूनको सर्वांग-सम्पूर्ण बिलकुल नहीं मानते। मैंने हमेशा कहा है कि इस देशमें एशियाइयोंकी स्थितिका मुकाबला विशेष कानूनसे करना आवश्यक है; लेकिन मेरे विचारसे जिस कानूनके अन्तर्गत उनसे व्यवहार किया जाना चाहिए वह कानून सन् १८८५ के तीसरे कानूनसे बहुत बातोंमें भिन्न होगा। मैं नहीं जानता कि इस विशेष कानूनकी धाराएँ क्या हों, इस बारेमें हमारा पूरी तरह एकमत होना जरूरी है। परन्तु जबकि मेरा आपके साथ सभी बातोंमें सहमत होना जरूरी नहीं है, तब मैं एशियाइयोंके प्रति व्यवहारके बारेमें यहाँ जो बहुत-सी बातें सुनता हूँ या पत्रोंमें पढ़ता हूँ उनसे भी मेरा सहमत होना जरूरी नहीं है।

मेरा खयाल है कि यहाँके समाजके सामान्य हितकी दृष्टिसे एशियाइयों और अन्य लोगोंके प्रवेशपर रोक लगानेका हमें पूरा अधिकार है। यह प्रत्येक राज्यका स्वाभाविक अधिकार होता ही है। इसपर क्षण भरके लिए भी सन्देह नहीं किया जा सकता; लेकिन मैं यह खयाल करता हूँ कि जो एशियाई यहाँ हैं, या जिनको हम आगे इस देशमें आने दें, उनके साथ जरूर अच्छा बरताव होना चाहिए और उनको यह महसूस होना चाहिए कि उनके अधिकार यहाँ सुरक्षित हैं। मैं तो अबसे पहले ही यहाँ एक नया स्थायी कानून पास होनेकी आशा करता था, ताकि ब्रिटिश भारतीय या कोई भी दूसरा व्यक्ति अपने मनमें यह कह सके: "मैं जानता हूँ कि यदि ट्रान्सवालमें जाऊँ तो मुझे कुछ विशेष शर्तें माननी होंगी। और वैसा

करने पर मुझे कोई कठिनाई न होगी।" साथ ही, जो लोग पहलेसे ही उपनिवेशमें हैं उनके प्राप्त अधिकारोंकी रक्षा भी हो जाती। लेकिन दुर्भाग्यवश इसमे विलम्ब हो गया है। आप स्वयं देख सकते हैं कि इस मामलेमें कानून पास करनेमें अब क्या कठिनाइयाँ हैं। विरोधी दृष्टिकोणोंको समीप लानेमें काल, वाद-विवाद और विचारकी शक्तिमें मुझे बहुत विश्वास है। परन्तु जैसे कानूनका सुझाव मै देता हूँ उसपर अभी शायद ब्रिटिश सरकार मंजूरी न देगी, और शायद भारत-सरकार भी उसका विरोध करे। दूसरी तरफ ब्रिटिश सरकार अपनी तरफसे कोई कानून सुझाये तो उसे शायद यहाँकी जनता स्वीकार न करे और यदि विधान-सभा उसे पास भी कर दे तो उससे आपका विरोध जोर पकड़नेसे आपकी हालत ज्यादा खराब हो सकती है। इसके अलावा उपनिवेशको स्वराज्य मिलते ही वह निस्सन्देह फौरन रद भी हो जायेगा। गोरी आबादीके इतने बड़े विरोधके मुकाबले जोर-जबरदस्तीसे कोई काम करानेका प्रयत्न व्यर्थ होगा। इसलिए मै सोचता हूँ कि यहाँ एक ऐसा कानून बनाया जा सकता है, जिससे आपकी माँगी सब तो नही, किन्तु बहुत-सी चीजें आपको मिल जायें। उससे श्वेत-संघ पूरी तरहसे संतुष्ट तो न होगा; परन्तु फिर भी गोरी आबादीके बहुत-से समझदार लोगोंको राजी करनेमें बहुत सहायता मिलेगी। इस बीच जो कानून अभी है उसपर अमलके लिए सरकारपर बार-बार जोर दिया गया है और सरकार भी जबतक वह कानूनकी पुस्तकमें है, इसके अलावा कुछ नही कर सकती। आप दलील देते हैं कि पिछली हुकूमतने कभी पूरी तरह उसपर अमल नहीं किया। पिछली ट्रान्सवाल-सरकारके इस तरीकेपर ही मुझे आपत्ति है। उसमें बेहद मनमानी थी। कानून लागू था; लेकिन वह अमलमें नही लाया गया। फिर भी तलवार तो सदा आपके सिर पर लटकती ही रहती थी। आपको कभी पता न चलता था कि आपके ऊपर क्या बीतनेवाली है। कुछ लोगोंसे कर वसूल किया जाता और कुछ छूट जाते थे। मै तो एक बात कहता हूँ। जबतक करकी बात कानूनकी पुस्तकमें है तबतक सबको समान रूपसे कर चुकाना ही चाहिए।

कहा गया है कि लेफ्टिनेंट गवर्नर साहबके विचारोसे मेरी भावनाएँ भिन्न हैं। मैं नही समझता कि उनमें कोई असंगति है। उस दिन मैंने जो भाव प्रकट किये थे और जिनका हवाला आपने दिया है उनपर मै आज भी कायम हूँ। परन्तु मै साथ ही इस बातपर भी कायम हूँ कि आप वर्तमान स्थितियोंमें सन्तुष्ट रहे और जबतक यह कानून बदल नही दिया जाता तबतक इसका पालन करें। मै नही मानता कि उसका अमल यहाँ कठोरताके साथ किया जा रहा है। वर्तमान सरकार यहाँ पहलेसे बसे हुए भारतीयोंका उचित ध्यान रख रही है। मेरे खयालमें उनका पंजीकरण (रजिस्ट्रेशन) उनकी रक्षाके लिए है। इस पंजीकरणके साथ ३ पौंडका कर लगा दिया गया है। यह भी केवल एक बार माँगा जाता है। पिछली हुकूमतको जिन्होंने कर दे दिया है वे केवल इसका प्रमाण पेश कर दें। फिर उन्हें दूसरी बार यह कर नहीं देना होगा। एक बार उनका नाम रजिस्टर पर चढ़ जानेके बाद उसे दूसरी बार दर्ज करानेकी अथवा नया परवाना लेनेकी जरूरत न होगी। इस पंजीकरणसे आपको यहाँ रहने और कहीं भी जाने और आनेका अधिकार मिल जाता है। इसलिए मुझे तो लगता है कि पंजीकरणमें आपकी रक्षा है। उससे सरकारको भी मदद हो जाती है। इसलिए जो भी कोई कानून बने मैं चाहूँगा कि उसमें पंजीकरणका विधान अवश्य शामिल रहे।

परमश्रेष्ठ लॉर्ड मिलनरने आगे कहा: अब रही *बाजारों*की बात। क्या *बाजारों*की बातको मान लेना भारतीयोंके लिए लाभदायक नहीं होगा — बशर्ते कि ये *बाजार* अच्छे हों, अच्छी जगहपर हों और इनकी रचना भी ठीक हो? मै तो यह कहूँगा कि मेरे खयालसे एक बार

उनके अच्छी तरह कायम हो जानेपर उनमें जाकर शान्तिसे बस जानेमें भारतीयोंका साफ फायदा है, बजाय इसके कि जो लोग उन्हें नहीं चाहते उनके बीच और जहाँ-तहाँ बस कर वे अपने लिए विरोध खड़ा करें। जो भारतीय ऊँची श्रेणीके हैं अथवा जो दूसरी जगह बस गये हैं उन्हें इन बाजारोंमें बसनेके लिए मजबूर करना निःसन्देह उचित नहीं होगा। अगर कुछ ब्वेत-संघी सज्जन यह चाहें कि सामाजिक दरजा और प्राप्त अधिकारोंका कुछ भी खयाल किये बगैर सब भारतीयोंको इन बाजारोंमें जबरदस्ती भेज दिया जाये, तो मैं कहता हूँ मैं उनसे सहमत नहीं हूँ। परन्तु यह उचित हो या अनुचित — और मेरे खयालसे यह अनुचित नहीं — गोरे समाजके लोग बड़ी संख्यामें और हर तरहके एशियावासियोंके अपने बीचमें आकर भर जानेसे नाराज होते हैं और वे इसका विरोध ही करेंगे।

कोठों, मसजिदों और परवानोंसे सम्बन्धित प्रश्नोंके बारेमें आपने जो कहा उसको मैंने टीप लिया है। आपने बताया कि मसजिदें आपके नामोंपर दर्ज करानेमें कठिनाइयाँ हैं। इन सबकी मैं जाँच करूँगा। मसजिदें आपके नामोंपर दर्ज कैसे हों, इसके बारेमें बारीक कानूनी अड़चनके सिवा और कोई कठिनाई होगी, ऐसा मेरा खयाल नहीं। इस विषयपर कानून बनाते समय, मुझे तो कोई शंका नहीं, हम पूजा और उपासनाके स्थान उन्हींके नामपर दर्ज किये जानेकी व्यवस्था करेंगे जो उनका उपयोग करते होंगे। मेरा खयाल है, उन्हें उनके नामोंपर न रहने देना बहुत बड़ी कठोरता होगी। सामान्यतया मैं ऐसी हरएक बातके विरुद्ध हूँ, जिससे एशियाइयोंका जीवन कष्टमय हो, या जिसमें उन्हें अपना अपमान लगे। क्या उनपर कोई पाबन्दियाँ लगाई जायें? हाँ; सिर्फ नये प्रवेश और बसनेके विषयमें जो प्रतिबन्ध और नियम सारे समाजके हितको ध्यानमें रखकर लागू किये जायें उनको छोड़ दीजिए। परन्तु इनमें भी जिनका सामाजिक दरजा ऊँचा माना जाता है अथवा जो पहले ही से कानूनके अनुसार कहीं बस गये हैं, उनका अपवाद तो होगा ही।

### परवानोंके बारेमें

आप कहते हैं कि प्राप्त अधिकारोंको भी हमने मान्य नहीं किया है। इसका कारण तो यह है कि युद्धके बाद बहुतसे लोग अनधिकृत रूपसे ट्रान्सवालमें घुस आये हैं। जो भारतीय युद्धसे पहले यहाँ थे उनके अधिकार हमने बराबर माने हैं। वे युद्धसे पहले जिन अहातोंमें थे उनके लिए अथवा उनके बदलेमें दूसरे किसी अहातेके लिए नये परवाने उन्हें बराबर दिये जाते हैं।

### सामान्य विचार-विनिमय

श्री गांधी: जिनको नये परवाने दिये गये हैं वे तो शरणार्थी हैं, जो उपनिवेशके दूसरे भागोंमें व्यापार करते थे। अब उन्होंने अपने लिए नये मकान और दूकानें बना ली हैं, और उन्हें वर्षके अन्तमें इन्हें छोड़ कर चले जाना पड़ेगा, क्योंकि सरकार उन्हें शायद नये परवाने नहीं देगी।

लॉर्ड मिलनर: उनके असली परवाने बिलकुल दूसरी जगहोंके लिए थे। आज तो यह स्थिति है कि, मान लीजिए, एक भारतीयके पास युद्धसे पहले जोहानिसबर्गकी किसी एक सड़कपर मकानका परवाना था, तो या तो वह उसी परवानेको नया करवा सकता है या जोहानिसबर्गमें ही किसी दूसरी दूकानके लिए उसे बदलवा सकता है।

श्री गांधी: मेरा मतलब यह है कि युद्धके पहले कुछ भारतीयोंके पास ट्रान्सवालके दूसरे हिस्सोंमें व्यापार करनेके परवाने थे। बीचमें युद्ध आ गया और वे शरणार्थी बनकर कहीं बाहर चले गये। अब लड़ाई खतम होनेपर वे विभिन्न मुहल्लोंमें वापस लौट आये और वहाँ उन्होंने

नये परवाने प्राप्त कर लिये। परन्तु उन लोगोंसे कहा जाता है कि वे अपने परवानोंको नया नहीं करवा सकते, क्योंकि लड़ाईके पहले उन हलकोंमें व्यापार करनेके परवाने उनके पास नहीं थे।

लॉर्ड मिलनर: यह तो नई बात है। मैं तो उन लोगोंके बारेमें सोच रहा था, जो युद्धके पहले किसी खास शहरमें व्यापार कर रहे थे, पर अब उसी शहरकी किसी दूसरी दूकानमें करना चाहते हैं।

एच० ओ० अली: बात यह है — मान लीजिए कि लड़ाईके पहले मेरी दूकान जोहानिसबर्गमें कमिश्नर स्ट्रीटमें थी, और अब मैं उसके बदलेमें हाइडेलबर्गमें व्यापार करना चाहता हूँ। ऐसा करनेकी इजाजत मुझे नहीं मिलती, क्योंकि लड़ाईसे पहले हाइडेलबर्गमें व्यापार करनेका परवाना मेरे पास नहीं था।

लॉर्ड मिलनर: यह बिलकुल नई बात है। इसपर मुझे विचार करना होगा। मैं तब अपनी राय दे सकूँगा।

एच० ओ० अली: हमारे खिलाफ जो यह आन्दोलन किया जा रहा है उसकी जड़में व्यापारिक ईर्ष्या है।

लॉर्ड मिलनर: मैं तो देखता हूँ कि ऐसी व्यापारिक ईर्ष्या यहाँ बहुत अधिक है। यह बिलकुल स्वाभाविक है। यहाँपर काले लोगोंकी आबादी बहुत बड़ी है। उनके बीच बहुत कम गोरे लोग रहते हैं। उनके लिए कुछ खास धन्धे ही तो खुले हैं। इसलिए अगर वे चाहें कि इस उपनिवेशमें बहुतसे अजनबी लोग घुसकर उनकी रोटी न छीन पायें तो यह स्वाभाविक है। इसलिए उपनिवेशमें नये आदमियोंके आनेपर रोक लगानेके लिए वे जो कह रहे हैं सो बिलकुल ठीक है। अगर यहाँपर एक लाख आदमियोंके लिए रोजीके साधन हैं तो हम नहीं चाहेंगे कि यहाँपर दो लाख आ जायें और हमें दबा लें। हमारी संख्या यहाँपर इतनी कम है कि हम बाहरके लोगोंका — सो भी दूसरी कौमके लोगोंका — बेरोक आने देना बरदाश्त कर ही नहीं सकते। यहाँ पहलेसे ही इतनी अधिक प्रजातीय समस्याएँ मौजूद हैं।

हाजी हबीब: फिर भी भारतमें तो भारतीयोंके बीच व्यापार करके बहुतसे गोरे अपना पेट भर ही रहे हैं। परन्तु *बाजारों*के बारेमें क्या होगा? इनमें भारतीय वैसे मकान-दूकान कैसे बना सकते हैं जैसे उनके लिए बनाना जरूरी बताया गया है? फिर आज ३० *बाजारों*की माँग हो सकती है तो कल ३०० की। मुद्देकी बात यह है कि हम ऐसा कोई कानून नहीं चाहते जिसके अनुसार हमें *बाजारों*में जाकर बसनेके लिए मजबूर किया जा सके।

लॉर्ड मिलनर: मैं नहीं चाहता कि अभी जो भारतीय वहाँ हैं उनको *बाजारों*में भेजा जाये। परन्तु मैं समझता हूँ कि हमें यह कहनेका हक है कि एशियाके व्यापारियोंको हम उचितसे अधिक संख्यामें यहाँ नहीं आने देंगे। अगर वे आयेंगे तो उन्हें कुछ प्रतिबन्धोंके साथ ही आना पड़ेगा।

श्री गांधी: उस दिन परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नरके सामने यह प्रस्ताव रखा गया था कि *बाजार* बसानेके लिए जो जमीनें प्राप्त की गई हैं वे हमें बता दी जायें। हमने यह भी सुझाया था कि जो-कोई नया परवाना लेना चाहता है उससे पूछा जाये कि क्या वह उस जमीनपर अपनी दूकान खड़ी करनेके लिए परवाना लेगा। परन्तु यह लाजिमी न हो कि हम वहीं जाकर व्यापार करें। ऐसा करनेसे स्वभावतः हमें बुरा लगता है। अगर *बाजार* हों तो स्वाभाविक ही है कि गरीब वर्गके भारतीय वहाँ चले जायेंगे। अब भी इस वर्गके अधिकतर लोग बस्तियोंमें ही हैं। वे वहाँ स्वभावतः बस गये हैं।

लॉर्ड मिलनर: नया कानून बनाते समय आपकी बातपर जरूर विचार करना चाहिए। परन्तु अभी तो मैं इस बातपर जोर देता हूँ कि जबतक वर्तमान पद्धति जारी है सरकारका

यह कहना बिल्कुल वाजिब है कि कानूनका पालन होना ही चाहिए। यह बतानेकी जरूरत नहीं कि सरकारके दिलमें आपके खिलाफ कोई दुर्भाव नहीं है। हाँ, शायद वह महसूस करती है कि अब एशियाई अधिक व्यापारियोंको यहाँ आने देना अच्छा नहीं है। जो आकर बस गये हैं उनके बारेमें तो मैं यही कह सकता हूँ कि आशा है वे फूलते-फलते रहेंगे।

श्री गांधी: यह भावना तो केवल परमश्रेष्ठ तक ही सीमित है। ममलन बन्दरगाह पर जहाजसे उतर कर यहाँ तक पहुँचनेमें एक भारतीयको तीन महीने लग जाते हैं।

लॉर्ड मिल्नर: एक बात तो पक्की है कि एक समय वह था जब अंग्रेजोंको छोड़कर दूसरे जितने लोग यहाँ आते थे उनकी सम्मिलित संख्यासे कहीं अधिक संख्यामें यहाँ भारतीय आते थे। मुझे कहना चाहिए, एक समय मुझे लगता था कि हम सीमासे बहुत आगे बढ़ रहे हैं और भारतीयोंको बहुत अधिक परवाने देते जा रहे हैं।

एच० ओ० अली: इसमें भूल रेलवे-अधिकारियोंकी थी, क्योंकि उन्होंने सोचा कि अपनेको शरणार्थी साबित करनेवाले सभी भारतीयोंको यहाँ तुरन्त वापसीका हक है। शान्ति-रक्षा अध्यादेश जारी होनेतक यह चलता रहा।

लॉर्ड मिलनर: अब ३ पौंडी करकी बात फिर लें। इसके खिलाफ अभीतक तो कोई वाजिब दलील मैंने नहीं सुनी।

एच० ओ० अली: वह तो विशेष कर है। यूनानियों, आर्मीनियाइयों और कई दूसरी कौमोंको यह विशेष कर नहीं देना पड़ता। वे केवल १८ शिलिंग सालाना देते हैं, बस।

लॉर्ड मिलनर: हाँ, परन्तु उन्हें यह कर हर साल देना पड़ता है, जब कि आप केवल एक बार ३ पौंड देते हैं और फिर खत्म कर देते हैं।

एच० ओ० अली: लेकिन इस ३ पौंडके बदले हम १८ शिलिंग सालाना देना ज्यादा पसन्द करेंगे।

लॉर्ड मिलनर: परन्तु इस मामलेमें किसीकी पसन्दका सवाल नहीं है। मौजूदा कानून कहता है, आपको ३ पौंड देना है और यह कानून लागू किया जाना है।

एच० ओ० अली: इस कानूनके खिलाफ हमने वर्षों अपनी आवाज उठाई है और हमारा तो खयाल है कि यदि कहीं अब हम इसके सामने झुक गये तो अपने मामलेको खुद ही कमजोर बना लेंगे।

लॉर्ड मिलनर: आपको अपने विचार सुनानेका पूरा हक है। मैं तो केवल इतना ही कहता हूँ कि एक प्रचलित कानूनपर जब सरकार अमल करेगी और आप उसका विरोध करेंगे तब आप गलती पर होंगे।

एच० ओ० अली: हम ऐसा कोई काम कभी नहीं करेंगे। इसीलिए तो हम परमश्रेष्ठकी सेवामें आये हैं। इस मामलेमें सरकारका जो भी निर्णय होगा हम उसका पालन करेंगे। परन्तु अगर हमारे खिलाफ किसीको यह एतराज हो कि हमारे मकान साफ-सुथरे नहीं होते तो मेरा खयाल है नगरपालिका और कड़े कानून बना दे और अपने निरीक्षकोंको हमारे मकानोंका निरीक्षण करनेके लिए भेजे। मैं तो समझता हूँ कि किसीपर भी दूसरी बार जुर्माना करनेकी नौबत नहीं आयेगी। और एक आदमीपर जुर्माना होते ही दूसरे सचेत हो जायेंगे।

इस भेंटकी कृपाके लिए लॉर्ड मिलनरको धन्यवाद देकर शिष्ट-मण्डल विदा हो गया।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, ११–६–१९०३

## २३५. ट्रान्सवालकी स्थिति

[जोहानिसबर्ग
मई २४, १९०३]

### २३ मई, १९०३ को समाप्त सप्ताहमें ट्रान्सवालकी स्थिति

स्मरण होगा कि सन् १८८५ के तीसरे कानूनके अन्तर्गत, जो सन् १८८६ में संशोधित हुआ[1], उपनिवेशमें आबाद होनेवाले प्रत्येक भारतीयको ३ पौंड पंजीकरण (रजिस्ट्रेशन)-शुल्क देना आवश्यक है।

सरकारने उक्त कानूनको लागू करनेका निर्णय किया; अतः उसने विज्ञापित किया कि जिन भारतीयोंने पिछले शासनमें ३ पौंड कर नहीं दिया है वे उसे तत्काल दे दें। इसलिए भारतीयोंने निम्नलिखित आधारोंपर लॉर्ड मिलनरसे संरक्षणकी अपील की:

(१) सन् १८८५ का तीसरा कानून ब्रिटिश सरकारने कभी मंजूर नहीं किया और वह कूटनीतिक निवेदनोंके विफल हो जानेके बाद ही कानूनकी किताबमें रहा।

(२) पिछले शासनमें यह कर नियमित रूपसे कभी लागू नही किया गया।

(३) यह कानून, जिसके हटाये जानेकी बात भी युद्धका एक कारण थी, लागू नहीं किया जाना चाहिए।

(४) पासों और अफसरोंके लगातार परिवर्तनसे भारतीयोंको अब विश्राम आवश्यक है। एशियाई कार्यालयने, जिसके जुएमें फँदे हुए वे कराह रहे हैं, उनसे स्थायी अनुमति-पत्र छीन लिये हैं और उनको अस्थायी पास दिये हैं। ऐसा करनेका उसे कोई कानूनी अधिकार न था। इन पासोंके बदले फिरसे अनुमति-पत्र दिये गये। भारतीयोंके दिमागोंमें से पुलिसके मुकदमोंकी स्मृति अभी मिटी भी नहीं थी कि पंजीकरणके प्रमाणपत्रों (रजिस्ट्रेशन सर्टिफिकेट्स) का प्रस्ताव आ धमका है, जिसके लिए ३ पौंड देने पड़ेंगे।

(५) गरीब फेरीवाले और दूसरे भारतीयोंके लिए इसका भुगतान करना इतना भारी पड़ेगा कि वे कुचल जायेंगे। उनके लिए ३ पौंडकी रकम देना मजाक नहीं है।

(६) जो व्यक्ति यह कर न दे सकेगा उसपर १० पौंडसे १०० पौंडतक जुर्माना किया जा सकेगा, अन्यथा उसे १४ दिनसे छः मासतककी कैदकी सजा भुगतनी होगी। उपनिवेशके अन्य कर केवल दीवानी आदेशपत्रसे वसूल किये जा सकते हैं।

(७) यह कर आय बढ़ानेके उद्देश्यसे नहीं लगाया गया है, बल्कि भविष्यमें प्रवासियोंका आगमन रोकनेके लिए है। किन्तु चूँकि उपनिवेशमें केवल वास्तविक शरणार्थी ही प्रविष्ट होने दिये जाते हैं, इसलिए निरोधक करकी कोई आवश्यकता नहीं है।

(८) ३ पौंडी कर केवल गेहुँआँ चर्मधारी होनेकी सजा है। मालूम यह होता है कि जहाँ काफिरोंपर बिलकुल काम न करने या अपर्याप्त काम करनेके कारण कर लगाया गया है, वहाँ हमपर प्रत्यक्षतः इसलिए कर लगाया जाना है कि हम अत्यधिक काम करते है। दोनोंमें समान रूपसे एक ही चीज मिलती है और वह है श्वेत चर्मका अभाव।

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९१।

(९) इस सम्बन्धमें सबसे अजीब बात यह है कि इस करकी वसूलीकी कोई माँग गोरे संघों (ह्वाइट लीग्ज) की ओरसे नहीं की गई है। वे केवल एक बात चाहते हैं और वह है भारतीयोंका निर्वासन — बिलकुल देशके बाहर नहीं तो शहरोंके बाहरकी पृथक् बस्तियोंमें ही सही।

इस मामलेमें एक शिष्ट-मण्डल परमश्रेष्ठ [लॉर्ड मिलनर] से मिला था। उन्होंने उसकी बात देरतक धैर्य और शिष्टतासे सुनी; किन्तु कहा कि करको लागू न करनेके पक्षमें ऊपर जो आधार गिनाये गये हैं उनमें से एक भी उन्हें मजबूत दिखलाई नहीं पड़ता; और यह कि, भारतीयोंके प्रति सरकारका भाव अमित्रवत् नहीं है, और परमश्रेष्ठके विचारसे, यद्यपि भविष्यमें भारतीयोंका प्रवास निश्चय ही नियन्त्रित रहेगा, वर्तमान निवासी अच्छे व्यवहारके अधिकारी हैं। शिष्ट-मण्डल द्वारा उठाई अन्य बातोंके उत्तरमें परमश्रेष्ठने कहा, मैं विचार कर रहा हूँ कि वर्तमान कानूनके स्थानमें दूसरा कानून कैसे लाया जाये। उन्होंने यह भी कहा कि एशियाई कार्यालयके पृथक् रहनेमें मुझे कोई बात अनुचित नहीं दिखाई देती। वह तो वास्तवमें भारतीयोंके लिए हितकारी है। उन्होंने हमें सलाह दी कि हम करके भुगतानका विरोध न करें और अनिवार्यके आगे सिर झुकायें।

यद्यपि करके भुगतानके सम्बन्धमें हम, आदरपूर्वक, परमश्रेष्ठसे भिन्न राय रखते हैं, तथापि हमने उनकी सलाह मान लेनेका निर्णय किया है: (१) क्योंकि जब कभी सम्भव हो, हम सरकारसे सहमत होना चाहते हैं और (२) क्योंकि हमारा खयाल है कि हमारी शक्ति और हमारे लंदनके मित्रोंकी शक्ति एक ही केन्द्रीय बातमें लगनी चाहिए, और वह बात है वर्तमान कानूनको रद कराना।

एशियाई कार्यालयके सम्बन्धमें जब कि परमश्रेष्ठका यह विचार बहुत ही समाधानप्रद है कि, अबतक वह हमारे लिए हितकारी है, तब, व्यवहारमें, वह स्थापनाके दिवससे ही हमारे ऊपर सचमुच एक जुआ ही सिद्ध हुआ है। भारतीय समुदायने कभी जाना ही नहीं कि चैनकी सांस लेना कैसा होता है।

## ईस्ट लंदन

दुरै सामी और नाडा नामके दो स्वच्छ वस्त्रधारी भारतीयोंको क्रमशः ६ और ९ मईको ईस्ट लंदनकी ऑक्सफोर्ड स्ट्रीटमें सड़ककी पटरीपर चलनेके अपराधमें दो-दो पौंड जुर्माने या क्रमशः १४ दिन और एक मासकी कड़ी कैदकी सजा दी गई है। इसलिए पटरीपर चलनेका उपनियम पूरी तरहसे अमलमें लाया जा रहा है। इससे ईस्ट लंदनके भारतीयोंमें स्वभावतः हैरानी पैदा हो गई है। भारतीय विरोधपत्रका जो उत्तर नगर-परिषदने दिया था उसकी ध्वनिसे यह आशा हुई थी कि यह कानून विधिवत् अमलमें न लाया जायेगा और, कमसे-कम, साफ-सुथरे वस्त्र पहने हुए भारतीय अपमानित न किये जायेंगे। किन्तु ईस्ट लंदनके भारतीय संघके मन्त्रीसे पुलिसने नम्रतापूर्वक यह कहा कि वे पटरीसे दूर रहें, अन्यथा गिरफ्तार कर लिये जायेंगे। हालत बहुत ही दुःखदायी है। यदि श्री चेम्बरलेन ईस्ट लंदनमें वर्तमान कानूनके अमलमें या खुद वर्तमान कानूनमें सरकारी तौरपर हस्तक्षेप नहीं कर सकते, तब भी वहाँके लोग यह आशा करते हैं कि वे कृपा करके गोरे अधिवासियोंसे मित्रवत् प्रार्थना करें और अपना भारी प्रभाव काममें लायें, और उन्हें ऐसे परेशान करनेवाले मुकदमोंसे हाथ खींचनेके लिए रजामन्द करें, जिनका कोई भी औचित्य नहीं है।

इस बीच ईस्ट लंदनके अत्यन्त सम्मानित भारतीय गिरफ्तारीके भयसे वहाँकी मुख्य सड़कोंकी पैदल-पटरियोंसे दूर रहनेके लिए बाध्य हैं। यह स्थिति उन्हें सदा स्मरण दिलाती

रहती है कि वे बहिष्कृत जातिके लोग हैं और ईस्ट लंदनके ब्रिटिश नगरमें इस बातका कोई महत्त्व नहीं है कि वे अंग्रेजोंकी राजभक्त प्रजा हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफ़िस: ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स, ४०२।

## २३६. पत्र: दादाभाई नौरोजीको

२५ व २६ कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
जोहानिसबर्ग
मई २४, १९०३

माननीय दादाभाई नौरोजी
लंदन

श्रीमन्,

मैं ट्रान्सवाल और ईस्ट लन्दनके सम्बन्धमें अबतककी स्थितिका एक बयान[1] इसके साथ भेजता हूँ। हमने पत्रोंमें पढ़ा है कि श्री चेम्बरलेन भारतीयोंको प्रभावित करनेवाले वर्तमान कानूनमें परिवर्तनके सम्बन्धमें लॉर्ड मिलनरके खरीतेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। मुझे भरोसा है कि उसके मसविदेकी प्रति आपको भी दी जायेगी। यदि दी जाये तो मैं यह भरोसा भी करता हूँ कि आप किसी मसविदेको मुझे दिखाये बिना स्वीकार न करेंगे।

यह भी आवश्यक है कि ऑरेंज रिवर उपनिवेशके उस कानूनके सम्बन्धमें भी कुछ किया जाये जिससे वहाँ भारतीयोंका प्रवेश पूर्णतः वर्जित है।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफ़िस: ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स, ४०२।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

## २३७. टिप्पणियाँ

[जोहानिसबर्ग
मई ३१, १९०३]

### ३० मई, १९०३ को समाप्त होनेवाले सप्ताहतककी स्थितिपर टिप्पणियाँ

पहलेकी टिप्पणियोंमें उस ब्रिटिश भारतीय शिष्ट-मण्डलका उल्लेख किया जा चुका है, जो लॉर्ड मिलनरसे मिला था। इसकी सरकारी कार्यवाही पत्रोंमें छप चुकी है। कतरन इसके साथ नत्थी है। सचाईके साथ यह आशा करनी चाहिए कि नये कानूनमें, जो विचाराधीन है, कोई वर्ग-भेद न किया जायेगा।

### *ऑरेंज रिवर उपनिवेश*

इस उपनिवेशके सम्बन्धमें, जहाँ भारतीयोंका प्रवेश व्यवहारतः सर्वथा वर्जित है, कुछ-न-कुछ करनेका समय अब आ गया है। जब उपनिवेशमें पुरानी सरकार थी, वहाँसे बहुतसे लोग निकाल दिये गये थे। वह एक स्वतन्त्र गणराज्य था, इसलिए तब ब्रिटिश सरकार कोई सहायता न दे सकी थी। क्या अब उन लोगोंको वहाँ बहाल नहीं कर देना चाहिए?

सैनिक शासनमें कानूनमें परिवर्तन होनेके कुछ लक्षण दिखाई देते थे; किन्तु अब तो स्थिति अधिकाधिक गम्भीर होती जाती है। निवेदन है कि यह मामला अलग-अलग लॉर्ड जॉर्ज हैमिल्टन और श्री चेम्बरलेनके ध्यानमें लाना चाहिए। उपनिवेशकी विधानसभाने म्यूनिसिपल मताधिकारमें रंगभेद दाखिल करके रंगगत-कानूनके सिद्धान्तकी प्रतिष्ठा प्रारम्भ कर दी है। ऐसा ट्रान्सवालमें नहीं है।

### *केप उपनिवेश*

ब्रिटिश भारतीयोंकी सभाकी संलग्न रिपोर्ट[1] से यहाँकी स्थिति पर्याप्त रूपमें स्पष्ट हो जाती है।

ईस्ट लंदनके भारतीयोंकी कष्ट-कहानीसे मित्रगण परिचित हो ही चुके हैं।

जैसा कि रिपोर्टसे विदित होगा, ट्रान्सवालने *बाजारों*की स्थापना करके जो मार्ग दिखाया है, उसका अनुसरण केपमें भी किया जा रहा है।

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफिस: ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स, ४०२।

१. यह उपलब्ध नहीं है।

## २३८. पत्र : दादाभाई नौरोजीको

२५ व २६ कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
जोहानिसबर्ग
मई ३१, १९०३

सेवामें
माननीय दादाभाई नौरोजी
लंदन

श्रीमन्,

मैं इसके साथ हमेशा-जैसा वक्तव्य भेज रहा हूँ।

हाइडेलबर्गके दूकानदारोंके अनुरोधपर मैंने इसके साथ मजिस्ट्रेटी कार्य-विवरणकी प्रति लौटा दी है। कार्रवाई दक्षिण आफ्रिकामें श्री चेम्बरलेनके निवास-कालमें हुई थी। दूकान-दारोंका कहना है कि यह टिप्पणी आपको भेजी जाये। परन्तु मैं आशा करता हूँ आप इसपर कोई कार्रवाई न करेंगे। इस समय यहाँके हमारे देशवासी ऐसी अशान्ति, उलझन और भयकी अवस्थामें हैं कि वे वस्तुस्थितिपर शान्त चित्तसे विचार नहीं कर सकते। इसलिए मैं आपसे निवेदन करूँगा कि श्री नाजर या मेरे पाससे जो वक्तव्य न आयें उन्हें स्वीकार करने और उनका उपयोग करनेमें सावधानीसे काम लें। हमारी नीति यह है, और होनी ही चाहिए, कि हाइडेलबर्गके कार्य-विवरणमें जो असुविधाएँ बताई गई हैं वैसी असुविधाओंको सहन करें। वे ज्यादा बड़े प्रश्नका एक पहलू मात्र हैं। सारा प्रयत्न वर्तमान कानूनके रद करानेपर केन्द्रित किया जाना चाहिए।

आपका आज्ञाकारी,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी पत्रकी फोटो-नकल (एस० एन० २२५७) से।

## २३९. अपनी बात[1]

[इस समाचारपत्रकी जरूरतके बारेमें हमारे मनमें कोई सन्देह नहीं है। भारतीय समाज दक्षिण आफ्रिकाके राजकीय शरीरका निर्जीव अंग नहीं है; और इसलिए उसकी भावनाओंको प्रकट करनेवाले और विशेष रूपसे उसके हितमें संलग्न समाचारपत्रका प्रकाशन अनुचित नहीं समझा जायेगा। बल्कि, हम समझते हैं, उससे एक बड़ी कमी पूरी होगी।]

ब्रिटिश दक्षिण आफ्रिकामें बसनेवाले भारतीय सम्राट्की प्रजा हैं; फिर भी वे कितनी ही कानूनी निर्योग्यताओंसे पीड़ित हैं। उनकी ओरसे बात करनेवालोंका कहना है कि ये कानून

१. गांधीजीका यह अग्रलेख *इंडियन ओपिनियन*के पहले अंकके अंग्रेजी-विभागमें और उसका अनुवाद गुजराती, हिन्दी तथा तमिल विभागोंमें भी प्रकाशित हुआ था। यह उनके नामसे नहीं था।

Box 2249 J'hBurg
23rd Feb 1903

Dear Professor Gokhale, 4403

Events have been progressing very fast in this country & naturally I have been in the thick of the fight. The struggle is far more intense than I expected.

Herewith statement presented to Mr Chamberlain at Pretoria and a copy of statement up to date sent to London. There is a great deal of underhand work going on. The old laws are being severely enforced. And it probably means my having to stop here longer than March.

I was just in time to join the sudden deputation that waited on Mr. C. I hope you received copies of the Durban statement.

I hope you will do what you can there. The matter being constantly & intelligently discussed in the papers is bound to do good. Hoping you are well

I remain
Yours truly
M. K. Gandhi

गोखलेके नाम पत्र

अनुचित और अन्यायपूर्ण हैं। यदि खोजें तो इस परिस्थितिका कारण उपनिवेशमें बसनेवाले गोरोंके सन्देहशील मनकी गलतफहमीमें मिलेगा। यह गलतफहमी कई तरहकी है — ब्रिटिश प्रजाकी हैसियतसे भारतीयोंका क्या दर्जा है यह न जाननेसे उत्पन्न गलतफहमी; उपनिवेशोंके साथ हिन्दुस्तानका भाईचारा स्थापित करनेवाली अपने महाराजकी संयुक्त संज्ञा 'राजाधिराज' से प्रकट होनेवाले घनिष्ठ सम्बन्धकी बेखबरीसे पैदा गलतफहमी; और जबसे विधाताने भारतको बरतानियाके झंडेके नीचे ला खड़ा किया है तबसे उसने ब्रिटेनकी कितनी सेवा की है इस बातकी दुःखदायी विस्मृतिसे जनमनेवाली गलतफहमी। इसलिए तथ्योंको उनके सही रूपमें लोगोंके सामने रखकर गलतफहमियाँ दूर करनेकी हमारी कोशिश होगी।

भारतीयोंमें जो दोष बताये जाते हैं वे उनसे सर्वथा मुक्त हैं, ऐसी भी हमारी मान्यता नहीं है। यदि वे हमें गलतीपर दिखेंगे तो हम बेखटके उन्हें उनकी गलती बतायेंगे और उसे दूर करनेके उपाय भी सुझायेंगे। देशमें जो रीति-परम्पराएँ आवश्यक नैतिक मार्गदर्शनके द्वारा त्रुटियोंका परिमार्जन करती रहती हैं, दक्षिण आफ्रिकामें बसे हुए हमारे भाई उनके नेतृत्वसे वंचित हैं। जो यहाँ कम उम्रमें आ गये या जो यहीं पैदा हुए उन्हें अपनी मातृभूमिके इतिहास या महानताको जाननेका अवसर नहीं मिल पाया। यह हमारा कर्तव्य होगा कि हम यथाशक्ति इंग्लैंड, भारत और इस उप-महाद्वीपके समर्थ लेखकोंके लेख देकर इस कमीको पूरा करें।

समय सिद्ध करेगा कि जो सही है वही करनेकी हमारी इच्छा है। किन्तु हम सहयोगके बिना क्या कर सकते हैं? हमें अपने देशवासियोंके उदार सहारेका भरोसा है। जो महान ऐंग्लो-सैक्सन कौम सप्तम एडवर्डको अपना राजाधिराज कहती है, क्या हम उससे भी यही आशा नहीं कर सकते? क्योंकि हमारा ध्येय इस एक शक्तिशाली साम्राज्यके अनेक वर्गोंमें सद्भाव तथा प्रेम बढ़ानेके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

[अंग्रेजी और गुजरातीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, ४–६–१९०३

## २४०. दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीय

अगले कुछ हफ्तोंमें हम इन स्तम्भोंमें जिस प्रश्नकी चर्चा करना चाहते हैं वह एक बहुत बड़ा प्रश्न है। उसका महत्त्व प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। हर-कोई कबूल करेगा कि सामाजिक प्रश्नोंकी भाँति इसमें भी दुर्भावने बड़ी उलझनें पैदा कर दी हैं। इसलिए हमारा कर्तव्य होगा कि इस दुर्भावको, और साथ ही पक्षपातको भी, बिलकुल एक तरफ रखकर स्थितिपर विचार करें और केवल प्रमाणित तथ्योंको लेकर ही आगे बढ़ें।

कोई भी समझदार राजनीतिज्ञ इस प्रश्नकी उपेक्षा नहीं कर सकता। आज ब्रिटिश दक्षिण आफ्रिकामें कोई एक लाख भारतीय बसे हुए हैं। भला या बुरा, इनकी इस उपस्थितिका इस महान् भूखण्डपर असर अवश्य होगा। तब हमारे सामने एक बड़ा प्रश्न खड़ा होता है कि उनका क्या किया जाये? इस प्रश्नके सही जवाबपर उनका सुख-दुःख निर्भर है। और निःसन्देह इस देशमें रहनेवाले हर गृहस्थका उससे सम्बन्ध है। इसलिए हम सोचें कि आज वास्तविक स्थिति क्या है?

नेटालमें एक कानून जारी है, जिसका नाम है प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियम[1]। यह कानून बाहरसे आनेवाले उन तमाम लोगोंके प्रवेशपर कड़ी रोक लगाता है जो पहलेसे ही नेटालके निवासी नहीं बन गये हैं, या जो यूरोपकी किसी भाषाको लिखना-पढ़ना नही जानते हैं। एक और भी कानून है जिसका नाम है विक्रेता-परवाना अधिनियम[2]। यह कानून व्यापारी-वर्गको पूरी तरहसे परवाना-अधिकारियोंकी दयापर छोड़ देता है। वे जिसे चाहें परवाना दें, जिसे न चाहें न दें। और परवाने तो हर साल लेने ही पड़ते हैं।

इनके अलावा बाहर निकलनेके पासों[3] के बारेमें कुछ तकलीफ देनेवाले कानून हैं, जिनके अनुसार प्रतिष्ठित भारतीयोंको — मर्दोंको और औरतोंको भी — दिनमें अथवा रातमें शहरमें हों या गाँवोंमें, गिरफ्तार किया जा सकता है। फिर शिक्षाका प्रश्न दिन-ब-दिन गम्भीर रूप धारण करता जा रहा है। तमाम सार्वजनिक शालाएँ भारतीय बच्चोंके लिए बन्द कर दी गई हैं। सरकारने हालमें ही भारतीयोंके लिए ऊँचे दर्जेवाली शालाएँ खोली हैं। इनमें से एक तो डर्बनमें है और दूसरी मैरित्सबर्गमें। परन्तु यहाँ तो केवल प्राथमिक पढ़ाई होती है और इसके बाद शालाका पाठ्य-क्रम खत्म होनेपर लड़कोंके लिए आगेकी पढ़ाईका कोई प्रबन्ध नही है। उपनिवेशकी राजधानीमें नगर-परिषदने एक प्रस्ताव मंजूर किया है, जिसके अनुसार सम्राट्के हिन्दुस्तानी प्रजाजनोंको कोई शहरी जमीन बेची या पट्टेपर नहीं दी जा सकती। उधर प्रधानमन्त्रीने डर्बनकी नगर-परिषदको ट्रान्सवालकी सरकार द्वारा जारी किये गये सन् १९०३ के नोटिस नं० ३५६ की नकलें भेज दी हैं, जो "एशियाइयों[4]" के वहाँ बसने और व्यापारके परवानोंके बारेमें हैं। यह अशुभ चिह्न है।

गिरमिटियोंकी भी खासी बड़ी आबादी इस देशमें है। वह परिस्थितिको और भी अधिक मुश्किल बना देती है। इन लोगोंकी हालत और भी बुरी है। गिरमिटियाकी हालतमें पूरे पाँच साल मजदूरी करनेके बाद जब आदमी उस शर्तसे मुक्त होता है तब उसपर उपनिवेशके मामूली कानून तो लगते ही हैं, उनके अलावा कुछ खास कानून भी लगते हैं। इस तरह या तो उस गरीबको फिरसे बार-बार गिरमिटिया बनना पड़ता है, या पुनः अपनी मातृभूमि भारतको लौट जाना पड़ता है। किन्तु अगर वह यहीं रहना चाहे तो उसे एक सालाना कर, तीन पौंडका व्यक्ति-कर, देना पड़ता है, जिसे विधान-मण्डलने तीन पौंडके परवानेका प्रतिष्ठित नाम दे रखा है। हालमें ही एक नया कानून और बना है जो इस करको शर्त-मुक्त गिरमिटियोंके बालिग बच्चों अर्थात् १३ वर्षकी लड़कियों और १६ वर्षके लड़कोंपर भी लाद देता है।[5]

केप कालोनीने पिछली फरवरीमें एक ऐसा प्रवासी-अधिनियम बनाया है जो नेटालके अधिनियमसे भी आगे बढ़ जाता है। उसमें उपनिवेशमें बसनेके लिए शिक्षाकी शर्तें इतनी कड़ी लगा दी हैं कि प्रवास-अधिकारी अच्छेसे-अच्छे पढ़े-लिखे भारतीयके प्रवेशको भी रोक सकता है। यद्यपि दूसरे प्रकारसे वह इतना उदार भी है कि केप कालोनी या दूसरे किसी दक्षिण आफ्रिकी उपनिवेशमें बसे हुए भारतीयके लिए दरवाजा खुला रखता है। उधर ईस्ट

१. देखिए खण्ड २, पृष्ठ ३७९–८३।
२. देखिए खण्ड २, पृष्ठ ३८४–८६।
३. देखिए खण्ड २, पृष्ठ ३८६–८७।
४. देखिए "दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीय," अप्रैल १२, १९०३ का सहपत्र।
५. देखिए "दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीय," अप्रैल २२, तथा "नेटालके भारतीय," मई १०, १९०२।

लंदनकी नगर-परिषदने इस आशयका एक कानून बनाया है कि जो भारतीय शहरी निगम (कार्पोरेशन) की ७५ पौंड कीमतकी जमीनके मालिक नहीं हैं, या इतनी कीमतकी जमीन जिनके कब्जेमें नहीं है, वे सड़कोंकी पटरियोंपर नहीं चल सकेंगे और उन्हें अपने लिए मुकर्रर बस्तियोंमें ही रहना होगा। दरअसल नगर-परिषद भारतीयोंको दक्षिण आफ्रिकाके आदिवासियोंकी श्रेणीमें डाल देती है।

अब हालमें ही बनाये गये दो नये उपनिवेशोंमें सम्राट्की सरकारने भी पिछले गणराज्यके बनाये कानूनको, जो कि स्वभावतः बड़ा कठोर है, ज्योंका त्यों कायम रखा है। आजकल उसपर पुर्नविचार हो रहा है और शीघ्र ही उसे पूरी तरहसे संशोधित कर दिया जायेगा।

किन्तु चूँकि नये अधिकृत प्रदेशोंमें भी सबसे अधिक भार भारतीयोंपर ही पड़नेवाला है, गणराज्यके समयके कानूनका सिंहावलोकन कर लेना उचित ही होगा।

ट्रान्सवालमें भारतीय अपने लिए निश्चित बस्तीसे बाहर कहीं व्यापार नहीं कर सकते और न कहीं बस सकते हैं। और जमीन तो रख ही नहीं सकते। फिर तीन पौंड देकर उन्हें अपना नाम रजिस्टर करवा लेना पड़ता है। वे पटरीपर नहीं चल सकते और रातके ९ बजेके बाद अपने मकानसे बाहर नहीं निकल सकते। ये हैं खास-खास निर्योग्यताएँ। परवाने-वाले कानूनका अमल इतनी सख्तीसे किया जा रहा है कि जितना पहले कभी नहीं किया गया था।

ऑरेंज रिवर उपनिवेशमें तो भारतीयोंका सिवा मजदूरोंकी हैसियतके और किसी हैसियतसे कोई स्थान ही नहीं है।

केप कालोनी और नेटालके कानून तथा गणराज्यके कानूनमें ध्यान देने लायक खास फर्क यह है कि केप कालोनी और नेटालके कानून सिद्धान्ततः जहाँ सभी देशोंके निवासियोंपर लागू किये जा सकते हैं वहाँ गणराज्यके कानून केवल एशियाके निवासियोंके लिए ही हैं।

भारतीयोंके खिलाफ लोगोंमें इतना गहरा दुर्भाव भरा हुआ है कि उसने उन्हें ब्रिटिश दक्षिण आफ्रिकाके अन्य भागोंसे दूर ही रखा है।

दक्षिण आफ्रिकामें हिन्दुस्तानी सामाजिक और अन्य तमाम दृष्टियोंसे अछूत-से बने हुए हैं; कहीं कम, कहीं ज्यादा। वहाँ उन्हें तिरस्कारपूर्वक "कुली" कहा जाता है। वास्तवमें वहाँके लोग साधारणतया उन्हें "गन्दे जीव" मानते हैं, जिनके अन्दर किसी सद्गुणका लेशमात्र भी नहीं हो सकता। हाँ, यह सही है कि अब यह दुर्भावना नेटालमें काफी कम हो गई है। फिर भी दोनों कौमोंके बीच भेदभाव तो है ही। इसका कारण केवल रंगभेद नहीं, शायद यह है कि समस्याकी तरफ देखनेकी दृष्टि प्रत्येक कौमकी अलग-अलग है। किन्तु सबसे अधिक उग्र संघर्ष ट्रान्सवालमें है।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, ४-६-१९०३

## २४१. क्या यह न्याय है?

[अगर एक यूरोपीय कोई जुर्म या नैतिक भूल करता है तो वह केवल एक व्यक्तिका दोष समझा जाता है। किन्तु वही भूल अगर किसी भारतीयसे होती है तो सारे राष्ट्रको बदनाम किया जाता है। इस कथनका प्रत्यक्ष प्रमाण हालमें ही एक मामलेमें मिला है। एक भारतीयने कुछ मकान पट्टेपर लिये और उन्हें अनीतियुक्त कामके लिए किराये पर दे दिया। ऐसे बुरे कामकी सफाई तो दी ही नहीं जा सकती। परन्तु ऐसे जुर्म या गलतीके लिए उस आदमीको भला-बुरा कहना एक बात है और उसकी भूलपर सारे राष्ट्र या कौमपर बन्दिशें लगा देना और उनका समर्थन करना एकदम दूसरी बात है। किन्तु मर्क्युरी लेनके साधारणतया गम्भीर माने जानेवाले *चन्द्रवासी* ("मैन इन द मून[1]")ने और हमारे सन्ध्याकालीन सहयोगी[2]ने उपर्युक्त उदाहरणको लेकर ठीक यही किया है। और पाठक यह न भूलें कि उस भारतीयको अपने मकान किरायेपर देनेवाला मालिक खुद एक यूरोपीय ही है। परन्तु इस घटनासे हमारे देश-भाइयोंको सबक तो लेना ही है। हमारा सारा व्यवहार ऐसा हो कि किसीको हमारी तरफ अँगुलीतक उठानेकी गुंजाइश न रहे। हम एक ऐसे देशमें रह रहे है, जहाँ हमारी छोटीसे-छोटी भूल, जैसे भी हो वैसे, हजार गुनी बढ़ाकर पेश की जाती है। इसलिए हममें से छोटेसे-छोटे आदमीको भी प्रत्येक कार्यमें यह सावधानी रखनी चाहिए कि कहीं हम सारे समाजको हास्यास्पद न बना दें।]

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, ४-६-१९०३

## २४२. अच्छी विसंगति

इमरसनने कहा है, मूर्खतापूर्ण सुसंगति दुर्बल मनके लोगोंका भूत है। [मालूम होता है, ट्रान्सवाल-सरकार सोचती है कि प्लेगके दिनोंमें सबके साथ एक-सा बरताव करना 'मूर्खतापूर्ण सुसंगति' होगी। इसलिए उसने आज्ञा जारी कर दी है कि नेटालसे कोई भारतीय ट्रान्सवालमें नहीं आयेगा। हाँ, यूरोपीय और काफिर जरूर बेरोक आ सकेंगे, यद्यपि खुद प्लेग नेटालकी इन जातियोंमें कोई भेदभाव नहीं कर रहा है और बेवकूफकी तरह वहाँ तीनोंपर समान रूपसे आक्रमण कर रहा है। इसलिए अगर कोई भारतीय इस नतीजेपर पहुँचे कि उसपर जो रोक लगाई गई है उसकी जड़में जनताके आरोग्यकी चिन्ता नहीं, राजनीतिक कारण है तो उसे माफ किया जाना चाहिए। हाँ, शुरू-शुरूमें जब प्लेग फैला और लोगोंमें घबराहट मची, तब लोगोंके दुर्भावको देखते हुए रोकका लगाया जाना क्षम्य माना जा सकता था। परन्तु केवल भारतीयोंके प्रवेशपर सोच-समझकर रोक लगाना, उन्हें कुछ दिन सूतक (क्वारंटीन) में रहनेकी इजाजत भी नहीं देना, उनके लिए बहुत गम्भीर बात हो जाती है। खास

१. *नेटाल मर्क्युरी*का एक साप्ताहिक स्तम्भ लेखक: देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ४०१-३।

२. *नेटाल ऐडवर्टाइज़र*।

कर जब कि — हम आशा करें — प्लेग समाप्त हो रहा है, और वह पिछले कई महीनोंमें राजधानीसे बाहर कहीं बढ़ा ही नहीं — भले ही यह उसकी अच्छी विसंगति हो — इससे उन तमाम शरणार्थियोंको, जिनका ट्रान्सवालसे सम्बन्ध है, बहुत भारी आर्थिक हानि और असुविधा उठानी पड़ रही है। क्या हम स्थानीय सरकारसे प्रार्थना करें कि वह नेटालके इन कुछ निवासियोंकी — भले ही वे भारतीय हों — इस प्रकट अन्यायसे कुछ तो रक्षा करे। एक सच्चा अंग्रेज स्वभावत: न्यायप्रिय होता है। इसलिए हम हर सच्चे अंग्रेजसे पूछते हैं कि क्या यह ऊपर बताया गया एकपक्षीय व्यवहार न्यायका नमूना है?

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, ४–६–१९०३

# २४३. देर आयद दुरुस्त आयद

केप टाउनके ब्रिटिश भारतीय संघने ब्रिटिश भारतीयोंकी एक विशाल सभा करके केप कालोनीकी सरकार द्वारा हाल हीमें बनाये गये प्रवासी-अधिनियम (इमिग्रेशन ऐक्ट)[1] और भारतीयोंको *बाजारों*[2] में रखनेके प्रस्तावित कानूनोंके विरोधमें कुछ प्रस्ताव पास किये हैं। केप कालोनीके कानूनको बदलवानेमें बम्बईका व्यापार-संघ (चेम्बर ऑफ कामर्स) हमारे इन देश-भाइयोंकी जोरदार मदद कर रहा है। यह कानून विधेयकके रूपमें काफी निर्दोष था। इसमें साम्राज्यके प्रजाजनोंकी, बगैर रंगभेदके, रक्षाकी व्यवस्था की गई थी। और शैक्षणिक कसौटीमें भारतीय भाषाओंको भी स्थान दिया गया था। विधेयक अधिवेशनके अन्तमें जाकर पेश किया गया और उसे मंजूर करनेमें भोंडी जल्दबाजी की गई। इस विषयमें तो उसने नेटालको भी मात कर दिया। इसलिए स्वाभाविक था कि उसके तमाम अवस्थाओंसे गुजर जानेके पहले जनता उसके बारेमें कुछ कह ही नहीं सकी। जहाँतक हमारा सवाल है, हम तो समझते हैं कि भारतसे बहुत भारी संख्यामें लोगोंके यहाँ आनेका जरा भी खतरा नहीं है। श्री चेम्बरलेनने एक सिद्धान्त कायम कर दिया है कि स्वशासित उपनिवेशोंको हक है कि वे अपने यहाँ दूसरोंके प्रवेशपर जितना चाहें नियन्त्रण रखें। उस दिन लॉर्ड मिलनरने इस सिद्धान्तको और भी जोर देकर दुहराया था।[3] और अब हमारे देश-भाई भी उसे मानते हैं — मानना ही पड़ता है। परन्तु इस सिद्धान्तकी कुछ स्पष्ट मर्यादाएँ तो हैं ही। एक तो यह है कि नियन्त्रणका आधार रंगभेद नहीं हो सकता। और दूसरी यह कि, समूचे देशपर रोक नहीं लगाई जा सकती। किन्तु केप कालोनीका कानून इन दोनों मर्यादाओंको ताकमें रख देता है। उसमें शैक्षणिक कसौटीकी एक ऐसी शर्त रखी गई है जिसपर शायद विश्व-विद्यालयका एक ग्रेजुएट भी खरा न उतरे। उधर इन योग्यताओंमें भारतीय भाषाओंके ज्ञानका

१. १९०२के अधिनियम ४७से (शैक्षणिक कसौटीके क्षेत्रसे भारतीय भाषाओंको हटाकर) एशियाइयोंके प्रवेश-पर प्रतिबन्ध लगा दिये गये थे। ब्रिटिश भारतीय संघने इस अधिनियमका विरोध करते हुए जून ६, १९०३ को उपनिवेश मन्त्रीकी सेवामें एक प्रार्थनापत्र भेजा था।

२. केप टाउनकी नगर-परिषद चाहती थी कि एशियाइयोंको, ट्रान्सवालमें स्वीकृत तरीकोंसे, पृथक कर दिया जाये।

३. देखिए पृष्ठ ३३० ।

होना आवश्यक नहीं बताया गया है। इसका परिणाम यह होता है कि हिन्दुस्तानियोंके लिए प्रवेशका दरवाजा एकदम बन्द कर दिया गया है। फिर नेटालके कानून[1] के खिलाफ जो बातें कही जा सकती हैं वे सब दोष इसमें भी हैं। हम हृदयसे आशा करते हैं कि विधानसभाके अगले अधिवेशनमें उसके मुख्य उद्देश्यको कायम रखते हुए भारतीयों द्वारा प्रकट की गई उचित आपत्तियोंका आदर करके कानूनमें आवश्यक सुधार कर दिये जायेंगे। सच तो यह है कि मन्त्रियोंने यह आश्वासन भी दिया है कि अभी विधेयक जल्दीमें रखा जा रहा है; सरकार अगले अधिवेशनमें उसमें आवश्यक सुधार करनेके लिए तैयार है।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, ४–६–१९०३

## २४४. कथनी और करनी

इस सुन्दर उपनिवेशके उदारमना प्रधानमन्त्री[2] नेटालकी नगरपालिकाओंके समक्ष ट्रान्सवाल-सरकारकी *बाजार*-सम्बन्धी सूचनाओंके बारेमें भाषण दें और इस तरह उनको भी वैसी ही कार्रवाई करनेके लिए प्रभावित करें, यह हमारे लिए पीड़ाजनक आश्चर्यकी बात है। सर आल्बर्ट नगरपालिकाओंसे क्या कराना चाहते हैं? उनके हाथोंमें तो पहलेसे ही असीम सत्ता मौजूद है। बहुत कम नये परवाने जारी किये गये हैं। तब सर आल्बर्ट *बाजारों*में बसनेके लिए किन लोगोंको भेजेंगे? जो लोग पहले ही बस गये हैं, निःसन्देह उन्हें तो नहीं भेजेंगे। क्योंकि, ट्रान्सवालकी सूचनाओंका असर ऐसे लोगोंपर नहीं होता। साम्राज्यकी भलाईके लिए श्री चेम्बरलेनने पिछले दिनों दक्षिण आफ्रिकाकी जो यात्रा की थी उसपर हमारे बहादुर प्रधान-मन्त्रीकी यह कृति एक अजीब टिप्पणी है। इस देशमें श्री चेम्बरलेनके जो अस्सी भाषण हुए उनमें साम्राज्यकी भावना और साम्राज्यकी एकता इन्हीं दो बातोंपर उन माननीय महानुभावने मुख्यतः जोर दिया था। भारतीयोंके बारेमें बोलते हुए उन्होंने यह नियम बताया था: "जो पहलेसे ही बस गये हैं वे न्याय और सम्मानपूर्ण व्यवहारके अधिकारी हैं।" भारतीयोंको जबरन *बाजारों* या, साफ शब्दोंमें, पृथक् बस्तियोंमें भेज देना न्याययुक्त और सम्मानपूर्ण नहीं कहा जा सकेगा। सोचा तो यह जाता था कि प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियम और विक्रेता-परवाना अधिनियम जैसे कठोर कानून बना देनेके बाद अब तो भारतीयोंको कमसे-कम साँस लेनेका अवसर मिलेगा। परन्तु देखा जाता है कि सर्वशक्तिमानकी इच्छा दूसरी ही है।

(ऊपर लिखा मजमून छपनेके लिए देनेके बाद डर्बनकी नगरपालिकाकी बैठकमें उसके मेयरने जो तजवीज पेश की है उसे पढ़कर हमें बहुत सदमा पहुँचा है। यह तजवीज हम अन्यत्र[3] ज्यों-की-त्यों प्रकाशित कर रहे हैं। इसपर हमारे विचार पाठक अगले अंक[4] में पढ़ें)।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, ४–६–१९०३

१. देखिए खण्ड २, पृष्ठ ३७९–८३।

२. सर-आल्बर्ट एच० हाइम, प्रधानमन्त्री, १८९९–१९०३।

३. देखिए अगला शीर्षक।

४. देखिए "बाघ और मेमना", ११–६–१९०३।

# २४५. मेयरकी तजवीज

हम नीचे डर्बनके मेयरका वह वक्तव्य[1] देते हैं जो उन्होंने गत मंगलवारको परिषदके सब सदस्योंकी समितिमें पेश किया था। यह नेटालमें उन पुराने घृणित कानूनोंको दाखिल करनेका एक असामयिक प्रयत्न मालूम होता है जो एशियाइयोंके पृथक्करणके सम्बन्धमें अस्थायी रूपसे ट्रान्सवालमें फिर लागू किये गये हैं। ये कानून वे ही हैं जो लड़ाईसे पहले ब्रिटिश सरकारका सात्विक रोष जागृत कर चुके हैं और जिनपर साम्राज्य-सरकार विचार कर रही है। यह "उचित और सम्मानजनक व्यवहार" के समानाधिकारोंकी बेजोड़ विडम्बना है और इन कानूनोंको पास करनेकी जो अनुचित उतावली की जा रही है वह साफ बताती है कि इनके पुरस्कर्ता आलोचनाका स्वागत करनेको व्यग्र नहीं हैं।

## तजवीज

माननीय प्रधानमन्त्रीने ट्रान्सवालकी कार्यकारिणी परिषदमें स्वीकृत प्रस्तावकी एक प्रति भेजनेकी कृपा की है। इसमें कुछ सिद्धान्त बताये गये हैं, जो एशियाइयोंकी व्यापारिक परवानोंकी अर्जियोंके निबटारेके सम्बन्धमें काममें लाये जायेंगे। संक्षेपमें इसके चार भाग किये जा सकते हैं: (१) एशियाइयोंको *बाजारोंमें* ही व्यापार और निवासके लिए स्थान देनेके लिए; (२) सब नये परवाने ऐसे *बाजारोंकी* दूकानोंतक ही सीमित रखनेके लिए; (३) यह व्यवस्था करनेके लिए कि इन *बाजारोंके* बाहर एशियाइयोंको जो परवाने मिले हुए हैं वे किसी अन्य एशियाई व्यापारीको हस्तान्तरित न किये जायें और ये परवाने जिनके पास हैं उनको किसी एक शहरमें उससे अधिक परवाने न मिलें, जितने एक निश्चित तारीखको उन्हें प्राप्त हों; और (४) एशियाइयोंको, रहन-सहनकी पद्धति-सम्बन्धी कुछ अमुक स्थितियोंमें, इन *बाजारोंके* बाहर रहनेकी अनुमति देनेके लिए।

हमें इस नगरमें सन् १८९७में पेश किये गये कानूनकी सफलता या असफलता सिद्ध करनेके लिए छः वर्षका समय मिल चुका है। मुझे सखेद स्वीकार करना पड़ता है कि इस कानूनसे जिन लाभोंकी आशा थी उनका अनुभव हमें नहीं हुआ। मेरा मतलब सन् १८९७के प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियम और सन् १८९७के १८वें कानूनसे है। यह दूसरा कानून "थोक और खुदरा व्यापारियोंके परवानों सम्बन्धी कानूनमें संशोधन करनेके लिए" बनाया गया था।

पिछले छः वर्षोंमें एशियाइयोंके परवानोंकी संख्यामें बहुत स्पष्ट वृद्धि हुई है। अब हम देखते हैं कि नगरके प्रधान बाजारोंमें मूल्यवान् जायदादके बड़े-बड़े थोक एशियाइयोंके अधिकारमें हैं, वे दिन-प्रतिदिन दूसरी जायदादें लेते जा रहे हैं और व्यापारके लिए बहुत-सी नई इमारतें बना रहे हैं। वर्तमान कानूनोंके अन्तर्गत इन सभी इमारतोंके परवाने सम्भवतः उन्हें मिल जायेंगे, क्योंकि इन कानूनोंके अन्तर्गत परवानोंकी अर्जियाँ मनमाने तौरपर नामंजूर नहीं की जा सकतीं।

इस तथ्यकी उपेक्षा करना असम्भव है कि इन लोगोंको नगरके हर-किसी भागमें रहने या व्यवसाय करनेकी अनुमति देकर हम गोरी जातिके स्वास्थ्यके लिए एक बहुत गम्भीर खतरेको स्थायी बनाये दे रहे हैं। इस सम्बन्धमें, यह साबित करनेके लिए कि इन लोगोंकी आदतें नगरके लिए स्वास्थ्यप्रद नहीं हैं, इतना ही बता देना बस होगा कि पिछलीवाले प्लेगका आक्रमण कितने ज्यादा भारतीयोंपर हुआ है। मुझे पता चला है कि अबतक १६० लोगोंको प्लेग हुआ। उनमें एशियाई रोगी कमसे-कम ९३ थे। यद्यपि भारतीयोंके प्रमुख प्रतिनिधियोंने प्लेगके प्रकोपके दिनोंमें स्वास्थ्य-विभागको बहुत बड़ी सहायता दी है, फिर भी प्रजातीय रिवाजोंके

१. गांधीजीकी इस सम्पादकीय टिप्पणीके नीचे दी गई तजवीज, जो आगे दी जा रही है।

कारण स्वास्थ्य और सफाईके लिए आवश्यक व्यवस्था करनेमें बड़ी कठिनाइयाँ सामने आई हैं। यदि नगरमें बसे तमाम भारतीयोंके लिए एक निर्दिष्ट स्थानमें रहना आवश्यक कर दिया जाये तो ये कठिनाइयाँ बहुत हदतक काबूमें आ जायेंगी। मुझे एशियाई मुहल्ला बसानेके लिए आसपास एक उपयुक्त स्थान चुन लेनेमें कोई गम्भीर मुसीबत दिखलाई नहीं पड़ती।

वेस्ट स्ट्रीट, स्मिथ स्ट्रीट, पाइन स्ट्रीट, कमर्शियल रोड और रेलवे स्ट्रीटमें तथा अन्यत्र मकानों और दूकानोंके एशियाई स्वामियोंके उन परवानोंमें कोई निहित अधिकार नहीं है, जिनके अन्तर्गत वे व्यापार करते हैं, क्योंकि अच्छे और पर्याप्त कारण मौजूद होनेपर ये और अन्य परवाने किसी भी निर्दिष्ट वर्षके अन्तमें नये नहीं भी किये जा सकते। इसलिए यदि भारतीयोंके व्यापार तथा निवासके स्थान अबकी तरह समस्त नगरमें छितरे होनेके बजाय एक विशेष क्षेत्रमें एकत्र कर दिये जायें तो इससे उनको कठिनाई होनी तो दूर, उल्टे लाभ ही होगा। वर्तमान परवाने तुरन्त रद करना कुछ कठोरता हो सकती है; किन्तु वर्तमान परवानेदारोंको अपने अधिकृत मकानों-दूकानोंके ही परवाने जीवनभर रखनेकी अनुमति दे देनेमें, मेरा खयाल है, उनके साथ न्याय हो सकता है। बेशक, शर्त यह होगी कि वे स्थान बिलकुल साफ रखे जायें। परन्तु वर्तमान परवाने अन्य भारतीयोंको किसी भी अवस्थामें हस्तान्तरित न किये जाने चाहिए और इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए नगरके समस्त भारतीयोंका बाकायदा रजिस्टर रखना आवश्यक होगा।

इस मामलेपर सावधानीसे विचार करनेके बाद मुझे ऐसा लगता है कि अब समय आ गया है जब कि इस परिषदको ट्रान्सवालमें लागू कानूनोंसे कुछ मिलते-जुलते आधारोंपर एक कानून बनानेका प्रार्थनापत्र सरकारको भेजना चाहिए, जिससे डर्बनके ही नहीं, बल्कि समस्त उपनिवेशके स्वास्थ्य और व्यापार-सम्बन्धी हितोंकी रक्षा की जा सके। मैं अनुरोध करता हूँ कि अब इस सम्बन्धमें सरकारसे प्रार्थना करनेमें विलम्ब न किया जाना चाहिए, क्योंकि यह आशा की जाती है कि ट्रान्सवालके नये कानूनोंके फल-स्वरूप एशियाइयोंको उस उपनिवेशको छोड़कर नेटाल आनेका प्रोत्साहन मिलेगा, जहाँ वर्तमान अवस्थाओंमें वे नगरके किसी भी भागमें, जहाँ चाहें वहाँ, अपना व्यवसाय चला सकते हैं और रह सकते हैं। यदि सरकार एशियाइयोंसे व्यवहारकी विधिके सम्बन्धमें नेटालको ट्रान्सवालके समान आधारपर रखनेके लिए आवश्यक कानून बनाना स्वीकार कर ले, तो विधेयकमें क्या-क्या व्यवस्था हो, इस सम्बन्धमें मेरे सुझाव ये हैं:

१. ट्रान्सवालके सन् १८८५के तीसरे कानूनमें एशियाइयोंके पंजीकरणके सम्बन्धमें जैसी व्यवस्था है उसी तरीकेकी व्यवस्था नेटालके नगरों और कस्बोंमें रखी जाये।

२. नगरपालिका-अधिकारी पृथक् एशियाई *बाजार* (या बस्तियाँ) बनायें। इनमें ऐसे सभी एशियाई रहें जो यूरोपीयोंकी घरेलू नौकरीमें न हों; अथवा जो सरकार, निगमों (कारपोरेशन्स) या व्यापारिक पेढ़ियोंके भी, जो उनके रहनेके लिए बारकोंकी उपयुक्त व्यवस्था करती हों, कर्मचारी न हों।

३. इन *बाजारों*में व्यवसाय चलानेके अतिरिक्त एशियाइयोंको नये परवाने न दिये जायें।

४. एशियाइयोंके पास इस समय जो परवाने हैं, उन्हें दूसरे एशियाइयोंके नाम हस्तान्तरित न किया जाये; बल्कि वर्तमान परवानेदारकी मृत्युके पश्चात् रद कर दिया जाये।

५. किसी भी एशियाईको उससे अधिक परवाने न रखने दिये जायें, जितने इस विधेयकके लागू होनेकी तारीखको उसके पास हों।

६. जो एशियाई उपनिवेश-मन्त्रीको सन्तोष दिला दे और यह सिद्ध कर दे कि उसने इस देशके या किसी अन्य ब्रिटिश उपनिवेश या अधीनस्थ देशके शिक्षा-विभागसे उच्च शिक्षाका प्रमाणपत्र प्राप्त किया है, या वह उस तरीकेका जीवन व्यतीत कर सकता है या करनेके लिए सहमत है, जो यूरोपीय विचारोंके प्रतिकूल न हो, और न स्वास्थ्य-नियमोंके प्रतिकूल हो, तो वह उपनिवेश-सचिवको अपवादपत्रके लिए अर्जी दे सकता है। इस पत्रकी उपलब्धिपर वह एशियाइयोंके लिए विशेष रूपसे निर्दिष्ट स्थानके अतिरिक्त किसी भी स्थानमें रह सकता है।

इन आधारोंपर बनाये गये कानूनके फलस्वरूप एशियाई व्यवसाय हमारे मुख्य *बाजारों*से एकाएक नहीं हटेगा, किन्तु अतिरिक्त परवाने न दिये जा सकेंगे; और यदि हम वतनियोंकी बस्तियोंके साथ-साथ सब एशियाइयोंको (उनके व्यापार-स्थान कहीं भी क्यों न हों) इन *बाजारों*में रहनेके लिए विवश कर सकें, तो

हम यह ऐसा मार्ग सिद्ध कर सकें, जो हमारे नगरकी सफाईकी अवस्था ज्यादा हदतक सुधारनेका साधन होगा, बनिस्बत किन्हीं भी दूसरे उपायोंके।

[ अंग्रेजीसे ]

*इंडियन ओपिनियन*, ४–६–१९०३

## २४६. तार : भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसको[1]

जोहानिसबर्ग
जून ६, १९०३

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस
८४, पैलेस चेम्बर्स
ब्रिज स्ट्रीट
लंदन एस० डब्ल्यू०

लॉर्ड मिलनरने श्वेत-संघ (ह्वाइट लीग) को उत्तर देते हुए बताया है कि उन्होंने भारत-सरकारसे गिरमिटिया भारतीय भेजनेको कहा है, जो गिरमिट पूरा होने पर लौट जायें। आशा है अनिवार्य वापसीका प्रस्ताव मंजूर न होगा।

गांधी

[ अंग्रेजीसे ]

इंडिया ऑफ़िस : ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स, ४०२।

## २४७. ट्रान्सवालकी स्थिति

जोहानिसबर्ग
जून ६, १९०३

### ६ जून, १९०३ तक ट्रान्सवालकी स्थिति

इस सप्ताह लॉर्ड मिलनरने श्वेत-संघ (ह्वाइट लीग) के एक शिष्ट-मण्डलसे भेंट की। पूरी रिपोर्टकी नकल संलग्न है। परमश्रेष्ठका रुख भारतीयोंके प्रति सहानुभूतिपूर्ण था और यदि उन्होंने भारतीय शिष्ट-मण्डलके प्रति कड़ा रुख दिखाया तो श्वेत-संघके प्रति भी उनका रुख उतना ही कड़ा था।

अब परमश्रेष्ठके सामने रखनेके लिए एक प्रार्थनापत्र तैयार किया जा रहा है, जो भारतीय शिष्ट-मण्डलको दिये गये उनके उत्तरके बारेमें है। इसी डाक द्वारा उसकी एक अग्रिम प्रूफ-प्रति भेजी जा रही है। यह प्रार्थनापत्र सारी स्थिति स्पष्ट कर देगा और इससे भारतीय समाजकी आवश्यकताओंका पता भी लग जायेगा।

१. यह तार, जो प्रत्यक्षतः ब्रिटिश समितिके लिए था, *इंडिया*को भी भेजा गया था। इसकी एक नकल दादाभाई नौरोजीने भारत-मन्त्रीको भेजी थी।

लॉर्ड मिलनरने श्वेत-संघको जो उत्तर दिया उसमें एक बात संकट-सूचक है। लॉर्ड महोदय भारत-सरकारसे इस शर्तपर गिरमिटिया मजदूरोंको लेनेके लिए लिखा-पढ़ी कर रहे हैं कि उन्हें जबरन वापस भेजा जा सके। प्रसन्नताकी बात है कि भारत-सरकारने परम-श्रेष्ठको अबतक उनके सन्तोषके लायक कोई उत्तर दिया है, ऐसा नहीं दीखता। किन्तु लिखा-पढ़ी अभी जारी है, यह देखते हुए आज निम्न तार भेजा गया है :

> **लॉर्ड मिलनरने श्वेत-संघ (व्हाइट लीग) को उत्तर देते हुए बताया है कि उन्होंने भारत-सरकारसे गिरमिटिया भारतीय भेजनेको कहा है, जो गिरमिट पूरा होनेपर लौट जायें। आशा है अनिवार्य वापसीका प्रस्ताव मंजूर न होगा।**

इस प्रस्तावका अर्थ समस्त ब्रिटिश नीतिको उलट देनेसे कम और कुछ नहीं है। भारतीयोंकी माँग उन लोगोंके लाभके लिए है जो गुलामोंके रूपमें उनका श्रम चाहते हैं। ज्यों ही उनके बन्धन ढीले होंगे त्यों ही उनको वापस जाना होगा। दूसरे शब्दोंमें, उपनिवेश, यदि ले सके तो, भारतीयोंसे सब कुछ ले लेगा, किन्तु बदलेमें देगा कुछ भी नहीं; क्योंकि उनको जो मजदूरी दी जायेगी वह सदा प्रमाणित मजदूरीसे कम होगी, और भले ही वह कितनी ही ऊँची क्यों न हो, इतनी ऊँची नहीं हो सकती कि उससे उनकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और उस देशमें बसनेके अधिकारसे वंचित होनेकी क्षतिपूर्ति हो सके। अतः जबतक ट्रान्सवाल अपनी स्वतन्त्र भारतीय आबादीके साथ उचित तरीकेसे व्यवहार करनेके लिए तैयार नहीं है, तबतक वह भारतसे कोई सहायता पानेकी आशा नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त, शुद्ध भावसे आशा की जाती है कि अपने एकपक्षीय लाभके लिए उसे भारतीय मजदूरोंका शोषण न करने दिया जायेगा।

ईस्ट लंदनके लोग अपने छुटकारेके लिए गला फाड़ कर चिल्ला रहे हैं। यह सच है कि वह नगर एक स्वशासित उपनिवेशका अंग है। किन्तु वे श्री चेम्बरलेनसे अपील करते हैं कि वे ईस्ट लंदनकी नगरपालिकासे वैसी ही मित्रवत् प्रार्थना करनेमें अपने महत्प्रभावका उपयोग करें, जैसी उन्होंने भूतपूर्व दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यसे की थी। ईस्ट लंदन तो आखिर साम्राज्यका एक अंग है, जब कि दक्षिण आफ्रिकी गणराज्य साम्राज्यका अंग नहीं था।

### *नेटाल*

लॉर्ड मिलनरकी *बाजार*-सम्बन्धी सूचनाका समस्त दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंपर अत्यन्त हानिकर परिणाम हुआ है। जहाँतक ट्रान्सवालका सम्बन्ध है, यह सूचना अब अस्थायी मान ली गई है। किन्तु डर्बन नगर-परिषदने इसे गम्भीर रूपसे दिलमें बसा लिया है; और वह नेटालकी संसद्से अनुरोध कर रही है कि वह नया कानून पास करे, जिसमें *बाजारों*, अर्थात् पृथक् बस्तियों आदिके सिद्धान्तका समावेश हो जाये। इससे प्रकट होता है कि किसी एक बड़े आदमीका एक ही गलत कदम कितनी बुराई कर सकता है। वह सूचना एक गलत कदम थी, इस सम्बन्धमें शायद ही कोई विवाद हो। क्योंकि, जब वह तैयार की गई तब उसे स्थायी माना गया था। अब लॉर्ड मिलनरने कहा है कि वह केवल प्रयोगात्मक है। जाहिर है कि, नेटाल और केप दोनोंने उसे स्थायी माना है। इस सम्बन्धमें भारतके महा-अंक-निर्देशकका कथन पढ़ने योग्य है। उसकी एक कतरन संलग्न है।

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफ़िस : ज्यूडिशियल एंड पब्लिक रेकर्ड्स, ४०२।

## २४८. प्रार्थनापत्र : ट्रान्सवालके गवर्नरको

### ब्रिटिश भारतीय संघ

२५ व २६, कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
जोहानिसबर्ग
जून ८, १९०३

सेवामें
निजी सचिव
परमश्रेष्ठ गवर्नर, ट्रान्सवाल
जोहानिसबर्ग

महोदय,

ब्रिटिश भारतीय संघ (ब्रिटिश इंडियन असोसिएशन) उन अनेकानेक मुद्दोंके सम्बन्धमें परमश्रेष्ठकी सेवामें उपस्थित होनेकी धृष्टता कर रहा है, जो उस शिष्ट-मण्डलने परमश्रेष्ठके सामने पेश किये थे, जिसे गत २२ मईको परमश्रेष्ठने भेंट देनेकी कृपा की थी।

संघकी कार्य-समिति अनुभव करती है कि पिछली मुलाकातका समय सीमित था, इसलिए इतने थोड़े समयमें शिष्ट-मण्डल अपने कुछ मुद्दोंको पूरी तरह परमश्रेष्ठकी सेवामें नहीं रख सका। इसी प्रकार, परमश्रेष्ठने जो भाषण दिया उसके जवाबमें भी कुछ कहनेका अवसर शिष्ट-मण्डलको नहीं मिल सका।

इन मुद्दोंकी चर्चा शुरू करनेसे पहले पिछली मुलाकातके समय परमश्रेष्ठने समितिकी बातें देरतक जिस धीरज और सौजन्यके साथ सुनी, और जिस सहानुभूतिके साथ उनका जवाब दिया, उस सबके लिए समिति परमश्रेष्ठको आदरपूर्वक धन्यवाद देना चाहती है।

### १. एशियाई दफ्तर

परमश्रेष्ठके प्रति अधिकतम आदर रखते हुए समितिकी अब भी यही राय है कि जिस तरह एशियाई दफ्तर अभी काम कर रहा है वह भारतीय समाजके लिए एक भारी बोझ और उपनिवेशकी आयपर एक अनावश्यक खर्च है। समितिने केवल उसकी कार्य-पद्धतिके बारेमें अपनी राय बताई है। इसमें पर्यवेक्षकोंमें से किसीके व्यक्तित्वपर किसी भी प्रकारका आक्षेप करनेका हेतु समितिका नहीं है।

*(क) अनुमति-पत्रों (परमिट्स) के विषयमें एशियाई दफ्तरने बड़ी कठिनाइयाँ उपस्थित की हैं।*

परमश्रेष्ठने कहा था कि पिछली समय भारतीयोंको बहुत अधिक अनुमति-पत्र दिये जाते रहे हैं। परन्तु मेरी समिति बताना चाहती है कि इक्के-दुक्के अपवादोंको छोड़कर गैर-शरणार्थियोंको कभी अनुमति-पत्र नहीं दिये गये हैं। शान्ति-रक्षा अध्यादेश (पीस प्रिजर्वेशन ऑर्डिनेन्स) के मंजूर हो जानेके बादकी अवधिमें कुछ दिनों रेलवे अधिकारियोंका खयाल रहा कि अनुमति-पत्रका होना अनिवार्य नहीं है और इसलिए अनुमति-पत्र देखे बगैर ही वे रेल-टिकट जारी करते रहे।

सीमावर्ती शहरोंमें भी इनकी जाँच नहीं हो रही थी। इसका परिणाम यह हुआ कि कितने ही नये भारतीय उपनिवेशमें आ गये, जिन्हें कि यह ज्ञान ही नहीं था कि इसमें किसी कानूनका भंग हो गया है। उन भारतीयोंका बादमें चालान किया गया और उन्हें उपनिवेश छोड़कर चले जानेके लिए हिदायत कर दी गई। इसलिए ऊपर लिखे अनुसार भारतीय उपनिवेशमें आ गये थे, उससे हमारा यह कथन असत्य नहीं हो जाता कि एशियाई दफ्तर बड़ी सख्तीसे काम कर रहा है।

एशियाई दफ्तरके खुल जानेके कारण अब अगर भारतीय लोग उपनिवेश-सचिवको नाम-चारके लिए, परन्तु वास्तवमें एशियाई दफ्तरको, दरख्वास्त न दें तो उन्हें अनुमति-पत्र मिल ही नहीं सकते। यूरोपीयोंके लिए यह बन्दिश नहीं है। फिर इस दफ्तरके पर्यवेक्षकोंको अनुमति-पत्र मंजूर करनेकी सत्ता भी नही है। वे केवल सिफारिश कर सकते हैं। इस सिफारिशके बाद ही अनुमति-पत्र देनेवाले आम दफ्तर समुद्र-किनारेके शहरोंमें बैठकर इन सिफारिश पाये हुए नामोंपर अनुमति-पत्र मंजूर करते है, इसके पहले नहीं। अनुमति-पत्रोंके उम्मीदवारोंको प्रामाणिकताके बारेमें ठीक वही सबूत एशियाई दफ्तरमें पेश करना होता है जो अनुमति-पत्रोंके आम दफ्तरोंमें पेश किया जाता है। दोनों दफ्तरोंके बीच फर्क यह है कि समुद्र-किनारेके आम दफ्तरमें काम करनेवाले अधिकारी अर्जदारको अपनी आँखों देखकर उसके द्वारा पेश किये गये सबूतकी प्रामाणिकताकी जाँच कर सकते है, जब कि एशियाई दफ्तरमें काम करनेवाले अधिकारीको सैकड़ों मील दूर बैठकर अर्जदारके बारेमें अपनी राय बनानी पड़ती है। इस पद्धतिमें लाभ तो कुछ भी नही; हाँ, बेकार समय जरूर काफी नष्ट होता है। एक भारतीयको परवाना प्राप्त करनेमें साधारणत: कमसे-कम तीन महीने तो लग ही जाते हैं। कितने ही उदाहरण ऐसे भी मिलेंगे, जिनमें सिफारिश हो जाने और प्रत्यक्ष अनुमति-पत्र मिलनेके बीच एक-एक महीना बीत जाता है। इसलिए अगर यह कहा जाये कि भारतीयोंकी भलाईके लिए यह दफ्तर खोला गया है तो, जहाँ तक अनुमति-पत्रोंका प्रश्न है, यह हेतु सफल नहीं हुआ है। उलटे इससे बेहद परेशानी और कानून-सम्बन्धी खर्च बढ़ गया है।

*(ख) एशियाई दफ्तरने पास जारी करनेकी एक ऐसी पद्धति शुरू की है जो एकदम निकम्मी साबित हुई है।*

एशियाई दफ्तर भारतीयोंपर अपने मनसे गढ़ी हुई सत्ताके सिवाय कोई सत्ता नहीं रखता। उसने पास देनेकी एक पद्धति बिलकुल मनमाने ढंगसे जारी कर रखी है। जो भी भारतीय इस उपनिवेशमें आता है उसका अनुमति-पत्र उससे छीन लिया जाता है और उसे एक एशियाई पास दे दिया जाता है। इस पासका उपयोग केवल इतना है कि उपनिवेशमें आनेवाले भारतीयका नाम रजिस्टरमें दर्ज हो जाये। परन्तु तथ्य यह है कि उसका नाम तो रजिस्टरमें पहलेसे ही दर्ज होता है। क्योंकि इस दफ्तरकी सिफारिशपर ही तो उसे वह अनुमति-पत्र दिया जाता है। फिर अनुमति-पत्र तो स्थायी होते हैं और उनकी मददसे एक आदमी उपनिवेशके भीतर और बाहर भी जब और जितना चाहे आ-जा और घूम सकता है, जब कि एशियाई दफ्तर द्वारा जारी किये गये पास अस्थायी होते हैं और उपनिवेशसे बाहर जाने और वापस लौटनेके काम नहीं आते। इस प्रकार ज्यों ही एक भारतीय उपनिवेशमें प्रवेश करता है इस पद्धतिके कारण अपने आने-जानेकी स्वतंत्रता बहुत कुछ खो देता है। विवेकहीन भारतीयों और यूरोपीयोंकी कमी नहीं है, जो इस पद्धतिका लाभ उठाकर उसका दुरुपयोग करनेकी इच्छा रखते हैं। इसलिए ज्योंही शान्ति-रक्षा कानूनमें संशोधन करनेवाला अध्यादेश मंजूर हुआ, परवाना-विभागके मुख्य सचिवको ये हिदायतें जारी करनी पड़ीं कि एशियाई पास वापस करके उनके

बदलेमें अनुमति-पत्र (परमिट) लिये जायें। यद्यपि यह अनुमति-पत्र देनेके पीछे उद्देश्य तो अच्छा था, परन्तु इसको जिस प्रकार कार्यान्वित किया गया है, उसमें जोहानिसबर्ग, पॉचिफस्ट्रूम और हाइडेल्बर्गके हजारों भारतीयोंको बड़े क्रूर अत्याचार सहने पड़े। मेरी समिति उनका वर्णन नहीं करना चाहती, क्योंकि उपनिवेश-सचिव उस प्रश्नपर विचार कर रहे हैं। हमारा मतलब तो केवल यह बताना है कि एशियाई दफ्तरके खुलनेके कारण ही यह सब हो रहा है। नहीं तो इतने कष्ट असम्भव थे।

और अब उस दफ्तरके होते हुए भी शासनने यह निश्चय किया है कि इस दफ्तरके अलावा, उससे अलग एक और स्वतंत्र एशियाई अफसर नियुक्त किया जाये। इस नये निश्चयका कारण मेरी समितिकी समझमें नहीं आ रहा है।

पंजीकरण (रजिस्ट्रेशन)-करका समर्थन करते हुए परमश्रेष्ठने कहा था कि वह कर उपयोगी है। मेरी समितिने परमश्रेष्ठकी सलाहको मान लिया है और वह इस प्रश्नपर पुन. चर्चा करना नहीं चाहती, सिवा इसके कि इस सिलसिलेमें वह प्रस्तुत विषयपर कुछ अधिक प्रकाश डाल दे। बात यह है कि, वास्तवमें, जैसा कहा जा चुका है, एक बार तो पंजीकरण एशियाई दफ्तर द्वारा हुआ, दूसरी बार हुआ अनुमति-पत्रोंके मुहकमेके मुख्य सचिव द्वारा। अब यह तीसरी बार पंजीकरण करनेका उपक्रम है। मेरी समितिकी नम्र राय है कि सन् १८८५ के कानून नं० ३ को कार्यान्वित करनेमें इस तरह तीन-तीन बार पंजीकरण करानेकी जरूरत नहीं है। इसके बगैर भी तीन पौंडका कर उन लोगोंसे वसूल किया जा सकता था, जिन्होंने पहली हुकूमतको वह नहीं दिया था। किन्तु इसके लिए एक स्वतंत्र दफ्तरके मारफत एक लम्बी-चौड़ी व्यवस्था कायम की गई है। मेरी समितिकी रायमें इसकी कोई जरूरत नहीं थी।

*(ग) एशियाई दफ्तरने परवाना देनेवाले दफ्तरके काममें अनावश्यक दस्तंदाजी की है।*

कोई भी भारतीय व्यापारी या फेरीवाला एशियाई दफ्तरकी सिफारिशके बगैर अपना परवाना प्राप्त नहीं कर सकता। यद्यपि कानूनमें इसका कहीं उल्लेख नहीं है, जान पड़ता है कि राजस्व-विभागके अधिकारियोंको विभागसे हिदायतें दी गई हैं कि बगैर ऐसी सिफारिशके किसीको भी परवाने न दिये जायें। मेरी समितिकी समझमें नहीं आता कि इन सिफारिशोंकी क्या जरूरत है? परवाना (लाइसेंस) लेनेके लिए अर्जदारको हर हालतमें अपना अनुमति-पत्र पेश करना पड़ता है और प्रचलित घोषणा-पत्र भी भरना पड़ता है। अगर उद्देश्य यह निश्चय करना हो कि अनुमति-पत्र और घोषणा-पत्र अर्जदारका ही है तो एशियाई दफ्तर इस कामको राजस्व-अधिकारियोंकी अपेक्षा अधिक अच्छी तरह किसी भी सूरतमें नहीं कर सकता। ऐसे मामलोंमें स्वाभाविक रूपसे धोखेकी कहीं गुंजाइश नहीं है।

*(घ) फोटोवाले पासोंकी पद्धतिके लिए भी एशियाई दफ्तर ही जिम्मेदार है।*

इतनेपर भी एशियाई दफ्तरको भारतीयोंपर अपनी सत्ता अधूरी लगी। मानो इसीलिए उसने हालमें आगन्तुक-पासोंकी एक नई पद्धति शुरू की। कानूनमें इसका कोई आधार नहीं है। इससे भारतीयोंकी हलचलोंपर एक नया प्रतिबन्ध लग गया।

इन सबके बाद एशियाई दफ्तरके कर्तव्यकी इतिश्री हो जाती है।

*(ङ) एशियाई दफ्तर राज्यके कोशपर एक अनावश्यक बोझ है।*

पिछले विवरणसे यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि यह दफ्तर सार्वजनिक धनका निरा अपव्यय है। क्योंकि, अगर समुद्र-किनारेके शहरोंके अफसर बगैर एशियाई दफ्तरकी सिफारिशके,

अधिक अच्छी तरह नही तो कमसे-कम उतनी ही अच्छी तरह, अधिकृत संख्यामें अनुमति-पत्र जारी कर सकते है, और इसी प्रकार यदि यह विश्वास किया जा सकता है कि राजस्व-विभागके अधिकारी ब्रिटिश भारतीयोंको मामूली तौरपर परवाने दे सकते है, तो सचमुच एशियाई दफ्तरके लिए फिर कोई काम नही रह जाता।

*(च) केप कालोनी और नेटालमें यहाँकी अपेक्षा बहुत अधिक भारतीय हैं। परन्तु वहाँ ऐसा कोई मुहकमा नहीं है।*

इसके अलावा ट्रान्सवालकी अपेक्षा केप कालोनी और नेटालमें भारतीयोंकी आबादी कहीं अधिक है; परन्तु वहाँ ऐसे किसी दफ्तरकी जरूरत नही मानी गई। नेटालमें प्रवासी भारतीयोंकी रक्षाके लिए एक दफ्तर अवश्य है। परन्तु उसका सम्बन्ध तो केवल गिरमिटिया मजदूरोंसे है। स्वतन्त्र भारतीयोंपर उसकी कोई सत्ता नही है। और शायद इससे भी बड़ी बात यह है कि ट्रान्सवालकी पुरानी हुकूमतको ऐसे दफ्तरकी जरूरतका अनुभव कभी नही हुआ।

*(छ) एशियाई दफ्तर अन्य दफ्तरोंमें जानेकी जरूरत खत्म नहीं करता।*

परमश्रेष्ठने कहा था कि एशियाई दफ्तरकी जरूरत इसलिए है कि केवल एशियाइयोंका काम करनेवाले अधिकारियोसे भारतीयोंका सम्पर्क सीधा और आसानीसे हो सके और दूसरे अधिकारियोंके पास आना-जाना खत्म हो सके। परन्तु ऐसा हो नही रहा है। वस्तु-स्थिति तो यह है कि एशियाई दफ्तर बीचमें उलटा एक अतिरिक्त बोझ बन गया है। इससे अपने अन्य काम-काजोंके लिए भारतीयोंकी दूसरे दफ्तरोंमें आने-जानेकी आवश्यकता खत्म नही हुई है।

इस प्रकार मेरी समिति आशा करती है कि वह परमश्रेष्ठको यह विश्वास दिला सकी है कि हर प्रकारसे यह दफ्तर अनावश्यक है। वास्तवमें जब इसकी स्थापना हुई तब उद्देश्य यही था कि यह एक अस्थायी संस्था होगी, और अनुमति-पत्रकी प्रथा समाप्त हो जानेपर इसकी कोई जरूरत नहीं रहेगी।

## २. *बाजारोंवाली सूचना*

सूचना ३५६ सन् १९०३ का, जिसमें *बाजारोंके* सिद्धान्त बताये गये है, जो उदार अर्थ लगाया गया है उसके लिए संघ कृतज्ञता प्रकट करता है। परन्तु आदरपूर्वक निवेदन है कि इस सूचनापर दो कारणोंसे आपत्ति की जा सकती है:

*(१) कि उसका अभिप्राय भारतीयोंको अनिवार्य रूपसे पृथक् करना और उनके व्यापारको केवल बाजारोंमें सीमित करना है।*

*(२) कि उसके अमलसे भारी कठिनाइयाँ पैदा होंगी।*

पहली बातके विषयमें संघका नम्र निवेदन है कि यदि उद्देश्य स्वाधीनताको सीमित करना है, तो किसी भी तरहकी अनिवार्यता न्यायके विरुद्ध पड़ती है। अकसर कहा गया है कि भारतीयोंको *बाजारोंका* विरोध नहीं करना चाहिए, क्योंकि भारतमें उन्हें *बाजारोंकी* आदत रही है। इसपर संघ परमश्रेष्ठसे निवेदन करना चाहता है कि भारतके *बाजार* शहरके बिलकुल बीचोंबीच उसके सबसे व्यस्त हिस्सेमें होते हैं और फिर *बाजारमें* व्यापार करना किसीके लिए अनिवार्य नहीं है। कहना जरूरी नहीं कि भारतीय *बाजार* निवासके स्थान नही होते। असलमें जिस-किसी स्थानमें व्यापार-व्यवसाय होता है उसीको *बाजार* कहा जाता है और वह किसी वर्ग विशेषतक सीमित नही होता। इस सूचनामें तो महज पृथक् बस्तियोंको *बाजारका* मीठा नाम दिया गया है। यहाँ व्यापार ही नहीं करना पड़ेगा, रहना भी पड़ेगा। सरकारने भी *बाजारको*

कोई महत्त्वकी या इज्जतदार जगह नहीं माना है यह इसीसे स्पष्ट है कि लड़ाईके पहलेसे व्यापार करनेवाले भारतीय वहाँ जानेके लिए मजबूर नहीं किये जायेंगे। इसी प्रकार सुशिक्षित और प्रतिष्ठित भारतीयोंपर भी वहाँ रहनेकी पाबन्दी नहीं है। फिर ट्रान्सवालके *बाजार* भारतके सही बाजार जिस प्रकार शहरके बीचमें होते हैं वैसे नहीं होंगे। संघको यह कहनेके लिए माफ किया जाये कि ये *बाजार* शहरकी सीमाके अन्दर होंगे, इसका मतलब यह नहीं है कि वर्तमान कानून मुलायमियतके साथ बरता गया है; क्योंकि कानूनका मंशा साफ है कि मुहल्लों और सड़कोंको अलग किया जाये, और ये तो शहरोंमें ही होंगे। फिर कानूनमें तो लिखा है कि ये सड़कें, मुहल्ले और बस्तियाँ केवल रहनेके लिए होंगी। उसमें व्यापारका कहीं उल्लेख नहीं है। इसलिए संघका मत है कि भारतीय व्यापारको *बाजारों*तक सीमित करनेका अर्थ कानूनको मरोड़ कर निकाला गया है। हमें मालूम है कि भूतपूर्व गणराज्यके उच्च न्यायालयने अपने निर्णयमें कहा था कि कानूनकी व्याख्या करनेमें 'निवास' के साथ 'व्यापार' का भी समावेश समझा जायेगा। परन्तु यह फैसला सर्वसम्मत नहीं था। न्यायमूर्ति श्री मॉरिसने इसके विरोधमें अपना मत दिया था। इसलिए उस फैसलेपर अमल करना कानूनका उदार अर्थ करना नहीं है — इसे देखते हुए कि उसपर विरोधी मत दिया गया था और ब्रिटिश सरकारने कानूनको स्वीकार करनेकी लाचारीके बावजूद इस अर्थके प्रति सदा अपना विरोध प्रकट किया है।

परमश्रेष्ठने यह भी कहा था कि नया विधान विचाराधीन है। यदि ऐसा है तो संघ समझ नहीं पाता कि अभी इस कानूनको लागू करनेकी क्या आवश्यकता है? यों भी बहुत कम भारतीयोंको उपनिवेशमें आने दिया जा रहा है। जो लड़ाईके पहले व्यापार करते थे उन्हें फिरसे बस्तियोंसे बाहर व्यापार करनेका अधिकार दिया जानेवाला है। तब नये कानूनके बननेतक नये अर्जदारोंके साथ सरकार जैसा उचित समझे करे।

*बाजारों*को शहरकी सीमामें रखनेका श्वेत-संघ (व्हाइट लीग) ने कड़ा विरोध किय है। अगर भारतीयोंको आम तौरपर शहरोंमें व्यापार करनेके परवाने देना गलत है, तो शहरको कुछ हिस्सोंमें, भले ही उनका नाम *बाजार* हो, व्यापार करने देना भी उतना ही गलत होगा। इसलिए हमारे संघको भय है कि सरकारके इच्छानुसार यदि *बाजार* शहरके सुगम्य हिस्सोंमें बसाये गये तो भी भारतीय-विरोधी हलचल होती रहेगी।

इसलिए संघका निवेदन है कि किसी भी दृष्टिसे विचार किया जाये, *बाजार*का सिद्धान्त असन्तोषजनक है।

यद्यपि हम यह नहीं मानते कि भारतीय व्यापारी बहुत ज्यादा व्यापार हथिया लेंगे, फिर भी उत्तम उपाय यह है कि व्यापारके नये परवाने देनेपर नियन्त्रणका अधिकार नगर-पालिकाओंको दे दिया जाये और उनके निर्णयोंपर पुनर्विचार करनेका अधिकार सर्वोच्च न्यायालयको हो। इस प्रकार जबतक सफाई, व्यवस्थित हिसाब आदि रखनेके कानूनका पालन किया जाता है, तबतक वर्तमान परवानोंमें कोई हेर-फेर नहीं किया जायेगा। और जहाँतक नये परवाने देनेका सवाल है, चाहे यूरोपीयोंको, चाहे भारतीयोंको, इसका निर्णय नगरपालिकाके हाथोंमें होगा, जो जनताकी इच्छाका प्रतिनिधित्व करती है। इस तरहके प्रतिस्पर्धा-रहित कानूनका स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि प्रत्येक कौम अपने आप अलग-अलग मुहल्लोंमें बँट जायेगी। मकान साल-ब-साल बेहतर किये जा सकेंगे, कौमका सारा रहन-सहन ऊँचा किया जा सकेगा, और सो भी उनके किसी वर्गका जी दुखाये बिना। हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि अगर शहरका कोई अच्छा हिस्सा चुनकर भारतीयोंको वहाँ जाने-न-जानेकी अनुकूलता कर दी जाये तो बगैर किसी जबरदस्तीके बहुत-से लोग प्रसन्नतापूर्वक इस अवसरका लाभ उठायेंगे।

अब दूसरी बात लें। सरकार जिन-निहित स्वार्थोंकी रक्षा चाहती है, उनपर इस सूचनाका गहरा असर होगा, क्योंकि:

(१) सूचना भारतीयोंके आजके सारे परवानोंको नहीं मानती।
(२) वह *बाजारोंके* बाहर एकके नामका परवाना दूसरेके नामपर बदलनेका हक नही देती।
(३) उसमें यह साफ नही बताया गया है कि किन्हें अपने परवाने नये करवाने हैं — *बाजारोंके* बाहर व्यापार करनेके परवाने जिनके पास थे, केवल उन्हींको या उन सबको, जो युद्धके पहले *बाजारोंके* बाहर व्यापार करते थे — चाहे उनके पास परवाने रहे हों या नहीं।
(४) यह भी साफ नहीं है कि जो पेढ़ी लड़ाईसे पहले *बाजारोंके* बाहर व्यापार कर रही थी उसके सभी साझेदारोंको नये परवाने मिल सकते हैं या किसी एकको।
(५) उसमें छूट केवल निवासकी है।

संघ उपर्युक्त मुद्दोंपर थोड़ी चर्चा करनेकी इजाजत चाहता है।

*(१) सूचना भारतीयोंके आजके सारे परवानोंको नहीं मानती।*

यह मुद्दा इतना महत्त्वपूर्ण है कि इसपर जितना भी जोर दिया जाये, थोड़ा ही होगा। आजके बहुतसे परवानेदारोंके लिए यह जीवन-मरणकी वस्तु है। कुछ परवानेदार भारतीय शरणार्थी ट्रान्सवाल वापस लौट गये थे। उनको ऐसे शहरोंमें व्यापार करनेके परवाने दिये गये, जहाँ वे पहले व्यापार नही करते थे। ये परवाने उनको ब्रिटिश अधिकारियोंने पूरे वर्षके लिए बिना किसी शर्तके दिये थे। परन्तु पिछले वर्षके अन्तमें कुछ शहरोंमें मजिस्ट्रेटोंने उनको सूचना दी है कि वे परवाने नये नही किये जायेंगे। भारतीय शिष्ट-मण्डलने पिछली बार खास तौरसे श्री चेम्बरलेनका ध्यान इस बातकी तरफ दिलाया था। उन्होंने बड़े जोरसे आश्वासन दिया था कि इन परवानोंको सही माना जायेगा और ये नये किये जायेंगे। फिर भी उस सूचनाके अनुसार वर्षके अन्तमें ऐसे सब व्यापारियोंको *बाजारोंमें* भेज दिया जायेगा। परमश्रेष्ठका ध्यान इस बातकी तरफ शिष्ट-मण्डलने दिलाया था। उन्होंने जवाब दिया था कि वे इसपर विचार करेंगे। इनमें से कुछ व्यापारियोंका कारोबार यहाँ बहुत लम्बे समयसे है। लम्बी मियादोंके पट्टोंपर उन्होंने भरोसा किया — सपनेमें भी यह शंका नहीं थी कि ब्रिटिश हुकूमतकी छायामें उनके पट्टोंकी मियाद खतरेमें पड़ जायेगी। इसके विपरीत कुछ ऐसे पुराने व्यापारी हैं जिनके पास लड़ाईके पहले *बाजारोंसे* बाहर व्यापार करनेके परवाने थे। वे अभीतक ट्रान्सवालमें लौटकर नहीं आये हैं। फिर भी इनके परवानोंका खयाल किया जा रहा है। हमारी नम्र सलाह यह है कि जो लौटे नहीं है उनकी अपेक्षा सम्भव हो तो इन व्यापारियोंका विशेष खयाल किया जाये। क्योंकि, पहले मामलोंमें, अपेक्षाकृत नया आदमी होनेपर भी उसका व्यापार जम गया है। दूसरा व्यापारी जरूर पुराना है, परन्तु उसे अपना व्यापार नये सिरेसे प्रारम्भ करना होगा। इसलिए हमारी विनती है कि दूसरे प्रश्नोंके बारेमें परमश्रेष्ठ जो भी निर्णय करें, इस प्रश्नके विषयमें सम्बन्धित व्यापारियोंके पक्षमें हुक्म दिया जाना चाहिए।

*(२) वह बाजारसे बाहर परवाने बदलनेका अधिकार नहीं देती।*

सूचना लड़ाईसे पहले व्यापार करनेवालोंके अधिकारोंकी परवाह करती है, और नही भी करती। क्योंकि उसमें परवानेदारके निवासकी अवधितक ही नये परवानेकी गुंजाइश है। ज्यों ही वह सोचे कि उसका व्यापार ठीक जम गया है, उसकी साख कायम हो गई है और अब

यह भले ही अवकाश ले सकता है, त्यों ही सच्चे श्रमका परिणत फल उसके मुँहसे छीन लिया जाता है। यह अपने कारोबारको बेच नहीं सकता। अपने चलते हुए व्यापारका परवाना वह दूसरेके नामपर नहीं करवा सकता। संघको यह बतानेकी जरूरत नहीं है कि व्यापारीसे इस मामूली अधिकारके छिन जानेका अर्थ उसके लिए क्या होता है। इसलिए अगर यह बात सही है कि निहित स्वार्थोंकी रक्षा होगी, तो संघकी राय है कि, परवाने दूसरेके नामपर करवानेका अधिकार कायम रहना चाहिए। श्री विलियम हॉस्केन और दूसरे प्रतिष्ठित यूरोपीय सज्जनोंने भी इस माँगका समर्थन किया है। इस सूचनापर उन्होंने परमश्रेष्ठकी सेवामें एक प्रार्थनापत्र[1] भेजा है। उसकी नकल हम साथमें पेश कर रहे हैं। आगे विस्तारसे उसका उल्लेख आया है।

*(३) उसमें यह साफ नहीं बताया गया है कि किन्हें अपने परवाने नये करवाने हैं — बाजारोंके बाहर व्यापार करनेके परवाने जिनके पास थे, केवल उन्हींको या उन सबको, जो युद्धके पहले बाजारोंके बाहर व्यापार करते थे — चाहे उनके पास परवाने रहे हों या नहीं।*

यह मुद्दा महत्त्वपूर्ण है। ऐसे बहुतसे भारतीय थे जो लड़ाईके पहले व्यापार तो करते थे, परन्तु उनके नाम परवाने जारी नहीं हुए थे। बहुत कमके पास परवाने थे। बहुतसे परवानेकी रकम दे देंगे इस वचनपर, और कुछ गोरोंके नामसे, व्यापार करते थे। और यह सब था, अधिकारियोंकी जानकारीमें। इसे बर्दाश्त कर लेनेका कारण था, ब्रिटिश हुकूमतका दबाव। अब, सूचनाके प्रारम्भमें कहा गया है: "लड़ाईके प्रारम्भमें जो एशियाई बाजारोंसे बाहर व्यापार करते थे उनके हितोंका उचित ध्यान रखते हुए।" परन्तु तीसरी उपधारामें उन एशियाई व्यापारियोंका जिक्र है, "जिनके पास लड़ाईके प्रारम्भमें *परवाने थे* आदि।" इससे प्रकट है कि लड़ाईके पहले जो "व्यापार करते थे" के बजाय "*परवाने रखते थे*" की हदबन्दी कर दी गई तो बहुतसे भारतीयोंका नुकसान हो जायेगा।

*(४) यह भी साफ नहीं है कि जो पेढ़ी लड़ाईसे पहले बाजारोंके बाहर व्यापार कर रही थी उसके सभी साझेदारोंको नये परवाने मिल सकते हैं या किसी एकको।*

सूचनामें इस मुद्देपर फेर-बदलकी गुंजाइश रखी गई है। यदि पहले आनेवाले साझेदारको परवाना दे दिया गया और बादमें आनेवाले या आनेवालोंको इनकार कर दिया गया तो यह सरासर अन्याय होगा। लड़ाईके पहले वे सब व्यापार करते थे। अगर फिरसे परवाना दिया जाता है तो उसपर सबका समान अधिकार होगा।

*(५) उसमें छूट केवल निवासकी है।*

भारतीयोंके लिए छूटका यह सारा सिद्धान्त ही बड़ा दुःखदायी है। समझमें नहीं आता कि ब्रिटिश-राज्यमें चाहे जहाँ बसनेकी भारतीयको 'छूट' लेने और इस तरह अपने दूसरे देशवासियोंसे बड़ा दिखनेकी जरूरत क्यों पड़नी चाहिए। दलीलके लिए ऐसे घृणित (इस शब्दके लिए संघको क्षमा किया जाये) सिद्धान्तको मंजूर भी कर लिया जाये तो भी छूट तो केवल निवासकी ही होगी। परमश्रेष्ठ तो सोच रहे थे कि यह छूट निवास और व्यापार दोनोंके लिए होगी। किन्तु सूचना स्पष्ट रूपसे उसे निवासतक ही सीमित करती है। सन् १८८५ के समूचे कानून ३ में छूटकी बात होती तो भी उसका कोई मूल्य होता।

१. यह यहाँ नहीं दिया गया है; देखिए पृष्ठ ३१९-२०।

किन्तु हमारा संघ इसपर बहुत नहीं कहना चाहता। उसका तो पूरी सूचनासे आदर-सहित विरोध है। हमारी रायमें यह सूचना स्वर्गीया महारानीकी सरकारकी घोषणाके विपरीत है, जो नया कानून बनने जा रहा है उसे ध्यानमें रखते हुए अनावश्यक है, अस्पष्टताओंसे भरी पड़ी है, और भारतीयोंको उसी अनिश्चयकी अवस्थामें डाले हुए है जिसमें वे १५ वर्षोंसे पड़े हैं। ब्रिटिश हुकूमतकी स्थापनाके बाद उसे इससे छुटकारा पानेका अधिकार था। भले ही यह खर्चीली लड़ाई ब्रिटिश सरकारने मुख्यतः यूरोपीयोंकी शिकायतें दूर करनेके लिए लड़ी थी, फिर भी उसमें भारतीयोंकी शिकायतोंको दूर करनेका ध्यान भी काफी था।

३

*बस्तियोंके बाहर जमीन-जायदाद रखनेकी मनाही।*

सन् १८८५ का कानून ३ कहता है कि भारतीय निश्चित सड़कों, मुहल्लों और बस्तियोंसे बाहर उपनिवेशमें कहीं भी जमीन-जायदाद नही रख सकेंगे। संघ आदरपूर्वक मानता है कि यह प्रतिबंध राजभक्त ब्रिटिश भारतीयोंके लिए बड़ी भारी मुसीबतकी और नुकसानदेह चीज है। यह समझना बहुत ही कठिन है कि एक ब्रिटिश प्रजाजन ब्रिटिशों द्वारा शासित भू-भागमें, जहाँ-कही भी वह चाहे, जमीन क्यों नही खरीद सकता? हम आशा करते हैं कि अभी जो नया कानून बनानेका विचार हो रहा है उसमें से यह मुमानियत हटा दी जायेगी। इसलिए हम इस विषयमें अधिक कुछ कहना उचित नही समझते।

४

परमश्रेष्ठने कहा था कि हर राज्यको यह निर्णय करनेका अधिकार है कि वह किसे अपना नागरिक बनाये और किसे नहीं बनाये। इस सिद्धान्तको हमने स्वीकार किया है, और अब भी स्वीकार करते हैं। परन्तु इस विषयमें संघका यह खयाल है कि इस उपनिवेशमें बहुत अधिक संख्यामें एशियाइयोंके घुस आनेका भय नही है। दक्षिण आफ्रिकाके समुद्र-तटवर्ती उपनिवेशोंमें पहले ही से बहुत कड़े कानून हैं। इसके अलावा भारतीय स्वभावतः अपना देश छोड़कर कही बाहर जाकर बसना पसन्द नही करते। ये दोनों बातें जरूरतसे ज्यादा भारतीयोंका आना रोकनेके लिए काफी हैं। परन्तु यूरोपीय उपनिवेशी ऐसा नहीं मानते। दबाव डालनेवाले कानून बनानेके पीछे यही बड़ी संख्याके आनेका भय है। इसलिए नये प्रवेशको नियन्त्रित करनेवाले किसी भी कानूनको बगैर किसी विरोधके हम स्वीकार कर लेंगे, बशर्ते कि वह सब पर एक-सा लागू हो, उसमें रंगका भेदभाव न हो और प्रतिष्ठित वर्गके भारतीयोंके तथा जो भारतीय यहाँ पहलेसे ही बस गये हैं उनके व्यापारमें मददके लिए अन्य भारतीयोके आनेको उपनिवेशके द्वार खुले रखे जायें।

यहाँ जिस प्रार्थनापत्रका उल्लेख हो चुका है उसमें श्री विलियम हॉस्केन और उनके कुछ साथियोंने परमश्रेष्ठको सुझाया है कि नेटाल अथवा केप कालोनीके प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियम (इमिग्रेशन रिस्ट्रिक्शन ऐक्ट) को कुछ फेर-फारके साथ मंजूर कर लिया जाये। इन सज्जनों द्वारा सुझाये हलको हम प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर सकते हैं, बशर्ते कि शैक्षणिक कसौटीमें प्रधान भारतीय भाषाएँ भी शामिल कर ली जायें और वह कानून अपने अधिकारियोंको यह सत्ता भी दे दे कि वह स्थानीय भारतीय व्यापारियोंके लिए आवश्यक नौकर, व्यवस्थापक आदिका भी प्रवेश — भले ही वह एक निश्चित अवधिके लिए हो — विशेष रूपसे मंजूर कर दिया करे।

## उपसंहार

दक्षिण आफ्रिकामें बसे हुए भारतीयोंका हित परमश्रेष्ठके हाथोंमें है। बाजारवाली सूचनाका व्यापक अगर तो दक्षिण आफ्रिकाके दूसरे भागोंमें हो ही रहा है। इसपर अगर इस उपनिवेशमें भारतीयोंके अधिकार कम किये गये या रंगभेदके आधारपर कोई कानून बनाया गया — वह भी परमश्रेष्ठके हाथों, जो यहाँ उच्चायुक्त और गवर्नर इन दोनों पदोंको सुशोभित कर रहे हैं और दक्षिण आफ्रिकाके निवासियोंके हृदयमें बड़ा भारी स्थान रखते हैं — तो नेटाल और शुभाशा अन्तरीप (केप ऑफ गुड होप) के स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेश अपने यहाँ ऐसे कानूनोंका अनुकरण करनेमें जरा भी ढिलाई नहीं करेंगे। संघकी नम्र सम्मतिमें गोरोंने इस प्रदेशको जीता है, यह केवल अंशतः सच है। उस लड़ाईमें ऐन संकटके समय भारतसे फौजोंका मददके लिए पहुँच जाना कम महत्त्वकी बात नहीं है। इस फौजमें केवल गोरे ही नहीं थे। इसके सिवा साथमें डोली उठानेवाले तथा दूसरे भी बहुत-से थे, जो उतने ही उपयोगी थे; और उन्होंने भी सिपाहियोंकी भाँति ही लड़ाईके संकटोंका सामना किया था। इसके अतिरिक्त स्थानीय भारतीय भी पीछे नहीं रहे। उन्होंने भी अपना कर्तव्य किया था। संसारके अनेक भागोंमें भारतीय सिपाही साम्राज्यकी लड़ाइयोंमें लड़ ही रहे हैं।

भारतीयोंको ठेठ बचपनसे यह सिखाया जाता रहा है कि कानूनकी निगाहमें सब ब्रिटिश प्रजाजन समान हैं। भारतकी जनताको स्वतन्त्रताका परवाना बहुत भारी खून-खराबीके बाद सन् १८५७[1] में मिला, जिसमें यह स्पष्ट रूपसे स्वीकार किया गया है कि यद्यपि भारतकी राजनिष्ठाको बड़ी कठिन परीक्षामें से गुजरना पड़ा किन्तु अन्तमें उसके कारण भारत साम्राज्यमें रह गया।

ब्रिटिश भारतीय बहुत छोटी चीज चाहते हैं। वे कोई राजनीतिक सत्ता नहीं माँगते। वे स्वीकार करते हैं कि दक्षिण आफ्रिकामें ब्रिटिश जातिका वर्चस्व रहे। सिद्धान्ततः उन्हें मंजूर है कि यहाँपर जहाँ-कहींसे भी सस्ते मजदूर लाये जायें, उनकी संख्या सीमित हो। वे सिर्फ इतनी बातें चाहते हैं कि जो लोग यहाँ पहलेसे ही आकर बस गये हैं या जो बादमें इस उपनिवेशमें व्यापारके लिए आयें, उनको जाने-आनेकी आजादी हो और मामूली कानूनी जरूरतोंके सिवा जमीन-जायदाद खरीदनेपर कोई रोक न हो। वे यह भी चाहते हैं कि रंगीन चमड़ी होनेके कारण उनपर जो कानूनी बन्दिशें लगा दी गई हैं वे हटा दी जायें। यह सच है कि इस उपनिवेशके गोरे निवासी अथवा उनमें से कुछ जरूर चाहते हैं कि भारतीयोंके विरुद्ध कड़े कानून बनाये जायें। वे शक्तिशाली हैं। भारतीय कमजोर हैं। परन्तु ब्रिटिश सरकार कमजोरोंकी रक्षाके लिए विख्यात रही है। अतः हमारे संघकी परमश्रेष्ठसे यही विनती है वे हमारे समाजको वह संरक्षण प्रदान करें और उसकी प्रार्थना स्वीकार करें।

आपका विनम्र सेवक,
अब्दुल गनी
अध्यक्ष, ब्रिटिश भारतीय संघ

छपी हुई मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २९४०) से; इंडिया ऑफिस : ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स ४०२, तथा *इंडियन ओपिनियन*, १८–६–१९०३।

1. यह भूल है। रानीकी घोषणा १८५८ में हुई थी।

## २४९. प्रार्थनापत्र : नेटाल विधानसभाको

### ब्रिटिश भारतीय संघ

२५ व २६ कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
जोहानिसबर्ग
जून १०, १९०३

सेवामें
माननीय अध्यक्ष और सदस्यगण
विधान परिषद, ट्रान्सवाल उपनिवेश
प्रिटोरिया

ब्रिटिश भारतीय संघ (ब्रिटिश इंडियन असोसिएशन) के अध्यक्षकी
हैसियतसे निम्न हस्ताक्षरकर्ता अब्दुलगनीका प्रार्थनापत्र

नम्र निवेदन है कि,

आपका प्रार्थी ब्रिटिश भारतीय संघका, जो ट्रान्सवाल-निवासी ब्रिटिश भारतीयोंका प्रतिनिधित्व करता है, अध्यक्ष है।

प्रार्थी उपर्युक्त संघकी ओरसे चुनावमूलक नगरपालिका-परिषदोंके अध्यादेशके मसविदेकी, जिसपर यह माननीय सदन विचार कर रहा है, ११वीं धारामें किये गये संशोधनके विरुद्ध सम्मानपूर्वक आपत्ति प्रकट करता है।

चूंकि इस संशोधनसे अन्य लोगोंके साथ-साथ ब्रिटिश भारतीय भी नगर-परिषदोंके चुनावमें मतदाता बननेके अयोग्य ठहराये जाते हैं, इसलिए यह प्राचीन और राजभक्त भारतीय जातिके लिए कलंककी बात है।

भारतीयोंने इस उल्लिखित धारापर इस माननीय सदनकी बहस बहुत दुःखके साथ पढ़ी है। इस धारामें भारतीयोंके साथ दक्षिण आफ्रिकाके मूल निवासियोंके समान आधारपर बरताव किया गया है।

प्रार्थी इस माननीय सदनको सादर स्मरण दिलानेकी अनुमति माँगता है कि भारतीय जाति अतीत कालसे नगरपालिका स्वशासनकी अभ्यस्त रही है, जैसा कि सर हेनरी समरमेनके ग्रन्थके इस उद्धरणसे प्रकट होगा :

> यह कहनेमें मुझे कोई जोखिम दिखलाई नहीं पड़ती कि ग्रामीण समुदायोंमें एकत्रित लोगों द्वारा भूमिको जोतने और भोगनेकी भारतीय और प्राचीन यूरोपीय प्रणालियाँ सभी सारभूत विशेषताओंमें मिलती जुलती हैं। . . .
>
> ग्रामीण समुदायोंकी जाँच जितनी सावधानीसे और जितनी गहराईसे उत्साही लोगों द्वारा की गई है उतनी भारतीय जीवनके किसी अन्य अंगकी नहीं की गई। इन ग्रामीण जन-समुदायोंके अस्तित्वकी खोज और मान्यता अनेक वर्षोंसे आंग्ल-भारतीय प्रशासनकी

महानतम सफलता रही है। . . . यदि बहुत ही सामान्य भाषाका उपयोग किया जाये तो ट्यूटन वंशीय या स्कैंडिनेवियाई ग्रामीण जन-समुदायका वर्णन भारतीय ग्रामीण जन-समुदायके वर्णनका काम दे देता है। . . . फिर मौररने अपने अनुसन्धानोंमें प्राप्त जानकारीके आधारपर ट्यूटन लोगोंकी नगर-व्यवस्थाकी उन्नतिका जो वर्णन किया है, वही भारतीय ग्रामकी उन्नतिपर भी लागू हो सकता है।

भारतमें इस समय भी सैकड़ों नगरपालिकाएँ है, जिनकी व्यवस्था भारतीय सदस्य कर रहे हैं।

ट्रान्सवालवासी बहुत-से भारतीय भारतमें नागरिक मताधिकारका उपयोग कर चुके हैं।

प्रार्थीकी नम्र सम्मतिमें, फेनिखन (वेरीनिर्जिग)-सन्धिके रूपमें उल्लिखित आत्म-समर्पणकी धाराएँ ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थितिको प्रभावित नही करती, क्योंकि वे केवल देशीय लोगोंपर ही लागू होती हैं, जैसा कि धारा ८ से प्रकट होगा। इसमें कहा गया है कि "देशीय लोगोंको मताधिकार देनेका प्रश्न तबतक न उठेगा जबतक स्वशासन जारी नही कर दिया जाता।"

अतः इस प्रकारके मताधिकारका प्रश्न ब्रिटिश भारतीयोंके सम्बन्धमें नही उठता।

आपके प्रार्थीकी विनीत सम्मतिमें दक्षिण आफ्रिकामें ब्रिटिश जातिकी प्रमुखता उन ब्रिटिश भारतीयोंको नगरपालिका-मताधिकार दे देनेसे प्रभावित नहीं होती, जो अन्यथा उसके उपयोगके योग्य हों।

रंगका भेदभाव यद्यपि कानूनी रूपमें पिछली सरकारने प्रस्तुत और मान्य किया था, फिर भी वह ब्रिटिश संविधानके विपरीत है; अतः प्रार्थी नम्रतापूर्वक निवेदन करता है कि वह उस विस्तृत आधारके प्रतिकूल है, जिसपर ब्रिटिश साम्राज्यका निर्माण किया गया है।

प्रार्थीका नम्रतापूर्वक निवेदन है कि उल्लिखित संशोधनमें ब्रिटिश भारतीयोंकी भावनाओंकी पूर्णतः उपेक्षा की गई है।

अतः प्रार्थी नम्रतापूर्वक प्रार्थना करता है कि यह माननीय सदन इस संशोधनपर पुनर्विचार करे और राजभक्त ब्रिटिश भारतीयोंके साथ न्याय करे, या ऐसी कोई दूसरी राहत दे, जो इस माननीय सदनको उचित प्रतीत होती हो।

और न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए आपका प्रार्थी, कर्तव्य समझकर, सदा दुआ करेगा।

अब्दुल गनी
अध्यक्ष
ब्रिटिश भारतीय संघ

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफ़िस : ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स, ४०२।

## २५०. दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीय

### ( ट्रान्सवाल )

पिछले अंकमें हमने सरसरी तौरपर देखा था कि ब्रिटिश भारतीयोंपर दक्षिण आफ्रिकामें क्या-क्या कानूनी निर्योग्यताएँ थोपी गयी हैं। पाठकोंको स्मरण होगा कि ट्रान्सवालमें संघर्षका रूप गहरा है; उसपर जरा अधिक ध्यान देना होगा। प्रतिबन्ध खिजानेवाले हैं; और इन कठिनाइयोंको बढ़ानेवाली बात है एशियाई मुहकमेके अधिकारियोंका विरोधी रुख।

बोअर-हुकूमतके दिनोंमें कानून बड़े सख्त थे। परन्तु उनका अमल सौम्यसे सौम्य था। उस समय कानूनको अमलमें लानेवाले अफसरोंके दिलमें वह दुर्भाव नहीं था, जिसके कारण वे कानून बने थे। हुकूमत हिन्दुस्तानी व्यापारियोंको ट्रान्सवालसे निकाल बाहर करनेके लिए जरूरतसे ज्यादा चिन्तित नहीं थी, क्योंकि पृथक् बस्तियोंमें खुद बोअर लोग बहुत बड़ी संख्यामें उनके ग्राहक थे; और अगर वह इस विषयमें कभी थोड़ी-बहुत हलचल करती तो ब्रिटिश एजेंट तुरन्त हिन्दुस्तानियोंकी रक्षाके लिए अपना हाथ बढ़ा दिया करता था। हम तत्कालीन उप-राजप्रतिनिधि श्री एमरी इवान्सकी याद कृतज्ञतासे किये बिना नहीं रह सकते; क्योंकि जब उन्होंने सुना कि ब्रिटिश भारतीयोंको सूचनाएँ मिली हैं कि वे बस्तियोंमें चले जायें तो उन्होंने लगभग ऐसा कहा: "आप इस सूचनापर ध्यान न दें। अगर आपके साथ कोई जोर-जबरदस्ती हुई तो मैं आपकी रक्षा करूँगा।" इसलिए, यद्यपि उस समय भी हम एकदम निश्चिन्त नहीं थे, फिर भी भारतीय ट्रान्सवालमें लगभग बिना कष्टके व्यापार करते थे। बहुतसे परवानेकी रकम अदा करनेके वादेके बलपर, और दूसरे यूरोपीयोंके नामपर, व्यापार करते थे; और यह खुले आम होता था। सरकार यह सब जानती थी। किन्तु इसकी उपेक्षा करती थी। पैदल-पटरियों-सम्बन्धी उपनियमोंपर सख्तीसे अमल करनेके प्रयत्नका ब्रिटेनके तत्कालीन उच्चायुक्त (हाई कमिश्नर) ने जोरदार विरोध किया था; और डॉक्टर लीड्सको ऐसे किसी प्रयत्नकी जानकारीसे इनकार करना ही सुविधाजनक हुआ, और उन्होंने सम्राज्ञी-सरकारको आश्वासन दिया कि बोअर-सरकारका इरादा ऐसे किसी उपनियमका अमल एशियाइयोंके खिलाफ करनेका नहीं है। और, उपनिवेशमें आनेपर तो किसी प्रकारकी रोक थी ही नहीं।

परन्तु अब स्थिति एकदम बदल गई है। अब न तो ढिलाई या नरमी है, न टाल जानेकी वृत्ति। कुछ अधिकारियोंको पिछली नरमीका अफसोस हो रहा है। क्योंकि, इसके कारण अब कानूनोंपर सख्तीसे अमल करनेमें उन्हें असुविधा होती है। उनके कामोंके खिलाफ कोई जोरदार आवाज नहीं उठाई जाती। फलस्वरूप न्याय मिलना असम्भव हो गया है — यदि हमारे देशवासी श्रीमान लेफ्टिनेंट गवर्नरके सामने न पहुँचें जो, हम जानते हैं, न्यायप्रिय हैं। जब अंग्रेज-सरकारने यहाँ सत्ताके सूत्र अपने हाथमें लिये तब नई सरकारकी नीति नये कानून बननेतक युद्धके पहले यहाँ भारतीयोंकी जो स्थिति थी उसीका रक्षण करनेकी थी। कुछ शरणार्थी भाग्यसे शुरूके कुछ महीनोंमें उपनिवेशमें पहुँच गये थे। इसलिए उनमें से ज्यादातर लोगोंको शहरोंमें व्यापार करनेके परवाने मिल गये। किन्तु अब उस नीतिकी जगह सख्ती शुरू हो गई है। कोई भारतीय अपना परवाना दूसरे व्यक्तिके नाम नहीं बदलवा सकता। इसलिए वह अपने व्यापारको चलती हालतमें दूसरेके हाथों नहीं बेच सकता। बोअर-हुकूमतमें यह कठिनाई नहीं थी। उपनिवेशमें कहीं-कहीं अधिकारियों द्वारा पैदल-पटरियोंके कानूनको अमलमें लानेके प्रयत्न भी शुरू हो गये हैं।

फिलहाल प्रवेश तो प्रायः बन्द ही कर दिया गया है। नेटालसे आनेवालोंको रोकनेके लिए प्लेगका बहाना मिल गया है। डेलागोआ-बे और केपटाउनमें पड़े हुए शरणार्थियोंको अपने घर लौटनेकी इजाजत महा कठिनाईसे मिलती है। इसके विरुद्ध, जो ब्रिटिश साम्राज्यके प्रजाजन नहीं हैं ऐसे यूरोपीयोंको बिना रोकटोकके नये प्रवेश-पत्र दिये जा रहे हैं। एशियाई दफ्तरकी स्थापनाने मुसीबतोंका प्याला भर दिया है और कानूनकी निगाहमें यूरोपीय तथा भारतीयोंके बीचके भेदभावको तीव्र बना दिया है। यह ब्रिटिश प्रजाजन और गैर-ब्रिटिश प्रजाजनका भेद नहीं है, जो कि स्वाभाविक होता; यह सभ्य और असभ्यके बीचका भेदभाव भी नहीं है, जैसा कि श्री रोड्स[1]ने कहा था; यह तो अत्यन्त अस्वाभाविक अर्थात् सफेद और कालेका भेद है। संक्षेपमें, यह है वह काला बादल, जो हमारे देशभाइयोंके सिरपर ट्रान्सवालमें छाया हुआ है। किन्तु हम निराश नहीं हैं। ब्रिटिश न्यायमें हमारा विश्वास अटल है। हम आशा तथा विश्वास करते हैं कि यह शान्तिके पहलेका तूफान है। बोअर-शासनके समयमें श्री चेम्बरलेनने दक्षिण आफ्रिकामें हमारे पक्षकी न्याय्यताका समर्थन किया था, हमें याद है। उपनिवेशोंके प्रधानमन्त्रियों[2]के समक्ष प्रवासका सिद्धान्त रखते हुए उन्होंने जो भाषण दिया था वह हमने पढ़ा है। युद्धके प्रारम्भमें साम्राज्य-सरकारके मन्त्रियोंने जो भाषण दिये थे, वे भी हमारे सामने हैं। वे इस बातकी जमानत हैं कि हमें उठाकर फेंक नहीं दिया जायेगा। और सबसे अधिक तो उस सर्वज्ञ और सदा जागृत परमात्मामें हमारी श्रद्धा है, जो ठीक-ठीक और निश्चय न्याय करनेवाला है।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, ११-६-१९०३

## २५१. बाघ और मेमना

[किसी समय कोई मेमना एक निर्मल धाराका पानी पी रहा था; कहानी है कि उसी समय वहाँ एक बाघ आया। मेमनेको खानेका कोई बहाना मिल जाये इस मंशासे उसने पानी पघोल दिया और फिर यह जिम्मेदारी मेमनेपर लादकर उसे बकने-झकने लगा। मेमनेने कहा, "हुजूर, पानी आपकी तरफसे बहकर आ रहा है, मैं उसे कैसे गँदला कर सकता हूँ?" बाघ-बादशाहने डपट कर कहा, "चुप रह। अगर पानी तूने नहीं, तो तेरे बापने गँदला किया होगा।" मेमनेने नरमीसे दलील दी, "मगर मेरा बाप तो मर चुका है।" "बकवास बन्द कर। वह तेरा कोई रिश्तेदार रहा होगा"—बाघने कहा, और पलक मारते ही मेमनेका काम तमाम कर दिया। यह बात अमर ईसपके दिनोंकी है। हमारे जमानेमें यूरोपीय बाघ भारतीय मेमनेके साथ फिर वही पुराना कमाल करना चाहता है। इसलिए वह भारतीयसे लगभग ऐसी बात कहता है, "झोपड़ीमें रहता है और तिलहे चीथड़ेकी बू पर जीता है, इसलिए मैं तुझे बर्दाश्त नहीं कर सकता।" गरीब भारतीय गिड़गिड़ाता है, "किन्तु इस बातपर भी गौर कीजिए कि पिछले इन तमाम बरसोंमें आपकी तरह रहनेकी कोशिश मैंने की है, मसलन सारीकी-सारी ग्रे स्ट्रीटमें मैंने झोंपड़ियोंकी जगह खासी इमारतें बना ली हैं। यह सिलसिला धीरे-धीरे, मगर चलता तो जरूर जा रहा है।" "यह तो तेरे लिए और भी कम्बख्तीकी बात है," यूरोपीय

१. सेसिल रोड्स।
२. देखिए खण्ड २, पृष्ठ ३९६-९८।

बाघ गरज कर कहता है, "तेरी इतनी मजाल कि तू ऐसे महल बनाये और हमारे हलकेमें दखल जमाये। तब तो बेशक तेरी शामत आ गई है।" प्रस्तावित एशियाई बाजारोंके विषयमें डर्बनके मेयर महोदयने जो विवरण पेश किया है उसका सारांश ऐसा ही कुछ है। एक प्रसिद्ध विज्ञापन-चित्रके गंगालमें बैठे हुए लड़केकी तरह यूरोपीय तबतक नहीं मान सकते जबतक वे कामयाबी नहीं पा जाते, यानी स्वतंत्र भारतीयोंका विनाश नहीं हो जाता।

यह बात कि पिछले कुछ वर्षोंमें कुछ हिन्दुस्तानियोंने अच्छी कमाई की, उन्होंने जमीनें खरीदी और खासी अच्छी इमारतें भी बना लीं, जिसके कारण हजारों पौंडकी रकम यूरोपीयोंकी जेबोंमें भी पहुँची, यूरोपीयोंको बर्दाश्त नहीं है। परन्तु श्री एलिस ब्राउन[1] जैसे समझदार, देशभक्त और न्यायप्रिय सज्जनसे हमने बेहतर बातोंकी उम्मीद की थी। हम कहना चाहते हैं कि अलग बस्तियों-वाले उनके प्रस्तावमें न तो समझदारी है और न देशभक्ति। और जिस प्रकार उन्होंने इसका समर्थन किया है वह भी न्यायोचित नहीं है। प्रस्तावमें समझदारी इसलिए नहीं है कि जहाँ उसका जन्म हुआ है, वहीं वह अभी पक्का नहीं हुआ है। वहाँ उसपर पुनर्विचार हो रहा है। देशभक्ति उसमें इस कारण नहीं है कि अन्य ब्रिटिश प्रजाजन उसके बारेमें क्या विचार रखते हैं यह जाने बगैर प्रस्ताव पेश कर दिया गया है। और जिस प्रकार उसका समर्थन किया गया है उसके बारेमें तो कुछ न कहना ही भला है। एक नगर-निगमके प्रधानकी हैसियतका गृहस्थ यदि ऐसी बातें कहे, जो तथ्यके प्रकाशमें झूठ साबित हों, तो यह बड़े दुःखका विषय है। हम तो यही आशा कर सकते हैं कि लॉर्ड मिलनरकी हुकूमतके प्रभावमें, आजकी भाग-दौड़के कारण विषयको सोचने-समझनेके अवकाशके अभावमें भारतीयोंके साथ यह सारा अन्याय अनजाने ही हो रहा है।

क्योंकि राह चलता आदमी भी अगर आँखें खोलकर देखना चाहे तो तुरन्त जान सकता है कि एशियाइयोंके विरोधकी दृष्टिसे प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियम बेकार साबित नहीं हुआ है। और भारतीय कौम कानूनके अन्तर्गत परवाने और प्रमाण-पत्र जारी करनेकी पद्धति और मुसाफिरोंको लानेवाले जहाजोंपर होनेवाली पुलिसकी जाँचके कष्टसे कराह रही है। हम पाठकोंसे अनुरोध करते हैं कि वे प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिकारीकी ताजा रिपोर्टें पढ़ जायें। विक्रेता-परवाना अधिनियमके बारेमें बात यह है कि भारतीयोंके परवानोंमें विशेष वृद्धि होना तबतक असम्भव है जबतक मेयर साहब उपनिवेशके नगराधिकारियोंपर अपना काम ईमान-दारीसे न करनेका आरोप न लगायें; क्योंकि सारे व्यापारियोंकी गर्दन इन अधिकारियोंके हाथोंमें ही है। हम कहते हैं कि आँकड़े प्रकाशित कीजिए।

एशियावासियोंके खिलाफ पुनः इतना द्वेष-भाव बढ़नेका एक जबरदस्त कारण यह है कि भारतसे अबतक बड़ी संख्यामें शर्तबन्द कुली बराबर लाये जा रहे हैं। इसके लिए प्रवासी-न्यास-निकाय (इमिग्रेशन ट्रस्ट बोर्ड) के पास जो दरखास्तें आ रही हैं, वह उनको निपटानेमें असमर्थ है। किन्तु फिर भी उपनिवेशका शासन यह पाप करता जा रहा है और साथ ही उसके परिणामोंसे बचनेकी आशा करता है। हम जितनी तीव्रतासे कह सकते हैं उतनी तीव्रताके साथ शासनसे अनुरोध करते हैं कि नये मजदूरोंको लाना बन्द करो; आप देखेंगे कि इससे जैसे-जैसे समय बीतेगा उपनिवेशमें भारतीयोंकी काफी संख्या अपने आप घटती चली जायेगी। तब यह बात साफ हो जायेगी कि उपनिवेशको ऐसे मजदूरोंकी सचमुच जरूरत है भी, या नहीं। अगर जरूरत नहीं है तो बहुत अच्छा है। किन्तु अगर जरूरत है तो भारतीयोंके बारेमें उपनिवेशने छोटी-छोटी बातोंमें

१. डर्बनके मेयर।

कोंचते-टाँचते रहनेकी जो मुख्य नीति अपना रखी है उसे बदलनेके लिए एक सशक्त कारण उसे मिल जायेगा।

[ अंग्रेजीसे ]

*इंडियन ओपिनियन*, ११-६-१९०३

## २५२. एशियाई प्रश्नपर लॉर्ड मिलनर

दक्षिण आफ्रिकाके परमश्रेष्ठ उच्चायुक्तने एशियाइयोंके प्रति 'विरोधियोंके जंगलीपन' के विरुद्ध बड़े साहसके साथ अपने विचार प्रकट किये हैं। वे रंगभेदके एकदम खिलाफ हैं। 'जम्बेसी नदीके दक्षिणमें समस्त सभ्य मनुष्योंके अधिकार समान होंगे'—यह महानुभावका मुद्रावाक्य है। स्वर्गीय श्री रोड्सका भी यही कथन था। पिछले महीनेकी २२ तारीखको जब ब्रिटिश भारतीयोंका शिष्टमण्डल उनसे मिलने गया तब उसके सामने भी उन्होंने अपने इन भावोंको दोहराया। शिष्ट-मण्डलको उन्होंने विश्वास दिलाया कि भारतीयोंके खिलाफ सरकार बिलकुल द्वेषभाव नहीं रखती। वह भूतपूर्व गणराज्यके भारतीयोंसे सम्बन्ध रखनेवाले कानूनोंको पसन्द नहीं करती। इन सारी बातोंके लिए और, इनके अलावा, शिष्टमण्डलसे उन्होंने और भी जो बहुत-कुछ कहा उसके लिए हम परमश्रेष्ठके अत्यन्त आभारी हैं। किन्तु जब लॉर्ड मिलनर ब्योरों और अपने प्रस्तावोंके व्यावहारिक प्रयोगमें उतरे तब, हम कबूल करते हैं, हमें निराशाका अनुभव हुआ। एशियाई दफ्तरकी बात लीजिए। उसके सभी अधिकारी आदरके लायक लोग हैं। और अगर इस दफ्तरके टूट जानेपर उनका कोई प्रबन्ध न किया जाये तो हमें दुःख होगा। फिर भी, इस दफ्तरसे भलाई क्या हुई? इसके बारेमें हम महानुभावकी सफाईपर जरा विचार करें। शिष्ट-मण्डलके एक सदस्यने कहा कि हम उपनिवेश-सचिवसे मिल नहीं सकते। महानुभावने इसके उत्तरमें कहा कि इसीलिए तो एशियाई दफ्तर आवश्यक है। भारतीयोंकी शिकायतें वहाँ सुनी जा सकती हैं। भारतीयोंका अनुभव ऐसा नहीं है। एशियाई अधिकारी इस समय केवल मोरीका काम करता है, सो भी बहुत दोषपूर्ण मोरीका। क्योंकि उसके दफ्तरका संघटन ही सदोष है। ट्रान्सवालसे हमें जो रिपोर्ट मिली है वह तो यही सिद्ध करती है कि किसी हिन्दुस्तानीको जब कोई व्यवसाय करना होता है तब नियमित अधिकारियोंसे उसे खुद मिले बगैर चारा ही नहीं है। और एशियाई दफ्तरका अधिकारी, ध्यान देनेके लिए कोई महत्त्वका काम न होनेके कारण, "कोई-न-कोई खुराफात ही किया करता है।" क्या वह एशियाई दफ्तर ही नहीं है, जिसने कि फोटो रखनेकी नई तरकीबका आविष्कार करके अपने संरक्षितोंपर जरायमपेशा होनेका कलंक लगा दिया है? इसलिए परमश्रेष्ठके प्रति पूर्ण आदर रखते हुए हमें कहना पड़ता है कि किसी वस्तुकी अनुपयोगिता या उपयोगिताके बारेमें सही राय वही मनुष्य दे सकता है जिसे उसका व्यावहारिक रूपसे अनुभव हो।

तीन पौंडवाले करके बारेमें परमश्रेष्ठकी धारणा दृढ़ है। ट्रान्सवालके हमारे देशभाइयोंने परमश्रेष्ठके निर्णयको नतमस्तक होकर स्वीकार करना उचित समझा है। और इसकी कोई अपील वे श्री चेम्बरलेनसे नहीं करेंगे। हम भी समझते हैं कि उनका यह निश्चय बुद्धिमानीसे भरा हुआ है। फिर भी एक साधारण मनुष्यको यह कुछ अटपटा-सा जरूर मालूम होता है कि परमश्रेष्ठ सिद्धान्ततः तो रंगभेदको बुरा बताते हैं, किन्तु अमलमें रंगभेदके आधारपर सजाके रूपमें कायम किये करका समर्थन करते हैं। क्योंकि, हमारे लिए यह रकम नहीं, बल्कि यह सिद्धान्त

आपत्तिजनक है। सर हाइरम मैक्सिमने ठीक ही कहा है कि काफिरपर इसलिए कर लगाया जाता है कि वह काफी काम नही करता और एक हिन्दुस्तानीपर इसलिए कर लगाया जाता है कि वह बहुत अधिक काम करता है। दोनोंके बीच समानता सिर्फ इस बातमें है कि उनकी चमड़ीका रंग गोरा नही है।

कुछ इसी तरहके, अर्थात्, रंगभेदके आधारोंपर परमश्रेष्ठ *बाजारों*का समर्थन करते हैं। शिष्ट-मण्डलने बड़ी दलीलें देते हुए सुझाया था कि *बाजारों*में जाकर बसनेकी बात हर व्यक्तिकी इच्छापर छोड़ दी जाये। ऐसा करनेसे गरीब वर्गके भारतीय अपनी इच्छासे ही वहाँ जाकर रहने लगेंगे। परन्तु महानुभाव इस बातको स्वीकार नही कर सके। क्यों? इसलिए कि हिन्दुस्तानी रंगदार आदमी है। गरीब गोरोंको किसी खास जगह बसनेको कोई कानून मजबूर नहीं कर सकता। जहाँतक खुदसे सम्बन्ध है, अंग्रेजको जबरदस्तीकी भावनासे घृणा है। एक विद्वान पादरीने कहा था कि मैं सम्पूर्ण अंग्रेज राष्ट्रको बन्धन-सहित निर्व्यसनीकी अपेक्षा मुक्त और शराबी देखना अधिक पसन्द करूँगा। एक हिन्दुस्तानी इस विद्वान पादरीकी इस सीमातक समता नहीं कर सकता परन्तु जोर-जबरदस्तीका विरोध करनेकी उसे आज्ञा मिलनी चाहिए, जब कि जबरदस्तीका व्यवहार उसके लिए अपमानजनक हो।

परन्तु सन्तोषकी बात है कि शिष्ट-मण्डलने जिस *बाजार*वाली सूचनाका प्रतिवाद किया वह केवल अस्थायी है, और परमश्रेष्ठ नया कानून बनानेका विचार कर रहे हैं। हम आशा करते हैं और परमात्मासे प्रार्थना करते हैं कि परमश्रेष्ठका मार्गदर्शन करे कि वे ऐसा कानून बनायें, जिससे ट्रान्सवालमें रहनेवाले भारतीयोंकी अनन्त चिन्ताएँ और वह भार जिससे वे कराह रहे हैं, सदाके लिए दूर हो जायें। पिछले अठारह महीनोंसे वहाँके भारतीयोंको पिछली हुकूमतके जमानेसे भी ज्यादा कोंचा-टोंचा जा रहा है। अब समय आ गया है, जब कि उन्हें सुखकी साँस लेनेका अवसर मिलना ही चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, ११-६-१९०३

## २५३. "किस पैमानेसे" आदि

[हम परमश्रेष्ठ लॉर्ड मिलनरसे अनुरोध करते हैं कि हमने जिस काव्य-पंक्तिको इस लेखका शीर्षक बनाया है, उसपर विचार करें। परमश्रेष्ठने गम्भीरतापूर्वक भारत-सरकारके सन्मुख यह प्रस्ताव रखा है कि वह ट्रान्सवाल उपनिवेशका विकास करनेके लिए भारतसे गिरमिटिया मजदूर बुलवानेकी इजाजत इस शर्तपर दे दे कि गिरमिटकी मियाद खतम होते ही उन्हें जबरन भारत लौटाया जा सकेगा। ज्ञात हुआ है कि अभीतक तो भारत-सरकारने उनके इस प्रस्तावपर ध्यान नही दिया है। परन्तु हम परमश्रेष्ठसे पूछना चाहते हैं कि जैसा प्रस्ताव उन्होंने भारत-सरकारके सामने रखा है, क्या वैसा ही वे एक क्षणके लिए [illegible] रोपीयोंके सम्बन्धमें स्वीकार करेंगे? हमारा खयाल है, कदापि नहीं। श्वेत-संघ (व्हाइट [illegible]) से हम इस विषयमें पूरी तरह सहमत हैं कि अब सहायता देकर भारतीयोंको [illegible] नहीं बुलवाया जाना चाहिए। और यह कि, यूरोपीयोंको यहाँ आनेके लिए न केवल प्रोत्साहन [illegible] भी दी जानी चाहिए। हम उनकी इस भावनाकी जरूर कद्र कर सकते हैं कि, [illegible] आबहवा यूरोपीयोंके रहने लायक है, इसलिए अगर सारे साम्राज्यकी भलाईमें क[illegible]ती हो तो यह देश

यूरोपीयोंके लिए सुरक्षित कर दिया जाना चाहिए। हमारा मतभेद तो तब होता है, जब कि संघ कहता है कि यहाँ स्वतन्त्र भारतीयोंका आना एकदम रोक दिया जाये, अथवा जो हिन्दुस्तानी यहाँ पहलेसे बस गये हैं उनको समान अवसर न दिया जाये। रंग-विद्वेषका असली हल यह नहीं है कि आप हर रंगदार आदमीको जानवर समझें, मानो उसके भावनाएँ ही नहीं हैं, बल्कि यह है कि, आप इस उपनिवेशको गोरे लोगोंसे भर दें। अगर यह नहीं हो सकता और आपको भारतीयोंके श्रमकी जरूरत है ही, तो हम कहेंगे, न्यायसे काम लीजिए, भलमनसाहत बरतिये, जैसा सलूक अपने साथ चाहते हैं वैसा ही हमारे साथ कीजिए।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, ११-६-१९०३

## २५४. दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीय

### ऑरेंज रिवर कालोनी[1]

पुराने ऑरेंज फ्री स्टेटके एशियाई-विरोधी कानूनको हम अन्यत्र पूरा-पूरा उद्धृत कर रहे हैं। यह कानून भारतीयोंको पैर जमानेका मौका नहीं देता। वहाँ वे निरे मजदूरोंकी हैसियतसे रह सकते हैं, और वह भी राज्याध्यक्षकी आज्ञाके बिना नहीं। अगर कोई भारतीय इस इजाजतके बिना पाया जाये तो उसे २५ पौंडका जुर्माना देना होगा, या तीन महीनेकी कैद भोगनी होगी। इसके अलावा उन्हें सालाना दस शिलिंगका व्यक्ति-कर देना होगा। आश्चर्य है कि केप कालोनीसे आनेवाले मलायी लोगोंपर यह कानून लागू नहीं है। यद्यपि ब्रिटिशोंको इस देशपर अब कब्जा किये दो वर्षसे ज्यादा हो गये हैं, फिर भी इस ब्रिटिश उपनिवेशकी कानूनोंकी किताबको यह कानून अबतक कलंकित कर रहा है।

इस कानूनका इतिहास संक्षेपमें यह है। सन् १८९० से पहले यहाँ कुछ ब्रिटिश भारतीय व्यापारी रहते थे। उनसे यूरोपीय व्यापारी इतने चिढ़ गये कि उन्होंने उपनिवेशके अध्यक्षको एक अर्जी दी, जिसमें सम्पूर्ण भारतीय जातिपर हर तरहके दोष लगाये। एक दोष यह बताया कि ये स्त्रीको आत्मा-हीन[2] समझते हैं। दूसरा दोष यह था कि इनके आनेसे सब प्रकारकी घिनौनी बीमारियाँ राज्यमें फैल गई हैं। उस समय ऐसी कोई प्रथा कायम नहीं हुई थी जिसके आधारपर ब्रिटिश सरकार उपनिवेशके अध्यक्षको ऐसे नीति-हीन और भयंकर रोगोंसे ग्रसित आदमियोंके प्रवेशको रोकनेकी माँग करनेवाले भले व्यापारियोंकी अर्जी मंजूर करनेसे मना कर सकती। इसलिए उपर्युक्त कानून पास हो गया। हिन्दुस्तानी व्यापारियोंको उपनिवेशसे बाहर निकाल दिया गया। उन्हें मुआवजा नहीं दिया गया। इसकी शिकायत ब्रिटिश सरकारसे की गई। परन्तु उसने अपने आपको लाचार पाया। वहाँ उसकी कोई सत्ता नहीं थी। और इस कारण उन 'गुनहगार' व्यापारियोंको कोई दस हजार पौंडतककी हानि उठानी पड़ी।

स्वभावतः सवाल पैदा होता है कि क्या अब वहाँ ब्रिटिश सरकारकी सत्ता है? हमें मालूम हुआ है कि पुराने दो व्यापारियोंने इसकी जाँच करके देख लिया है और उन्हें नकारात्मक उत्तर

१. ऑरेंज फ्री स्टेटको अपने अधिकारमें कर लेनेपर अंग्रेजोंने यह नाम दिया।
२. देखिए खण्ड २, पृष्ठ ४७।

मिला है। उपनिवेशकी सरकारका कहना है कि वर्तमान कानूनके अनुसार वह उन्हें उपनिवेशमें अपना व्यापार फिरसे शुरू करनेकी इजाजत नहीं दे सकती। जब पूछा गया कि इस कानूनमें कब सुधार होगा या वह कब रद किया जायेगा, तो जवाब मिला कि उसे पता नहीं है। इसलिए या तो यह प्रदेश ब्रिटिश सरकारके अधिकार-क्षेत्रसे बाहर है या वह इस कानूनको सुधारना या रद करना नहीं चाहती। उसने उपनिवेशके बहुतसे कानूनोंको रद कर दिया है या बदल दिया है; परन्तु इसको नहीं।

जब अंग्रेजोंने शुरू-शुरूमें इस उपनिवेशपर अधिकार किया तब कहा गया था कि जबतक मुल्की शासन स्थापित नहीं हो जाता तबतक यह कानून सुधारा भी नहीं जा सकता। जब फौजी शासन हटा और मुल्की हुकूमत कायम हुई तब श्री चेम्बरलेनके आगमनकी राह देखी जाने लगी। श्री चेम्बरलेन आकर चले भी गये। फिर भी कुछ नहीं हुआ — क्यों?

लड़ाईसे पहले हर-कोई इस बातसे सहमत था कि लड़ाई खत्म हो जानेपर दोनों गणराज्योंमें तमाम ब्रिटिश प्रजाजन स्वतन्त्र हो जायेंगे। क्या हम हर सच्चे अंग्रेजसे इस बारेमें अपील नहीं कर सकते और पूछ नहीं सकते कि उसे यह कानून पसन्द है या नहीं?

भारतीय नहीं चाहते कि वे उस या अन्य किसी उपनिवेशमें भर जायें। परन्तु चूंकि वे साम्राज्यके वफादार प्रजाजन हैं, इसलिए यह माँग करनेके लिए अपने आपको पूर्णतः हकदार मानते हैं कि यहाँके कानून ब्रिटिशोंकी न्याय और औचित्यकी भावनाके अनुरूप होने चाहिए। भारतमें प्राथमिक शालाकी चौथी कक्षामें पहुँचनेसे पहले प्रत्येक बच्चेको यह गायन सिखाया जाता है कि अंग्रेजी हुकूमतमें कहीं विषमता नहीं है। शेर मेमनेको चोट नहीं पहुँचा सकता। सब स्वतन्त्र और सुरक्षित हैं। ऐसी भावनाओंके बीच पाले जानेके कारण हमें इस उपमहाद्वीपमें उस शक्तिशाली सरकारका प्रत्यक्ष व्यवहार समझनेमें कठिनाई होती है। ब्रिटिश दक्षिण आफ्रिकामें तो यूरोपीय शेर हिन्दुस्तानी मेमनेको समूचा निगल जाना चाहता है और ब्रिटिश सरकारके कार्यालय (डाउनिंग स्ट्रीट) का कर्ता-धर्ता तमाशा ही देख रहा है।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, १८-६-१९०३

## २५५. साम्राज्य-भाव या मनमानी?

ट्रान्सवालकी नवनिर्मित विधान-परिषदमें नगरपालिकाओंके चुनाव-सम्बन्धी कानूनपर जो बहस हुई है वह अगर दुःखजनक न होती तो बड़ी मनोरंजक होती। समझमें नहीं आता कि परिषदके गैर-सरकारी सदस्योंने कैसे यह मान लिया और उस धारणाके आधारपर बहस भी की कि, तमाम रंगदार जातियोंको — चाहे वे ब्रिटिश प्रजाजन हों या गैर-प्रजाजन हों — नगरपालिकाओंमें मताधिकारसे वंचित रखना पूरी तरहसे न्याय्य है। सचमुच, अगर हमें यह मालूम नहीं होता कि सर जॉर्ज फेरार[1] ने सरकारी प्रस्तावके खिलाफ अपनी राय दी है, तो हम तो यही मानते रहते कि वे रंगदार ब्रिटिश प्रजाजनोंके वाजिब अधिकारोंके हिमायती हैं। क्योंकि हमने पढ़ा था कि सर जॉर्ज फेरारने श्री हैरी सॉलोमनको उनकी कुलांटके लिए बड़ा उलाहना दिया था। वास्तवमें लड़ाईके पहले वे हमेशा ही रंगदार जातियोंके साथ

१. ट्रान्सवालकी विधान-परिषदके एक नामजद सदस्य।

न्यायका बरताव चाहते थे। किन्तु वहाँ ब्रिटिश सत्ता स्थापित होते ही, एक ही साम्राज्यके प्रजाजन होनेपर भी, उन्होंने इन जातियोंका खयाल एकदम छोड़ दिया। फिर सर जॉर्ज फेरारने यह भी स्वीकार किया कि रंगदार जातियोंके लोगोंको यह जानकर कितना भारी अपमान मालूम होगा कि केवल इसलिए कि उनकी चमड़ी रंगदार है, उनको नगरपालिकाओंमें मताधिकारसे वंचित किया जा रहा है। परन्तु सर जॉर्ज केवल एक नामजद सदस्य थे। इसलिए उन्होंने सोचा कि वे सरकारी उपधाराके पक्षमें अपनी राय नहीं दे सकते। अब, सरकारी उपधारा है क्या ?

इसमें यह व्यवस्था है कि मतदाता-सूचीमें उन तमाम आदमियोंका नाम दर्ज किया जा सकेगा जो *अधिकारीके सन्तोष-योग्य रूपमें* अंग्रेजी या डच भाषा पढ़ और लिख सकते हैं और जो जायदाद-सम्बन्धी अमुक योग्यता भी रखते हैं। हर सदस्यने यह मंजूर किया कि इस धाराके अनुसार रंगदार जातियोंमें से बहुत कम आदमियोंके नाम मतदाता-सूचीमें दर्ज किये जा सकते हैं। इस प्रकार, प्रत्यक्षतः, जैसा कि श्री लवडेने सीधे-सच्चे और मुँह-फट तरीकेसे कहा, प्रश्न विशुद्ध रूपसे "रंगका है।" सर परसी फ़िट्ज़पैट्रिक हमें यह विश्वास दिलाना चाहते थे कि यह ब्रिटिश जातिकी प्रभुता कायम रखनेका प्रश्न है। परन्तु बात यह नहीं थी। अंग्रेजोंके प्रभुत्वको कहीं खतरा नहीं था। वह तो निश्चित था। बल्कि सर परसीके प्रति सम्पूर्ण आदर रखते हुए हम कहेंगे कि गैर-सरकारी सदस्योंके इस कदमने तो उलटे ब्रिटिश प्रजाजनोंके एक वफादार हिस्सेकी साम्राज्य-निष्ठाको कमजोर करनेका काम किया है। सत्ताके हस्तान्तरणवाली धाराएँ भी खुद इसकी पुष्टि कर रही हैं कि सरकारकी इस धाराने उन धाराओंको भले ही शब्दोंमें भंग नहीं किया हो, परन्तु उनके हेतुको जरूर समाप्त कर दिया है। क्योंकि, बोअर लोग राजनीतिक और नागरिक मताधिकारमें भेद कर ही नहीं सकते थे। माननीय सदस्योंने धाराके जिस अंशका उल्लेख किया है वह इस प्रकार है: "देशके असली निवासियोंको मताधिकार देनेके प्रश्नका निर्णय स्वायत्त-शासनकी स्थापनाके बाद किया जायेगा।" यदि हम क्षण-भर मान भी लें कि इस दलीलमें कुछ तथ्य है तो भी वह दक्षिण आफ्रिकाके असली बाशिन्दोंके अलावा रंगदार जातियोंपर लागू नहीं होता। और ब्रिटिश भारतके निवासियोंपर तो हरगिज नहीं। और केवल उन्हींसे इस समय हमारा मतलब है। अगर गैर-सरकारी सदस्योंका कार्य आश्चर्यजनक और दुःखजनक था तो स्वयं सरकारके बारेमें हम क्या कहें ? उसने पहले तो अपनी धाराका बड़ी योग्यताके साथ प्रतिपादन किया, और बहुमत भी उसीका समर्थन कर रहा था; परन्तु अन्तमें गैर-सरकारी सदस्योंके सामने सरकार झुक गई। हमें कहना पड़ता है कि इसमें सरकारने अपनी मर्यादाओं और जिम्मेवारीको भी छोड़ दिया। अब तो ऐसा दिखाई देता है कि मानो ट्रान्सवाल न केवल सारे दक्षिण आफ्रिकापर शासन करनेवाला है, बल्कि ब्रिटिश संविधानमें जिन सिद्धान्तोंका अत्यन्त लगनके साथ पोषण किया गया है और जो सिद्धान्त समयकी कसौटीपर खरे उतरे हैं, उन्हींको यह अपने पैरों तले रौंदनेवाला है। तेरह गैर-सरकारी सदस्योंकी इच्छाके प्रति आत्मसमर्पण करनेके सरकारी निर्णयकी घोषणा करते हुए सर रिचर्डने कहा, ऐसे प्रश्नपर सरकार गैर-सरकारी सदस्योंकी भावनाओंका निरादर नहीं करना चाहती। हम तो अपने भोलेपनमें यह समझे बैठे थे कि सरकार अगर किसी प्रसंगपर अपनी दृढ़ता दिखा सकती है तो वह यही हो सकता है। हम नहीं समझ पा रहे हैं कि इतने थोड़ेसे आदमी — भले वे कितने ही प्रभावशाली क्यों न हों — ब्रिटिश सरकारकी बुनियादी नीतिमें इतना भारी बदल करनेमें कैसे सफल हो गये। हाँ, गैर-सरकारी सदस्योंने यह जरूर कहा था कि यह कानून तो अस्थायी है और कोई कारण

नहीं दिखाई देता कि कुछ वर्ष बाद यह कानून रद नहीं हो जायेगा और रंगदार जातियोंको मताधिकार नहीं दे दिया जायेगा। शायद सरकारपर इस दलीलका असर पड़ा हो। परन्तु अब तो हम इस नतीजेपर पहुँच गये है कि ये सारे वादे झूठे हैं। हम नहीं मानते कि स्वराज्यकी स्थापना हो जानेपर रंगदार जातियोंके विरुद्ध जमा हुआ दुर्भाव कलमकी एक रगड़से मिटा दिया जायेगा। इसके विपरीत, रंगदार जातियोंके ऊपर यह नियन्त्रण कायम रखनेके पक्षमें सरकारके इस कदमका हवाला देकर यह कहा जायेगा कि संक्रमण-कालकी सरकारने भी ऐसे कानूनको रखना उचित समझा था। और तबतक सरकारके हाथों वर्षोतक इतना पोषण मिलनेपर यह दुर्भाव इतना दृढ़ और पुष्ट हो जायेगा कि उसे मिटाना असम्भव होगा।

परन्तु इस काली घटामें भी कुछ उजली रेखाएँ तो हैं ही। यद्यपि यह अरण्यरोदन ही था, तथापि श्री विलियम हॉस्केन[1] ने, जो एकमात्र गैर-सरकारी सदस्य थे, बड़े साहस और निर्भयताके साथ न्याय और मानवताके पक्षमें अपनी आवाज उठाई। गैर-सरकारी सदस्योंके दिलोंमें रंगदार जातियोंके प्रति कोई आदर नही था। उन्हें क्या परवाह थी कि इस अन्याय-भरे कानूनसे उनके दिलोंको कितनी गहरी चोट पहुँच रही है। सरकारने भी गोरोंको खुश करनेके लिए उन गरीबोंके उचित अधिकारोंका गला घोंट दिया। परन्तु अकेले एक श्री हॉस्केन थे, जिन्होंने अपने कामसे प्रत्यक्ष बता दिया कि वे ऐसी किसी बातमें सहयोग देनेवाले नही हैं।

हम माननीय सदस्योंको एक बातकी याद जरूर दिला दें। ब्रिटिश भारतके निवासियोंको म्यूनिसिपल शासनका अनुभव युगोंसे रहा है। सर हेनरी मेन और स्वर्गीय श्री विलियम विल्सन हंटर — भारतके शासकीय इतिहासकार — और अनेक योग्य लेखक इसकी साक्षी देते हैं। उन्होंने कहा है कि ऐंग्लो-सैक्सन जातिके कहीं पहलेसे भारत म्यूनिसिपल स्वायत्त-शासनका उपभोग करता रहा है। और यद्यपि हम कबूल करते हैं कि यह महान जाति अब प्रगतिकी दौड़में भारतसे आगे बढ़ गई है, फिर भी हम आशा करते हैं कि माननीय सदस्य यह खयाल तो नहीं करेंगे कि स्वायत्त-शासनकी सहजबुद्धि इस कदर हमें छोड़कर चली गई है कि अब हम ट्रान्सवालमें म्यूनिसिपल मताधिकारके भी लायक नहीं रहे।

श्री चेम्बरलेन दक्षिण आफ्रिकामें साम्राज्यकी एकताका सन्देश लेकर आये। वाँडरर्स-हालकी उस सभाको हम भूले नहीं हैं, जब श्री चेम्बरलेनके प्रत्येक वाक्यपर तालियाँ बजती थीं। संकीर्ण जातिगत भावनाके स्थानपर सारा वातावरण साम्राज्यकी एकताकी भावनासे ओत-प्रोत था। तब क्या कुछ लोगोंके दुर्भावके वशीभूत होकर सम्राटके लाखों प्रजाजनोंको कलंकित करना साम्राज्य-भावना है? या, जैसा कि हमने शीर्षकमें प्रश्न किया है, यह मनमानी है?

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, १८-६-१९०३

१. ट्रान्सवाल यूरोपीय संघके अध्यक्ष।

## २५६. "वैद्यजी, अपना इलाज करें"

डर्बनकी नगर-परिषदने बाजारका प्रश्न अब बाकायदा उठाया है। अतः अब उससे यह पूछना अनुचित न होगा कि वह अपने ईस्टर्न फ्ले और वेस्टर्न फ्ले नामक स्थानोंके बारेमें क्या करनेवाली है। हम नही समझते, यह बतानेके लिए किसी सबूतकी जरूरत है कि सफाईकी दृष्टिसे ये दोनों स्थान कितने गन्दे और दुर्गन्धयुक्त हैं। इनका वर्णन करनेमें हमने जो कड़ी बातें कही हैं उनके समर्थनमें दो सज्जनोंके प्रमाणपत्र पेश कर देना काफी होगा। वे हैं माननीय श्री जेमिसन और श्री डॉएर्टी। पहले सज्जन हमारे उपनिवेशमें सफाई-सम्बन्धी सुधारोंके कर्णधार हैं और दूसरे सफाई-दारोगा हैं। ये स्थान इसलिए गन्दे और दुर्गन्धयुक्त नही है कि यहाँके रहनेवाले भारतीय हैं, बल्कि इसलिए ऐसे हैं कि इनकी स्थिति ही नितान्त अस्वास्थ्यकर है, और यहाँ सफाई-सम्बन्धी नियन्त्रण बिलकुल ही नाकाफी है। डर्बन जैसे आदर्श नगरमें इन "दो प्लेगके अड्डों" को बने रहने देकर नगर-परिषदने भारतीयोंके सामने सफाईका पदार्थ-पाठ प्रस्तुत किया है। *बाजारों*के बारेमें मेयरकी तजवीज[1] पर बहस करते समय नगरपालिकाके सदस्योंने भारतीयोंके कल्याणके बारेमें बड़ी चिन्ता प्रकट की थी। उन्होने बड़ी सज्जनताके साथ यह दलील पेश की थी कि भारतीयोंके रहनेके लिए *बाजारों*का होना वास्तवमें उन्हीके हितमें आवश्यक है। परन्तु परिषद डर्बनमें बसे हुए हजारों भारतीयोंको जबरदस्ती अलग बसानेका काम उठानेका विचार करे, इससे पहले क्या हम उससे निवेदन कर सकते हैं कि वह पहले ईस्टर्न फ्ले और वेस्टर्न फ्लेको ले और उन्हें पूर्णतः व्यवस्थित करके निवासके योग्य बना दे? यह कहना बहुत सहज है कि जब भारतीय बिखर कर बसे हुए हैं और जब उनकी आदतें यूरोपीयोंसे इतनी भिन्न हैं तब कारगर निरीक्षण सम्भव ही नही है। हम इन दोनों प्रश्नोंपर बहस करनेके लिए तैयार हैं और यह कहनेका साहस करते हैं कि आज भी समस्त भारतीय, नियमानुकूल, विशेष निर्दिष्ट बस्तियोंमें रह रहे हैं। और, सफाईकी व्यवस्थासे उनकी आदतोंका वास्तवमें कोई सरोकार नही है। क्योंकि, वह व्यवस्था तो नगरके उपनियमोंके अनुसार बड़ी सफलताके साथ लागू की जा सकती है। विपरीत आदतें कोई बिगाड़ नही कर सकती। तमाम मकान ठीक उन नक्शोंके अनुसार ही बनाये जाते हैं, जिनको नगर-परिषद मंजूर करती है। और जहाँतक सफाईको कायम रखनेका सम्बन्ध है, वह तो नगरके उपनियमोंका सख्ती और कठोरताके साथ पालन करनेका ही प्रश्न है। क्योंकि, अगर नगर-परिषद भारतीयोंको अलग बसानेमें सफल हो जाती है, तब क्या वह वहाँ सफाईका बिना कोई बन्दोबस्त किये उन्हे सर्वथा अपने ऊपर निर्भर रहनेको छोड़ देगी? या, उसका मंशा, उन्हें अलग करनेके बाद, ज्यादा कठोर नियंत्रणमें रखनेका है? हम समझ नही पा रहे हैं कि जो कठिनाई है ही नही, वह भारतीयोंको बलपूर्वक अलग बसानेसे कैसे हल हो जायेगी?

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, १८–६–१९०३

1. देखिए "मेयरकी तजवीज", ४–६–१९०३।

## २५७. इस सबका नतीजा क्या होगा?

ऐसा प्रतीत होता है कि ऑरेंज रिवर कालोनीकी नई सरकार पुरानी गणराज्यीय हुकूमतसे विरासतमें प्राप्त सख्त और अ-ब्रिटिश, एशियाई-विरोधी कानूनोंको बदलना या सुधारना नहीं चाहती। इसका प्रमाण तारीख १९ मईके विशेष सरकारी *गज़ट*में प्रकाशित ऑर्डिनेन्सका वह मसविदा है, जिसमें *खानोंसे बाहर रहनेवाली रंगदार जातियोंपर व्यक्ति-कर* बढ़ानेकी बात है। लड़ाईके पहले ब्रिटिश भारतीय आशा करते थे, और आज भी कर रहे हैं, कि ब्रिटिश हुकूमत इन कानूनोंको हटा देगी। ऐसी हालतमें हमारी समझमें नहीं आता कि व्यक्ति-कर बढ़ानेका यह प्रस्ताव क्यों हो रहा है? हमें पता है कि उस राज्यमें शायद ही भारतीयोंकी कोई आबादी हो। परन्तु हमें विश्वास है कि वहाँ शीघ्र ही उचित संख्यामें भारतीयोंके प्रवेशका द्वार खुल जायेगा। हमारा यह भी अनुमान है कि लॉर्ड मिलनर इस प्रश्नपर विचार कर रहे हैं कि दक्षिण आफ्रिकाकी गणतन्त्री हुकूमत द्वारा जारी किये गये एशियाई-विरोधी कानूनमें किस प्रकार और किस हदतक परिवर्तन किया जाये। क्या हमें यही मानना होगा कि चूँकि ऑरेंज रिवर कालोनीमें भारतीयोंकी कोई आबादी नहीं है इसलिए ब्रिटिश भारतके निवासियोंके लिए इस राज्यके द्वार हमेशाके लिए बन्द हैं? उपनिवेश-मन्त्रीसे ब्रिटिश भारतीयोंने जब ऑरेंज फ्री स्टेटके कानूनोंके बारेमें शिकायत की थी तब उन्होंने जो जवाब दिया था वह हमें याद है। उन्होंने कहा था कि वह एक पूर्णतया स्वतन्त्र गणराज्य है। इसलिए ब्रिटिश भारतीयोंकी मदद करनेकी इच्छा होनेपर भी मुझे खेद है, मैं कुछ नहीं कर सकता, लाचार हूँ। परन्तु अब उपनिवेश-मन्त्री लाचार नहीं है, सत्ता उनके ही हाथमें है। क्या वे सत्य और न्यायके पक्षमें उसका उपयोग करेंगे? या खालिस व्यापारिक ईर्ष्या और रंग-भेदके नये विघ्नके सामने लाचार ही बने रहेंगे?

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, १८–६–१९०३

## २५८. तथ्योंका अध्ययन

सारी भारतीय कौम सर मंचरजीके प्रति बड़ी कृतज्ञ है। वे हमेशा उसकी हिमायतमें अपनी आवाज उठाते रहे हैं। उन्होंने श्री चेम्बरलेनसे एक प्रश्न पूछा था। कहते हैं, उसके जवाबमें उन माननीय महानुभावने कहा है कि "जहाँतक ट्रान्सवालमें बसे हुए भारतीयोंका प्रश्न है उनपर वहाँका पुराना कानून पहलेकी-सी सख्तीसे लागू नहीं किया गया है। वास्तवमें उसमें काफी सुधार किये गये हैं।" इस सम्बन्धमें जो तथ्य हैं उनको हम आमने-सामने पेश कर रहे हैं और यह कहना चाहते हैं कि पुराना कानून अब जिस सख्तीसे लागू किया जा रहा है वैसा पहले कभी नहीं किया गया था।

| लड़ाईसे पहले | अब |
|---|---|
| "तीन पौंडी पंजीकरण (रजिस्ट्रेशन)-शुल्क देनेके लिए भारतीयोंको बाध्य नहीं किया जाता था।" | "अब हर भारतीयको पंजीकरण कराना ही पड़ता है। अन्यथा उसे १० से लेकर १०० पौंडतक जुर्माना और यह न देनेपर १४ दिनसे लेकर छः महीने तककी कैद हो सकती है।" |
| "कोई भी भारतीय ट्रान्सवालके किसी भी भागमें बगैर परवानेके, और अधिकांशतः परवानेकी रकम अदा करनेके वायदेपर, व्यापार कर सकता था। क्योंकि, उसे इसके लिए ब्रिटिश सरकारका संरक्षण प्राप्त था।" | "जिन व्यापारियोंके पास लड़ाईसे पहले शहरमें व्यापार करनेका परवाना था उन्हें छोड़कर, हर भारतीयके लिए जरूरी है कि वह व्यापारके लिए *बाजारों*में चला जाये।" |
| "कोई भी भारतीय ट्रान्सवालके किसी भी भागमें रह सकता था। उसके लिए छूटकी अर्जी देना जरूरी नहीं था, और न उसे सताया जाता था।" | "उपनिवेश-सचिवसे विशेष छूट मिले बिना कोई भारतीय शहरोंमें नहीं रह सकता। तमाम भारतीयोंको अब *बाजार* कही जानेवाली बस्तियोंमें रहना पड़ेगा।" |
| "गोरे लोगोंके नामपर ही सही, परन्तु भारतीय जमीन-जायदाद रख सकते थे।" | "गोरोंके नामपर जमीन रखना अब भारतीयोंके लिए अति कठिन हो गया है।" |
| "जोहानिसबर्गकी भारतीय बस्तीमें पुरानी हुकूमतके जमानेमें भारतीयोंके पास ९९ वर्षकी अवधिके पट्टेपर जमीनें थीं।" | "अस्वच्छ क्षेत्रके आयुक्तोंके प्रतिवेदनपर उनसे यह जमीन अब छीनी जा रही है। उन्हें यह आश्वासन नहीं दिया जा रहा है कि जोहानिसबर्गके किसी दूसरे उपयुक्त हिस्सेमें उनको इतनी जमीन मिल सकेगी।" |
| "भारतीय बगैर किसी रोक-टोकके ट्रान्सवालमें प्रवेश कर सकते थे।" | "प्रामाणिक शरणार्थी भारतीयोंको भी बहुत कम संख्यामें पुनः आने दिया जाता है, सो भी अर्जी देनेके लगभग तीन महीने बाद।" |
| "भारतीयोंके लिए पहले कोई अलग एशियाई मुहकमा नहीं था। और न पास अथवा अनुमति-पत्रोंकी झंझट थी।" | "ट्रान्सवालके भारतीयोंके लिए अनेक असुविधाओंका कारण एशियाई मुहकमा एक दुःखदायी वस्तु बन गया है। उसके कारण होनेवाले कष्टोंपर लॉर्ड मिलनर विचार कर रहे हैं।" |

"ट्रान्सवालकी सरकारने निहित स्वार्थोंको कभी नहीं छुआ; क्योंकि गण-राज्यके समय ब्रिटिश राज-प्रतिनिधियोंका शक्तिशाली संरक्षण सदा प्राप्त था।"

"कुछ वर्तमान 'परवानादारों' को, जिनके पास हजारों पौंडकी कीमतका माल पड़ा है, आज्ञा मिली है कि वे वर्षके अंततक पृथक् बस्तियोंमें चले जायें, यद्यपि परवाने उनको ब्रिटिश अधिकारियोंसे मिले थे।"

आजकल ट्रान्सवालमें ब्रिटिश भारतीयोंपर क्या गुजर रही है, उसका यह नमूना-मात्र है। ब्रिटिशोंके हाथमें सत्ता आनेके दो वर्ष बाद भी भारतीय यह नहीं जान पाये हैं कि आज उस झंडेके नीचे उनकी वास्तविक स्थिति क्या है, जिसके संरक्षणका भरोसा करना उन्हें बचपनसे ही सिखाया गया था। श्री चेम्बरलेनने जब उपर्युक्त बात कही तब उनके मनमें क्या चल रहा था, हम नहीं जानते। ऊपर जो आरोप प्रस्तुत किये गये हैं, उनका अगर श्री मंचरजी निश्चित उत्तर प्राप्त कर सकें तो कौमकी बहुत बड़ी सेवा होगी।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, १८-६-१९०३

## २५९. प्रवासी विधेयक

स्थानीय संसदको नीचे दिया हुआ प्रार्थनापत्र भेजा गया है:

डर्बन
जून २३, १९०३

[सेवामें]
माननीय अध्यक्ष और सदस्यगण
विधानसभा, नेटाल
संसदस्थ
पीटरमैरित्सबर्ग

नेटाल उपनिवेशवासी भारतीयोंके प्रतिनिधि निम्न हस्ताक्षरकर्ताओंका प्रार्थनापत्र

नम्र निवेदन है कि,

प्रवासियोंपर अधिक नियन्त्रण लगानेवाला विधेयक इस समय इस माननीय सदनके विचाराधीन है। आपके प्रार्थी इसी सम्बन्धमें आदरपूर्वक इस माननीय सदनकी सेवामें उपस्थित हो रहे हैं।

प्रार्थी विधेयकके सिद्धान्तको स्वीकार करते हैं। परन्तु उनका निवेदन है कि इस विधेयकके द्वारा जो और अधिक नियन्त्रण लगाये जा रहे हैं, वे अनावश्यक हैं।

नियन्त्रण ये हैं:

खण्ड ५ के उपखण्ड 'क' द्वारा शैक्षणिक कसौटीके मानदण्डका बढ़ा दिया जाना।

खण्ड ४ के उपखण्ड 'च' द्वारा बालिगीकी उम्रका १६ वर्ष निश्चित किया जाना।

आगन्तुक-परवाने (पास) के अर्जदारके लिए यह जरूरी होना कि वह प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिकारी या खण्ड २३ के अधीन नियुक्त अन्य अधिकारियोंके सामने हाजिर हो।

खण्ड ४ के उपखण्ड 'च' के मातहत मिलनेवाले अधिकारके लिए खण्ड ३२ के अनुसार यह जरूरी होना कि अर्जदार लगातार तीन वर्षसे नेटालका बाशिन्दा हो।

लगातार कमसे-कम पाँच वर्ष उपनिवेशकी सेवा कर लेनेपर भी गिरमिटिया भारतीय मजदूरोंका यहाँके निवासीको मिलनेवाले अधिकारोंसे वंचित रखा जाना।

अब आपके प्रार्थी ऊपर लिखी धाराओंकी क्रमानुसार चर्चा करेंगे :

वर्तमान कानूनके अमलके बारेमें डर्बनके प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिकारीके पिछले विवरणके अनुसार शैक्षणिक कसौटीपर खरे उतरनेपर केवल एक सौ पन्द्रह एशियाइयोंको उपनिवेशमें प्रवेश मिल सका है। इस संख्याके बावजूद इस अधिकारीने सुझाया है कि शैक्षणिक कसौटी और ऊँची कर दी जाये। इस अधिकारीके प्रति आदर रखते हुए भी आपके प्रार्थी निवेदन करना चाहते हैं कि इस परीक्षाके अनुसार प्रवेश पानेवालोंकी नगण्य संख्या शैक्षणिक कसौटी बढ़ानेकी जरूरत प्रकट नहीं करती। वास्तवमें प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिकारीने अपने विवरणके प्रारम्भमें जो शब्द कहे हैं उनसे प्रकट होता है कि कानूनने बहुत सन्तोषजनक काम किया है और जिस हेतुसे वह बनाया गया था उसमें वह बहुत बड़ी हदतक सफल हुआ है। फिर भी यदि माननीय सदस्योंकी राय यही हो कि शैक्षणिक कसौटी बढ़ाई जानी चाहिए तो आपके प्रार्थी फिर वही प्रार्थना करना चाहते हैं, जो इस कानूनके पेश होते समय की गई थी। वह है कि, शैक्षणिक कसौटीमें भारतकी प्रधान भाषाओंको भी शामिल कर लिया जाये। इसके बाद यदि सामान्य रूपसे सब दिशाओंमें कसौटीका मानदण्ड बढ़ा दिया जाये तो उसे आपके प्रार्थी खुशीसे स्वीकार करेंगे। यहाँपर हम यह भी बता दें कि भारतमें करोड़ों आदमी निरक्षर हैं। अतः कानूनके अनुसार उनका प्रवेश तो फिर भी निषिद्ध रहेगा। किन्तु अगर कानूनमें इतना परिवर्तन कर दिया गया तो उसका स्वरूप भारतीयोंके लिए अपमानजनक नहीं रह जायेगा।

वयस्कताकी उम्र १६ वर्ष कर देना उपनिवेशमें प्रवेश पानेके हकदारों, खासकर भारतीयोंके लिए अत्यन्त कष्टकर होगा। माननीय सदस्य जानते हैं कि जबतक भारतीयोंके बच्चे पूरे इक्कीस वर्षके नहीं हो जाते, उन्हें माता-पितासे अलग नहीं किया जाता। इसलिए उपनिवेशमें बसे हुए भारतीयोंके लिए सोलह वर्षसे कम उम्रके बच्चोंको अपनेसे अलग करनेका विचार करना भी बहुत कठिन बात होगी। भारतमें कुटुम्बके बन्धन कितने दृढ़ होते हैं, यह बताना कदाचित् आवश्यक नहीं है।

आपके प्रार्थियोंका अनुमान और विश्वास है कि आगन्तुक-परवानेके अर्जदारका किसी अधिकारीके सामने आवश्यक रूपसे उपस्थित होना तो भूलसे ही कहा गया है। क्योंकि, अर्जदार तो कहींका भी निवासी हो सकता है। अतः यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि हुकूमत उपनिवेशके बाहर सर्वत्र ऐसे अधिकारी नियुक्त कर देगी। इसलिए जबतक सरकार उपनिवेशके बाहर सर्वत्र ऐसे अधिकारियोंकी नियुक्ति नहीं कर देती, तबतक, स्पष्ट है कि, परवानोंके नियमके अधीन नियुक्त अफसरोंके सामने अर्जदारोंकी उपस्थिति सदा सम्भव नहीं है। इसलिए हमारा सुझाव है कि प्रवासी-अधिकारियोंके सम्मुख अर्जदारके मुख्तारोंकी उपस्थिति पर्याप्त मान ली जाये।

अबतक उपनिवेशका पूर्व-निवासी माना जानेके लिए किसी भी अर्जदारका यहाँ लगातार दो वर्षका निवास काफी समझा जाता था। प्रार्थियोंकी नम्र राय तो यह है कि यह अवधि भी बहुत अधिक है। परन्तु अब अगर इसे बढ़ाकर तीन वर्ष कर दिया गया तो इससे बहुतसे भारतीय लौटकर नेटाल नहीं आ सकेंगे, यद्यपि यहाँ उनका व्यापार तथा अन्य सम्बन्ध कायम है। कितने ही व्यक्तियोंको तो इससे बहुत भारी हानि होगी।

गिरमिटिया मजदूरोंको, जो उपनिवेशसे अच्छे व्यवहारके हकदार हैं, मामूली नागरिक अधिकारोंसे वंचित रखनेके इरादेका आपके प्रार्थी विरोध करते हैं। उपनिवेशके विकास और वैभवके लिए गिरमिटिया भारतीय दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक अनिवार्य होते जा रहे हैं और प्रार्थियोंका निवेदन है कि इस सेवाके कारण उनके बारेमें माननीय सदनको विशेष अनुकूल विचार करना चाहिए।

विचाराधीन विधेयकके बारेमें हमारा एक नम्र सुझाव है।

हमारा निवेदन यह है कि, चूंकि अब सारा दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश सत्ताके अधीन आ गया है, इसलिए दक्षिण आफ्रिकामें कहीं भी बसनेवाले हर आदमीके लिए इस उपनिवेशके दरवाजे खोल दिये जायें। केवल वे लोग अपवाद हों जिनका उल्लेख खण्ड ५ के उपखण्ड ग, घ, ङ, च और छ में किया गया है। इस प्रसंगपर हम माननीय सदस्योंको याद दिला देना चाहते हैं कि केप कालोनीमें यह सिद्धान्त मंजूर किया जा चुका है।

अन्तमें हम आशा करते हैं कि माननीय सदस्य इस प्रार्थनापर सहानुभूतिपूर्वक विचार करेंगे और इसमें जिस राहतकी माँग की गई है वह मंजूर करेंगे। और न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए प्रार्थी, अपना कर्तव्य समझकर, सदा दुआ करेंगे, आदि।

अब्दुल कादिर
मुहम्मद कासिम कमरुद्दीन पेढ़ीवाले
और अन्य

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, २५-६-१९०३

## २६०. चित्रका उजला पहलू

अबतक हम दक्षिण आफ्रिकामें ब्रिटिश भारतीयोंके कष्टोंका वर्णन करते रहे। परन्तु कोई यह न समझे कि हम वही राग अलापते रहना चाहते हैं, मानो इस चित्रका कोई उजला पहलू है ही नहीं। इसलिए हम अपने पाठकोंको विश्वास दिलाना चाहते हैं कि ब्रिटिश भारतीयोंको यद्यपि सारे दक्षिण आफ्रिकामें बड़ी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है, फिर भी ऐसी बहुत-सी बातें हैं जिनके लिए हमको कृतज्ञता प्रकट करनी चाहिए। इन स्तम्भोंमें कर्तव्यवश हमने जिन दुःखजनक बातोंका उल्लेख किया है, अगर उनका उजला पहलू न होता तो इस उप-महाखण्डमें भारतीयोंका जीवन एकदम असह्य हो जाता।

ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमान अवस्था अन्ततः अनिवार्य है और इसमें गोरे निवासियोंका बहुत अधिक दोष नहीं है; क्योंकि बहुतसे कार्य मनुष्य परिस्थिति-वश करता है।

यहाँपर हम एक पक्के उद्योगशील और स्वार्थ-साधक समाजके बीच रह रहे हैं (यहाँ 'स्वार्थ-साधक' शब्दका प्रयोग बुरे अर्थमें नहीं किया गया है)। ऐसे आदमियोंके लिए यहाँ कोई स्थान नहीं हो सकता, जो उद्यमी और पुरुषार्थी नहीं है, या जो इस बातके विषयमें पूरी तरह जागरूक नहीं हैं कि कहीं उनके अधिकारोंका अपहरण तो नहीं हो रहा है। उपनिवेश बसते ही इन कारणोंसे है। कोई परोपकारकी भावनाको लेकर दूसरे देशमें बसनेके लिए नहीं जाता। वहाँ लोग इसलिए जाते हैं कि उनकी माली हालत अच्छी हो। वे पहलेसे

अधिक धनवान, सुखी और हर तरहसे शक्तिशाली बनें। ऐसी सूरतमें, और चूंकि कमसे-कम कुछ समयके लिए तो मनुष्यके सामने यही उद्देश्य प्रधान रहता है, अगर यूरोपीय समाज अपने जीवन-क्षेत्रमें किसी प्रतिस्पर्धीको बिल्कुल बर्दाश्त न करे, या कम बर्दाश्त करे, तो इसमें किसीको आश्चर्य नहीं होना चाहिए। हमारी रायमें सारी परिस्थितिका रहस्य यही है। अगर दक्षिण आफ्रिकामें इतनी बड़ी संख्यामें रंगदार जातियाँ न होती तो, हमारा अनुमान है कि, हम यूरोपकी भाँति यहाँ भी गोरी जातियोंके बीच युद्ध होता देखते — हमारा मतलब है, आर्थिक युद्धग। इंग्लैंड अबतक खुले व्यापारका अकेला और बड़ा हामी रहा है। परन्तु आज उसीका एक प्रमुखतम व्यक्ति सौम्य प्रकारके संरक्षणकी ही सही, किन्तु संरक्षणकी बात करने लगा है। इसका भीतरी मतलब यही है कि वह विदेशोंकी प्रतिस्पर्धासे अपने देशको बचाना चाहता है। इस पहलूपर हम यह बतानेके लिए जोर दे रहे हैं कि हमें धीरजकी, और परमात्माको धन्यवाद देनेकी भी, कितनी जरूरत है — धीरजकी इसलिए कि रंगभेदका कारण कितना गहरा है, यह शायद हम खुद मंजूर करना पसन्द नहीं करेंगे; और धन्यवादकी इसलिए कि परिस्थितिका कारण केवल रंग-विद्वेष नहीं बल्कि वे सुनिश्चित नियम भी हैं जो नये समाजोंका नियंत्रण करते हैं।

परन्तु चित्रके उजले पहलूपर विचार करनेके लिए इससे भी अधिक जोरदार कारण हैं। क्या हम कभी भूल सकते हैं कि संकटके समय हमारी मदद माननीय दिवंगत श्री एस्कम्बने ही की थी? हममें से बहुतसे भाई शायद यह भी नहीं जानते कि जब उन्होंने देखा कि विक्रेता-परवाना कानूनके कारण भारतीय व्यापारियोंकी बहुत भारी हानि हो रही है, तब उन्होंने अपना सारा वजन हमारे पक्षमें डाल दिया और वे हमें न्याय दिलाकर रहे — जो कि वाजिब ही था। फिर लड़ाईके मैदानपर जानेवाले हमारे छोटे जत्थेको उत्साहके दो शब्द कहकर उन्होंने उसे अपना आशीर्वाद भी दिया था।[1] उनके वे शब्द अब इतिहासकी वस्तु बन गये हैं; क्योंकि सार्वजनिक रूपसे कहे हुए वही उनके अन्तिम शब्द थे। उसके बाद मृत्युने उन्हें हमारे बीचसे उठा लिया। उनका यह भाषण सच्ची साम्राज्यीय भावनासे ओत-प्रोत था। इसी प्रकारकी अनेक सुखद घटनाएँ हमारे पाठकोंको याद होंगी। सबसे अधिक याद रहनेवाली बात तो यह है कि सन् १९०० में जब सारा भारतवर्ष भयंकर अकालके पंजेमें फँसा हुआ था तब इस उपनिवेशने कितनी उदारतापूर्वक यहाँसे सहायता भेजी थी।[2]

नेटालकी सीमाके उस पार नजर डालते ही केपकी विधान-परिषदके सदस्य श्री गालिकपर हमारी नजर पड़ती है। उन्होंने देखा कि भारतीयोंके पक्षमें न्याय है और उसमें ईमानदारी भी है। वे तुरन्त ब्रिटिश भारतीयोंके शिष्ट-मण्डलके अग्रभागमें खड़े होकर उसका नेतृत्व करनेके लिए तैयार हो गये। ट्रान्सवालमें खुद लॉर्ड मिलनर हैं। उपनिवेशियोंके लिए सही रास्ता क्या हो सकता है, यह उन्होंने स्पष्ट कर दिया। अब अगर हमें यह शिकायत हो कि उसका अमल नहीं हो रहा है तो इसका कारण यह नहीं कि लॉर्ड मिलनरकी इच्छा नहीं है; बल्कि यह है कि वे अपने आपको लाचार पाते हैं। फिर श्री विलियम हॉस्केन हैं जो न्याय और सत्यके पक्षमें डटकर खड़े हो जाते हैं।

इस प्रकार भारतीयोंके जीवनमें सुख देनेवाली ऐसी कितनी ही बातें गिनाई जा सकती हैं। परन्तु उपर्युक्त उदाहरण ही इतना सिद्ध करनेके लिए काफी है कि भविष्यमें आशा रखनेकी काफी गुंजाइश है। और समय पाकर जैसे-जैसे यूरोपीय समाज यहाँ पुराना होता जायेगा वैसे-वैसे

१. देखिए "भारतीय आहत-सहायक दल", दिसम्बर १३, १८९९।
२. देखिए पृष्ठ १७९–८०।

हमारे दिल एक दूसरेके निकट आते जायेंगे और इस साम्राज्य-रूपी विशाल परिवारके भिन्न-भिन्न सदस्य निकट भविष्यमें ही दक्षिण आफ्रिकामें पूर्ण शान्तिके साथ रहने लगेंगे। सम्भव है, वह शुभ दिन इस पीढ़ीमें न आये और उसे हम न देख पायें। परन्तु वह आयेगा जरूर, इससे कोई समझदार आदमी इनकार नहीं कर सकता। अगर ऐसी बात है तो हम अपनी शक्ति-भर कोशिश करें कि वह शुभ दिन जल्दीसे-जल्दी आये। किन्तु इसका रास्ता एक ही है — यह कि, चर्चामें हम शान्ति न खोयें, अपना आदर्श ऊँचा रखें और सचाईसे कभी न हटें। एक बात और भी करें। हम अपने आपको अपने प्रतिपक्षीकी स्थितिमें रखकर सोचें कि उसके दिमागमें क्या विचार चल रहे होंगे। उसके स्थानपर हम होते तो हमपर कैसी बीतती और हम क्या करते। मतलब यह कि केवल मतभेदकी बातोंपर ही ध्यान न दें, बल्कि विचारोंमें समानता कहाँ-कहाँ है, यह भी सोचते रहें।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, २५-६-१९०३

## २६१. नया कदम

नेटाल संसदके वर्तमान अधिवेशनमें सरकार द्वारा पेश किये जानेवाले नये प्रवासी-विधेयक (इमिग्रेशन बिल) को हमने पढ़ा। एक बात हम सबको स्वीकार करनी होगी। वह है, स्वराज्य प्राप्त उपनिवेशोंको अपनी सीमाके अन्दर प्रवासपर नियन्त्रण रखनेका पूरा अधिकार है। और उनके इस अधिकारमें इंग्लैंडकी सरकार तबतक हस्तक्षेप नहीं करेगी जबतक वे बुनियादी ब्रिटिश नीतिका उल्लंघन नहीं करेंगे। इसलिए वर्तमान विधेयकके विरुद्ध हमें सिवा इसके और कुछ नहीं कहना है कि अभी जो कानून जारी है उसे पूरा-पूरा मौका नहीं दिया गया है। दूसरे, उसे पेश करते समय उससे जो-जो आशाएँ की गई थीं उनको पूरा करनेमें वह असफल नहीं रहा है। हमारा यह भी खयाल है कि सारी परिस्थितिका ठीक तरहसे परीक्षण नहीं किया गया है। फिर भी चूँकि सरकारने अपना विधेयक पेश किया है, इसलिए यह आशा करना तो व्यर्थ होगा कि वह इसे पूर्णतया वापस ले लेगी। तथापि हम इतना तो कहेंगे कि जब यह विधेयक विचाराधीन है, और इसका असर भारतीय समाजपर बहुत अधिक पड़नेवाला है, तब क्या यह शोभाजनक नहीं होगा कि इस विषयमें उस समाजकी न्यायोचित माँगें पूरी कर दी जायें?

हम नहीं सोचते कि शैक्षणिक कसौटीको ऊँचा करनेकी जरा भी जरूरत है। श्री हैरी स्मिथने[1] अपनी पिछली वार्षिक रिपोर्टमें लिखा है कि करीब एक सौ प्रवासी शैक्षणिक कसौटीको पार करके उपनिवेशमें आये। वर्तमान कसौटी उचित है, यह बतानेके लिए हमारी रायमें यही प्रत्यक्ष प्रमाण है। परन्तु अगर सरकारकी राय यह हो कि इस कसौटीको और भी कड़ा करनेकी जरूरत है तो इसमें महान् भारतीय भाषाओंको भी शामिल किया जाना चाहिए। पिछले कई वर्षोंसे भारतीय यह माँग करते रहे हैं। हम आशा करते हैं, इस सुझावपर सरकार अवश्य विचार करेगी। यूरोपकी अधिकांश भाषाएँ जिस आर्य भाषा-परिवारकी हैं उसीकी ये भारतीय भाषाएँ भी हैं। जो हो, यह प्रयोग तो करके देखने लायक है ही। हम अपने निजी अनुभवसे

१. प्रवास-प्रतिबन्धक अधिकारी, नेटाल।

कहते हैं कि भारतमें करोड़ों आदमी एकदम निरक्षर हैं। हमने जो उदार कसौटी बताई है उसके अनुसार भी वे यहाँ प्रवेश नहीं पा सकेंगे। अगर इस कसौटीको मंजूर कर लिया जाता है तो उसका वर्तमान रूप हटानेपर हमें कोई आपत्ति नहीं होगी — बशर्ते कि भाषा-विषयक ज्ञानका स्तर प्राथमिकसे ऊपरका हो। अगर यह प्रयोग असफल हो और सरकार देखे कि हजारों लोग उपनिवेशमें प्रवेश पा सकते हैं तो शैक्षणिक योग्यतावाली धारामें परिवर्तन करनेमें कठिनाई नहीं हो सकती। हमारे सहयोगी नेटाल मर्क्युरीने लिखा है कि विधेयक पेश कर दिया गया, यह अच्छा हुआ। क्योंकि, इससे नेटाल-कानूनका केप-कानूनसे मेल बैठ जायेगा। दुर्भाग्यसे, नेटालने केपके कानूनका सभी बातोंमें अनुकरण नहीं किया है; क्योंकि केपका कानून पहलेसे बसे हुए लोगोंपर लागू नहीं होता। यही नहीं, वह समस्त दक्षिण आफ्रिकामें बसे हुए लोगोंको भी यह सहूलियत देता है, बशर्ते कि वे अपराधी न हों, अथवा अन्य किसी कारणसे निषेधके पात्र न हों। यह उचित भी है; क्योंकि अब समस्त दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश सत्ताके अधीन आ गया है। इसलिए उसके एक हिस्सेमें रहनेवालोंको दूसरे हिस्सोंमें जाने-आनेकी आजादी होनी ही चाहिए। नेटालके विधेयकमें 'निवासी' का अर्थ कमसे-कम तीन वर्षसे रहनेवाला किया गया है। हमारी रायमें यह अत्यन्त अन्यायपूर्ण है। सरकारकी हिदायत रही है कि जो यह सिद्ध कर सकें कि वे यहाँ दो वर्षसे रह रहे हैं, उन सबको यहाँके निवासी होनेका प्रमाणपत्र दे दिया जाये। समझमें नहीं आता कि यह अवधि बढ़ाकर तीन वर्ष क्यों की जा रही है? हमारे खयालसे तो, लगातार दो वर्ष रहनेकी शर्त लगाना भी सख्ती होगी। गिरमिटिया मजदूर पाँच सालकी मियाद पूरी कर चुकनेपर भी इस उपनिवेशके निवासी नहीं माने जाते। इसपर हम यही कह सकते हैं कि इसमें कोई भी औचित्य नहीं है। इस उपनिवेशमें रहनेके लिए वे सबसे अधिक योग्य और सबसे अधिक कामके हैं। श्री एस्कम्बने ठीक ही कहा है कि इन लोगोंने बहुत तुच्छ पारिश्रमिकपर अपने जीवनके सबसे अधिक कीमती पाँच वर्ष दिये हैं, और गुलामोंकी-सी हालतमें अपने दिन काटे हैं। ऐसे लोगोंको नागरिकताके बुनियादी अधिकारोंसे भी वंचित रखना अत्यन्त अनुचित है।

इस विधेयकपर हमने जो आपत्तियाँ पेश की हैं, हम आशा करते हैं, सरकार उनपर गम्भीरतापूर्वक विचार करेगी। जैसा कि सरकारने स्वयं स्वीकार किया है, भारतीय समाज उपनिवेशसे इतने सौजन्यकी आशा तो जरूर कर सकता है। जहाँतक हमारा खयाल है, उसकी माँगें अधिक नहीं हैं। उसका रुख सदैव तर्कसंगत रहा है। और उसने बहुत आत्म-नियन्त्रणसे काम लिया है। इसलिए अगर हम उसकी तरफसे माँग करें कि उसकी सुनवाई सहानुभूतिपूर्वक होनी चाहिए, तो हम बहुत अधिक नहीं माँग रहे हैं।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, २५-६-१९०३

## २६२. केप-प्रवासी भारतीय और सर पीटर फॉर

हमारे केप-निवासी भाइयोंका एक शिष्ट-मण्डल माननीय उपनिवेश-सचिवसे हाल ही में मिला है। उसके नेताके तौरपर श्री गालिक जैसे सज्जनकी प्राप्ति और शिष्टमण्डलकी सफलतापर इन भाइयोंको हमारी बधाई है। सर पीटरका रुख निश्चित रूपसे सहानुभूतिपूर्ण था। उन्होंने केपके प्रवासी-कानूनपर पुनर्विचार करनेका वचन दिया है। यह भी आश्वासन दिया है कि ईस्ट लंदनकी नगर-परिषदको वे राजी करनेका प्रयत्न करेंगे कि वह पटरीवाले कानूनका अमल प्रतिष्ठित भारतीयोंके विरुद्ध न करे और केपकी नगरपालिकाके *बाजारों*वाले प्रस्तावको बिना उसपर अच्छी तरह विचार किये मंजूर न करे। ये सब शुभ लक्षण हैं। हमें तो निश्चय है कि यदि केप-निवासी हमारे देशभाई नम्रतापूर्वक किन्तु लगातार अपनी आवाज उठाते रहेंगे तो उनको अवश्य राहत मिलेगी। *केप टाइम्सने* शिष्ट-मण्डल-सम्बन्धी अपने लेखमें स्वीकार किया है कि वे निःसन्देह उसके पात्र भी हैं। अगर केपकी संसद भारतकी महान् भाषाओंको मान्यता देनेका मार्ग प्रशस्त करती है तो हमारी रायमें वह साम्राज्यकी भारी सेवा है। इससे भारतीय जनताका क्षोभ बहुत कम हो जायेगा और प्रवासी-कानूनके मूलभूत सिद्धान्तकी भी रक्षा हो जायेगी। ईस्ट लन्दनमें पटरीवाले कानूनका लागू किया जाना एक बेमौजूं बात है, यह हर कोई स्वीकार करेगा। इसलिए वह तो जितनी जल्दी हट जाये, उतना ही अच्छा है। डॉ० अब्दुल रहमानने इसके बारेमें एक बार बिलकुल ठीक ही कहा था कि अगर वे खुद पैदल-पटरीपर चलें तो ईस्ट लंदनमें, वर्तमान नियमोंके मातहत, वे भी गिरफ्तार किये जा सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, २५–६–१९०३

## २६३. भारतीय प्रश्नपर श्री चेम्बरलेन

हालमें जो तार समाचारपत्रोंमें छपे हैं, उनसे मालूम होता है, ब्रिटिश लोकसभामें एक प्रश्नके जवाबमें श्री चेम्बरलेनने कहा है कि ट्रान्सवालके भारतीयोंकी यह शिकायत नहीं है कि उनके साथ शारीरिक दुर्व्यवहार किया जाता है, और न जोहानिसबर्गके ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्षके पत्र[1]में ही ऐसी कोई निश्चित बात बताई गई है। इन छोटे तारोंसे यह पता लगाना बड़ा कठिन है कि श्री चेम्बरलेनके उत्तरका अभिप्राय क्या है। यह बिलकुल सच है कि ट्रान्सवालके, बल्कि समस्त दक्षिण आफ्रिकाके, भारतीयोंने नियमपूर्वक शारीरिक दुर्व्यवहारकी कभी शिकायत नहीं की। हमारी शिकायतका आधार एशियाई-विरोधी कानून है। परन्तु यदि परम माननीय महानुभाव हाइडेलबर्गकी घटनाके सिलसिलेमें यह कहते हों कि जोहानिसबर्गके ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्षके पत्रमें कोई निश्चित बात नहीं है, तो हम आदरके साथ इसका उत्तर देनेको तैयार हैं। उक्त पत्रको हम पहले ही इन स्तम्भोंमें प्रकाशित कर चुके हैं। और हम यह दावेके साथ कह सकते हैं कि उस पत्रसे पूरी तौरसे प्रकट होता है कि कुछ भी सही, शारीरिक दुर्व्यवहार वहाँ हुआ जरूर है। परन्तु हम नहीं चाहते कि इस घटनापर अधिक विचार करें। क्योंकि हमारा यह दृढ़ मत है कि उस प्रकारकी वह एक अलग घटना थी और जब कभी ऐसी घटनाएँ

१. देखिए "पत्र: उपनिवेश-सचिवको," अप्रैल २५, १९०३।

होती है, स्थानीय उच्चाधिकारी सदैव यह देखनेके लिए तैयार रहते हैं कि न्याय किया जाये। हमारा उद्देश्य केवल यहाँ बताना है कि ब्रिटिश भारतीय संघके सभापतिने अपने पत्रमें जो बात कही थी वह एक निश्चित और सत्य बात थी। और इस बारेमें हम जानते हैं कि जब वह पत्र पहले-पहल प्रकाशित हुआ था तब सबकी एक ही राय थी कि, पुलिसने अपने कर्तव्य-पालनमें गम्भीर अवहेलनाका परिचय दिया।

[ अंग्रेजीसे ]

*इंडियन ओपिनियन*, २५-६-१९०३

## २६४. अस्वच्छ रिपोर्ट

हम दूसरे स्तम्भमें जोहानिसबर्ग स्टारको भेजा गया तार प्रकाशित कर रहे हैं। यह तार क्रूगर्संडॉर्पके सफाई-दारोगाने वहाँकी भारतीय बस्तीकी हालतके सम्बन्धमें जो रिपोर्ट पेश की है, उसका सार है। स्पष्ट है कि जब यह सफाई-दारोगा रातको उस बस्तीमें गया तो उसके मनमें यह लोकोक्ति घूम रही थी कि "अगर किसी कुत्तेको फाँसीपर लटकाना हो तो पहले उसे बदनाम करो।" सचमुच यह भयानक बात है कि जिम्मेदार अधिकारी अपनी बुद्धिको कल्पनाके बादलोंसे ढाँककर किस तरह ऐसे बयान दे सकते हैं, जो निस्सन्देह मानहानिकारी हैं। उस रिपोर्टसे कुछ भी उद्धृत करके हम सम्पादकीय स्तम्भोंको गन्दा नही करना चाहते। वह तो स्वयं स्पष्ट है। हम तो केवल यही आशा करते हैं कि हुकूमत ऐसे अतिरंजित विवरणोंके कारण अपने स्पष्ट कर्तव्य-पथसे भटकेगी नहीं। साथ ही, इस मौकेपर हम अपने देशभाइयोंको बहुत जोर देकर सावधान कर देना चाहते हैं कि इस समय ट्रान्सवालमें उनकी स्थिति बड़ी गम्भीर है। यद्यपि हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि सफाई-दारोगाकी रिपोर्ट बहुत ज्यादा गलत है, फिर भी हमें यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि क्रूगर्संडॉर्पकी हमारी बस्ती सफाईकी दृष्टिसे जितनी अच्छी होनी चाहिए, वैसी नही है। अगर स्वास्थ्य-निकाय (हेल्थ बोर्ड) कोई दोष लगाये तो उसका शायद यह ठीक जवाब होगा कि स्वयं उसने बस्तीकी सफाईकी पूर्णतया उपेक्षा की है। अगर बस्ती गन्दी है तो इसमें बस्तीमें रहनेवाले भारतीयोंकी अपेक्षा स्वास्थ्य-निकायका दोष अधिक है। किन्तु फिर भी इस जवाबसे हमें सन्तोष नही हो सकता। सफाई-दारोगाकी देखभालके बगैर भी सफाई तथा सुरुचिके साथ रहनेकी योग्यता हमारे अन्दर होनी चाहिए। यदि हम अपने गरीबसे गरीब देशभाईको हमारी बताई योजनाके अनुसार रहनेपर राजी कर सके तो क्रूगर्संडॉर्पके सफाई-दारोगाने जो कुछ कहा है वह वरदानके रूपमें बदला जा सकता है। तब उसकी रिपोर्टपर बुरा माननेके बजाय हमें उसे धन्यवाद देना पड़ेगा कि उसने अच्छा किया जो क्रूगर्संडॉर्पकी बस्तीकी हालतका वर्णन करनेमें बहुत-सी मनगढ़न्त बातें जोड़ दीं।

[ अंग्रेजीसे ]

*इंडियन ओपिनियन*, २५-६-१९०३

## २६५. पत्र : हरिदास वखतचन्द वोराको[1]

कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
पो० ऑ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
जून ३०, १९०३

प्रिय हरिदासभाई,

आपके दो पत्र मिले। बड़ी खुशी हुई कि अब हरिलाल खतरेसे बाहर हो गया है। आप जानते हैं, मैंने तार[2] दिया था कि छगनलालके साथ उसे यहाँ भेज दें। आशा है वह रवाना कर दिया जायेगा। वह जब यहाँ पहुँचेगा तबतक जाड़ा बीत जायेगा। अभी कुछ दिनों वह स्कूल नहीं जा सकेगा इसलिए शायद हवा-पानीके बदलाव और बँधी दिनचर्यासे उसे कुछ ज्यादा फायदा हो जाये। और यहाँ उसे आपके मनके मुताबिक अधिक प्राकृतिक ढंगसे भी रखा जा सकेगा। मैं ध्यान रखूँगा कि जहाँतक बने उसे दवाएँ न दी जायें।

भारतके मित्रोंकी, इस अपने आप ओढ़े हुए देश-निकालेके दिनोंमें, मुझपर बड़ी कृपा रही है। उसके लिए मैं बहुत आभारी हूँ। मुझे मालूम है, आपने और रेवाशंकरभाईने हरिलालके तईं मेरी कमी पूरी कर रखी है। उसकी ज्यादा चर्चा मैं नहीं करना चाहता। मैं यह सोचता हूँ कि यदि वह यहाँ होता तो मैं उसकी देख-रेख कर सकता। इसका मुझे दुःख है कि उसके कारण आप दोनोंको चिंता और परेशानी हुई।

आप अपने मुकदमे-मामलोंमें जरूरतसे ज्यादा मेहनत नहीं करते होंगे, ऐसी मुझे उम्मीद है। आपको किस तरहका काम मिल रहा है और आपकी और बच्चोंकी तन्दुरुस्ती कैसी है इन बातोंके बारेमें कुछ विस्तारसे जानना चाहता हूँ। मैं जानता हूँ, आप मेरे बारेमें भी कुछ सुनना चाहेंगे।

दफ्तरका मेरा काम काफी अच्छा चल रहा है। यों दफ्तर खोले अभी कुछ ही महीने हुए हैं, किन्तु इसी अरसेमें वकालत ठीक जम गई है और काममें चयन-चुनाव कर सकता हूँ। मगर सार्वजनिक काम बड़ी मेहनत चाहता है और अक्सर बहुत चिन्ताका कारण बन जाता है। फलस्वरूप मुझे इन दिनों लगभग पौने नौ बजे सवेरेसे रातके दस बजेतक काम करना पड़ता है — कुछ घूमने और भोजनके लिए समय छोड़कर। लगातार खटना, लगातार सोचना; और फिलहाल कुछ दिनों उम्मीद नहीं है कि सार्वजनिक काम कम पड़े। अभी सरकार चालू कानूनमें सुधार करनेकी बात सोच रही है, इसलिए बहुत सतर्क रहना है। यह अन्दाज लगाना बहुत कठिन है कि आगे क्या होगा। ऐसी हालतमें अपनी आगेकी योजनाके बारेमें तो कह नहीं सकता। फिर भी हालतको जितना सोचता हूँ उतना ही अधिक ऐसा जान पड़ता है कि अभी कई बरस इससे अलग होना लगभग असंभव है। मैंने जो नेटालमें किया था, उसे फिर करना पड़ेगा। मगर मैंने कस्तूरबाईको जो वचन दिया था उसे पूरा करनेका सवाल है। मैंने कहा था कि या तो वर्षके अन्तमें मैं भारत लौट आऊँगा या उस समयतक तुम्हें बुलवा लूँगा। लेकिन अगर वह मुझे अपनी बातसे पीछे हटने दे और यहाँ आनेकी हठ न करे तो संभव यह है कि कुछ जल्दी देश लौट सकूँ। आजकी हालतमें किसी भी तरह मैं तीन-चार साल लौटनेकी बात नहीं सोच

१. काठियावाडके प्रमुख वकील, जिन्होंने १८९१में गांधीजीके इंग्लैंडसे लौटनेपर उनके जाति-बहिष्कृत किये जानेका विरोध किया था और बादको राजकोटमें वकालतके प्रारम्भिक दिनोंमें उनकी सहायता की थी।

२. यह उपलब्ध नहीं है।

सकता। क्या उतने-सारे दिनोंतक वह वहाँ रहनेकी बात मान लेगी? अगर न माने तो फिर निश्चय ही सालके अन्तमें वह यहाँ आये और मैं चुपचाप १० या ऐसे कुछ वर्षोंके लिए जोहानिसबर्गमें बसना तय कर लूं। वैसे यह बड़ी दारुण बात है कि एक नया घर यहाँ बसाओ और फिर उसे मिट्टीमें मिलाओ — नेटालकी तरह। अनुभव कहता है, यह सौदा बड़ा महँगा पड़ेगा और अगर नेटालमें बड़ी बाधाएँ आड़े आती थीं तो यहाँ जोहानिसबर्गमें वे उससे ज्यादा ही होंगी। इसलिए, कृपा करके इसपर विचार करें और कस्तूरबाई वहाँ हो तो आप सब सलाह करें और मुझे खबर दें। यों मेरा खयाल है कि अगर वह वहीं रुकनेकी बात मान जाये, कमसे-कम फिलहाल, तो मैं अपना पूरा ध्यान सार्वजनिक काममें लगा सकूँगा। वह जानती है, नेटालमें उसे मेरा साथ बहुत कम मिल पाता था; शायद जोहानिसबर्गमें और भी कम मिले। कुछ भी हो मैं बिलकुल उसकी भावनाओंके मुताबिक चलना चाहता हूँ और अपनेको उसके हाथोंमें सौंपता हूँ। अगर आना हो तो वह अक्टूबरमें तैयारी कर ले और नवम्बरके शुरूमें रवाना हो जाये। अबसे तबतक खबरें आने-जानेके लिए काफी वक्त रहेगा।

मुझे बड़ी खुशी हुई कि बालीका विवाह इस वर्ष नहीं होगा। जितनी देरसे उसकी शादी हो उतना ही उसके और उसके भावी पतिके लिए अच्छा होगा।

आपका, हृदयसे,
मो० क० गांधी

हाथसे लिखी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (सेवाग्राम, संख्या १) से।

## २६६. पत्र : छगनलाल गांधीको

जोहानिसबर्ग
जून ३०, १९०३

चि० छगनलाल,

हरिदासभाईके[1] नाम लिखे पत्रकी नकल साथ भेजता हूँ।[2] उसमें मेरे सारे समाचार हैं। अपनी काकीको यहाँकी हालत पढ़कर सुना देना और समझा देना। वह वहीं रहना पक्का करे, यह यहाँकी महँगाईको देखते हुए बहुत योग्य लगता है। अगर वह वहाँ रहे तो यहाँकी बचतसे वह और बच्चे वहाँ हिन्दुस्तानमें ज्यादा आरामसे रह सकेंगे। उस हालतमें मैं दो-तीन सालके अरसेके बाद लौट सकूँगा। लेकिन अगर वह आग्रह करे तो चलते वक्त मैंने उसे जो वचन दिया था उससे हटूँगा नहीं। अगर वह रवाना होना तय करे तो अक्टूबरतक सब तैयारी पूरी करके नवम्बरमें पहले जहाजसे रवाना हो जाओ। मगर पहले उसे यह समझानेकी कोशिश जरूर करो कि हिन्दुस्तानमें रहना उत्तम है। रेवाशंकरभाईसे सलाह करके वह चाहे बम्बई चाहे राजकोटमें रहना पसन्द कर सकती है। अगर तुम हरिलालके साथ अभीतक रवाना नहीं हुए हो और तुम्हारी काकी तुम्हारे साथ आना चाहती है तो रामदास और देवदासको भी साथ लेते आओ। मणिलाल और गोकुलदासका बम्बईमें पढ़नेका और रहनेका ठीक प्रबन्ध करना जरूरी है। अगर मणिलाल वहाँ रुकना पसन्द न करे तो उसे भी साथ ले आना। गोकुलदास

१. हरिदासभाईकी पुत्री।
२. देखिए पिछला शीर्षक।

अगर बम्बईमें ही अपनी पढ़ाई चलाता रहे तो अच्छा होगा। उसके मनमें क्या है और रलिया-बेनका इस बारेमें क्या कहना है, लिखना।

जो फेहरिस्त मैंने भेजी है, उसमें से जितनी किताबें और चित्र बनें, लेते आना। सब पैसा रेवाशंकरभाईके पास जमा कर देना अच्छा होगा। फूलीका खाता बन्द कर दिया जाये। शिवलालभाईके साथ हिसाब-किताब साफ कर लो — जरूरत पड़े तो राजकोट जाकर। उसके बाद तुम्हारे पास यात्राके लिए काफी पैसा बचेगा।

अगर तुम्हारी काकी राजकोट रहना तय करे तो मणिलालको यहाँ ले आना अच्छा होगा।

मगनलाल[1] का काम टोंगाटमें अच्छा चल रहा है।

यह पत्र रेवाशंकरभाईको पढ़कर सुना देना। जल्दीमें लिखा है, इसलिए उन्हें खुद पढ़नेमें तकलीफ होगी।

मोहनदासके आशीर्वाद

गुजराती पत्रके अंग्रेजी अनुवादसे, *माई चाइल्डहुड विद गांधीजी*, पृष्ठ १९२–९३।

## २६७. आय-व्ययका चिट्ठा

जो व्यापारी केवल अपने वस्तु-भण्डार और बकाया लेनदारियोंका ही ध्यान रखता है और देनदारियोंका खयाल नहीं करता उसका बधिया बैठ जाना निश्चित है। दुर्भाग्य उसके सामने आकर एकाएक खड़ा होता है और जब महाजन उसे चारों तरफसे घेर लेते हैं तब माल और बकाया एक ही झपाटेमें साफ हो जाते हैं। तब उसकी बचत अदृश्य हो जाती है और वह दिवालिया हो जाता है। इसलिए समझदार व्यापारी हमेशा ध्यान रखता है कि उसकी देनदारियोंका समयपर भुगतान होता रहे। तब उसकी बचत, चाहे वह थोड़ी हो या अधिक, असली बचत होगी। यह बात, जैसी व्यक्तियोंके साथ वैसी ही समुदायोंके साथ, और जैसी आर्थिक मामलोंमें वैसी ही राजनीतिक मामलोंमें लागू होती है।

दक्षिण आफ्रिकामें ब्रिटिश भारतीयोंकी मुख्य शिकायतोंका हमने लेखा तैयार किया है और विश्वास है कि हमने पूर्ण रूपसे सिद्ध कर दिया है कि उनकी जड़में अविवेक और तर्कहीन रंग-विद्वेष है। अब हम दूसरे पहलूकी जाँच करके देखना चाहते हैं कि इस स्थितिके लिए हम स्वयं किस हदतक जिम्मेदार हैं। यदि हम अपने दोषोंको समझकर उन्हें दूर करनेकी चेष्टा नहीं करेंगे तो एक दिन ऐसा आ सकता है जब हम देखेंगे कि जिसे हम खातेमें जमा समझ रहे थे वह घाटेमें परिणत हो गया है।

तो, हमारे ऊपर यह इलजाम है कि हम गन्दे रहते हैं और हमारा रहन-सहन कंजूसोंका-सा है। हमारी रायमें दोमें से एक भी बात जाब्तेसे सिद्ध नहीं की जा सकती। जहाँतक सफाईका सम्बन्ध है, हमारे देशभाई इस बातका पूर्ण प्रमाण देनेमें समर्थ रहे हैं कि, वर्गकी हैसियतसे ब्रिटिश भारतीय यूरोपीयोंकी अपेक्षा किसी प्रकार घटकर नहीं हैं। यह भी सिद्ध कर दिया गया है कि भारतीय तिलहे चिथड़ेकी बूपर जिन्दा नहीं रहते। बहुत विचार करनेपर ये इलजाम इतने ही निकल सकते हैं कि भारतीय मैले-कुचैले और अत्यन्त मितव्ययी होते हैं। परन्तु राजनीतिके मामलोंमें जहाँ जनसमूहसे काम पड़ता है, जाब्तेकी गवाहीका कोई अर्थ नहीं होता। यहाँका

१. छगनलाल गांधीके भाई, गांधीजीके भतीजे और सहयोगी।

जन-समाज तो यही राग अलापता रहेगा कि भारतीयोंकी आदतें इतनी गन्दी हैं कि उनसे सारे समाजको खतरा है और उनका रहन-सहनका तरीका इतना गिरा हुआ है कि वे तिलहे चिथड़ेकी भूपर जिन्दा रहते हैं।

इसमें शक नहीं कि इन दोनों बातोंमें हम इससे अच्छे बन सकते हैं। यद्यपि यह बिलकुल सही है कि हमारी झोंपड़ियों और अत्यधिक सादी आदतोंका असली कारण हमारी गरीबी ही है, तथापि गरीबी कितनी ही क्यों न हो वह उस बेहद मैलेपन और घृणित सादगीका कारण नहीं हो सकती, जो कि अनेक भारतीय घरोंमें देखी जाती है। यह निश्चय ही हमारे हाथमें है कि हम अपने झोपड़ोंको अच्छी तरह साफ रखें और अपमानजनक वातावरणमें भी — जैसा कि डर्बनके ईस्टर्न फुले, वेस्टर्न फुले एवं ट्रान्सवालकी बस्तियोंमें है — साफ सुथरे ढंगसे रहनेका आग्रह रखें।

अपने पड़ोसियोंसे सीखनेका अनूठा अवसर हमें मिला है। अंग्रेज कहीं अकेले पड़ जायें तो वे अव्यवस्थामें से व्यवस्था पैदा कर लेंगे और घोर अरण्यको सुन्दर उद्यानका रूप दे देंगे। डर्बनकी सुन्दरताका श्रेय अंग्रेजोंके पराक्रम और उनकी सुरुचिको ही है। सच पूछिए तो भारतवासी आफ्रिकामें उनसे पहलेसे आये हुए हैं। अंग्रेजोंके जंजीबारमें आगमनसे पहले ही बहुत बड़ी संख्यामें भारतीय वहाँ आकर बस चुके थे। उन्होंने वहाँ बड़ी-बड़ी इमारतें तो खड़ी कर दी, परन्तु वे शहरको सुन्दर नहीं बना सके। कारण स्पष्ट है। समाजकी भलाईके लिए हमारे अन्दर एकता, सहयोग और पूरे-पूरे त्यागकी भावना नहीं है।

अपनी मुसीबतोंको हम दैवी कोप समझ लेते हैं। मुसीबतोंसे जो सबक हमें सीखने चाहिए उनको अगर हम सीखने लग जायें तो वे बेकार नहीं साबित होंगी। उस परीक्षामें से हम सामाजिक गुणोंमें अधिक समृद्ध होकर निकलेंगे, अपने उद्देश्यको न्यायकी दृष्टिसे अधिक बलवान बना देंगे और शुरूमें हमने जिस दृष्टान्तका उपयोग किया है उसीकी भाषामें कहना चाहें तो व्यापारके प्रारम्भमें जितनी पूँजी लेकर हम निकले थे उससे कहीं अधिक रकम हमारे पास जमामें होगी। समस्त दक्षिण आफ्रिकामें बसे विचारशील भारतीयोंके समक्ष हमारा यह निवेदन विचारार्थ प्रस्तुत है।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, २-७-१९०३

## २६८. सच्चा साम्राज्य-भाव

ब्रिटिश जहाजोंपर भारतीय खलासियोंको काममें लगानेके बारेमें श्री चेम्बरलेनने आस्ट्रेलियाके उपनिवेशोंको जो जवाब दिया है वह ध्यान देने योग्य है। आस्ट्रेलियाके द्वारा उन्होंने वास्तवमें समस्त उपनिवेशोंको सन्देश दिया है और असन्दिग्ध शब्दोंमें इस ब्रिटिश नीतिको सबके सामने रख दिया है कि ब्रिटिश साम्राज्यके रंगदार प्रजाजनोंके साथ भी वैसा ही बरताव होना चाहिए जैसा अन्य ब्रिटिश प्रजाजनोंके साथ होता है। हमें आशा करनी चाहिए कि दक्षिण आफ्रिकामें बसे हुए ब्रिटिश भारतीयोंके प्रति व्यवहार करनेमें वे इस नीतिपर पूरी दृढ़ताका परिचय दे सकेंगे। जो हो, रंगदार जातियोंके विषयमें ब्रिटिश नीतिकी स्पष्ट घोषणा करके श्री चेम्बरलेनने हम ब्रिटिश भारतीयोंका बड़ा उपकार किया है।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, २-७-१९०३

## २६९. पत्र: गो० कृ० गोखलेको

२५ व २६ कोर्ट चेम्बर्स
नुक्कड़, रिसिक ऐंड एण्डर्सन स्ट्रीट
जोहानिसबर्ग
जुलाई ४, १९०३

प्रिय प्रोफेसर गोखले,

मैं समय-समयपर आपको दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंकी स्थितिके सम्बन्धमें कागज-पत्र भेजता रहा हूँ। यद्यपि, मैं जानता हूँ कि आपके पास बहुत अधिक अन्य सार्वजनिक कार्य है, फिर भी अपनी शिकायतोंके बारेमें आपको कष्ट देनेके सिवा मेरे पास और कोई चारा नही है। यह महसूस किया जाता है कि भारतमें पर्याप्त रूपमें सतत कार्रवाई नही की जा रही है। मेरा विश्वास है कि वाइसराय उपनिवेशोंकी कार्रवाइयोंका तीव्र विरोध कर रहे हैं। परन्तु यदि उनके हाथ लोकमतके द्वारा मजबूत नहीं किये जाते, तो स्थिति हाथसे निकल भी सकती है। विचित्र बात तो यह है कि यहाँ भी लॉर्ड मिलनर न्याय करनेके लिए अत्यन्त उत्सुक मालूम पड़ते हैं, परन्तु यहाँ लोकमतके नामपर जो कुछ भी कहा जाता है उससे वे प्रायः डर जाते हैं। वास्तवमें दक्षिण आफ्रिकाके लोग धन एकत्र करनेमें इतने व्यस्त है कि उनका इस ओर ध्यान ही नहीं जाता कि उनके अपने क्षेत्रसे बाहर क्या हो रहा है। किन्तु ट्रान्सवाल तथा ऑरेंज रिवर कालोनीमें कुछ ऐसे स्वार्थी आन्दोलनकारी हैं जो एशियाई-विरोधी कानूनोंको ढीला करनेके विरुद्ध गवर्नरके पास निरन्तर प्रतिवाद भेजते रहते हैं। इसलिए मेरे विचारमें यह नितान्त आवश्यक है कि इस तरहके आन्दोलनको प्रभावहीन बनानेके लिए सम्पूर्ण भारतमें एक सुसंचालित आन्दोलन शुरू किया जाये, और जारी रखा जाये। मुझे आशा है, आप समय निकाल कर इस मामलेको हाथमें लेंगे। आप जानते हैं, जब मैं कलकत्तेमें था, श्री टर्नर[1]ने मुझसे क्या कहा था और इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं कि यदि आप उन्हें लिखें या उनसे मिल सकें तो वे कार्रवाई करनेके लिए तैयार हो जायेंगे।

मैं श्री मेहता[2]को लिख रहा हूँ, परन्तु मुझे आशा है आप इस मामलेमें उनसे मिलेंगे।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (जी० एन० ४१०२) से।

१. बंगाल व्यापार-संघ (बंगाल चेम्बर ऑफ कॉमर्स) के अध्यक्ष।
२. सर (उस समय श्री) फीरोजशाह मेहता।

## २७०. १८५८ की घोषणा

आजकल ब्रिटिश भारतीयोंके खिलाफ सारे दक्षिण आफ्रिकामें लगातार आन्दोलन किया जा रहा है। ऐसे समय दक्षिण आफ्रिकाके निवासियोंका ध्यान इस स्मरणीय घोषणाकी तरफ खास तौरसे जाना चाहिए। इसे "ब्रिटिश भारतीयोंका *मैग्ना कार्टा*"[1] कहा गया है। आशा है, वे उसका अध्ययन करेंगे। इस घोषणाके आदि कारणका उल्लेख कर देना असंगत न होगा। संसार जानता है कि सन् १८५७ का वर्ष सारे ब्रिटिश राज्यके लिए एक बड़ी चिन्ता और परेशानीका वर्ष बन गया था। इसका कारण भारतवर्षका महान् सिपाही-विद्रोह था। एक समय तो संकटने इतना विकट रूप धारण कर लिया कि अन्तिम परिणाम दुविधाका विषय बन गया। भारतीय जनताके बुरेसे-बुरे अन्धविश्वासोंको जगाया गया, धर्मकी बड़ी दुहाई दी गई, और जनताके मनको विचलित करने और उसे ब्रिटिश शासनका दुश्मन बनानेके लिए दुष्ट प्रकृतिवालोंसे जो भी सम्भवतः बन सकता था, सब किया गया। ऐसी संकट और चिन्ताकी घड़ीमें अधिकांश भारतीय जनता अपनी वफादारीमें दृढ़ और अडिग रही। स्वर्गीय सर जॉन लॉरेन्सको पंजाबका रक्षक कहा गया है। निश्चय ही वे एक बड़ी हदतक सम्पूर्ण ब्रिटिश भारतके रक्षक थे; किन्तु इस पदवीके वे जो अधिकारी बने उसका कारण यह था कि उन्होंने पंजाबकी उन लड़ाकू जातियोंकी वफादारीका अच्छेसे-अच्छा उपयोग कर लिया जो इससे कुछ ही वर्ष पहले चिलियाँवालाके ऐतिहासिक मैदानपर अंग्रेजी फौजोंका कड़ा मुकाबला[2] कर चुकी थीं। सारे भारतवर्षमें आम लोग वफादार बने रहे और उन्होंने बलवाइयोंका साथ देनेसे इनकार कर दिया। लॉर्ड कैनिंगको यह सब मालूम था। उन्होंने स्वर्गीया सम्राज्ञीको समय आनेपर उन करुण घटनाओंकी कहानियाँ भेजी थीं, जिनमें बताया गया था कि किस प्रकार ब्रिटिश भारतीयोंने अपने प्राणोंको जोखिममें डालकर सैकड़ों अंग्रेज पुरुषों और स्त्रियोंको बचाया था। अन्तमें जब विद्रोह बिलकुल दबा दिया गया और राजकीय कृपा प्रकट करनेका अवसर आया तब महारानीने अपने तत्कालीन प्रधानमन्त्री लॉर्ड डर्बीको आज्ञा दी कि वे राजकीय घोषणाका मसविदा बनायें। महारानीके स्वर्गीय पति महोदय उन समस्त वृत्तान्तोंको हमारे लिए सुरक्षित कर गये हैं, जिनका इस मसविदेसे सम्बन्ध था। उनके ग्रन्थमें हम पढ़ते हैं कि घोषणाका मसविदा सम्राज्ञीको पसन्द नहीं आया; क्योंकि उनकी दृष्टिमें वह अत्यन्त निस्तेज था। गदरके समय जो घटनाएँ भारतमें घटी थीं उनसे उसका मेल नहीं खाता था। इसलिए उन्होंने लॉर्ड डर्बीको दो बातोंपर जोर देते हुए नया मसविदा बनानेकी आज्ञा दी: एक, अपने उन करोड़ों राजनिष्ठ प्रजाजनोंसे, जो अभी-अभी भयंकर संकटसे गुजरे हैं, बात करनेवाली महारानी एक स्त्री हैं; और दूसरे, यह घोषणा भारतीय जनताके लिए स्वतन्त्रताका एक दस्तावेज होनी चाहिए, जिसकी वे कद्र करें और जिसे वे सुरक्षित रखें। इतना होनेपर वह मसविदा अपने वर्तमान रूपमें तैयार हुआ और जनताको भेजा गया। ऐसे अनेक अवसर आये जब कि उस घोषणाको भारतीयोंके लिए ब्रिटिश प्रजाके पूर्ण स्वत्व और अधिकार देनेवाली बताया गया। उनकी चर्चा करना व्यर्थ है। वाइसरायोंके बाद वाइसरायोंने उसी बातको दोहराया और लॉर्ड कर्जनने कलकत्ताकी विधान-परिषदमें अपने आसनसे

१. स्वाधीनताका महान अधिकार-पत्र जो ब्रिटिश प्रजाने सन् १२१५ में राजा जॉनसे बलपूर्वक प्राप्त किया था।

२. यह १८४८ के दूसरे सिख-युद्धकी बात है।

उसमें किये गये वादोंकी एकसे अधिक बार पुष्टि की। अन्तिम, पर उतनी ही महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हमारे सम्राट्ने दिल्ली-दरबारके अवसरपर वाइसरायको जो सन्देश भेजा था, उसमें भी बहुत कुछ यही कहा था।

ब्रिटिश भारतीय कहीं भी क्यों न जायें, जब ब्रिटिश प्रजाजनके रूपमें उनकी स्वतन्त्रता और उनके अधिकारोंका हनन होता है तब वे उक्त घोषणाका आश्रय लेते हैं और यदि वे ऐसा करते हैं तो इसमें आश्चर्यकी क्या बात है? घोषणाका मुख्य भाग हम नीचे उद्धृत करते हैं। पाठक देखेंगे कि इस घोषणामें जो वचन भारतीयोंको दिये गये हैं उनका उपभोग वे कहाँ कर सकेंगे, इस सम्बन्धमें किसी स्थानका प्रतिबन्ध नहीं है। यहाँ हमें इस बातकी तरफ विशेष रूपसे ध्यान इसलिए दिलाना पड़ा कि दक्षिण आफ्रिकामें इस घोषणाको यह कहकर टालनेके प्रयत्न किये गये हैं कि यह तो भारतमें की गई थी, इसलिए केवल वहीं लागू होती है। इस तर्कके विरुद्ध हम कह सकते हैं कि नेटालके भारतीयोंसे एक शिष्ट-मण्डलके उत्तरमें, इस घोषणाका जिक्र आनेपर तत्कालीन उपनिवेश-मंत्री लॉर्ड रिपनने कहा था कि "सम्राज्ञीके भारतीय प्रजाजनोंको उपनिवेशोंमें भी वही अधिकार होंगे जो वहाँके उनके अन्य प्रजाजनोंको हैं।" इस प्रकार समय और परिस्थितियोंने मिलकर इस घोषणाको एक पवित्र धरोहर बना दिया है। दूसरे लोग इसके विरुद्ध चाहे जो कहें, भारतीय जनताके लिए तो, चाहे वह कहीं भी जाकर बसे, जबतक ब्रिटिश साम्राज्य कायम है तबतक वह एक अत्यन्त प्रिय निधि बनी रहेगी।

उपर्युक्त घोषणाके कुछ अंश ये हैं:

> हम अपने-आपको अपने भारतीय प्रदेशके निवासियोंके प्रति कर्तव्यके उन्हीं दायित्वोंसे बँधा हुआ समझते हैं, जिनसे हम अपनी दूसरी प्रजाओंके प्रति बँधे हैं। और सर्वशक्तिमान परमात्माकी कृपासे हम उन दायित्वोंका निष्ठापूर्वक और सदसद्विवेक-बुद्धिके साथ निर्वाह करेंगे।
>
> और इसके अतिरिक्त हमारी यह भी इच्छा है कि हमारे प्रजाजन अपनी शिक्षा, योग्यता और ईमानदारीसे हमारी जिन नौकरियोंके कर्तव्य पूर्ण करनेके योग्य हों उनमें उन्हें जाति और धर्मके भेद-भावके बिना मुक्त रूप और निष्पक्ष भावसे सम्मिलित किया जाये।
>
> उनकी समृद्धिमें ही हमारी शक्ति होगी, उनके संतोषमें ही हमारी सुरक्षा होगी और उनकी कृतज्ञतामें ही हमारा सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार होगा। सर्वशक्तिमान प्रभु हमें तथा हमारे मातहत सभी अधिकारियोंको हमारे इन प्रजाजनोंके कल्याणके लिए इन कामनाओंको पूरी तरहसे कार्यान्वित करनेका बल प्रदान करे।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, ९-७-१९०३

# २७१. ट्रान्सवालमें मजदूरोंका प्रश्न

इस अजीब और कठिन प्रश्नमें हस्तक्षेप करनेकी हमारी जरा भी इच्छा नहीं है। इसका हल तो उन्हीं लोगोंको निकालना चाहिए जिनका उससे घनिष्ठ सम्बन्ध है। परन्तु इस दृष्टिसे कि एक बहुत बड़ी हदतक इसका असर सामान्य भारतीय सवालपर और ट्रान्सवालमें अपनी इच्छासे स्वतन्त्र व्यक्तियोंकी हैसियतसे बसे हुए ब्रिटिश भारतीयोंपर पड़ेगा और चूँकि मजदूरोंके सवालकी अक्सर भारतीयोंके सामान्य सवालके साथ खिचड़ी पका दी जाती है, इसलिए अब हम एकदम तटस्थ तमाशबीनोंकी तरह बैठे इसे चुपचाप देखते नहीं रह सकते।

श्वेत-संघ और दूसरे संघोंकी सभाओंके जो विवरण हमने पढ़े हैं, उनमें से हरएक विवरण मजदूरोंके प्रश्नकी चर्चा करते-करते एशियाई-विरोधी कानूनोंकी चर्चामें उतर पड़ता है, मानो एशियावासियोंको गिरमिटिया मजदूरोंकी तरह यहाँ लानेसे इनका, दूरसे दूरका ही क्यों न हो, कोई सम्बन्ध है।

केपकी संसदने अपना दो-टूक मत दे दिया है। उसने एशियाई मजदूरोंको लानेके विरोधमें सर्वसम्मतिसे प्रस्ताव मंजूर कर दिया है और उसे तार द्वारा श्री चेम्बरलेनके पास भेजनेका निर्णय भी कर लिया है। इससे उसकी तीव्र भावना प्रकट होती है। हाइडेलबर्गकी बोअरोंकी महती सभा भी लगभग इसी निर्णयपर पहुँची है। ट्रान्सवालमें जोहानिसबर्गके व्यापारियोंकी हालमें कायम की गई समितिके अध्यक्ष श्री जे० डब्ल्यू० क्विनके हस्ताक्षरोंसे प्रकाशित एक विज्ञप्तिमें भी एशियासे मजदूर लानेकी कोई भी योजना क्यों न हो, उसका दृढ़ विरोध घोषित किया गया है।

जहाँतक भारतीयोंका सवाल है, हमारा खयाल है कि वे भी केपकी संसद, हाइडेलबर्गकी सभा तथा श्री क्विनकी विज्ञप्तिमें की गई माँगसे सहमत होंगे, यद्यपि उनके कारण इनसे शायद भिन्न हों। हम इन स्तम्भोंमें स्वीकार कर चुके हैं कि यहाँ ब्रिटिशोंका वर्चस्व मतभेदसे परे है। दक्षिण आफ्रिका और विशेषतः ट्रान्सवालकी आबहवा गोरोंके प्रवास और निवासके लिए बहुत अच्छी है। इसके अलावा इस देशमें साधन-सम्पत्ति अटूट है और धनहीन अंग्रेजोंके बसने लायक जगहकी इंग्लैंडको आवश्यकता भी है। पूरे प्रश्नपर निष्पक्ष होकर सोचें तो यहाँ एशियावासियोंको सरकारी सहायतासे लानेके विरोधके बारेमें सहानुभूति न होना कठिन है — फिर वे एशियाई चाहे भारतीय हों, चाहे चीनी, चाहे जापानी। श्री क्विनने अपनी विज्ञप्तिमें ठीक ही कहा है कि गिर-मिटिया मजदूरोंकी आजादीपर चाहे कितनी ही बन्दिशें लगाइए, यदि वे स्वतन्त्र व्यक्तियोंकी हैसियतसे अपने अधिकारोंको अमलमें लानेका निश्चय कर लेंगे तो कोई कानून उन्हें एक सीमासे अधिक नहीं रोक सकेगा। इसलिए हमें इस दृष्टिकोणसे सहमत होनेमें कोई हिचकिचाहट नहीं है कि सरकारी सहायतासे एशियावासियोंका ट्रान्सवालमें प्रवास आगे चलकर गोरे निवासियोंके लिए एक बड़ा संकट बन जायेगा। यहाँके लोग धीरे-धीरे एशियाई मजदूरोंका उपयोग कर लेनेके आदी हो जायेंगे और तब ट्रान्सवालके लिए आवश्यक एक ख़ास वर्गके गोरोंको बड़े पैमानेपर यहाँ लाना लगभग असम्भव हो जायेगा। यह इस देशके मूल निवासियोंके साथ भी अन्याय होगा। कहनेमें भले ही यह ठीक हो कि ये लोग काम ही करना नहीं चाहते; इसलिए यदि एशियाई लाये गये तो उनको देखकर इनको भी काम करनेकी प्रेरणा मिलेगी। परन्तु मनुष्य स्वभाव सर्वत्र एक-सा होता है। एक बार एशियाई मजदूर यहाँ ले आये गये तो आफ्रिका-वासियोंको कामके लिए राजी करनेके प्रयत्नोंमें ढिलाई आ जायेगी। आज तो उन्हें, भले ही सौम्यताके

साथ कहिए, काम करनेके लिए मजबूर किया जा सकता है; परन्तु बादमें यह कुछ नहीं होगा। तब यह कहा जायेगा कि यहाँके निवासियोंसे जबरदस्ती नहीं करनी चाहिए। [आफ्रिकावासियोंका जीवन बहुत सादा है। अपनी जरूरतोंके लायक तो उन्हें हमेशा मिल जायेगा। परन्तु इसका परिणाम यह होगा कि उनकी प्रगतिमें एक अनिश्चित कालके लिए भारी रुकावट आ जायेगी। हमने इनके बारेमें सौम्यताके साथ मजबूर करनेकी बात अच्छे अर्थमें ही कही है; हमारा मतलब उस तरह मजबूर करनेका है, जैसे कि माता-पिता अपने बच्चोंको करते हैं।]

परन्तु स्वयं एशियाइयोंका क्या हो? यूरोपीय जातियोंकी तरफसे पेश समूची दलीलका उद्‌गम एक ही दृष्टिकोण है। अगर कहीं गुलामीकी प्रथा पुनः लौटाई जा सकती तो हमें आशंका है, एशियासे मजदूर लानेके विरुद्ध बहुत-सा आन्दोलन शान्त हो जाता। लोग एशियासे मजदूरोंको बुलानेपर राजी हो जाते, अगर उनको पूरी तरह यह भरोसा हो सकता कि ये मजदूर सदा मजदूर ही बने रहेंगे और इकरारनामेकी अवधि समाप्त होते ही उन्हें वापस उनके देश भेज दिया जायेगा। परन्तु भारतीयोंकी दृष्टिसे, और वास्तवमें नैतिक दृष्टिसे, हमें ऐसी साँठ-गाँठको अपवित्र माननेमें कोई संकोच नहीं है। अगर उपनिवेशको एशियाई मजदूरोंकी जरूरत है तो उसे उनको यहाँ लानेका अशेष परिणाम सहना होगा और उन मजदूरोंको साधारण मानवोचित स्वतन्त्रता देनेके लिए तैयार रहना होगा। स्पष्ट है कि ट्रान्सवालमें इसे स्वीकार करनेका प्रश्न ही नहीं है। इसलिए एशियासे यहाँ मजदूरोंका लाना खुद मजदूरोंके लिए अन्यायपूर्ण और मालिकोंको गिरानेवाला होगा। हमने पहले कहा है कि केवल नेटालमें ही नहीं, समस्त दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंके प्रश्नके जटिल बन जानेका मुख्य कारण यहाँ भारतीय मजदूरोंका लाया जाना है। आज भी हमारी वही राय है। और हमारी दृष्टिमें इस प्रश्नको हल करनेका भी एकमात्र उपाय एशियाई मजदूरोंको लानेमें सहायता देना बन्द करके उनके स्थानपर समस्त दक्षिण आफ्रिकामें गोरोंको लानेमें मदद करना है। साथ ही कुछ नियन्त्रणके साथ सब वर्गके लोगोंके लिए भी द्वार खुला रहे। इससे सन्तुलन अपने आप ठीक हो जायेगा। फिर भारतीय व्यापारियोंके या उनके किसी सामान्य उद्यमके प्रति शायद ही कोई विरोध रह जायेगा।

इस तरह हर दृष्टिसे देखनेपर इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जहाँतक मजदूरोंका प्रश्न है, यूरोपीयों और भारतीयोंकी रायमें ऐकमत्य है। हम हृदयसे आशा करते हैं कि एशियासे ट्रान्सवालमें मजदूरोंको लानेका कभी प्रयत्न नहीं किया जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, ९-७-१९०३

# २७२. प्रवासी-प्रतिबन्धक विधेयक

हमने हालके एक अंकमें भारतीय समाजकी ओरसे विधानसभाके नाम श्री अब्दुल कादिर आदिकी एक अर्जी छापी है। उसमें शैक्षणिक कसौटीके लिए मुख्य भारतीय भाषाओंको भी स्वीकार करनेकी उपयोगितापर बहुत जोर दिया गया है। वे भाषाएँ अच्छी विकसित तो हैं ही। उनका साहित्य भी विशाल है और भारतमें सम्राट्के करोड़ों वफादार प्रजाजन उनका व्यवहार करते हैं। जैसा कि अर्जदारोंने कहा है, उन महान भारतीय भाषाओंको मान्यता देनेपर भी ऐसे करोड़ों अपढ़ भारतीय रह जायेंगे जो विधेयकके अनुसार यहाँ बिलकुल प्रवेश नहीं पा सकेंगे। चूँकि बहुत थोड़ा मौका देकर ही वर्तमान प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियमके स्थानपर हुकूमतने एक नया प्रवासी-प्रतिबन्धक विधेयक पेश करनेमें आगा-पीछा नहीं किया है, इसलिए हमारा खयाल है कि भारतीय समाजकी यह छोटी-सी माँग मान लेनेमें कोई खतरा नहीं है; क्योंकि अगर नई कसौटीका अनुमानसे अधिक भारतीयोंको ऐसा लाभ मिलता दिखे कि उपनिवेशियोंमें 'घबराहट' पैदा हो जाये, तो इसपर पुन. विचार किया जा सकता है। परन्तु हमें तो निश्चय है कि इसकी जरा भी जरूरत नहीं होगी। हाँ, उपनिवेशवासी भारतीयोंके स्वतंत्र प्रवेशको पूरी तरह रोक देना चाहते हों तो बात दूसरी है।

अर्जीमें कुछ और बातें भी कही गई हैं। वे भी हुकूमतके ध्यान देने योग्य हैं। अगर हुकूमतकी नीति दक्षिण आफ्रिकाके प्रवासियों-सम्बन्धी कानूनको ग्रहण कर लेनेकी है तो, जैसा कि अर्जदारोंने चाहा है, केवल नेटालमें ही नहीं, समस्त दक्षिण आफ्रिकामें बसे भारतीयोंको अधिवासका विशेषाधिकार दिया जाये। एक ही झंडेके नीचे रहनेवालोंके बीच एकता बढ़ानेकी खातिर हुकूमतको कुछ-न-कुछ तो मानना ही चाहिए। अगर दक्षिण आफ्रिकामें विदेशी राज्य होते तो बात अलग थी। परन्तु चूँकि उसके सारे राज्य अब ब्रिटिश उपनिवेश बन गये हैं, यहाँ भेदभाव बरतनेसे मनोमालिन्य पैदा हो सकता है। हमारा मत है कि दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश उपनिवेशोंमें समस्त प्रजाजनोंको हर जगह आने-जानेकी पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। उपनिवेशके राजनीतिज्ञोंने ऐसे भाव कई बार प्रकट भी किये हैं। नेटालके विधेयकको केपके कानूनके स्तरपर लानेके लिए यह अवसर अत्यन्त उपयुक्त है।

निवासकी अवधि दो वर्षसे बढ़ाकर विधेयकमें तीन वर्ष कर देना बेशक शिकायतका सबब है। अर्जदारोंने इसका विरोध करके ठीक ही किया है। हमारा खयाल है कि पुराने निवासी होनेके लिए मनमाने ढंगपर दो वर्षका समय निश्चित करना भी अन्यायपूर्ण समझा गया था। परन्तु दो वर्षसे तीन करनेके कारण तो उन सैकड़ों भारतीयोंके लिए उपनिवेशके दरवाजे बन्द ही हो जायेंगे, जिन्होंने नेटालको लगभग अपना घर बना लिया है और जो अपनी आजीविकाके लिए उसीपर निर्भर हैं।

इसलिए हम आशा करते हैं कि अर्जदारोंकी इन वाजिब माँगोंपर हुकूमत विचार करेगी और उक्त रियायतें दे देगी। हमें कोई सन्देह नहीं है कि भारतीय समाज इसकी बहुत कद्र करेगा। इस प्रसंगपर हम माननीय सर जॉन रॉबिन्सनके उस ओजस्वी भाषणका उल्लेख करना चाहते हैं जो उन्होंने मताधिकार-सम्बन्धी विधेयक प्रस्तुत करते समय दिया था। वे उस समय इस उपनिवेशके प्रधानमंत्री थे। उस भाषणमें उन्होंने कहा था कि भारतीयोंके मताधिकारको छीनकर सदन एक गंभीर जिम्मेदारी अपने सरपर ले रहा है। भारतीयोंको मताधिकारसे वंचित

करके उनका प्रतिनिधित्व करनेकी जिम्मेदारी इस सदनके प्रत्येक माननीय सदस्यपर अपने आप आ जाती है; अर्थात् प्रत्येक सदस्यको यह ध्यान रखना होगा कि भारतीयोंके साथ कहीं भी अन्याय न होने पाये और जहाँतक सम्भव हो, उनकी भावनाओंका पूरा आदर होता रहे। प्रवासी-कानूनपर जो विचार हो रहा है उसके परिणामकी प्रतीक्षा हम बहुत उत्सुकताके साथ करेंगे। क्या सर जॉनके वचनोंपर विधानसभा अमल करेगी? हम आशा तो करें।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन,* ९-७-१९०३

## २७३. प्लेग

डर्बन प्लेगसे मुक्त घोषित कर दिया गया, यह बधाईकी बात है। इस उपनिवेशसे ट्रान्सवाल जानेवाले भारतीयोंपर प्लेगके दिनोंमें जो बहुत कड़ी रोक लगा दी गई थी, उसकी चर्चा हम इन स्तम्भोंमें कर चुके हैं। हमें ज्ञात हुआ है कि यह रोक अभीतक कायम है। इसका कारण समझना सचमुच बहुत कठिन है। हमारा मत बराबर यह रहा है कि यह रोगकी रोक-थाम कम, राजनीतिक चाल अधिक थी; और अब, उपनिवेशके प्लेगसे बिलकुल मुक्त घोषित कर दिये जानेपर भी, यदि रुकावट नहीं हटाई जाती तो इसे सर्वथा अनुचित — केवल एक जबरदस्त अन्याय — कहना पड़ेगा। हम जानते हैं कि सैकड़ों शरणार्थी यह राह देख रहे हैं कि कब रोक उठे और कब वे ट्रान्सवालमें लौटकर अपने अपने रोजगारको सँभाल लें। स्मरण रहे कि लड़ाईके दिनोंमें जब शरणार्थियोंको सरकारकी तरफसे राहत दी जा रही थी, भारतीय शरणार्थियोंका सारा खर्च भारतीय समाजने अपने ऊपर ले लिया था। इनमें से कुछ शरणार्थी अभी डर्बनमें ही हैं और यद्यपि अब उनका खर्च समाज अपने सार्वजनिक कोशसे नहीं दे रहा है तथापि इनके निवास और भोजनकी व्यवस्था मित्रों और रिश्तेदारोंकी मददसे ही की जा रही है। हम ट्रान्सवालके अधिकारियोंसे अनुरोध करना चाहते हैं कि वे रुकावटको हटाकर इनके कष्टोंको दूर करें और ट्रान्सवालमें इनके लौट जानेके लिए आवश्यक सुविधाएँ कर देनेकी कृपा करें।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन,* ९-७-१९०३

## २७४. खास वकालत

एशियाइयोंको अलग बसानेका प्रस्ताव करनेवाली 'मेयरकी तजवीज'[1] अबतक काफी मशहूर हो चुकी है। हमारे सहयोगी *नेटाल ऐडवर्टाइज़र*ने उसकी हिमायतमें कुछ खास वकालत की है। "हिफाजत लोगोंका सबसे बड़ा कायदा" (सेलस पापुली सुप्रीमा लेक्स) इस कहावतको उसने पृथक्करणका आधार बनाना चाहा है। मगर हमें "लोगो" (पापुली) के पहले "यूरोपीय" (यूरोपियनी) नहीं दिखता। इसलिए हम सोचते हैं कि आखिरकार भारतीय भी चूँकि आदमी है, वह भी "लोगों" के दायरेमें आता है। अगर ऐसा है तो फिर सब लोगोंकी हिफाजतका सबसे बड़ा कायदा कौनसा है? निस्सन्देह वह कायदा उनमें से कुछको पतित करके भेड़-बकरियोंकी तरह बहिष्कृत बस्तियों या पशुओंके बाड़ोंमें ढकेल देना नहीं है। हमारा सहयोगी आगे लिखता है: "अनुभव बतलाता है कि इन दोनों जातियोंका बेरोकटोक मिश्रण यूरोपीय लोगोंकी बड़ीसे-बड़ी भलाईका कारण नहीं बनता।" मगर अपनी इस बातको साबित करनेवाला एक भी तथ्य हमारे सहयोगीने नहीं दिया। तथ्य यह है कि भारतीयोंने नेटालको दक्षिण आफ्रिकाका उद्यान बना दिया है। उन्हें सरकारी तौरपर "शराबसे परहेज करनेवाले, उपयोगी और कानूनका पालन करनेवाले नागरिक" बताया गया है। ऐसे लोग जहाँ बसते है उस मुल्कको अगर नुकसान पहुँचाते है तो यह आश्चर्यकी बात है। हमारे सहयोगीने "मिश्रण" शब्दका प्रयोग किया है। सच तो यह है कि रोजगारको छोड़कर और किन्ही बातोंमें इन दोनों कौमोंका मिश्रण होता ही नहीं है। और हमें भरोसा है कि भारतीय चाहे अलग बसाये जायें चाहे नहीं, यह मिश्रण तबतक चलता रहेगा जबतक हमारे यूरोपीय मित्र उनके साथ रोजगार करना चाहते है, या उनकी सेवाओंका फायदा उठाना चाहते है। रोजगारके सिलसिलेमें मिश्रणकी बातको छोड़ दें तो फिर भारतीय बस्ती इस समय जबरदस्ती न सही, प्रायः खास हिस्सोंमें होती है। उपनिवेशमें सबसे बड़े अंग्रेज है और रहेंगे। हम यह नहीं कहते कि वे अपनी भलाईका सारा खयाल छोड़कर हमारे लिए जियें-मरें। मगर हमारी उनसे इतनी विनती जरूर है कि वे अपने बड़प्पनका उपयोग हमारे साथ अन्याय करने, हमें गिराने या हमारा अपमान करनेमें न करें। "नपा-तुला हक, दया नहीं"—यह भारतीयोंकी सही और उचित माँग है। हमारा सहयोगी बेशक एक करिश्मा कर दिखाता है, जब कि वह भारतीयोंकी आम सभामें दिये गये भाषणोंमें कोई भी ऐसी चीज देखनेसे इनकार करता है जो उसे कायल कर सके कि "मेयरके प्रस्तावोंको कार्यान्वित करनेसे कोई बुनियादी अन्याय होगा।" अस्तु, जो आदमी मानना नहीं चाहता उससे कुछ मनवाया नहीं जा सकता, नहीं तो हम अपने सहयोगीसे पूछते कि क्या निरपराध लोगोंके किसी समूहकी व्यक्तिगत आजादीपर पाबन्दी लगाना अन्याय नहीं है—अन्याय शब्दका ब्रिटिश संविधानमें जो अर्थ है उसके मुताबिक? हमारे सहयोगीको दुःख है कि उपनिवेशमें भारतीयोंकी तादाद यूरोपीयोंके बराबर है। हम उसे याद दिलाना चाहते है कि ५०,००० भारतीयोंमें से लगभग आधे तो अपने गिरमिटोंकी मियाद काट रहे है और, इसलिए, बहसकी हदतक, उन्हें इस तुलनामें शामिल नहीं करना चाहिए। फिर भी, तथ्य तो यह है—भारतीय मजदूरोंका आयात बन्द कीजिए, और समस्या सुलझी-सुलझाई है।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, ९-७-१९०३

१. देखिए, "मेयर की तजवीज," जून ४, १९०३।

## २७५. प्रार्थना-पत्र : नेटाल विधानपरिषदको

डर्बन
जुलाई ११, १९०३

सेवामें
माननीय अध्यक्ष तथा सदस्यगण
विधानपरिषद, नेटाल

नेटाल उपनिवेशवासी ब्रिटिश भारतीयोंके निम्न
हस्ताक्षरकर्ता प्रतिनिधियोंका प्रार्थनापत्र

नम्र निवेदन है कि,

आपके प्रार्थी प्रवासियोंपर और कठिन प्रतिबन्ध लगानेवाले विधेयकके सिलसिलेमें विनयपूर्वक इस माननीय सदनके सामने उपस्थित हो रहे हैं। उक्त विधेयक माननीय सदनके विचाराधीन है।

अब्दुल कादिर और दूसरे एक सौ छियालीस व्यक्तियोंके हस्ताक्षरोंसे जो प्रार्थनापत्र नेटालमें रहनेवाले ब्रिटिश भारतीयोंकी ओरसे माननीया विधानपरिषदको दिया गया था, प्रार्थीगण उसकी एक प्रति सेवामें पेश करते हैं। प्रार्थनापत्र इस तरह है[1] :

प्रार्थियोंको आशा है कि सदन प्रार्थनापत्रमें दिये गये सुझावोंपर अनुकूल विचार करेगा। न्याय और दयाके इस कार्यके लिए प्रार्थी, कर्तव्य समझकर, सदा दुआ करेंगे।

(हस्ताक्षर) डी० एम० मताला
और उन्तीस अन्य

[अंग्रेजीसे]

कॉलोनियल ऑफ़िस रेकर्ड्स: मेमोरियल्स ऐंड पिटिशन्स, १९०३; सी० ओ० १८१, जिल्द ५३, वोटस ऐंड प्रोसीडिंग्ज़ ऑफ़ द नेटाल पार्लमेंट।

## २७६. ऑरेंज रिवर उपनिवेश

[महमूद गजनवीने जब भारतके कुछ भागोंको जीत लिया उसके कुछ समय बाद उसके भारतीय राज्यकी एक गरीब विधवा, जिसे उसके सरदारोंसे न्याय नहीं मिल सका था, पैदल चलकर गजनी पहुँची और उसने बादशाहके सामने अपनी शिकायतोंको रखा। कहा जाता है, महमूदने जवाब दिया कि मैं तेरे लिए कुछ नहीं कर सकता, क्योंकि मेरे राज्यके प्रदेश राजधानीसे बहुत दूर हैं। विधवाने तुरन्त ही जवाब दिया: "हुजूर, अगर आप भारतमें रहनेवाले अपने प्रजाजनोंकी रक्षा नहीं कर सकते तो वहाँ आपको राज करनेका कोई हक नहीं है।" कहानी पुरानी और प्रसिद्ध है, और एक शिक्षा देती है, जो आजकी परिस्थितिमें दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीयोंके लिए बड़ा महत्त्व रखती है। आज उनकी हालत उसी गरीब विधवाके समान है, और वे सम्राट्से वही शिकायतें कर सकते हैं। हम जानते हैं, उन्हें बादशाहसे वह जवाब नहीं मिलेगा, जो महमूदने उस विधवाको दिया था। फिर भी, अबतक वह निराशाजनक

१. यहाँ अर्जदारोंने जून २३ का प्रार्थनापत्र उद्धृत किया था; देखिए प्रवासी-विधेयक, जून २५, १९०३।

ही रहा है। सैकड़ों वर्षोंसे ब्रिटेनने जिन सिद्धान्तोंको बहुमूल्य समझा और उनकी रक्षा की, उन्हें यदि ट्रान्सवाल और ऑरेंज रिवर उपनिवेशमें इसी तरह पैरों तले रौंदने दिया गया तो ऐसा लगता है कि इन उपनिवेशोंको अपना अंग बनाना साम्राज्यके लिए बहुत महँगा पड़ेगा। हमारी रायमें अगर इस नीतिको जाति और रंग-सम्बन्धी भेद-भाव तथा राग-द्वेषकी नीतिके सामने सर झुकाना पड़े, तो युद्धमें दक्षिण आफ्रिकाकी भूमिपर जो असीम धन बरबाद हुआ और खूनकी नदियाँ बहीं वह सब बेकार ही सिद्ध होगा। और फिर भी जब हम इस स्थितिको देखते हैं तब कमसे-कम भारतीय दृष्टिसे तो यही मत दिखलाई पड़ता है। और भारतीय मत, भले ही वह अच्छा समझा जाये या बुरा, सम्राट्के करोड़ों प्रजाजनोंका मत है।

ये विचार ऑरेंज रिवर उपनिवेशका ३ जुलाईका *सरकारी गज़ट* पढ़नेसे उठते हैं। पीटर्स-बर्गकी नगरपालिकाने वहाँके वतनियोंके लिए जो नियम बनाये हैं वे इस गज़टके पृष्ठ १४६९ पर हमने पढ़े। माननीय स्थानापन्न लेफ्टिनेंट गवर्नर तथा उनकी कार्यकारिणीने इन्हें मंजूरी दे दी है। इनके शीर्षक देखकर शायद किसीको खयाल हो सकता है कि ये दूसरी रंगदार जातियोंपर लागू नहीं होंगे। परन्तु इन नियमोंकी २१ धाराओंको पढ़नेपर पता चल जाता है कि ये सभी रंगदार मनुष्योंपर लागू होंगे। अभी तो भारतीयोंका इन नियमोंमें दिलचस्पी लेना व्यवहारकी अपेक्षा सैद्धान्तिक महत्त्व अधिक रखता है, क्योंकि अभी इस उपनिवेशमें भारतीयोंकी आबादी नगण्य है। परन्तु हमें आशा है कि बहुत जल्दी इस उपनिवेशके द्वार, भले ही कम संख्याके लिए हो, सम्मानित भारतीयोंके लिए खुल जायेंगे। तब इन नियमोंसे उनका सामना होगा और इनका उनपर वही घातक प्रभाव होगा जो ईस्ट लंदनकी नगरपालिका द्वारा बनाये गये नियमोंका वहाँकी भारतीय आबादीपर होता रहा है और जिसका जिक्र इन स्तम्भोंमें हम पहले कर चुके हैं।

ये नियम तमाम रंगदार लोगोंको निश्चित बस्तियोंमें ही रहनेको विवश करते हैं। नगर-पालिका "रंगदार जातियोंके तमाम निवासियोंकी फेहरिस्त रखेगी जिसके अन्दर प्रत्येक मनुष्यका नाम, पेशा, पशुओंका ब्यौरा, और उनके मालिकोंके नाम लिखे होंगे।" उन्हें नगर-कारकुन (टाउन क्लार्क) से पास लेने होंगे और उनके लिए सालाना १ शिलिंगका शुल्क देना होगा। बाहरसे आनेवाले तमाम रंगदार लोगोंको अड़तालीस घण्टेके अन्दर अपने नाम पंजीकृत (रजिस्टर) करा लेने होंगे। नौ बजे रातके बाद वे नगरमें घूम फिर नहीं सकेंगे। नगर-पालिका जिसे चाहेगी, पशु रखनेकी इजाजत देगी और जिसे न चाहेगी, नहीं देगी। इजा-जतके बगैर जो पशु रखेगा उसे प्रत्येक बड़े पशुके लिए ३ शिलिंग और प्रत्येक छोटे पशुके लिए ६ पेंस जुर्माना देना होगा। अगर कोई मेहमान आये तो नगर-कारकुनके दफ्तरमें इसकी सूचना तुरन्त जानी चाहिए। वे कुत्ते नहीं पाल सकते। नगरपालिकाकी इजाजतके बगैर बस्तीमें कोई स्कूल नहीं लगेगा और न सार्वजनिक सभाएँ होंगी।

यह सूची अभी पूरी नहीं हुई। परन्तु नगर-परिषदोंको रंगदार जातियोंपर नियन्त्रण रखने और उनकी व्यवस्थाके बारेमें जिस प्रकारकी सत्ता दे दी गई है उसका यह अच्छा-खासा नमूना है। रंगदार जातियोंमें भारतीयों आदिकी भी गिनती करनेमें यदि हम भूल कर रहे हों तो हमें उसके सुधार दिये जानेसे बड़ी प्रसन्नता होगी। परन्तु नियमोंको देखनेपर उनके इस अर्थको समझनेमें बिलकुल ही गलती नहीं जान पड़ती।

सर मंचरजी भावनगरी और सर रेमंड वेस्ट जिन्होंने पूर्व भारत-संघ (ईस्ट इंडिया असोसिएशन) के तत्वावधानमें हालमें ही हुई सभामें भाषण दिये थे, उन विनियमोंके, जिनका इस लेखमें जिक्र किया गया और उन सुझावोंके बारेमें, जो भारतीयोंकी बेड़ियोंको अधिकाधिक

भारी बनानेके लिए समय-समयपर पेश किये जा रहे हैं, भले ही निराशाके भाव प्रकट कर सकते हैं।

परम माननीय श्री जोजेफ़ चेम्बरलेन दक्षिण आफ्रिकामें शान्ति-स्थापकके रूपमें पधारे थे। उनसे भारतीयोंके अनेक शिष्ट-मण्डल मिले थे। प्रत्येक शिष्ट-मण्डलको उन्होंने आश्वासन दिया था कि ब्रिटिश भारतीय न्याय और सम्मानयुक्त व्यवहारके अधिकारी हैं। हमारा निवेदन है कि वे इन नियमोंपर गौर फरमायें। भारतीय खलासियोंको काम देनेके बारेमें उन्होंने आस्ट्रेलियाई राष्ट्र परिवारको एक खरीता भेजा था। इस खरीतेके लेखकके नाते भी हमारी उनसे विनती है। लॉर्ड जॉर्ज हैमिल्टनने अनेक बार दक्षिण आफ्रिकामें बसे हुए भारतीयोके प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की है। उनसे भी हमारी अपील है। हम लॉर्ड मिलनरसे भी अपील करते हैं कि वे हमारी रक्षाके लिए आयें। वे दक्षिण आफ्रिकाके उच्चायुक्त हैं। इस हैसियतसे, हम मानते हैं, उनका यह कर्तव्य है कि, वे साम्राज्यकी व्यापक नीतिकी रक्षा करें और जहाँतक दक्षिण आफ्रिकासे सम्बन्ध है, इस बातकी सावधानी रखें कि यहाँ भी उसका बराबर पालन हो; और जैसा कि उन्होंने खुद भारतीय शिष्ट-मण्डलसे कहा था, इस मुश्किल प्रश्नको न्याय और औचित्यके आधारपर ,हमेशाके लिए हल कर दें।

ये विनियम भारतीय समाजको एक और विचार देते हैं कि, ब्रिटिश साम्राज्यमें जो प्रजाजन अपने अधिकारोंकी रक्षाके लिए सतत सावधान नही रहेंगे वे अनेक प्रकारकी पेचीदा माँगोंके बीचमें पिस जा सकते हैं। इसलिए ब्रिटिश भारतीयोंके लिए अत्यन्त आवश्यक है कि वे सदा सावधान रहें, और जब कभी उनके अधिकारोंको कम करनेके प्रयत्न हों तब जो भी अधिकारी हों उनके समक्ष अपना विनम्र विरोध तो कमसे-कम प्रकट कर ही दिया करें। उनका काम माँगना है। इस बातकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए कि उनकी माँगें मंजूर होती हैं या नहीं। माँग पेश करनेसे ही कर्तव्य पूरा हो जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन,* १६–७–१९०३

## २७७. मजदूर आयातक संघ

हम अन्यत्र मजदूर आयातक संघ (लेबर इंपोर्टेशन असोसिएशन) की विज्ञप्ति दे रहे हैं। इसपर श्री जी० एच० गॉश, जे० डब्ल्यू० लिओनार्ड के० सी० और ट्रान्सवालके कुछ अन्य विचार-नेताओंके दस्तखत हैं। श्री क्विनकी विज्ञप्तिसे लगी-लगाई यह विज्ञप्ति निकली है। अगर हमसे कोई पूछे कि इन दोमें से आप किसे चुनेंगे, तो बिना पसोपेशके हम अपनी राय श्री क्विनकी विज्ञप्तिके पक्षमें देंगे। श्री गॉश जैसे विस्तृत सहानुभूति रखनेवाले और श्री लिओनार्ड जैसे संस्कारशील तथा मानव-प्रकृतिका व्यापक अनुभव रखनेवाले सज्जनोंके दस्तखतोंको उस विज्ञप्तिके नीचे देखकर सचमुच बड़ा दुःख होता है, जिसमें एक बदले हुए रूपमें गुलामीका समर्थन किया गया है और बेचारे गिरमिटिया मजदूरोंके पक्षमें एक भी शब्द नहीं है।

यह विज्ञप्ति भारतीयोंके लिए दिलचस्पीका विषय है; क्योंकि लॉर्ड मिलनर भारतसे मजदूर लानेकी इजाजत पानेके लिए उपनिवेश-मंत्री तथा भारत-मंत्रीके कार्यालयोंसे पत्र-व्यवहार कर रहे हैं। यह तो स्पष्ट है कि संघने आफ्रिकाके बाहरसे मजदूर लानेकी जो शर्तें निर्धारित की हैं, वे भारतीय मजदूरोंके लाये जानेपर भी लागू होंगी। अब अगर हम गुलामीका ठीक

अर्थ समझते हैं तो उसमें एक मनुष्य दूसरे मनुष्यको अपनी सेवाएँ जीवन-भरके लिए इस तरह बेच देता है कि उससे कभी उसे छुटकारा नहीं मिल सकता और जिससे छुटकारेकी थोड़ी-सी भी कोशिश कारावासके योग्य अपराध होता है। अगर गुलामीका यही सही अर्थ है, तो श्री गॉशके साथी जो चाहते हैं वह एक निश्चित अवधिकी गुलामीके अलावा और कुछ नहीं है, क्योंकि वे चाहते हैं कि एक मजदूर पाँच सालके लिए अपनी सेवाएँ बेच दे, वह केवल एक सादे मजदूरका काम करे और "हर मालिक मजदूरोंको अपने देश वापस भेजनेकी सरकारके सन्तोषके योग्य गारंटी दे," मजदूर निश्चित अहातेके अन्दर ही रखा जाये और इस शर्त-बन्दीके कानूनको भंग करनेकी सजा कड़ी हो।

अगर यह अस्थायी गुलामी नहीं है, तो हम जानना चाहते हैं कि फिर गुलामी क्या है? नौकरीके मामूली इकरारनामे और इस शर्तनामेके बीच फर्क यह है कि मामूली इकरारनामेके अनुसार अगर मनुष्य नौकरी छोड़ना चाहे, तो हरजानेकी रकम अदा करके छुट्टी पा सकता है और नौकरीमें टाल-मटोल कोई कानूनी गुनाह नहीं मानी जाती। किन्तु इनके बताये शर्तनामेमें एक बार बँध जानेके बाद मजदूर बीचमें छूट ही नहीं सकता और शर्तका जरा भी भंग हुआ, तो वह कानूनी अपराध बन जाता है। इसलिए प्रश्न बिलकुल साफ है। क्या ट्रान्सवालकी साधन-सम्पत्तिका विकास करनेके लिए भारत या दूसरे देशोंके श्रमका शोषण किया जायेगा, और जिनके श्रमसे लाभ उठाया जाये उनके अधिकारोंको माने बिना? मजदूरी कितनी भी हो और मजदूर उसे लाचारीमें स्वीकार भी क्यों न कर ले, हमारी समझमें वह मजदूरके लिए बाजार-दरपर अपनी सेवाएँ बेच देनेका, या गिरमिटकी अवधिमें उसे जो नुकसान हुआ हो, बादमें उसकी पूर्ति करनेका सन्तोषजनक मुआवजा नहीं हो सकता। स्वर्गीय श्री विलियम विल्सन हंटरने ऐसी पद्धतिको "भयंकर रूपमें गुलामीकी-सी पद्धति" कहा था। नेटालमें जब ऐसा ही प्रस्ताव हुआ था, तब परम माननीय हैरी एस्कम्बने जो राय दी उसे हम यहाँ उद्धृत करते हैं। कुछ वर्ष पहले इस सिलसिलेमें जो आयोग नियुक्त किया गया था, उसके सामने उन्होंने ये शब्द कहे थे:

> एक आदमी यहाँ लाया जाता है। सिद्धान्ततः रजामंदीसे, व्यवहारतः बहुधा बिना रजामंदीके लाया जाता है। वह अपने जीवनके सर्वश्रेष्ठ पाँच वर्ष यहाँ खपा देता है। नये सम्बन्ध स्थापित करता है। शायद पुराने सम्बन्धोंको भुला देता है। यहाँ अपना घर बसा लेता है। ऐसी हालत में मेरे न्याय और अन्यायके विचारसे, उसे वापिस नहीं भेजा जा सकता। भारतीयोंसे जो-कुछ काम आप ले सकते हैं वह लेकर उन्हें चले जानेका आदेश दें, इससे तो यह कहीं अच्छा होगा कि आप उनको यहाँ लाना ही बिलकुल बन्द कर दें। ऐसा दीखता है कि उपनिवेश या उपनिवेशका एक भाग भारतीयोंको बुलाना तो चाहता है, परन्तु उनके आगमनके परिणामोंसे बचना चाहता है। जहाँतक मैं जानता हूँ, भारतीय हानि पहुँचानेवाले लोग नहीं हैं। कुछ बातों में तो वे बहुत परोपकारी हैं। फिर, ऐसा कोई कारण तो मेरे सुननेमें कभी नहीं आया, जिससे किसी व्यक्तिको पाँच वर्ष तक चाल-चलन अच्छा रखनेपर भी देश-निकाला दे दिया जाये, और इस कार्यको उचित ठहराया जा सके। मैं नहीं समझता कि किसी भारतीयको, उसकी पाँच वर्षकी सेवा समाप्त होनेपर पुलिसकी निगरानी में रखना चाहिए।

हम आशा करते हैं कि ट्रान्सवालके इन उपनिवेशियोंको उनकी इच्छाके विरुद्ध भी, इस अन्यायभरी तथा ईसाईजनों और ब्रिटिशोंके लिए अशोभनीय वृत्तिसे बचाया जायेगा। स्वार्थवश आज उन्हें कुछ सूझ नहीं रहा है।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, १६-७-१९०३

## २७८. मेयरोंका शिष्टमण्डल : सर पीटर फॉरकी सेवामें

[यह शुभ लक्षण है कि, कमसे-कम केपमें, सर पीटर फॉर अपने-आपको वर्तमान दुर्भावसे मुक्त रखकर तथ्योंको उनके असली रूपमें देख पाये।

केपकी विभिन्न नगरपालिकाओंके शिष्ट-मण्डलसे उन्होंने कहा कि भारतीयोंको अलग बसानेके बारेमें आये हुए प्रस्तावोंके अनुसार नया विधेयक पेश करनेकी मुझे तो कोई जरूरत नहीं मालूम होती। उन्होंने एशियाइयोंकी बाढ़के भयको भी दूर कर दिया, क्योंकि उन्होंने बिलकुल स्पष्ट कर दिया कि प्रवासी अधिनियम (इमिग्रेशन ऐक्ट) बहुत अच्छी तरहसे चल रहा है और उपनिवेशमें कोई भीड़ नहीं है।

हमारे विधान-मंडलके सदस्योंको भी इस प्रश्नपर अच्छी तरहसे विचार कर लेना चाहिए। जैसा कि हम पहले ही बता चुके हैं, नेटालमें नगर-परिषदोंको बहुत अधिक सत्ता दे दी गई है; और अगर किसी कानूनमें सुधारकी जरूरत है तो वह है परवाना-अधिनियम। इन स्तम्भोंमें हम यह भी बता चुके हैं कि प्रवासी-अधिनियमको ध्यानमें रखते हुए इस उपनिवेशमें बहुत अधिक संख्यामें एशियाइयोंके आनेका कोई भय नहीं है। ऐसी सूरतमें एशियाइयोंको अलग बसनेके लिए मजबूर करना हमें एकदम अनावश्यक मालूम होता है। अगर उपनिवेशी तथ्योंको देखनेका कष्ट करें तो वे पायेंगे कि एशियाइयोंके बसनेके कारण अनेक शहरोंमें समाजके स्वास्थ्यको जो खतरा बताया जाता है वह केवल उन लोगोंके दिमागोंमें ही है जो वस्तुस्थितिको नहीं देखना चाहते। जोहानिसबर्गमें अस्वच्छ क्षेत्र आयोग (इनसैनिटरी एरिया कमिशन) के सामने डॉ० जॉन्स्टनने जो बयान दिया था उसकी हमें इस सिलसिलेमें याद आ रही है। स्वास्थ्य-सफाईके विषयमें डॉ० जॉन्स्टन एक विशेषज्ञ हैं। दक्षिण आफ्रिकाकी आबहवाके बारेमें भी उनका अनुभव बहुत व्यापक है। उन्होंने अपना मत व्यक्त करते हुए बड़े जोरके साथ कहा था कि जहाँतक सफाईसे सम्बन्ध है जोहानिसबर्गके भारतीयनिवासियोंके खिलाफ मैंने कुछ भी नहीं पाया। सफाईकी दृष्टिसे उन्हें अलग बसानेके सिद्धान्तका तो मैं समर्थन कर ही नहीं सकता।

इसलिए हम आशा करते हैं कि अब समस्त दक्षिण आफ्रिकामें हमें *बाजारों*की बात सुनाई नहीं देगी। क्योंकि ट्रान्सवालके विषयमें भी शिष्ट-मण्डलको लॉर्ड मिलनरका आश्वासन मिल चुका है कि वर्तमान कानूनके स्थानपर ब्रिटिश विचारोंसे अधिक सुसंगत नया कानून बनाया जायेगा।[1]]

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, १६-७-१९०३

१. देखिए पृष्ठ ३२७-२८, ३३०।

## २७९. केपमें भारतीय 'बाजार'की तजवीज

केपटाउनके नगर-निगम (कारपोरेशन) के गैर-सरकारी विधेयककी उस उपधाराकी नकल अब हम पाठकोंतक पहुँचा पा रहे हैं, जिसे वह केपकी संसदमें मंजूर कराना चाहता है। उपधारामें कारपोरेशनके लिए यह सत्ता माँगी गई है कि वह भारतीयों अथवा एशियाइयोंके लिए शहरकी सीमाके अन्दर या बाहर *बाजार* या बस्तियाँ बनाये, रखे तथा नियन्त्रित करे और *यदि शहरके स्वास्थ्य-अधिकारी उनकी आदतों, रहन-सहन अथवा आबादीके घनेपनके कारण उनका सर्व-साधारणके साथ रहना जन-साधारणके स्वास्थ्यके लिए हानिकर बतायें* तो कारपोरेशन उनको इन बस्तियोंमें चले जानेके लिए मजबूर करे और इन बस्तियों या *बाजारों*में जगहके उपयोगके लिए उनसे किराया वसूल करे।

तिरछे अक्षरोंमें दिया हुआ भाग उपधाराके विरोधमें पेश की गई दलीलोंको काटनेके खयालसे परिषदके सलाहकारोंने संशोधनके रूपमें बादमें जोड़ा है।

प्रस्तावित संशोधनमें यद्यपि भारतीयोंकी रायका आदर करनेकी इच्छा प्रकट होती है, तथापि वह जरूरतोंकी पूर्ति नहीं करता। निःसन्देह उसका मसविदा अत्यन्त चतुराईके साथ बनाया गया है। परन्तु उससे किसीको धोखा नहीं हो सकता। क्योंकि अगर उन लोगोंके रहन-सहनमें कोई आपत्तिजनक बात दिखाई देती है, या ऐसा लगता है कि बस्ती अधिक घनी हो गई है तो इसका उपाय यह नहीं है कि उनको वहाँसे हटाकर अलग बसनेके लिए मजबूर किया जाये और उनकी आदतें वैसी ही बनी रहने दी जायें। उपाय यह है कि उनपर अधिक ध्यान देकर उनकी वे आदतें दूर करनेका यत्न किया जाये और सफाईके नियमोंका उल्लंघन करनेपर जहाँ जरूरत समझी जाये लोगोंको सजा दी जाये। संशोधनके सिवा आश्चर्य और ध्यान देने योग्य बात यह है कि ब्रिटिश भारतीयोंकी आजादी छीननेके सम्बन्धमें जितने भी प्रस्ताव सामने आते हैं, पहलेसे दूसरा "एक कदम आगे" होता है। सबसे पहला प्रसिद्ध *बाजार*-प्रस्ताव[1] ट्रान्सवालमें आया। उसमें बस्तियाँ शहरकी सीमाके अन्दर ही बनानेका जिक्र है। केपकी नगर-परिषदका प्रस्ताव उससे बढ़कर है। वह शहरकी सीमाके अन्दर या बाहर बस्ती बनानेका अधिकार चाहता है। किन्तु सर पीटर फॉरने मेयरोंके शिष्ट-मण्डलको जो जवाब दिया है उससे तो ऐसा लगता है कि केपकी हदतक अब *बाजारों*की बात खत्म हो गई। फिर भी अपने केप-निवासी देशभाइयोंको हम चेतावनी दे देना चाहते हैं कि वे सचेत रहें और आबादीके घनेपन या सफाईके बारेमें शिकायतके लिए रत्तीभर भी मौका न दें। चूँकि ब्रिटिश भारतीयोंके प्रत्येक कार्यको बहुत ही सतर्कतासे देखा जा रहा है यह उनका पहला कर्तव्य है कि वे कहीं भी किसीको विरोधका मौका न दें।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, १६-७-१९०३

१. देखिए, "दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय," अप्रैल १२, १९०३ का सहपत्र।

## २८०. शाबाश

सहयोगी स्टारके विशेष संवाददाता द्वारा बॉक्सबर्गसे भेजे हुए एक समाचारसे जाहिर होता है कि बॉक्सबर्गके स्वास्थ्य-निकाय (हेल्थ बोर्ड) के अनुचित रुखके खिलाफ ट्रान्सवालके सहायक उपनिवेश-सचिव श्री मूअरने अपने रक्षितोंकी हिमायत कितनी उदात्तताके साथ की है। श्री मूअरके इस कार्यपर हम उन्हें बधाई देते है। श्री मूअरको बधाई देनेका विशेष कारण इसलिए है कि इधर एक अरसेसे हमारे देशभाइयोंको अधिकारियोंकी तरफसे संरक्षणकी बड़ी कमी हो गई है। अन्यथा, श्री मूअरने ऐसी कोई असाधारण बात नही की है। पुरानी गण-राज्य सरकार भी इन परिस्थितियोंमें यही करती। हमें मालूम हुआ है कि बॉक्सबर्गकी भारतीय बस्ती शहरसे काफी दूर है। परन्तु बॉक्सबर्गके स्वास्थ्य-निकायको यह अनुकूल नहीं पड़ता कि भारतीय अपने रहनेके बारेमें किसी तरहकी निश्चिन्तताका अनुभव करें या वर्षों एक जगह रहकर अपने प्रति सद्भावका कोई वातावरण बना लें। स्मरण रहे, भारतीय बस्तीकी वर्तमान जगहका चुनाव पुरानी हुकूमतने किसी उदार आशयसे नही किया था। परिस्थितियोंकी प्रबलतासे इस बस्तीके रहनेवाले भारतीयोंको कुछ व्यापार मिल गया। अब स्वास्थ्य-निकाय उनको यहाँसे हटाकर, अपने ही कथनानुसार, शहरसे कोई डेढ़ मीलके फासलेपर *वन ट्री हिल* [एक पेड़वाली टेकरी] पर बसाना चाहता है। निश्चय ही वहाँ उनको व्यापारकी दृष्टिसे कोई अनुकूलता नहीं है। संभव है, स्वास्थ्यकी दृष्टिसे यह जगह बहुत अच्छी हो। परन्तु दुर्भाग्यसे इस बस्तीके निवासी अभी इतने खुशहाल नहीं हैं कि दिन भर परिश्रम करनेके बाद शामको सुखसे जा टिकने लायक आरोग्य-भवन बना सकें। परन्तु स्वास्थ्य-निकायके रुखपर किसीको तनिक भी आश्चर्य नहीं होना चाहिए। अगर दोष किसीको दिया जा सकता है तो हुकूमतको, जिसने लोगोंको यह सोचनेका मौका दिया है कि अगर वे काफी शोर मचायें तो सरकार ब्रिटिश भारतीयोंकी आजादीपर हाथ डाल सकती है। क्या हम जानते नहीं हैं कि लॉर्ड मिलनरने *बाजार*वाली सूचनाका समर्थन इस बिनापर किया है कि पुराने कानूनके अमलकी माँग की जा रही है? यह एक विचित्र विधि-विडम्बना है कि ब्लूमफॉटीनकी परिषदके[1] समय १८९९ में ब्रिटिश भारतीयोंके प्रति न्यायपूर्ण बरताव करनेपर सबसे अधिक जोर देनेवाले महानुभाव ये ही थे। और अब ये ही सज्जन लोगोंकी आवाजसे दबकर उसी कानूनके अमलपर उतारू हो गये हैं, जिसका विरोध पिछली हुकूमतके युगमें इन्होंने इतनी उदात्ततासे किया था। तब दुर्भावकी आगमें घी डालनेवाली हस्ती सरकार ही है। अब अगर यह आग सरकारके अन्दाजसे अधिक भड़क कर अकल्पित रोषका रूप धारण कर ले तो इसमें आश्चर्यकी बात ही क्या है? हम तो यही आशा करते है कि सरकार बॉक्सबर्ग स्वास्थ्य-निकायके प्रति बुद्धिमत्तापूर्ण रुख अपनानेके बाद अपना कदम पीछे नहीं हटायेगी।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, १६–७–१९०३

१. दक्षिण आफ्रिका-स्थित ब्रिटिश उच्चायुक्त सर आल्फ्रेड मिल्नर और ट्रान्सवालके राज्याध्यक्ष श्री पॉल क्रूगरके बीच हुई बातचीत।

## २८१. ट्रान्सवालकी स्थितिपर

जोहानिसबर्ग
जुलाई १८, १९०३

विधान परिषदने नगरपालिकाके चुनावोंको विनियमित करनेके लिए एक अध्यादेश पास किया है। सरकारने अपने मसविदेमें, रंग या जातिके भेद-भावके बिना, सबके लिए मताधिकार रखा था। शर्त यह थी कि उनके पास कुछ निश्चित जायदाद हो और वे अंग्रेजी या डच भाषाकी एक शैक्षणिक जाँचमें उत्तीर्ण हो सकें। दूसरे वाचनके वक्त एकको छोड़कर अन्य सारे गैर-सरकारी सदस्योंने सरकारका विरोध किया। इसपर सरकार बहुमत रखते हुए भी विरोधी-दलकी इच्छाके आगे झुक गई।

इसलिए अब अध्यादेश म्यूनिसिपल चुनावमें मतका हक श्वेत ब्रिटिश-प्रजा तक महदूद करता है।

जैसे ही सरकारने विरोधी दलकी इच्छाके आगे झुकनेका इरादा जाहिर किया वैसे ही सम्मानके साथ उसके विरोधमें प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया गया, किन्तु उसका कोई नतीजा नहीं निकला।

अब लॉर्ड मिलनरने अध्यादेशपर अपनी स्वीकृति दे दी है।

अगर लड़ाईके समय उत्पन्न की गई आशाओंके अनुरूप ब्रिटिश भारतीयोंके साथ न्यायोचित बरतावकी कोशिश की गई तो गैर-सरकारी सदस्य एकमत होकर उसका विरोध करेंगे और तब सरकारका रुख क्या होगा, यह सम्भवतः इस बातसे जाहिर हो गया है।

यहाँ यह उल्लेख कर दें कि केप और नेटालमें — यद्यपि वे स्वशासित उपनिवेश हैं — भारतीयोंको नगरपालिका-मताधिकार प्राप्त है।

अभी-अभी सरकारने अनैतिकताको दबानेके लिए एक अध्यादेशका मसविदा विधान परिषदमें रखा है। मसविदेके सिद्धान्तसे मतभेदकी कोई बात नहीं है, किंतु उसमें एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत अटका हुआ है। उक्त अध्यादेशमें कुछ कृत्य गंभीर अपराध माने गये हैं, अगर "कोई भी वतनी" उन्हें करे। और धारा १९ की उपधारा ५ "वतनी" (नेटिव) की परिभाषा इस तरह करती है, "व्यक्ति, जो आफ्रिका, एशिया, अमेरिका या सेंट हेलेनाकी किसी आदिम जाति या रंगदार कौमका दिखे।"

ब्रिटिश भारतीय उपनियममें सूचित कृत्योंको अपनी हदतक भी निस्संदेह अपराध माननेको तैयार हैं; परन्तु उन्हें अपनेको आफ्रिका, अमेरिका और सेंट हेलेनाके आदिवासियोंके साथ कोष्ठकमें रखे जानेसे विरोध है। डंक इस कामके तरीकेमें है। परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नरके पास यह बात पेश की गई थी। उन्होंने यह उत्तर दिया है:

> परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नरने इस बातपर बहुत गौरसे सोचा है और संघकी इच्छाओंको पूरा करनेकी कोशिश की है। फिर भी मुझे यह सूचित करना है कि जिस उपनियमकी शिकायत की गई है अब उसके बारेमें कुछ कर सकना मुमकिन नहीं है। और यह कि, ये शब्द दूसरे उपनिवेशोंके ऐसे निकायोंके ऐसे ही उपनियमोंसे लिये गये हैं। परमश्रेष्ठको आशा है कि आप जिस अर्थमें शब्दोंका उपयोग किया गया है उसी अर्थमें

**उन्हें लेंगे। और यह कि, उनका मंशा जैसा कि आपने सुझाया है, ब्रिटिश भारतीय प्रजाको किसीके साथ कोष्ठकमें रखना नहीं है।**

उत्तर सहानुभूतिपूर्ण है। मगर इससे मुश्किल हल नहीं होती। तारीख इसपर ४ जुलाई पड़ी है। तब अध्यादेशका पहला वाचन ही हुआ था। इसलिए यह मुश्किलसे समझमें आता है कि क्योंकर समितिके स्तरपर शब्दावलीमें परिवर्तन नहीं किया जा सका। उसके बाद पूछताछ की गई है और मालूम यह हुआ है कि विषयसे संबंधित केप या नेटालके विधानोंमें ऐसी कोई आपत्तिजनक परिभाषा नहीं है; वास्तवमें दोनों जगहोंमें से कहीका भी ऐसा कानून ब्रिटिश भारतीयोंपर लागू नहीं है। इसलिए परमश्रेष्ठ गवर्नर लॉर्ड मिलनरको भी एक संक्षिप्त विरोध-पत्र[1] भेजा गया है। फल अभी तक मालूम नहीं हुआ है।

उपनिवेश-सचिवने इस हफ्ते घोषणा की है कि सरकार ८,००० पौंडकी रकमका एक बड़ा भाग ब्रिटिश भारतीयोंके लिए निर्दिष्ट बस्तियाँ बनानेमें खर्च करनेका विचार कर रही है। इन स्थानोंमें कोई १०,००० मनुष्य बस सकेंगे जिनमें से ८,००० प्रिटोरिया और जोहानिसवर्गके ही होंगे। विचार ५४ बस्तियाँ बसानेका है।

यह बड़ी गंभीर बात है। यदि श्री चेम्बरलेन अभीतक इस बातपर विचार कर रहे हैं कि कानूनोंके परिवर्तनकी दिशा क्या होगी तो समझमें नहीं आता कि बस्तियाँ बनानेकी यह हड़बड़ी क्यों — जहाँ मुश्किलसे बीस या तीस भारतीय हैं वहाँ भी।

लेकिन पॉचेफस्ट्रूमसे तो और भी गम्भीर समाचार मिला है कि वहाँ फेरीवालोंको "बस्तियों" में हटनेपर लाचार करनेवाली कार्रवाईतक शुरू हो गई है। खयाल यह था कि जबतक सारेके सारे विधानपर विचार नहीं हो चुकता कोई सख्त कदम नहीं उठाये जायेंगे। आजके पहले 'बस्तियों' को लेकर कभी अदालती कार्रवाई नहीं की गई। १८९९ में जब अनिवार्य स्थानान्तरकी कार्रवाई शुरू होनेवाली थी तब ब्रिटिश एजेंटने हस्तक्षेप करके इस धमकीको अंजाम देनेसे भूतपूर्व गणराज्य सरकारको सफलतापूर्वक विरत किया था।

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफ़िस : ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स, ४०२।

१. इसका मूल पाठ प्राप्त नहीं है।

## २८२. मुकदमेका सार: वकीलकी रायके लिए

[जोहानिसबर्ग]
जुलाई २१, १९०३

पिछले साल कुछ ब्रिटिश भारतीयोंने मेसर्स पी० आम ऐंड संसले ईडेनडेल एस्टेट कही जानेवाली एक जायदादमें कुछ बाडे (स्टैंड) नीलाममें खरीदे। १८८५ का कानून ३ अपने १८८६ के संशोधित रूपमें लागू है और उसके मातहत सरकार द्वारा अलगाये हुए कूचों, मुहल्लों और बस्तियोंको छोड़कर कहीं भी ब्रिटिश भारतीय किसी स्थावर सम्पत्तिके मालिक नहीं हो सकते, जान पड़ता है इस बातकी न नीलाम करनेवालेको खबर थी न खरीदनेवालेको।

खरीदनेकी कीमत ब्याज समेत चुका दी गई है।

वकीलोंने जायदादके तबादलेके कागजात बनाये और तब उन्हें पता चला कि जायदादके तबादलेका पंजीकरण (रजिस्ट्री) खरीदारके नाम नहीं हो सकता।

वकीलके तय करनेके प्रश्न ये हैं:

(१) क्या खरीदार बेचनेवालोंको उक्त जायदाद फिरसे नीलाम करनेपर मजबूर कर सकते हैं और बिक्रीसे अगर कुछ ज्यादा दाम आएँ तो उसका फायदा उठा सकते हैं?

(२) यदि नहीं, तो क्या खरीदारोंको बेचनेवालोंसे सौदा तोड़नेके हर्जानेकी तरह कुछ मिल सकता है — अगर उनकी कब्जा न देनेकी कानूनी लाचारी सौदा तोड़ना हो।

(३) अगर हर्जाना वसूल नहीं किया जा सकता तो क्या बेचनेवालोंसे रकम चालू दरपर ब्याज समेत नहीं ली जा सकती — क्योंकि बेचनेवालोंने रकमका उपयोग किया है?

(४) साधारण तौरपर इन परिस्थितियोंमें वकील खरीदारोंको क्या सलाह देंगे?

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

साबरमती संग्रहालय; एस. एन. ४०६८।

## २८३. पेशगी कानून

### ईस्ट लंदनमें ब्रिटिश भारतीय

सन् १८९५ में ईस्ट लंदनमें भारतीय आबादी बहुत कम थी। इसलिए उस बन्दरगाहकी नगरपालिकाने सोचा कि भारतीयोंके खिलाफ कानून बनानेके लिए यह मौका बहुत अच्छा है। अतः उसने केपकी विधान-सभासे प्रस्ताव किया कि उसे कानून बनानेके लिए, केवल भारतीयोंके विरुद्ध ही नहीं, आवश्यक अधिकार दिये जायें। दससे ऊपर घने छपे पृष्ठोंवाले इस अधिनियममें एशियाई शब्दका प्रयोग किया गया है और वह भी केवल दो या तीन जगह। इस अधिनियममें नगरपालिकाको अपने उपनियम बनानेके सम्बन्धमें साधारण अधिकार दिये गये हैं। एक धारा यातायात और मोरी-प्रणालीके बारेमें है। इसके द्वारा सम्राट्के भारतीय प्रजाजनोंकी स्वतन्त्रताका लापरवाहीके साथ समर्पण कर दिया गया है। क्योंकि अधिनियमकी

धारा ५ की उपधारा २४ में लिखा है कि नगरपालिकाको उपनियम बनानेका अधिकार होगा जिनके अनुसार वह "वतनियों और एशियाइयोंके रहनेके लिए बस्तियाँ मुकर्रर कर सकेगी, उन्हें पृथक् कर सकेगी, समय-समयपर उनमें परिवर्तन कर सकेगी और उन्हे नष्ट भी कर सकेगी।" फिर उसी धाराकी २५वीं उपधारामें "इन बस्तियोंमें वतनी तथा एशियाई किन शर्तोंके अनुसार रहेंगे, क्या फीस, किराया और झोपड़ीका कर देंगे, आदि" के बारेमें निर्णय करनेके भी अधिकार दिये गये हैं। अधिनियम नगरपालिकाको यह भी अधिकार देता है कि वह निश्चय करे कि "ये लोग शहरकी किन सड़कों, खुली जगहों या पटरियोंपर नही चलेंगे या रहेंगे।" यह कानून उन वतनियों या एशियाइयोंपर लागू नहीं होगा जो शहरकी सीमामें ७५ पौंड कीमतका कर लगाने योग्य जमीनके मालिक या काबिज होंगे, और जो नगर कारकुन (टाउन क्लार्क) से इस आशयके और वतनी होनेपर, इस कानूनसें मुक्त हो जानेके प्रमाणपत्र प्राप्त कर लेंगे।

स्मरण रहे कि केप उपनिवेशके दूसरे हिस्सोंमें भारतीयोंकी स्थिति ब्रिटिश दक्षिण आफ्रिकाके अन्य भागोंकी अपेक्षा कहीं अच्छी है। यह अधिनियम बोअर-हुकूमतके कानूनसे कहीं आगे बढ़ गया है। इसे सम्राट्की मंजूरी कैसे मिल गई, यह हमारे लिए एक रहस्य ही है। परन्तु इससे जाहिर होता है कि अगर चौकसी न रखी जायें तो कैसी सरलतासे महत्त्वपूर्ण हितोंका समर्पण किया जा सकता है। क्योंकि, हम दावेके साथ कह सकते हैं कि अगर इस अ-ब्रिटिश कानूनकी तरफ उच्चाधिकारियोंका ध्यान तुरन्त दिला दिया गया होता तो यह अन्याय कभी नहीं हो पाता। पाठकोंने देख लिया होगा कि यह कानून भारतीयोंको दक्षिण आफ्रिकाके मूलवासियोंसे भी गिरी हालतमें डाल देता है, क्योंकि इसमें भारतीयोंके लिए कोई छूट नहीं है। स्थानीय भारतीय संघ (लोकल इंडियन असोसिएशन) ने ठीक ही कहा है कि इसमें "भारतीय राष्ट्रके भूतकालको" एकदम भुला दिया गया है, जिसकी "सभ्यता", लॉर्ड मिलनरके शब्दोंमें, "बड़ी प्राचीन है" और जिसको सन् १८९७ में श्री चेम्बरलेनने उपनिवेशके प्रधानमन्त्रियोंकी सभामें "अधिक अभिजात" कहा था। हम जानते हैं कि इस नगरपालिकाने यह कृपा जरूर की है कि उसने अपनी सब शक्तियोंका प्रयोग नही किया है। परन्तु उनकी शुरुआत तो हो ही गई है। भारतीय पटरीपर नहीं चल सकते। ईस्ट लंदनकी पटरीपर चलनेके अपराधमें अच्छी वेशभूषावाले दो भारतीयोंपर जुर्माना हो चुका है। और यह तो स्पष्ट है कि अधिनियममें और भी जो अधिकार दिये गये हैं उनके बारेमें उपनियम बनानेसे नगरपालिकाको कोई रोक नहीं सकता।

क्या श्री चेम्बरलेनके संकल्पका यही परिणाम है? परम माननीय महानुभावने कहा था कि भारतीय "न्याययुक्त और सम्मानपूर्ण व्यवहारके अधिकारी हैं।" उन्होंने उपनिवेशियोंको संकीर्ण क्षेत्रीय सीमाओंके परे देखने और अपनी साम्राज्यकी सदस्यताको सिद्ध करनेकी सलाह दी थी। हम ईस्ट लंदनके उपनिवेशियोंसे पूछते हैं कि श्री चेम्बरलेनका उन्होंने जो स्वागत किया और उनकी नीतिके प्रति अपनी सहमति प्रकट की उसका वे इस अधिनियमके अस्तित्वके साथ, किस प्रकार मेल बैठा रहे हैं, जो कानूनकी किताबको कलंकित कर रहा है और ऐसी एक समस्त जातिका हठात् अपमान कर रहा है, जिसका एकमात्र अपराध यह है कि उसके लोग मितव्ययी, निर्व्यसनी और उद्यमशील हैं।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, २३-७-१९०३

## २८४. लंदनकी सभा

हाल हीमें पूर्व भारत संघ (ईस्ट इंडिया असोसिएशन) के तत्त्वावधानमें हुई एक महान सभाका विवरण हम दे चुके हैं।

इस सभामें बहुत-से मुख्य-मुख्य आंग्ल-भारतीय (ऐंग्लो-इंडियन) और भारतीय समाजके प्रसिद्ध नेता उपस्थित थे। इसकी कार्यवाहीसे प्रकट होता है कि दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय समाजपर जो काला बादल मंडरा रहा है उसका निश्चित रूपसे कुछ उजला पहलू भी है।

[सर विलियम वेडरबर्नने लगभग अपना सारा जीवन ब्रिटिश भारतीयोंकी सेवामें अर्पण कर दिया है। उनके प्रति आभार प्रकट करना उनकी महानताको सीमित करनेके समान होगा। बरसोंसे वे देशके बाहर और भीतर भारतीयोंकी सेवामें अनथक उत्साहके साथ लगे हुए हैं, और इस कामके लिए उन्होंने न केवल अपना समय, बल्कि धन भी अर्पित किया है। इसलिए कृतज्ञताके शब्दोंके रूपमें हम कुछ भी कहें, प्रत्येक भारतीयपर सर विलियमका जो ऋण है उससे उऋण नहीं हुआ जा सकता।]

जिसने भी भारतके इतिहासका अध्ययन किया है, और भारत द्वारा पैदा किये गये अंग्रेज राजनीतिज्ञोंको समझा है, उसे यह देखकर आश्चर्य हुए बिना नहीं रह सकता कि इस सभाकी कार्यवाहीमें विचारोंकी सहमति ओत-प्रोत थी। दूसरी सभाओंमें सर लेपेल ग्रिफिन और सर विलियम वेडरबर्न अक्सर एक दूसरेके विरोधमें खड़े पाये गये हैं; परन्तु इस मौकेपर एक साथ कन्धेसे-कन्धा भिड़ाकर खड़े रहनेमें उन्हें हिचकिचाहट नहीं हुई। सच तो यह है कि, दक्षिण आफ्रिकाके उपनिवेशियोंके भारतीय-विरोधी रुखके प्रति कड़े शब्दोंमें अपनी नापसन्दगी जाहिर करनेमें वक्ताओंके बीच होड़-सी लग गई थी।

अक्सर कहा जाता है कि घटना-स्थलके लोग, सही दूरीपर खड़े होकर न देख सकनेके कारण, सम्बद्ध घटनाके बारेमें निष्पक्ष राय नहीं दे पाते। यदि निर्णय अपने खुदके बरतावके बारेमें करना हो तब तो यह और भी कठिन हो जाता है। इसलिए हम उपनिवेशियोंसे पूछते हैं कि क्या उन्हें यह नहीं लगता कि जब दक्षिण आफ्रिकाके बाहर प्रायः सर्वत्र उनके रुखकी एक स्वरसे निन्दा हो रही है तब उन्हींके रुखमें कोई मूलभूत खराबी होनी चाहिए?

सर रेमंड वेस्ट एक बहुत बड़े न्यायशास्त्री हैं। वे बम्बई उच्च न्यायालयमें न्यायाधीश रह चुके हैं। अत्युक्तिकी भाषामें वे कभी नहीं बोलते। इस सभामें उन्होंने अपने हृदयके भाव इन शब्दोंमें प्रकट किये :

> इस सभाके उद्देश्योंसे मुझे गहरी सहानुभूति है। हमें इस प्रश्नपर दृढ़तासे विचार करना चाहिए और तय करना चाहिए कि हम भारतीय प्रजाजनोंको साम्राज्यके सदस्य मानना चाहते हैं या नहीं।
>
> भारतीय समाजके सदस्योंसे उन्होंने अपील की कि वे अपने अन्दर साम्राज्यकी विशाल भावनाको ओत-प्रोत कर लें और सम्राट्के समस्त प्रजाजनोंको एकात्मभावसे देखें।
>
> दक्षिण आफ्रिकाके उपनिवेशी हमारे बन्धु-प्रजाजनोंके साथ जिस प्रकारका व्यवहार कर रहे हैं उसका उल्लेख करते हुए, उन्होंने आश्चर्य प्रकट किया कि, यदि टासमानिया या दक्षिण आस्ट्रेलियासे मदद लेकर उपनिवेशी उसका बदला इस तरहका कानून

बनाकर चुकाते कि कोई टासमानिया-निवासी सड़कोंकी पैदल-पटरियोंपर नहीं चल सकेगा, अथवा उन्होंने ऐसा कानून पास किया होता कि न्यू साउथ वेल्सका कोई निवासी बगैर व्यक्ति-कर दिये इस उपनिवेशमें नहीं लिया जा सकेगा और प्रवेश पा जानेपर नगरमें उसे म्यूनिसिपल या नागरिक अधिकार नहीं दिये जायेंगे तो लोग क्या कहते? इस तरहके बरतावकी प्रतिक्रिया सारे साम्राज्यमें क्या होगी? वे गरीब अपनी जानको खतरेमें डालकर लड़ती हुई फौजोंके बीचमें दौड़-दौड़कर गये हैं और वहाँसे घायलोंको उठा-उठाकर लाये हैं। इससे बढ़कर उदात्तता क्या हो सकती है? साम्राज्यके समस्त सदस्योंके दिलोंपर इस आचरणका असर होना चाहिए। और, जिन उपनिवेशोंने अपने इन साथी प्रजाजनोंकी सेवाका प्रत्यक्ष लाभ उठाया, उनपर तो सबसे अधिक होना चाहिए। मैं तो मानता हूँ कि अगर ठीक तरहसे अपील की जाये तो उपनिवेशवासी केवल शर्मके मारे आजका रुख छोड़नेपर बाध्य हो जायेंगे। यह तो व्यापारी प्रतिस्पर्धा और जातीय संकीर्णताका, जिनको किसी समय जान-बूझकर उत्पन्न किया और बढ़ावा गया था, अवशेष है। एक साम्राज्यके प्रजाजनोंकी हैसियतसे अब उनका कर्तव्य है कि वे इन बुरे विचारोंसे अपना पिण्ड जल्दीसे-जल्दी छुड़ायें, और इन मामलोंमें साम्राज्यके सारे सदस्योंको समान समझें।

उन्होंने आगे कहा कि वे इस प्रश्नपर अपने विचार इतने जोरके साथ प्रकट करना अपना कर्त्तव्य इसलिए मानते हैं कि इस प्रश्नको किस प्रकार हल किया जाता है, इसपर सारे साम्राज्यका, जिसका निर्माण हम सबने इतना धन और रक्त बहाकर किया है, कल्याण निर्भर है।

इस सभामें जो अन्य भाषण हुए उनमें भी यही भाव प्रकट किये गये थे। सर लेपेलने बिना आगा-पीछा किये अपने भाषणमें उदाहरणके तौरपर रूसी साम्राज्यमें यहूदियोंके साथ किये गये व्यवहारका उल्लेख किया, यद्यपि यहाँ हम इन दोनों उदाहरणोंको समान स्तरपर रखना नहीं चाहते। सर मंचरजीने उपनिवेशियोंके द्वारा किये गये अन्यायकी साफ शब्दोंमें निन्दा की। उस महान् राजधानीके स्वतन्त्र वातावरणमें रहने और गहरे अध्ययनके कारण प्रश्नको वारीकीसे जाननेके कारण यदि दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंकी कानूनी निर्योग्यताओंपर उनका दिल तिलमिला उठा तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। श्री थोरबर्नने जो शब्द कहे उनपर, हम आशा करते हैं, भारतमें हमारे देशभाई अवश्य विचार करेंगे। उनके सुझाव अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। अगर उनपर अमल किया जाये तो अवश्य बड़ा लाभ होगा। यों तो समस्त दक्षिण आफ्रिकाके उपनिवेशी काम-काजमें व्यस्त रहते हैं, फिर भी हम आशा करते हैं कि वे थोड़ा समय निकाल कर इस सभाका हाल पढ़ेंगे और उसपर विचार भी करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, २३-७-१९०३

## २८५. ईस्ट रैंड पहरेदार संघ

इस संघके तौर-तरीकोंके बारेमें चाहे जो कहा जाये, इसके सदस्योंने इसके लिए जो नाम पसन्द किया है उसे अपने कामोंसे निस्सन्देह सार्थक कर दिया है। क्योंकि, जबसे इस संघकी स्थापना हुई है, यह भारतीयोंके सवालके बारेमें ही सही, निस्सन्देह अत्यधिक चौकन्ना रहा है। इस विषयको तो इसने अपना विशेष विषय बना लिया है। इन दिनों यह बॉक्सबर्गकी भारतीय बस्तीको हटानेके प्रस्तावको लेकर श्री मूअरके पीछे पड़ा हुआ है। इसके सदस्य जिस दृढ़ताके साथ अपने इस अंगीकृत कार्यमें भिड़ गये हैं, वह सचमुच प्रशंसनीय है। अच्छा होता अगर यह शक्ति किसी दूसरे उपयुक्त और अच्छे कार्यमें लगी होती। किन्तु तरस आता है कि आज उसका उपयोग एक निर्दोष जातिकी आजादी और शायद रोजी भी छीननेमें किया जा रहा है। हाल ही में बॉक्सबर्गमें ईस्ट रैंड पहरेदार संघ (ईस्ट रैंड विजिलेंस असोसिएशन) की जो बैठक हुई थी उसका कुतूहलजनक विवरण हम अन्यत्र *ट्रान्सवाल लीडरसे* दे रहे हैं। हम समझ नहीं पा रहे हैं कि बॉक्सबर्गकी भारतीय बस्तीको *वन ट्री हिल* [एक पेड़वाली टेकरी] पर हटानेके बारेमें स्वास्थ्य-निकायकी इच्छाको माननेसे उपनिवेश-सचिवने जो इनकार कर दिया उसमें निकायकी क्या हतक हो गई, जैसी कि इन सज्जनोंकी शिकायत है। याद रहे कि *बाजार*-विषयक सूचनामें स्वास्थ्य-निकायकी सलाह लेनेका जो उल्लेख है उसकी ध्वनि यह नहीं कि हुकूमतको सदा स्वास्थ्य-निकायकी बात माननी ही चाहिए। वह उल्लेख तो एक शिष्टाचारके रूपमें है। इस सूचनाका मूल आधार सन् १८८५ का तीसरा कानून है। अब अगर इन बस्तियोंके लिए स्थान पसन्द करनेके विषयमें नगर-परिषदें या स्वास्थ्य-निकाय शासनको जो भी सलाह दें उसका मानना शासनके लिए अनिवार्य मान लिया जाये तो यह इस कानूनके स्पष्ट निर्देशके शब्दशः विपरीत होगा। यह कानून स्थानीय निकायोंको न तो कोई सत्ता प्रत्यक्ष रूपसे प्रदान करता है और न उसका ऐसा कोई मंशा है। ये बस्तियाँ कायम करनेका अधिकार केवल सरकारको, और उसीको, है। इस कानूनका असर जिनपर होता है विशुद्ध रूपसे उनके हितको अगर दृष्टिमें रखकर विचार किया जाये तो हम तो यह भी कहेंगे कि एक बार इस तरह कायम हो जानेके बाद बस्तियोंको वहाँसे पुनः हटानेका अधिकार खुद सरकारको भी नहीं है। इसलिए अगर इस संघको शहरके स्वास्थ्यकी बहुत अधिक चिन्ता है और उसके दिलमें व्यापारगत ईर्ष्या अथवा अन्य किसी प्रकारका दुर्भाव नहीं है तो उनको हम यही सलाह दे सकते हैं कि वे क्रूगर्सडॉर्पके स्वास्थ्य-निकाय द्वारा पेश किये उदाहरणका अनुकरण करें। वे भारतीयोंको उनकी मौजूदा जगहसे खदेड़ कर किसी दूसरी जगह दूर भेजनेका खयाल ही छोड़ दें, क्योंकि वहाँ उसका प्रबन्ध करना बहुत कठिन होगा। इन बस्तियोंमें ही जहाँ-कहीं सफाईमें त्रुटियाँ और स्वास्थ्यके कड़े सिद्धान्तोंको भंग होते देखें, उनको ठीक करनेमें सच्चे दिलसे लग जायें। हम नहीं मान सकते कि उस दूरकी जगहपर भारतीयोंको भेज देनेके बाद इस संस्थाके सदस्य उन्हें वहाँ बिलकुल अकेला रहने देना चाहते हैं। अगर एक बार यह मान लिया कि भारतीय जहाँ-कहीं भी रहें, उनकी उपस्थिति-मात्र उस बस्तीके स्वास्थ्यके लिए खतरनाक होती है, तब तो निस्सन्देह हमारे इन मित्रोंको यह भ्रम हो ही नहीं सकता कि भारतीयोंको शहरसे कुछ मील दूर हटा देनेके बाद, और उनकी बस्तियोंकी सफाई आदिकी उपेक्षा करते रहनेपर, शहरके स्वास्थ्यको कोई खतरा नहीं पैदा होगा। प्रिटोरियाके डॉ० वील

तथा अन्य अनेक स्वास्थ्य-शास्त्रियोंका प्रमाण हमारे पास मौजूद है, जो कहते हैं कि अगर साधारण नियन्त्रण और देखभाल रहे तो भारतीय-वर्गके रूपमें अपने शरीर, और बस्तियोंको दूसरोंकी अपेक्षा अधिक साफ-सुथरा रख सकते हैं[1]। इस प्रकार सब दृष्टियोंसे विचार करनेपर यही सिद्ध होता है कि वॉक्सवर्गके इन सज्जनोंने जो पक्ष ग्रहण कर रखा है वह सर्वथा अमान्य है। विवरणमें हमने यह भी पढ़ा कि अगर ट्रान्सवालमें एशियाइयोंको लाना जरूरी हो तो फिर चीनियोंको लाया जाये। संघके इस निर्णयपर हम उसे हार्दिक बधाई देते हैं। और इस आशासे उसके स्वरमें स्वर मिलाते हैं कि वह ट्रान्सवालमें भारतसे गिरमिटिया मजदूरोंको लानेका समर्थन कभी नहीं करेगा। इस उपनिवेशमें भारतीयोंके खिलाफ जो व्यापक विद्वेष फैला हुआ है उसे हम खूब जानते हैं। इसलिए हम हरगिज नहीं चाहते कि भारतीयोंको गिरमिटिया मजदूरोंके रूपमें *हजारोंकी संख्यामें ट्रान्सवालमें लाया जाये। उनके यहाँ आये बिना ही समस्या बड़ी जटिल है।* जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, यदि यह उपनिवेश भारतीय मजदूरोंको यहाँ लानेका समष्टि रूपसे भी समर्थन करे, तो भी भारत सरकार आड़े आयेगी और प्रस्ताव अस्वीकार कर देगी।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, २३–७–१९०३

## २८६. एहतियात या उत्पीड़न?

ट्रान्सवालमें अब कहीं प्लेग नहीं है। फिर भी ट्रान्सवालकी हुकूमत भारतीय शरणार्थियोंपर रोक लगाये हुए है, जब कि वे अपनी-अपनी जगह लौट जाना चाहते हैं। सचमुच यह हमारी समझमें नहीं आ रहा है। यह अंकुश सरासर इतना गैर-जरूरी है कि विश्वास नहीं होता कि यह सार्वजनिक स्वास्थ्यके हित और एहतियातके रूपमें लगाया गया है। और फिर यह रोक केवल ब्रिटिश भारतवासियोंपर ही क्यों? हमें ज्ञात हुआ है कि कुछ ब्रिटिश भारतीयोंने सरकारसे प्रार्थना की है कि उन्हें ट्रान्सवालमें आनेसे सर्वथा रोका न जाये। जो शरणार्थी अथवा दूसरे लोग लौटना चाहते हैं, वे फोक्सरस्टमें सूतक (क्वारंटीन) में रहनेको तैयार हैं। वैसे, जब कोई कारण नहीं है तब सूतक मंजूर करना हमें एकदम निरर्थक लगता है। परन्तु यह प्रार्थना भी मंजूर नहीं की गई। तब, जान पड़ता है, यह एहतियात नहीं, उत्पीड़न है। हमें तो यही विश्वास हो रहा है कि यह रोक सर्वसाधारणके हितके लिए इतनी नहीं है जितनी दुर्भावग्रस्त जनताको खुश करनेके लिए है। ब्रिटिश भारतीयोंको न जाने देनेका यह केवल एक बहाना है। श्री चेम्बरलेनने कहा था कि एशियाई-विरोधी कानूनोंका अमल ट्रान्सवालमें पहलेकी अपेक्षा अधिक उदारताके साथ किया जा रहा है। हम यह निर्विवाद तथ्य उनकी सेवामें पेश करते हैं कि पिछली हुकूमतके जमानेमें ट्रान्सवालके द्वार ब्रिटिश भारतीयोंके लिए एकदम खुले थे। और अगर वे सैकड़ों नहीं, हजारोंकी संख्यामें आना चाहते तो आकर यहाँ बस सकते थे। उन्हें कोई कठिनाई नहीं होती। किन्तु अब आज उनकी अपनी सरकारके राज्यमें भारतीय अपने लिए इस उपनिवेशके दरवाजे बन्द पाते हैं। यह सच है कि केप टाउन या डेलागोआ-बेसे आनेवाले शरणार्थियोंको बहुत थोड़ी संख्यामें कभी-कभी प्रवेश मिल जाता है। परन्तु इन्हें भी अपने कामको सँभालनेके लिए जानेका अधिकार मिलनेमें महीनों लग जाते हैं।

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ २०६।

यह एक दिलचस्प बात है कि नेटालके ब्रिटिश भारतीय अगर चाहें तो केप अथवा डेलागोआ-बे जा सकते हैं और अनुमति-पत्र (परमिट) मिलनेकी बारी आनेपर प्लेग-सम्बन्धी रुकावटें होने पर भी वे इस उपनिवेशमें वापस लिए जा सकते हैं। इससे प्रकट होता है कि ट्रान्सवालकी ये रुकावटें कितनी बे-सिर पैरकी हैं। प्रायः यह कहा जाता है कि दूसरी कौमोंकी अपेक्षा भारतीयोंमें प्लेगसे अधिक मौतें हुई हैं। आंकड़ोंसे निकाला हुआ नतीजा भूल-भरा और गलत है, यह डर्बनमें ब्रिटिश भारतीयोंकी एक सभामें उसके अध्यक्षने अभी-अभी सिद्ध कर दिया है। उन्होंने बताया है कि इनमें से अधिकतर मौतें गिरमिटिया मजदूरोंमें हुई हैं, जो कि — साफ बात है — बहुत गरीब हैं, और जिनके आरोग्यकी जिम्मेदारी उनके मालिकोंपर है। ऐसी हालतमें अगर उनकी मृत्यु-संख्या अधिक है तो इसमें बड़े आश्चर्यकी बात नहीं है। यह भी देखा गया है कि खुशहाल भारतीय इस रोगकी छूतसे उतने ही मुक्त रहे हैं जितने अन्य जातियोंके लोग। इसके अलावा एक और बात भी है। प्लेग कभी मैरित्सबर्गके आगे नहीं बढ़ा है। तब उत्तरी हिस्सोंमें रहनेवाले ब्रिटिश भारतीयोंके मार्गमें बाधाएँ डालनेका कारण क्या है? और जब प्रकट है कि शुष्क आबहवा और ऊँचाईपर बसे प्रदेशोंमें प्लेगके कीटाणु नहीं पनप सकते, तब ट्रान्सवालको प्लेगका भय क्यों हो? हम आशा करते हैं कि ट्रान्सवालकी सरकार इस असमर्थनीय गलत आग्रहसे पीछे हटनेका कोई मार्ग निकालेगी।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, २३–७–१९०३

## २८७. रंगके सवालपर फिर लॉर्ड मिलनर

परमश्रेष्ठको पिछले हफ्ते केपकी रंगदार जातियों द्वारा एक मानपत्र दिया गया। इसके जवाबमें श्रीमानने जो शब्द कहे उन्हें अन्यत्र दिया जा रहा है। यद्यपि वे शब्द उन लोगोंके लिए कहे गये थे, हमारा खयाल है वे ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थितिपर भी लागू होते हैं। ट्रान्सवालकी रंगदार जातियोंकी स्थितिके प्रति लॉर्ड मिलनरके उदार विचारों और सहानुभूतिके विषयमें कोई सन्देह नहीं है; किन्तु श्रीमानके शब्दोंसे तो यह स्पष्ट है कि वे नगरपालिकाओंके चुनाव-सम्बन्धी अध्यादेशको नामंजूर नहीं करेंगे, जिसमें ब्रिटिश भारतीयों और दूसरोंसे मताधिकार छीन लिया गया है। कुछ भी हो, उनके भाषणका वह भाग सबसे अधिक आपत्तिजनक है, जिसमें उन्होंने ब्रिटिश प्रजाके सामान्य अधिकारोंके बारेमें कहा है। उनके शब्द ये हैं:

> मताधिकारका अभाव और इस बीच उनके जल्दी मिलनेकी आशा न होनेपर भी ऐसी बहुत-सी बातें हैं, जिनके लिए रंगदार जातियोंको आभार मानना चाहिए कि वे ब्रिटिश झंडेके नीचे हैं। वे आजाद हैं, उनके उद्योग-धन्धोंकी रक्षा की जाती है तथा वे अपनी जायदादका उपभोग कर सकते हैं। इन बातोंमें उनके और यहांके समाजके दूसरे भागोंमें कोई भेदभाव नहीं है। नगरपालिकाके मताधिकारके अलावा मैं नहीं जानता कि उनको और क्या नहीं दिया गया है।

अब, अगर ये शब्द ब्रिटिश भारतवासियोंको भी ध्यानमें रख कर कहे गये हैं तो वे भ्रमोत्पादक हैं। क्योंकि यहांके शेष समाजको जो नागरिक और जायदाद-सम्बन्धी अधिकार हैं वे भारतीयोंको नहीं हैं। और अगर इन मामूली अधिकारोंको श्रीमान विशेष अधिकार कहकर बहुत

मूल्यवान बताना चाहते हैं, तो — श्रीमान क्षमा करें — यह ज्यादती है। तथापि उन्होंने अपने श्रोताओंके प्रति जो सहानुभूति प्रकट की और उन्हें जो सलाह दी, हमें उससे विशेष मतलब है। यह सलाह तो ब्रिटिश भारतीयोंके भी बहुत ध्यान देने योग्य है। हम श्रीमानके भाषणके अन्तिम शब्द उद्धृत करते हैं:

> मैं तो आपसे कहूँगा कि आपका भविष्य महान है और वह बहुत अधिक अंशोंमें आपके अपने हाथोंमें है। एक ऐसे देशको आपने अपना घर बनाया है, जिसके पास अटूट साधन-सम्पत्ति है। आपको इसकी समृद्धिका हिस्सेदार होनेका हक है। जो विशेषाधिकार आपको पहले ही मिल चुके हैं उनका पूरा-पूरा लाभ उठाना आपका कर्त्तव्य है। इसीमें आपका हित है। नाहक मिजाज करनेमें कोई फायदा नहीं है। हाँ, जो आपको नहीं मिला है, उसके लिए अवश्य प्रयत्न करते रहिए। आखिरकार जिसमें ऊपर उठनेकी शक्ति है उसके लिए यह स्थिति खराब नहीं है। यह एक बात बिलकुल साफ है कि आज जो अवसर आपको मिला है उसका पूरा-पूरा लाभ उठाकर ही यहाँ अपने विरुद्ध फैले हुए दुर्भावको दूर करके आप अपने आपको बहुसंख्यक जनताके आदरका पात्र बना सकेंगे। आज भी आप अपने आपको ऊपर उठानेका जो महान् प्रयास कर रहे हैं उसमें इस देशके अच्छेसे-अच्छे यूरोपीय नागरिकोंकी सहानुभूति आपके साथ है।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, २३–७–१९०३

## २८८. ट्रान्सवालके 'बाजार'

ट्रान्सवालके अनुमान-पत्रमें एशियाई मामलोंके लिए रखी गई १०,००० पौंडकी रकमपर सर जॉर्ज फ़ेरारने आपत्ति की तो उपनिवेश-सचिवने जो उत्तर दिया वह दूसरे स्तम्भमें हम उद्धृत करते हैं। उससे बिलकुल साफ है कि सरकारका ब्रिटिश भारतीयोंको पृथक् बस्तियोंमें निर्वासित करनेका इरादा पक्का है। सर फिट्ज़ पैट्रिक और सर जॉर्ज फ़ेरारका उद्देश्य यह बताना है कि इस मदमें १०,००० पौंडकी स्वीकृति सार्वजनिक धनका अपव्यय है। इन महानुभावोंकी रायसे हम पूरी तरह सहमत हैं। जिनपर यह खर्च किया जायेगा उन्हें इससे कोई लाभ नहीं है। परन्तु ऐसा लगता है कि यदि शाही सरकार अपने कर्त्तव्यका पालन जागरूकताके साथ न करे तो यह रकम बचाई नहीं जा सकती। माननीय उपनिवेश-सचिवने जो आँकड़े दिये हैं उनसे पता चलता है कि कोई १०,००० ब्रिटिश भारतीयोंके लिए ५४ अलग-अलग जगहोंमें बस्तियाँ बनेंगी। इसमें सख्तीके सवालके अलावा भी हमें यह कल्पना राक्षसी लगती है। इस सिलसिलेमें हमें भारतकी एक घटना याद आती है। अन्य किसी भी जगहकी अपेक्षा वहाँ लालफीताशाही बहुत अधिक है। अगर एक अफसरको ऐसा लगा कि किसी मामलेमें एक आनेका टिकट अधिक लग गया है, तो इसपर महीनों लिखा-पढ़ी चली और रीमों कागज खर्च हो गया। ट्रान्सवालके *बाजारों*का किस्सा भी बहुत-कुछ इस भारतीय अफसरके कारनामे जैसा ही है। उपनिवेश-सचिवने सज्जनतापूर्वक बताया कि कितने ही स्थानोंमें बहुत कम भारतीय हैं। फिर भी इन ५४ जगहोंमें बस्तियाँ बनानी ही होंगी। श्री चेम्बरलेनने इस प्रश्नपर पुनः विचार करनेका आश्वासन दे रखा है, उपनिवेश-सचिव भी यह स्वीकार कर चुके हैं कि वर्तमान कानूनके बदले

कोई नया कानून बननेवाला है, इसपर भी अगर बाजार बनने ही वाले हैं तो श्री चेम्बरलेनकी घोषणाका और उपनिवेश-सचिवकी स्वीकृतिका अर्थ क्या रहा? हमें भरोसा है कि ट्रान्सवालकी विधानसभा अथवा साम्राज्यकी संसदके कुछ सदस्य तमाम सम्बन्धित लोगोंके हितमें इस प्रश्नका खुलासा करवा लेंगे।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, २३–७–१९०३

## २८९. टिप्पणियाँ[1]

[जोहानिसबर्ग
जुलाई २५, १९०३]

### ट्रान्सवालमें ब्रिटिश-भारतीयोंकी स्थिति

इस हफ्ते विधानसभाने जो प्रस्ताव पास किया है उससे सम्बन्ध रखनेवाली अखबारी-कतरनें[2] भेजी जा रही हैं। इनसे जाहिर हो जायेगा कि ट्रान्सवालकी सरकार इस साल निकाली गई सूचना ३५६ के अनुसार ब्रिटिश भारतीयोंका *बाजारोंमें* स्थानान्तर करनेपर उतारू है। प्रस्तावके अनुसार ट्रान्सवालमें १९ जगहोंपर बस्तियाँ स्थापित हो चुकी हैं। इस बातका बड़ा डर है कि सरकार वर्तमान विधानमें कोई संतोषजनक फेरफार नहीं करना चाहती। नहीं तो ट्रान्सवालमें जगह-जगह बस्तियाँ कायम करनेका खर्च वह क्योंकर उठाती? लॉर्ड मिलनरको भेजी गई अर्जीके उत्तरकी कोई खबर नहीं है, और इसलिए उन भारतीय व्यापारियोंकी स्थिति अनिश्चित है, जिन्हें लड़ाईके बाद व्यापार करनेके परवाने दिये गये थे। श्री चेम्बरलेनने फरमाया था कि जिस हदतक मुमकिन है, उस हदतक कानून नरमीसे लागू किया जा रहा है। मगर तथ्य उलटी ही बात जाहिर कर रहे हैं। सरकारसे कमसे-कम आशा यह है कि वह भारतीयोंको १८८५ के कानून ३ का थोड़ा-बहुत जो कुछ भी फायदा दे सकती है, दे। कुछ भी हो, वह उन्हें बस्तियोंमें स्थावर सम्पत्ति खरीदनेका अधिकार देता है। बावजूद इसके, सरकार सिर्फ २१ सालका पट्टा देनेकी तजवीज करना चाहती है; और इस पट्टेपर भी इतनी मर्यादाएँ लगाई गई हैं कि बिक्रीके खयालसे इनकी कोई कीमत नहीं बचती। पॉचेफ़स्ट्रूममें तो शहरमें रहनेवाले भारतीयोंके खिलाफ कार्रवाइयाँ शुरू भी हो चुकी हैं। अगली ४ अगस्ततकके लिए मामला मुल्तवी कर दिया गया है, मगर यह समझमें नहीं आता कि बस्तियोंमें जानेका कानून लागू करनेकी यह हड़बड़ी किस लिए है? पुराने ऑरेंज फ्री स्टेटके कानूनमें भी लोगोंको एक सालकी सूचना दी जाती थी। ट्रान्सवालमें जहाँतक निवासियोंका सम्बन्ध था, बस्ती-कानून जबसे बना है तभीसे मृत-पत्रके समान रहा है—यानी १२ बरस हो गये, वह निवासियोंपर लागू नहीं किया गया। इसे लागू करनेका इरादा हमारी अपनी सरकारने पिछले अप्रैलमें जाहिर किया और अभी तीन महीने नहीं हुए, उसके मातहत कार्रवाइयाँतक जारी हो गईं; बावजूद इसके कि *बाजार*-सूचनाके निकलते ही यह घोषणा भी की गई थी कि यह अस्थायी है और नया विधान जल्दी ही सामने आयेगा। विधान-सभाके प्रस्ताव और पॉचेफ़स्ट्रूमकी कार्रवाइयोंसे

१. ये टिप्पणियाँ *इंडिया*में भी ४–९–१९०३ को प्रकाशित हुई थीं।
२. ये उपलब्ध नहीं हैं।

सरकारका जो रुख जाहिर हुआ है उससे ब्रिटिश भारतीयोंमें भय जाग गया है और उनका चित्त अस्थिर हो गया है। खयाल यह था कि *बाजार*-सूचनाओंके जारी होनेका फिलहाल यही असर होगा कि व्यापारके नये परवाने देनेपर पाबन्दी लग जायेगी — और उत्तेजना नये परवाने जारी किये जानेको लेकर ही थी। गंदगी और दूसरे कारण जो सामने रखे जाते हैं वे तो व्यापारियोंको उखाड़ फेंकनेकी खास नीतिको मजबूत बनानेके लिए ही हैं। आशा की जाती है कि यह अनिश्चितता जितनी जल्दी हो सकेगी दूर की जायेगी।

नेटालमें प्लेगके कारण लगी पाबन्दियोंके बारेमें लेफ्टिनेंट गवर्नरको भेजे गये अन्तिम पत्रका उत्तर आ गया है। कहा गया है कि परमश्रेष्ठ भारतीय आगन्तुकोंपरसे रोक हटानेमें असमर्थ हैं। भले ही वे अपने खर्चेपर सूतक (क्वारंटीन) की अवधि बिताना स्वीकार करें। जैसे दिन बीत रहे हैं, *बात गम्भीर होती जा रही है।* जो शरणार्थी नेटालमें अपने नम्बरकी राह देखते हुए रुके पड़े हैं वे बड़े कड़वे होकर शिकायतें करते हैं, और वे लगभग कंगालोंकी स्थितितक जा पहुँचे हैं। इस वक्त दक्षिण आफ्रिकामें जमाना तंगीका है। शरणार्थियोंको मदद करनेमें उनके मित्रोंकी आमदनीमें खासी कटौती हो जाती है और रोक बिलकुल बेमतलबकी-सी जान पड़ती है। भारतीय ट्रान्सवालसे नेटाल आकर वापस जा सकते हैं। अगर दूसरे लोगोंकी अपेक्षा देशमें जल्दी प्लेग लानेका वस्फ भारतीयोंमें अधिक होता तो फिर जो नेटाल जाकर लौट सकते हैं वे भी आज्ञाकी प्रतीक्षामें वहाँ रुके रहनेवालोंकी तरह ही प्लेग फैला सकते हैं।

दूसरी बात जो गंभीर होती जा रही है, यह है कि वे ब्रिटिश भारतीय, जो शरणार्थी नहीं हैं, किसी हालतमें ट्रान्सवालमें नहीं आने दिये जाते। जबतक सब भारतीय शरणार्थी उपनिवेशमें प्रवेश न पा लें तबतक उन्हें आज्ञा नहीं मिल सकती। यूरोपीयोंपर यह नियम बिलकुल लागू नहीं है। इस रोकसे निवासियोंको कष्ट होता है, क्योंकि घरेलू और दूकानके कामके लिए केप, डेलागोआ-बे और नेटालसे उन्हें कोई नौकर नहीं मिलता। इससे उनके धंधेपर काफी असर होता है। और जो इसी भरोसेपर हिन्दुस्तानसे निकल पड़े थे कि ट्रान्सवालमें प्रवेशपर रोक लगानेवाला कोई कानून नहीं है और उन्हें ट्रान्सवालमें प्रवेश मिलेगा, उनपर भी इसका असर पड़ता है। हमने आशा की थी कि स्थानीय सरकारसे हमें सुविधा मिल जायेगी, किंतु चूँकि प्रयत्नोंका उत्तर कहींसे कुछ नहीं मिला है, प्लेग-संबंधी पाबन्दियों और शरणार्थी भारतीयोंपर रोकके सिलसिलेमें इंग्लैंडके मित्रोंको तकलीफ देना जरूरी हो गया है।

साथ ही अखबारकी वे कतरनें भी नत्थी हैं जिनमें भारतीय श्रमिकोंके बारेमें लॉर्ड मिलनरकी माँगका श्री चेम्बरलेन द्वारा दिया गया उत्तर है[1]।

भारत-सरकारने उसकी हालत सुधारनेके लिए जो प्रयत्न किये हैं भारतीय समाजने उन्हें कृतज्ञभावसे देखा-समझा है और आशा है कि जबतक इस उपनिवेशकी सरकार सुविधा नहीं देती यही रुख रखा जायेगा।

इंडिया ऑफ़िस: ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स, ४०२।

१. ये यहाँ नहीं दी जा रही हैं। देखिए *इंडियन ओपिनियन*, ३०-७-१९०३।

## २९०. साम्राज्यकी दासी

श्री ब्रॉडरिकने घोषणा की है कि भारतसे दक्षिण आफ्रिकास्थित फौजके खर्चका एक हिस्सा देनेके लिए कहा जायेगा; कारण यह है कि यदि कहीं रूसने हमला कर दिया तो भारतकी सीमाओंकी रक्षाके लिए दक्षिण आफ्रिकामें तैनात सैनिकोंकी जरूरत पड़ सकती है। सो, यदि भारत सरकार आत्मतुष्ट होकर चुप बैठी रही तो अनहोने आक्रमणकी संभावना मान कर गरीब भारतको दक्षिण आफ्रिकाकी फौजके खर्चका एक हिस्सा देना पड़ेगा।

समुद्र पारके तारों द्वारा जो खबरें आई हैं उनसे ज्ञात होता है कि लंदनके अधिकतर बड़े दैनिकोंने ऐसे किसी भी विचारका विरोध किया है और इस सुझावको "लज्जाजनक" कहा है। परन्तु यह तो उच्चस्तरीय राजनीतिकी बात है। हम इसमें दखल नहीं देना चाहते। हम तो इसका उल्लेख इसलिए कर रहे हैं कि दक्षिण आफ्रिकामें बसे ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थितिपर इसका बहुत बड़ा असर पड़ता है। यह भूखण्ड किसी दिन एक महान् संघ-राज्य बननेवाला है। अतः हम जानना चाहते हैं कि इस प्रश्नके विषयमें यहांके उपनिवेश-वासियोंकी नीति क्या है। जहांतक साम्राज्यका भार उठानेका ताल्लुक है, जब कभी मौका आता है भारतको स्वभावतः कमसे-कम अपना हिस्सा अदा करनेके लिए याद किया जाता है और कहा जाता है कि वह इसे खुशी-खुशी उठा ले। परन्तु क्या भारतको केवल बोझ उठानेमें ही अपना हक अदा करना है और साम्राज्यके विशेष अधिकारोंकी विभूति कभी प्राप्त नहीं करनी, या उसमें हिस्सा कभी नहीं बँटाना?

हमारे पढ़नेमें आता है कि भारत शुरूसे तमाम युद्धोंमें अपना कर्तव्य बराबर अदा करता आया है — हम कहना चाहते हैं, वीरतापूर्वक। लॉर्ड मेकालेने लिखा है कि अर्काटके घेरेमें भारतीय सिपाहियोंने अपने हिस्सेके चावल अपने अंग्रेज साथियोंको दे दिये और खुद केवल मांड पीकर सन्तोष किया। यह निरी भावुकता नहीं थी। घिरी हुई फौजें बुरी तरह भूखों मर रही थीं, इसलिए भारतीय फौजोंने अपना हिस्सा गोरोंके लिए उपलब्ध कर देना कर्त्तव्य समझा। स्वर्गीय सर जॉन के अफगान युद्धका जो हूबहू वर्णन छोड़ गये हैं उसमें भी लिखा है कि बगैर किसी शिकायतके हजारों भारतीय सिपाहियोंने बर्फीले दर्रोंमें अपनी जानें दे दीं। और आज सोमालीलैंडमें ब्रिटेनकी तरफसे कौन लड़ रहा है? यहांके जो निवासी हाल हीमें वहांसे लौटकर आये हैं, वे कहते हैं कि उस युद्धके मुकाबलेमें यहांका बोअर-युद्ध खिलवाड़ था। वहां पानी और यातायातका भयंकर कष्ट है। पिछली चीनकी मुहिममें भी यही हुआ। वहां भी भारतीय सिपाही अपने अन्य साथियोंकी अपेक्षा कम बहादुरीसे नहीं लड़े और उन्हें अपने बरतावसे सभी सैनिक-टुकड़ियोंकी प्रशंसा मिली। खुद दक्षिण आफ्रिकामें भी हमने देखा कि ठीक समयपर सर जॉर्ज व्हाइट अपने दस हजार अनुभवी सैनिकोंको लेकर भारतसे आ पहुँचे और लड़ाईका रुख बदल गया। कोई कह सकता है — यद्यपि यह कहना शोभास्पद नहीं है — कि भारतसे जो फौजें आईं उनमें से अधिकाश अंग्रेज सिपाही थे। तो, जवाबमें हम स्टैंडर्डका यह उद्धरण इंडियासे पेश करना चाहते हैं:

> हमें याद रखना चाहिए कि लेडीस्मिथका बचाव मुख्यतः भारतसे आई हुई फौजोंने किया। पीकिंगमें भी हमारे दूतावासकी रक्षा भारतीय सेनापतिने भारतीय सिपाहियोंकी मददसे ही की थी। वास्तवमें चीन भेजी गई हमारी सारी फौज भारतीय सिपाहियोंकी

> ही थी। दक्षिण आफ्रिकामें जबसे लड़ाई शुरू हुई भारतसे १३,००० अंग्रेज सिपाही तथा अफसर वहाँ भेजे गये। इनके साथ नौ हजार भारतीय अन्य काम-काजमें मददके लिए तथा नौकरोंके तौरपर गये थे। चीनमें भारतसे १,३०० ब्रिटिश अफसर और सिपाही तथा २०,००० देशी फौज भेजी गई थी। इसके साथ १७,००० देशी नौकर-चाकर थे। इस प्रकार अत्यन्त थोड़े समयकी सूचनापर, और अपने कामको क्षति पहुँचाये बिना भारत अपनी सीमाओंसे बाहर साम्राज्यकी सामरिक शक्तिमें इतना योग दे सकता है।

इस तरह पिछली लड़ाईमें कमसे-कम ९,००० ब्रिटिश-भारतीयोंने यहाँ अपनी सेवाएँ दी हैं। हाथोंमें हथियार न होनेपर भी फौजके साथ रहनेवाले इन लोगोंने खतरों और कठिनाइयोंके अवसरपर जो वीरता दिखाई उसका वर्णन करना अनावश्यक है।

हम सेवाओंकी यह सूची लंबी नहीं करना चाहते और न उनपर जरूरतसे ज्यादा जोर देना चाहते हैं। हम यह भी जानते हैं कि इन तमाम उदाहरणोंमें ब्रिटेनके बोझका हिस्सा भारतसे कहीं अधिक, कठिन और विपुल रहा है। परन्तु हम यह भी कह दें कि दोनोंमें से प्रत्येकको सहूलियतें और विशेषाधिकार कितने प्राप्त थे इसकी तुलना की जाये तो तसवीर भारतके विपक्षमें नहीं जायेगी। बीचमें एक बात और। अक्सर यह कहकर भारतीयोंका मुँह बन्द करनेकी कोशिश की जाती है कि आखिर भारतीय विजित कौम है। इसलिए भारतीयोंको ठीक ब्रिटिशोंके-से अधिकारका हक नहीं है। किन्तु हम इसे विचारणीय नहीं मानते — दो प्रबल कारणोंसे। पहला अध्यापक सीलीने अपने *ग्रेटब्रिटेनका विस्तार* (*एक्सपैंशन ऑफ ग्रेट ब्रिटेन*) नामक ग्रन्थमें दिया है कि सही अर्थमें देखें तो भारत एक विजित देश नहीं है। वह अंग्रेजी राज्यमें इसलिए हुआ कि उसके अधिकांश निवासियोंने शायद स्वार्थवश ब्रिटिश राज्यको स्वीकार किया। दूसरा कारण यह है कि ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंने असंख्य बार, अन्य बातोंमें कोई फर्क न हो तो, विजयी और विजितके बीच असमानताको माननेसे इनकार किया है। और ऐसा उन्होंने ब्रिटिश भारतीयोंके बारेमें खास तौरपर किया है।

इस तरह अब हम उपनिवेशियोंसे एक सीधा-सा सवाल पूछ सकते हैं। उपनिवेशी जो अधिकार यहाँ और दूसरी जगह अपने लिए चाहते हैं, भारतीयोंको नागरिकताके वे ही सामान्य अधिकार यदि ब्रिटिश राज्यमें अप्राप्य हों तो साम्राज्यकी कल्पनामें भारतका स्थान कहाँ है? क्या यह सौदा न्यायपूर्ण माना जायेगा कि भारतसे अपेक्षा तो की जाये कि वह साम्राज्यका बोझ उठाता रहे और उसके लाभोंसे वंचित बना रहे? यह सच है कि हम सब अगर हमारा बस चले तो दूसरोंको निकालकर बाहर कर दें और सब-कुछ अपने लिए रख छोड़ें। परन्तु जबतक दक्षिण आफ्रिकाके निवासी ब्रिटिश साम्राज्यके अन्दर रहना स्वीकार करते हैं तबतक क्या उन्हें यह हठपूर्ण रुख धारण करना शोभा देता है कि "हम किसी बातका विचार किये बिना जो चाहते हैं सो सब ले लेंगे?" इंग्लैंडको इस बातपर गर्व है कि भारत उसके साम्राज्यका एक अंग है। और, इस गौरवके साझेदार समस्त ब्रिटिश प्रजाजन बनना चाहते हैं। और इस तरह इस उपनिवेशको जिन्होंने अपना घर बना लिया है वे भी। तो क्या साम्राज्यको सहयोग देनेवाले उसके अंग करोड़ों भारतीयोंका निरन्तर अपमान करते हुए इस गौरवके साझेदार बननेमें उन्हें सन्तोषका अनुभव होता है?

हमारी समझमें ये उपनिवेशियोंके ध्यानपूर्वक मनन करने योग्य गंभीर विचार हैं।

शायद हमसे कहा जाये कि जहाँतक सिद्धान्तोंका सवाल है ये विचार कागजपर बड़े अच्छे दिखाई देते है; परन्तु यदि इनपर प्रत्यक्ष जीवनमें व्यवहार किया जाये तो इनके परिणाममें

मगर ही हाथ लगेगा। इन सज्जनोंसे हमारा पूर्व निवेदन है कि हम इन्हें निरे देखनेके कागजी सिद्धान्त नहीं मानते। ये ही वे सिद्धान्त हैं जिन्होंने ग्रेट ब्रिटेनको वर्तमान प्रतिष्ठा प्रदान की है और ये ही सिद्धान्त आज भी उसका मार्गदर्शन कर रहे हैं। भले ही यहाँ-वहाँ थोड़ी भूल हो सकती है। अगर बृहत्तर ब्रिटेन चाहता है कि वह अपनी परम्परापर आगे भी कायम रहे तो उसे हमारी सलाह है कि वह आगे बढ़नेसे पहले जरा रुक कर देख ले, क्योंकि हमें आगे एक भयंकर खाई दिखाई दे रही है।

उपनिवेशियोंके सामने हम अपने ये विचार इस आशाके साथ पेश कर रहे हैं कि वे इनको उसी भावसे ग्रहण करेंगे जिस भावसे ये पेश किये गये हैं।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, ३०-७-१९०३

## २९१. लंदनकी सभा : २

### सर वि० वेडरबर्नका भाषण

ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थितिपर लंदनकी सभामें सर विलियम वेडरबर्नका भाषण हुआ था[1]। हम पूर्व भारत संघ (ईस्ट इंडिया असोसिएशन) के तत्त्वावधानमें हुई इस सभाके बारेमें एक बार पहले लिख ही चुके हैं। सर विलियमने उस प्रतिष्ठित श्रोतृ-समुदायके सामने जो विचार रखा उसपर आज हम विशेष रूपसे विचार करेंगे।

वक्ताने अपने भाषणको तीन भागोंमें बाँट दिया था।

*बाजार-सूचना*, अर्थात्, इस वर्षकी सूचना ३५६ के रूपमें ट्रान्सवालकी सरकारने जो रुख ले रखा है उसपर सर विलियमने भाषणके पहले भागमें अपने विचार प्रकट किये। *बाजार-सूचनाने* ट्रान्सवालमें भारतीयोंके दर्जेको लड़ाईके पहले उनकी जो स्थिति थी उससे कहीं नीचे गिरा दिया है। इस निर्णयपर पहुँचनेमें उन्होंने पसोपेश नहीं किया। उन्होंने ठीक ही कहा, चूँकि भारतीयोंका "थोड़ेसे-थोड़ा बुरा आचरण" भी सिद्ध नहीं हो सका है, और "चूँकि इस बातको सबने स्वीकार किया है कि हालके पूरे संकटमें भारतीयोंने अपने आपको राज्यके प्रति वफादार और उपयोगी नागरिक साबित किया है और लड़ाईके दरमियान बीमारों और घायलोंकी कीमती सेवाएँ की है," इसलिए लॉर्ड मिलनरको चाहिए था कि वे कमसे-कम "तबतक तो यथावत् स्थिति कायम रखते ही, जबतक कि इस प्रश्नके बारेमें, जो स्पष्टतः साम्राज्यका प्रश्न है, साम्राज्यके उच्च अधिकारीगण कोई निर्णय न कर लेते।"

श्री चेम्बरलेनकी घोषणामें कहा गया है कि एशियाई-विरोधी कानूनोंका अमल पहलेकी अपेक्षा अधिक नरमीके साथ किया जा रहा है। किन्तु प्रश्नके इस पहलूपर, जैसा कि हम पहले भी एक बार सप्रमाण बता चुके हैं, श्री चेम्बरलेनके प्रति आदर रखकर — हमें फिर कहना होगा कि आज भारतीयोंकी स्थिति लड़ाईके पहलेकी अपेक्षा कहीं अधिक खराब है। परवाने बहुत कम संख्यामें दिये जा रहे हैं। भारतीय जमीन-जायदाद नहीं रख सकते। बस्तियोंसे बाहर व्यापार करनेके लिए नये परवाने जारी नहीं किये जा रहे हैं, और अनुमति-पत्रके नियमोंका

१. देखिए "लंदनकी सभा", २३-७-१९०३।

अमल भारतीयोंके साथ इतनी सख्तीके साथ किया जा रहा है कि वह एक कठोर प्रवासी-प्रतिबन्धक कानूनकी तरह काम दे रहा है। ये तथा अन्य कितनी ही बातें हैं जिनकी तरफ हमने अपने विशेष लेखमें पाठकोंका ध्यान दिलाया है।[1]

भाषणके दूसरे भागमें कुछ सिद्धान्त पेश किये गये हैं, जिनपर वक्ताकी रायमें, साम्राज्य सरकारको अपने निर्णय निर्धारित करने चाहिए। और यहाँ भी सर विलियमने, हमारी समझमें लोक-भावनाके तर्कको, वह जबतक बुद्धि और न्यायपर आधारित न हो, अमान्य करके ठीक किया है। उन्होंने उदाहरण दे-देकर बताया है कि लड़ाईसे पहले श्री चेम्बरलेनसे लेकर प्रश्नसे सम्बन्धित नीचे तकके हर अधिकारीका रुख ब्रिटिश भारतीयोंके प्रति सहानुभूतिपूर्ण था, और वह व्यापारिक ईर्ष्या अथवा जातिगत दुर्भावपर आधारित लोक-भावनासे संचालित होना स्वीकार नहीं करता था। इस प्रश्नपर उन्होंने समस्त साम्राज्यकी दृष्टिसे विचार किया है और कहा है:

> **चूँकि इस प्रश्नका सम्बन्ध संसार-भरमें फैले सारे साम्राज्यके नागरिकोंसे है इसलिए यह मूलतः एक साम्राज्यीय प्रश्न है। इसका निर्णय केन्द्रीय सत्ताको ही साम्राज्यके सुनिश्चित सिद्धान्तोंके आधारपर करना चाहिए। दक्षिण आफ्रिकाके उपनिवेशोंमें भारतीयोंपर कानूनी प्रतिबन्ध लगानेके प्रति अपना विरोध प्रकट करते हुए मैंचेस्टर व्यापार-संघ (मैंचेस्टर चेम्बर ऑफ कॉमर्स) ने उपनिवेश कार्यालयको जो विरोध-पत्र भेजा है, उसमें इन सिद्धान्तोंको समुचित रूपमें रखा गया है। उसमें कहा गया है, 'व्यापार-संघकी दृष्टिमें यह प्रतिबन्ध भारतीयोंके साथ अन्याय करता है, जो उन्हीं सब अधिकारोंके पात्र माने जाते हैं, जो सम्राट्की अन्य प्रजाको प्राप्त हैं। ये अधिकार हैं — जिस तरहके कानूनकी शिकायत की गई है वैसे किसी भी कानूनकी पाबन्दियोंसे बिलकुल मुक्त रहकर साम्राज्यके किसी भी भागमें स्वतन्त्रतापूर्वक जाने-आने और बसनेके अधिकार। यह कानून तो न केवल धृष्टतापूर्ण है, बल्कि उपनिवेशोंके अपने स्वार्थकी दृष्टिसे भी हानिकर माना जाता है। सम्राट्के भारतीय प्रजा-जनोंके बारेमें इस संघके हृदयमें बड़ा आदर है। और उसका कारण यह है कि वे अच्छे नागरिक हैं, बुद्धिमान हैं, उद्यमशील हैं, शान्तिप्रिय हैं और अच्छे व्यापारी भी हैं।**

भाषणका तीसरा भाग जो सबसे महत्त्वपूर्ण और व्यावहारिक भी है, सर विलियमके एक सुझावको विस्तारसे पेश करता है। चूँकि दक्षिण आफ्रिकामें इस बातपर काफी मतभेद है और मतोंमें परस्पर विरोधी मत भी पाये जाते हैं, इसलिए सर विलियमने भारतीयोंके खिलाफ ऐसे किसी कानूनके बनानेकी जरूरत भी है या नहीं, इस विषयमें उपनिवेश-कार्यालयके मार्ग-दर्शनमें केन्द्रीय अधिकारियों द्वारा एक पूरी और विधिवत् जाँच करानेकी वकालत की है। इस जाँचके लिए उन्होंने दो शर्तें रखी हैं:

> **चूँकि भारतीयोंके विरुद्ध काममें लाये जानेवाले प्रस्तावित उपायोंका रूप नियन्त्रण लगानेवाला है, इसलिए एक तो इनकी जरूरत सिद्ध करनेकी जिम्मेदारी पूरी तरहसे उनपर हो जो भारतीयोंपर निर्योग्यताएँ लादना चाहते हैं; दूसरे दोनों पक्षोंको समान स्तरपर लानेके लिए यह आवश्यक है कि प्रिटोरियाकी विज्ञप्ति वापस ले ली जाये।**

१. देखिए "दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीय: ट्रान्सवाल", ११-६-१९०३।

ब्रिटिश भारतीयोंने अपने अनेक स्मृतिपत्रोंमें बार-बार ऐसी जाँचकी माँग की है। अगर सर विलियमका उस दिशामें किया गया प्रयत्न सफल हुआ तो हम उनके अत्यन्त आभारी होंगे। दोनों पक्षोंके लिए इससे अधिक न्यायोचित दूसरी कार्यवाही नहीं हो सकती। हमने सदा भारतीयोंकी भलाइयों और बुराइयोंको पूरी तरह जाहिर करनेकी हिमायत की है और हम ऐसी जाँचका सच्चे दिलसे स्वागत करेंगे। लोक-भावनाको सन्तुष्ट करनेकी यह पद्धति बड़ी पुरअसर है। जो ब्रिटिश संविधानके मातहत पले-बढ़े हैं उन्हें स्वभावतः व्यवस्था और न्यायसे प्रेम होता है। आज बहुत-सी गलत-फहमियाँ फैली हुई हैं और ज्यादातर लोगोंने सही जानकारीके अभावमें अपनी यह राय बना ली है कि भारतीयोंका इन उपनिवेशोंमें रहना एक खालिस बुराई है, जिससे सारे खतरे उठाकर भी बचना चाहिए। किन्तु यदि किसी निष्पक्ष आयोगकी जाँचमें यह सिद्ध हुआ, जिसका हमें भरोसा है, कि उपनिवेश-वासियोंकी यह राय निराधार है और उलटे सच यह है कि कितने ही अल्प परिमाणमें क्यों न हो, भारतीयोंके उपनिवेशमें आने और रहनेसे उपनिवेशको लाभ ही हुआ है, तो हमारा खयाल है जनता इस घोषणाका स्वागत करेगी और आज जो द्वेष और दुर्भाव हम यहाँ देख रहे हैं वह अपनी मौत मर जायेगा।

इसलिए हम आशा करते हैं कि तमाम सम्बन्धित पक्षोंके हितमें उस सभाकी तरह उपनिवेश और भारत-कार्यालय भी सर विलियमके इस अत्यन्त उचित प्रस्तावको स्वीकार कर लेंगे। और निष्पक्ष जाँच-आयोगकी नियुक्तिसे एक ऐसा प्रश्न हल हो जायेगा जिसका अभी कोई ओर-छोर ही दिखाई नहीं देता।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, ३०-७-१९०३

## २९२. कसौटीपर

ट्रान्सवालमें हमारे देशभाई इस समय ऐसे कष्ट और चिन्ताओंमें से गुजर रहे हैं जो, हमारा खयाल है, किसी भी जन-समूहका धैर्य खपानेके लिए काफी हैं। किन्तु ठीक यही कष्ट और चिन्ताएँ प्रकट करेंगी कि वे इनसे यशस्वी होकर निकलनेमें समर्थ हैं या नहीं, और उनमें धैर्य तथा स्थिरताके वे सद्गुण हैं या नहीं, जिनके ब्रिटिश भारतीयोंमें होनेका हम अक्सर दावा करते आये हैं। ट्रान्सवालकी सरकार ब्रिटिश भारतीयोंके उन अधिकारोंको भी सहज-भावसे छिनवा देना चाहती है जो क्रूगर-सरकार द्वारा मंजूर कानूनोंके मुताबिक उनको मिलने चाहिए। इस मासकी २२ तारीखको विधानसभाकी बैठकमें उपनिवेश-सचिवने यह प्रस्ताव रखा कि लेफ्टिनेंट गवर्नरने अपनी कार्यकारिणीमें जो प्रस्ताव मंजूर किया है उसे यह सभा भी अपनी मंजूरी दे दे। सभाकी बैठकमें, कुछ सदस्योंकी इस घोषणाके बाद कि इसमें भारतीयोंको बहुत अधिक दे दिया गया है, यह प्रस्ताव कुछ संशोधनके साथ मंजूर कर लिया गया। जबतक हमारे सामने कोई दूसरा ठोस प्रमाण नहीं आता, हमें अनिच्छापूर्वक इस नतीजेपर पहुँचना पड़ेगा कि या तो वर्तमान कानून रद होगा ही नहीं, या नया कानून वर्तमान कानून जैसा ही होगा; बहुत सम्भव है, यह इससे भी खराब हो। उक्त प्रस्ताव इस वर्षकी सूचना ३५६ के, जो सामान्य रूपसे बाजारोंवाली सूचना कही जाती है, सिद्धान्तको पुनः स्थापित करता है। इसमें ब्रिटिश-भारतीयों और दूसरोंको एशियाइयोंकी बस्तियोंमें अधिकसे-अधिक २१ वर्षके पट्टेपर जमीनें निश्चित किरायेपर देनेकी मंजूरी दी गई है। १९ कस्बोंके अन्दर इनके नकशे निश्चित भी हो

चुके हैं। हमें यह भी ज्ञात हुआ है कि इनमें से प्रत्येकके बारेमें स्थानीय मजिस्ट्रेट अथवा सहायक मजिस्ट्रेट और स्वास्थ्य-निकायकी सलाह और मंजूरी ली जा चुकी है। जिन लोगोंको इन बस्तियोंमें रहनेके लिए मजबूर किया जानेवाला है उनसे भी सलाह ली गई है या नहीं, इस बारेमें कहीं एक शब्द भी नहीं है। बॉक्सबर्ग और जर्मिस्टनके कार्योंसे अगर दूसरी जगहोंके कार्योंका अनुमान लगाया जा सकता हो, तो इन स्थायी मजिस्ट्रेटों और स्वास्थ्य-निकायोंने क्या किया होगा, इसका हम सहज अनुमान लगा सकते हैं। बॉक्सबर्गमें वर्तमान बस्तीको उसके स्थानसे दूसरी जगह ले जानेका प्रयत्न किया जा रहा है और इस विषयमें स्वास्थ्य-निकाय तथा उपनिवेश-सचिवके बीच गतिरोध पैदा हो गया है। जर्मिस्टनका मजिस्ट्रेट उपनिवेश-सचिवकी धृष्टतापर मुखर हो उठा है। वह कहता है कि बस्तियोंके लिए कौन-सी जगह उपयुक्त होगी इस बारेमें उपनिवेश-सचिवने मुझसे नहीं पूछा, दूसरोंसे सलाह ले ली। "मेरे पीठ पीछे"—ये उसके शब्द हैं। प्रस्तावका नकद परिणाम यह है कि सेतु बँध चुका है, कटक उतरनेकी देर है। जगहें तैयार होते ही ब्रिटिश भारतीय चाहें अथवा नहीं, उनको वहाँ जानेके लिए मजबूर किया जायेगा। और याद रखना चाहिए कि व्यापार-व्यवसायका अधिकार भी उन्हें इन बस्तियोंके अन्दर ही होगा। यह पद्धति बोअर-सरकारकी पद्धतिसे बेशक दो कदम आगे ही है। उस हुकूमतमें स्थानकी पसन्दगीके प्रति अपना विरोध प्रकट करनेका अवसर भारतीयोंको था। जोहानिसबर्गमें नई बस्ती कायम करनेके बारेमें श्री टाबियान्स्कीको जब कुछ रिआयत देनेका प्रस्ताव हुआ और यह रिआयत मंजूर होनेसे पहले इसकी खबर भारतीयोंको लग गई तो उन्होंने इसका विरोध किया और उसमें उन्हें सफलता भी मिल गई। एक भी भारतीयको वहाँसे नहीं हटाया गया और वह रिआयत भी अन्तमें मंजूर नहीं की गई। आज स्थिति यह है कि १९ भिन्न-भिन्न जगहोंमें बस्तियाँ बनाई जा चुकी हैं और जिनको वहाँ बसाया जा रहा है उन्हें नामको भी नहीं पूछा गया। निश्चय ही परिस्थिति गम्भीर और अत्यन्त उत्तेजनात्मक है। प्रस्तावके अनुसार जो किराया-पट्टे मिलेंगे वे भी भारतीयोंको वर्तमान कानूनके अनुसार मिले हुए अधिकारोंको कम कर देंगे; क्योंकि कानूनमें कहीं यह नहीं बताया गया है कि ट्रान्सवालमें अन्यत्र जिस प्रकार भारतीय जायदाद रख सकते हैं वैसे यहाँ कोई निश्चित जायदाद नहीं रख सकेंगे। उदाहरणार्थ, जोहानिसबर्गमें भारतीय बस्तीके निवासियोंको कानूनके अनुसार अपनी जगहोंके पूरे अधिकार दे दिये गये थे। और वहाँ बनाये गये सारे-के-सारे ९६ बाड़े (स्टैंड) ९९ वर्षके पट्टेपर दिये गये हैं। शहरके दूसरे भागोंमें भी लगभग सारे पट्टे इसी मियादके हैं। फिर भी, आश्चर्य है, ब्रिटिश लोकसभामें प्रश्नकर्ताओंके जवाबमें श्री चेम्बरलेनको हम यही कहते पा रहे हैं कि वर्तमान कानूनका अमल पहलेकी अपेक्षा अधिक नरमीसे किया जा रहा है। इसपर टीका-टिप्पणी व्यर्थ है।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, ३०-७-१९०३

## २९३. लॉर्ड मिलनर और फेरीवाले आदि

ट्रान्सवालकी रेलगाड़ियोंके कार्यके लिए गिरमिटिया भारतीयोंको लानेके बारेमें अन्यत्र प्रकाशित पत्र-व्यवहार पढ़नेसे बहुत बड़ी सीख मिलेगी। इस सिलसिलेमें लॉर्ड मिलनरने श्री चेम्बरलेनको जो खरीता भेजा है उसके केवल एक अंशपर आज हम विचार करेंगे। लॉर्ड महोदयने निम्नलिखित टिप्पणी की है: "आज हम बड़ी भोंड़ी स्थितिमें पड़ गये हैं। उपनिवेशमें छोटी हैसियतवाले भारतीय व्यापारियों और फेरीवालोंकी बाढ़ आ गई है। इनसे समाजको कोई लाभ नहीं है। और जिन भारतीय मजदूरोंकी हमें बहुत जरूरत है, उन्हें हम ला नहीं पा रहे हैं।" अगर ये भाव किसी पक्षपातीने व्यक्त किये होते तो कोई शिकायतकी बात न होती, यद्यपि तब भी वे वास्तविकताके विपरीत तो होते ही। परन्तु लॉर्ड मिलनरके उच्च पदकी मुहर लग जानेसे इन्हें समझ सकना बहुत मुश्किल हो रहा है और श्रीमानके प्रति उचित आदर रखते हुए भी हमें निःसंकोच कहना पड़ रहा है कि उनका यह प्रहार बड़ा निष्ठुर है। हमें बहुत भय है कि श्रीमानपर कामका बोझ इतना बड़ा है कि उन्हें परिस्थितिका अध्ययन करनेका अवसर ही नहीं मिला और [उपनिवेशमें भारतीय व्यापारियों और फेरीवालोंके बारेमें आम तौरपर जो भावना फैली हुई है उससे वे पथ-भ्रान्त हो गये हैं।] अब जरा देखिए कि स्वयं यहांकी जनता स्वर्ण-ज्वर चढ़नेसे पहले, जिससे वह आज पीड़ित जान पड़ती है, क्या कहती थी। हम देखते हैं कि सन् १८९६ में कोई २,००० यूरोपीयोंने — जिनमें बहुतसे भूतपूर्व नागरिक भी थे — भूतपूर्व अध्यक्ष क्रूगरकी सेवामें एक प्रार्थनापत्र भेजा था। इसमें उन्होंने अध्यक्ष महोदयको विश्वास दिलाया था कि उनकी रायमें भारतीय व्यापारी और फेरीवाले समस्त समाजके लिए सचमुच लाभदायक हैं। आज भी फेरीवाले समाजके लिए लगभग अनिवार्य माने जाते हैं। उपनगरोंमें बसनेवाले परिवारोंको ये ही जरूरतकी चीजें पहुँचाते हैं। दूकानवालोंके लिए वहाँ दूकानें खोलनेसे लाभ न होगा; क्योंकि बड़े शहरोंको छोड़कर सर्वत्र मकान बहुत दूर-दूर बिखरे हुए हैं। बड़े-बड़े शहरोंमें भी व्यापार-केन्द्रोंको छोड़कर अन्यत्र यही हाल है। परन्तु हाथ-कंगनको आरसी क्या? इन फेरीवालों और व्यापारियोंकी उपयोगिताका सबसे उत्तम प्रमाण यह निर्विवाद सत्य है कि उनकी गुजर अधिकांशमें यूरोपीयोंके आश्रयसे ही होती है। हमें आश्चर्य है कि इतनी स्पष्ट बात लॉर्ड महोदयके ध्यानमें कैसे नहीं आई। परन्तु इस अकाट्य प्रमाणको भी छोड़ दीजिए। इस प्रश्नपर नेटालमें इकट्ठे किये गये प्रमाणोंको अगर श्रीमान मानें तो भारतीयोंके प्रश्नकी जाँचके लिए नेटालमें नियुक्त आयोगके सामने भारतीय व्यापारियोंके पक्षमें जो ढेरों सबूत पेश हुए थे उन्हींकी तरफ हम श्रीमानका ध्यान दिलायेंगे। इन सारे प्रमाणोंका अध्ययन कर लेनेके बाद आयोगने अपना मत प्रकट करते हुए लिखा है:

> हम गहरे अवलोकनके बाद अपना यह दृढ़ मत अंकित कर रहे हैं कि इन व्यापारियोंकी उपस्थितिसे सारे उपनिवेशको लाभ ही हुआ है; और यह कि, इनके विरुद्ध किसी प्रकारका कानून बनाना अगर अन्यायपूर्ण नहीं तो मूर्खतापूर्ण जरूर होगा।

इन व्यापारियों और फेरीवालोंपर मुख्य आरोप यह लगाया गया है कि जीवनकी आवश्यक वस्तुओंकी कीमतें इन्होंने गिरा दी हैं और इससे छोटे यूरोपीय व्यापारियोंको बहुत नुकसान पहुँचाया है। अब, अगर मिलका "अधिकसे-अधिक लोगोंके अधिकसे-अधिक हित" वाला सिद्धान्त अब भी ठीक माना जा रहा हो तो लॉर्ड मिलनरके प्रति सम्पूर्ण आदर रखते हुए हम कहेंगे कि

ये बेचारे तो प्रत्यक्ष वरदान-स्वरूप हैं। हम यह स्वीकार करनेके लिए तो कभी तैयार नहीं हो सकते कि इन भारतीय व्यापारियोंके कारण छोटे-छोटे यूरोपीय व्यापारियोंको नुकसान उठाना पड़ा है। फिर भी दलीलकी खातिर क्षण भर मान भी लें कि शायद वे सही हों तो क्या कीमतें गिर जानेसे उनसे कहीं अधिक बड़ी संख्याके खरीदनेवालोंको लाभ नहीं हुआ है? क्या भारतीय व्यापारी गरीब यूरोपीय गृहस्थोंके लिए वरदान नहीं बन गये हैं? गरीब यूरोपीय गृहस्थ, जैसा कि हम कह चुके हैं, उनसे निरन्तर सौदा लेकर मानो सिद्ध करते हैं कि भारतीय व्यापारियोंका यहाँ रहना उन्हें पसन्द है।

परन्तु लॉर्ड महोदयने न केवल भारतीय व्यापारियोंके विरुद्ध अपना निर्णय दिया है, बल्कि अप्रत्यक्ष रूपसे प्रायः सुनाई पड़नेवाले इस वक्तव्यका भी समर्थन किया है कि "ट्रान्सवालमें भारतीयोंकी बाढ़ आ गई है।" हमारा खयाल तो यह था कि लॉर्ड मिलनरको अपने कानूनोंका ज्ञान सब लोगोंसे पहले होगा। शान्ति-रक्षा-अध्यादेशके द्वारा शरणार्थियोंको छोड़ बाकी समस्त ब्रिटिश भारतीयोंके प्रवेशपर पूरी रोक लग गई है। और हम इन स्तम्भोंमें बता चुके हैं कि प्रामाणिक शरणार्थियोंको भी ट्रान्सवालमें प्रवेश मिलना कितना मुश्किल हो गया है। परन्तु चूँकि लॉर्ड मिलनरने यह वक्तव्य दिया है, हमें बड़ा भय है कि *बाजार*-सूचनाकी भाँति सारे दक्षिण आफ्रिकामें सब जगह इसपर अमल होने लगेगा और भारतीय व्यापारियोंको चारों तरफसे गालियाँ मिलने लगेंगी। इस संकटसे वे सही सलामत निकल आयें तो हमें बड़ा आश्चर्य होगा।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, ३०–७–१९०३

## २९४. पत्र : उपनिवेश-सचिवको[1]

बॉक्स ५७<br>प्रिटोरिया<br>अगस्त १, १९०३

सेवामें<br>माननीय उपनिवेश-सचिव<br>प्रिटोरिया

श्रीमन्,

मुझे आपके गत मासकी २८ तारीखके पत्रकी प्राप्ति-स्वीकार करनेका सम्मान प्राप्त हुआ है। मैं देखता हूँ कि मुस्लिम जमातके न्यासीके रूपमें मस्जिदकी जायदादको, उक्त पत्रमें लिखी शर्तोंके अनुसार, अपने नामपर लेकर आपको खुशी होगी।

इस तजवीजके लिए मेरी समिति आपके प्रति कृतज्ञता प्रकट करती है, परन्तु खेद है कि वह इसे स्वीकार नहीं कर सकती, क्योंकि किसी धार्मिक जायदादका किसी गैर-मुस्लिमके नाम करना इस्लामके खिलाफ है।

१. यह १८–९–१९०३ के *इंडिया*में भी प्रकाशित हुआ था।

मेरी समिति आपका ध्यान निम्न बातोंकी ओर आकृष्ट करनेका साहस करती है :

(१) जायदाद हस्तान्तरित करानेका यह मामला कई वर्षोंसे विचाराधीन है।

(२) युद्धसे पहले ब्रिटिश एजेंटने मेरी समितिको विश्वास दिलाया था कि यदि युद्ध छिड़ गया तो उसके बाद, जायदादके हस्तान्तरणमें किसी किस्मकी दिक्कत नहीं होगी।

(३) मेरी समितिको मालूम हुआ है कि सरकारको अधिकार है कि वह चाहे तो जायदादके उस खास हिस्सेको अलग करके और यह कहकर कि इसमें केवल ब्रिटिश भारतीय लोग ही अचल सम्पत्तिके मालिक हो सकेंगे, जायदादके हस्तान्तरणकी इजाजत दे सकती है।

(४) यदि वर्तमान कानूनके संकीर्ण अर्थोंमें, सरकारका यही खयाल हो कि उसे ऐसा कोई अधिकार नही है, तो भी, पहले बतलाये अनुसार, वह इस मामलेमें कानूनको ठीक उसी प्रकार शिथिल कर सकती है जिस प्रकार उसने परवानोंके मामलेमें किया है।

(५) यह मामला दिन-प्रतिदिन चिन्तनीय होता जा रहा है, क्योंकि जिन सज्जनके नाम जायदाद इस समय दर्ज है वे बहुत बूढ़े हैं।

(६) मेरी समितिकी प्रार्थनाको न मानकर सरकार एक भारी जिम्मेवारी अपने सिर ले रही है, क्योंकि यदि जायदादके वर्तमान दफ्तर-दर्ज मालिकका, हस्तान्तरणसे पहले ही, देहान्त हो गया तो यह जायदाद मुस्लिम जमातके हाथसे निकल जायेगी और उसे भारी नुकसान उठाना पड़ेगा।

(७) मेरी समितिकी नम्र सम्मति है कि धर्मके विचारसे ही सही, इस मामलेमें ब्रिटिश भारतीय लोगोंका लिहाज किया जाना चाहिए विशेषकर जब यूरोपीयोंका विद्वेष उनके मार्गमें बाधक नहीं है।

(८) मेरी समितिको यह देखकर दुःख है कि सरकार भारतीय लोगोंकी धार्मिक भावनाओंतक की उपेक्षा कर रही है।

(९) परमश्रेष्ठ गवर्नरने विश्वास दिलाया था कि विधान-परिषदका जो अधिवेशन अभी समाप्त हुआ है उसीमें नये विधेयकके पेश हो जानेकी सम्भावना थी। इससे मेरी समितिको आशा हो गई थी कि हमें शीघ्र ही राहत मिल जायेगी। परन्तु ऐसा कोई कानून न बनता देखकर मेरी समितिको भारी निराशा हुई है।

उपर्युक्त कारणोंसे, और इस मामलेके बहुत जरूरी होनेके कारण, मेरी समिति अब भी साहस करके यह आशा बाँधे हुए है कि सरकार आवश्यक सहायता करनेकी कृपा करेगी।

आपका आज्ञाकारी सेवक,

(ह०) हाजी हबीब

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, २७–८–१९०३

## २९५. टिप्पणियाँ[1]

जोहानिसबर्ग
अगस्त ३, १९०३

### ट्रान्सवालमें ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थिति

ब्रिटिश भारतीयोंके खिलाफ बस्ती-कानूनके बारेमें जो मुकदमे चलाये गये थे उन्हें सरकारने वापस ले लेनेकी कृपा की है।

परन्तु क्लार्क्संडॉर्प नगरमें एक दूसरी कठिनाई उठ खड़ी हुई है। वहाँ मजिस्ट्रेटने ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंको सूचनाएँ दी हैं कि यदि उन्होंने इसी ७ तारीखतक उसके सामने इस बातके प्रमाण पेश न किये कि उनके पास युद्धसे पहले व्यापार करनेके परवाने थे तो, आशा है, उन्हें मजबूर किया जायेगा कि वे अपना व्यापार बस्तियोंमें हटा ले जायें। इससे वहाँके व्यापारी स्वभावतः डर गये हैं। वे नहीं जानते, उनकी स्थिति क्या है। यह कार्रवाई बहुत जल्दबाजीकी जान पड़ती है। क्योंकि श्री चेम्बरलेन और लॉर्ड मिलनर विचार कर रहे हैं कि वर्तमान कानून किस प्रकार बदला जाना चाहिए। यदि यह ठीक हो तो क्लार्क्संडॉर्पके ब्रिटिश भारतीयोंको सूचनाएँ देनेका कोई अर्थ नहीं हो सकता। निःसन्देह उनमें से सभी युद्धसे पहले वहाँ व्यापार नहीं करते थे और सबके पास उस समय क्रूगर्संडॉर्पमें व्यापार करनेका परवाना भी नही था; परन्तु वे सब सचमुच शरणार्थी हैं और युद्धसे पहले ट्रान्सवालके किसी-न-किसी भागमें व्यापार करते थे। व्यापार करने और व्यापारका परवाना रखनेके अन्तरको यहाँ समझ लेना आवश्यक है। स्मरण रखनेकी बात है कि युद्धसे पहले बहुत-से ब्रिटिश भारतीयोंको, परवाना न होते हुए भी, ब्रिटिश सरकारके संरक्षणके कारण, ट्रान्सवालमें बस्तियोंसे बाहर व्यापार करने दिया जाता था। इस कारण बहुत कम लोग यह दिखला सकेंगे कि उनके पास युद्धसे पहले व्यापारके परवाने थे। ट्रान्सवाल-सरकारने केवल, १८९९ में कुछ ब्रिटिश भारतीयोंको बस्तियों से बाहर व्यापार करनेके परवाने दिये थे।

इसलिए यह मामला बहुत गम्भीर है, और इसपर शीघ्र ही विचार करके इसको हल कर दिया जाना चाहिए। लॉर्ड मिलनरको जो छपा प्रार्थनापत्र दिया गया है उसमें ये प्रश्न निश्चित रूपसे उठाये गये हैं। जब ब्रिटिश भारतीयोंके शिष्ट-मण्डलने यह शिकायत प्रिटोरियामें श्री चेम्बरलेनके सामने रखी थी तब उन्होंने जोर देकर कहा था कि ट्रान्सवालमें ब्रिटिश भारतीयोंके पास इस समय जो परवाने हैं वे सब मान्य होंगे; इस बातका विचार नहीं किया जायेगा कि युद्धसे पहले वे जिन स्थानोंके लिए जारी हुए थे वहाँ वे व्यापार करते थे या नहीं। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि युद्ध समाप्त होनेके तुरन्त पश्चात् ब्रिटिश अधिकारियोंने ब्रिटिश भारतीयोंको जो परवाने दिये थे उनमें यह शर्त बिलकुल नहीं लगाई गई थी कि वे अस्थायी हैं। अपने परवानोंके बलपर उन्होंने बड़ी-बड़ी दूकानें खोली हैं और अंग्रेज एजेंटोंकी मार्फत अधिकतर इंग्लैंडसे माल मँगाया है। अब यदि इन परवानोंके साथ कुछ भी छेड़छाड़ की गई तो ऐसे व्यापारी चौपट हो जायेंगे। जो अधिकार दिये जा चुके

१. यह "हमारे संवाददाता द्वारा प्रेषित" रूपमें ४-९-१९०३के *इंडिया*में छपा था।

है यदि उनको वास्तवमें स्वीकार करना है तो और सबसे पहले निम्नलिखित बातें नितान्त आवश्यक हैं:

पहली: सभी मौजूदा भारतीय परवानोंको बिना किसी प्रतिबन्धके नया कर देना चाहिए।

दूसरी: वे एक स्थानसे दूसरे स्थानको बदले जाने लायक होने चाहिए।

तीसरी: वे समस्त साधारण परवानोंकी भाँति, एक आदमीसे दूसरे आदमीके नाम बदले जाने लायक होने चाहिए।

कानून और जाब्तेका सब जगह एक-सा होना सचमुच बहुत आवश्यक है। इसके बिना ब्रिटिश भारतीयोंको साँस लेनेतक का समय नहीं मिल सकता। इस समय स्थिति इतनी अनिश्चित और जटिल है कि प्रत्येक मजिस्ट्रेट अपना अलग रास्ता बनाता है। इससे बड़ी गड़बड़ी होती है।

ब्रिटिश भारतीय संघने बहुत प्रयत्न किया और विश्वास दिलाया कि जो सचमुच शरणार्थी हैं वे अपने खर्चमे छूतकी अवधितक अलग रहकर ट्रान्सवाल लौट जानेको तैयार हैं। इतनेपर भी नेटालमें ब्रिटिश भारतीय शरणार्थियोंपर प्लेगके कारण जो रोक लगाई गई थी वह, अबतक जारी है।

जो शरणार्थी नहीं हैं, उन्हें तो ट्रान्सवाल जाने ही नहीं दिया जा रहा है — वे चाहे केपसे आये हों चाहे डेलागोआ-बेसे। ब्रिटिश भारतीय शरणार्थियोंको भी प्रति सप्ताह केवल ७० अनुमति-पत्र (परमिट) दिये जा रहे हैं।

लॉर्ड मिलनरने श्री चेम्बरलेनको तारसे जो खरीता भेजा था उसमें निम्नलिखित अंश आया है:

> आज हम बड़ी भोंडी स्थितिमें पड़ गये हैं। उपनिवेशमें छोटी हैसियतवाले भारतीय व्यापारियों और फेरीवालोंकी बाढ़ आ गई है। इनसे समाजको कोई लाभ नहीं है। और जिन भारतीय मजदूरोंकी हमें बहुत जरूरत है उन्हें हम ला नहीं पा रहे हैं।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उसको देखते हुए हम परमश्रेष्ठसे अत्यन्त आदरके साथ कहना चाहते हैं कि उक्त खरीतेमें "छोटे भारतीय व्यापारियों और फेरीवालोंकी बाढ़ आ गई है" — यह कथन सर्वथा भ्रामक है। जब सब शरणार्थियोंको भी नहीं लौटने दिया जा रहा है तब बाढ़ तो आ ही नहीं सकती। शान्ति-रक्षा अध्यादेश जारी होनेके बाद मची गड़बड़ीमें जो थोड़े-से लोग बिना अनुमति-पत्रोंके आ गये थे उनको भी ट्रान्सवालसे बाहर खदेड़ दिया गया है।

यह कथन कि "छोटे-छोटे भारतीय व्यापारियों और फेरीवालोंसे जनताका कुछ फायदा नहीं" है, तथ्योंके विपरीत है, इसे नेटाल-आयोगने निश्चित रूपसे प्रमाणित कर दिया है; यह इससे भी प्रकट है कि प्रायः सभी व्यापारी और फेरीवाले यूरोपीयों द्वारा पालन-पोषणपर निर्भर करते हैं। हजारों फेरीवाले, देशमें दूर-दूर बिखरे हुए परिवारोंके दर-दर जाकर, प्रतिदिन उन्हें सस्ते दामोंपर सब्जी पहुँचाते हैं, और छोटे भारतीय व्यापारी, बड़े यूरोपीय व्यापारियों और उनके गरीब यूरोपीय तथा जूलू ग्राहकोंमें बिचवैयोंका काम करते हैं। इसके अतिरिक्त उनका अधिकतर मुनाफा भी उन थोक यूरोपीय पेढ़ियों और बैंकोंकी ही थैलियोंमें जाता है, क्योंकि वे यूरोपीय पूंजी तथा यूरोपीय जमींदारों द्वारा ही संचालित होते हैं।

हालमें आये हुए तारोंसे पता लगता है कि लॉर्ड मिलनरने श्री चेम्बरलेनको वर्तमान कानूनके विषयमें जो खरीता भेजा था वह इंग्लैंडके समाचारपत्रोंमें छपा है। मालूम होता है,

परमश्रेष्ठने लिखा है कि "अनिवार्य पृथक्करण स्वच्छताके तथा नैतिक आधारपर आवश्यक है।" परमश्रेष्ठका यह आक्षेप भारतीय समाजको बहुत बुरा लगा है। इसका खण्डन निःस्वार्थ, निरपेक्ष और असन्दिग्ध साक्षियों द्वारा अनेक बार किया जा चुका है। "नैतिक आधार" शब्दोंका प्रयोग शायद इस सम्बन्धमें किसी ब्रिटिश प्रतिनिधि द्वारा प्रथम बार ही किया गया है। जब ऑरेंज फ्री स्टेटकी भूतपूर्व विधानसभाको दिये गये एक प्रार्थनापत्रमें इसी प्रकारकी शब्दावलीका प्रयोग किया गया था तब ब्रिटिश अधिकारी उससे अप्रसन्न हुए थे। ब्रिटिश भारतीयोंके तीव्रतम विरोधियोंने भी वर्तमान विवादमें कहीं भी ऐसा आक्षेप नहीं किया है। हमारी समझमें नहीं आता कि परमश्रेष्ठने किस सबूतके आधारपर ऐसा आक्षेप करनेकी कृपा की है।

"स्वच्छताके आधार" के विषयमें इतना बतला देना पर्याप्त होगा कि हालमें ही जोहानिसबर्गमें एक अस्वच्छ क्षेत्र आयोग बैठा था। उसके सामने जोहानिसबर्गके स्वास्थ्य-अधिकारीने एक काल्पनिक और खूब रंग चढ़ाकर तैयार किया हुआ प्रतिवेदन पेश किया था। उसका जवाब दो चिकित्सक सज्जनोंने दिया था और स्वास्थ्य-अधिकारीकी एक-एक बातको काट फेंका था। इन दोनोंमें एक (डॉ० जॉन्स्टन) प्रसिद्ध स्वच्छता-विशेषज्ञ हैं। जो भी हो, यह मामला भारतीयोंको अनिवार्य रूपसे पृथक् बसानेका तो इतना है नहीं, जितना कि स्वास्थ्यके नियमोंको लागू करनेका है। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि जबरदस्तीमें जो डंक है उसपर हमें आपत्ति है। स्वेच्छासे जाना हो तो भारतीयोंका सबसे गरीब तबका उस बस्तीमें जाकर जरूर रहने लगेगा जो सरकार उनके लिए निर्धारित कर देगी। किसी प्रकारकी जबरदस्ती न किये जानेपर भी दक्षिण आफ्रिका भरमें गत बारह वर्षका अनुभव सर्वत्र यही रहा है।

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफ़िस: ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स, ४०२।

## २९६. तार: ब्रिटिश समितिको[1]

जोहानिसबर्ग
अगस्त ४, १९०३

जब कि यूरोपीयोंको ट्रान्सवाल-प्रवेशके परवाने प्राप्त, सैकड़ों भारतीय शरणार्थियोंको प्रति सप्ताह सत्तरसे अधिक नहीं। पढ़े-लिखे अशरणार्थी भारतीयोंका भी प्रवेश एकदम निषिद्ध है। इसलिए अनेक भारतीय तटपर परेशान। नेटालसे यूरोपीय और काफिर स्वच्छन्द ट्रान्सवाल आ सकते हैं परन्तु भारतीय एकदम नहीं। बहाना प्लेग। यद्यपि वह डर्बनतक ही महदूद और वहाँ भी अब लगभग खत्म। भारतीय अपने खर्चपर सूतकमें रहनेको तैयार। वर्तमान कानून श्री चेम्बरलेनके विचाराधीन फिर भी सरकार द्वारा उन्नीस बस्तियाँ रूप-रेखांकित। मजिस्ट्रेट क्लार्क्सडॉर्पने नोटिस दिया है, जो सात तारीखके पहले युद्धपूर्व व्यापार-परवानादारी सिद्ध करनेमें असमर्थ, उन्हें अवश्य बस्तियोंमें जाना होगा। वर्षके

१. यह तार सम्पादित रूपमें ७-८-१९०३के *इंडिया*में जोहानिसबर्ग-संवाददातासे प्राप्त रूपमें और २६-८-१९०३के *टाइम्स ऑफ़ इंडिया*में "एक ब्रिटिश भारतीय" के नामसे प्रकाशित हुआ था।

आरम्भमें जिन दूकानदारोंके पास परवाने थे उनमें यदि बीचमें हाकिमके इनकारसे अंतर पड़ा तो वर्षान्तमें उनके परवाने नये करनेसे इनकार। यह बाजार नोटिसके खिलाफ। वर्तमान परवाने अछूते रहेंगे यह आश्वासन बहुत जरूरी है। भारतीय व्यापारको हानि पहुँच रही है। दुविधा भयानक। स्वच्छता नैतिकताके आधार पर लॉर्ड मिलनरके अनिवार्य पृथक्करण-सम्बन्धी वक्तव्यका नम्र विरोध है। ब्रिटिश प्रतिनिधिसे नैतिकताकी दलील पहली बार सुनी। अस्वच्छताका आरोप दो डॉक्टरों द्वारा खण्डित। उनमें एक स्वच्छता-विशेषज्ञ।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफ़िस. ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स, ४०२।

## २९७. श्री चेम्बरलेनका खरीता

ट्रान्सवालके लिए गिरमिटिया भारतीय मजदूरोंके बारेमें लॉर्ड मिलनरके नाम भेजा गया श्री चेम्बरलेनका खरीता भारतीय समाजके लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वह तीन शीर्षकोंमें बाँटा जा सकता है:

> पहला — श्री चेम्बरलेनको जबतक पूरी तरहसे इस बातका सन्तोष नहीं हो जाता कि ट्रान्सवालकी अधिकांश श्वेत जनता वहाँपर एशियाई मजदूरोंका लाया जाना जरूरी समझती है तबतक वे उनको वहाँ किसी भी रूपमें भेजनेका विचार भी करनेसे इनकार करते हैं।
>
> दूसरा — इस बारेमें उन्हें सन्तोष दिला दिया जाये तो भी यह प्रश्न रहेगा ही कि जहाँतक भारतका सम्बन्ध है, सरकार गिरमिटिया मजदूरोंको गिरमिटकी अवधि पूरी हो जानेपर वापस स्वदेश लौट जानेकी शर्तके साथ यहाँ भेजना मंजूर भी करेगी या नहीं।
>
> तीसरा — इस मामलेमें वे 'हाँ' या 'न' कुछ भी कहें, उससे पहले भारत-सरकार द्वारा पेश की गई ये शर्तें पूरी हो जानी चाहिए: कि, वर्तमान कानूनमें इस तरह सुधार कर दिया जाये कि उसमें पंजीकरण (रजिस्ट्रेशन) सम्बन्धी तीन पौंडी विशेष कर न रहे और बस्तियोंवाले नियम रद हो जायें; हाँ, अपवादके रूपमें ये नियम केवल उन लोगोंके लिए रहें, जिनके लिए सफाईकी दृष्टिसे इन्हें रखना आवश्यक प्रतीत हो। बस्तियोंसे बाहर भी व्यापार करनेकी आजादी हो; सट्टेके लिए नहीं, किन्तु साधारणतया जायदाद रखनेका हक हो और अच्छे वर्गके एशियाइयोंके विरुद्ध लगाये गये सब नियन्त्रण हटा दिये जायें।

जहाँतक पहली बातका सम्बन्ध है, हर समझदार आदमी स्वीकार करेगा कि अगर ट्रान्सवालका अधिकांश श्वेत वर्ग नहीं चाहता हो तो गिरमिटिया भारतीय मजदूरोंको उनपर नहीं लादा जा सकता। हम यह भी आशा करते हैं कि एशियासे गिरमिटिया मजदूरोंको लानेका अधिकांश श्वेत वर्ग विरोध ही करेगा, चाहे चीनसे हो या भारतसे। यद्यपि हमारे कारण वही नहीं हैं जो श्वेतोंके हैं, परन्तु इस मुद्देपर वे और हम पूरी तरह एकमत हैं।

क्योंकि जिन शर्तोंपर गिरमिटिया मजदूरोंको लाया जाता है उससे आगे चलकर किसी भी पक्षको लाभ नहीं हो सकता। यूरोपीयोंके लिए नैतिक दृष्टिसे वह अत्यन्त हानिकर है और मजदूरोंके लिए आर्थिक दृष्टिसे पूरी तरह नुकसानदेह है।

दूसरे मुद्देका जहाँतक सम्बन्ध है, हमें आशा है, मजदूरोंको वापस स्वदेश भेज देनेवाले प्रस्तावको, जिसे श्री चेम्बरलेनने एक अजीव प्रस्ताव कहा है, भारत-सरकार कभी स्वीकार नहीं करेगी। आजतक ऐसा कभी नही हुआ है। दूसरे उपनिवेशोंके ऐसे प्रस्तावोंको अवतक भारत-सरकारने सुननेसे इनकार किया है। ट्रान्सवालके वारेमें हम जानते हैं कि भारत-सरकार-पर इस मामलेमें बहुत भारी, और ऊँचे हलकोंसे भी, असर डाला जायेगा। परन्तु हमारा खयाल है कि भारतीयोंके हितोंकी रक्षा करना भारत-सरकारका विशेष कर्तव्य है। वह इनका पलड़ा हलका नहीं होने देगी। और अगर गिरमिटकी अवधि पूरी होनेपर मजदूरोंको स्वदेश वापस लौटानेका हठ जारी रहा तो उसमें भारतीयोंका हित होगा, यह बात कल्पनासे परे है। यह तो खुद लॉर्ड मिलनर भी नहीं कहते। वे तो "लोक-भावनाको दृष्टिमें रखते हुए" यह सुझाव दे रहे हैं। और अगर दक्षिण आफ्रिका-निवासी ब्रिटिश भारतीय अपने कुछ कमजोरीके क्षणोंमें अपनी आजादीके बदले भारतीय मजदूरोंकी आजादीको बेचनेका सिद्धान्त स्वीकार कर लेंगे तो वे भारतमें रहनेवाले अपने हजारों दीनतर भाइयोंके अधिकारोंको सिर्फ अपने तुच्छ लाभके लिए बेच देनेके दोषी माने जायेंगे।

परन्तु भारतीय समाजकी दृष्टिसे खासकर ट्रान्सवालमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण मुद्दा तो तीसरा है। और ट्रान्सवालमें जो भारतीय बसे हैं उनकी ओरसे भारत-सरकार अपनी बात पर अड़ी हुई है, यह देखकर हमें खुशी होती है। बेशक, "अच्छे वर्गके एशियाई" और "सट्टेकी सम्पत्ति" का क्या अर्थ है यह जानना बहुत मुश्किल है। हमें बहुत भय है कि लॉर्ड कर्जन और लॉर्ड मिलनर इन दोनों शब्दोंका कहीं एक ही अर्थ न स्वीकार कर लें। यह भी पूर्ण रूपसे सम्भव हो सकता है कि एक-एक करके छाँटनेकी पद्धतिके द्वारा वे किसी भी एशियाईको अच्छे वर्गवाला माननेसे इनकार कर दें। इसी प्रकार कौन कह सकता है कि मामूली जायदादकी भी गिनती "सट्टेकी सम्पत्ति" में नहीं कर ली जायेगी। परन्तु अभी तो हम इन मुद्दोंपर यों ही विचार कर रहे हैं। अभी इन्होंने कोई साकार रूप धारण नहीं किया है। कौन कह सकता है कि भारत-सरकारके प्रस्तावोंको ट्रान्सवालकी सरकार किस हद तक माननेको तैयार होगी। इस स्थलपर तो हम भारत-सरकारसे केवल यह स्मरण रखनेकी प्रार्थना करेंगे कि अब जो कुछ भी वह करे साफ हो, असन्दिग्ध हो और निश्चित हो। किसी भी तरहकी ढील खतरनाक होगी, क्योंकि हम इसके भुक्तभोगी हैं। इसलिए हमारा सुझाव है कि जो भी परिभाषाएँ हों, कानूनमें स्पष्ट रूपसे लिख दी जायें। किसी अधिकारीकी मर्जी-पर उन्हें न छोड़ा जाये। जैसा कि लॉर्ड मिलनरने कहा है, मुख्य बात है ब्रिटिश भारतीयोंका दर्जा निश्चयात्मक ढंगसे स्पष्ट कर देना, जिससे कि हर कोई जान सके कि वह क्या है।

लॉर्ड जॉर्ज हैमिल्टनने ऑरेंज रिवर उपनिवेशके कानूनको भी अपने प्रस्तावोंमें शामिल कर लेनेकी कृपा की है। इसके लिए हम उनके बड़े ऋणी हैं। अब समय आया है कि इस उपनिवेशके विधान-निर्माताओंकी एशियाई-विरोधी कामोंकी प्रगति रोकी जाये। जैसा कि हम इन स्तम्भोंमें बता चुके हैं, शायद ही कोई महीना बीतता हो, जिसमें इस ब्रिटिश उप-निवेशके अन्दर ब्रिटिश भारतीयोंपर कोई नई कैद न लगाई जाती हो।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन,* ६-८-१९०३

## २९८. लन्दनकी सभा: ३

### सर चार्ल्स डाइक और पूर्व भारत संघ

पूर्व भारत संघमें सर विलियम वेडरबर्नने दक्षिण आफ्रिकामें ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थिति-पर जो भाषण दिया था उसका जिक्र हम कर चुके है। परन्तु चूंकि हम समझते है कि यह सभा बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण थी और उसमें जो भाषण हुए उनपर उपनिवेशियोंको बहुत गौर करना चाहिए, इसलिए इस सभाके अध्यक्ष पदसे दिये गये सर चार्ल्स डाइकके भाषणपर हम यहाँ विचार करना चाहते है।

ये माननीय महानुभाव भारतीय मामलोंमें बहुत सहानुभूतिके साथ दिलचस्पी लेते रहे हैं। दक्षिण आफ्रिकामें जबसे ब्रिटिश भारतीयोंका संघर्ष शुरू हुआ है, उसका ये सहानुभूतिके साथ अध्ययन करते रहे हैं और हमें न्याय दिलानेके लिए यत्नशील भी रहे है। अतः इनके तथा अन्य प्रसिद्ध मित्रोंके, जो सकटमें हमारे सहायक रहे है, हम अत्यन्त अनुगृहीत हैं। सर चार्ल्सने उपनिवेशोंके प्रश्नका विशेष रूपसे अध्ययन किया है। अतः उपनिवेशियोंसे हमारा अनुरोध है कि इनके विचारोंको उन्हें खास तौरपर अधिक आदरके साथ सुनना चाहिए। बृहत्तर *ब्रिटेनकी समस्याएँ* (दि प्रॉब्लेम्स ऑफ ग्रेटर ब्रिटेन) के ये रचयिता उपनिवेशोंके प्रश्नके हर पहलूको बहुत बारीकीसे जानते है। अतः हम आशा करते है समुद्रके पार दूर-दूरतक फैले हुए सम्राट्के प्रदेशोंके विषयमें परिपक्व अनुभव रखनेवाले इन महानुभावके शब्दोको उनके अनुरूप महत्त्व दिया जायेगा।

सर चार्ल्स डाइकने इस सभामें अपने प्रारम्भिक कथनमें कहा:

> आज हम ट्रान्सवालमें भारतीयोंकी स्थितिपर विशेष रूपसे विचार करनेके लिए एकत्र हुए हैं। परन्तु सच तो यह है कि अपना देश छोड़कर ब्रिटिश साम्राज्यमें भारतीय जहाँ-जहाँ भी गये हैं, उन सबकी स्थितिके बारेमें भारतमें बड़ी चिन्ता फैली हुई है। एक बार भारत-मन्त्रीकी सेवामें एक शिष्टमण्डल उपस्थित हुआ। उस समय मैं भी वहाँ उपस्थित था। शिष्टमण्डलका परिचय स्वर्गीय श्री केनने कराया था। शिष्टमण्डलने उसी सिद्धान्तकी पैरोकारी की थी, जिसे लेकर सर विलियम वेडरबर्न आज शामको इस सभामें उपस्थित हुए हैं। सिद्धान्त यह था कि ब्रिटिश भारतके निवासियोंको ब्रिटिश साम्राज्यके समस्त भागोंमें पूरी आजादीके साथ रहने और अपना व्यापार-व्यवसाय स्वतन्त्रतापूर्वक करनेका अधिकार होना चाहिए। मुझे याद है, उस दिन उस बैठकमें इस सिद्धान्तका प्रतिपादन जितने अधिक जोरके साथ खुद भारत-मन्त्रीने किया था उतना और किसीने नहीं। शिष्टमण्डलके किसी भी सदस्यके लिए असम्भव था कि वह परम-माननीय महानुभावकी बातसे सन्तुष्ट हुए बिना लौटता।

ऊपरके उद्धरणसे सर चार्ल्स डाइकके भाव प्रकट है। कोई व्यक्ति इस प्रश्नका जितना ही अध्ययन करेगा वह दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीयोंकी तरफसे पेश किये गये दावोंकी न्याय्यताका उतना ही अधिक कायल होगा। पिछले हफ्ते हमने ट्रान्सवालमें प्रकाशित पत्र-व्यवहार उद्धृत किया था। उसमें भारत-सरकारने इसी प्रकारके भाव प्रकट किये हैं। परन्तु उसपर हम आगे कभी विचार करेंगे।

इस सभाका पूर्व भारत संघके तत्त्वावधानमें होना भी एक बड़ी मार्केकी बात है। इंग्लैंडमें भारतीय मामलोंसे सम्बन्ध रखनेवाली संस्थाओंमें यह एक सबसे पुरानी संस्था है। और इसके सदस्योंमें अधिकांश अवकाश-प्राप्त वाइसराय, गवर्नर और भारतीय प्रश्नोंके अध्ययनमें जिन्होंने वर्षों गुजार दिये हैं, ऐसे अनेक प्रतिष्ठित आंग्ल-भारतीय सज्जन शामिल हैं। ऐसे पुरुषोंका संघ दक्षिण आफ्रिकामें बसे सम्राट्के भारतीय प्रजाजनोंके पक्षमें अपना महान् प्रभाव डाले यह हमारे लिए निःसन्देह अत्यन्त सन्तोषका विषय है। इससे साफ प्रकट होता है कि न केवल हमारी माँगें न्याययुक्त हैं, बल्कि अगर हम पर्याप्त धैर्यसे काम लें तो अन्तमें हमारी विजय भी निश्चित है। लोकमतके शिक्षणमें हमारा बड़ा विश्वास है। और हमें निश्चय है कि उपनिवेशियोंको इस प्रश्नपर जितनी भी विचार-सामग्री दी जायेगी उतनी ही जल्दी इसका हल निकलनेवाला है। इसीलिए पूर्व भारत संघकी कार्यवाहियोंको हम यथासम्भव प्रमुख रूपसे उनके सामने रखनेका प्रयत्न करते हैं।

[ अंग्रेजीसे ]

*इंडियन ओपिनियन*, ६–८–१९०३

## २९९. प्रवासी-प्रतिबन्धक विधेयक

ब्रिटिश भारतीयों द्वारा विधान परिषदको भेजे गये प्रार्थनापत्रपर सहानुभूतिपूर्वक सुनवाई करानेके सम्बन्धमें माननीय श्री जेमिसनके सारे प्रयत्नोंके बावजूद प्रवासी-प्रतिबन्धक विधेयक बगैर किसी संशोधनके पास हो गया। श्री डान टेलरकी यह स्पष्ट उक्ति सच हो गई है कि इस प्रार्थनापत्रको छपाना सार्वजनिक धनका अपव्यय है। ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों सदनोंने पहले हीसे फैसला करके विधेयकके बारेमें अपना मत स्थिर कर लिया था। भारतीयोंका यह हक था कि उनकी बात सुनी जाये। परन्तु उनका यह अधिकार व्यवहारतः छीन लिया गया। इस ताजे उदाहरणपर सर जॉन रॉबिन्सनके क्या विचार हैं हम जानना चाहते हैं। मताधिकार छीननेवाला विधेयक जब प्रस्तुत किया गया था तब उन्होंने घोषित किया था कि जिनका मताधिकार छीना जा रहा है उनके अधिकारोंकी रक्षा बहुत सावधानीके साथ की जायेगी। क्योंकि, अब इस सदनका प्रत्येक सदस्य अपनेको मताधिकारहीन लोगोंके अधिकारोंका कुछ हदतक संरक्षक मानेगा। भारतीय बखूबी कह सकते हैं कि 'भगवान बचाये ऐसे रक्षकोंसे'। हमें आशा है, हमने अच्छी तरह सिद्ध कर दिया है कि प्रार्थनापत्र भेजनेवालोंकी विनती बहुत उचित थी। कानूनके सिद्धान्तपर उनकी स्वीकृतिका कुछ अर्थ होता। और यह भी वे बतौर प्रयोगके सुझा रहे थे। परन्तु हमारे विधान-निर्माताओंने कुछ और ही सोचा। उनके लिए तो भारत तथा साम्राज्यके प्रति अपना सहज कर्तव्य पालन करनेकी अपेक्षा अपने साथी भारतीय प्रजाजनों और उनकी सुसंस्कृत भाषाओंका अपमान करनेका आनन्द अधिक मूल्यवान था। उन्हें इस बातसे संतोष है कि वे भारतीय मजदूर पा सकते हैं जिनकी उपनिवेशकी समृद्धिके लिए अनिवार्य रूपसे आवश्यकता है। हमें बताया गया है कि सदस्यगण प्रार्थनाके साथ अपना कार्य आरम्भ करते हैं और स्पीकर या अध्यक्षकी मेजपर बाइबिलकी पोथीको विशिष्ट स्थान प्राप्त होता है। क्या हम पूछें कि नाजरथके पैगम्बरके अनुयायियोंका अपने प्रभुकी जबानसे निकले इस छोटेसे पद्यकी तरफ कभी ध्यान गया है 'दूसरोंसे जैसे व्यवहारकी अपेक्षा करते हो वही दूसरोंके साथ करो'? अथवा छापनेवालोंने

गलतीसे "करो" के बाद एक छोटा सा शब्द "नहीं" छोड़ दिया? देखें इस प्रार्थना-पत्रपर साम्राज्यनिष्ठ श्री चेम्बरलेन क्या करते हैं?

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, ६–८–१९०३

# ३००. पॉचेफ़स्ट्रूमके भारतीय

पॉचेफस्ट्रूमकी बस्तियोंके बारेमें वहाँ हालमें जो मुकदमे चलाये गये हैं उनको लेकर वहाँके भारतीयोंने एक बड़ी सफल सभा की। इसपर उन्हें हमारी बधाई है। उनके प्रस्तावके औचित्यसे कौन इनकार कर सकता है? उसमें कहा गया है कि इस विषयमें जबतक सम्राट्-सरकार अपने विचार प्रकट नहीं कर देती तबतक ट्रान्सवालकी सरकारको कोई कार्यवाही नहीं करनी चाहिए। ऐसी प्रार्थनापर सम्भवतः किसीको आपत्ति नहीं हो सकती। श्री चेम्बरलेनने लोकसभामें अपने प्रश्नकर्ताओंको अनेक बार आश्वासन दिया है कि वे इस प्रश्नपर पूरी तरहसे सावधानीके साथ विचार करेंगे और इस विषयमें क्या करना है, इसकी सलाह लॉर्ड मिलनरको देंगे। इससे साफ जाहिर है कि इसका हल पूरी तरहसे ट्रान्सवालके गोरे उप-निवेशियोंके हाथोंमें नहीं है। इसलिए अगर इस विषयमें साम्राज्य-सरकारकी भी बात सुनी जानेको है तो समझमें नहीं आता कि ट्रान्सवालकी सरकार क्यों इतनी जल्दी कर रही है और न्यायको ताकमें रखकर मनमाने तौरपर भारतीयोंको बस्तियोंमें भेज रही है? हम श्री अब्दुल रहमान[1] के भाषणके नीचे लिखे अंशकी तरफ अधिकारियोंका ध्यान दिलाना चाहते हैं:

> मुझे यह भी कहते हुए दुःख होता है कि स्थानीय पुलिस अब भी बड़े सवेरे आकर हमें सताती है और केवल परवाने बदलवानेके लिए मुलजिमोंकी तरह हमें घेरकर थानेपर ले जाती है। मैं समझता हूँ कि हमें उच्च अधिकारियोंसे इसकी शिकायत करनी चाहिए। मुझे विश्वास है कि वे हमारी जरूर सुनवाई करेंगे।

सब सम्बन्धित पक्षोंके प्रति सरकारका कर्तव्य है कि इन अभियोगोंकी पूरी-पूरी जाँच करे, क्योंकि अगर उपर्युक्त कथन सत्य है तो यह सब कार्यवाही असह्य रूपसे जालिमाना है।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, ६–८–१९०३

१. पॉचेफ़स्ट्रूम भारतीय संघके मन्त्री।

## ३०१. जल्दबाजी

*बाजार*-सूचनाओंको लागू करनेके बारेमें पॉचेफ़स्ट्रूमने कार्यवाही प्रारम्भ कर दी है। इस बारेमें मजिस्ट्रेटकी कार्यवाहीका एक छोटा-सा विवरण हम अन्यत्र दे रहे हैं। पाठक देखेंगे कि बस्तियोंसे बाहर रहनेके जुर्ममें लगभग एक दर्जन ब्रिटिश भारतीयोंपर मुकदमे दायर कर दिये गये हैं। इसे "जल्दबाजी" नहीं तो और क्या कहा जाये? ऐसा अनुमान किया जाता है कि श्री चेम्बरलेन लॉर्ड मिलनरके इसी विषयसे सम्बन्धित खरीतेपर विचार कर रहे हैं। यह भी माना जाता है कि ट्रान्सवालकी सरकार वर्तमान कानूनके स्थानपर नया कानून बनानेका विचार कर रही है। क्या इन सबका निर्णय प्रकट होनेसे पहले ही *बाजार*-सूचनाओंपर पूरी तरहसे अमल करनेका इरादा कर लिया गया है — फिर इसका असर सम्बन्धित लोगोंपर जो भी हो? भूतपूर्व ऑरेंज फ्री स्टेटने जब एशियाइयोंके खिलाफ कड़ा कानून पास किया था तब उसने राज्यमें पहलेसे बसे हुए लोगोंको एक वर्षका समय देनेकी सभ्यता दिखाई थी। याद रखनेकी बात है कि पॉचेफ़स्ट्रूममें जिन लोगोंपर मुकदमे दायर कर दिये गये हैं उनमें से अधिकांश ट्रान्सवालके पुराने बाशिन्दे हैं। इससे पहले उन्हें उनके धंधोंके सम्बन्धमें कभी तंग नहीं किया गया था। *बाजार*-सूचना गत अप्रैलमें प्रकाशित हुई थी। लोग अभी समझ भी नहीं पाये हैं कि उनकी स्थिति क्या है? और जब कि उसके खिलाफ शिकायतोंपर अभी विचार ही हो रहा है, उसके प्रकाशित होनेके तीन महीनेके अन्दर ही, बिना लिखित सूचनाके, उनपर एकाएक सम्मन जारी होने लगे हैं। तथापि, मजिस्ट्रेटने कृपापूर्वक मुकदमेको अगस्तकी चौथी तारीख तकके लिए स्थगित कर दिया, जिससे कि अभियुक्त अपना सबूत पेश कर सकें। चूंकि अभी मामला विचाराधीन है और हमें ज्ञात हुआ है कि सरकारसे राहतके लिए प्रार्थना की गई है, हम इसपर अभी और कुछ नहीं कहेंगे।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, ६-८-१९०३

## ३०२. अजीबोगरीब सरगरमी

ब्रिटिश भारतीयोंके अधिकारोंपर पेशगी नियन्त्रण लगानेमें ऑरेंज रिवर उपनिवेशकी विधान-सभा जो सरगरमी दिखा रही है वह बिलकुल अजीबोगरीब है। नीचे हम उपनिवेशके २४ जुलाईके सरकारी *गजट*में प्रकाशित ब्लूम-फॉंटीनके निगम और शासनका नियमन करनेवाले अध्यादेशकी कुछ धाराएँ उद्धृत करते हैं जिनमें नगर-परिषदको बस्तियोंके विषयमें अधिकार दिये गये हैं:

> ११८. परिषदको सत्ता दी जाती है कि वह नगरपालिकाकी जमीनके भाग या भागोंमें जहाँ उचित समझे बस्तियाँ कायम करे और उनमें घरेलू नौकरोंको छोड़कर जो अपने मालिकोंके अहातोंमें रहते हैं, अन्य तमाम रंगदार मनुष्योंको रहनेके लिए मजबूर करे। परिषद जब चाहे इन बस्तियोंको समाप्त कर सकती है और नई

बस्ती या बस्तियाँ कायम कर सकती है। ऐसी तमाम बस्तियोंके समुचित नियन्त्रणके लिए परिषदको विनियम बनानेका अधिकार भी होगा।

११९. परिषदको अधिकार होगा कि मालिकोंको मुआवजा देकर इन बस्तियोंमें खड़े झोंपड़ों, निवासों या अन्य इमारतोंको गिरा दे या हटवा दे। मुआवजेकी रकम क्या हो इसका निर्णय नगरपालिकाके मूल्यांकनकर्त्ता करेंगे, जिसपर परिषदकी मंजूरी आवश्यक होगी।

१२०. नगरपालिकाकी सीमामें रहनेवाले वतनियोंके नियन्त्रणके सम्बन्धमें धारा १२४ और १२५ के अनुसार नियम बनाने, उनमें संशोधन करने अथवा उन्हें एकदम रद करनेका और नीचे लिखे सब या अलग-अलग विषयोंका भी परिषदको अधिकार दिया जाता है:

(क) दैनिक या माहवारी आधारपर या किसी अधिक समय तकके लिए नियुक्त या नगरपालिका क्षेत्रके अन्दर काम ढूंढ़नेवाले वतनी लोगोंका समुचित पंजीकरण (रजिस्ट्रेशन) करना।

(ख) मालिक और नौकर अपने बीच हुए इकरारनामोंको पंजीकृत कराना चाहें तो उनका पंजीकरण करना।

(ग) आवारागर्दी, दंगा-फसाद या अशिष्ट बरतावपर नियन्त्रण रखना।

पाठक गौर करेंगे कि उपर्युक्त धाराओंमें प्रयुक्त 'वतनी' और 'रंगदार मनुष्य' शब्द पर्यायवाची है और एक ही वस्तुके बोधक है। और इन्हें मामूली अपराधियों अथवा जानवरोंकी तरह निगमकी इच्छानुसार कहीं भी हटाया जा सकता है। उपनिवेशके ब्रिटिश विधि-निर्माताओंको यह नहीं जान पड़ा कि इसमें अत्यधिक अब्रिटिशपन है। इसपर टिप्पणी व्यर्थ है।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, ६–८–१९०३

## ३०३. विनयसे विजय

महामहिम सम्राट् और सम्राज्ञीकी आयर्लैंड-यात्रा केवल आयर्लैंडवासियोंके लिए ही नहीं, समस्त साम्राज्यके लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह सम्राट्के नम्रसे-नम्र प्रजाजनके लिए विनम्रताका वह पदार्थ-पाठ पढ़ाती है जो गिरजा-पीठसे दिये गये अधिकसे-अधिक रोमांचक प्रवचनोंमें भी नहीं मिल सकता। डब्लिनके नगर-निगम (कारपोरेशन) ने, हम कहेंगे, अपनी क्षुद्रता-वश, सम्राट् और सम्राज्ञीको उनकी आयर्लैंडकी इस यात्रापर मानपत्र देनेसे इनकार कर देना उचित समझा, मानो आयर्लैंडके कष्टोंके लिए वे ही जिम्मेदार हों। लेकिन इस वृत्तिका जवाब सम्राट्ने किस प्रकार दिया? जब देशकी राजधानीका नगर उनका स्वागत करनेको तैयार नहीं था, सम्राट् अपनी आयर्लैंडकी यात्राको ही रद कर सकते थे। अथवा, वहाँ पहुँचनेपर निगमकी कार्यवाहीपर बामानी तौरसे अपनी अप्रसन्नता प्रकट कर सकते थे। परन्तु उन्होंने अन्य प्रकारसे सोचनेकी कृपा की। और उन्होंने वास्तवमें अपने सहानुभूति भरे शब्दों और खुले दिलसे व्यवहार द्वारा सारे विरोधको निरस्त्र कर दिया और बुराईका जवाब भलाई द्वारा देकर निगमको यहाँतक लज्जित कर दिया कि, कहा जाता है, उसे अपने निर्णय पर

पश्चात्ताप हुआ। समाचारोंमें हमने और भी पढ़ा है कि सम्राट् डब्लिनकी दरिद्र-बस्तियोंमें पैदल घूमे, गरीबोंके घरोंमें गये और उनसे सहानुभूतिसे बातचीत की। महामहिम-द्वय कोरे शब्द या सहानुभूतिके भाव व्यक्त करके ही नही रह गये। उन्होंने उन भावोंको एक हजार पौंडका दान करके चरितार्थ भी किया। हम अपने दिलोंमें कह सकते है कि इसमें उन्होंने कौन बड़ा त्याग कर दिया? सम्राटोंके लिए यह कोई बड़ी बात नहीं है। परन्तु दुनिया जानती है कि संसारके समस्त प्रथम श्रेणीके नरेशोंमें इंग्लैंडके बादशाह सबसे अधिक गरीब हैं। फिर हम यदि यह भी गौर करें कि बादशाहोंके कोशपर हजारों गरजमन्दोंकी पुकार लगी रहती है तो हमें मानना होगा कि सम्राट् और सम्राज्ञीने अपनी आयर्लैंडकी यात्रामें जो दान दिया वह कोई नगण्य कार्य नहीं कहा जा सकता। स्वर्गीय सम्राज्ञी अपने पीछे ऐसी सुकीर्ति छोड़ गई हैं कि उसे आसानीसे भुलाया नहीं जा सकता। परन्तु अगर उस सुकीर्तिसे आगे बढ़ जाना अथवा उसकी बराबरी करना किसी प्रकार सम्भव हो तो जान पड़ता है कि हमारे वर्तमान सम्राट् और सम्राज्ञी ऐसा करनेके बहुत-कुछ योग्य हैं। महारानी विक्टोरियाके दीर्घ शासन-कालमें ब्रिटिश संविधान पूर्ण रूपसे सुव्यवस्थित हो चुका है। अतः अब उसमें काट-छाँट होनेकी रत्तीभर भी आशंका नहीं है। इसलिए सम्राट्के प्रजाजन जब देखते हैं कि सम्राट् अपनी मर्यादाओंके अन्दर रहते हुए उनकी भलाई और सेवा करनेमें कुछ उठा नहीं रखते तो प्रजाजनोंको बड़ा सन्तोष होता है। परन्तु हमने ऊपर जो कुछ कहा है उसके अलावा, इस घटनाका भारतके लिए खास महत्त्व है। पाठकोंको स्मरण होगा कि सम्राट् जब युवराज (प्रिंस ऑफ वेल्स) थे, वे भारत पधारे थे। तब अपनी उदारतासे उन्होंने उस छोटी-सी यात्रामें भी भारतवासियोंके दिलोंको जीत लिया था। जाहिर है कि उसके बाद अपने स्वभावकी इस खूबीको उन्होंने बहुत अधिक विकसित किया है। अतः क्या हमें यह आशा करनेका कारण नहीं है कि, जब कभी मौका आयेगा, अपनी पुण्यश्लोका माताकी भाँति अपने भारतीय प्रजाजनोंकी, भले ही वे उनसे हजारों मील दूर हैं, सिफारिश करनेमें वे चूकेंगे नहीं?

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, ६-८-१९०३

## ३०४. विभ्रम

जब हम देखते हैं कि लॉर्ड मिलनर निचले दर्जेकी रुचिको तुष्ट करना चाहते हैं, और वह भी सरकारी कागजोंमें, तब हमें दुःख होता है। भारतीय प्रश्नपर श्री चेम्बरलेनके नाम भेजे गये परमश्रेष्ठके खरीतोंसे साफ जाहिर होता है कि राजनयिक लॉर्ड मिलनरने *पालमाल*के सम्पादक श्री मिलनरको छोड़ नहीं दिया है। परमश्रेष्ठने अपने दो खरीतोंमें, जो हालमें ही समाचारपत्रोंमें छपे हैं, निम्नलिखित तीन वक्तव्य दिये हैं। उनके प्रति समुचित आदरका भाव रखते हुए हम यह कहनेके लिए विवश हैं कि ये तीनों बेबुनियाद हैं। वे लिखते है: (१) भारतीय व्यापारी और फेरीवाले ट्रान्सवालके लिए निरुपयोगी हैं। (२) भारतीय सारे देशपर छाये जा रहे हैं। (३) स्वच्छताकी और नैतिक दृष्टिसे भारतीयोंको पृथक् बसाना आवश्यक है। पहले दो मुद्दोंपर हम विचार कर चुके हैं। सरसरी तौरपर हम उपनिवेश-सचिवके वक्तव्यकी ओर ध्यान दिला देना चाहते हैं कि ट्रान्सवालमें केवल १०,००० भारतीय हैं। अर्थात् लड़ाईके पहले जितने थे उनसे आधे भी नहीं। और हफ्तेमें जहाँ यूरोपीयोंको सैकड़ों

परवाने दिये जाते हैं वहाँ भारतीयोंको केवल सत्तर दिये जाते हैं। इसके अलावा, उन बहुतसे भारतीयोंको बाहर खदेड़ दिया गया है, जो भूलसे बगैर परवानोंके उपनिवेशमें चले आये थे। स्वच्छताकी और नैतिक दृष्टिसे भारतीयोंको पृथक् बसाना जरूरी है! ऐसा लगता है मानो इसमें हम लड़ाईके पहले ऑरेंज फ्री स्टेटके राष्ट्रपतिके नाम स्वार्थी व्यापारियोंकी भेजी दरख्वास्तें पढ़ रहे हैं, जिनके अन्दर हर तरहकी अनैतिकताके आरोप ब्रिटिश भारतीयोंपर लगाये गये थे। उस समय ब्रिटिश सरकारके प्रतिनिधि उनसे हमारी रक्षा करते थे। उनको फिरसे जिन्दा करना और उनपर अपने ऊँचे पदकी मुहर लगाना यह काम लॉर्ड मिलनरके लिए बाकी था। परन्तु इसके समर्थनमें कोई प्रमाण प्रस्तुत करनेकी कृपा श्रीमान नहीं कर सके हैं। शान्त, शराबसे परहेज करनेवाला और परमात्मासे डरनेवाला परिश्रमी भारतीय जिस समाजके सम्पर्कमें आता है उसे नैतिक हानि पहुँचा सकता है, यह कल्पना 'नवल' है। ऐसा आरोप भूतपूर्व ट्रान्सवाल-सरकारने भी उसपर नही लगाया था। परमश्रेष्ठसे हम आदरपूर्वक निवेदन करते हैं कि सम्राट्के निर्दोष भारतीय प्रजाजनोंके प्रति न्याय करनेकी खातिर या तो वे अपने कथनको वापिस लें या तथ्योंको सामने लाकर उसे सिद्ध करें। गन्दगीके पिटे-पिटाये इलजामके बारेमें हम परमश्रेष्ठका ध्यान उन ढेरों सबूतोंकी ओर आकृष्ट करना चाहते हैं, जिन्हें सन् १८९६ में ब्रिटिश भारतीयोंने पेश किया था। आरोपका जितना भी अंश सत्य है वह गम्भीर नही है। क्योंकि, उसका मुख्य कारण भारतीयोंके प्रति अधिकारियोंकी लापरवाही है। जिस अंशको गम्भीर कहा जा सकता है वह निष्पक्ष यूरोपीयोंकी दृष्टिमें सत्य नही है। उदाहरणार्थ, डाक्टर वील कहते हैं:

> मैंने उनके शरीरोंको आम तौरसे स्वच्छ और लोगोंको गन्दगी तथा लापरवाहीसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंसे मुक्त पाया है। उनके मकान साधारणतः साफ रहते हैं और सफाईका काम वे राजी-खुशीसे करते हैं। वर्गकी दृष्टिसे विचार किया जाये तो मेरा यह मत है कि निम्नतम वर्गके भारतीय निम्नतम वर्गके यूरोपीयोंकी तुलनामें बहुत अच्छे उतरते हैं। अर्थात्, निम्नतम वर्गके भारतीय निम्नतम वर्गके यूरोपीयोंकी अपेक्षा ज्यादा अच्छे ढंगसे, ज्यादा अच्छे मकानोंमें और सफाईकी अवस्थाका ज्यादा खयाल करके रहते हैं। मेरे खयालसे, आम तौरपर भारतीयोंके विरुद्ध सफाईके आधारपर आपत्ति करना असम्भव है। शर्त हमेशा यह है कि, सफाई-अधिकारियोंका निरीक्षण भारतीयोंके यहाँ उतना ही सख्त और नियमित हो, जितना कि यूरोपीयोंके यहाँ होता है।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, ६–८–१९०३

## ३०५. सही विचार आवश्यक

बॉक्सबर्गके सज्जन एशियाई प्रश्नमें बराबर दिलचस्पी ले रहे हैं। परन्तु यह बड़े तरसकी बात है कि अपनी इस सरगरमीमें वे सही जानकारीका पुट देनेकी परवाह नहीं करते। इसमें गरीब एशियाइयोंके साथ तो अन्याय करते ही हैं, परन्तु अपने साथ भी न्याय नहीं करते। उनके प्रस्तावोंमें वह वजन नहीं हो सकता जो उस दशामें होता जब वे सत्यपर आधारित होते। फिर, गलत धारणाओंके आधारपर दिये गये फैसले न चाहते हुए भी उनके प्रति अन्याय करते हैं, जिनपर वे लागू होते हैं। हम देखते हैं कि अध्यक्ष श्री अलेक्जैंडर ऑसबर्नने उनकी एक सभामें इस प्रस्तावके समर्थनमें भाषण दिया जिसमें, कहा जाता है, उन्होंने निम्नलिखित बात कही: "अगर एशियाइयोंके बारेमें हालमें ही जारी किये गये अध्यादेशपर अमल किया गया तो उसका परिणाम उपनिवेशोंके यूरोपीय व्यापारियोंके हितोंका निश्चय ही अत्यन्त घातक होगा। इसलिए हम सरकारसे अनुरोध करते हैं कि इस अध्यादेशके बदले ट्रान्सवालकी भूतपूर्व सरकारने जो कानून जारी किया था उसीका वह सख्तीके साथ पालन करे। उससे परिस्थिति काबूमें आ जायेगी।" . . . "बॉक्सबर्ग संघ (चेम्बर) अपने न्याय-सम्बन्धी फैसलों और व्यापारी समुदायकी शिकायतोंको इतनी अच्छी तरह और प्रमुख रूपसे सामने लानेके अपने ढंगके कारण उपनिवेशके लिए गौरवकी वस्तु है।" बॉक्सबर्ग संघके "न्याय सम्बन्धी फैसलों" के प्रति उचित आदर प्रकट करते हुए हम उसके सदस्योंको याद दिलानेकी इजाजत चाहते हैं कि जिसे वे नया "अध्यादेश" बताते हैं वह ट्रान्सवालकी भूतपूर्व सरकारके कानूनपर अमल करनेके सरकारी निश्चयकी सूचनामात्र है। सरकार इस कानूनको सख्तीसे लागू करना चाहती है यह हम अनेक बार बता चुके हैं। इसलिए हम आशा करते हैं कि जो सज्जन यह संघ बनाये हुए हैं, वे भूतपूर्व गणराज्यके कानून और वर्तमान सरकारकी सूचनाको पढ़ जायेंगे, दोनोंकी तुलना करेंगे और स्वयं समझनेकी कृपा करेंगे कि बोअर शासन-कालमें इस कानूनका पालन किस प्रकार होता था। और फिर स्वयं ही इस प्रश्नका जवाब अपने आपको देंगे कि पुराने कानूनका ही पालन सख्तीके साथ किया जा रहा है या नहीं।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, ६–८–१९०३

## ३०६. तारकी व्याख्या[1]

जोहानिसबर्ग
अगस्त १०, १९०३

### अगस्त ४ के संलग्न तारकी सविस्तर व्याख्या

पिछले सप्ताह जो तार भेजा गया था उसकी प्रति संलग्न कर रहा हूँ; हम चिंताके साथ नतीजेकी राह देख रहे हैं।

तार सात हिस्सेमें विभाजित है:

(१) गैर-शरणार्थी भारतीयोंको उपनिवेशमें प्रवेश करनेकी अनुमति बिलकुल नहीं मिलती, जिसके कारण स्थानीय लोगोंको जबरदस्त असुविधा हो रही है।

(२) शरणार्थी भारतीय भी बहुत कम सख्यामें आने दिये जा रहे हैं।

(३) नेटालमें प्लेग है, यह बहाना लेकर नेटालसे भारतीयोंके आनेपर पूरी-पूरी रोक है। यूरोपीय और काफिर बेरोक-टोक आ सकते हैं। ट्रान्सवालके भारतीयोंको नेटाल आकर लौट जानेकी अनुमति है। इस तरह यह रोक प्लेगके बचावकी दृष्टिसे है, यह कहना कठिन है।

(४) श्री चेम्बरलेन लॉर्ड मिलनरके खरीते और वर्तमान भारतीय विरोधी कानूनपर भी विचार कर रहे हैं; फिर भी सरकारने १९ पृथक् बस्तियाँ रूप-रेखांकित कर दी हैं। कानूनमें परिवर्तन होनेतक वर्तमान कानूनके अन्तर्गत काम-चलाऊ उपाय किये जा सकते हैं; किन्तु अगर कानूनको सचमुच सुधारना है तो बस्तियोंको बनाकर पक्का उपाय करनेकी बात समझमें नहीं आती।

(५) श्री चेम्बरलेनने आश्वासन दिया था कि अंग्रेज-अफसरों द्वारा दिये गये पृथक् बस्तियोंके बाहर व्यापार कर सकनेके सब वर्तमान परवाने मान्य रहेंगे। किन्तु, ऐसे आश्वासनके सिवाय ब्रिटिश-विधानके अन्तर्गत भारतीय कमसे-कम यह आशा तो करते ही हैं कि उनके निहित स्वार्थोंकी, चाहे वे युद्धके पहले स्थापित हुए हों चाहे बादमें, अवहेलना नहीं की जायेगी। *बाजार*-सूचनाके मुताबिक, उनको खतरा है जिनके पास युद्धके पहले परवाने नहीं थे। लॉर्ड मिलनरके नाम मुद्रित प्रार्थनापत्र अभी विचाराधीन है; किन्तु लोगोंके मन शान्त करनेके लिए परवानोंके सम्बन्धमें जल्दी ही आश्वासन दिया जाना जरूरी है।

(६) पिछले साल लड़ाई छिड़नेके समय जिनके पास परवाने नहीं थे ऐसे कुछ भारतीयोंको परवाने दिये गये थे। इस साल हाकिमोंने इन्हें नये परवाने नहीं दिये। *बाजार*-सूचनाके मुताबिक कमसे-कम वर्षान्ततक ये परवाने बदल कर नये किए जाने चाहिए। जोहानिसबर्गका तहसीलदार उन्हें नया करनेसे इस बहाने इनकार करता है कि नये करनेकी उनकी मियाद निकल गई है; हालाँकि सचमुचमें सालके शुरूमें वे नये नहीं किये गये यह कसूर परवानादारोंका नहीं है।

१. यह वक्तव्य गांधीजी द्वारा दादाभाई नौरोजीको भेजा गया था। दादाभाईने इसे भारत-मंत्रीके पास भेजा। *इंडिया*में भी प्रकाशनार्थ भेजा गया था, जिसमें यह कुछ परिवर्तित रूपमें १८-९-१९०३ को 'हमारे जोहानिसबर्ग संवाददातासे प्राप्त' रूपमें प्रकाशित हुआ था।

(७) बताया जाता है कि लॉर्ड मिलनरने ऐसा कहा है कि स्वच्छताके तथा नैतिक तकाजेसे अनिवार्य पृथक्करण जरूरी है। यह दोषारोपण इतना गंभीर है कि इसका तार द्वारा खण्डन करना आवश्यक जान पड़ा। इसके बारेमें इस समय और कुछ कहनेकी जरूरत नहीं है। दोषारोपण ठीक हो तो भी व्यापारको पृथक् बस्तियोंतक सीमित कर देना न्याययुक्त नहीं कहा जा सकता। *इंडियन ओपिनियन*के सम्पादक इसके खण्डनमें एक वक्तव्यको उद्धृत करते हुए इस दोषारोपणके बारेमें अधिक विस्तारसे लिख रहे हैं।' मैं निवेदन करना चाहता हूँ कि इस पत्रकी व्यवस्था जिम्मेदार हाथोंमें है, और इसमें सही-सही जानकारी देने और अतिशयोक्तिसे हर हालतमें बचनेकी कोशिश की जाती है।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफ़िस: ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स, ४०२।

## ३०७. साक्षी: लॉर्ड मिलनरके अस्वच्छता-सम्बन्धी आरोपके विरुद्ध

ट्रान्सवालके अखबारोंमें एक तार छपा है, जिसमें बताया गया है कि ट्रान्सवालके वर्तमान कानूनमें संशोधन सुझाते हुए लॉर्ड मिलनरने अपने खरीतेमें भारतीय बस्तियोंकी अस्वच्छताके बारेमें विस्तारसे लिखा है। इस सिलसिलेमें डॉ० एफ० पी० मैरेस और डॉ० जॉन्स्टनने जो साक्षी दी है उनके अंश हम नीचे दे रहे हैं।

पाठकोंको स्मरण होगा कि डॉक्टर मैरेस लगभग दस वर्षसे जोहानिसबर्गमें डॉक्टरी कर रहे हैं, भारतीयोंमें उनका धंधा बहुत चलता है और वे एडिनबर्गकी एम० डी० उपाधिसे विभूषित हैं। डॉ० जॉन्स्टन सफाईके विशेषज्ञ हैं, एडिनबर्गके रॉयल कॉलिज ऑफ सर्जन्सके फेलो हैं और एडिनबर्ग तथा ग्लासगोसे सार्वजनिक स्वास्थ्यका डिप्लोमा प्राप्त हैं। दक्षिण आफ्रिकाका उनका अनुभव बहुत व्यापक है।

जोहानिसबर्गके अस्वच्छ क्षेत्र सुधार-योजना आयोगके समक्ष बहुत-सा सबूत पेश हुआ है। वह गत २२ जनवरीको प्रकाशित कर दिया गया है। जिनके पास समय हो, वे कृपा करके वह सब पढ़ जायें। इसमें जोहानिसबर्गके स्वास्थ्य-अधिकारी डॉ० पोर्टरकी भी गवाही हुई थी। डॉ० जॉन्स्टनकी भी हुई थी। डॉ० जॉन्स्टनसे जिरहमें जब कहा गया कि वे डॉक्टर पोर्टरके कथनके साथ अपने कथनकी तुलना करके बतायें तो उन्होंने बहुत-सी दिलचस्प बातें कहीं थीं। हमने वे सब बातें यहाँ नहीं दी है।

डॉ० पोर्टर एक बहुत प्रतिष्ठित सज्जन हैं। परन्तु उन्हें दक्षिण आफ्रिकाके जीवनका अनुभव लगभग नहींके बराबर है। उनकी नजरोंमें जो चीज लंदनमें पाये जानेवाले मानदण्डतक नहीं पहुँचती, और मैली या भद्दी है, वह सब बिलकुल गन्दी है। उनकी गवाहीकी व्याख्या केवल एक ही शब्दसे की जा सकती है, वह शब्द है, पागलपन। एक उदाहरण लीजिए। जोहानिसबर्गकी बस्तीके भारतीयोंके बारेमें ये फरमाते हैं: "कभी डॉक्टरको बुलानेकी बात तो वे सोचते ही नहीं, और बीमारीके अस्तित्वको शुतुर्मुर्गकी भाँति छिपा रखनेको ही ठीक मानते हैं।"

१. देखिए: अगला शीर्षक।

जब डॉक्टर जान्स्टनसे पूछा गया कि इसपर उन्हें क्या कहना है, उन्होंने खरा जवाब दिया: "डॉक्टर मैरेसकी विरोधी गवाही आपके सामने है।"

जवाब निर्णायक है। डॉ० मैरेस भारतीयोंके बीच नौ वर्षसे डॉक्टरी करते आ रहे हैं। डॉ० पोर्टरने खुद ही स्वीकार किया है कि उन्हें भारतीयोंका कोई अनुभव नहीं है। तब उन्होंने कैसे कह दिया कि "वे डॉक्टरको बुलानेका विचारतक नहीं करते।" या "वे बीमारीके अस्तित्वको छिपाते हैं?"

फिर भी, उपर्युक्त दोनों सज्जनों द्वारा दी गई गवाहियोंके जो अंश हम उद्धृत कर रहे हैं, वे अपने मानी खुद कहें:

### *डाक्टर एफ० पी० मैरेसकी गवाही: आम हालतपर (भारतीय)*

प्रश्न: आप उनके बीच लम्बे अरसेसे डॉक्टरी कर रहे हैं?

उत्तर: जी, लगभग आठ-नौ वर्षों से।

प्रश्न: क्या आपकी डॉक्टरी उनमें बहुत चलती है?

उत्तर: जी, उनके बीच मेरी डॉक्टरी अच्छी चलती है।

*स्थिति:* भारतीय बस्ती अच्छी जगहपर बसी है। क्योंकि वह ढालपर है। और ढाल अच्छा है। इसके अलावा, उसकी नीचेकी सीमापर एक गहरी खाई-सी है जो नालीका काम करती है।

*पासपड़ोसकी हालत*

उत्तरी ओर — पूर्णतः स्वच्छ

दक्षिणी ओर — अच्छा

पूर्वी ओर — इस बड़े खुले मैदानपर अभी हालतक लगभग सारे जोहानिसबर्गका कूड़ा-कर्कट डाला जाता रहा है। अतः यह गन्दी हालतमें है।

पश्चिमी ओर — केलीका मकान, साफ सुथरा। इसके परे अत्यन्त लज्जाजनक, क्योंकि वहाँपर नगर-परिषद्की कचरा-गाड़ियाँ और अन्य लोग हर तरहकी गन्दगी, कूड़ा और खाद डालते रहते हैं।

इससे ज्ञात होगा कि बस्ती शहरसे काफी दूर है और उसके आसपासकी जगह अच्छी है। *केवल वह हिस्सा गन्दा है, जिसे पिछली और वर्तमान नगर-परिषद्ने गन्दा बना दिया है।* (बस्तीकी उत्तरी सीमासे कुछ ही गजकी दूरीपर) फोर्ड्सबर्गके उत्तरवाले चौगानमें जो कूड़ा आदि पड़ा हुआ है उसके लिए नगर-परिषद जिम्मेदार है।

*छूतकी बीमारियाँ*

जबसे भारतीयोंको जबरदस्ती अलग बसाया गया है, कुली बस्तीसे जोरदार पेचिशके केवल दो मरीज मेरे पास आये हैं। मोतीझरा ज्वरका एक भी मरीज नहीं आया। जूड़ी-बुखारवाले कुछ मरीज आये, परन्तु वे यह बीमारी डेलागोआ-बेसे लेकर आये थे। कंठशोथ (डिप्थीरिया) का एक भी मरीज नहीं मिला। पर हाल हीमें फ्रीडडार्पमें चार, फोर्ड्सबर्गमें चार और बर्गर्सडार्पमें, हाफमनकी पुरानी शराबकी दूकानके पीछे एक मरीज मुझे मिला था।

*घरों और अहातोंकी हालत*

मुझे ७१ और ७७ नम्बरके बाड़े (बैरॉक) मय उनपर खड़े मकानोंके देखनेके लिए कहा गया था। मैंने ७१ नम्बरको ईंटकी अच्छी बनी इमारतके सहित स्वच्छ पाया। कमरे बड़े, ऊँचे और हवादार थे। पाखाने भी ईंटके बने थे। आँगन स्वच्छ था।

बाड़ा ७१: ईंटकी इमारत, बड़े और हवादार कमरे, आँगन स्वच्छ।

बाड़ा ३६: लोहेका मकान, बड़े कमरे, ऊँचे और हवादार। आँगन वगैरह साफ।

### *नगर परिषदकी लापरवाही*

श्री बाल्फोर: अब, जरा उस विवरणकी तफसीलके तौरपर — आप पश्चिमी तरफकी कचरा-गाड़ियोंके बारेमें हमें क्या बतानेवाले थे? — यह कि, जबसे नई परिषद नियुक्त हुई है तभीसे इस चौकपर कूड़ा, खाद वगैरह डाला जाने लगा है, जिसे और कहीं डालनेके लिए जगह ही नहीं मिलती।

हालमें आपने वहाँ कोई गाड़ियाँ देखी हैं? — उन्हें रोज ही देखता हूँ। और कुछ दिन हुए मैं सफाईके नये प्रबन्धकके पास गया था और उनसे शिकायत की थी कि वहाँ कूड़ा-कचरा डाला जा रहा है। उस समय मुझे इस बातका निश्चय नहीं था कि वे गाड़ियाँ सफाईवालोंकी हैं या नहीं।

श्री फॉर्स्टर: यह कबकी बात है? — कोई पन्द्रह दिन पहलेकी। मैंने नये सफाई-प्रबन्धकसे शिकायत की थी। उन्होंने जवाब दिया कि उन्हें न इसकी जानकारी है और न वे इस सम्बन्धमें कुछ कर सकते हैं। और मुझे लौट जाना पड़ा।

अध्यक्ष: यह तो सबूत नहीं हुआ।

श्री बाल्फोर: नहीं। इस विषयमें मैं आपका निजी अनुभव सुनना चाहता हूँ। — जी, उसके बाद मैं पता लगानेके लिए गया कि वे गाड़ियाँ नगर-परिषदकी ही हैं या नहीं।

क्या आप खुद गये? — हाँ, मैं खुद गया था। और मैंने देखा कि वे गाड़ियाँ सफाईवालोंकी ही थीं। कल सवेरे मैंने सफाई विभागकी दो गाड़ियोंको वहाँ कूड़ा-कचरा डालते देखा था।

### *भारतीयोंका स्वास्थ्य*

अब, कुली-बस्तीके अपने मरीजोंका आपको जो प्रत्यक्ष अनुभव है उस परसे बताइए कि इन लोगोंमें मोतीझराके बारेमें आपको क्या कहना है? — मोतीझरा खास तौरपर गन्दगीसे पैदा होनेवाली बीमारी मानी जाती है। कुली बस्तियोंकी स्थितिका अन्दाजा आप केवल इसी बातसे लगा सकते हैं कि पिछले नौ महीनोंमें मेरे पास मोतीझराका एक भी मरीज नहीं आया। यह कुली-बस्तीके लिए तारीफकी बात है।

क्या आपकी रायमें कुलियोंको मोतीझरा नहीं होता? — मेरा खयाल है, मोतीझरा उनको भी वैसे ही हो सकता है जैसे दूसरे मनुष्योंको।

आँतोंकी बीमारीका कोई मरीज आपके पास आया? — एक भी नहीं।

### *सफाईके प्रबन्धमें लापरवाही*

अब, वहाँ सफाईके प्रबन्धके बारेमें बताइए। आपके अनुभवमें वह कैसा है — अच्छा, बुरा, या लापरवाहीका? — मेरे खयालसे लापरवाही बहुत है।

कभी वहाँकी बाल्टियाँ देखनेका अवसर आपको मिला है? — हाँ; सितम्बरके आरम्भमें मैं एक बुढ़ियाका इलाज करने गया था। वह क्षयकी मरीज थी। उसका उल्लेख मैंने अपनी रिपोर्टमें किया है। वहाँ मैंने तीन बाल्टियाँ एक कतारमें रखी हुई देखीं। तीनों बिलकुल भरी हुई, ऊपरसे बह रही थीं। अधिकारियोंको उन्हें गाड़ीमें ले जाना चाहिए था।

सफाईके प्रबन्धके बारेमें सड़कोंपर कभी कोई बात आपने देखी है? — एक दिन मैं उधरसे जा रहा था। एक कुलीने मुझे बुलाकर दिखाया कि दो बाल्टियोंको आम रास्तेपर ही खाली किया जा रहा था। इसकी शिकायत वह नगर-परिषदके पास पहुँचाना चाहता था। इसलिए वह मुझसे इस बातका प्रमाणपत्र चाहता था कि मैंने उसे देखा था। मैंने लिख दिया कि मैंने सड़कपर बाल्टियोंकी गन्दगी फैली देखी थी; परन्तु बाल्टियोंको खाली करते हुए नहीं देखा था। मैंने गन्दगी देखी थी। इसमें कोई शक नहीं कि वह गन्दगी बाल्टियोंकी ही थी।

### *गरीब गोरे और गरीब भारतीय: एक तुलना*

अब बस्तीके घनेपनकी बात। क्या आपका खयाल है कि कुली-बस्तीकी आबादी बहुत घनी है? — मैं नहीं समझता कि यह लगभग उतनी ही बुरी है जितनी कि फेरेरा-नगरके कुछ हिस्सों और जोहानिसबर्गके कुछ हिस्सोंकी है।

आपको कभी रातमें कुली बस्तीमें जानेका मौका पड़ा है? — जी हाँ, कुलियोंमें सब जगह मेरा इलाज चलता रहता है और मैंने देखा है कि फेरेरा-नगरमें यूरोपीयोंकी आबादी बहुत घनी है। मैं तो कहूँगा, कुली बस्तियोंसे कहीं अधिक घनी है।

गरीब गोरोंकी बस्तियोंका क्या हाल है? क्या वहाँ भी ऐसी ही घनी आबादी है? — हाँ, मार्केट-गाड़ियोंके स्टेशनके पास आबादी बहुत ही घनी है। यही हाल कार्क स्ट्रीट और जेपी स्ट्रीटके पश्चिमी छोरका भी समझिए। दोनों जगहोंकि गरीब गोरोंकी बस्तियाँ बहुत घनी हैं।

*जिरह — क्या पृथक् बस्ती स्वच्छ है?*

कुली बस्ती — क्या आप अपनी डॉक्टरी साखको दाँवपर चढ़ा कर कह सकते हैं कि कुली बस्ती स्वच्छ जगह है? — मैं कह सकता हूँ कि वह उतनी ही स्वच्छ है जितने जोहानिसबर्गके अनेक हिस्से।

क्षमा कीजिए, इसपर हम बादमें आयेंगे। हम कुली बस्तीपर विचार कर रहे हैं। क्या आप यह कहनेके लिए तैयार हैं कि आपकी रायमें यह क्षेत्र स्वच्छ है? — मैं कह सकता हूँ कि जोहानिसबर्गके किसी भी स्थानकी जमीन जितनी अच्छी है, उतनी ही यहाँकी भी है?

मिट्टीको छोड़िए। मैं तो सारे क्षेत्रकी बात पूछ रहा हूँ। — कुछ मकान अवश्य अस्वच्छ हैं। परन्तु ज्यादातर अस्वच्छ नहीं हैं।

मेरा प्रश्न था कि क्या कुल मिलाकर यह क्षेत्र स्वच्छ है? — कुल मिलाकर, मैं कहूँगा, यह क्षेत्र स्वच्छ है।

आप कहते हैं कि कुल मिलाकर आप इस क्षेत्रको स्वच्छ मानते हैं? — हाँ।

कुली बस्तीको? — हाँ, मैं इन लोगोंमें पिछले दस वर्षसे हूँ। और अब तो मैं लगभग हर घरसे वाकिफ हूँ।

और इस बस्तीके डॉक्टरके नाते और अपने निकटके अनुभवसे आप कहते हैं कि कुल मिलाकर यह क्षेत्र स्वच्छ है? — कुल मिलाकर यह स्वच्छ है।

आप जानते हैं कि जोहानिसबर्गमें डॉक्टरी करनेवाले बहुतसे सज्जनोंने इसके विपरीत गवाहियाँ दी हैं? — मैं जानता हूँ कि डॉक्टरोंमें मतभेद होता है।

और आप उनसे अलग राय देनेको तैयार हैं? — मैं तैयार हूँ।

## डॉक्टर जॉन्स्टनकी गवाही

*डॉ० जॉन्स्टन, एक तज्ञ : भारतीय बस्तीके मकानोंकी हालतपर*

श्री बाल्फोर द्वारा पूछताछ।

आप एडिनबर्गके रॉयल कॉलेज ऑफ सर्जन्सके फेलो हैं? — हाँ।

और आपके पास एडिनबर्ग तथा ग्लासगोके सार्वजनिक स्वास्थ्यके डिप्लोमा भी हैं? — हाँ, ग्लासगो और एडिनबर्गके डिप्लोमा।

जोहानिसबर्गमें आप कितने अरसेसे डॉक्टरी कर रहे हैं? — अगस्त सन् १८९५से।

और ट्रान्सवालमें कितने अरसेसे? — ट्रान्सवालमें भी तभीसे।

तो, अब कुली बस्तीके मकानोंके बारेमें। मुझे ज्ञात हुआ है कि पिछली बार आपने वहाँ घर-घर जाकर जाँच की थी? — हाँ।

और एक-दो दिन पहले भी आपने काफी मकानात देखे? — मैंने कुछ मकानात जरूर देखे।

तो, आमतौरपर, इन बाड़ोंके मकानोंके बारेमें आपकी क्या राय है? — कुछ बाड़े ऐसे हैं जहाँ बस्ती बहुत घनी है। अर्थात्, वहाँ मकानात बहुत पास-पास हैं। डॉ० पोर्टरने इन्हें "तंग आँगनोंका जखीरा" कहा है। केवल, दो-तीन जगहें ऐसी हैं, जिनपर यह वर्णन लागू हो सकता है। परन्तु सारी बस्तीमें तो मकान बहुत घने नहीं हैं। लगभग हर बाड़ेके मकानोंके बीच एक वर्गाकार आँगन है। अधिकतर जगहोंमें

मकान अहातेके गिर्द बने हुए मिलेंगे। मैंने तो ऐसा एक भी मकान नहीं देखा जिसमें आँगन न हो। अगर किसी बाड़ेमें आँगन नहीं है तो उससे लगे हुए बाड़ेमें जरूर आँगन है। मुझे पता नहीं कि भारतीय आमतौरपर इसी तरहके मकान बनाते हैं या नहीं, परन्तु इन बस्तियोंमें जरूर इसी तरहके मकान बने हैं।

क्या आमतौरपर ये आँगन स्वास्थ्यकी दृष्टिसे काफी चौड़े हैं? — हाँ। और मैं तो समझता हूँ, ये आँगन रखनेमें भारतीयोंने बहुत समझदारीसे काम लिया है।

क्या वे हवा-प्रकाशके लिए काफी चौड़े हैं? — हवा-प्रकाशके लिए वे बहुत ही अच्छे हैं। मकानोंके अन्दर बैठनेकी अपेक्षा वे प्रायः इन आँगनोंमें ही बैठते हैं।

आँगनके इर्द-गिर्द कमरे बनानेका नतीजा यह है कि हर कमरेका दरवाजा आँगनमें खुलता है? — हाँ, आँगनमें खुलता है।

कुछ मकान आपने ऐसे भी देखे जो बहुत खराब थे? — कुछ बेमरम्मतीकी हालतमें थे।

*क्या आप सबसे बुरा मकान बतायेंगे? — सबसे बुरा मकान मैंने २८ नम्बरके बाड़ेमें देखा। उसके मालिकका नाम बैजनाथ था।*

इस मकानमें क्या खराबी थी? — इस बाड़ेमें मुख्य मकानके सामने एक दूसरा फूसकी टट्टियोंका मकान था। वह मुख्य मकानपर बल्लियाँ रखकर बनाया गया था। मैं उसे देखना चाहता था, क्योंकि मुझे वह खास तौरपर बुरा दिखाई दिया। इसलिए मैं जिस आदमीके साथ गया था उससे मैंने कहा कि मैं वह मकान देखना चाहता हूँ। वह मुझे वहाँ ले गया। इस नीचे फूसके मकानको मैंने देखा और उसके पासवाले आँगनमें मुझे रद्दी टिनके कई छोटे-छोटे झोंपड़े-से दिखाई दिये। ये सब अत्यन्त गन्दे थे। और यद्यपि मैं कहूँगा कि इन झोंपड़ोंमें काफी हवा आ सकती थी, फिर भी ये ऐसे नहीं थे जिनका जोहानिसबर्गमें रहना कोई पसन्द करे। इस आँगनके बीचमें मुझे बहुत-सी ईंटें दिखाई दीं और मैंने पूछा कि ईंटें यहाँ किसलिए हैं?

श्री फॉर्स्टर: मैं नहीं समझता कि इसे गवाही कहा जा सकता है।

गवाह: मुझसे कहा गया कि ये ईंट नया मकान बनानेके लिए रखी हैं। उस भारतीयने मुझसे यही कहा।

श्री फॉर्स्टर: आपसे किसने क्या कहा, यह मैं नहीं जानना चाहता।

श्री बालफोर: आप कहते हैं, डॉक्टर, कि उसे आपने सबसे खराब मकान पाया। क्या ऐसा खराब मकान कोई और भी था? — नहीं। मुझे याद नहीं पड़ता कि इतना खराब कोई और भी मकान था। बस वही एक फूसका मकान था।

अच्छा, अगर आप जोहानिसबर्गके सर्वेसर्वा होते तो उस मकानका क्या करते? — मैं उसे गिरवा देता और उसके स्थानपर सफाईके नियमोंके अनुसार दूसरा मकान बनवानेके लिए उनसे कहता।

बस्तीमें और भी कोई मकान ऐसे हैं जिनके बारेमें आप इस तरहकी कारवाई करते? — बिलकुल सिरेमें शायद एक दो मकान और हों। परन्तु मैंने जो बाड़े गत जून महीनेमें देखे थे, उन्हें एक-एक करके अब याद नहीं कर सकता। शायद एक दो बाड़े और हों — फूसके नहीं लोहेके मकान, जिनमें सुधारकी जरूरत हो।

और अगर आप सर्वेसर्वा होते तो कुल कितने मकानोंको एकदम निकम्मे करार देते? — मैं कितने मकानोंको निकम्मा करार देता यह अन्दाज तो मैंने नहीं लगाया, परन्तु मुझे नहीं लगता कि ऐसे बहुत अधिक मकान होंगे जिनको सिर्फ सफाईकी दृष्टिसे मैं निकम्मा ठहराता। गत जून मासमें मैंने जो टिप्पणियाँ तैयार की थीं, वे मेरे पास नहीं हैं।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, १३-८-१९०३

## ३०८. भ्रम निवारक

### श्री मूअरकी रिपोर्ट

ट्रान्सवालके सहायक उपनिवेश-सचिव श्री मूअरकी रिपोर्ट हम अन्यत्र दे रहे हैं। ब्रिटिश भारतीयोंके लिए वह एक स्थायी महत्त्वकी वस्तु है, क्योंकि उसमें सन् १९०२ की ३१ दिसम्बरको और उस दिनतक ब्रिटिश भारतीयोंकी जो स्थिति थी उसे सारांशमें बताया गया है। यद्यपि स्थिति तबसे बहुत बदल गई है फिर भी उस रिपोर्टसे सरकारके इरादोंकी अच्छी-खासी कल्पना होती है। कमसे-कम एक बातमें सरकारने अपना रुख भारतीयोंके बहुत विरुद्ध कर लिया है। हमारा मतलब ३ पौंडी पंजीकरण-नियमको लागू करनेसे है। आलोच्य रिपोर्टमें श्री मूअर कहते हैं कि यह ३ पौंडी पंजीकरण-नियम लागू नहीं किया जायेगा; किन्तु इसे अधिकतम सख्तीके साथ कार्यान्वित किया गया है। बहुत-से लोगोंपर मामले दायर कर दिये गये हैं और कुछ लोगोंपर, जिन्होंने पंजीकरण नहीं कराया, जुर्माने हो गये हैं।

श्री मूअरने लिखा है कि पिछली हुकूमतकी कार्यकारिणीके प्रस्ताव ११०१ में ज्ञापित किया गया है कि वह सन् १८८५ के कानून ३ पर अमल करेगी; तदनुसार लड़ाईके पहलेतक उसका बराबर अमल हो रहा था; किन्तु जब ब्रिटिश भारतीय उपनिवेशसे चले गये तब उनके अमलका कोई कारण नहीं रहा। श्री मूअरके इस कथनमें हम एक सुधार करना चाहते हैं। निःसन्देह यह सच है कि उसपर अमल करनेका प्रयत्न हुआ था, परन्तु तत्कालीन ब्रिटिश एजेंट और उप-राजप्रतिनिधिने हस्तक्षेप किया। फलतः आगे कोई कार्यवाही नहीं हुई। और जब बोअर-सरकारसे विभिन्न जिला मजिस्ट्रेटोंकी जारी की गई विज्ञप्तिके बारेमें पूछा गया तो ब्रिटिश एजेंटने यह आश्वासन पाया कि उस कानूनपर अमल नहीं किया जायेगा। एक भी भारतीय कभी बस्तियोंमें जानेपर मजबूर नहीं किया गया और न किसीको बस्तियोंके बाहर व्यापार करनेसे रोका गया।

भारतीयोंके रहनेके विषयमें यूरोपीयोंकी आपत्तियोंका जो सार श्री मूअरने दिया है उसमें भी वस्तुस्थितिके ज्ञानकी वही कमी है जिसका विवरण ब्रिटिश भारतीय दे चुके हैं। इसलिए हम फिलहाल उनके बारेमें कुछ नहीं कहेंगे।

श्री मूअरके प्रति समुचित आदर प्रकट करते हुए हम कहेंगे कि श्री मूअर भी वही गलती कर रहे हैं जो आम लोग करते हैं। वे भारतीय मजदूरोंके प्रवास और उन लोगोंके आनेमें कोई अन्तर नहीं करते जो ट्रान्सवालमें स्वतन्त्र लोगोंकी हैसियतसे अपने खर्चसे आना चाहते हैं। स्पष्ट है कि इसी प्रकार वे नेटालके गिरमिटिया प्रवासी-अधिनियमको स्वतन्त्र रूपसे आये हुए भारतीयोंपर भी लागू मानकर इस मान्यताके अनुसार एक ऐसा नया कानून बनानेकी बात सुझाते हैं जो दक्षिण आफ्रिकाके अन्य उपनिवेशोंमें बने कानूनोंके समान हो। किसी अन्य आधारपर उनका प्रस्ताव समझमें नहीं आ सकता, क्योंकि उसमें वे सुझाते हैं कि (प्रथमतः) अनुमतिपत्र उन्हीं भारतीयोंको दिये जायें जो किसी जिम्मेदार मालिकका शर्तनामा पेश करें, (दूसरे) वे ५ पौंड फी आदमीके हिसाबसे पंजीकरण-शुल्क जमा करायें, और (तीसरे) उनके आवागमनपर नियन्त्रण रखा जा सके, इस हेतु हर आदमी एक-एक शिलिंग देकर पास निकलवा ले। पहले सुझावमें यह मान लिया गया है कि हर एशियाई ट्रान्सवालमें एक गिरमिटिया मजदूरकी हैसियतसे ही आ सकता है। ५ पौंड जमा करानेवाले सुझावमें, मालूम होता है, हेतु नेटालके उस कानूनका

अनुकरण करनेका है, जिसके अनुसार अपने गिरमिटकी अवधि पूरी होनेपर उस उपनिवेशमें बसनेकी इच्छा करनेवाले गिरमिटिया मजदूरपर सालाना ३ पौंडका जुर्माना मढ़ा गया है। हमारा खयाल है, पास निकलवानेके सुझावका उद्गम भी नेटालके कानून ही हैं। इससे प्रकट होता है कि नेटालके मजदूरोंका नियन्त्रण करनेवाले कानून और प्रवेशके नियन्त्रण-सम्बन्धी कानूनोंका भेद श्री मूअरके ध्यानमें नहीं आया है।

यद्यपि हम मान सकते हैं कि श्री मूअरसे यह गड़बड़ी अनजानमें हुई है, तथापि इससे ब्रिटिश भारतीयोंके साथ बहुत बड़ा अन्याय हो रहा है; और चूंकि यह अधिकारपूर्ण ढंगसे कहा गया है, इसलिए ट्रान्सवाल और बाहरके लोगोंके दिलोंपर इसका गलत प्रभाव पड़ सकता है। तथापि हम आशा करते हैं कि इन प्रस्तावोंपर अब अधिक लिखना अनावश्यक है, क्योंकि उसके बाद सरकारकी नीतिमें काफी परिवर्तन हो गया है और नया कानून बनानेपर विचार हो रहा है।

परन्तु इस रिपोर्टसे यह तो स्पष्ट है कि ट्रान्सवालमें हमारे देशभाइयोंको अनपेक्षित क्षेत्रोंसे आ सकनेवाले खतरोंके प्रति सदा सावधान रहनेकी कितनी अधिक आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त, इससे यह भी बहुत स्पष्ट हो जाता है कि ब्रिटिश भारतीयोके खिलाफ फैले हुए अधिकांश दुर्भावकी जड़में पर्याप्त जानकारीकी कमी है। इसलिए प्रत्येक भारतीयको भारतीय समाजकी आदतों और आकांक्षाओंके बारेमें सही जानकारीका प्रचार करके वर्तमान दुर्भावको दूर करनेका निश्चित प्रयत्न करना अपना कर्तव्य मानना चाहिए। इसका सबसे उत्तम तरीका यही है कि हममें से प्रत्येक मनुष्य अपना जीवन आदर्श भारतीयका-सा बनानेका यत्न करे। जिसे भारतका थोड़ा-सा भी ज्ञान है — और यह तो भारतीय बच्चे-बच्चेको होना चाहिए — वह जानता है कि आदर्श भारतीयका जीवन कैसा होता है।

अपनी इस रिपोर्टके अन्तिम भागमें श्री मूअर कहते हैं: "कुल मिलाकर भारतीय इन *बाजारों*-सम्बन्धी नियन्त्रणोंको पसन्द करेंगे, क्योंकि पूर्वमें जिन परम्पराओंका उन्हें अनुभव है उन्हींके अनुकूल योजनाओंके आधारपर ये कायम किये गये हैं।" और "उन्हें ऐसा दिख रहा है कि उनके व्यापारको एक निश्चित क्षेत्रमें घना कर देने और ला रखनेसे उनके व्यवसायकी सीमा बढ़ेगी और बहुत अधिक संख्यामें ग्राहक आकर्षित होकर वहाँ आयेंगे।" लेकिन हमारे लिए यह जानकारी बिलकुल नई ही है। और जबतक हमारे सामने कोई निश्चित सबूत नहीं आ जाता तबतक हम विश्वास नहीं कर सकते कि किसी जिम्मेदार भारतीयने ऐसी बात कही होगी। यह तो आत्महत्या है और भारतीय समाज गत पन्द्रह वर्षोंसे ट्रान्सवालमें अलग भारतीय बस्तियाँ बनानेके कानूनको हटवानेके जो प्रयत्न कर रहा है, उनके विपरीत है। यह कैसे सम्भव है कि कोई समझदार भारतीय एकाएक अपना मत बदल दे और *बाजार* या बस्ती नामकी जगहपर जबरदस्ती भेजनेकी बात स्वीकार करके उसकी हिमायत करने लगे।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, १३-८-१९०३

## ३०९. ग्रेटाउनका स्थानिक निकाय

ग्रेटाउनका स्थानिक निकाय (लोकल बोर्ड) इस आशंकासे बड़ा परेशान है कि हाल ही में जिस जमीनकी बिक्री खोली जानेवाली है, उसे कहीं कोई भारतीय न खरीद ले, या पट्टेपर न ले ले। उसने इसमें सरकारसे संरक्षण चाहा है। जवाबमें मुख्य उप-सचिवने लिखा है कि मामला परमश्रेष्ठ गवर्नरकी सेवामें पेश कर दिया है और उन्होंने कागजात श्री चेम्बरलेनके विचारार्थ भेज दिये हैं। निकायके एक सदस्य श्री मीकका कथन है कि "जवाबकी राह देखते हुए मामलेको अगले सालतक लटकाये रखना दिक्कतकी बात है।" निकायने कह दिया सो कह दिया। उसपर तुरन्त अमल होना चाहिए। लिखा है: "प्रारम्भमें [भगवानने] कहा, प्रकाश हो जाये, और प्रकाश हो गया।" इसी प्रकार अब ग्रेटाउन स्थानिक निकाय ब्रिटिश भारतीयोंके बारेमें फरमान देगा, और कौन है जो उस पर 'ना' कहे! सचमुच हम समझ नहीं पाते कि जब भारतीयोंका सवाल होता है तो हमेशा अनुचित रास्ता ही क्यों सुझाया जाता है। पहले तो, हम नहीं समझते, ग्रेटाउनके रिहायशी क्षेत्रमें किसी भारतीयके जमीन खरीदनेका कोई खतरा है। दूसरे यदि वह उपनियमों और आसपासके मकानोंके अनुरूप वहाँ कोई चीज खड़ी करता है तो इसमें दूसरोंको आपत्ति क्या है? दूसरोंकी भाँति नियमोंका पालन उससे अवश्य कराया जाये। किन्तु यदि भारतीयोंकी भावनाका थोड़ा-सा भी खयाल रख लिया जाता तो यह सारी कठोरता चली जाती और उपनिवेशियोंको भारतीयोंकी मौजूदगीसे किसी तरहकी असुविधाका खतरा भी न उठाना पड़ता।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, १३–८–१९०३

## ३१०. आखिरी जवाब

बॉक्सबर्गके स्वास्थ्य-निकायने अपने नगरकी भारतीय बस्तीको वन ट्री हिल [एक पेड़वाली टेकरी] पर ले जानेका जो प्रस्ताव किया है उसे लेकर श्री मूअर और स्वास्थ्य-निकायके बीच झगड़ा हो रहा है। इस सम्बन्धमें हमारी टिप्पणी उद्धृत करके और उसका उत्तर देकर *ईस्ट रैंड एक्सप्रेस*ने हमें सम्मानित किया है। हमारे सहयोगीका मन्तव्य है, ऐसा कह कर कि बस्तियोंकी जगहें केवल सरकार ही निश्चित कर सकती है, हमने जरूरतसे ज्यादा वकालत की है। धृष्टता क्षमा हो, हमने ऐसा कुछ नहीं किया है। अपने सहयोगीको हम याद दिलाना चाहते हैं कि यह सरकारी विज्ञप्ति घोषणा भी नहीं है। वह केवल सरकारके ट्रान्सवालके एशियाई-विरोधी कानूनपर अमल करनेके इरादेको प्रकट करती है, और इस कानूनका किस तरह और किस हदतक पालन हो इस सम्बन्धमें कुछ नियम निर्धारित करती है। हमारे सहयोगीको इतना ज्ञान तो होना चाहिए कि सरकार उस कानूनमें कुछ कम-ज्यादा नहीं कर सकती, केवल विधान-परिषद ऐसा कर सकती है। अब, कानून कहता है: "सरकारको यह अधिकार होगा कि वह उनके रहनेके लिए खास मार्ग, मुहल्ले या बस्तियाँ निश्चित कर दे।" इसलिए कानूनके अन्तर्गत नगर-परिषदों और स्वास्थ्य-निकायोंको कोई रक्षित सत्ता नहीं दी गई है। इससे स्पष्ट है कि

जब ज्ञापन कहता है कि उपनिवेश-सचिव स्थानिक निकायोंकी सलाहसे वस्तियोंका निश्चय करें तो वह इन निकायोंको केवल मान प्रदान करता है। साथ ही वह अपेक्षा करता है कि ये निकाय अपनी हदतक समझदारीका परिचय देंगे। और, कुछ न कहें तो भी, हमें ऐसा तो लगता ही है कि जो बात केवल शिष्टाचारके रूपमें कही गई है उसे अपना अधिकार समझकर बॉक्सबर्गका स्वास्थ्य-निकाय जब उपनिवेश-सचिवपर हावी होनेका यत्न करता है तो यह उचित नहीं है। हमने इसपर बहुत विस्तारसे इसलिए विचार किया कि हम अनुभव करते है, स्वास्थ्य-निकायने जो पक्ष ग्रहण किया है वह स्पष्ट ही कानून-सम्मत नहीं है। अच्छा होता अगर सहयोगी वे वाक्य न लिखता जो उसने अपने जवाबके अन्तमें लिखे हैं। ऐसा लगता है कि वर्तमान बस्तीमें रहनेवाले भारतीयोंको उनमें एक धमकी है। हमको इस विचार-मात्रसे दुःख होता है कि बॉक्सबर्गके निवासी अपने आपको तथा साम्राज्यके बन्धनोंको भूलकर कानूनको अपने हाथमें ले लेंगे और अगर इन वस्तियोंमें रहनेवाले भारतीय धमकियोंसे डर जायें तो वे यहाँसे हटनेके ही योग्य हैं। दक्षिण आफ्रिकामें कायरोंके लिए कोई स्थान नहीं है। इस मौकेपर हमें वह घटना याद आती है जो कुछ वर्ष पहले अलीवाल-नार्थमें घटी थी। एक भारतीय व्यापारी अपने विक्रेता-परवानेको नया करवाना चाहता था। यह परवाना बरसोंसे उसके पास था। स्थानीय यूरोपीय नहीं चाहते थे कि उसे यह दिया जाये, फिर भी मजिस्ट्रेटने उनकी नहीं सुनी। उसे नया परवाना दिलवा दिया। इसपर यूरोपीय खूब आग-बबूला हुए। सैकड़ोंकी भीड़ व्यापारीके भण्डारपर पहुँची और उसे तरह-तरहकी धमकियाँ देकर कहने लगी कि अभी यहाँसे चले जाओ। भारतीय व्यापारी जबरदस्त विपरीत परिस्थितियोंमें भी अपनी बातपर डटा रहा और उसने हटनेसे दृढ़तापूर्वक इनकार किया। अन्तमें सरकारने उसकी रक्षा की और उसका कुछ भी नहीं बिगड़ा। हम अंग्रेजी राज्यमें रह रहे हैं, रूसी राज्यमें नहीं।

[ अंग्रेजीसे ]

*इंडियन ओपिनियन*, १३-८-१९०३

## ३११. मुसीबतोंके फायदे

इसमें कोई शक नहीं कि दक्षिण आफ्रिकामें ब्रिटिश भारतीय चारों ओर प्रतिबन्धोंसे घिरे हुए है, जो अपने-अपने उपनिवेशके अनुसार कहीं कम और कहीं अधिक कठोर हैं। और, उनके बारेमें गलतफहमियाँ भी बहुत हैं। अबतक जिन पाठकोंने इन पृष्ठोंको ध्यानसे पढ़ने और समझनेका थोड़ा भी यत्न किया होगा उन्होंने यह देखा होगा कि हमारी उपर्युक्त दोनों बातोंकी पुष्टिके पर्याप्त प्रमाण भी हैं। इस लेखमें हम बताना चाहते है कि इन विपरीत परिस्थितियोंसे हम क्या सबक सीख सकते हैं। कहते हैं, मुसीबतोंका फल मीठा होता है। समझदार आदमी उनसे कुछ सीख सकता है। अब हम देखें कि हमने इनसे क्या सीखा है?

भारतमें बसनेवाली अलग-अलग कौमोंमें तरह-तरहके भेद हैं। उदाहरणके लिए तमिल, कलकतिया — उत्तरके प्रान्तोंके निवासियोंको यहाँके लोग इसी नामसे बुलाते है — पंजाबी, गुजराती आदि। इसके अलावा हिन्दू, मुसलमान, पारसी वगैरह धर्मोंके अनुसार भेद भी है। फिर हिन्दुओंमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और दूसरे लोग हैं। अब, हमारी समझमें, अगर हम अपने देशसे इन सब भेदों और फर्कोंको कीमती और रक्षणीय माल समझकर इतनी दूर लाये हों तो इसमें कोई शक नहीं कि वह कदम-कदमपर हमारे रास्तेमें अड़ेगा। और इसलिए हमारी

प्रगतिमें रुकावटें डालेगा। ब्रिटिश भारतीयोंके लिए तो दक्षिण आफ्रिका जगन्नाथपुरी[1] की तरह होना चाहिए, जहाँ सारे भेदभाव भुला दिये जाते हैं और सब बराबरीके बन जाते हैं। यहाँपर हम तमिल, कलकत्तावाले, हिन्दू या मुसलमान, ब्राह्मण या बनिया नहीं हैं — न होना चाहिए। हम तो यहाँ सीधे-सादे केवल ब्रिटिश भारतीय हैं। और इसी हैसियतसे हमें साथ-साथ डूबना या तैरना चाहिए। कोई इनकार नहीं करेगा कि इन सबके स्वार्थ हर तरह एक हैं। इसलिए हमारा स्पष्ट कर्तव्य यह है कि इन सब भेदभावोंको हम भुला दें। यह सबसे पहला और जरूरी कदम है। हम यह भी जानते हैं कि इस दिशामें हमारे लोगोंने बहुत भारी प्रगति की है। परन्तु हमारी मुसीबतोंसे सामान्य शिक्षा ग्रहण करनेका वक्तव्य इस चेतावनीके बिना अधूरा रहेगा।

[प्रत्येक भारतवासीका यह भी कर्तव्य है कि वह ऐसा न समझे कि अपने और अपने परिवारके खाने-पहनने भरके लिए कमा लिया तो सब कुछ कर लिया। उसे अपने समाजके कल्याणके लिए दिल खोलकर धन देनेके लिए भी तैयार रहना चाहिए।] और हम जानते हैं कि इस विषयमें भी दक्षिण आफ्रिकाका हमारा सारा समाज अपने कर्तव्यमें एकदम चूका नहीं है। परन्तु साथ ही हम यह भी जरूर कहेंगे कि वह इससे बहुत अधिक कर सकता था।

साहस और धीरज ऐसे गुण हैं जिनकी कठिन परिस्थितियोंमें आ पड़नेपर बड़ी जरूरत होती है। पिछली लड़ाईमें दक्षिण आफ्रिकाके अंग्रेजोंमें इन गुणोंका चरम विकास देखनेका स्वर्ण अवसर हमें मिला था। लेडीस्मिथकी घेराबन्दी और बचावका इतिहास अपार साहस और अटूट धीरजके उदाहरणके रूपमें सदा याद किया जायेगा। इस लड़ाईमें जिन भारतीयोंने घायलोंको उठानेका काम किया था उन्होंने कोलेंजो और स्पियनकॉपके युद्धोंमें जो कुछ देखा, उसे वे कभी नहीं भुला सकेंगे। संख्यामें कम होने और बार-बार पीछे हटनेपर भी झुकनेका कोई नाम नहीं लेता था। एक बार खुद जनरल बुलरको लगने लगा कि अब लेडीस्मिथको बचाना सम्भव नहीं है। किन्तु संसार जानता है कि कन्दहारके विजेताका तारसे यह सन्देश आया कि जबतक सेनापति बुलरके पास एक भी आदमी बचेगा वे हार नहीं मानेंगे। और इसका जो महान् परिणाम हुआ उसे हम सब जानते हैं। हमारा संघर्ष इतना कठिन नहीं है; और न उसके विरुद्ध बढ़नेमें इतनी वीरताकी जरूरत है। परन्तु फिर भी साहस और धीरजके सबक उससे मिलते हैं, जो हमें सीखने चाहिए। यदि लेडीस्मिथमें घिरे हुए मुट्ठी-भर लोगोंको बचानेके लिए धन, जन और समयके बलिदानका कोई हिसाब नहीं लगाया गया, क्योंकि वह ब्रिटिश साम्राज्यकी इज्जतका सवाल था, तो क्या जब हम अपनी आजादीकी लड़ाईमें लगे हैं, हमें भी उसी प्रकार सोचकर इस नतीजेपर नहीं पहुँचना चाहिए कि इन तात्कालिक मुसीबतोंको पार करनेके लिए हमें भी ऐसे ही साहस और धीरजका परिचय देना है? हमें भूलना नहीं चाहिए कि मनुष्यकी सच्ची परीक्षा विपत्तिमें ही होती है और घाव रोने-धोनेसे कभी नहीं भरा करते।

परन्तु हमें कुछ और भी चाहिए। [एक राष्ट्रकी हैसियतसे भौतिक चीजोंको तात्त्विक दृष्टिसे तुच्छ समझना और जीवनमें दैनिक सुविधाओंका कोई खयाल न करना हमारा स्वभाव हो सकता है। ईसाई धर्मप्रचारक तो इसे हमपर आरोपकी तरह मढ़ते हैं।] [ऐसी वृत्तिके प्रति हमारे मनमें अपार श्रद्धा है। परन्तु दक्षिण आफ्रिकामें यह वृत्ति रखना उचित नहीं होगा। जो लोग भौतिक लाभके लिए यत्नशील नहीं हैं उनके लिए निःसन्देह यह वृत्ति प्रशंसाके योग्य

१. उड़ीसाका एक नगर, जो श्री जगन्नाथके मन्दिरके लिए प्रसिद्ध है। वहाँ जातीय भेदभावोंको नहीं माना जाता।

है।] परन्तु जो अपने आपको सम्पत्तिशाली बनानेके लिए एड़ी-चोटीका पसीना एक कर देते हैं उनके लिए यह वृत्ति मिथ्याचार कहलायेगी। हमारा खयाल है कि अपनी माली हालतको सुधारनेके विचारको छोड़ किसी अन्य उद्देश्यसे दक्षिण आफ्रिकामें आनेवाले भारतीयोंकी संख्या बहुत बड़ी नहीं है। ऐसे लोगोंके लिए तो तत्त्वतः यही उचित है कि वे शेष समाजके साथ होकर अपनी आयके अनुपातमें खर्च करनेको तैयार हो जायें। तब भारतीयोंके खिलाफ कोई यह आरोप नहीं लगा सकेगा कि उनका तो कोई खर्च ही नही है। परन्तु इसका अर्थ कोई यह न करे कि हम भारतीयोंको भोग-विलासमें डूब जानेकी सलाह दे रहे हैं। हरगिज नहीं। हम तो केवल इतना कहना चाहते हैं, "जैसा देस वैसा भेस।" और फिर भी मन इन चीजोंसे अलिप्त रहे। अगर ऐसी सुख-सुविधाएँ हम प्राप्त कर सकते हैं तो ठीक है। नहीं कर सकते तो भी ठीक है।

परन्तु [जो कौम समझती है कि दूसरे उसके साथ बुरा व्यवहार करते हैं उसके लिए सबसे अधिक जरूरत तो प्रेम और उदारताके गुणोंकी है।] क्योंकि सब जानते हैं कि मनुष्य आखिर अपनी परिस्थितियोंका गुलाम है। अतः परिस्थितिवश वह बिलकुल अनजाने ऐसी बातें करता रहता है जो अनुचित है। तब क्या हमारे लिए यह उचित नहीं है कि हम उनके बारेमें कोई निर्णय करते समय उदारतासे काम ले? हम एक ऐसे राष्ट्रके लोग हैं, जिसमें धर्म-चिन्तन बहुत होता है और जिसमें लोग बदला न लेने तथा बुराईका जवाब भलाईसे देनेके सिद्धान्तपर निष्ठा रखते हैं। हम तो यहाँतक मानते हैं कि हम अपने विचारोंसे उनके कर्मोपर भी रंग चढ़ा सकते हैं, जिनका हम विचार करते है। अपने दैनिक जीवनमें हम प्रायः इसके उदाहरण देखते हैं। एक आदमी कोई बड़ा जुर्म करता है तो उसका चेहरा इस तरह बदल जाता है, मानो उसपर उस कुकर्मकी छाप लग गई हो। इसी प्रकार अगर कोई बड़ा पुण्य करता है तो उसके चेहरेपर दूसरे प्रकारका शुभ प्रभाव अंकित हो जाता है। इस तरह मनुष्य अपने कार्योंसे लोगोंको अपनी तरफ आकर्षित करता हुआ या दूर हटाता हुआ पाया गया है। इसलिए हम अपना यह परम कर्तव्य समझें कि हमारे खयालसे जो हमारे साथ बुरा व्यवहार भी करते हों उनके बारेमें हम बुरे विचार अपने दिलोंमें न आने दें। जो हमारे साथ भलाई करते हैं उनके साथ अगर हम भलाई करें तो इसमें कौन बड़े सद्गुणकी बात है? इतना तो कुकर्मी लोग भी करते हैं। हाँ, विरोधीके प्रति भलाई करें तो जरूर कुछ बात हुई। अगर यह सीधी-सी बात हम ध्यानमें रखें तो हमें इतनी जल्दी सफलता मिल सकती है जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। इस लेखमें हमने जिन मुद्दोंका चलते-चलते जिक्रमात्र किया है, हमें आशा है कि उनमें से हरएकपर हम आगे अधिक विस्तारसे विचार कर सकेंगे। अभी तो हम अपने देशभाइयोंसे यही प्रार्थना पर्याप्त समझते हैं कि जो कुछ हमने ऊपर कहा है उसपर वे विचार करें और सदा सावधान रहें; नही तो हम तूफानके बीचमें हैं, किस क्षण कोई बड़ी लहर आकर हमें अपने अन्दर समा लेगी, इसका कोई ठिकाना नहीं। उस समय यदि हम कुछ करना चाहें तो उसके लिए समय नहीं रहेगा।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, २०-८-१९०३

## ३१२. दक्षिण आफ्रिकाके स्थायी वकील

सचमुच ही श्री चेम्बरलेन दक्षिण आफ्रिकाके गोरे उपनिवेशियोंके वकील हैं। उन्होंने दक्षिण आफ्रिकाका सवाल, चाहे भला हो चाहे बुरा, अपना बना लिया है। उनका विश्वास है, और बहुत हदतक उनका यह सोचना सही भी है, कि उपनिवेशोंके हितोंकी रक्षा करना उनका कर्तव्य है। वे दूसरोंके हितोंको छोड़ देते हैं, भले ही वे महत्त्वपूर्ण और न्याय्य हों। यदि दूसरे मन्त्री अपने मुअक्किलोंके साथ न्याय नहीं करते हैं और इस कारण उनकी हानि होती है तो इसमें उपनिवेश-मन्त्रीका कोई दोष नहीं है। ट्रान्सवालमें भारतीयोंके विरोधमें बने कानूनके प्रश्नकी निष्पक्ष जाँच करनेके बारेमें पूर्व भारत-संघने जो अत्यन्त उचित और समझदारी-भरा प्रस्ताव किया था उसे श्री चेम्बरलेनने इसी दृष्टिसे देखा है। अपने मुअक्किलोंको जिससे हानि पहुँचनेकी सम्भावना हो, भला उसे एक वकील कैसे स्वीकार कर सकता है? इसलिए वे ब्रिटिश भारतीयोंके वकील लॉर्ड जॉर्ज हैमिल्टनके साथ पत्रव्यवहार करेंगे। इस कार्यवाहीसे उपनिवेशियोंकी स्थिति निर्बन्ध रहती है। ब्रिटिश भारतीयोंपर उन्होंने जो आरोप लगाये हैं उनका निराकरण नहीं हो पाता, और जाँच मंजूर होकर उनका निराकरण हो जानेपर भारतीयोंको जो कुछ मिल सकता था, आरोपके रहते हुए उन्हे निश्चय ही उससे बहुत कम मिल सकेगा।

सर विलियम वेडरबर्न और पूर्व भारत संघने जो उदार यत्न किया था उसका कोई नतीजा नही निकला। फिर भी हम धीरज और आशा नही छोड़ेंगे। श्री चेम्बरलेनके दिलमें सहानुभूति निःसन्देह है। लॉर्ड जॉर्ज हैमिल्टनने वचन दिया है कि न्याय प्राप्त करनेके लिए वे शक्तिभर प्रयत्न करेंगे। और हमें इसमें जरा भी सन्देह नही है कि जिन उपनिवेशियोंके लिए श्री चेम्बरलेन इतना प्रयत्न कर रहे हैं, उनको यदि वे ब्रिटिश भारतीयोंके साथ न्याययुक्त और सम्मानयुक्त व्यवहार करनेकी सलाह देंगे तो वे उसे माननेसे इनकार नही करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, २०–८–१९०३

## ३१३. दुर्घटना?

पैरिसकी भीषण दुर्घटना[1]की खबर संसारमें जहाँ कहीं भी पहुँची होगी वहाँ दुःख छा गया होगा। इस सकटके जो शिकार हुए और जो इससे बच गये उन दोनोंकी भावनाओंकी हम भली भाँति कल्पना कर सकते हैं। हमारी दृष्टिमें तो ऐसी अकल्पित घटनाएँ केवल आकस्मिक नहीं होतीं। हम इन्हें ईश्वरका कोप मानते हैं, जिससे अगर हम चाहें तो मूल्यवान शिक्षा ले सकते हैं। हमें तो लगता है कि इस सारी आधुनिक सभ्यताके ऊपरी चकाचौंध-भरे वैभवके पीछे यही भयंकर दुष्परिणाम छिपे पड़े हैं। पेरिस नगरको जैसी घटनाने आज इस शोक-सागरमें डाल दिया है, वैसी घटनाओंके संपूर्ण परिणाम क्या होंगे, यह सोचनेका समय ही हमें आजकी इस

१. भीषण अग्निकाण्ड जो १० अगस्तको बिजलीकी भूमिगत रेलगाड़ीमें हुआ था। इसमें ८४ व्यक्तियोंकी जानें गई थीं और बहुतसे लोग घायल हुए थे।

भाग-दौड़में नहीं है। मृत व्यक्ति भुला दिये जायेंगे, और पेरिस थोड़े ही समय बाद फिर अपने नित्य आनन्द-उल्लासमय रूपको इस तरह धारण कर लेगा मानो कुछ हुआ ही न हो। परन्तु यदि इस आकस्मिक दुर्घटनापर — अगर इसे आकस्मिक ही कहा जाये — कोई गहराईसे विचार करेगा तो उसे यह अनुभव हुए बिना नहीं रह सकता कि इस सारे वैभव और बाहरी चकाचौंधके पीछे एक बहुत बड़ी वास्तविकता है, जिसे लोग एकदम भूले हुए हैं। हमें तो इसका अर्थ बिलकुल साफ-साफ दिखाई देता है कि हम सबको, वर्तमानको केवल भविष्यकी तैयारी समझकर जीना चाहिए, जो इससे बहुत अधिक निश्चित और बहुत अधिक सत्य है। यह सभ्यता जिस चीजको स्थायी और शाश्वत बताकर हमारे सामने पेश करती है, वह उसे जरा भी शाश्वत और स्थिर नहीं बना सकता जो अपने आपमें अशाश्वत और अस्थिर है। और जब हम इसपर विचार करने लगते हैं तब विज्ञानके आश्चर्यजनक शोध और आविष्कार — यद्यपि वे अपने आपमें अच्छे हैं — कुल मिलाकर व्यर्थकी डींगें साबित होते हैं। संघर्षमें पड़ी हुई मानवजातिको वे कोई ठोस चीज नहीं दे पाते। इन घटनाओंको देखकर मनुष्यको सान्त्वना, केवल सैद्धान्तिक विश्वाससे नहीं, बल्कि इस सत्यमें दृढ़ विश्वाससे मिल सकती है कि, वर्तमानसे परे जीवन और ईश्वरकी सत्ता है। और केवल वही वस्तु पाने और विकसित करने योग्य है, जिससे हम अपने सृजनकर्ताको पहचान सकें और अनुभव करें कि पृथ्वीपर हम केवल थोड़े समय रहनेके लिए ही आये हैं।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, २०-८-१९०३

## ३१४. आर्तनाद

ट्रान्सवालके लेफ्टिनेंट गवर्नर उपनिवेशके गवर्नर भी हैं और दक्षिण आफ्रिकाके उच्चायुक्त भी। क्या वे अपने कर्तव्योंके बीच नेटालमें पड़े उन ब्रिटिश भारतीय शरणार्थियोंका आर्तनाद सुननेकी कृपा करेंगे जो अपने घर लौटनेकी इजाजत न पानेके कारण तीव्र वेदना सह रहे हैं। जिस संख्यामें ये मामले रोज हमारे ध्यानमें लाये जा रहे हैं वह गंभीर है। अगर श्रीमान इस रोकको जरा ढीला भी कर दें तो यह विशुद्ध जीव-दयासे अधिक न होगी। हम पहले बता चुके हैं कि प्लेगके बारेमें ट्रान्सवाल सरकारकी नीतिमें सुसंगति नहीं है। वह सैकड़ों यूरोपीयोंको और हजारों काफिरोंको बगैर किसी रुकावटके नेटालसे ट्रान्सवाल हर हफ्ते आने देती है। गरीब भारतीय शरणार्थी ट्रान्सवालमें लौटनेके लिए इतने चिंतित हैं कि उन्होंने अपने खर्चेसे फ़ोक्सरस्टमें सूतकमें रहना स्वीकार कर लिया है, फिर भी ट्रान्सवाल सरकारने अभी-तक उनकी कोई सुनवाई नहीं की है। अभी-अभी ट्रान्सवाल सरकार भारतीयोंको नेटाल जाने और फिर नेटालसे ट्रान्सवाल लौटनेकी अनुमति देने लगी है। क्या ये लोग अपने साथ इस भयंकर बीमारीके कीटाणु ट्रान्सवाल नहीं ले जायेंगे, और वहाँ यह बीमारी नहीं फैलेगी? प्रत्यक्ष ही सरकारको इनसे वह भय नहीं है। सरकारका खयाल है कि दूसरे किसी वर्गके लोगोंकी अपेक्षा नेटालमें पड़े हुए भारतीय शरणार्थियोंमें कोई ऐसी खासियत है, जिससे दूसरोंकी अपेक्षा उन्हें प्लेग ज्यादा आसानीसे हो सकता है। सचमुच यह बहुत बड़ी ज्यादती है। किसी भी ब्रिटिश उपनिवेशमें ऐसा नहीं सुना गया। अगर यह रोक राजनीतिक है तो इसे स्वीकार कर लेना ईमानदारी होगी — ब्रिटिश भारतीय शरणार्थियोंसे कह देना चाहिए कि वे ट्रान्सवाल लौटनेकी

आशा छोड़ दें। निःसन्देह यह जवाब प्रार्थियोंके लिए बड़ा अन्यायपूर्ण होगा, परन्तु वह कमसे-कम सच तो होगा। और आज शरणार्थी जिस दुविधामें लटक रहे हैं वह तो दूर हो जायेगी। अगर उन्हें लौटनेकी माँग करनेका अधिकार नहीं है तो कमसे-कम अपनी वास्तविक अच्छी-बुरी स्थिति जाननेका अधिकार तो है और हम आशा करते हैं कि ट्रान्सवालकी सरकार इस विषयमें कोई निश्चित जवाब देनेका रास्ता निकाल लेगी जिससे वे जान जायें कि वे कहाँ हैं।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, २०–८–१९०३

# ३१५. अनुमतिपत्र और गैर-शरणार्थी

प्लेग-सम्बन्धी रुकावटके बारेमें हम एक बार फिर बता दें कि सारे दक्षिण आफ्रिकामें ब्रिटिश भारतीय शरणार्थियोंको अनुमतिपत्र देनेपर कड़ी रोकें लगी हुई हैं और गैर-शरणार्थी भारतीयोंको तो अनुमतिपत्र देनेकी एकदम मुमानियत है। सप्ताहभरमें केवल ७० प्रामाणिक शरणार्थियोंको अनुमतिपत्रोंका दिया जाना बहुत ही कम है। जैसा कि विधानसभाको उपनिवेश-सचिवने बताया, दक्षिण आफ्रिकाके प्रार्थियोंके कुछ हजार प्रार्थनापत्र अभी अनिर्णीत ही पड़े हुए हैं। इसमें उन सैकड़ों भारतीयोंको नहीं गिना गया है, जो अभी भारतमें ही हैं और जो अभी, किसी-न-किसी कारण, दक्षिण आफ्रिका नहीं लौट सके हैं। उन शरणार्थियोंको इस तरह इक्का-दुक्का क्यों, पूरी तरह क्यों नहीं लौटने दिया जा रहा है, इसका कारण हम समझ नहीं पा रहे हैं। उन्हें लौटनेका हक है, इससे तो किसीको इनकार नहीं है। यदि सबको तुरन्त न लौटने देनेका कारण यह हो कि उपनिवेशमें भीड़ हो जायेगी और ये भारतीय वहाँ अपना गुजारा नहीं कर सकेंगे, तो हम कहेंगे कि यह आपत्ति निःसन्देह उचित है। परन्तु इस बुराईका उपाय है, और वह बड़ा सुरक्षित उपाय है। प्रत्येक शरणार्थी भारतीयसे इस बातकी एक विश्वसनीय जमानत माँगी जा सकती है कि ट्रान्सवालमें उसके लौटनेपर वह न केवल अपने रहनेके लिए रहने योग्य मकान ढूंढ लेगा, बल्कि अगर जरूरत पैदा हुई तो उसका निर्वाह-खर्च देनेवाले उसके मित्र भी वहाँ हैं। तब न तो भीड़का और न उसके भूखों मरनेका डर रहेगा। गैर-शरणार्थियोंकी मुमानियत भी हमारे खयालसे बहुत अनुचित है। इससे भारतीय व्यापारियोंको बड़ी असुविधा होगी जिन्हें सहायकों, बेचनेवालों और नौकरोंकी जरूरत पड़ सकती है। यह मुमानियत खुद उन शरणार्थियोंके लिए अत्यन्त अन्याययुक्त है, जिनको ट्रान्सवाल लौटकर किसी तरह अपनी रोजी कमानेमें रोक दिया गया है। हमारा कथन वह कदापि नहीं कि सब नये आनेवालोंको ट्रान्सवालमें अनियन्त्रित आने दिया जाये। परन्तु हम यह जरूर कहना चाहते हैं कि जिनको वास्तवमें कामका आश्वासन मिला है, उन्हें अपना काम सँभालनेसे रोका न जाये। इसलिए हम आशा करते हैं कि इस प्रश्नपर भी ट्रान्सवालकी सरकार सहानुभूतिपूर्वक विचार करेगी।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, २०–८–१९०३

## ३१६. ट्रान्सवालमें भारतीय व्यापारिक परवाने

जोहानिसबर्ग
अगस्त २२, १९०३

लॉर्ड मिलनरने ११ मईको जो खरीता उपनिवेश-मन्त्रीको भेजा था वह इस सप्ताहकी डाकसे यहाँ आ गया है। परमश्रेष्ठने भारतीयोंके साथ जो सहानुभूति प्रकट की है और उनकी भावनाओंका जो आदर किया है उसके लिए भारतीय उनके कृतज्ञ हैं। परन्तु उसमें कुछ बातें ऐसी कही गई हैं जिनमें सुधार कर देनेकी आवश्यकता है। प्रतीत होता है कि ये बातें श्वेत-संघ (व्हाइट लीग) के सदस्यों द्वारा बार-बार जोर दिया जानेके कारण कही गई हैं। परमश्रेष्ठने अपने खरीतेमें कहा है:

> **लड़ाईसे पहले जो एशियाई लोग उपनिवेशमें थे केवल उन्हींका सवाल होता तो महामहिमकी सरकारके मनके लायक नये कानून बननेतक हम राह देख सकते थे। परन्तु यहाँ तो नये-नये आनेवालोंका ताँता लगा रहता है और वे व्यापार करनेके परवाने माँगते रहते हैं। और, यूरोपीय लोग बिना सोचे-समझे परवाने देते जाने और एशियाइयोंको उनके लिए ही विशेष रूपसे पृथक् बनाई गई बस्तियोंतक सीमित रखनेका कानून लागू करनेमें सरकारकी लापरवाहीके विरुद्ध निरन्तर प्रतिवाद और अधिकाधिक तीव्र रोष प्रकट कर रहे हैं। ऐसी दशामें एकदम खामोश बैठे रहना असम्भव हो गया है।**

निवेदन है कि एशियाइयोंकी आबादी आज भी युद्धसे पहलेकी अपेक्षा कम है। एशियाइयोंका पंजीकरण करनेका कानून लागू हो चुका है और उसके परिणामोंसे प्रकट होता है कि इस समय इस उपनिवेशमें १०,००० से अधिक एशियाई नहीं हैं। सरकार द्वारा प्रकाशित सरकारी विवरणसे पता चलता है कि युद्धसे पहले कमसे-कम १५,००० ब्रिटिश भारतीय तो इस उपनिवेशमें थे ही। ये दोनों बयान सरकारी हैं। इसके अतिरिक्त, परवाने देनेके नियमोंकी कठोरताके कारण ब्रिटिश भारतीय शरणार्थियोंके अतिरिक्त कोई भी ट्रान्सवालमें प्रविष्ट नहीं हो सकता। इसलिए यह कहना किसी भी प्रकार सत्य नहीं हो सकता कि कानून लागू करनेकी आवश्यकता इस कारण हो गई कि "बहुतसे नये-नये आदमी यहाँ उमड़े चले आ रहे और व्यापार करनेके परवानोंके लिए प्रार्थनापत्र देते जा रहे हैं।" इसके अतिरिक्त, *बाजार*-सम्बन्धी सूचना केवल नये परवानोंका प्रार्थनापत्र देनेवालोंके लिए नहीं, सभीके लिए है; उनके पास युद्धसे पहले परवाने थे या नहीं — इसमें अपवाद कुछ ही अवस्थाओंके लिए किया गया है। यदि सरकार अशरणार्थियोंको परवाने देनेसे इनकार कर देती तो शिकायतकी कोई बात न होती, परन्तु अब तो साराका-सारा कानून अभीष्ट शरणार्थियोंके विरुद्ध लागू किया जा रहा है। परमश्रेष्ठने लिखा है:

> **परन्तु सरकार इस बातकी चिन्तामें है कि वह इस कामको (कानूनके अमलको) देशमें पहलेसे बसे हुए भारतीयोंका बहुत खयाल रखते हुए और निहित स्वार्थोंके प्रति — जहाँ इन्हें कानूनके विरुद्ध भी विकसित होने दिया गया है — सबसे अधिक खयाल रखते हुए करे।**

जैसा कि एक पहले पत्रमें और परमश्रेष्ठको दिये हुए मुद्रित प्रार्थनापत्र[1]में कहा जा चुका है, निहित स्वार्थोंका, यहाँ जो अर्थ है उसके अनुसार, लिहाज नहीं किया जा रहा है। जो सैकड़ों भारतीय युद्धसे पहले कानूनके विरुद्ध (अर्थात् परवाना बिना लिये) व्यापार कर रहे थे उन सबको नोटिस मिला है कि वे वर्षकी समाप्तितक बस्तियोंमें चले जायें, जिसके कारण भारतीय व्यापार पूर्णतया अस्त-व्यस्त हो गया है। इसके अलावा, एक ही पेढ़ीके सब साझेदारोंको परवाना नहीं दिया जाता; केवल ऐसे एक साझेदारको दिया जाता है जो उस समय देशमें मौजूद रहता है और अपने अन्य साझेदारोंके आनेकी प्रतीक्षा करता रहता है। उनको अपने व्यापारका स्थान भी विभिन्न जिलोंमें बदल लेनेकी इजाजत नहीं दी जाती। एक व्यक्तिका परवाना किसी दूसरेके नाम बदला भी नहीं जा सकता, जिसका फल यह होता है कि व्यापारीकी साख सर्वथा नष्ट हो जाती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रत्येक भारतीय व्यापारीको अन्तमें अपना व्यापार समेट कर बस्तियोंमें ले जाना पड़ेगा।

ब्रिटिश राज्यमें, बोअर राज्यकी अपेक्षा अधिक कठोरतासे एशियाई-विरोधी कानूनोंपर अमल किया जा रहा है; इस शिकायतका जवाब देते हुए परमश्रेष्ठने लिखा है:

> **(१) सरकार प्रत्येक नगरमें एशियाइयोंको रहनेके लिए विशेष स्थान दे रही है; और इन स्थानोंको चुनते हुए वह भरसक यत्न करती है कि ऐसे ही स्थान चुने जायें जो स्वास्थ्यकारक हों और जिनमें व्यापार करनेके लिए उपयुक्त अवसर भी मिल सके।**
>
> **(२) उसने घोषणा कर दी है कि जो एशियाई युद्धसे पहले व्यापारमें जम चुके थे उन्हें छेड़नेका उसका इरादा नहीं है और उनके परवाने फिर जारी कर दिये जायेंगे। पिछली सरकारके राज्यमें इन सब लोगोंको जगह छोड़ देनेके नोटिस मिले थे।**
>
> **(३) उसका इरादा उच्च वर्गके एशियाइयोंको सब प्रकारके विशेष कानूनोंसे मुक्त रखनेका है।**

इनमें से पहली बातसे, अर्थात् प्रत्येक नगरमें पृथक् बस्तियाँ बना देनेसे, भारतीयोंको कोई सहायता नहीं मिलेगी; उन्होंने पिछले राज्यमें इनके विरुद्ध शिकायत की थी और उसमें वे सफल हो गये थे। यही कारण है कि कुछ शहरोंको छोड़कर पिछली ट्रान्सवाल-सरकार कोई बस्ती नहीं नियुक्त कर सकी थी। अब सरकार कोई बीस शहरोंमें बस्तियोंके लिए जगह चुन चुकी है। रही बात ऐसा स्वास्थ्यकारक स्थान चुननेकी जहाँ व्यापार करनेके उपयुक्त अवसर भी मिल सके, इस विषयमें जानकारीके बिना अधिक कुछ कहना कठिन है; परन्तु जो कुछ अबतक ज्ञात है वह बहुत आशाजनक नहीं है। ब्रिटिश भारतीयोंके प्रतिवाद करनेपर भी बारबर्टनकी वर्तमान बस्तीको परे हटाया जा रहा है; और यद्यपि नया स्थान बहुत दूर नहीं है, फिर भी यह कल्पना सुगमतासे की जा सकती है कि इस बस्तीके व्यापारियोंको परिवर्तनके कारण कितनी अधिक हानि उठानी पड़ेगी।

दूसरी बातके विषयमें सचाई यह है कि बोअर-राज्यमें, निहित अधिकारोंसे छेड़-छाड़ न करनेके इरादेकी घोषणा न की जानेपर भी, ब्रिटिश प्रतिनिधियोंकी कहा-सुनीके कारण युद्ध छिड़नेतक सभीकी रक्षा होती रही थी। जगह छोड़नेकी सूचनाओंकी कीमत कोई उस कागज जितनी भी नहीं समझता था, जिसपर कि वे लिखी हुई थीं (क्योंकि सूचनाएँ तो सभी भारतीय व्यापारियोंको बरसोंसे मिली हुई थीं, परन्तु उनपर अमल कभी नहीं किया जाता था)। जब

१. देखिए प्रार्थना-पत्र: "ट्रान्सवालके गवर्नरको," जून ८, १९०३।

कभी कोई प्रयत्न किया भी जाता था तभी ब्रिटिश सरकारसे शिकायत कर दी जाती थी, और उसका फल तुरन्त निकल आता था।

तीसरी बातके विषयमें, यदि मुक्त रखनेका अभिप्राय वही होता जो कि लॉर्ड मिलनरका है, अर्थात् 'सब प्रकारके विशेष कानूनोंसे', तो निःसन्देह लाभ बहुत होता, परन्तु *बाजार*-सम्बन्धी सूचनाका इस अभिप्रायके साथ पूरा विरोध है। इसमें मुक्ति केवल निवासके बारेमें दी गई है। मजा यह है कि यदि सम्मानित ब्रिटिश भारतीय वर्षकी समाप्तिके पश्चात् भी नगरमें रहना चाहेंगे तो उन्हें विशेष रूपसे मुक्तिकी अनुमति प्राप्त करनी पड़ेगी और अधिकारियोंके सामने सिद्ध करना पड़ेगा कि "उन्हें साबुन लगानेकी आदत है" और "वे फर्शपर नहीं सोते" इत्यादि। परन्तु नौकरी-पेशा भारतीयोंको कानूनन शहरमें रहनेका अधिकार है, उनके लिए कानूनमें विशेष अनुमति लेना आवश्यक नहीं रखा गया है। इस सम्बन्धमें कानूनकी धारा यह है: "सरकारको अधिकार होगा कि वह उनके निवासके लिए विशेष सड़कें, मुहल्ले और बस्तियाँ नियत कर दे। यह नियम अपने मालिकोंके साथ रहनेवाले नौकरोंपर लागू नहीं होगा।" इस कारण यदि हजारों नहीं तो सैकड़ों भारतीय नौकर (क्योंकि घरेलू नौकरोंके तौरपर उन्हें बहुत पसन्द किया जाता है) मुक्तिके लिए प्रार्थनापत्र दिये बिना शहरमें ही रह सकेंगे; परन्तु मुट्ठीभर खुशहाल सम्मानित ब्रिटिश भारतीय, कष्टकर परीक्षाका अपमान सहे बिना, शहरमें नहीं रह सकेंगे। पिछले शासनमें ऐसी कोई मुक्तिकी अनुमति पानेकी आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि तब अनिवार्य पृथक् निवासका नियम लागू नही किया गया था।

इसलिए ब्रिटिश भारतीयोंका यह कथन अक्षरशः सत्य है कि इस समय एशियाई-विरोधी कानूनोंका प्रयोग अभूत-पूर्व कठोरतासे किया जा रहा है।

डॉ० पोर्टरके प्रतिवेदनमें से लिये हुए एक उद्धरणके आधारपर, अस्वच्छ ढंगसे रहनेका जो आक्षेप किया गया है, उसके विषयमें *इंडियन ओपिनियन*का संलग्न लेख अपनी बात आप सुनाये दे रहा है। यदि युद्धसे पहले ब्रिटिश भारतीयोंके विरुद्ध, तथ्योंसे सर्वथा अपुष्ट विद्वेष-पूर्ण बयान दिये जाते थे, तो उनके विरुद्ध अब भी उसी विद्वेषसे काम लिया जा रहा है। डॉ० पोर्टरकी साक्षी भी निःसन्देह उसी प्रकारकी है।

अब एक बातका जिक्र और कर दूँ। कोई पन्द्रह वर्ष हुए, प्रिटोरियाके ब्रिटिश भारतीय मुसलमानोंने मस्जिद बनानेके लिए एक जमीन खरीदी थी। यह जमीन अभीतक विक्रेताके ही नाम चली आ रही है, क्योंकि बोअर-कानूनमें एशियाइयोंके लिए सरकार द्वारा पृथक् की गई बस्तियों या सड़कोंसे बाहर जमीनका मालिक होना निषिद्ध था। इस सम्बन्धमें युद्धसे पहले ब्रिटिश प्रतिनिधियोंसे कई बार प्रार्थना की गई थी, और जब युद्ध छिड़नेवाला था तब सर कनिंघम ग्रीनने ब्रिटिश भारतीयोंको विश्वास दिलाया था कि यदि युद्ध छिड़ ही गया तो उसके समाप्त हो जानेपर जमीनको खरीदारके नाम करवानेमें कोई कठिनाई नहीं होगी। परन्तु अब बार-बार प्रार्थना करनेपर भी सरकार इस सम्पत्तिको न्यासियोंके नाम दर्ज करनेसे इनकार कर रही है। मुस्लिम सम्प्रदायकी ओरसे हाजी हबीबने एक पत्र[1] उपनिवेश-सचिवको भेजा है। इस जमीनका विक्रेता बहुत बूढ़ा आदमी है, और यदि कहीं दुर्भाग्यवश मालिकका नाम बदला जानेसे पहले ही उसका देहान्त हो गया तो ऐसी उलझनें पैदा हो जानेकी सम्भावना है कि उनसे यह सम्पत्ति हाथसे चली जायेगी। प्रिटोरियाके ब्रिटिश भारतीय मुसलमानोंके लिए यह सम्पत्ति बड़ी मूल्यवान है। इसी प्रकारकी कठिनाई जोहानिसबर्गमें वहाँकी मस्जिदके सम्बन्धमें महसूस की जा रही है, परन्तु यहाँ आवश्यकता

१. देखिए "पत्र: उपनिवेश-सचिवको", अगस्त १, १९०३।

उतनी तीव्र नहीं है, क्योंकि यहाँके विधेयककी अवस्था प्रिटोरियाके विधेयक जैसी नहीं है। आशा है कि श्री चेम्बरलेन मालिकाना अधिकार बदलवानेके लिए सरकारको राजी करनेकी कृपा करेंगे।

[अंग्रेजीसे]
*इंडियन ओपिनियन, १८-६-१९०३*

## ३१७. प्रार्थना-पत्र : श्री चेम्बरलेनको

डर्बन
अगस्त २४, १९०३

सेवामें
परममाननीय जोजेफ चेम्बरलेन
महामहिम सम्राट्के मुख्य उपनिवेश-मन्त्री
लंदन

नेटाल उपनिवेशवासी ब्रिटिश भारतीयोंके नीचे हस्ताक्षर
करनेवाले प्रतिनिधियोंका प्रार्थनापत्र।

नम्र निवेदन है कि,

आपके प्रार्थी नेटाल उपनिवेशकी विधानसभाके इसी सत्रमें स्वीकृत प्रवासी-प्रतिबंधक विधेयकके बारेमें महामहिमकी सरकारकी सेवामें विनयपूर्वक उपस्थित होनेका साहस कर रहे हैं।

प्रार्थियोंने विधेयकके सिद्धान्तको स्वीकार करते हुए उसके कुछ उपनियमोंका विरोध करनेकी स्वतन्त्रता ली और दोनों सदनोंकी सेवामें प्रार्थनापत्र[1] पेश किये। किन्तु प्रार्थियोंके दुर्भाग्यसे दोनों सदनोंमें उनकी उठाई हुई आपत्तियोंमें से एकपर भी विचार नहीं किया गया।

अतः लाचार होकर प्रार्थी आपकी सेवामें उपस्थित हो रहे हैं। पूर्ण विश्वास है कि आप अपने प्रार्थियोंको उल्लिखित प्रार्थनापत्रोंमें वर्णित सुविधाएँ प्राप्त करानेकी कृपा करेंगे।

चूँकि प्रार्थियोंकी ओरसे जो-कुछ भी कहना है वह माननीया विधानसभाको दिये गये प्रार्थनापत्रमें कहा जा चुका है, इसलिए प्रार्थी उसीकी एक प्रति यहाँ नत्थी करनेकी धृष्टता करते हैं और आपकी कृपादृष्टिकी प्रार्थना करते हैं।

प्रार्थी आपको कोई अन्य तर्क पेश करके कष्ट नहीं देंगे; केवल इतना और कहेंगे कि उनकी विनम्र सम्मतिमें प्रार्थनापत्रका निवेदन अत्यन्त उचित है; और इसे देखते हुए कि वर्तमान विधेयक एक प्रयोग है, प्रार्थियों द्वारा दिये गये सुझावोंका फिलहाल कोई परिवर्तनीय रूप स्वीकार करनेसे यूरोपीय उपनिवेशियोंकी कोई हानि नहीं होगी।

अतः प्रार्थी नम्रतापूर्वक निवेदन करते हैं कि आप उदारतापूर्वक सम्राट्से सिफारिश करनेकी कृपा करें कि सम्राट् अपनी मुहर उसपर न लगायें और दूसरी उचित सुविधा दें।

और न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए प्रार्थी, कर्तव्य समझ कर, सदा दुआ करेंगे।

नेटालके गवर्नरकी ओरसे प्रधान उपनिवेश-मन्त्रीको भेजे गये खरीता ३७०, दिसम्बर १८, १९०३ का सहपत्र।

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स : सी० ओ० १७९, जिल्द २२७, खरीता ३७०।

१. देखिए "प्रवासी-विधेयक," जून २३, १९०३ और "प्रार्थनापत्र : नेटाल विधान परिषद्को," जुलाई ११, १९०३।

# ३१८. पूर्वग्रह मुश्किलसे दूर होते हैं

*डेली टेलिग्राफ*के जोहानिसबर्ग-स्थित विशेष संवाददाताने ट्रान्सवालके भारतीयोंकी स्थितिके विषयमें एक पत्र लिखा है, जो हम अन्यत्र दे रहे हैं। इस पत्रके लिए हम *टाइम्स ऑफ़ इंडिया*के आभारी हैं। यद्यपि पत्र पुराना है, परन्तु उसे पाठकोंकी नजरोंमें लाते हुए हमें खुशी होती है; क्योंकि उससे पता चलता है कि भारतीयोंकी स्थितिके बारेमें दूसरे क्या सोचते हैं। इसके अलावा पत्रसे यह भी प्रकट होता है कि [एक बार जो पूर्वग्रह बन जाता है वह आसानीसे दूर नहीं होता।] *डेली टेलिग्राफ*के सुयोग्य संवाददाता श्री एलेरथार्पको हम जानते हैं। हमें विश्वास है कि वे जानबूझकर किसीके साथ अन्याय नहीं करेंगे, और ब्रिटिश भारतीयोंके साथ तो हरगिज नहीं। फिर भी उन्होंने जो लिखा है उसमें ब्रिटिश भारतीयोंके बारेमें प्रचलित भ्रमके वे शिकार हो गये हैं।

ये विशेष संवाददाता लिखते हैं:

> दूसरी तरफ, सरकारपर दोषारोपण करनेमें भारतीयोंने अपनी बात अधिक बढ़ा-चढ़ाकर कही है। संक्षेपमें, उन्होंने ब्रिटिश सरकारपर विश्वासघातका दोष लगाया है। वे कहते हैं कि सन् १८८५ में आपने ट्रान्सवाल-सरकारकी कार्रवाइयोंका विरोध किया था और ब्रिटिश प्रजाजनकी हैसियतसे उपनिवेशमें प्रवेश पाने, रहने और व्यापार करनेके हमारे अधिकारोंका प्रतिपादन किया था; और अब आप वह सब भुलाकर खुद ही उन्हीं अन्यायपूर्ण कानूनोंको हमपर लागू कर रहे हैं। अगर यह दलील सही होती तो इसका हम कोई जवाब नहीं दे सकते थे; परन्तु यह सही नहीं है। अपने पत्र-व्यवहारमें लॉर्ड रिपन और सर एडवर्ड स्टनहोप — दोनोंने उपनिवेश मन्त्रियोंकी हैसियतसे समझौतेकी धारा १४ को बदलनेके लिए अपनी स्वीकृति दी है। ट्रान्सवाल-सरकार उसे सफाईके कारणोंको लेकर बदलना चाहती थी; और ब्रिटिश सरकारने इसपर अपनी अनुमति दे दी। जब यह मामला फ्री स्टेटके मुख्य न्यायाधीशके पास निर्णयके लिए भेजा गया तब ब्रिटिश सरकारने बस्तियोंमें रहनेके लिए भेजे जानेवाले मुद्देको स्पष्ट रूपसे मंजूर कर लिया और केवल यह माँग की कि भारतीयोंको वतनी *बाजारों*से बाहर व्यापार करनेका अधिकार हो। इसपर श्री चेम्बरलेनने, जिनसे भारतीयोंने खास तौरपर विनती की थी, सन् १८८५ में लिखा था: 'इन व्यापारियोंके बारेमें दक्षिण आफ्रिकाकी गण-राज्य सरकारसे मैं मित्रतापूर्वक कहूँगा कि एक बार कानूनी स्थिति अच्छी हो जानेपर क्या इस सारी स्थितिपर नये दृष्टिकोणसे विचार करना बुद्धिमत्तापूर्ण न होगा। वह इस बारेमें सोचे और यह निश्चय करे कि अपने नागरिकोंके हितोंकी दृष्टिसे भी भार-तीयोंके साथ अधिक उदारताका व्यवहार करना और व्यापारिक ईर्ष्याको प्रश्रय देनेके दिखावेसे भी अपने आपको बचाना अधिक अच्छा होगा या नहीं। मुझे तो सकारण विश्वास है कि प्रजातन्त्रके शासकवर्गमें यह ईर्ष्या कहीं नहीं है।'

अब, इन वक्तव्योंमें एक नहीं, कई गलतियाँ हैं। यह बड़े दुर्भाग्यकी बात है कि आज-कलकी इस दौड़-भागमें कोई बात लिखने और संसारके सामने पेश करनेसे पहले लोग पूरी

तरह पूछताछ करके यह पता नहीं लगा पाते कि वे कहाँतक सही हैं। किसीके साथ अन्याय करनेकी रत्तीभर इच्छा न होते हुए भी यदि *डेली टेलिग्राफ* जैसे प्रभावशाली पत्रमें कोई ऐसी बात छप जाये, जो सत्यपर आधारित न हो, तो इससे बहुत-से मामलोंमें इतनी हानि हो सकती है, जिसकी कभी पूर्ति नहीं हो सकेगी। जहाँतक हमें पता है ब्रिटिश भारतीयोंने (हमारा मतलब प्रातिनिधिक हस्तीके ब्रिटिश भारतीयोंसे है) कभी एक भी बात बढ़ा-चढ़ाकर नहीं कही है। सच तो यह है कि जिन्होंने मामलेको समझा और उसका अध्ययन किया है, उन्होंने अक्सर यह स्वीकार किया है कि ब्रिटिश भारतीयोंने अत्यन्त संयमसे काम लिया है। अत्युक्तिसे उनको सिवा हानिके कोई लाभ नहीं है। लड़ाईके पहले पुराने गणराज्यके जिन कानूनोंका ब्रिटिश सरकारने जोरोंसे विरोध किया था उन्हींपर वह अब ट्रान्सवालमें खुद अमल कर रही है। यह तो एक ऐसा सत्य है जिससे कोई इनकार नहीं कर सकता। श्री चेम्बर-लेनके खरीतेका जो उद्धरण दिया गया है वह यद्यपि सही है, तथापि वह स्वर्गीया महारानीकी सरकारके इस प्रश्न-सम्बन्धी रुखको ठीक तरहसे प्रकट नहीं करता। खरीता तो केवल यह कहता है कि पुरानी ऑरेंज फ्री स्टेटके मुख्य न्यायाधीशके निर्णयके बाद कानूनी रिश्ते समाप्त हो जाते हैं। परन्तु श्री चेम्बरलेनने बादमें लिखा है कि "बोअर-सरकारको मित्रभावसे सलाह देने और नये दृष्टिकोणसे अपने निर्णयपर पुनः विचार करनेके लिए उससे कहनेका अधिकार उन्हें है।" यही नहीं; दक्षिण आफ्रिकाके प्रश्नोंपर प्रकाशित सरकारी रिपोर्ट (ब्ल्यू-बुक) में कितने ही तार छपे हैं, जो श्री चेम्बरलेनके इस खरीतेके बादके हैं। इनमें उस कानूनपर अमल करनेका विरोध किया गया है और बोअर-सरकारसे कहा गया है कि वह भारतीयोंके साथ अधिक नरमीका व्यवहार करे। स्वर्गीया महारानीकी सरकारकी ओरसे ऑरेंज फ्री स्टेटके मुख्य न्यायाधीशको जो पत्र दिया गया था उसमें सन् १८८५ के तीसरे कानून[1] की व्याख्या इस प्रकार की गई है: "सफाईकी दृष्टिसे ब्रिटिश भारतीयोंको उनके लिए मुकर्रर जगहोंमें रहनेकी अनुमति दी जाये।" और ब्रिटिश भारतीयोंने इसके विरोधमें कुछ भी नहीं कहा है। परन्तु असल बात तो यह है—और इसे ब्रिटिश भारतीयोंकी तरफसे बार-बार कहा गया है कि जहाँतक कानूनी स्थितिका सम्बन्ध है, यद्यपि ब्रिटिश सरकारने सन् १८८५ के तीसरे कानूनको जो सन् १८८६ में संशोधित कर दिया गया था, मान लिया था तथापि वह पुरानी बोअर-सरकारपर इसके विरोधमें जोर डालती ही रही। और इसका परिणाम यह हुआ कि वहाँ ब्रिटिश सत्ताकी जबतक स्थापना नहीं हुई तबतक वह कानून निःसत्त्व बना रहा। इसलिए ब्रिटिश भारतीयोंका कथन यह नहीं है कि ब्रिटिश सरकारने कभी कानूनको मंजूर ही नहीं किया, बल्कि यह है कि मंजूर कर लेनेपर भी ब्रिटिश एजेंटोंके बार-बारके विरोधके कारण उसपर कभी अमल नहीं किया गया। इसलिए वह कानून किताबमें रहा या नहीं, इसकी चिन्ता ब्रिटिश भारतीयोंने कभी नहीं की। वे तो इतना जानते हैं कि ब्रिटिश सरकारने उस कानूनसे उनकी रक्षा की और उन्हें उसके अमलसे बचा लिया। इसलिए यह कथन अक्षरशः सही है कि जिस कानूनका ब्रिटिश सरकारने कारगर विरोध किया था उसीपर वह अब अमल कर रही है। फिर, एक बात और याद रखने लायक है। इस प्रश्नपर दोनों सर-कारोंके बीच जो पत्र-व्यवहार हुआ उसे अगर ध्यानके साथ पढ़ा जाये तो यह सिद्ध होगा कि ब्रिटिश सरकारने इस कानूनको अपनी अनुमति एक गलतफहमीमें आकर दी थी। यह हुआ ब्रिटिश भारतीयोंने अपनी बात बढ़ा-चढ़ा कर कही है, इस आरोपके जवाबमें।

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३०१।

विशेष संवाददाताने प्रश्नको सुलझानेके बारेमें जो सुझाव दिया है उससे भी प्रकट होता है कि उन्होंने जल्दबाजीमें अपना निर्णय कर लिया है। सारे सबूतके विपरीत वे छोटे दूकानदारों और फेरीवालोंकी निन्दा करते हैं और भारतीयोंको बस्तियोंमें जबरदस्ती रहनेके लिए भेजनेमें उन्हें कोई दोष नहीं दिखाई देता। वे इसके समर्थनमें वही अस्वच्छतावाला आरोप पेश करते हैं, जिसको सुनते-सुनते हम थक गये हैं। उन्होंने भूलसे यह भी समझ रखा है कि नये नियम (अर्थात् *बाजार*-सम्बन्धी सूचना[1]) केवल भावी आगन्तुकोंपर ही लागू होंगे। वे इस बातको भूल ही जाते हैं कि गैर-शरणार्थी भारतीयोंका प्रवेश तो कतई बन्द है और यह भी कि केवल उन्हींके परवाने नये किये जायेंगे, जिनके पास लड़ाईके पहलेसे वे थे।

फिर भी सारा लेख दिलचस्प है। स्पष्ट ही लेखक असहानुभूतिशील नहीं है। लेखके प्रारम्भमें जो अच्छे शब्द कहे गये हैं उन्हें हमने जानबूझकर इसलिए उद्धृत नहीं किया कि वे तो अच्छे हैं ही। गलत कथनोंका हमने केवल इसलिए जिक्र किया कि उन्हें सुधारनेकी जरूरत है। और जब वे किसी प्रतिष्ठित अखबारमें छपें, जो हजारों आदमियोंके हाथोंमें पहुँचता हो और जिसकी बातोंको लोग आँखें मूँदकर सच मान लेते हों, तब उनको तो सुधारनेकी और भी अधिक जरूरत रहती है।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, २७–८–१९०३

## ३१९. लॉर्ड मिलनरका खरीता

इस अंकमें हमें श्री चेम्बरलेनके नाम लॉर्ड मिलनरका पूरा खरीता छापनेका सुयोग मिला है। *रैंड डेली मेल*में छपे तारका हम पहले जिक्र कर चुके हैं। उसमें लॉर्ड मिलनरके खरीतेका हवाला आया है। यह दस्तावेज बड़े मतलबका है और दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीयोंके लिए कुछ हदतक आशाजनक भी है। यह एकदम बता देता है, ट्रान्सवालकी वर्तमान सरकारसे किन बातोंमें डरकी सम्भावना है और किन बातोंमें आशा की जा सकती है। सारे खरीतेसे यह प्रकट होता है कि परमश्रेष्ठके दिलमें बहुत सहानुभूति है और उनके इरादे अच्छे हैं। और उसमें जहाँ शिकायतके लिए अच्छा आधार है, वहाँ असली कारण खुद लॉर्ड मिलनर नहीं, बल्कि वे लोग हैं जिन्होंने उनके सामने तथ्य पेश किये हैं। और शायद वे भी न हों, क्योंकि दफ्तरके अत्यधिक कामके कारण वे परमश्रेष्ठके सामने सही-सही बातें पेश ही न कर पाये हों। अतः हमारा कर्तव्य यह है कि हम परमश्रेष्ठका ध्यान इन बातोंकी तरफ दिलायें। लॉर्ड मिलनर कहते हैं:

> वह (सरकार) इस बातकी चिन्तामें है कि वह इस काम (कानूनके अमल) को देशमें पहलेसे बसे भारतीयोंका अधिकतम विचार करके और निहित स्वार्थोंका — *जहाँ इन्हें कानूनके विरुद्ध भी विकसित होने दिया गया हो* — सबसे अधिक लिहाज रखते हुए करे।

हम पहले बता चुके हैं कि *बाजार*-सम्बन्धी सूचना इस बातको प्रमाणित नहीं करती, क्योंकि लड़ाईसे पहले जो लोग बगैर परवानेके और, इस प्रकार, कानूनके विरुद्ध व्यापार कर रहे थे, उन्हें सूचनाएँ मिल चुकी हैं कि वे इस वर्षके अन्ततक बस्तियोंमें रहनेके लिए चले जायें।

१. देखिए "दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीय," अप्रैल १२, १९०३ का सहपत्र।

परमश्रेष्ठ आगे लिखते हैं:

> निःसन्देह कुछ मामलोंमें वे कानून, जो अप्रचलित हो गये थे या पूरी तरह असमर्थनीय थे, बिलकुल हटा दिये गये हैं। इसमें इस बातका ध्यान रखा गया है कि इससे किसीको असुविधा न हो।

यह जानना रुचिकर होगा कि वे क्या कानून थे जो हटा दिये गये हैं।
परमश्रेष्ठ लिखते हैं:

> लड़ाईके पहले जो एशियाई लोग उपनिवेशमें थे, केवल उन्हींका सवाल होता तो महामहिमकी सरकारके मनके लायक नये कानून बननेतक हम राह देख सकते थे। परन्तु यहाँ तो नये-नये आनेवालोंका तांता लगा था और वे व्यापार करनेके परवाने भी माँगते रहते थे — ऐसी दशामें एकदम हाथपर हाथ धरे बैठे रहना असम्भव हो गया था।

फिर, हम कहते हैं कि कुछ लोगोंको छोड़कर, जिनको शुरू-शुरूमें आने दिया गया था और जिनकी गिनती उँगलियोंपर की जा सकती है, नये आदमियोंको अभीतक उपनिवेशमें आने ही नहीं दिया गया है। ब्रिटिश भारतीयोंने तो अभीतक पुराने व्यापारियोंके हकमें कोरे न्यायकी माँग और उन्हें परवाने न दिये जानेकी शिकायत ही की है। इसलिए "एकदम हाथपर हाथ धरे रहने" की नीति नया कानून बननेतक बखूबी जारी रखी जा सकती थी। और लॉर्ड मिलनरके इस कथनके प्रकाशमें तो ३ पौंडके करको लागू करना भी अगर अनावश्यक नहीं तो प्रत्यक्ष रूपसे असमर्थनीय ही है।

परमश्रेष्ठ कहते हैं: "हम नहीं चाहते कि प्रतिष्ठित ब्रिटिश भारतीयों अथवा सुसभ्य एशियाइयोंपर साधारण रूपसे कोई निर्योग्यतायें लगाई जायें।"

ब्रिटिश भारतीयोंको दूसरे एशियाइयोंसे अलग करने और ब्रिटिश प्रजाजनके नाते उनके रुतबेको स्वीकार करनेके लिए हम परमश्रेष्ठके आभारी हैं। रैंड डेली मेलके तारपर टिप्पणी करते समय हम बता चुके हैं कि आज तो सारे भारतीय, चाहे वे प्रतिष्ठित हों या साधारण, एशियाइयोंपर लगी तमाम निर्योग्यताओंके नीचे पिसे जा रहे हैं। बस, अगर कहीं कोई थोड़ी छूट हो जाती है तो वह निवासके बारेमें है। परन्तु केवल उतनी ही।

लॉर्ड मिलनर आगे कहते हैं:

> सबसे पहले हम यह देखेंगे कि एशियाइयोंके लिए अलग बस्तियोंकी जगहें निश्चित होनेके बाद एशियाइयों द्वारा उनमें रहनेका विरोध जारी रहता है या नहीं।

अगर अपने देशभाइयोंके मनोभावोंका हमें ठीक-ठीक पता है, तो हमारा खयाल है कि जबतक कानूनके अन्दर उनको जबरदस्ती बसानेका डंक बना रहेगा, यह विरोध कम होनेवाला नहीं है। डॉ॰ पोर्टरने जोहानिसबर्गकी भारतीय बस्तीका जो काल्पनिक चित्र खींचा है उसका परमश्रेष्ठने उपयोग किया है। हमें इससे आश्चर्य नहीं हुआ। परन्तु हम परमश्रेष्ठसे निवेदन करेंगे कि वे डॉ॰ मैरेन, डॉ॰ जॉन्स्टन और कतिपय अन्य अधिकारी पुरुषों[1] के विवरणोंको पढ़ें जिन्होंने अपनी राय डॉ॰ पोर्टरके प्रतिकूल दी है। यद्यपि डॉ॰ पोर्टर स्वास्थ्य-विभागके अधिकारी हैं, तथापि हमने जिन पुरुषोंके नाम अभी बताये हैं उनकी राय अधिक वजन रखती है, क्योंकि उनका अनुभव अधिक और परिपक्व है।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, २७-८-१९०३

१. देखिए "भारतीय: लॉर्ड मिलनरके अस्पष्ट आरोपके विरुद्ध," १३-८-१९०३।

# ३२०. भारतीय प्रश्नपर अधिक प्रकाश

ट्रान्सवालके भारतीयोंके प्रश्नपर उपनिवेश-कार्यालयने संसदके लिए एक कागज जारी किया है, जिसके बारेमें रैंड *डेली एक्सप्रेसके* सम्वाददाताने एक लम्बा तार भेजा है। हम उसकी नकल इसी अंकमें अन्यत्र देनेकी धृष्टता कर रहे हैं। हम जानते हैं कि सरकारी कागजोंपर —खासकर जब हमारे सामने उनका बहुत अधूरा और संक्षिप्त रूप हो—कुछ लिखना बहुत मुश्किल है। परन्तु चूँकि उस पूरे कागजको दक्षिण आफ्रिका पहुँचनेमें कुछ समय लगेगा और चूँकि वह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषयसे सम्बन्ध रखता है, इसलिए यह मानकर कि उस लेखका इस तारमें दिया गया संक्षेप प्रामाणिक है, हम उसपर अपने कुछ विचार प्रकट करना चाहते हैं। तारके अनुसार *बाजार*-सम्बन्धी सूचना द्वारा "तीन अत्यंत महत्त्वपूर्ण बातोंमें" एशियाइयोंका खयाल रखा गया है, जो पिछली हुकूमतने नहीं रखा था। एक तो यह कि "ये बस्तियाँ ऐसी जगहोंपर बसाई जा रही हैं, जो स्वास्थ्यप्रद हैं और जहाँ व्यापारकी समुचित अनुकूलताएँ हैं।" दूसरी यह कि "जिन एशियाइयोंका व्यापार लड़ाईके पहले जम गया था उन्हें नहीं छेड़ा जायेगा।" और तीसरी यह कि "सारा विशेष कानून उच्च वर्गके लोगोंपर लागू नहीं किया जायेगा।"

पहलीके बारेमें हम अभी कुछ नहीं कहना चाहते, क्योंकि इन तमाम बस्तियोंके लिए कैसी और कहाँ जगहें निश्चित की गई हैं, इसका हमें पता नहीं है।

जहाँतक दूसरी और तीसरी बातोंका सम्बन्ध है, वे एकदम भ्रमोत्पादक हैं। हम निश्चित रूपसे जानते हैं कि *बाजार*-सम्बन्धी सूचना और उसपर दिये गये निर्णयके अनुसार नये परवाने केवल उन्हींको दिये जा रहे हैं जिनके पास वे लड़ाईके पहले थे; उनको नही, जिनके पास परवाने तो नहीं थे, किन्तु जिनका व्यापार लड़ाईके पहले जम चुका था। इससे तो बड़ा अन्तर पड़ जाता है। सैकड़ों ब्रिटिश भारतीयोंने परवानोंका शुल्क जमा करवा दिया था और उसके आधारपर वे व्यापार कर रहे थे; परन्तु उन्हें परवाने कभी नहीं दिये गये और इस बातको बोअर-सरकार खूब अच्छी तरह जानती थी। अब *बाजार*-सम्बन्धी सूचनाके अनुसार इन्हें व्यापार करनेका हक नहीं रहेगा। जहाँतक कानूनके लागू न करनेकी बात है, *बाजार*-सम्बन्धी सूचनाके अनुसार वह केवल निवास—एकमात्र निवास—तक ही सीमित है। वह उच्चवर्गके एशियाइयोंको विशेष कानूनके अमलसे मुक्त नहीं रखता। तब स्थिति यह बनती है कि *बाजार*-सम्बन्धी सूचनासे भारतीयोंको ऐसी कोई छूट नहीं मिलती जो उन्हें लड़ाईके पहले उपलब्ध नहीं थी; क्योंकि बस्तियोंमें रहनेके लिए उन्हें कभी मजबूर किया ही नहीं गया था। किसी भारतीयको व्यापारमें किसी प्रकारकी कोई कठिनाई नही थी, और चूँकि रहनेके बारेमें कोई जबरदस्ती थी ही नहीं, इसलिए स्वभावतः छूटका सवाल ही नहीं था।

लॉर्ड मिलनरको ऐसा नहीं लगता कि नये कानूनके बारेमें कोई कठिनाई पैदा होगी। वह उसी तरहका होगा जैसा केप उपनिवेश और नेटालमें है। इस बातमें सरकार और भारतीय दोनों पूर्णतः एकमत हैं। इसका मतलब यह नहीं कि ऐसे प्रतिबन्धक कानूनोंको भारतीय पसन्द करते या आवश्यक समझते हैं; किंतु उन्होंने अनिच्छापूर्वक एक अनिवार्य परिस्थितिको मानकर—जबतक जातिभेदके आधारपर कोई विशेष और अपमानजनक प्रतिबन्ध उनपर नहीं लादे जाते तबतकके लिए—सरकारके साथ यथासम्भव सहयोग करना स्वीकार कर लिया

है। परमश्रेष्ठके साथ हम भी यह आशा करते हैं कि बाजारोंमें ही रहनेका अपेक्षाकृत कठिन सवाल आगे चलकर अच्छी तरह हल हो जायेगा। और हम इसका केवल एक ही हल जानते हैं — इसमें से उस घृणित जोर-जबरदस्तीको निकाल दीजिए, अच्छी और नजदीककी जगहें मुकर्रर कर दीजिए और भारतीयोंको सहयोग देनेके लिए निमन्त्रित कीजिए। आप देखेंगे कि वे खुद-ब-खुद बहुत बड़ी संख्यामें आकर्षित होकर यहाँ आ जायेंगे। जो हो, यह प्रयोग आजमाने लायक जरूर है। इसके लिए फिर किसी कानूनकी जरूरत नहीं होगी और सारा प्रश्न अपने आप हल हो जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, २७-८-१९०३

## ३२१. क्रूर अन्याय

प्रिटोरियाके श्री हाजी हबीब द्वारा प्रिटोरियाकी मस्जिदके बारेमें ट्रान्सवालकी सरकारको लिखा गया पत्र हम अन्यत्र प्रकाशित कर रहे हैं। हमारे पाठकोंको शायद याद होगा कि जिस जमीनपर प्रिटोरियाकी यह सुन्दर मस्जिद खड़ी है, उसे मुस्लिम समाजने कोई पन्द्रह वर्ष पहले खरीदा था। अब इस जमीनकी कीमत बहुत बढ़ गई है। ज्यों ही वह जमीन खरीदी गई, ब्रिटिश भारतीयोंने तत्कालीन सरकारसे विनती की थी कि उसे मस्जिदके न्यासियोंके नामपर बदल देनेका विशेष अधिकार प्रदान किया जाये; परन्तु गणराज्यकी सरकारने निराशाजनक जवाब दिया। इसपर उन्होंने ब्रिटिश सरकारसे प्रार्थना की, परन्तु कोई फल नहीं निकला। लड़ाई शुरू होनेसे पहले सर कनिंघम ग्रीन केवल यह आशा दिला सके कि यदि लड़ाई शुरू हो गई तो लड़ाई समाप्त होनेपर ब्रिटिश सरकारके राजमें जमीनको न्यासियोंके नामपर बदलवा लेनेमें कोई कठिनाई नहीं होगी। और आश्चर्य है कि सरकार इस क्षणतक उक्त सम्पत्तिको उनके नाम करनेका अधिकार देनेसे इनकार कर रही है। यह सच है कि उपनिवेश-सचिवने कहा है कि मुस्लिम समाजकी तरफसे वे खुद उसे अपने नामपर करानेको तैयार हैं। परन्तु चूंकि सम्पत्ति धार्मिक कार्यके लिए प्रदत्त है, उनका धर्म आज्ञा नहीं देता कि वह उपनिवेश-सचिवके नामपर की जा सके। हमारे विचारमें परिस्थिति यह है। श्री हाजी हबीबका प्रस्ताव है कि जिस जमीनपर मस्जिद खड़ी है उसे सरकार उन मुहल्लों अथवा सड़कोंमें घोषित कर दे जहाँ भारतीय रह सकते हैं। हम समझते हैं यह सुझाव बिलकुल उपयुक्त है और इससे समस्या हल हो सकती है। परन्तु हमें ज्ञात हुआ है कि सरकारने यह विनती नामंजूर कर दी है।

निःसन्देह स्थिति गम्भीर है। मुस्लिम समाजको अधिकार है कि दूसरे समाजोंकी भाँति उनकी धार्मिक भावनाओंका भी आदर हो। परन्तु सम्भव है कि किसी दिन यह जायदाद उनके हाथसे निकल जाये और नमाज पढ़नेके लिए उनके पास मस्जिद ही न रहे। जो ब्रिटिश सरकार धर्मोंकी रक्षाका आश्वासन देती है उसीके झण्डेके नीचे रहनेवालोंकी हालत विचित्र है। इसलिए हमारे मनमें सवाल आता है कि ट्रान्सवालमें भारतीयोंका यह क्या हाल होने जा रहा है? क्या प्रिटोरियामें ब्रिटिश संविधानकी कतर-ब्योंत होनेवाली है, या अन्तमें न्यायकी विजय होगी?

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, २७-८-१९०३

## ३२२. महँगी छूट

सरकारी सूचना नम्बर ३५६, अर्थात् *बाजार-सम्बन्धी* सूचनाकी उपधारा ४के अनुसार छूट मिलनेसे पहले एशियाइयोंको जो फार्म भरना पड़ता है उसे हम अन्यत्र छाप रहे हैं। इसमें बीस प्रश्नोंके जवाब देने होते हैं, जिनमें से कुछ निर्दोष है, कुछ हँसीके लायक हैं और कुछ गहरीसे-गहरी चोट पहुँचानेवाले है। यह महँगी छूट मिलनेसे पहले अर्जदारको बताना पड़ता है कि: उसके पास कितने आदमी नौकर है? क्या वे एशियाई है? पाखानोंकी हालत कैसी है? क्या उसकी दूकानमें रातको लोग सोते है? अगर हाँ तो रहनेके कमरोंमें कितने आदमी सोते है? क्या रातके और दिनके कमरे अलग-अलग है? क्या वहाँ रहनेवाले लोग जमीनपर सोते हैं? वे साबुनका व्यवहार करते हैं? वगैरह। हम जानना चाहते है कि जब एशियाइयोंको अलग बस्तियोंमें रहनेके लिए भेज दिया जायेगा तब क्या साधारण स्वच्छता, रातके और दिनके कमरोंका भेद, दूकानोंके अन्दर सोनेकी मनाही, पाखानोंकी सफाई इत्यादि बातोंका विचार छोड़ दिया जायेगा? यदि केवल छूट देनेके लिए इन बातोंकी जाँच आवश्यक है, तब या तो सरकार मान लेती है कि बस्तियोंके निवासियोंका रहन-सहन ऐसा आदर्श होगा कि उनपर निगरानी रखनेकी कोई जरूरत नहीं होगी, या अगर वे गन्दे रहना पसन्द करेंगे तो उन्हें गन्दगीमें सड़ने दिया जायेगा। एक सीधा-सा सवाल हमारे दिमागमें आ रहा है कि क्या सरकारने १८८५के तीसरे कानूनपर कभी विचार करनेका कष्ट किया है? और क्या वह जानती है कि यदि एशियाई लोग किसीके यहाँ नौकर हैं तो वे बगैर ऐसी छूटके शहरमें रह सकते है? फिर उन्हें किसी अधिकारीको इस बातका सन्तोष दिलानेकी जरूरत नहीं पड़ेगी कि वे साबुनका व्यवहार करते है या नहीं, अथवा उनके नहाने-धोनेके लिए भी कहीं कोई प्रबन्ध है या नहीं। हम कानूनकी प्रत्यक्ष धारा ही उद्धृत करते हैं; वह कहती है: "सरकारको यह निश्चय करनेका अधिकार होगा कि वे किन सड़कों, मुहल्लों या बस्तियोंमें रहें। *जो नौकर अपने मालिकोंके साथ रहेंगे उनपर यह धारा लागू नहीं होगी।*" इसका अर्थ यह हुआ कि एशियाई नौकरोंको तो इन सवालोंका जवाब देनेका अपमान नहीं सहना होगा; परन्तु जिन्हें सरकार प्रतिष्ठित समझती है उन्हें इस परीक्षामें से गुजरना होगा और छूट मिलनेसे पहले उन्हें सरकारी अधिकारियोंको संतुष्ट करना होगा। और यह है वह छूट जिसपर लॉर्ड मिलनरने श्री चेम्बरलेनको भेजे अपने खरीतेमें इतना जोर दिया है। हम जानते हैं कि प्रत्यक्ष सूचनामें जो लिखा है, छूटकी धाराका उससे कहीं अधिक व्यापक अर्थ लॉर्ड मिलनरने किया है। तब, अगर ट्रान्सवालमें रहनेवाले हमारे देशभाई यह कहते ही चले जाते है कि ट्रान्सवालके कानूनका आजकल जितनी सख्तीसे अमल हो रहा है उतना पहले कभी नहीं हुआ था, तो इसमें आश्चर्यकी क्या बात है? हम तो यही आशा करते है कि कोई भी आत्मसम्मानी ब्रिटिश भारतीय अपने आपको इस तरह नहीं भूल जायेगा कि शहरकी सीमामें रहनेकी सुविधाके लिए इस फार्मको भरने बैठ जाये।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, २७-८-१९०३

## ३२३. लॉर्ड सैलिसबरी[1]

लॉर्ड सैलिसबरीकी मृत्युने ब्रिटिश साम्राज्यसे एक ऐसे राजनीति-विशारदको उठा लिया जिसको सारे साम्राज्यमें प्रेम और आदरकी और, साम्राज्यके बाहर, भयकी दृष्टिसे देखा जाता था। स्व० लॉर्ड सैलिसबरीका जीवन साम्राज्यके हर सदस्यके लिए सीधे-सच्चेपन और उद्योग-शीलताका प्रत्यक्ष पदार्थ-पाठ था। जीवनमें जो भी अच्छे गुण मनुष्यको अपने अन्दर विकसित करने चाहिए, उनका भी वे नमूना थे। इनके अलावा किसी भी देशका धनिक समाज उन्हें अपने लिए एक आदर्श मान सकता है। इतिहास तो उन्हें महारानीके युगके एक महान् परराष्ट्र-मंत्रीके रूपमें सदा याद रखेगा। यूरोपके राष्ट्रोंमें उनका अपना एक विशेष स्थान था। इसका कारण था — परिस्थितिको पूरी तरहसे समझनेकी उनकी अद्भुत शक्ति और साम्राज्यकी महानताका सम्पूर्ण ज्ञान। वे अवसर-साधु नहीं थे और राजनीतिको उन्होंने लाभ कमानेका साधन कभी नहीं बनाया। इसलिए लोगोंकी शाबासीकी उन्होंने कभी परवाह नहीं की और अन्यायकी सदा निन्दा की — चाहे वह विरोधियोंकी तरफसे हुआ हो या उनके अपने दलके द्वारा। जब वे भारत-मन्त्री थे तब लॉर्ड कैनवॉर्नकी भांति सही बात कहनेमें उन्होंने कभी संकोच नहीं किया। भारतकी गरीबीके बारेमें उन्होंने लिखा था :

> भारतके मामलेमें यह हानि कहीं अधिक बढ़ जाती है। इस देशके राजस्वका बहुत बड़ा हिस्सा बाहर ले जाया जाता है, जिसका बदला उसे कुछ भी नहीं मिलता। अगर उसका खून निकालना ही है तो नश्तर ऐसी जगह लगाया जाना चाहिए, जहाँ अधिक खून इकट्ठा हो गया हो, या कमसे-कम जहाँ वह पर्याप्त मात्रामें तो हो, जहाँ वह पहले ही से कम हो ऐसी कमजोर जगहमें नहीं।

यह वचन ऐतिहासिक महत्त्व पा गया है और अनेक सभाओंमें इसका हवाला दिया गया है। साम्राज्यकी नीतिके बारेमें उन्होंने कहा था :

> संक्षेपमें हमारी नीति तो यह है कि हम शान्तिकी रक्षा करें और जनकार्य करते रहें। भारतमें उत्पादनकी साधन-सामग्री बहुत अधिक है। उसे अगर हम बढ़ा सकें, यहाँकी उपजाऊ जमीन और भारी जनसंख्याका उपयोग देशकी समृद्धि बढ़ानेमें कर सकें और अपने पड़ोसी राज्योंको (चाहे वे देशकी सीमाके अन्दर हों या बाहर) यह विश्वास दिला सकें कि हमने राज्योंपर अधिकार करने और साम्राज्यको बढ़ानेकी नीतिको — जिसके कारण हमारे प्रति लोगोंका अविश्वास बहुत बढ़ गया था और जगह-जगह उपद्रव होने लग गये थे — सदाके लिए छोड़ दिया है; अगर हम यह सब कर सकें और साथ ही अधीनस्थ प्रजाजनोंमें अंग्रेजी सभ्यता और अंग्रेजी शासन-पद्धतिके वरदान फैला सकें एवं उन्हें वह शिक्षा-संस्कृति प्रदान कर सकें, जिनसे वे इन वरदानोंकी कद्र करें, इन्हें और भी फैलानेमें भाग लें और उन्हें सफल करें तो हम समझेंगे कि आजकी इस

१. जीवन-काल : १८३०–१९०३। दो बार ब्रिटेनके प्रधानमन्त्री रहे।

> विश्रामकी तथा निश्चलताकी स्थितिका भी हमने अच्छेसे-अच्छा उपयोग कर लिया। . . . अगर हम प्राप्त अवसरोंका अच्छेसे-अच्छा उपयोग कर सकें, अगर उस विशाल भूभागकी तथा उसमें बसनेवाले असंख्य लोगोंकी आर्थिक और नैतिक स्थिति सुधारनेमें हम अपनी सारी शक्ति लगा सकें तो हम अपने साम्राज्यकी नींवको इतनी मजबूत बना देंगे कि वह कभी हिल नहीं सकेगी।

नीचे दिया हुआ उद्धरण बहुत ही उपयुक्त है, जो श्री दादाभाई नौरोजीके महान् ग्रन्थ[1] में दिये उनके एक भाषणका अंश है और जो प्रकट करता है कि वे कितने साफ-दिल आदमी थे:

> भारतको जिन्होंने अच्छी तरहसे समझा है, ऐसे तमाम लोग इस बातमें एकमत हैं कि भारतमें अगर अनेक छोटे-छोटे किन्तु सुशासित देशी राज्य बने रहें तो यह वहाँकी जनताकी नैतिक और राजनीतिक उन्नति तथा विकासके लिए अत्यन्त लाभप्रद होगा। . . . यह सच है कि जो हिंसा और गैर-कानूनी बातें देशी राजाओंके शासनमें पाई जाती हैं वे आपको ब्रिटिश शासनमें नहीं मिलेंगी। परन्तु ब्रिटिश शासनके अपने दोष अलग हैं। उनकी जड़में इतने बुरे उद्देश्य भले ही न हों, परन्तु उनके परिणाम कहीं अधिक भयंकर हैं। ब्रिटिश शासनमें परिपाटी-पालनकी वृत्ति है, एक प्रकारकी जड़ताभरी बड़ी लापरवाही है, जो शायद संगठनकी विशालताके कारण पैदा हो गई है, जिम्मेदारीका बहुत अधिक खयाल और सत्ताका अत्यधिक केन्द्रीकरण है। ये सब कारण हैं जिनके लिए कोई एक व्यक्ति जिम्मेदार नहीं बताया जा सकता; परन्तु इन सबके कारण शासनमें अत्यधिक ढिलाई पैदा हो जाती है। फिर इसके साथ अन्य स्वाभाविक कारण और परिस्थितियाँ मिल जाती हैं और इन सबका कुल मिलाकर परिणाम आज वहाँकी यह भयंकर दुर्दशा है।

पिछले बोअर-युद्धके नाजुक समयमें भी उन्होंने इसी साफ-दिलीका परिचय दिया था। इस मानव-संहारक युद्धके प्रारम्भमें जब एकके बाद एक संकट आने लगे तब ब्रिटेनके तमाम राजनीति-विशारदोंमें अकेले वे एक पुरुष थे, जिन्होंने खुले दिलसे स्वीकार किया कि इन संकटोंका निश्चित कारण ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंकी भूलें थीं। साथ ही इतिहाससे उदाहरण दे-देकर वे यह भी बताते जाते थे कि ब्रिटेन जितने युद्धोंमें लड़ा उसने हर युद्धमें शुरू-शुरूमें ऐसी ही गम्भीर भूलें की थीं।

२० जुलाई १९०० को तो उन्होंने यहाँतक कह दिया कि:

> भारतके साथ अधिक उदारता और बड़प्पनका व्यवहार करनेकी जरूरत है, क्योंकि और बातोंके साथ, उस देशके निवासी यहाँके लोगोंकी अपेक्षा कहीं अधिक पुरुषार्थी और कष्ट-सहिष्णु हैं।

फिर, चीनकी चढ़ाईके समय खुद बाइबिल प्रचार-सभा (प्रोपोगेशन ऑफ दी गॉस्पेल सोसाइटी) के मंचसे भी अप्रिय किन्तु हितकर सत्य कहकर सावधानीकी सूचना देनेका साहस अकेले उन्होंने ही दिखाया। इसमें उन्हें बुरा बनना पड़ा। परन्तु इसकी उन्होंने परवाह नहीं की।

1. *"पावर्टी ऐंड अनब्रिटिश रूल इन इंडिया"* (भारतमें गरीबी और अब्रिटिश शासन), १९०१।

चीनमें ईसाई पादरियोके कामके बारेमें अपने प्रतिष्ठित श्रोताओके सामने एक सच्चे ईसाईकी भाँति उन्होंने ईसाई धर्मप्रचारकोको याद दिलाई कि उन्होने ईसाके उपदेशोको भुला दिया है। ईसाने कहा है कि उन्हे धर्मके लिए सारी मुसीबतें चुपचाप सह लेनी चाहिए। अगर जरूरत पड़े तो मृत्युका भी स्वागत करना चाहिए। परन्तु इस बातको भुलाकर अपने काममें सहूलियत हो इस-लिए उन्होने लौकिक सत्ताकी सहायता माँगी है। उन्हे चाहिए कि धर्म-प्रचारके अपने उत्साहके साथ वे बुद्धिसे भी काम लें और जिस देशके प्रतिनिधि बनकर वे यहाँ आये हैं उसकी प्रतिष्ठामें कमी न आने दें, और उसकी स्थिति खराब न होने दें।

अपने पाठकोकी जानकारीके लिए हम अन्यत्र उपर्युक्त सभामें दिये गये भाषणका एक अश देते है। उससे उनके विचारोकी उच्चता, हृदयकी विशालता और गहराईका तथा हेतुकी शुद्धताका पता लग सकता है।

ऐसा था वह महान् और सद्गुणी देशभक्त, जिसे ब्रिटिश साम्राज्यने खोया है, और जिसकी मृत्युपर वह शोक मना रहा है।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन, ३-९-१९०३*

## ३२४. असत् साँठगाँठ

अन्यत्र हम श्री चेम्बरलेनका वह भाषण छाप रहे है, जो उन्होंने ब्रिटेनकी लोकसभामें भारतीय मजदूरोंके प्रश्नपर दिया था। नीचे दिया अत्यन्त अशुभ भाग उसीका एक अंश है:

> यह विकास अधिकसे-अधिक तेज गतिसे हो इस हेतुसे लॉर्ड मिलनरने मुझसे दरखास्त की है और कहा है: 'हम सोच रहे हैं कि रेलवेमें हम कुलियोंसे काम लें। क्या आप हमारी यह इच्छा भारत-सरकारतक पहुँचा कर इसके लिए उसकी मंजूरी प्राप्त करनेमें अपना प्रभाव डालनेकी कृपा करेंगे?' इस बारेमें नेटालके प्रस्तावपर भारत-सरकार पहले ही अपनी मंजूरी दे चुकी है। प्रस्ताव यह था कि भारतसे मजदूर एक निश्चित अवधिके लिए नेटाल आयें और वे इस प्रकार भारत लौटा दिये जायें कि इकरारकी अवधि भारतमें समाप्त हो। उनके वेतनका शेष अंश उन्हें भारत पहुँचनेपर वहाँ चुका दिया जाये। इसका मतलब यह है कि वे दक्षिण आफ्रिकाके स्थायी निवासी नहीं बनेंगे; बल्कि अपनी बचतकी रकम जेबमें रखकर स्वदेश लौट जायेंगे। भारत-सरकारने दक्षिण आफ्रिकाको एशियाइयोंकी स्थायी बस्तीसे बचाते हुए वहाँकी चीनीकी जायदादों और अन्य कामोंके लिए पर्याप्त मजदूर उपलब्ध कर देनेका यह सबसे उत्तम तरीका समझा। इस इकरारनामेको दोनों पक्षोंने पसन्द करके इसे अपनी मंजूरी भी दे दी है।

हम तो यही आशा कर सकते है कि या तो श्री चेम्बरलेनके भाषणकी यह खबर ठीक नहीं है या जब उन्होंने उपर्युक्त भाषण दिया तब उन्हे खुद कोई भारी गलतफहमी हो रही होगी। हम सब जानते है कि नेटाल-सरकारकी तरफसे एक शिष्ट-मण्डल भारत गया था और वह लौट

भी आया। परन्तु वह क्या करके आया है इसकी कोई खबर हमें नहीं मिल सकी है। यहाँकी सरकारने इस आशयका कोई वक्तव्य भी प्रकाशित नही किया है कि मजदूरोंको जबरदस्ती भारत लौटानेके सिद्धान्तको भारत-सरकारने मंजूर कर लिया है, जैसा कि श्री चेम्बरलेनने बताया है। फिर भी हमने ऊपर जो भाषण उद्धृत किया है वह बिलकुल स्पष्ट है, अर्थात् यह कि शर्तकी अवधि पूरी हो जानेपर गिरमिटिया मजदूरोंको भारत लौटना ही होगा। उनके लौटानेके लिए एक अत्यन्त कारगर उपाय काममें लिया गया है और वह है कि उनकी शेष मजदूरी उन्हें भारत लौटनेपर दी जाये। सो, ट्रान्सवालका विकास अधिकसे-अधिक तेज गतिसे करनेका उपाय यह होगा कि भारत-सरकार ट्रान्सवालके लिए भी वही बात मजूर कर ले जो, कहा जाता है, उसने नेटालके लिए मंजूर कर ली है। श्री चेम्बरलेनके भाषणका उपर्युक्त सार यदि सही है तो उनके प्रति उचित आदर रखते हुए हम तो इस विषयमें यही कह सकते है कि उपनिवेशको लाभ पहुँचानेके लिए भारतीय मजदूरको बेच दिया गया है और इस बीसवी सदीमें दक्षिण आफ्रिकामें एक नये रूपमें गुलामीकी प्रथाको पुनर्जीवित किया जा रहा है—सो भी ब्रिटिश सरकारकी मंजूरीसे और उन लोगोंके नामपर जिन्होंने गुलामोंकी मुक्तिके लिए न जाने कितना धन और खून बहाया है। इस प्रकार भारतीय मजदूरों और उनके मालिकोंके बीचकी साझेदारी इस तरहकी होगी जैसी कि शेर और भेड़के बीच होती है, अर्थात् एक पक्षको लाभ-ही-लाभ मिलेगा और दूसरे पक्षको केवल हानि-ही-हानि उठानी होगी। इन घटनाओंके प्रकाशमें तो ट्रान्सवालके श्वेत-संघ (व्हाइट लीग) के सभ्योंने जो रुख ग्रहण किया था उसकी हमें अब तारीफ करनी पड़ेगी। उनकी बात आखिर समझमें आने जैसी तो है। सचमुच लॉर्ड मिलनरके प्रस्तावकी अपेक्षा उनका रुख न्यायके अधिक निकट है। वे तो सीधे-सच्चे शब्दोंमें कह देते है कि पूर्वकी जातियोंको हम दक्षिण आफ्रिकामें नहीं आने देंगे। परन्तु लॉर्ड मिलनर भारतीयोके श्रमका लाभ उठाकर भी उन्हें यहाँ बसनेके अधिकारसे वंचित रखना चाहते है। दोनोंकी कोई तुलना नही हो सकती। एक पक्षका इनकार केवल साम्राज्यकी दृष्टिसे अन्यायपूर्ण है; क्योंकि अगर दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश साम्राज्यके अन्दर नहीं होता तो दक्षिण आफ्रिकाके यूरोपीयोंको उनके इस रुखपर कोई दोष नही दे सकता था कि वे इस महान् भूखण्डके अन्दर बसनेका लाभ अपने सिवा अन्य किसीको नहीं उठाने देना चाहते। परन्तु लॉर्ड मिलनरकी प्रस्तावित शर्तोपर मजदूरोंका लाया जाना तो साम्राज्यकी दृष्टिके अलावा भी अन्यायपूर्ण है, अर्थात् वह हर दृष्टिसे अनुचित है। एकमें अगर साम्राज्यकी भावनापर ही प्रहार होता है तो दूसरेमें समस्त मानवताकी भावनापर। जैसा कि स्वर्गीय माननीय श्री हैरी एस्कम्बने कहा था: "हम तो कल्पना भी नहीं कर सकते कि अपराधको छोड़कर किसी अन्य कारणसे मनुष्यको अपने देशसे बाहर जबरदस्ती भेजा जा सकता है।" बेचारे भारतीयोंने ऐसा कौन-सा अपराध किया है जिसके कारण उन्हें देश-निकालेकी यह सजा दी जा रही है? हाँ, अपने पूर्वजोंसे रंगदार चमड़ी प्राप्त करना ही दक्षिण आफ्रिकामें अगर अपराध समझा जाय तो बात दूसरी है।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, ३–९–१९०३

## ३२५. ट्रान्सवालके परवाने

*इंडियन ओपिनियन*के पिछले अंकमें हमने लॉर्ड मिलनरका जो खरीता छापा था उसमें एक मुद्दा ऐसा है जिसपर खास तौरसे ध्यान देनेकी जरूरत है। परमश्रेष्ठ कहते हैं :

> लड़ाईके दिनोंमें और शान्तिकी घोषणा हो जानेके बाद, नये आगन्तुकोंके नाम बहुत बड़ी संख्यामें अस्थायी परवाने जारी कर दिये गये थे। इन परवानोंको ३१ दिसम्बर १९०३ तक फिर नया कर दिया गया है। परन्तु इनके मालिकोंको सावधान किया गया है कि उन्हें उस तारीखको इस प्रयोजनके लिए निश्चित सड़कों या *बाजारों*में चले जाना होगा।

पहले यह बताया जा चुका है कि जारी किये गये परवानोंमें से एक भी "अस्थायी" नहीं था, और न वे नये आये लोगोंको दिये गये थे। फिर कोई नये आदमी ट्रान्सवालमें न तो लड़ाईके दरमियान प्रवेश पा सके हैं और न शान्तिकी घोषणा हो जानेके बाद। कमसे-कम व्यापारके परवाने तो किसीको भी नहीं मिले हैं। यह सिद्ध करनेमें रत्तीभर भी कठिनाई नहीं होगी कि जिनको परवाने दिये गये वे सब वास्तविक शरणार्थी थे, और यह कि, लड़ाईसे पहले वे ट्रान्सवालके अन्दर कहीं-न-कहीं व्यापार कर रहे थे। जिन ब्रिटिश अधिकारियोंने उनके नाम परवाने जारी किये उन्होंने जबानी या लिखित रूपमें कोई शर्तें उनके सामने नहीं रखी। परवाने बिलकुल साधारण तरीकेसे जारी किये गये थे। यह पिछले वर्षके अन्ततककी बात है। जब श्री चेम्बरलेन दक्षिण आफ्रिका आये और भारतीय व्यापारियोंके खिलाफ आन्दोलन खड़ा किया गया, तब मजिस्ट्रेटोंने इस आशयकी सूचनाएँ जारी कीं कि ये परवाने अब नये नहीं किये जायेंगे। खुद सरकारने इन सूचनाओंको कोई महत्त्व नहीं दिया और ३१ दिसम्बर तकके लिए परवानोंकी मियादें बढ़ा दीं। इसीसे सिद्ध हो जाता है कि भारतीयोंके परवाने अस्थायी नहीं थे। जो भी हो, यह प्रश्न जिन-जिनपर तत्काल प्रभाव डालता है, उनके लिए तो अत्यन्त गम्भीर है। हमें ज्ञात हुआ है कि बहुतसे परवानेदार व्यापारी मानते रहे हैं कि ब्रिटिश शासनमें उनके अधिकार पूर्णतया सुरक्षित हैं, अतः उन्होंने भारी-भारी पूंजी लगाकर अपने भण्डार बना लिये हैं, इंग्लैंडसे बहुत भारी तादादमें माल मँगा लिया है और अच्छे-अच्छे सम्बन्ध भी कायम कर लिये हैं। उनसे यह अपेक्षा करना कि वे वर्षके अन्तमें उन बस्तियों या *बाजारोंमें* चले जायें, उन्हें बरबाद कर देना ही होगा। यही क्यों, एक ही सड़कपर एक जगहसे दूसरी जगह दूकान ले जानेकी बात हो तो भी व्यापारका ककहरा जाननेवाला भी बता सकता है कि इसमें बहुत बड़ी हानि होती है। इसलिए *बाजार* एक स्थायी संस्था बननेवाले हों या न हों, नये अर्जदारोंको परवाने मिलें या नहीं भी मिलें, और मौजूदा कानूनके स्थानपर — जिसे खुद लॉर्ड मिलनरने ब्रिटिशोंके लिए अशोभनीय बताया है — नया कानून बन रहा है यह सच भी हो, तो भी इन गरीब व्यापारियोंको यह आश्वासन दिया जाना अत्यन्त इष्ट और आवश्यक है कि, उनके परवाने पूर्णतः सुरक्षित हैं। *बाजार*-सूचनाओंके बारेमें दो बातें बिलकुल साफ तौरपर सामने आती हैं। एक तो यह अस्थायी परवानोंवाली बात, और दूसरे यह फर्क ध्यानमें रखना कि लड़ाईके पहले जिन ब्रिटिश भारतीयोंके पास परवाने थे वे, और जो लड़ाईके पहले बगैर परवानोंके व्यापार कर रहे थे वे, अलग-अलग हैं। भारतीयोंके पास अभी तीन प्रकारके

परवाने हैं: (एक) वे भारतीय, जो यद्यपि वास्तविक शरणार्थी हैं और लड़ाईके पहले व्यापार करते थे, जिन्हें ट्रान्सवालके उन जिलोंमें व्यापारके परवाने दे दिये गये हैं जहाँ लड़ाईसे पहले वे व्यापार नही करते थे और जिनके परवानोंको अस्थायी कहा जाता है; (दूसरे) वे भारतीय शरणार्थी जो लड़ाईके पहले बगैर परवानोंके, किन्तु ट्रान्सवालकी पुरानी सरकारकी जानकारीमें, उन्हीं जिलोंमें व्यापार करते थे जिन जिलोंमें वे आज व्यापार कर रहे हैं; और (तीसरे) वे ब्रिटिश भारतीय, जिनके पास लड़ाई के पहले परवाने थे और जो अब व्यापार कर रहे हैं। *बाजार*-सूचना केवल इस तीसरे वर्गके भारतीयोंको असंदिग्ध शब्दोंमें सुरक्षितता प्रदान करती है। शेष दो वर्ग अभी अपने आपको अत्यन्त अरक्षित अनुभव कर रहे हैं। किसीके भी परवाने अगर छिन गये तो उसका असर आजकी स्थितिमें सबपर एक-सा ही होगा, चाहे वे किसी वर्गके हों; क्योंकि आज तो सभीके पास परवाने हैं। इसके अलावा जहाँतक इनका सम्बन्ध है, सरकारके लिए यह कोई बहुत भारी महत्त्वकी बात नहीं है, परन्तु खुद व्यापारियोंके लिए तो यह प्रत्यक्ष जीवन-मरणका प्रश्न है। श्री चेम्बरलेनका ध्यान जब प्रिटोरियामें इस बातकी तरफ दिलाया गया तब उन्होंने इस बातको उपहासके साथ टरका दिया कि ब्रिटिश शासनमें कभी इन परवानोंको छेड़ा भी जा सकता है। इसलिए न्यायके आधारपर और उपनिवेश-मंत्री द्वारा दिये गये वचनके बलपर हम सोचते हैं कि इन गरीबोंको, जिनकी गिनती उँगलियोंपर की जा सकती है, पूर्ण रक्षाका आश्वासन पानेका अधिकार है। हमें पूरी आशा है कि इस विषयमें उन्हें सरकार जरूर आवश्यक राहत देनेकी कृपा करेगी।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, ३–९–१९०३

## ३२६. भारतीय मजदूर और मॉरिशस

दक्षिण आफ्रिकामें मॉरिशस द्वीपका नाम हमेशा भारतीयोंके खिलाफ लिया जाता है। ऊपरसे देखकर आलोचना करनेवालोंने यह कहनेमें संकोच नहीं किया है कि भारतीयोंने मॉरिशसको बरबाद कर दिया है। परन्तु वे इस बातको भूल ही जाते हैं कि मॉरिशस आज जिस समृद्धिको प्राप्त हुआ है उसका कारण भारतीयोंकी उद्योगशीलता ही है। [अगर भारतीय मजदूरोंके श्रमका लाभ उसे नहीं मिलता तो वह एक भयानक और निर्जन अरण्यमात्र होता।] भारतीयोंके वहाँ पहुँचनेसे पहले कभी वह द्वीप इससे अधिक अच्छी हालतमें था भी, यह वे नहीं बता सकते। उस द्वीपमें धैर्यवान् भारतीय मेहनतकशोंकी योग्यताका यह एक बिना माँगा प्रमाण है:

> *टाइम्स ऑफ् इंडिया*ने लिखा है कि मॉरिशसके धनपतियोंकी सभामें लॉर्ड स्टैनमोरने जो शब्द कहे थे, उन्हें दक्षिण आफ्रिकाके निवासी नोट कर लें। पिछले वर्ष मॉरिशसमें दुर्भाग्यसे इतना बड़ा संकट आया, जैसा वहाँके लोगोंकी यादमें वहाँ पहले कभी न आया था। वहाँ जानवरोंमें प्लेगका भीषण प्रकोप हो गया, जिसके कारण वहाँकी श्वेत-जायदादोंके सारे नहीं तो अधिकांश बैल-खच्चर मर गये — सो भी ऐसे समय जब फसलोंको ढोनेके लिए उनकी सबसे अधिक जरूरत थी। परन्तु लॉर्ड स्टैनमोर कहते हैं कि इस संकटने बता दिया कि अपने भारतीय मजदूरोंके रूपमें मॉरिशसके पास कितनी आश्चर्यजनक श्रमिक सेना थी। जो काम साधारणतः बैलों और खच्चरोंसे लिया जाता

है उसे उन्होंने तुरन्त और खुशी-खुशी उठा लिया। इसके लिए उन्होंने कोई विशेष लाभ भी नहीं माँगा, यद्यपि वे माँगते तो उनको वह देना ही पड़ता — उसके लिए उनको इनकार नहीं किया जा सकता था।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, ३–९–१९०३

## ३२७. नेटालका गौरव

[स्वर्गीय परम माननीय हैरी एस्कम्बकी स्मृतिका सम्मान करके उपनिवेशने अपना ही गौरव बढ़ाया है। गत शनिवारको शहरके उद्यानमें उस स्वर्गीय राजनीति-विशारदकी प्रतिमाका अनावरण उन्हींके मित्र और सहकारीके हाथों हुआ। यह तो उस महापुरुषके प्रति केवल न्याय ही है। ब्रिटिश भारतीयोंको उनके रुखके बारेमें जरूर कई बार शिकायतके अवसर आते रहे हैं; परन्तु उनके बारेमें कभी यह नही कहा जा सकता कि उन्होने समझ-बूझकर कोई अन्याय किया। वे ऐसे पुरुष थे ही नही, जो अपने सुनिश्चित विश्वासोंके खिलाफ कुछ कर सकें। एक मौका ऐसा आया जब लगभग सारे उपनिवेशकी जनता उनके विरोधमें खड़ी हो गई। उनके दिलमें यह निश्चय हो गया कि अमुक बात सत्य है, बस उसपर अड़ गये। यही नही; इसके लिए अपनी सारी प्रतिष्ठा और लोकप्रियताको उन्होने दाँवपर लगा दिया। (हमारा इशारा वकील-मण्डलके प्रश्नकी ओर है। उसपर उन्होंने एक बार जो रुख धारण किया, बस उसपर अपनी मृत्युके दिनतक डटे ही रहे[1])। बादमें इन परम माननीय सज्जनने भारतीयोंके प्रश्नपर अपने विचारोंमें काफी परिवर्तन कर लिया था। अपनी मृत्युसे तीन घण्टे पहले उन्होंने इस बातपर दु:ख प्रकट किया कि जब उन्होने एशियाई-विरोधी कानूनोंको अपनी मंजूरी प्रदान की थी तब वे भारतीय समाजको इतनी अच्छी तरह नहीं जानते थे जैसे अब जानने लगे थे। उन्होंने यह भी आशा प्रकट की कि इस कानूनके कारण भारतीयोंको जो कष्ट होगा वह समय पाकर दूर हो जायेगा। यह उदाहरण हमने केवल उस महापुरुषकी न्याय-प्रियता और हृदयकी विशालताको प्रकट करनेके उद्देश्यसे ही दिया है। उनके भारतीय समाजके प्रति दयालुताके काम अनेक थे और उनमें प्रमुख था नेटालके भारतीय स्वयंसेवकोके नायकोंको[2] आशीर्वाद और भोज देनेका उनका ढंग।] उनकी इस कृपाके लिए भारतीय समाज उनका सदा कृतज्ञ रहेगा। नायकोंको सम्बोधन करते हुए उन्होने ये शब्द कहे थे और ये सार्वजनिक रूपसे कहे गये उनके अन्तिम शब्द थे:

> लड़ाईके मैदानपर जानेसे पहले आपने मुझे आशीर्वादात्मक दो शब्द कहनेके लिए निमंत्रित किया, इसे मैं अपने लिए एक विशेष सम्मान मानता हूँ। यहाँपर जो लोग उपस्थित हैं आप केवल उन्हींकी नहीं, बल्कि नेटालकी और महारानीके महान् साम्राज्यकी समस्त जनताकी शुभकामनाएँ अपने साथ ले जा रहे हैं। इस महत्त्वपूर्ण लड़ाईमें जो

१. वकील-मण्डलने १८९४ में रंगभेदके आधारपर सर्वोच्च न्यायालयके एडवोकेटके रूपमें गांधीजीका नाम दर्ज करानेका विरोध किया था। किन्तु इस विरोधके बावजूद महान्यायवादी एस्कम्बने उसका समर्थन किया।

२. देखिए "भारतीय आहत-सहायक दल," दिसम्बर १३, १८९९।

अनेक घटनाएँ हुई हैं उनमें यह घटना कोई कम दिलचस्प नहीं है। साम्राज्यकी एकता और दृढ़ताको बढ़ानेके लिए जो-कुछ भी किया जा सकता है वह सब करनेके लिए भारतीय प्रजाजन प्रसन्नतापूर्वक कृत-संकल्प हैं, यह इस सभासे प्रकट होता है। इससे यह भी प्रकट होता है कि जब वे नेटालमें अपने लिए अधिकारोंकी माँग कर रहे हैं तब अपने इस कार्य द्वारा वे यह भी प्रकट कर रहे हैं कि नेटालके प्रति अपने कर्तव्योंको भी वे जानते हैं। उनको भी उतना ही सम्मानजनक स्थान प्राप्त होगा जितना युद्ध करनेवाले लोगोंको, क्योंकि युद्धमें घायलोंकी देखभाल करनेवाला कोई न हो तो युद्ध आजकी अपेक्षा कहीं अधिक भयंकर बन जायेगा। लड़ाई एक दुःखजनक चीज है; परन्तु इससे भी अधिक खराब चीजें दुनियामें हैं। जब राष्ट्रपर हमला हो जाता है तो उसे लड़ना ही पड़ता है। परन्तु उसकी भयंकरताको कम करनेके लिए आजकल जो-कुछ भी किया जाता है वह सब न किया जाये तो लड़ाई कहीं अधिक भयानक बन जाये। साथ ही, यह एक ऐसा काम है जिसमें आप सम्मानपूर्वक भाग ले सकते हैं। आम तौरपर लड़ाईका अंतिम परिणाम क्या होगा यह कोई नहीं जानता। परन्तु जिस युद्धमें ब्रिटिश साम्राज्य भाग ले रहा हो उसके लिए यह नहीं कहा जा सकता। उसका तो एक ही और निश्चित परिणाम होता है। यों, घटनाएँ तो अनेक होती हैं; परन्तु उनका परिणाम होगा एक ही — यह कि, दक्षिण आफ्रिकाका यह सारा प्रदेश एक झण्डेके आश्रयमें आ जायेगा और यहाँकी स्थिति कहीं अच्छी हो जायेगी। बहुत दिनकी बात नहीं है, जब हम सोच रहे थे कि राज्योंकी स्वतन्त्रता और स्वायत्ततामें कमी न आने देते हुए सारे दक्षिण आफ्रिकाका एक संघ-राज्य ब्रिटिश झण्डेके आश्रयमें बना लें। परन्तु जब नेटालपर आक्रमण हो गया तब ये आशाएँ रखी रह गईं और दूसरे नतीजोंपर पहुँचना पड़ा। और अब ऐसी घटनाएँ घट गईं कि सारे दक्षिण आफ्रिकाको सिवा साम्राज्यके अन्दर मिला देनेके दूसरा कोई मार्ग ही नहीं रह गया। ऐसे समय यह कैसे भुलाया जा सकता है कि नेटालके ब्रिटिश भारतीयोंने, जिनके साथ न्यूनाधिक परिमाणमें कई अन्याय हुए हैं, अपने सारे दुखोंको भुलाकर अपने आपको साम्राज्यका अंग मान लिया और उसकी जिम्मेदारियोंको अदा करनेके लिए वे तैयार हो गये। आज यहाँ जो कुछ हो रहा है, इसके जो-जो भी साक्षी यहाँ हैं, उन सबकी हार्दिक शुभकामनाएँ आपके साथ हैं और आप जो-कुछ कर रहे हैं उसकी जानकारी साम्राज्यभर में सम्राट्के भिन्न-भिन्न वर्गोंके प्रजाजनोंको एक-दूसरेके निकट लानेमें सहायता देगी।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, ३–९–१९०३

## ३२८. बॉक्सबर्गकी पृथक् बस्ती

बॉक्सबर्गके स्वास्थ्य-निकायकी बैठककी कार्यवाहीसे प्रकट होगा कि वर्तमान भारतीय बस्तीको वहाँसे हटानेके बारेमें उसके सभ्य-गण अब भी क्रियाशील हैं। मालूम होता है, उसके अध्यक्ष कैप्टन कॉली, जो हालमें ही यूरोपसे लौटे हैं, निकायके इस कठोर प्रस्तावसे सहमत नहीं हैं। परन्तु वे अकेले-हाथों न्यायकी रक्षा कहाँतक कर सकेंगे, यह एक प्रश्न ही है। इसलिए वर्तमान बस्तीका कायम रहना तो मुख्यतः सरकारी कार्रवाईपर ही निर्भर करता है। न्याय तो सर्वथा बस्तीके निवासियोंके पक्षमें ही है और इसमें सरकारका रुख भी युक्तियुक्त ही रहा है; अतः हम आशा करते हैं कि स्वास्थ्य-निकायके प्रभावमें आकर वह अपने रुखको छोड़ नहीं देगी। फिर भी हम निकायके सदस्योंकी न्यायवृत्तिको क्यों न प्रेरित करें? हमने उन्हें एक ऐसा हल सुझाया है जो ब्रिटिश जनोचित है। वे कहते हैं कि बस्तीका इतना नजदीक होना समाजके आरोग्यके लिए खतरनाक है। हम क्षणभर मान लेते हैं कि उनका यह भय सही है, तो भी इसका उपाय उन्हींके हाथमें है। वह उपाय यह नहीं कि बस्तीको वहाँसे हटा दिया जाये। जैसा कि डॉक्टर जॉन्स्टन कहेंगे, 'बस्तीको दूर हटानेसे तो खतरा उलटे बढ़ जायेगा।' इसलिए सही उपाय तो यह है कि अगर अभी बस्ती अच्छी हालतमें नहीं है तो उसे आरोग्यदायक और साफ रखा जाये। अगर बस्तीके निवासी इसमें गुनहगार हैं तो उनपर कानून कठोरतासे लागू किया जाये और कुछ लोगोंपर मुकदमे चला दिये जायें। बस्तीको हटानेका दुर्भावपूर्ण आन्दोलन करने और फिर बस्तीके निवासियोंपर से सफाई-सम्बन्धी नियन्त्रण हटानेकी अपेक्षा इससे कहीं अधिक लाभ हो सकता है।

[अंग्रेजीसे]
*इंडियन ओपिनियन*, ३–९–१९०३

## ३२९. पत्र : दादाभाई नौरोजीको[1]

पो० ऑ० बॉक्स ६५२८
जोहानिसबर्ग
सितम्बर ७, १९०३

सेवामें
माननीय दादाभाई नौरोजी
वाशिंगटन हाउस, ७२ एनर्ले पार्क
लंदन एस० ई०

महोदय,

आजकी डाकसे भेजे जानेवाले *इंडियन ओपिनियन*में आप श्री चेम्बरलेनके भाषण[2]का एक उद्धरण पढ़ेंगे।

आपको याद होगा कि गत वर्ष नेटाल-सरकारकी ओरसे एक आयोग भारत गया था। उसका उद्देश्य लॉर्ड कर्जनको इस बातके लिए सहमत करना था कि शर्तनामेके समाप्त होनेपर

१. यह "एक संवाददातासे प्राप्त" रूपमें कुछ शाब्दिक परिवर्तनोंके साथ २–१०–१९०३ के *इंडिया*में भी प्रकाशित हुआ था।

२. ट्रान्सवालके मजदूरोंके प्रश्नपर भाषण लोकसभामें दिया गया था; देखिए *इंडियन ओपिनियन*, ३–९–१९०३।

गिरमिटिया भारतीयोंको अनिवार्य रूपसे वापस भेज दिया जाये। आयोग लौट आया है; लेकिन नेटाल-सरकारने अभीतक कोई वक्तव्य नहीं दिया। फिर भी श्री चेम्बरलेनका भाषण यह बता देगा कि भारत-सरकारने अनिवार्य वापसीके सिद्धान्तको स्वीकार कर लिया है और वह भी अत्यन्त आपत्तिजनक तरीकेसे; अर्थात् इस व्यवस्थाके साथ कि, गिरमिटिया लोगोंकी मजदूरीका एक भाग उन्हें भारत वापस जानेपर दिया जाये। यह अस्थायी गुलामीसे कुछ कम नहीं होगा। और हम दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय इस बातको तीव्र रूपसे महसूस करते हैं कि नेटालमें बसनेवाले स्वतन्त्र भारतीयोंको अधिक अधिकार देनेके बदलेमें भी इस शर्तको मंजूर नहीं करना चाहिए। परवानों तथा स्वतन्त्र भारतीयोंपर असर डालनेवाले अन्य मामलोंसे सम्बन्धित संघर्षको गिरमिटिया मजदूरोंके प्रश्नसे अलग ही चलाना चाहिए। हाँ, यदि स्वतन्त्र भारतीयोंके साथ न्यायपूर्ण व्यवहार नहीं होता तो गिरमिटियोंका प्रवास बन्द कर दिया जाये। किन्तु स्वतन्त्र भारतीयोंके साथ अच्छे व्यवहारके बदले ऐसे गिरमिटिया भारतीयोंकी, जो नेटाल लाये जायें, आजादीका बलिदान करना अत्यन्त अनैतिक होगा, और स्वतन्त्र भारतीयोको यह कभी स्वीकार्य भी नहीं होगा। इसलिए आशा की जाती है कि अनिवार्य वापसीके सिद्धान्तका निरन्तर विरोध किया जायेगा। श्री चेम्बरलेनके वक्तव्यसे ऐसा मालूम होता है कि यह सिद्धान्त पहले ही स्वीकार कर लिया गया है। किन्तु नेटाल-सरकार इसपर बिलकुल मौन है, इसलिए आशा तो है कि आखिर श्री चेम्बरलेनने जो घोषणा की है, उसमें गलती हुई है।

लॉर्ड मिलनरके नोटिसके प्रत्यक्ष परिणामस्वरूप नेटालमें (विक्रेता-) परवानोंके बारेमें संघर्ष फिर जारी कर दिया गया है। स्वभावत:, नेटालका साहस और भी बढ़ गया है। और, आनेवाले नये वर्षको दृष्टिमें रखते हुए स्थिति बहुत गम्भीर हो गई है।

जैसा कि आपको *ओपिनियन*से मालूम होगा, न्यूकैसिलमें एक अच्छी आदर्श दूकानके लिए एक ब्रिटिश भारतीयको परवाना देनेसे इनकार कर दिया गया है। डर्बनमें चार भारतीयोंके परवाने सिर्फ इसलिए नामंजूर कर दिये गये हैं कि उन्होंने दूकानोंकी अदला-बदली की थी। उनके परवाने नये न थे। शायद श्री नाजर आपको डर्बनसे लिख रहे होंगे, किन्तु चूँकि म विक्रेता-परवाना अधिनियमका इतिहास प्रारम्भसे जानता हूँ, इसलिए मैंने सोचा कि मैं इसपर भी लिखूँ।

ट्रान्सवालमें स्थिति ठीक वैसी ही है जैसी कि उस लम्बे तारमें बताई गई थी, जो कुछ दिन पहले भेजा गया था। अब समय आ गया है जब कि वर्तमान भारतीय परवानोंके सम्बन्धमें निश्चित घोषणा होनी चाहिए और असली शरणार्थियोंको परवाने देनेके बारेमें जो कठिनाइयाँ हैं उन्हें भी दूर कर देना चाहिए।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
**मो० क० गांधी**

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफ़िस: ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स, २८५२।

# ३३०. विक्रेता-परवाना अधिनियम पुनरुज्जीवित : १

यह एक अजीव संयोगकी वात है कि भारतीयोके परवानोंको दवानेमें जब न्यूकैसिलकी नगर-परिषद पूरे जोरसे लगी हुई है, ठीक उसी समय डर्वनकी नगर-परिषद भी पहले जैसा ही उत्साह प्रकट कर रही है। परवाना-अधिकारीने चार भारतीयोके परवाने दूसरी जगहपर व्यापार करनेके लिए नये करनेसे इनकार कर दिया। हम वीचमें वता दें कि इस नई जगहकी सफाईके वारेमें कोई शिकायत नही थी। खैर, इस इनकारीपर डर्वनकी नगर-परिषदमें अपील की गई। लेकिन वह नामजूर हो गई और अधिकारीके निर्णयको वहाल रखा गया। इन चार व्यापारियोंकी तरफसे श्री रॉविन्सनने वकालतनामा लिया था। अपनी वहसमें उन्होंने इशारा किया कि परवाना-अधिकारीको नगर-परिषदकी तरफसे पहले ही इस वारेमें सूचना मिल गई थी कि उन चार व्यापारियोंके परवाने नई जगहके लिए नये न किये जायें। हमें लगता है कि श्री रॉविन्सनके कथनमें जरूर कुछ सत्य है, यद्यपि नगर-परिषदने इसका प्रतिवाद किया है। किन्तु दक्षिण आफ्रिकामें इस तरहके कूटनीतिक प्रतिवाद कोई नई वात नही है। नगर-परिषदका प्रतिवाद हमें इसी श्रेणीका दिखाई देता है। यह एक दु खद वात है। परन्तु अभी हमें घटनाके इस पहलूसे इतना वास्ता नही है, जितना उस कठोर संघर्षसे है, जो अपनी सम्पूर्ण भयानक उत्कटताके साथ भारतीय समाजपर लादा जा रहा है और जिसका सबसे अधिक गहरा असर उसके व्यापारी अगपर पड़ रहा है।

श्री चेम्वरलेन जब यहांसे हजारो मीलके फासलेपर थे और जव उन्होने दक्षिण आफ्रिका देखा तक नही था, तव उपनिवेशके ब्रिटिश भारतीयोको वे कुछ राहत दिला सके थे। हमारा मतलव उस गश्तीपत्रसे है, जो उनके सुझावपर सरकारने भिन्न-भिन्न नगरपालिकाओके नाम भेजा था और जिसमें कहा गया था कि यद्यपि उनको अमर्याद सत्ता दे दी गई है, तथापि वे उसका उपयोग वहुत सोच-समझकर और सौम्यताके साथ ही करे। अगर वे चाहे कि यह सत्ता उनके पास वनी रहे तो उन्हे चाहिए कि वे निहित स्वार्थोको जरा भी न छेड़े। अगर इन सुझावोका ठीक तरहसे पालन नही किया गया तो उनकी यह सत्ता छिन जायेगी।

हमने समझा था कि इस गश्तीपत्रका आवश्यक और उचित असर हो गया, यद्यपि उसी समय कांग्रेसने श्री चेम्वरलेनको स्मरण दिला दिया था कि उनका सुझाया उपाय एक कामचलाऊ उपाय-मात्र है और उससे ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंको स्थायी संरक्षण नही मिलेगा। हमारा भय सही सावित हुआ। आज हम देखते हैं कि इस कानूनमें नगर-परिषदोको जो असाधारण सत्ता दी गई है, उसके वलपर उन्होंने सारे उपनिवेशमें अपनी वही पहले ग्रहण की हुई नीति पूर्ण रूपमें फिर कार्यान्वित करनी शुरू कर दी है और अगर हम जानना चाहे कि उनकी इस नई कार्रवाईका कारण क्या है, तो हमें पता चलेगा कि श्री चेम्वरलेन, जिन्होंने दक्षिण आफ्रिकामें स्मरणीय यात्रा की, और खुद लॉर्ड मिलनर इसके कारण है। उपनिवेशियोने शायद सपनेमें भी यह कल्पना नही की होगी कि ब्रिटिश सविधानके वुनियादी सिद्धान्तोसे सम्बन्धित मामलोमें श्री चेम्वरलेन इतनी आसानीसे झुक जायेंगे। इग्लैंड पहुँचनेपर भी दक्षिण आफ्रिकाकी उपनिवेश-सम्वन्धी नीतिका विरोध करनेकी उन्होने सदा अनिच्छा ही प्रकट की है — भले ही वह ब्रिटिश परम्पराओको साफ-साफ भंग करती हो। इसी प्रकार उपनिवेशियोंकी अपनी सत्ताके वारेमें जो धारणा थी उसे लॉर्ड मिलनरने *वाजार*-सूचना निकाल कर और भी पुष्ट कर

दिया है। अब उपनिवेशी सचमुच इस नतीजेपर पहुँच गये हैं कि, अगर प्रत्यक्ष शाही उपनिवेशके अन्दर ब्रिटिश भारतीयोंके लिए अलग बस्तियाँ कायम करने और उनके परवानोंपर अंकुश लगानेका सिद्धान्त मंजूर और पसन्द हो सकता है, तो नेटाल जैसे स्वशासित उपनिवेशमें तो वह और भी अधिक अच्छी तरह लागू किया जा सकता है।

परिणाम यह है कि विक्रेता-परवाना अधिनियमपर पूरे जोर-शोरके साथ अमल शुरू हो गया है। यह नेटालके ब्रिटिश भारतीयोंके लिए दूसरे जीवन-संघर्षका शायद आरम्भमात्र है। और अगर हमारा अनुमान सही है तो हम कह सकते हैं कि ब्रिटिश भारतीयोंने श्री चेम्बरलेनकी दक्षिण आफ्रिका-यात्रासे रोटीकी आशा की थी; परन्तु उसके बदलेमें उन्हें पत्थर ही मिल रहे हैं।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, १०–९–१९०३

## ३३१. गुलामसे कॉलेज-अध्यक्ष

श्रीमती बेसेंटने कहीं कहा है कि इंग्लैंडकी आज जो प्रतिष्ठा है सो उसके योद्धाओंके कारण नहीं, परन्तु उस राष्ट्र द्वारा किये गये एक महान कार्य — गुलामोंकी मुक्ति — के कारण है। बुकर टी० वाशिंगटनकी जीवन-कथामें यह सत्य बड़े अनूठे ढंगसे चरितार्थ हुआ दिखाई देता है। *ईस्ट ऐंड वेस्ट*के ताजा अंकमें बुकर टी० वाशिंगटनपर श्री रोलाँका एक बड़ा दिलचस्प लेख छपा है, जो हमारे पाठकोंका ध्यान दिलाने लायक है।

बुकरका जन्म सन् १८५८ के आसपास हुआ था। जबतक वह गुलाम रहा लोग उसे इसी नामसे जानते थे। अपने जन्मकी सही तारीख और सन्का खुद उसे भी पता नहीं था। श्री रोलाँने लिखा है: "उसकी हालत औसत दर्जेकी थी। श्रीमती बीचर स्टाउने अपने उपन्यासमें जिन पशुतुल्य मालिकोंका जोरदार वर्णन किया है, वैसा उसका मालिक नहीं था। इसलिए उसे वे अत्याचार नहीं सहने पड़े; परन्तु जो मालिक अपने गुलामोंके प्रति दयालु थे वे भी उन्हें तुच्छ जीवों — उपयोगी पालतू पशुओंकी तरह रखते थे। वे मानते थे कि अगर उनसे कसकर काम लेना है तो उन्हें ठीक तरहसे खानेके लिए भी देना जरूरी है। इन पशुओंको दूसरे प्रकारके आराम देना तो वे जरूरी ही नहीं मानते थे। इन आरामोंको वे गरीब जानें भी क्या?" गुलामोंके मुक्त कर दिये जानेकी घोषणा जब हुई तब बुकर-परिवार बागानको छोड़कर शहरमें रहने चला गया। बुकर अनपढ़ था। परन्तु उसे पढ़ने-लिखनेकी — शिक्षित बननेकी बड़ी इच्छा थी। इसलिए उसने अंग्रेजी भाषाकी प्रारम्भिक बातोंका अभ्यास शुरू किया और वह एक रात्रि-पाठशालामें जाने लगा। बौद्धिक प्रगतिके इस कठिन काममें बहुतसे गोरे सहायकोंने उसकी मदद की। इसमें से मुख्य जनरल आर्मस्ट्रॉंग थे, जिन्होंने गृह-युद्धमें बड़ा काम किया था। श्री रोलाँ आगे लिखते हैं: "जनरल आर्मस्ट्रॉंग एक पैगम्बर-से थे, जिन्होंने अपना सारा जीवन रंगदार जातियोंकी सेवामें अर्पित कर दिया था। वे उनकी जरूरतोंको पूरी तरह जानते थे और उन्होंने हब्शियों और रेड इंडियनोंकी सेवाके लिए सन् १८९८ में हैम्प्टन (वर्जीनिया) में एक खेतीका तथा अध्यापनका काम सिखानेवाला विद्यालय खोला था, ताकि इन जातियोंके युवक और युवतियाँ इसमें शिक्षा पाकर अपनी जातिमें शिक्षकोंका काम कर सकें।" हमारे चरित्र-नायकको बड़ी अभिलाषा थी कि वह इस संस्थामें शिक्षा प्राप्त करे; इसलिए उसने एक फौजी अफसरके यहाँ नौकरी कर ली और जब पास कुछ धन इकट्ठा हो गया तब हैम्प्टनको चल पड़ा।

उसे पाँच सौ मीलका फासला तय करना था। "एक रंगदार जातिका मनुष्य होनेके कारण मार्गमें उसे और भी बहुत-सी कठिनाइयोका सामना करना पड़ा। गोरोके होटलोंमें उसे ठहरने नही दिया जा सकता था। अनेक बार उसे खुलेमें सोना पडा और अपना पेट भरनेके लिए दिन-दिन भर काम करना पडा। परन्तु वह कभी झिझका नही। अन्तमें वह हैम्प्टन पहुँचा। उसकी सूरत-शकल और कपड़े इतने खराब और गन्दे थे कि उसे शायद ही कोई अन्दर आने देता। परन्तु सस्थाकी व्यवस्थापिकाको लगा कि शायद नौकरकी दृष्टिसे उसका कोई उपयोग हो सके। इसलिए उसे वहाँ रहनेकी इजाजत मिल गई। खाने और पढाईका खर्चा निकालनेके लिए उसने दरबानका, कमरोंकी सफाईका और हर तरहका काम किया। इतना सब काम करके भी कक्षाओंमें अपनी पढाईपर वह परिश्रमपूर्वक पूरा ध्यान देता रहा।" जनरल आर्मस्ट्रांग बड़े सहानुभूतिशील पुरुष थे। वहाँ इतने उद्यमी विद्यार्थीकी तरफ उनका ध्यान न जाये, यह असम्भव था। वे उसकी तरफ विशेष रूपसे ध्यान देने लगे। फलतः वुकर संस्थाके सबसे अधिक प्रतिभासम्पन्न विद्यार्थियोंमें से एक साबित हुआ। इस प्रकार ज्ञान प्राप्त होने पर उसका दृष्टिकोण और भी विशाल बन गया, और गरीबी तथा दूसरी तमाम प्रकारकी कठिनाइयोसे जूझनेकी नई शक्ति उसे प्राप्त हो गई। अब उसे ऐसा अनुभव होने लगा कि इस ज्ञानका सबसे अच्छा उपयोग यही हो सकता है कि वह अपना जीवन अपने देशभाइयोकी सेवामें लगा दे और उन्हें भी ऐसा ज्ञान प्राप्त करनेमें मदद करे। इस उच्च उद्देश्यको लेकर वुकरने पहले एक छोटी-सी पाठशाला मालदेनमें और बादमें वाशिंगटनमें खोली। परन्तु उसे शीघ्र ही हैम्प्टनसे निमन्त्रण मिला कि वहाँ जाकर वह संस्थामें पढनेवाले रेड इंडियनोंको पढ़ानेका काम स्वीकार कर ले। खुद हब्शी होनेके कारण अमरीकी इडियनोके साथ व्यवहारमें शुरू-शुरूमें उसे कुछ कठिनाई हुई; परन्तु इसमें उसकी सौम्यता और चतुराईकी विजय हुई और सारा विरोध शान्त हो गया। आज जिसे हम टस्केजीका आदर्श कॉलेज कहते हैं उसकी बुनियाद इस छोटे-से प्रारम्भिक कार्यसे ही पड़ी थी। वुकरके दिलमें एक बात पक्की तरहसे बैठ गई — "हब्शियोंके लिए आज सबसे जरूरी चीज यह है कि व्यापार-व्यवसाय और दस्तकारियोमें ऐसे काम सीखें जिससे आर्थिक लाभ हो। वे अच्छे किसान बनें, अपने जीवनमें बचत करना सीखें और फसल घरमें आनेसे पहले जो साहूकार उन्हें अपनी फसलको रेहन रख देनेके लिए ललचाते हैं उनसे बचना सीखें।" इस निश्चयको लेकर वुकर टस्केजीके लिए रवाना हुआ और सन् १८८१ में एक मामूली झोंपड़ेके अन्दर उसने अपनी पाठशालाका आरम्भ कर दिया। परन्तु केवल पाठशाला खोल देनेसे थोड़े ही काम चलता है। अन्य अनेक नेताओंकी भाँति उसे इस संस्थाके लिए विद्यार्थी भी ढूँढ़-ढूँढ़ कर लानेका काम करना पड़ा। जैसा हम सोच सकते हैं, उसकी अक्षरज्ञानके साथ औद्योगिक शिक्षाको जोड़ देनेकी बातका लोगोंने शुरू-शुरूमें उत्साहसे स्वागत नही किया। इसलिए अपनी पद्धतिका लाभ लोगोंको समझानेके लिए उसे जगह-जगह घूमना पड़ा। सुधार और प्रगतिकी इस संघर्षभरी यात्रामें उसे कुमारी ओलीविया डेविडसनसे बडी मदद मिली। इसके साथ आगे चलकर उसने विवाह भी कर लिया। इस यात्राका परिणाम बहुत अच्छा निकला। उसकी बातका लोगोंने स्वागत किया और अब इतने अधिक विद्यार्थी संस्थामें आने लगे कि वहाँ जगहकी तंगी अनुभव होने लगी। परन्तु वुकर — जो अब अपने नामके साथ 'वाशिंगटन' भी लिखने लगा था — हारनेवाला नही था। उसने कर्ज लेकर सौ एकड़का एक बाग खरीद लिया। अब औद्योगिक शिक्षणकी अपनी कल्पनाको कार्यान्वित करनेका अच्छा अवसर उसे मिल गया। सबसे पहले उसने अपने विद्यार्थियोंको लेकर एक उपयुक्त इमारत खड़ी कर ली। इस काममें मिट्टी भी विद्यार्थियोंने ही खोदी और ईंटें भी

उन्हीने बनाईं तथा पकाईं। आज टस्केजी कॉलेजके पास उसकी अपनी चालीस इमारतें हैं। एक सुन्दर ग्रन्थालय भी है, जो श्री ऐंड्रचू कार्नेगीकी देन है। ये सब २,००० एकड़की जायदादपर हैं। इनमें पंद्रह मकान भी शामिल हैं। इस सारी जायदादका मूल्य एक लाख पौंडके करीब होगा। सालाना खर्चा १६,००० पौंडका है। १,१०० लोग वहाँ रहते हैं। हर विद्यार्थी पर वहाँ १० पौंड खर्च होता है। भोजन खर्च कुछ तो नकद लिया जाता है और कुछ परिश्रमके रूपमें। चार वर्षका अभ्यासक्रम पूरा करनेके लिए ४० पौंड काफी होते हैं। २०० पौंड जमा करानेपर एक स्थायी छात्रवृत्तिका प्रबन्ध हो सकता है। बड़े-बड़े दानी पुरुषोंसे उसे दान प्राप्त होता है। अन्य लोगोंसे भी चन्दा आता रहता है। यह सब मिलाकर संस्थाके स्थायी कोषमें अच्छी रकम हो गई है। सन् १८९८ में संयुक्त राज्य अमेरिकाकी सरकारने संस्थाको अलावामामें २५,००० एकड़ जमीन शिक्षा-प्रचारके हेतु प्रदान की है। कोई बीस राज्यों और प्रदेशोंके विद्यार्थी यहाँ पढ़नेके लिए आते हैं। कॉलेजमें छियासी अध्यापक हैं और भिन्न-भिन्न प्रकारके छब्बीस उद्योग सिखाये जाते हैं। अपने पाठ्य-विषयोंके अलावा हर विद्यार्थी और विद्यार्थिनीको कोई-न-कोई एक व्यवसाय सीखना होता है। पुरुषोंको मुद्रणकला, बढ़ईगिरी और ईंटें बनानेका काम सीखना होता है। (ईंटें बनानेके काममें तो वे इतने कुशल हो गये हैं कि हर महीने उत्तम प्रकारकी एक लाख ईंटें बना सकते हैं।) इसके अलावा वे खेती-सम्बन्धी कई क्रियाएँ सीखते हैं। स्त्रियाँ सादी सिलाई, कपड़े बनाना, स्वयंपाक, लोहा करना और दूध-मक्खनका काम, मुर्गीपालन तथा फलोंकी खेती-सम्बन्धी हर काम सीखती हैं। बागबानी टस्केजीकी विशेषता है। वहाँ फार्मपर पाँच हजार नाशपातीके पेड़ हैं। छात्रोंका अपना एक बाग भी है, जिसकी उपज बाजारमें भेजी जाती है। बागकी योजना विद्यार्थियोंकी अपनी है और यह लगाया भी उन्हींने है। फिर उन्होंने एक ठंडा फार्म-गृह बनाया है। इसमें बढ़ईका जितना भी काम था वह खुद विद्यार्थियोंने किया है। यहाँ साग-सब्जीकी लागत और बिक्रीका बराबर हिसाब रखा जाता है। हाल ही में परिचारिकाओंके प्रशिक्षणका महकमा भी वहाँ खुल गया है और बालशिक्षणकी सुविधा भी है ही। कॉलेजके अहातेके अन्दर बचत-बैंककी स्थापना भी कर दी गई है और कॉलेजका अपना एक डाकघर भी है, जो राज्य द्वारा मान्यता-प्राप्त है तथा सरकारके प्रति जिम्मेदार है। कॉलेजसे एक मासिक पत्र भी प्रकाशित होता है।

अकेले हाथों और असंख्य कठिनाइयोंकी परवाह न करके श्री बुकर टी० वाशिंगटनने इतना काम कर दिखाया। उनका भूतकाल भी ऐसा गौरवशाली नहीं था, जिससे उन्हें कोई प्रेरणा मिलती। बहुतसे प्राचीन राष्ट्रोंको इसका गर्व होता है। आज उनका प्रभाव इतना अधिक और व्यापक है कि काले-गोरे सबमें वे समानरूपसे लोकप्रिय हैं। कुछ समय पहले हमने अखबारोंमें पढ़ा था कि संयुक्त राज्य अमेरिकाके राष्ट्रपतिने उन्हें ह्वाइट हाउसमें निमन्त्रित किया था। "यह एक अभूतपूर्व बात थी। अमेरिकामें तो यह एक क्रान्तिकारी घटना कही जायेगी, जहाँ कुछ समय पूर्व अगर किसी गोरेको हब्शीका स्पर्श भी हो जाता तो वह अपने आपको अपवित्र हुआ मानता था।" हार्वर्ड विश्वविद्यालयने उनको 'मास्टर ऑफ आर्टस्'की उपाधिसे गौरवान्वित किया है। जब वे यूरोपकी यात्रा पर गये थे तब उनके भाषणोंमें झुण्डके-झुण्ड लोग आकर्षित होते थे और उनकी सराहना करते थे। इस प्रकारका जीवन सबके लिए एक सबकके समान है। उनका जीवन जो इतना सम्मानमय है सो व्यर्थ नहीं। यह सम्मान उन्होंने धीरजके साथ वर्षानुवर्ष परिश्रम करके और अनेक दुःख झेलकर अर्जित किया है। श्री वाशिंगटन अपने लिए दूसरा मार्ग भी पसन्द कर सकते थे, जहाँ शायद वे दूसरोंकी दृष्टिमें

अधिक सफल होते। परन्तु उन्होंने यह जरूरी समझा कि सबसे पहले अपने भाइयोंको उठायें और उन्हें आनेवाले महान कार्योंके लिए तैयार करें। इस तरह अपने साथ-साथ उन्होंने अपने देशभाइयोंको इतना ऊँचा उठा दिया कि जिसका कोई माप नहीं किया जा सकता; और उनके तथा हम सबके सामने, जो-जो भी उनके जीवनसे कुछ सीखना चाहें, एक अनुकरणीय उदाहरण पेश कर दिया। अपने देशभाइयोंसे, अन्तमें, हम केवल एक बात और कहेंगे। हमारे देशमें भी ऐसे कई पुरुष हैं, जिन्होंने अपना समस्त जीवन देशको समर्पित कर दिया है। परन्तु हमें कहना पड़ता है कि इस पुरुषका जीवन ऐसे प्रत्येक ब्रिटिश भारतीयसे बढ़ जाता है। और उसका कारण केवल एक ही है — यह कि, हमारा अतीत अत्यन्त महान और हमारी सभ्यता प्राचीन है। इसलिए हमारे लिए जो बात स्वाभाविक मानी जाती है, और है भी, वह बुकर टी० वाशिंगटनके लिए बहुत बड़ी योग्यताकी बन जाती है। जो हो, इस प्रकारके चरित्रोंका चिंतन सदा हितकर ही होता है।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, १०–९–१९०३

# ३३२. गिरमिटिया मजदूर

विधान-परिषदमें माननीय श्री जेमिसनके प्रश्नका जवाब देते हुए प्रधानमन्त्रीने बताया कि गिरमिटिया भारतीयोंको अनिवार्यतः स्वदेश भेजनेके प्रश्नसे सम्बन्धित कागजात गोपनीय हैं; इसलिए उन्हें प्रकाशित नहीं किया जा सकता। उन्होंने यह भी कहा कि इस विषयमें अभी लिखा-पढ़ी जारी है। इस कथनसे प्रकट होता है कि भारत-सरकारने मजदूरोंको अनिवार्य रूपसे स्वदेश लौटानेवाली धारापर अभी अपनी मंजूरी नहीं दी है। अगर ऐसी बात है तो पिछले अंकमें हमने श्री चेम्बरलेनकी जो बात छापी थी वह शायद पक्की नहीं थी और वह अधूरी जानकारीके आधारपर कही गई थी। साथ ही यह भी निःसन्देह सही है कि नेटालके प्रतिनिधियों द्वारा पेश किये गये इस प्रस्तावके प्रति भारत-सरकारने अवश्य ही सहानुभूति प्रकट की है। हम तो यही आशा कर सकते हैं कि भारत और इंग्लैंडका लोकमत भी मजदूरोंके लिए बनाये गये शर्तनामेमें कोई ऐसी धारा जोड़ना असम्भव बना देगा, जो सरासर अन्याययुक्त और अनुचित हो। स्वर्गीय श्री सॉडर्सने कहा था: इन गरीब आदमियोंको यहाँ लायें, उनकी सारी शक्तिका दोहन कर लें और फिर उन्हें वापस स्वदेश लौटा दें, इससे अधिक अच्छा तो यही है कि उन्हें यहाँ लायें ही नहीं।[1]

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, १०–९–१९०३

१. प्रवासी-आयोग (इमिग्रेशन कमिशन) की रिपोर्ट; देखिए खण्ड १, पृष्ठ २२५–६।

## ३३३. ऑरेंज रिवर कालोनी

श्री फ्रान्सिस लाजारस नामक डर्बनमें पैदा हुए २७ वर्षीय भारतीयने ब्लूमफ़ाँटीनके रेजि- डेंट मजिस्ट्रेटसे प्रार्थना की है कि उन्हें ऑरेंज नदीके पवित्र उपनिवेशमें बसनेकी और वहाँ एक फोटोग्राफरके सहायकका काम करनेकी अनुमति दी जाये। इसपर ब्लूमफ़ाँटीनके निवासियोंको सूचित किया गया है कि अगर उन्हें इसपर कोई आपत्ति हो तो वे अपना विरोध इस सूचनाके प्रकाशित होनेके तीस दिनके अन्दर उनकी अदालतमें पेश कर दें। इस अवधिके बाद मजिस्ट्रेट उस प्रार्थनापत्रको राज्यके अध्यक्ष — इस समय लेफ्टिनेंट गवर्नर — की सेवामें भेज देंगे। वे या तो उसको मंजूर करके अर्जदारको उपनिवेशमें बसनेकी मंजूरी दे देंगे या उस सम्बन्धमें आव- श्यक जाँच करनेकी आज्ञा प्रदान कर देंगे। क्योंकि, राज्यके अन्दर बसनेकी अनुमति मिलना ऐसा ही एक महत्त्वपूर्ण विशेषाधिकार है; और अगर अर्जदारको अनुमति मिल गई तो वह उस उप- निवेशका — जिसे *व्यर्थ* ही ब्रिटिश कहा जाता है — गर्वीला निवासी बन जायेगा। हम बता दें कि इस सारी लम्बी-चौड़ी कार्रवाईका परिणाम यह होगा कि वह आदमी राज्यमें केवल रह सकेगा, अर्थात् उसे कोई जायदाद रखने, व्यापार करने और खेती करनेका अधिकार न होगा। और अगर अर्जदार घरमें सेवा-टहल करनेवाला नौकर नहीं है और अपने गोरे मालिकके साथ नहीं रहता है, तो स्वभावतः उसे बस्तियोंमें ही रहना होगा। जब लड़ाई छिड़ी तब हम उन लोगोंमें से थे जिन्होंने शंकाशील भारतीयोंको आश्वासन दिया था कि लड़ाई समाप्त होते ही दोनों उपनिवेशोंमें रहनेवाले ब्रिटिश भारतीयोंकी कैदें और बन्दिशें खत्म हो जायेंगी; और जब हम उन्हें बताते थे कि, देखिए, लड़ाईके कारणोंमें से एक आपपर लादी गई बन्दिशें भी एक कारण है, और अगर लड़ाईमें अंग्रेजोंकी जीत हुई तो आपकी बन्दिशें भी जरूर हटेंगी, तो उनका समाधान हो जाता था। परन्तु कमसे-कम अभी कुछ समयके लिए तो शंकाशीलोंकी आशंकाएँ सही साबित हुईं और दोनों उपनिवेशोंमें एशियाई-विरोधी कानून हमारे देशभाइयोंपर भयंकर अत्याचार ढा रहा है। श्री चेम्बरलेनकी नींद कब टूटेगी?

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, १०–९–१९०३

## ३३४. पॉचेफस्ट्रूम पीछा नहीं छोड़ेगा?

मालूम होता है, पॉचेफस्ट्रूमके व्यापार-संघ (चेम्बर ऑफ़ कॉमर्स) को उस नगरके ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंसे बहुत डाह है। हाल ही में कुछ फेरीवालोंपर निवासके बारेमें कुछ मुकदमे चलाये गये थे। उनमें मजिस्ट्रेटने जो फैसला दिया उससे असंतुष्ट होकर अब उसने इस तरहके सबूत इकट्ठे करनेका निश्चय किया है कि पुरानी सरकारने भारतीयोंके लिए अलग बस्तियाँ मुकर्रर की थीं या नहीं, और इसीलिए पुराने कागजातकी जाँच करनेकी अनुमतिकी उसने माँग की है। इस सम्बन्धमें *रैंड डेली मेलसे* हम एक विवरण अन्यत्र छाप रहे हैं। अगर वह सही है तो कहना होगा कि पॉचेफस्ट्रूमका व्यापार-संघ बॉक्सबर्गके सज्जनोंसे भी एक कदम आगे बढ़ गया है। व्यापार-संघके रुखसे स्पष्ट दिखाई देता है कि मजिस्ट्रेटके फैसलेपर उसे विश्वास

नही है और इसलिए वह उसकी छानवीन करना चाहता है। हमें ज्ञात हुआ है कि छियानवे व्यापारियोके दस्तखतसे एक और अर्जी दी गई है, जिसमें माँग की गई है कि संघ अपना प्रभाव डालकर यह कोशिश करे कि अव आगे ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंको परवाने न दिये जायें। कमसे-कम "पटेल नामक व्यक्तिको तो हरगिज न दिया जाये, जिसकी दूकानका सामना नागरिकोंके अधिकारकी जमीनों (वर्गर राइट अर्वेन) की ओर है।" इन तमाम अर्जदारों और व्यापार-संघको भी हम याद दिला देना चाहते है कि अव तो तमाम ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंको *बाजार*-सूचनाओके मातहत ही परवाने जारी किये जा रहे हैं। इसलिए गरीब भारतीय व्यापारियोंको तंग करनेके लिए इस नोटिसका भंग करना उनके लिए वैध नही होगा। 'तंग करना' शब्दोका प्रयोग हम जानबूझकर कर रहे है, क्योंकि हम पहले बता चुके है, उपर्युक्त सूचनामें भारतीयोंके लिए बहुत कम — लगभग कुछ नही — छोड़ा गया है। तमाम नये परवानेदारोको हिदायतें मिल चुकी है कि वे बस्तियोंमें चले जायें। वे अपने परवाने दूसरे आदमीको नही बेच सकेंगे। अब भारतीय व्यापारियोके पास क्या रह जाता है? क्या पॉचिफस्ट्रूम व्यापार-संघके प्रभावशाली व्यापारी इन सूचनाओंके वाद गरीब भारतीय व्यापारियोंके पास जो कुछ बच रहेगा उसे भी छीन लेंगे?

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, १०-९-१९०३

## ३३५. जापानी सूतक-नियम

सारा संसार जापानियोंकी चौकसी उद्यमशीलताकी तारीफ करता है। लेकिन सूतक (क्वारंटीन) के प्रबन्धमें भी वह अगर पश्चिमी देशोंमे आगे नही बढ गया है तो कमसे-कम उनकी बराबरी जरूर करता है। *मेडिकल रेकर्ड*में एक लेखक लिखता है कि जापानके सूतक-सम्बन्धी नियम बड़े सख्त हैं, क्योंकि जहाजों द्वारा जापानसे चीन और कोरियाके बीमारीके क्षेत्र केवल दो-तीन दिनके रास्तेपर है, और एशियाखण्डसे जापानका व्यापार भी बहुत है।

जहाजके जापानी बन्दरगाहमें प्रवेश करते ही एक नौकामें जापानके सूतक-डॉक्टरोंकी फौज जहाजके ऊपर आ जाती है। उनकी नौका अणुवीक्षण यन्त्रों और कीटाणु-सम्बन्धी जांचके यन्त्रोंसे लैस होती है। हर डॉक्टर कमसे-कम एक विदेशी भाषा जानता है। फलतः अंग्रेज, फ्रान्सीसी, जर्मन, रूसी, चीनी — मतलब, हर राष्ट्रके निवासियोंकी जांच उनकी अपनी भाषामें ही वहां की जा सकती है।

जहाजपर सारे यात्री और खलासी कतारमें खड़े कर दिये जाते है। फिर उनके नाम पढ़-पढ कर उन्हें बुलाया जाता है। इस तरह नामावलीकी जाँच हो जाती है। जबतक यह चलता रहता है डॉक्टर कतारमें खडे हर आदमीकी जाँच करते रहते है, उसकी नब्ज देखते है, उसे अपनी जबान दिखानेको कहते है, और अगर कही कोई बीमारीका चिह्न दिखाई दिया तो झटसे थर्मामीटर निकालकर उसका तापमान भी देख लेते है।

इस जांचको कोई टाल नहीं सकता। एक ही आदमीको दो बार डेकपर भेज देनेवाली चाल यहाँ काम नही देती; क्योंकि जब डेकपर गिनतीका काम होता है तब अपने-अपने कामपर हाजिर हर आदमीकी हाजिरी उसके स्थानपर जाकर ले ली जाती है।

जिन आदमियोंमें बीमारीके लक्षण पाये जाते है, उन्हे अलग करके उनकी जाँच अधिक गहराईसे की जाती है। रोग-निदानकी आधुनिकतम पद्धतिमें डॉक्टर निपुण होते हैं।

सूतकके नियमोंका पालन इतनी सावधानीसे किया जाता है कि अगर कोई जहाज एक जापानी बन्दरगाहसे दूसरे जापानी बन्दरगाहमें भी जाता है, तब भी उसके खलासियोंकी जाँच इन्हीं नियमोके अनुसार होती है।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, १०-९-१९०३

## ३३६. विक्रेता-परवाना अधिनियम पुनरुज्जीवित : २

अगली जनवरीमें परवानोंको नया करवाना होगा। इस सम्बन्धमें नेटालके ब्रिटिश भारतीयोंकी किस्मतमें क्या-क्या बदा है इसकी कुछ पूर्व-सूचना न्यूकैसिल और डर्वनकी नगर-परिषदोंके निर्णयोंसे मिल सकती है। अगले वर्ष भी उन सारी बातोंके अपने सम्पूर्ण भद्देपनके साथ दोहराये जानेकी आशा है, जो सन् १८९८ में हुई थीं। अंतः इस वर्षमें भारतीयोंको अपने परवानोंके सम्बन्धमें किन-किन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा, इसका सिंहावलोकन कर लेना अनुचित नहीं होगा। तब इस हलचलका नेतृत्व न्यूकैसिलकी नगर-परिषदने किया था। संयोगकी बात है कि इस वर्ष भी वही अग्रभागमें है। जैसा कि किसी पिछले अंकमें हम बता चुके हैं, सन् १८९८ में न्यूकैसिलमें परवाना-अधिकारीने तमाम ब्रिटिश भारतीयोंको शुरू-शुरूमें परवाने जारी करनेसे इनकार कर दिया था। अन्यायके शिकार बने व्यापारियोको बहुत भारी फीस देकर वकील करना पड़ा था। परिणाम यह हुआ था कि नौमें से छ:के परवाने नये करनेकी आज्ञा नगर-परिषदने दे दी थी। पाठकोंको याद होगा कि इसपर मामला सम्राट्की न्याय-परिषद (प्रीवी कौन्सिल) को यह निर्णय लेनेके लिए भेजा गया था कि विक्रेता-परवाना अधिनियमके मातहत नगर-परिषदके निर्णयपर अपील सुननेका अधिकार उपनिवेशके सर्वोच्च न्यायालयको है या नहीं। तत्कालीन मुख्य न्यायाधीशने निर्णय दिया कि सर्वोच्च न्यायालयको यह अधिकार है; परन्तु सम्राट्की न्याय-परिषदने ब्रिटिश भारतीयोंके विरुद्ध निर्णय दिया। इस अपीलमें भारतीयोंका ६०० पौंडसे भी अधिक खर्च लगा, परन्तु इस सबका नतीजा यह निकला कि श्री चेम्बरलेन तथा विधान-निर्माताओंने महसूस किया कि अपीलका अधिकार छीन लेनेमें बड़ी भूल हुई है। अतः सरकारने नगर-परिषदों और स्थानिक निकायोंको गश्ती सूचनाएँ भेजीं कि उन्हे अपने अधिकारोंका उपयोग बहुत विवेकपूर्वक और उचित तरीकेसे करना चाहिए एवं निहित स्वार्थोंका पूरा ध्यान रखना चाहिए; अन्यथा कानूनपर पुनर्विचार करना पड़ेगा। इसका कुछ समयके लिए तो अभीष्ट परिणाम हुआ। फलतः अभीतक गाँवों और बहुत दूरकी जगहोंको छोड़कर परवानोंको नया करवानेमें कहीं कोई कठिनाई अनुभव नही हुई। डर्बन नगर-परिषदके कुछ सदस्योंने तो कानूनके प्रति अपनी नापसन्दगी भी जाहिर की और परवाना-अधिकारियों द्वारा बरते जानेवाले पक्षपातकी निन्दा भी की। श्री कॉलिन्स उनमें से एक थे। श्री लैबिस्टरने, जो आज महान्यायवादी (अटर्नी जनरल) हैं, जब वे नगर-परिषदमें थे, अधिक कड़े शब्दोंमें अपने विचार प्रकट किये थे और कहा था कि नगर-परिषदोंसे अपेक्षा की जाती है कि वे केवल रंगके बहाने परवाने देनेसे इनकार कर दें। यह "काम गन्दा" है। उन्होंने सुझाव दिया कि अगर विधानमण्डलकी यह इच्छा है कि ऐसा काम किया जाये तो वह इस दिशामें ईमानदारीसे कानून बना दे और नगर-परिषदोके करनेके लिए यह गन्दा काम न छोड़े। परन्तु अब इस गश्ती-सूचनाका असर पूर्णतया नष्ट हो चुका है। स्थिति

अत्यन्त गम्भीर है। इस संकटके निवारणके लिए भारतीयोंको अपनी सम्पूर्ण शक्ति बटोर लेनी होगी। गत दिसम्बरमें जब श्री चेम्बरलेन यहाँ आये थे तब उन्होंने कहा था कि जो भारतीय पहलेसे ही उपनिवेशमें बस गये हैं, उनके साथ सम्मानपूर्ण और उचित व्यवहार होगा। श्री चेम्बरलेनका समर्थन करते हुए सर आल्बर्ट तो यहाँतक कह गये कि विक्रेता-परवाना कानून दोषपूर्ण है, क्योंकि उसमें अपीलका अधिकार छीन लिया गया है।

हम असंख्य बार कह चुके हैं कि उपनिवेशियोंकी भावनाओंका खयाल रखते हुए नगर-परिषदें विक्रेता-परवानोंके प्रश्नके विषयमें जैसे उचित समझें, नियम बना लें; परन्तु यह ध्यान रखें कि उनमें मनमानी न होने पाये और विरोधका आधार केवल रंग न हो। अगर वस्तु-भण्डार आसपासकी इमारतोंके बीच फबने जैसे नहीं हैं, तो नगर-परिषदें ऐसा साफ-साफ कह दें और नये मकान बनानेपर जोर दें। अगर खुद अर्जदारमें ही कोई दोष हो तो उसे बुलवाकर यह बता दिया जाये और उसे दुरुस्त करनेके लिए कहा जाये। परन्तु [सारी आवश्यक शर्तोंकी पूर्ति हो जानेपर भी अगर किसीको केवल इसलिए व्यापार करनेसे रोका जाता है कि उसकी चमड़ीका रंग गोरा नहीं है, तो यह एक बहुत भारी अन्याय है। कलमकी एक रगड़मात्रसे निर्दोष और निरपराध व्यापारियोंकी रोजी छीन लेना उचित और सम्माननीय व्यवहार तो नहीं कहा जा सकता।] हमारी रायमें इसका एक ही उपाय है। सो यह कि, सर्वोच्च न्यायालयको अपील सुननेका अधिकार दे दिया जाये, जो कि अवैधानिक रूपसे अभी छीन लिया गया है। इस बातके लिए हम बहुत कृतज्ञ हैं कि सारे ब्रिटिश उपनिवेशोंमें सर्वोच्च न्यायालय सदा शुद्ध रहे हैं और गरीबसे-गरीब ब्रिटिश प्रजाजन आशा कर सकते हैं कि वहाँ बगैर किसी प्रकारके पक्षपात या द्वेषके शुद्ध न्याय मिल सकता है। ये न्यायालय जनताकी स्वतन्त्रताके सबसे बड़े आधार हैं और जबतक विधान-मण्डल सर्वोच्च न्यायालयको परवाना-अधिकारियोंके कार्योंपर दिये गये नगर-परिषदोंके निर्णयोंकी अपील सुनने और प्रत्येक मामलेके गुण-दोषोंको तोलकर निर्णय देनेका अधिकार पुन. नहीं दे देते, तबतक भारतीय व्यापारियोंको कभी चैन नसीब नहीं हो सकती, और तबतक तमाम न्यायप्रिय और निष्पक्ष व्यक्तियोंकी नजरमें विधानसभाका रुख निन्दनीय ही बना रहेगा।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, १७–९–१९०३

## ३३७. मजदूरोंकी जबरन वापसी

[यद्यपि आयोगने ऐसा कानून बनानेकी कोई सिफारिश नहीं की कि अगर भारतीय अपने गिरमिटकी अवधि पूरी होनेके बाद नया इकरार करनेको तैयार न हों तो उन्हें भारत लौटनेके लिए बाध्य किया जाये, फिर भी मैं ऐसे किसी भी विचारकी जोरोंसे निन्दा करता हूँ। मेरा पक्का विश्वास है कि आज जो अनेक लोग इस योजनाकी हिमायत कर रहे हैं वे सब समझेंगे कि इसका अर्थ क्या होता है तब वे भी मेरे समान ही जोरोंसे इसे ठुकरा देंगे। भले ही भारतीयोंका आना रोक दीजिए और उसका फल भोगिए, परन्तु ऐसा कुछ करनेकी कोशिश मत कीजिए जो, मैं साबित कर सकता हूँ, भारी अन्याय है। यह इसके सिवा क्या है कि हम अपने अच्छे और बुरे दोनों तरहके नौकरोंका ज्यादासे-ज्यादा लाभ उठा लें और जब उनकी अच्छीसे-अच्छी उम्र हमें फायदा

> पहुँचानेमें कट जायें तब (अगर हम कर सकें तो, मगर कर नहीं सकते) उन्हें अपने देश लौट जानेके लिए बाध्य करें और इस प्रकार उन्हें अपने पुरस्कारका सुख भोगने देनेसे इनकार कर दें? और आप उन्हें भेजेंगे कहाँ? उन्हें उसी भुखमरीकी परिस्थितिको झेलनेके लिए फिर क्यों वापस भेजा जाये, जिससे अपनी जवानीके दिनोंमें भागकर वे यहाँ आये थे? अगर हम शाइलाकके समान एक पौंड मांस ही चाहते हैं तो, विश्वास रखिए, शाइलाकका ही प्रतिफल भी हमें भोगना होगा। आप चाहें तो भारतीयोंका आगमन रोक दें। अगर अभी खाली मकान काफी न हों तो अरबों या भारतीयोंको, जो आधेसे कम आबाद देशकी उपज व खपतकी शक्ति बढ़ाते हैं, निकालकर और खाली करा लें। . . . उपनिवेश भारतीयोंके आगमनको जरूर रोक सकता है, और 'लोकप्रियताके दीवाने' जितना चाहेंगे उससे कहीं अधिक सरलता के साथ और स्थायी रूपमें रोक सकता है। परन्तु सेवाके अन्तमें उन्हें जबरन निकाल देना उसके वशकी बात नहीं है। और मैं उससे अनुरोध करता हूँ कि इसकी कोशिश करके वह एक अच्छे नामको कलंकित न करे।

भारतीयोके प्रवेशके प्रश्नकी जाँच करनेके लिए नियुक्त आयुक्त (कमिश्नर) स्वर्गीय श्री जेम्स आर० सॉंडर्सके ये शब्द हैं। अपने पदकी जिम्मेदारीको पूरी तरह समझते हुए उन्होंने ये शब्द कहे थे। जो बात सन् १८८७ में सही थी, आज भी वह उसी तरह सही है; क्योंकि यह कहते हुए श्री सॉंडर्सने सबसे ऊँची भूमिकापर खड़े रहकर, अर्थात् सत्य और असत्य, न्याय और अन्यायकी दृष्टिसे विचार किया था। हमें निश्चय है कि न्याय और अन्यायकी परिभाषामें पिछले सोलह वर्षोंमें कोई भारी परिवर्तन नहीं हो गया है। हाँ, जिनके सामने केवल स्वार्थ या ऐसे ही विचार प्रधान रहे हों, उनकी बात हम नहीं करते। परन्तु श्री सॉंडर्सने सन् १८८७ में इनका भी बहुत सावधानीसे विचार कर लिया था और फिर भी वे इसी नतीजेपर पहुँचे थे कि एक ब्रिटिश उपनिवेशमें मजदूरोंको जबरदस्ती लौटानेका काम नहीं हो सकेगा। नेटालकी सरकारने कुछ समय पहले इस तरह गिरमिटिया मजदूरोको उनकी गिरमिटकी अवधि पूरी होनेपर जबरदस्ती लौटानेके जो यत्न किये थे और अब फिर किये है, उनके बारेमें हमें क्या सोचना चाहिए? आशा करनेके लिए कोई गुंजाइश तो नहीं है, फिर भी हम आशा करना चाहते हैं कि श्री चेम्बरलेनने जो यह कहा कि भारत-सरकारने नेटाल-सरकारके प्रस्तावको अपनी मंजूरी दे दी है इसमें उन्होंने कहीं भूल की है।

सन् १८९४ में मजदूरोंको जबरदस्ती वापस लौटानेका प्रस्ताव लेकर नेटालसे पहला आयोग (कमिशन) भारत गया। लॉर्ड एलगिन उस समय वाइसराय थे। इन्हें वह अपना प्रस्ताव मंजूर करनेके लिए राजी करना चाहता था; किन्तु लॉर्ड एलगिनने प्रस्तावको उसी रूपमें माननेसे इनकार करते हुए कहा:

> मैं तो यही पसन्द करता हूँ कि अभी जो व्यवस्था है वही जारी रहे, अर्थात् अपनी गिरमिटकी अवधि पूरी होनेपर अगर मजदूर चाहे कि वह वहीं बस जाये तो भले ही वह वहीं रहे। अतः जो लोग साम्राज्यके किसी प्रजाजनको ब्रिटिशों द्वारा शासित किसी उपनिवेशमें बसनेसे रोकना चाहते हैं, उनसे मुझे कोई सहानुभूति नहीं है। परन्तु भारतीय प्रवासियोंके प्रति नेटाल उपनिवेशमें जो भावना प्रकट हो रही है

उसपर विचार करते हुए प्रतिनिधियों द्वारा २० जनवरी १८९४ को अपने स्मृतिपत्रमें लिखे प्रस्तावकी क से च तककी धाराओंको अपनी मान्यता देनेके लिए मैं तैयार हूँ; परन्तु उसके साथ ये शर्तें होंगी — (क) भरतीके समय अपने गिरमिटकी शर्तोंके अनुसार अगर कोई कुली अपने गिरमिटकी मियाद पूरी होनेपर पुनः उन्हीं शर्तोंपर अपने आपको बाँधना न चाहे तो वह गिरमिट पूरा होनेसे पहले या पूरा होते ही तुरन्त भारत लौट जायेगा। (ख) जो कुली लौटनेसे इनकार करें उन्हे 'किसी भी अवस्थामें कानूनी सजा नहीं दी जायेगी। (ग) गिरमिटोंकी सब नई मियादें दो वर्षकी होंगी। प्रवासीको अपने गिरमिटकी पहली मियादके अन्तमें और बाद नये किये गये हर गिरमिटके अन्तमें मुफ्त टिकट दिया जायेगा।

हम देखते है कि लॉर्ड एलगिनके सुझावके अनुसार जो लोग भारत नही लौटना चाहते थे अथवा नया गिरमिट भी नही लिखना चाहते थे उनपर ३ पौंडका कर लगा दिया गया। आज कानूनी स्थिति यह है। जब यह कानून मजूर हुआ था तब यह अपेक्षा थी कि लॉर्ड एलगिनने जो कुछ उचित समझकर किया उससे आगे भारत-सरकार नही बढ़ेगी। कहा जाता है लॉर्ड कर्जन बेजोड सकल्पशक्ति और अपने उद्देश्यके पक्के पुरुष हैं। इसके अतिरिक्त अपने रक्षितोके हितोकी रक्षा भी वे करना चाहते है। श्री ब्रॉड्रिकके दक्षिण आफ्रिकी सेनाके खर्चमें भारत द्वारा हिस्सा बँटानेके प्रस्तावके सम्बन्धमें उन्होने इन सब गुणोका परिचय दिया है। इस बार जरूर मूक मजदूरोके हितोकी रक्षाका प्रश्न है; परन्तु हमें पूरी आशा है कि इनकी रक्षाके लिए भी वे कम उत्सुक नही होगे।

ट्रान्सवालके लिए १०,००० गिरमिटिया मजदूर उपलब्ध करनेके प्रस्तावके सम्बन्धमें श्री चेम्बरलेनने एक खरीता लॉर्ड मिलनरके नाम भेजा है। उसे पढनेसे वाइसरायके बारेमें यह आशंका होती है कि वे शायद सोचें कि अगर उपनिवेशमें बसे स्वतत्र भारतीयोके साथ अच्छे व्यवहारका आश्वासन मिल सकता हो तो गिरमिटिया मजदूरोके विषयमें नेटाल-सरकारकी इच्छाके सामने झुका जा सकता है। इसलिए इस प्रश्नको हम बहुत दृढ़तापूर्वक साफ कर देना चाहते हैं कि इस उपनिवेशमें एक भी ऐसा स्वतंत्र भारतीय नही है जो अपने गिरमिटिया भाइयोके हितोंकी हत्या करके अपने लिए अच्छा व्यवहार प्राप्त करनेके लिए रजामन्द हो। यह बात जब हम कहते है तो, हमारा खयाल है, इससे हम सभी भारतीयोंकी भावनाको ध्वनित करते हैं। स्वतंत्र भारतीय तो आखिर ऐसी स्थितिमें है कि वे अपने हितोकी रक्षा कर सकते हैं। आज नहीं तो कल, उपनिवेशमें स्थितियाँ बदलेंगी ही, अथवा साम्राज्य-सरकार भी नीतिके साम्राज्यव्यापी प्रश्नोंके सम्बन्धमें अपनी बात उपनिवेश द्वारा मनवायेगी ही। तबतक स्वतंत्र भारतीय इसकी राह भी देख सकते है। परन्तु गिरमिटिया मजदूर तो एक निरा लाचार और बेबस प्राणी है। भुखमरीसे बचनेके लिए वह अपना देश छोड़कर यहाँ आता है। देशके अपने तमाम स्नेह-बन्धनोको तोड़कर वह नेटालका निवासी इस तरह बन जाता है, जैसे एक स्वतंत्र भारतीय कभी नही बन सकता। भूखो मरनेवाले आदमीका अपना कोई घर या देश होता ही नही। उसका घर तो वही है जहाँ वह अपने-आपको जीवित रख सके। इसलिए जब वह नेटालमें आता है और देखता है कि यहाँ कमसे-कम अपना पेट भरनेमें उसे कोई कठिनाई नही है, तो वह इसे तुरन्त अपना घर बना लेता है। नेटालमें अपने वर्गके जिन लोगोसे वह स्नेह-सम्बन्ध कायम कर लेता है, वे ही उसके पहले सच्चे मित्र और परिचित बन जाते है। इन स्नेह-सम्बन्धोको तोड़कर उसे कही अन्यत्र जानेके लिए कहना शुद्ध निर्दयता है। इसलिए हमें यह कहनेमें

कोई संकोच नहीं कि जिस भारतीयके अन्दर दया, प्रेम और सहानुभूतिकी तिलमात्र भी मानवोचित भावना होगी, और जिसे एकदेशीय बन्धनों और एकरक्तका खयाल होगा वह नेटाल-सरकारकी माँगी कीमतपर अपनी हालत सुधारनेसे साफ इनकार कर देगा।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, १७–९–१९०३

## ३३८. घोर पूर्वग्रह

हमें उन शरणार्थी ब्रिटिश-भारतीयोंपर लगी, परेशान करनेवाली प्लेग-सम्बन्धी रुकावटोंपर फिर लिखना पड़ रहा है, जो वापस ट्रान्सवाल आना चाहते हैं। अब उपनिवेशमें कहीं भी प्लेग नहीं है और आखिरी व्यक्ति आजसे लम्बे अरसे पहले बीमार पड़ा था। फिर भी ट्रान्सवाल सरकारने उपनिवेशको इस बीमारीसे बचानेकी चिन्ता (?) के वशीभूत होकर ब्रिटिश भारतीय शरणार्थियोंके प्रवेशपर लगी रुकावट अभीतक हटाई नहीं है। हमने कई बार कहा है कि इस रुकावटकी जड़में न्याय-भावका कहीं लेश भी नहीं है और जितनी जल्दी ट्रान्सवालकी सरकार उन्हें अपने घर लौटने देगी उतना ही उसका और इन शरणार्थियोंका भला होगा (क्योंकि उनमें से सैकड़ों अपने मित्रोंपर आश्रित हैं)। ब्रिटिश भारतीयोंका शिष्ट-मण्डल जब लॉर्ड मिलनरसे मिला था तब उन्होंने कहा था कि सरकार भारतीयोंके प्रति किसी भी प्रकारका दुर्भाव नहीं रखती। पता नहीं, इस प्लेग-सम्बन्धी रुकावटकी हिमायतमें परमश्रेष्ठ क्या उत्तर देंगे।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, १७–९–१९०३

## ३३९. भारतीय कला

मैसूरमें महाराजाके लिए एक नया प्रासाद बनाया जा रहा है। *टाइम्स ऑफ़ इंडिया*ने अपने प्रस्तुत साप्ताहिक संस्करणमें उसका बड़ा दिलचस्प वर्णन किया है। हम अपने दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीय तथा यूरोपीय पाठकोंके ज्ञान-वर्धनके लिए उसके कुछ अंश अन्यत्र दे रहे हैं। हमारे यूरोपीय पाठक उससे जान सकेंगे कि भारतीय कला क्या है, और यह भी कि, भारत केवल जंगलियोंके झोपड़ोंसे यत्र-तत्र आबाद देश नहीं है, जैसा कि दक्षिण आफ्रिकामें आम तौरपर माना जाता है। जो भारतीय कभी भारत नहीं गये हैं उनको भी यह जानकर राष्ट्रीय गौरव और सन्तोषका अनुभव होगा कि मैसूरके सुसंस्कृत नरेश किस प्रकार भारतीय कलाको प्रोत्साहन देना और उसे अत्यन्त व्यावहारिक रूपमें पुनर्जीवित करना चाहते हैं। *टाइम्स ऑफ़ इंडिया*में छपे वर्णनसे ज्ञात होगा कि पुश्तोंसे अपनी भिन्न-भिन्न हस्त-कलाओंकी शिक्षा पाये हुए परिवारोंके कोई बारह सौ कारीगर अनुभव करते हैं कि कमसे-कम मैसूरमें तो उनकी कारीगरीकी कद्र की जाती है, उसका उचित पुरस्कार दिया जा सकता है। कितना अच्छा होता, हम अपने पाठकोंको *टाइम्स ऑफ़ इंडिया*का सुन्दर परिशिष्टांक पुनः छापकर भेज सके

होते। उसमें मैसूरमें हो रहे कामके कुछ सुन्दर चित्र हैं। यहाँ अगर हम स्वर्गीय श्री विलियम विलसन हंटरके *इंडियन एम्पायर* ग्रन्थसे उनके भारतीय कलापर प्रकट किये गये विचारोका एक उद्धरण दें तो अनुचित नही होगा :

> ग्वालियरकी प्रासाद-स्थापत्यकला, भारतीय मुसलमानोंकी बनाई दिल्ली और आगराकी मस्जिदें और मकबरे एवं दक्षिण भारतके प्राचीन मन्दिर रेखांकनके सौंदर्य और सजावटकी समृद्धिकी दृष्टिसे अप्रतिम हैं। आगराके ताजमहलको देखकर श्री हेबरका यह उद्‌गार अक्षरशः सही प्रतीत होता है कि उसके बनानेवालोंने महामानवोंकी भाँति उसकी कल्पना की और जौहरियोंकी भाँति उसे कार्यान्वित किया। अहमदाबादकी संगमर्मरकी खुली खिड़कियाँ और परदे कुशल सजावटके ऐसे नमूने पेश करते हैं, जो बौद्ध-कालीन गुफाओंमें बने मठोंसे लेकर बादकी हर भारतीय इमारतमें पाये जाते हैं। उससे यह भी प्रकट होता है कि भारतके हिन्दू कारीगरोंने कितने लचीलेपनके साथ भारतीय सजावटको मुसलमानी मस्जिदोंकी स्थापत्य-सम्बन्धी आवश्यकताओंके अनुकूल बना लिया। आज इंग्लैंडमें हम जिस सजावटकी कलाका दर्शन करते हैं वह अधिकांशमें भारतके नमूनों और आकृतियोंसे ली गई है। कार्ला और अजन्ताके गिरि-मन्दिरोंके अप्रतिम चित्र-फलक, पश्चिमी भारतकी संगमर्मर और लकड़ीकी खुदाई तथा पच्चीकारी और कश्मीरी वस्त्रोंपर की जानेवाली कढ़ाईमें आकृतियों और रंगोंका सुन्दर समन्वय — इन सबने इंग्लैंडकी कलाभिरुचि पुनर्जीवित करनेमें योग दिया है। आज भी यूरोपकी प्रदर्शनियोंमें भारतकी वास्तविक देशी नमूनोंपर बनी कलाकृतियोंको सर्वोच्च सम्मान प्रदान किया जाता है।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, १७–९–१९०३

## ३४०. टिप्पणियाँ[1]

जोहानिसबर्ग
सितम्बर २१, १९०३

### २१ सितम्बर १९०३ तककी स्थिति

अगस्त ४ को जो लम्बा समुद्री तार[2] भेजा था, उसमें वर्णित मामलोंमें से किसीमें भी अभीतक सहायता नही मिली। गैर-शरणार्थी ब्रिटिश भारतीय, जिनकी व्यापारिक कार्योंके लिए आवश्यकता है, उपनिवेशमें प्रवेश नही कर पाते और न सब शरणार्थियोको अभीतक परवाने मिले हैं।

यद्यपि परवानोके बदलनेका समय करीब आ रहा है, तथापि यह परवाने देनेकी समस्या अभीतक जहाँकी-तहाँ है। जिन लोगोके पास इस समय परवाने है, परन्तु जो लड़ाई छिड़नेके

१. यह वक्तव्य दादाभाई नौरोजीके पास भेजा गया था। उन्होंने इसे भारतमंत्रीको भेजा। *इंडिया*ने इसे अपने १६–१०–१९०३ के अंकमें प्रकाशित किया था।

२. "तार: ब्रिटिश समितिको", अगस्त ४, १९०३।

समय अपने-अपने सम्वन्धित स्थानोंमें व्यापार नहीं करते थे उनके लिए हालत अत्यन्त नाजुक है; क्योंकि, यदि वे बाजारों या बस्तियोंमें बलपूर्वक हटाये गये तो इसका अर्थ उनके लिए आम विनाश होगा।

प्रिटोरियामें मस्जिदकी जायदाद[1] अभीतक खतरेमें है। सरकारने न्यासियो (ट्रस्टियों) को इसके हस्तान्तरणकी मंजूरी नही दी है।

यद्यपि नेटाल सरकारने घोषित कर दिया है कि प्लेगकी आखिरी घटना हुए लगभग एक महीना हो गया है, तथापि नेटालसे आनेवाले भारतीयोंपर से जहाजी प्रतिवन्ध अभीतक नहीं उठाया गया है।

ऑरेंज रिवर कालोनी भारतीयोंके विरुद्ध अपने द्वार अव भी वन्द किये हुए है। विशुद्ध मजदूर इसके अपवाद है; लेकिन वे भी बड़ी कठिनाई और परेशानीके वाद प्रवेश पाते हैं।

ये शिकायतें है, जिनकी ओर तत्काल ध्यान जाना चाहिए और जिनका निराकरण होना चाहिए।

१७ सितम्बर १९३० का *इंडियन ओपिनियन* साथ वन्द है।

[अंग्रेजीसे]

इंडिया आफिस: ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स, ४०२।

## ३४१. विक्रेता-परवाना अधिनियम पुनरुज्जीवित: ३

### विधान-निर्माताओंसे अपील

आपके अर्जदारोंको बहुत दुःखके साथ लिखना पड़ता है कि अपने स्मृतिपत्रमें[2] उन्होंने जो आशंकायें प्रकट की थीं, . . . वास्तविकताएँ उनसे भी आगे बढ़ गई हैं, और नीचे लिखे मामलेमें न्यायालयने जो व्याख्या की है वह भी उपनिवेशमें बसे ब्रिटिश भारतीयोंके विरोधमें गई है। सम्राट्की न्याय-परिषद (प्रीवी कौन्सिल) के न्यायाधीशोंका निर्णय यह है कि इस कानूनके अन्तर्गत नगर-परिषदों या नगर-निकायोंके निर्णयपर सर्वोच्च न्यायालयमें अपील नहीं की जा सकती। इस निर्णयसे भारतीय व्यापारियोंके हाथ-पैर ठंडे हो गये है, और उनपर भयंकर आतंक छा गया है। उन्हें भय हो गया है कि पता नहीं, अगले वर्ष क्या होगा। वे अपने आपको बिलकुल अरक्षित मानने लग गये है। आपके अर्जदार नहीं जानते कि अगले वर्षका प्रारम्भ भारतीय व्यापारियोंके लिए कैसा होगा; इसलिए हर दूकानदार अत्यन्त चिंतित है। भयानक दुविधाकी स्थिति है। अन्य ग्राहकों — छोटे दूकानदारों — को कहीं परवाने नहीं मिल पाये तो हमारे व्यापारका क्या होगा, इस भयसे बड़े दूकानदार निराश हो गये हैं और अपना माल बेचते भी डरते हैं। परवाना जारी करनेवाले अधिकारियोंकी मनमानीपर रोक लगनेकी

१. देखिए "पत्र: उपनिवेश सचिवको", अगस्त १, १९०३।
२. 'प्रार्थनापत्र: चेम्बरलेनको', दिसम्बर ३१, १८९८।

आशा उन्हें केवल एक जगहसे थी, परन्तु वह भी उनसे सम्राट्की न्याय-परिषदके न्यायाधीशोंने छीन ली है।

विक्रेता-परवाना अधिनियमके बारेमें सन् १८९८ में उपर्युक्त आवेदन ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंने लिखा था और श्री चेम्बरलेनको भेजा था। अब इस वर्ष इतिहासका पुनरावर्तन हुआ है; अत. जो विनती भारतीय व्यापारियोंने श्री चेम्बरलेनसे की थी, वही अब पिछले तीन हफ्तोंकी घटनाओंको देखकर उपनिवेशके विधान-निर्माताओंसे की जा सकती है।

उपनिवेशियोंकी इच्छाका सम्मान करने, उन्हें राजी करने और उनकी सहमति प्राप्त करनेकी खातिर हम यह बात पहले ही मंजूर करके रास्ता साफ कर दें कि विक्रेता-परवानोंपर कुछ नियन्त्रण अवश्य लगा दिये जाने चाहिए। श्री एलिस ब्राउनने अपनी प्रसिद्ध *बाजार*-सूचनामें सफाईकी कमी और अनुचित होड़का जिक्र किया है। यह अनुचित होड़ उन लोगोंकी तरफसे होती है, जिनका रहन-सहन यूरोपीय व्यापारियोंकी भाँति खर्चीला नहीं है। केवल दलीलकी खातिर हम मान लेते हैं कि इनके बीच इस तरहकी अनुचित होड़ है, और यह भी कि, ब्रिटिश भारतीयोंमें बहुत-कुछ सफाईकी कमी है। हम यह भी मान लेते हैं कि इन दोनों बुराइयोंको कानूनके द्वारा दूर कर दिया जाना चाहिए। इस तरह इस बातमें उपनिवेशके यूरोपीयों और भारतीयोंके बीच समझौता हो जानेके बाद अब सवाल यह रह जाता है कि हम अपने उद्देश्यकी प्राप्ति कैसे करें?

सन् १८९७ में यूरोपीयोंने इस प्रश्नका जवाब विक्रेता-परवानाअधिनियम बनाकर दिया था। इसके बाद कुछ समय बीत गया। इसमें यह अनुभव किया गया कि कानून बहुत सख्त बन गया है; इसलिए विवेक, बुद्धि और न्यायकी भावनाका सहारा लेकर उसका अमल नरम बना दिया गया। किन्तु अब नई प्रतिक्रिया शुरू हुई है और अगर न्यूकैसिल और डर्बनकी नगर-परिषदोंके अभी हालके निर्णय उसके पूर्व-लक्षण हैं तो मानना होगा कि, अब इस कानूनका पूरी तरहसे अमल होगा और उसमें न्याय और अन्यायका भी ध्यान न रहेगा। इसके जवाबमें ब्रिटिश भारतीयोंने जो पक्ष ग्रहण किया है वह हमारी विनीत सम्मतिमें लाजवाब है। यह कानून अपने वर्तमान रूपमें प्रत्यक्षतः अन्यायपूर्ण है। उपनिवेशके साधारण न्यायालयोंके क्षेत्रसे उसे बाहर रखकर ब्रिटिश संविधानके मूलभूत सिद्धान्तोंपर ही कुठाराघात किया गया है। यह कानून उन लोगोंके हाथोंमें असाधारण सत्ता सौंप देता है, जिनका स्वार्थ परवाना माँगनेवाले अर्जदारोंके स्वार्थोंसे टकराता है, और जिनके सामने अर्जदार पेश हो सकते हैं। वह इन लोगोंको ऐसे (परवाना जारी करनेवाले) अधिकारीकी नियुक्तिका अधिकार भी देता है, जो इन गरीब अर्जदारोंकी आजीविका का मालिक-सा बन जाता है और जो निष्पक्ष, निःस्वार्थ और निर्भय होकर अपना फैसला देनेमें असमर्थ होता है। फिर ब्रिटिश भारतीय तो कहते हैं: 'परवाना-अधिनियममें से ये सब बातें हटा दीजिए, नगर-परिषदों तथा स्थानिक निकायों (लोकल बोर्ड) की सत्ताकी यथासम्भव साफ-साफ परिभाषा कर दीजिए। गन्दगीका इलाज भी सख्तीसे कीजिए। आग्रह रखिए कि मकान अच्छे और सुविधाजनक हों, अर्थात् उनमें रहनेके कमरे अलग हों और दूकानें अलग; तथा हिसाब भी व्यवस्थित रखे जानेपर जोर दीजिए — वगैरह। परन्तु ये सब आवश्यकताएँ पूरी हो जानेके बाद अर्जदारके दिलमें इतना तो विश्वास उत्पन्न होने दीजिए कि उसे परवाना मिल जायेगा, अर्थात्, नया मिल जायेगा या पुरानेको नया कर दिया जायेगा। परवाना-अधिकारी नगर-परिषदका निरा गुलाम न हो; बल्कि वह स्वतन्त्र हो — ऐसा, जो प्रत्येक प्रार्थनापत्रके गुण-दोषोंपर विचार करके अपना निर्णय खुद कर सके। इसके अलावा और भी कुछ साफ-साफ विषय स्वाधीन रखने हों तो भले ही वे भी रख लीजिए, किन्तु परवाना-

अधिकारी अथवा नगर-परिषदोंके निर्णयोंपर सर्वोच्च न्यायालयमें अपीलकी सुविधा रखिए।' तब भारतीय कोई विरोध नही करेंगे। इससे हमारा मतलब यह नहीं कि भारतीयोंका विरोध-प्रकाश विधान-निर्माताओं द्वारा विचारणीय है। हम तो एक सचाई आपके सामने पेश कर रहे हैं, फिर उसका मूल्य जो भी हो। कुछ भी हो, कमसे-कम तब अन्याय तो नहीं होगा। तब बाहरके लोग आपके कानूनको कुछ समझ सकेंगे और जिनपर उसका असर होगा उन्हें कमसे-कम यह तो ज्ञात हो जायेगा कि वे कहाँ हैं।

परवाना-अधिकारियोंकी नियुक्तिके बारेमें सर वाल्टर रैगने यह कहा था:

> न्यायालयको सुझाया गया है कि इस प्रकार नियुक्त अधिकारीका कुछ झुकाव अवश्य ही नगर-परिषदकी तरफ होगा, क्योंकि वह स्थायी रूपसे नगर-परिषदके मातहत है; इसलिए उसका परिषदका पूर्ण विश्वासपात्र होना आवश्यक है। न्यायाधीश इस मुद्देपर मामलेका फैसला देना नहीं चाहते थे; परन्तु इतना तो समझ सकते थे कि परवाना-अधिकारी ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो नगर-परिषदकी नौकरीमें न हो और उसका विश्वास-पालक भी नहीं हो।

नगर-परिषदोंको जो सत्तायें दी गई हैं, भूतकालमें उनका दुरुपयोग किस प्रकार हुआ है, इसकी कल्पना न्यायाधीश श्री मेसनके नीचे लिखे उद्‌गारोंसे हो सकेगी। वे उन दिनों नेटालके उच्च न्यायालयमें थे, जिसके सामने ब्रिटिश भारतीयोंकी तरफसे एक अपीलकी सुनवाई चल रही थी। कार्यवाहीके दरमियान वे कहते हैं:

> मैं नगर-परिषदकी इस सारी कार्यवाहीको, जिसके विरुद्ध यह अपील है, नगर-परिषदके लिए कलंक मानता हूँ। इस कड़ी भाषाका प्रयोग करनेमें मुझे कोई संकोच नहीं हो रहा है। मेरे मतसे इन स्थितियोंमें यह कहना कि नगर-परिषदमें अपील की गई थी, सरासर भाषाका दुरुपयोग करना है।

हमारे वर्तमान महान्यायवादी (अटर्नी जनरल) ने भी, जो किसी समय नगर-परिषदके सदस्य थे, अपने मनके भाव प्रकट करते हुए कहा था:

> मैं इस बैठकमें जानबूझकर इसलिए हाजिर नहीं हुआ, क्योंकि इस तरहकी अपीलोंके बारेमें उसकी नीति कानून-संगत नहीं रही। परिषदके सभ्योंको जो गन्दा काम करनेके लिए कहा गया था, उसे मैंने ठीक नहीं समझा। अगर यहाँके नागरिक चाहते हैं कि परवानोंका जारी करना बन्द कर दिया जाये तो इसका सीधा-सच्चा तरीका यह है कि विधानसभासे भारतीयोंको परवाने देनेके विरुद्ध एक कानून बनवा लिया जाये। परन्तु एक अपील-अदालतके रूपमें मामलोंपर निर्णयके लिए बैठते हुए परिषदको, जबतक इनकारीका कोई खास आधार न हो, परवानोंकी मंजूरी देनी ही चाहिए।

सर्वोच्च न्यायालयके अधिकार-क्षेत्रसे इस कानूनके पृथक्करणपर और इसके सम्बन्धमें सम्राट्की न्याय-परिषदके निर्णयपर टिप्पणी करते हुए हमारे सहयोगी *नेटाल ऐडवर्टाइज़र*ने लिखा है:

> हम तो इतना ही कह सकते हैं कि सम्राट्की न्याय-परिषदके इस निर्णयसे हमें अत्यन्त दुःख हुआ है।... यह ऐसा अधिनियम है जिसकी उम्मीद ट्रान्सवालकी लोक-सभासे भले ही की जा सकती थी, जो विदेशी निष्कासन-अधिनियमके मामलेमें उच्च

न्यायालयके क्षेत्रकी सीमाको भी लाँघ गई थी। इसके खिलाफ उपनिवेशोंके अन्दर उस समय जो शोर मचा था उसे पाठक भूले नहीं होंगे। परन्तु वह अधिनियम इससे रत्ती-भर भी बुरा था ऐसा नहीं कहा जा सकता। हाँ, अगर कोई अन्तर है तो यह कि हमारा अधिनियम उससे अधिक बुरा है, क्योंकि इसका अमल उसकी अपेक्षा कहीं अधिक बार होगा। यह कहना मूर्खता है कि अगर सर्वोच्च न्यायालयमें अपीलका अधिकार दे दिया गया होता, तो कानून कारगर न होता। यह संस्था सहज बुद्धिसे काम लेगी, यह विश्वास अवश्य ही किया जा सकता था। एक स्वशासन-प्राप्त समाजमें जिसकी अपनी प्रतिनिधि-संस्थाएँ हैं, अधिकारोंको प्रभावित करनेवाले मामलेमें राज्यके सर्वोच्च न्याया-लयका आश्रय लेनेका मार्ग जान-बूझकर बन्द करनेके सिद्धान्त स्थापित करनेकी अपेक्षा तो जहाँ-तहाँ एक-दो मामलोंमें नगर-पालिकाओंकी इच्छाओंका अनादर हो जाने देना कहीं ज्यादा अच्छा है।

हमें आशा है कि हमने उपनिवेशके जिम्मेवार निवासियोके शब्दोमें ही बता दिया है कि ऊपर बताई हमारी आपत्तियाँ उनकी नजरोमें कहाँतक उचित है।

इसलिए, हम विधान-निर्माताओसे और सामान्य रूपसे समस्त उपनिवेशियोसे अपील करते है कि डाउनिंग स्ट्रीटसे किसी प्रकारका असर उनपर पहुँचे, इससे पहले वे खुद ही सही रास्तेपर आ जायें। यह मामला अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, मुख्यत. इसलिए भी कि वे जो कुछ करना चाहते है वह बहुत कम हानिकर तरीकेसे भी किया जा सकता है। हाँ, अगर उन्होंने यही निश्चय कर लिया हो कि इस उपनिवेशमें एक-एक भारतीय व्यापारीको जड़मूलसे उखाड़ फेंकना है तो बात दूसरी है; परन्तु याद रहे, पिछले हफ्ते ही सर जेम्स हुलेटने ट्रान्सवालके श्रम-आयोगके सामने अपनी गवाही देते हुए इन्ही व्यापारियोको उपनिवेशके लिए फायदेमन्द बताया है। श्री एलिस ब्राउनने भी कहा था कि हमारा उद्देश्य यह कदापि नही कि हम भारतीयोकी भावनाओंको चोट पहुँचायें या यहाँसे उनकी जडें उखाड़ फेंके। हम तो केवल न्याय करना और निहित स्वार्थोंको मान्यता देना चाहते है। हम आशा करते है कि इन शब्दोंमें उन्होने समस्त उपनि-वेशकी भावनाओको ही प्रकट किया है। अगर यह सही है, तो हम मानते है कि, हमारी प्रार्थना न्यायसगत है और उसपर अवश्य उचित विचार होना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, २४–९–१९०३

## ३४२. ट्रान्सवालमें मजदूरोंका सवाल

ट्रान्सवालके विकासके लिए दक्षिण आफ्रिकामें पर्याप्त मजदूर है या नही इस प्रश्नपर विचार करनेके लिए श्रम-आयोगकी बैठकें इन दिनों जोहानिसबर्गमें चल रही है। अब आयोगका काम समाप्त होनेको है। यह देखनेके लिए कि चीनी मजदूर उपलब्ध हो सकते है या नहीं, आयोगके सदस्य पूर्वकी यात्रापर गये थे। वे इस हफ्तेमें लौट आयेंगे। यह तो निश्चित-सा है कि श्रम-आयोग इसी नतीजेपर पहुँचेगा कि आफ्रिकामें आवश्यक संख्यामें मजदूर नही है। हम यह भी निश्चित-सा ही मान सकते है कि एशियासे और विशेषकर चीनसे मजदूर लानेका निश्चय किया जायेगा।

इसलिए इस प्रश्नका असर ट्रान्सवालमें रहनेवाले ब्रिटिश भारतीयोंपर भी कुछ हदतक पड़ेगा ही। वे यह भी जानते हैं कि गिरमिटिया भारतीय मजदूर लानेके प्रश्नके साथ किस प्रकार स्वतन्त्र भारतीय प्रवासियोंके दर्जेका प्रश्न अत्यधिक मिला दिया गया है, और उनको हानि पहुँचाई गई है। ट्रान्सवालकी सरकारने मानो भविष्यद्रष्टाकी भाँति हमें सावधान कर दिया है कि यह गड़बड़ी और भी बढ़नेवाली है। ट्रान्सवालमें पहले "ब्रिटिश भारतीय" संज्ञा केवल एक देशके निवासियोंके लिए प्रयुक्त होती थी और "एशियाई" शब्द व्यापक रूपसे सारे एशिया-निवासियोंके लिए। परन्तु अब "ब्रिटिश भारतीय" का स्थान "एशियाई" ने ग्रहण कर लिया है। अब "एशियाई मामलोंका मुहकमा", "एशियाई व्यवस्थापक," और "एशियाई बाजार" सबमें "एशियाई" शब्द प्रयुक्त है। इसलिए चीनसे मजदूर लानेसे भारतीयोंके हितोंको अवश्य ही अप्रत्यक्ष हानि पहुँचेगी। खैर, यह जो कुछ भी हो। अभी तो हम इस प्रश्नका विवेचन चीनी दृष्टिकोणसे और व्यापक आम सिद्धान्तोंके अनुसार करना चाहते हैं।

हम पहले ही बता चुके हैं कि चीनी मजदूरोंको यहाँ लानेका विचार जब ट्रान्सवालके धनपति और उनके समर्थक करते हैं, तब वे यहाँके असली बाशिन्दोंको बिलकुल भूल जाते हैं और साथ ही गोरे उपनिवेशवासियोंकी भावी पीढ़ियोंके हितोंको भी भुला देते हैं। इन दोनों दृष्टियोंसे विचार करते हुए तो यह स्थिति बुरी है ही, परन्तु उन गरीबोंके लिए तो बेहद बुरी है जो यहाँ अत्यन्त कष्टदायक शर्तोंपर लाये जायेंगे। धनपति और भी अधिक धन बटोरनेकी और दूसरे लोग एकाएक धनवान बन जानेकी उत्सुकताके कारण क्षण भर रुककर यह सोचना भी जरूरी नहीं समझते कि बेचारे चीनी भी, जिनके साथ पहले ही बहुत दुर्व्यवहार हुआ है, आखिर मनुष्य हैं, और इस नाते उनके सुख-दुःखका भी इन्हें कुछ खयाल करना चाहिए। हम तो यह भी कहते हैं कि चीनियोंके यहाँ आनेपर जो शर्तें लगाई जायेंगी, उनको वे स्वीकार भी कर लें तो भी इतनेसे इन शर्तोंको पेश करनेवालोंकी जिम्मेवारी किसी प्रकार कम नहीं हो जाती, और वह बहुत बड़ी जिम्मेवारी है। ब्रिटिश कानूनोंमें कुछ करार ऐसे बताये गये हैं कि जिनको करार करनेवाला पक्ष स्वीकार भी कर ले तो भी वे रद माने जाते हैं, या रद माने जाने चाहिए। उदाहरणार्थ, खानोंमें काम करनेवालों या विवाहित स्त्रियों द्वारा किये गये करार। मान लीजिए, एक बदमाश किसीकी छातीपर पिस्तौल तानकर कहता है कि या तो इस कागजपर दस्तखत कर या मैं तेरी जान लेता हूँ; और मान लीजिए, वह मनुष्य अपने दस्तखत दे देता है; तो इन उदाहरणोंमें कानून गरीबकी मददमें आकर खड़ा हो जाता है और कहता है, इन दस्तखतोंका कोई मूल्य नहीं है। इसी प्रकार किसी करारकी पुष्टि करानेके लिए अनुचित दबाव काममें लाया जाता है, तो वह भी रद माना जाता है। एक भूखा आदमी अपनी सारी सम्पत्ति और आजादीको बेच देता है। परन्तु जब कभी वह चाहे वह सब उसे वापस मिल सकती है। इसी प्रकार चीनियोंके लिए बनाये गये शर्तनामेको चाहे कितना ही समझाया जाये, और गरीब चीनी बड़े-बड़े अधिकारियोंके सामने उसे मंजूर भी कर लें, फिर भी हमें यह कहनेमें कोई झिझक नहीं कि भले ही कानून उसे अनुचित दबाव न भी माने, किन्तु नैतिक दृष्टिसे तो अवश्य ही वह अनुचित दबाव माना जायेगा; क्योंकि हम तो कल्पना भी नहीं कर सकते कि पिछले दिनों ट्रान्सवालमें हुई सभाओंमें जो शर्तें प्रस्तावित की गई हैं, उनको कोई स्वतन्त्र मनुष्य खुशी-खुशी स्वीकार कर सकता है।

यह आशा की जाती है कि मजदूर कुछ वर्ष नौकरी करनेका शर्तनामा लिख देंगे। इस अवधिके बाद वे अनिवार्य रूपसे वहीं वापस भेज दिये जायेंगे, जहाँसे वे आये थे। ट्रान्सवालमें आनेपर वे कुछ अहातोंमें बन्द कर दिये जायेंगे, और उन्हें अपने दिमाग, लेखनी, तूलिका या टाँकीका

उपयोग करनेकी आजादी नही होगी; अर्थात्, वे स्वतन्त्र रूपसे दूसरा कोई काम नही कर सकेंगे। उनके हाथोमें तो केवल फावड़े और बेलचे होंगे और वे उन्हीका इस्तेमाल कर सकेंगे। अबतक हम यही सोचनेके अभ्यस्त रहे है कि [जब एक मनुष्य दूसरे मनुष्यके सम्पर्कमें आयेगा तब उसे अपनी स्वाभाविक शक्तियोका खुलकर उपयोग करनेका अवसर मिलेगा;] परन्तु गरीब चीनी यह कुछ नही कर सकेंगे। यहाँ पहुँचनेपर वे देखेंगे कि कारीगरीका — जैसे सन्दूक आदि बनानेका दूसरा काम करके वे एक घण्टेमें उतना ही कमा सकते है, जितना खान मजदूरोके रूपमें आठ घण्टेमें। उन्हें अपनी बुद्धि कुण्ठित करनी होगी और अकुशल मजदूर रहकर संतोष करना होगा। हम इसे शुद्ध अन्याय मानते है, जिसका कोई समर्थन नही हो सकता। सबसे अधिक दयनीय बात तो यह है कि इतनी अस्वाभाविक परिस्थिति निर्माण कर देनेपर यदि चीनी, जिन्हें उपनिवेशी 'काफिर' कहते है, कही नीतिका भग कर बैठें, अपना जुआ उतार फेंकनेकी सभी उलटी-सीधी तरकीबें करे और अपने पूर्वजोंसे पाई कला और बुद्धिका सीधे या टेढ़े-मेढ़े ढंगसे उपयोग करनेका यत्न करे, तो ये उपनिवेशी उनकी शिकायत करेंगे ही। निःसन्देह खान-उद्योग ट्रान्सवालका मुख्य आधार है, परन्तु उपनिवेशी शायद उसका विकास बड़ी महँगी कीमत देकर कर रहे है। बिलकुल यह भी नहीं कहा जाता कि बाहरके मजदूर नही आयेंगे तो यहाँका काम ठप्प हो जायेगा। कुछ महीने पहले बॉक्सबर्गमें एक बड़ी सभा हुई थी। इस सभामें सर जॉर्ज फेरारने इन खानोकी तुलना "सोने-चाँदीकी तिजोरियो" से की थी। (उन्होने कहा था कि इनका पूरा-पूरा लाभ उठानेके लिए एशियासे बेगारी मजदूर लाने चाहिए। परन्तु फेरार साहबकी कलापूर्ण वक्तृता और प्रभावशाली शक्तिके बावजूद सभामें उनका प्रस्ताव भारी बहुमतसे रद हो गया)। मजदूरोकी कमीसे तिजोरियोके अन्दर बन्द पड़ा सोना जंग तो नही खा रहा है। तब इनमें से कुछ तिजोरियाँ आनेवाली पुश्तोंके उपयोगके लिए बन्द क्यो न छोड़ दी जायें? इतनी-सारी चीजोंका बलिदान देकर उन्हें कुछ इने-गिने लोगोकी स्वार्थ-साधनाके लिए जबरदस्ती खोलनेका प्रयास क्यो किया जाये?

हम जानते है हमारा यह सारा कथन बहुत ही महत्त्वहीन अरण्यरोदन-मात्र है। श्वेत-संघके सारे साधन इन करोड़पतियोंके आगे बेकार साबित हो रहे है, जो दो लाख चीनी मजदूर ट्रान्सवालमें लानेका निश्चय कर चुके है। परन्तु यदि साफ कहें तो अभीतक इन श्वेत-सघी भले आदमियोके विरोधका आधार बहुत नीचा, अर्थात्, केवल स्वार्थपरायणता रहा है। क्या हम इनसे अनुरोध करे कि ये अपने प्रचारके ढंगमें कुछ नई बात जोड़ें और असहाय एवं मूक लोगोंका पक्ष-समर्थन कर अपनी स्थिति मजबूत करे? अपनी बातको हम जरा साफ कर दें। हमारे इस अनुरोधसे यह न समझा जाये कि हम एशियाइयोके प्रवेशके लिए उपनिवेशके दरवाजे पूरी तरह खोल देनेकी वकालत कर रहे हैं। हम पहले कह चुके है और यहाँ फिर दुहरा देते हैं कि उचित मर्यादाओंके भीतर उनके प्रवेशपर नियन्त्रण लगाना बिलकुल मुनासिब है। [जातिकी शुद्धताकी रक्षाको हम भी उतना ही चाहते है, जितना कि हमारी समझसे वे चाहते हैं। परन्तु साथ ही हमारा यह भी विश्वास है कि इन दोनों पक्षोंके प्रिय हितकी सिद्धि तब अधिक अच्छी तरह होगी जब केवल एक जातिकी ही नहीं, बल्कि सभी जातियोकी शुद्धताका ध्यान समानरूपसे रखा जायेगा।] हमारा यह भी विश्वास है कि दक्षिण आफ्रिकामें प्रभुता गोरी जातिके हाथोमें ही रहेगी और यह भी कि श्वेत-संघके सदस्य अगर नीतिकी मजबूत चट्टानपर खड़े रहेंगे तो अपने अभीष्ट उद्देश्यकी ओर ही बढ़ेंगे। वे कह सकते है: "ये जितने भी निर्बन्ध लगानेकी बातें हो रही हैं, वे सब लगाये जा सकते है और जिन चीनियोंको यहाँ लानेका विचार हो रहा है, उन्हें किसी कठिनाईके बिना वापस भी भेज दिया जा सकता है।

परन्तु हम इस सारे प्रस्तावका इसलिए विरोध करते हैं और उसे नामंजूर करते हैं कि यह सब मानवताके विरुद्ध है और जो जाति दूसरी तमाम जातियोंका आज संसारमें नेतृत्व कर रही है उसके लिए अशोभनीय है।" लॉर्ड मेकॉलेने अपने एक निबन्धमें एक बात कही है। हम उन्हें यहाँ उसकी याद दिलाना चाहते हैं। वे कहते हैं: "हम आजाद हैं; और सभ्य हैं; परन्तु अगर हम मानव-जातिके किसी भी भागको उतनी ही आजादी और सभ्यता देनेसे इनकार करें तो हमारी आजादी और सभ्यता किस कामकी?"

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, २४-९-१९०३

## ३४३. मजिस्ट्रेट, श्री स्टुअर्ट

एक भारतीयकी हत्याके मामलेमें श्री स्टुअर्टका कार्यवृत्त, जो अन्यत्र[1] दिया जा रहा है, पढ़नेपर हमें लगा था कि उन्होंने इसमें अपना राजनीतिक दाँव मारना चाहा है। इसपर हमें दुःखके साथ टिप्पणी करनी पड़ी थी। अब हमें अपने सुयोग्य मजिस्ट्रेटको बधाई देनेमें हर्षका अनुभव हो रहा है। अनैतिकताके सर्पपर उन्होंने मजबूतीके साथ अपना पाँव जमाया है, जैसा कि उस दिन एक अभागे भारतीयके मामलेमें उनके फैसलेसे प्रकट हुआ। वह इस प्रकारकी कार्यवाही है कि नैतिक कानूनके अपराधियोंका ध्यान बरबस उसकी ओर जायेगा। हम आशा करते हैं कि भारतीय लोग मजिस्ट्रेटके कार्यका समर्थन करेंगे। इसका रूप होगा उस मनुष्यका सामाजिक बहिष्कार, जो कि केवल भारतीय ही जानते हैं, कैसे करना चाहिए। ऐसे आदमी, जैसा कि यह अपराधी है, समाजके लिए अभिशाप है और जिस समाजमें दुर्भाग्यसे वे होते हैं, उसको असीम हानि पहुँचाते हैं। इस बार ठग अच्छी तरह ठगा गया है। और हमें हर्ष है कि श्री स्टुअर्टने कानूनसे निर्धारित अधिकतम दण्ड दिया है।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, २४-९-१९०३

## ३४४. स्टुअर्ट नये रूपमें

*मर्क्युरी*में छपा उपनिवेश-मन्त्री और नेटालके गवर्नरका पत्र-व्यवहार कुछ समयसे हमारे पास है; परन्तु इसे प्रकाशित करनेकी हमारी इच्छा नहीं हुई, क्योंकि हम सोचते थे कि इससे कुछ लाभ न होगा। भारतीयोंकी शिकायत इक्की-दुक्की कठिनाईके मामलोंके बारेमें नहीं है; बल्कि उस सुचिंतित ढंगके बारेमें है, जिसके द्वारा वे अपमानित और जीविकाके साधनोंसे वंचित किये जाते हैं। हमने सदैव माना है कि अदालतोंमें — खासकर ऊँची अदालतोंमें — भारतीयोंको उतना ही अच्छा न्याय मिलता है, जितना किसी अन्यको। परन्तु चूँकि यह पत्र-व्यवहार प्रकाशित हो गया है, इसलिए इसपर कुछ टिप्पणी आवश्यक है। हमें यह जानकर बहुत दुःख हुआ कि श्री स्टुअर्टने बजाय एक शान्त और पक्षपातरहित मजिस्ट्रेटके,

१. देखिए अगला शीर्षक।

जैसे कि वे सामान्यतः रहते हैं, एक खास वकील और सनसनी पैदा करनेवालेका रूप धारण कर लिया है। हमारी रायमें, उन्होंने हत्याके एक साधारण मुकदमेको, जो उनके पास जाँचके लिए भेजा गया था, अनावश्यक राजनीतिक रूप दे दिया है। ध्यान रखिए, श्री स्टुअर्टने इस बातपर जोर दिया है कि अभियुक्तके मामलेकी पैरवी एक भारतीय वकीलने की और भारतीय समुदायने जानकारी देनेमें सहयोग नहीं दिया — मानो भारतीय समुदाय ही सूचना दे सकता था और वह अपराधीको जानता था। श्री स्टुअर्टके अनुसार, अबसे यदि किसी भारतीयकी हत्या हो और हत्यारेका पता न चले तो इसके लिए उपनिवेशके ७०,००० भारतीय दोषी हैं—हत्यारेका पता लगाना उनके कार्य-क्षेत्रके अन्तर्गत है, न कि पुलिसके। क्या हम श्री स्टुअर्टकी भूल सुधार सकते हैं और उन्हें बता सकते हैं कि 'श्री' भावनगरी 'नाइट' हैं और, इसलिए, 'सर मचरजी' हैं? सुयोग्य 'नाइट' को सूचना किसी स्थानीय समाचार-पत्रसे मिली होगी। ऐसी स्थितिमें हमारे सर्वप्रिय का० स० म०[1] के लिए सहज होगा कि वे सवाददाताका पता लगायें और उसकी गवाही लें।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, २४–९–१९०३

## ३४५. ट्रान्सवालका पृथक् बस्ती-कानून

ट्रान्सवालके सरकारी *गज़ट*के वर्तमान अंकमें उन तमाम भारतीय बस्तियोंकी सूची है, जिनका सर्वेक्षण और निर्धारण सरकारने कर लिया है। इस उपनिवेशमें हमारे देशभाइयोंका भविष्य बड़ा अन्धकारमय बन गया है। भूतपूर्व उपनिवेश-सचिवने अनेक बार कहा है कि वे सारे प्रश्नपर विचार कर रहे हैं। लॉर्ड मिलनर कहते हैं कि *बाजार*-सूचना केवल अस्थायी है। इसलिए ट्रान्सवालकी सरकार या तो लॉर्ड मिलनरकी उपेक्षा करना चाहती है या एक ऐसी योजनापर नाहक सार्वजनिक धनका अपव्यय कर रही है, जिसका अभी अन्तिम निर्णय होना बाकी है। लॉर्ड मिलनरने बड़ी चतुरतापूर्वक कहा है कि वर्तमान सरकार तीन बातोंके बारेमें सहायता दे रही है, जो पहले कभी नहीं दी गई थी। इनमें से एक बात है *बाजारों*का निर्धारण करना। साफ शब्दोंमें इसका अर्थ यह है कि, बोअर-सरकारने भारतीयोंको *बाजारोंमें* नहीं भेजा था, किन्तु अब लॉर्ड मिलनर भेजना चाहते हैं। इस दिशामें सरकारने अपना कदम बढ़ा भी दिया है और बस्तियोंकी रूपरेखा निर्धारित कर दी है। फिर भी लॉर्ड मिलनर भारतीयोंपर यह शिकायत करनेके कारण बिगड़ते हैं कि पिछली सरकारकी अपेक्षा अब भारतीयोंके साथ अधिक बुरा व्यवहार होता है। अरे, बातोंमें और व्यवहारमें कुछ तो मेल हो!

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, २४–९–१९०३

१. कार्यवाहक सहायक मजिस्ट्रेट।

## ३४६. तीन-तीन त्यागपत्र

श्री चेम्बरलेन, लॉर्ड जॉर्ज हैमिल्टन और श्री रिची[1] ने त्यागपत्र दे दिये है। यह तो सचमुच वज्रपात ही है। हमें यह खयाल अवश्य आता है कि आजके जैसे नाजुक समयमें मन्त्रिमण्डलसे सबसे अधिक शक्तिशाली और कुशल मन्त्रीका हट जाना गम्भीर दुर्भाग्यकी बात है। दक्षिण आफ्रिकाके जटिल प्रश्नोंकी जितनी अच्छी जानकारी श्री चेम्बरलेनको है उतनी इस समय साम्राज्यमें अन्य किसीको नहीं। ये सब प्रश्न अभी अनसुलझे पड़े हैं। जहाँतक तोड़-फोड़का सम्बन्ध है, वह तो पूरी हो चुकी; परन्तु पुर्ननिर्माणका काम तो अभी शुरू ही नही हो पाया है, और वह और भी अधिक मुश्किल और महत्त्वपूर्ण है। ऐसे समय श्री चेम्बरलेनने अपने पदका त्याग कर देना उचित समझा; इससे बहुत कठिनाई पैदा हो गई है; और प्रधानमन्त्रीको उपनिवेश-मन्त्रीके पदके लिए दूसरा योग्य आदमी ढूंढ़ निकालना लगभग असम्भव हो जायेगा। ब्रिटिश भारतीयोंका जहाँतक सम्बन्ध है, इससे उनकी अनिश्चित स्थिति और भी अधिक अनिश्चित हो जाती है। श्री चेम्बरलेनने फिर भी दक्षिण आफ्रिकी ब्रिटिश भारतीयोंके प्रश्नको कुछ समझ लिया है, यद्यपि हमारी दृष्टिसे पूरी तरह नहीं। उनके विचारोंसे हम न्यूनाधिक परिचित हो गये हैं। जहाजोंपर भारतीय खलासियोंको नौकरी देनेके सम्बन्वमें आस्ट्रेलियाके संघीय मन्त्रियोंको जो खरीता भेजा गया है उसमें इस प्रश्नको उन्होंने साम्राज्यके मंचपर लाकर रख दिया है। किन्तु अब फिर हमारे सामने उपनिवेश-कार्यालयकी रीति-नीतिमें परिवर्तनकी संभावना उपस्थित है। लॉर्ड जॉर्जका त्यागपत्र और श्री ब्रॉड्रिकका उनके स्थानपर लिया जाना भी अशुभ लक्षण है। (श्री ब्रॉड्रिक अपने इस प्रस्तावसे कि दक्षिण आफ्रिकामें भारी फौज रखनेका खर्चा भारत दे, भारतमें अत्यन्त अप्रिय हो गये हैं।) परन्तु हम आशा करें कि अपना नया पद सँभालनेपर श्री ब्रॉड्रिक भारतके बारेमें पहलेकी अपेक्षा अधिक विचार करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, २४-९-१९०३

## ३४७. सर जे० एल० हलेट और भारतीय व्यापारी

खानोंके लिए आफ्रिकी मजदूरोंकी उपलब्धिके सवालकी जाँच करनेके लिए जोहानिसबर्गमें इस समय जो श्रम-आयोग बैठा है, उसके सामने गवाही देते हुए श्री जेम्स हलेटने कुछ बड़ी दिलचस्प बातें कही है। आयोगके सामने सर जेम्सकी गवाही हम जोहानिसबर्ग *स्टार*के इसी मासके १५ तारीखके अंकसे अन्यत्र उद्धृत कर रहे हैं। बहुत बदनाम किये गये भारतीय व्यापारीके पक्षमें माननीय महानुभावने साहसके साथ जो स्पष्ट बातें कही, उनके लिए हम उन्हें बधाई देते है। तथापि यह समयके रुखका सूचक है कि भारतीयोंके प्रति ऐसे प्रशंसात्मक विचार रखते हुए भी वे उनके उद्योगोंपर कानूनी निर्योग्यताएँ लगाने और गिरमिटिया भारतीयोंके अनिवार्य रूपसे वापस भेजे जानेके प्रश्नके साथ अपनी सहमति प्रकट कर सकते हैं; यद्यपि उनकी सम्मतिमें भारतीयोंने उपनिवेशको जाहिरा तौरपर विनाशसे बचाया है और वे आजतक

१. अर्थ-मन्त्री।

इसकी उन्नतिके लिए आवश्यक हैं। व्यापारियोंके सम्बन्धमें बोलते हुए सर जेम्सने श्री क्विनके प्रश्नके उत्तरमें कहा:

> अरब लोग सीमित संख्यामें हैं और प्रायः सभी व्यापारी हैं। साधारण छोटा व्यापारी अरबके साथ प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकता। उपनिवेशका काफिरोंके साथ फुटकर व्यापार प्रायः सारा-का-सारा अरबोंके हाथमें है। देहाती क्षेत्रोंमें मुझे इसपर आपत्ति नहीं है, क्योंकि मैं सोचता हूँ कि साधारण गोरे युवक या युवती देहाती काफिर बस्तियोंमें वस्तु-भण्डारोंकी देख-रेखके बजाय कोई और अच्छा काम कर सकते हैं। साधारण गोरे आदमीकी आवश्यकताओंकी अपेक्षा अरब लोगोंकी आवश्यकताएँ कम हैं। वे कम मुनाफेपर माल बेचते हैं और एक खास हदतक वतनियोंके साथ यूरोपीयोंकी अपेक्षा अधिक अच्छा व्यवहार करते हैं। देहाती वस्तु-भण्डारोंमें यूरोपीय बहुत अधिक मुनाफा चाहते हैं।

श्री ईवान्सके प्रश्नका उत्तर देते हुए उन्होंने कहा

> मैं नहीं समझता कि भारतीयोंका आगमन नेटालके लिए अहितकर हुआ है। इसके बिना यहाँ खेतीबाड़ी सम्भव नहीं थी और समुद्रतटीय बन्दरगाहोंमें मुश्किलसे कोई आबादी होती है। सम्पूर्ण कृषिकार्य मजदूरोंकी प्रचुर उपलब्धिपर निर्भर है।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, २४–९–१९०३

## ३४८. करोड़पति और भारत सरकार

ट्रान्सवालकी साधन-सम्पत्तिके विकासके लिए ट्रान्सवालको मजदूर देनेका विचार करनेसे पहले भारत-सरकार और उपनिवेश-मंत्रीने वहाँके ब्रिटिश भारतीयोंके लिए कुछ अधिकारोंकी माँग की है। वास्तवमें ये अधिकार भारतीयोंके वाजिब अधिकारोंमें से आधेसे भी कम हैं। परन्तु इसीपर सर जॉर्ज फेरारका कोप भारत-सरकार और उपनिवेश-मन्त्रीपर भड़क उठा है। सर जॉर्ज जिस किसी कामको हाथमें लेते हैं उसपर लाखों-करोड़ो खर्च कर देते हैं, इसलिए हम नहीं जानते कि जो लोग उनके कोपके भाजन बन गये हैं अब उनपर क्या बीतनेवाली है। खानोंके उद्योगसे उनका सम्बन्ध बहुत निकटका है। असलमें उनकी करोड़ोंकी कमाई उसीपर निर्भर है। ऐसी सूरतमें हम उनकी स्थितिको समझ सकते हैं। धन कमानेवाला आदमी प्रायः साधनोंका औचित्य परिणामसे देखता है। इस सिद्धान्तकी दृष्टिसे सर जॉर्ज और खान-उद्योगके अन्य मालिक इस बातकी चिन्ता क्यों करने लगे कि जिनकी मददसे वे इतना धन कमाते हैं उन्हें ठीक तरहसे खानेको मिलता भी है या नहीं। इसी दृष्टिकोणसे वे यह मानते हैं कि अगर उनका कोई उचित या अनुचित विरोध करे तो येन-केन प्रकारेण उसका मुँह बन्द किया जाना चाहिए। गत १७ सितम्बरको जोहानिसबर्गमें खान-मण्डलकी मासिक बैठकमें शायद इसी धुनमें उन्होंने नीचे लिखे शब्द कहे थे:

> इस तनावको दूर करनेकी दृष्टिसे आपके खान-मण्डलने नई रेलवे लाइन बनानेके लिए भारतसे गिरमिटिया मजदूर लानेका सुझाव सरकारको दिया था। इसके कुछ ही समय बाद उपनिवेश-मन्त्रीका उत्तर विधान-परिषदकी मेजपर रख दिया गया था।

उसमें भारत-सरकारने जो रुख ग्रहण किया है तथा उपनिवेश-मन्त्रीने जिसका समर्थन किया है, उसके प्रति सख्त विरोध करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। हम स्वीकार करते हैं कि भारतकी भाँति हम भी ब्रिटिश साम्राज्यके एक अंग हैं, परन्तु फिर भी इस उपनिवेशके गोरे निवासियोंके हितोंका खयाल हमें रखना ही पड़ेगा। भारतकी जनसंख्या बहुत अधिक है। उसके निवासियोंको हमने एक श्रम-बाजार दिया है, जहाँ वे अपना श्रम बेच सकते हैं। अपनी शर्तकी अवधि पूरी होने पर जब गिरमिटिया स्वदेश लौटेंगे तब उनके पास उनकी मजदूरीका कुछ धन होगा ही। भारतके लिए यह क्या कम लाभ है? लेकिन इस देशके निवासियोंको यह निश्चय करनेका हक है कि वे यहाँ भारतीय व्यापारियोंकी भीड़ होने दें या नहीं, उन्हें खुली होड़ करने और यहाँ बसने दें या नहीं। आगे-पीछे हमें आशा है यह देश विशुद्ध रूपसे गोरोंका हो जायेगा। हम अपने साथी भारतीय प्रजाजनोंको *बाजारोंमें* व्यापार करनेका अधिकार देते हैं। हमारा खयाल है कि इस तरह सरकारने एक उदारतापूर्ण रियायत की है। इसके जवाबमें हम यह तो आशा भी नहीं कर सकते कि भारत सरकार इतनी अदूरदर्शी बन जायेगी कि साम्राज्यके हितमें, जिसका कि भारत खुद भी एक अंग है, अंगीकृत जिम्मेदारियोंको अदा करनेमें हमारी मदद करनेसे इनकार कर देगी। दक्षिण आफ्रिकाके युद्धके खर्चमें तीन करोड़ पौंडकी सहायता देनेका हम वचन दे चुके हैं। इसका ब्याज आखिर हम अपनी औद्योगिक समृद्धिके परिणामोंमें से ही अदा कर सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, २४-९-१९०३

## ३४९. विक्रेता-परवाना अधिनियम पुनरुज्जीवित : ४

### कथनी और करनी

श्री क्रेसलरने सारी कलई खोल दी और इसका वास्तविक कारण बता दिया कि आखिर ट्रान्सवालके खान-उद्योगके मालिक एशियासे मजदूर लानेपर क्यों तुले बैठे हैं। अब यह रहस्य खुल गया है कि लाभदायक दरोंपर गोरे मजदूर मिल नहीं सकते — प्रश्न यह नहीं है। असली प्रश्न तो यह है कि गोरे मजदूर आयेंगे तो आगे चलकर वे मालिकोंपर हावी हो जायेंगे; मजदूरी, कामका समय और दूसरी बहुत-सी बातोंके बारेमें मालिकोंके सामने अपनी शर्तें रखने लगेंगे और ट्रान्सवालमें एक जोरदार राजनीतिक शक्ति बन बैठेंगे। यह तो वही पुरानी बात हुई। शक्तिशाली चाहते हैं कि सारी सत्ता उन्हींके हाथोंमें बनी रहे और उनके प्रतिस्पर्धी लोग क्षेत्रमें न आने पायें। इन खान-मालिकोंको भी वही भय संचालित कर रहा है, जिससे प्रेरित होकर उत्तरदायी शासन मिलते वक्त नेटालके विधान-निर्माता काम कर रहे थे। उन्होंने तब सबसे पहले ब्रिटिश भारतीयोंका मुँह बन्द करनेके लिए उनका मताधिकार छीननेका कदम उठाया था। इसपर जब ब्रिटिश भारतीयोंने न्यायकी दरख्वास्त[1] की तो सर जॉन रॉबिन्सनने उसके जवाबमें कहा था, और उन्होंने जो कहा था उसके एक-एक शब्दको वे मानते भी थे कि : ब्रिटिश

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ ९८।

भारतीयोंकी स्थिति तो बगैर मताधिकारके ही अधिक अच्छी रहेगी, क्योंकि इससे विधानसभा अपने ऊपर एक बहुत भारी जिम्मेदारी ले रही है। अब यह देखना उसका काम होगा कि भारतीयोकी स्वतंत्रतामें किसी भी प्रकार कमी नही होने पाये। दुर्दैवकी बात तो यह थी कि इस वचनके पीछे कानूनका बल नही था। इसलिए यद्यपि यह वचन खुद तत्कालीन प्रधानमन्त्रीके मुँहसे निकला था और इसलिए अधिकारयुक्त और प्रातिनिधिक मत था और इसीलिए विधानसभाके लिए भी नैतिक दृष्टिसे बन्धनकारक था, फिर भी आचरण तो सर जॉनके इस उदारता-भरे वचनके बिलकुल विपरीत ही रहा है। मताधिकार छीनने-वाले कानूनके तुरन्त बाद ही प्रवासी-अधिनियम और विक्रेता-परवाना अधिनियम बने है। फिर भी हम इस दूसरे कानूनपर ही सबसे अधिक जोर देना चाहते हैं, क्योंकि इसका असर उन लोगोकी सुख-सुविधापर पड़ रहा है, जो पहले ही से यहाँ बसे हुए है और जिनके लिए वह कानून सदा ऊपर लटकती तलवारके समान है। ब्रिटिश भारतीयोके हितोको यह किस-किस प्रकार हानि पहुँचा रहा है यह हम पहले ही बता चुके है। पिछले हफ्ते हमने जिस दरख्वास्त[1]का उल्लेख किया था, उसे इस अंकमें हम अन्यत्र दे रहे हैं। कानूनका अमल किस प्रकार किया जा रहा है, यह उसमें विस्तारके साथ बताया गया है। इसके अलावा आजकल डर्बन तथा न्यूकैसिलकी नगर-परिषदोकी सरगरमीके खयालसे वह अत्यन्त सामयिक भी है। जो बात हमारी समझमें नही आ रही है सो यह है कि इस कानूनमें जो भाग सबसे अधिक आपत्तिजनक है, जिसमें व्यापारियोको परवाने देनेके मामलेमें नगर-परिषदोके निर्णयोपर सर्वोच्च न्यायालयमें अपील करनेका अधिकार छीना गया है, उससे नगर-परिषद इतनी बुरी तरह क्यों चिपटी है? हम पहले ही बता चुके है कि एक अवैधानिक कार्रवाईका सहारा लिये बगैर भी उनका मतलब आसानीसे और उतनी ही अच्छी तरह निकल सकता है। इस विषयमें *टाइम्स ऑफ़ नेटाल* भारतीय दृष्टिकोणको बहुत ही अच्छी तरह प्रकट करता है। हम उसीको उद्धृत कर देना अधिक उचित समझते है। वह लिखता है :

> आप भारतीय व्यापारियोंसे सफाई-सम्बन्धी तमाम नियमोंका पालन जरूर करवाइए, हिसाब-किताब अंग्रेजीमें रखवाइए, और जो भी कुछ अंग्रेज-व्यापारी करते हैं, वह सब करवाइए। परन्तु जब इन सबका वे पालन कर चुकें तब तो उनके प्रति न्याय कीजिए। कोई भी ईमानदार आदमी यह स्वीकार नहीं करेगा कि इस नये विधेयक (विक्रेता-परवाना अधिनियम) में उनके प्रति या उस समाजके प्रति न्याय हुआ है, क्योंकि जो प्रतिस्पर्धा समाजके लिए लाभदायक है उसे अपने मार्गमें से हटानेको सत्ता, वह स्वार्थी लोगोंके हाथोंमें दे देता है और उन्हें अपनी जेबें भरनेकी सहूलियत कर देता है।

यह बात सन् १८९८ में लिखी गई थी। यह कथन उस समय जितना सत्य था उससे दूना सत्य आज है। ब्रिटिश भारतीय सात वर्षसे विक्रेता-परवाना अधिनियमका अमल देख रहे है। उसके आधारपर हम यह कह रहे है। अगर अत्यधिक दुर्भावने उपनिवेशवासियोंकी न्याय-भावनाको निपट अन्धा नही बना दिया है तो उन्हें यह समझनेमें कोई कठिनाई नही होनी चाहिए कि आज इस कानूनके कारण प्रत्येक भारतीयका परवाना घोर अनिश्चिततामें पड़ गया है, और अनिश्चित अवस्था दूर होनी ही चाहिए। आप उसपर जितनी कड़ी शर्तें लादना चाहें लाद दीजिए। परन्तु उनके पूरी हो जानेपर तो कमसे-कम उसे अपनी स्थितिको सुनिश्चित अनुभव करने दीजिए। जबतक ब्रिटिश भारतीयोके प्रति इतना साधारण-सा न्याय भी नही

१. "प्रार्थनापत्र : चेम्बरलेनको", दिसम्बर ३१, १८९८।

बरता जाता, तबतक उन्हें चैन नसीब नहीं हो सकता। हमारे देश-भाइयोंका कर्तव्य है कि वे कानूनमें अभीष्ट संशोधन करवानेके लिए अपना आन्दोलन जारी ही रखें।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, १-१०-१९०३

## ३५०. जोहानिसबर्गकी भारतीय बस्ती

लगभग दो वर्षकी बात है। मेजर ओ'मियारा उस समय जोहानिसबर्गके तानाशाह थे। आयरलैंडके निवासी विनोदी तो होते ही हैं। जोहानिसबर्गकी भारतीय बस्ती उन दिनों बड़ी गन्दी बताई जाती थी। उसके बारेमें एक अत्यन्त सनसनीदार विवरण पेश करके उन्होंने जोहानिसबर्गकी जनताके साथ एक गहरा अमली मजाक किया। उन्होंने उसको बहुत साफ-साफ शब्दोंमें सावधान किया कि भारतीय बस्तीके कारण नगरके आरोग्यको बहुत भारी और तात्कालिक खतरा है। इस बातको बादमें श्री लियोनेल कर्टिस और डॉ० पोर्टरने उठा लिया। दोनों उत्साही सज्जन ताजा-ताजा लंदनसे आये थे। उन्होंने सोचा, जोहानिसबर्गकी जनताकी कोई खास और बड़ी सेवा करके अच्छी तनख्वाह और साथ-साथ जनताके एक विशेष वर्गकी कृतज्ञता भी क्यों न प्राप्त करें। इसलिए उन्होंने उस सुयोग्य मेजरसे भी दो कदम आगे बढ़कर भारतीय बस्तीके पासके कुछ अन्य स्थानोंको भी बुरा बता दिया और उस सारे हिस्सेको "अस्वच्छ क्षेत्र" कहकर उसे जोहानिसबर्गके निवासियोंके आरोग्यके लिए एक सतत और तात्कालिक खतरा ठहरा दिया। नगर-परिषदमें तमाम व्यापारी हैं। स्वभावतः उन्होंने सोचा कि नगरपालिकाके लिए कमाई करनेका यह बहुत अच्छा अवसर है। लॉर्ड मिलनरके सामने पेश करनेके लिए उन्होंने एक जोरदार प्रतिवेदन तैयार किया और उसके अन्दर इस हिस्सेको उन्होंने अस्वच्छ क्षेत्र बताकर चाहा कि, लॉर्ड मिलनर नगर-परिषदको ऐसी असाधारण सत्ता दे दें कि वह इस हिस्सेको छीन सके। लॉर्ड मिलनरको इसमें कुछ संकोच हुआ; अतः उन्होंने समझौतेके रूपमें नगर-परिषदके सुझावकी जाँच करने और उसपर अपनी रिपोर्ट देनेके लिए एक आयोगकी नियुक्ति कर दी। ऐसे यह स्वाँग पूरा किया गया। आयोगने अपना निर्णय नगरपरिषदके अनुकूल दिया। उसने उस भागको बुरा बताते हुए लॉर्ड मिलनरको सलाह दी कि वे नगर-परिषदको बेदखली करनेका अधिकार दे दें। इस तरह मेजर ओ'मियाराने बैठे-ठाले जो विवरण पेश किया था उसका नतीजा यह हुआ कि वहाँ रहनेवाले हजारों आदमी अपने उचित अधिकारोंसे वंचित कर दिये गये। अगर हमारे इस कथनमें किसीको अविश्वास हो तो हम ऐसे शंकाशीलोंसे सिफारिश करेंगे कि वे स्वर्गीय सर विलियम मैरियटकी कटु आलोचना पढ़ जायें, जिसमें उन्होंने नगर-परिषदकी नीतिकी जी खोलकर निन्दा की है। बहुतसे प्रसिद्ध डॉक्टरोंने इस आशयकी गवाहियाँ भी दी हैं कि जिस क्षेत्रको नगर-परिषदने अस्वच्छ बताया है वह जोहानिसबर्गके अन्य कई हिस्सोंसे अधिक अस्वच्छ नहीं है, और उसमें जो खामियाँ बताई हैं वे न्यूनाधिक परिमाणमें सारे शहरमें पाई जाती हैं। लेकिन इस सबका कोई फायदा नहीं हुआ। नगर-परिषद इस बातपर तुली थी कि नगरके उस सारे हिस्सेपर अधिकार कर ले। इस उद्देश्यको सफल बनानेमें श्री कर्टिस और डॉक्टर पोर्टर उसके लिए कीमती साधन साबित हुए। किन्तु नीरोंका[1]

१. सीजरके वंशमें उत्पन्न रोमका अन्तिम सम्राट्, जो अनुचित उत्साह, विलास और अत्याचारोंके लिए प्रसिद्ध था। जब उसके ही लोगोंने रोम नगरमें आग लगा दी थी उस समय वह खुशीसे सारंगी बजानेमें लगा था।

मनोरंजन तो अब शुरू ही हो रहा है। अब उस सारे भागपर नगर-परिषदने अधिकार कर लिया है और वहाँके निवासियोंकी किस्मत अब उसकी दयापर निर्भर है। जोहानिसबर्गके समाचार-पत्रोंमें हम पढ़ते ही हैं कि इनके मुआवजेके दावोंकी कैसी दुर्दशा की जा रही है। हमें यह भी ज्ञात हुआ है कि उस क्षेत्रसे नगरके स्वास्थ्यको खतरा हो या न हो, नगर-परिषद किरायेदारोंके कब्जेको अभी हटाना नहीं चाहती और उसने दया करके तय किया है कि वे २६ सितम्बरसे पहले अपनी जमीनोंके मालिकोंको जो किराया देते थे, वही अब नगरपालिकाको देते रहेंगे और अपने मकानों-दूकानोंपर कब्जा रख सकेंगे। इस तरह, अगर अबतक कही किरायाखोर थे तो अब नगर-परिषदने उस पदको प्राप्त कर लिया है; और अगर पहले वहाँकी आबादी घनी थी तो वह अब भी बनी रहेगी। खुद डॉ० पोर्टरने प्रमाणित किया है कि इस अस्वच्छ बस्तीके कुछ हिस्सोंमें तो अवर्णनीय रूपसे घनी आबादी है। हाँ, पहले और अबमें यह फर्क जरूर है कि पहले गरीब मकान-मालिकोंको नगर-परिषदके घनी आबादी-सम्बन्धी नियमोंका पालन करना पड़ता था, किन्तु अब तो खुद परिषद ही मालिक है, इसलिए वह इन नियमोंसे व्यवहारतः बरी है। और अब चूंकि परिषदका कब्जा है, अतः समाजके आरोग्यका खतरा भी बिलकुल जाता रहा। मतलब, शक्ति और अशक्तिके बीच, सत्ता और अधीनताके बीच यह अन्तर है। इस बीच दो वर्ष बीत गये, परन्तु जोहानिसबर्गमें कोई बीमारी नहीं आई और न उस कथित अस्वच्छ बस्तीके गरीब बाशिन्दे किसी प्रकार खतरेका कारण सिद्ध हुये हैं। डॉ० पोर्टरने अपने उन्मादमें जो दलील दी थी, यह घटना उसकी निःसारताका अकाट्य प्रमाण है। परन्तु इस सबकी वेदना सबसे अधिक जोहानिसबर्गके ब्रिटिश भारतीय ही अनुभव करेंगे, जो सबसे अधिक कमजोर हैं। उनकी ही हालत सबसे बुरी है। दूसरे लोगोंको तो मुआवजेके रूपमें जो कुछ मिलेगा उससे वे ट्रान्सवालमें अन्यत्र कहीं जमीन खरीद लेंगे और जहाँ उनका जी चाहेगा रह सकेंगे। परन्तु भारतीयोंको तो इन दोमें से एक भी हक हासिल नहीं है। सारे ट्रान्सवालमें भारतीयोंको अपने नामपर निन्यानवे वर्षके पट्टेपर जमीन रखनेकी सुविधा अगर कही थी तो वह केवल जोहानिसबर्गमें ही, और सो भी उक्त बस्तीके छियानवे बाड़ोंमें। किन्तु वे नहीं जानते कि अब जोहानिसबर्गमें कहीं वे वैसे ही पट्टेपर जमीन खरीद सकेंगे या नहीं। यद्यपि अस्वच्छ बस्ती अधिग्रहण अध्यादेश (इनसैनिटरी एरिया एक्स्प्रोप्रिएशन आर्डिनेन्स) में यह गुंजाइश रखी गई है कि स्थान-वंचित लोगोंके रहनेका प्रबन्ध वहीं कहीं बेदखल क्षेत्रके बहुत नजदीक कर दिया जाये, परन्तु उन्हें कहाँ बसाया जायेगा इसका कोई पता नहीं है। स्मरण रहे, भारतीय आबादीका अधिकांश भाग जोहानिसबर्गमें ही रहता है। वहाँ बसनेवाले देशभाइयोंसे हमें पूरी सहानुभूति है। और अगर वहाँकी सरकार उनकी मदद नहीं करेगी तो सबकी सुध लेनेवाले परमात्माकी दयाका तो हमें पूरा-पूरा भरोसा है। वह उनका हाथ नहीं छोड़ेगा।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, १–१०–१९०३

जोहानिसबर्ग

## ३५१. राजनीतिक नैतिकता

नेटालके कुछ मामलोंके बारे में श्री चेम्बरलेनकी पूछताछपर श्री स्टुअर्टकी रिपोर्टकी चर्चा हम पिछले हफ्ते कर चुके हैं। आज हम ट्रान्सवालके दो परवानोंके मामलोंकी चर्चा करना चाहते हैं, जिनके बारेमें लॉर्ड मिलनरने अपनी रिपोर्ट श्री चेम्बरलेनको भेजी है। हमें इस बातका पूरा खयाल है कि इस मामलेमें अगर वस्तुस्थितिसे लॉर्ड मिलनरकी रिपोर्ट मेल नहीं खा रही है तो इसके लिए लॉर्ड मिलनर शायद ही उत्तरदायी माने जा सकते हैं; क्योंकि उनके सामने जो ब्यौरे सम्बन्धित लोगों द्वारा रखे गये थे, वे उन्हींपर तो निर्भर रह सकते थे।

हम नीचे सरकारी कथन और वस्तुस्थिति, जैसी हमें मालूम है, पेश कर रहे हैं:

*सरकारी कथन*

(१) चर्चाका विषयभूत भारतीय (हुसेन अमद) सन् १८९९ में वाकरस्ट्रूममें एक मकानमें रहता और व्यापार करता था। मकानका पट्टा उसके नामपर नहीं था। पट्टेकी मियाद १५ जुलाई सन् १८९९ को समाप्त हो गई थी।

*वस्तुस्थिति*

(१) रिपोर्टमें यह लिखना रह गया है कि पट्टा उसके साझीके नामपर था और यद्यपि उसकी मियाद १५ जुलाई १८९९ को समाप्त हो गई थी फिर भी वह नया कर लिया गया था। इन बातोंकी जानकारी मजिस्ट्रेटको भी थी।

*सरकारी कथन*

(२) प्रथम नेटाल-संसदके प्रस्ताव, ५ अगस्त १८९२ की धारा १०७२ द्वारा उसको उक्त तारीखके बाद कुली-बस्तीके बाहर अन्य कहीं व्यापार करनेसे मना कर दिया गया था, और १५ जुलाई सन् १८९९ को जिलेके मजिस्ट्रेटने वस्तु-भण्डारको बन्द कर दिया।

*वस्तुस्थिति*

(२) रिपोर्टमें इस बातका उल्लेख नहीं है कि इस प्रस्तावका अमल कभी — एक भी मामलेमें — नहीं हुआ। परवानेदार इस बातसे इनकार करता है कि मजिस्ट्रेटने कभी वस्तु-भण्डारको बन्द किया था। उसने अपने कथनकी पुष्टिमें वाकरस्ट्रूमके दो जिम्मेदार यूरोपीय निवासियोंको गवाहीमें पेश किया है। इनमें से एक तो किसी बैंकका व्यवस्थापक है और दूसरा पिछली सरकारका अधिकारी रहा है। दोनोंने बयान दिये हैं कि भण्डार कमसे-कम अगस्तके अन्ततक तो खुला रहा था और हुसेन अमदने, जब लड़ाई शुरू होनेको थी और लोग ट्रान्सवालसे बाहर जाने लगे थे, खुद अपने भण्डारको बन्द किया था।

*सरकारी कथन*

(३) सन् १९०२ के जूनमें हुसेन अमदने वाकरस्ट्रूमके रेजिडेंट मजिस्ट्रेटको दरख्वास्त दी थी कि उसके पट्टेकी मियाद खत्म नहीं हुई है। इसपर मजिस्ट्रेटने बगैर

पूछताछ किये उसे ३१ दिसम्बर १९०२ तकके लिए व्यापारका परवाना दे दिया नवम्बरमें मजिस्ट्रेटको पता लगा कि उसके पट्टेकी मियाद तो वस्तुतः खत्म हो चुकी है और, फलतः, परवाना झूठ बहानोंके आधारपर लिया गया है।

### *वस्तुस्थिति*

(३) यह पहले ही बताया जा चुका है कि पट्टेकी मियाद तो सचमुच खत्म नहीं हुई थी, क्योंकि वह नया बनवा लिया गया था। इसलिए अगर कोई मामूली आदमी यह झूठे बहानोंका आरोप लगाता तो यह मान-हानि समझी जाती। मजिस्ट्रेटने जब परवाना दिया था तब उसने सम्बन्धित पट्टा देख लिया था।

### *सरकारी कथन*

(४) एशियाइयोंको व्यापारके परवाने देनेमें इस सिद्धान्तका खयाल रक्खा गया था कि लड़ाईके पहले जिनके पास व्यापार करनेके परवाने थे, और जिनका व्यापार लड़ाईके कारण, अर्थात् लड़ाई छिड़ जानेपर या लड़ाईकी आशंकासे बन्द हो गया था, उन्हींको नये परवाने दिये जायें। जब लड़ाई छिड़ी तब हुसेन अमद व्यापार नहीं करता था। और उसका व्यापार लड़ाई-सम्बन्धी किसी कारणसे बन्द नहीं हुआ था। अतः यह मामला उस सिद्धान्तके मातहत नहीं आता।

### *वस्तुस्थिति*

(४) जिन दिनों इस परवानेके प्रश्नपर सरकार विचार कर रही थी यह पद्धति प्रचलित थी कि लड़ाईके पहले जो लोग व्यापार करते थे और जिन्होंने लड़ाई शुरू होनेपर या लड़ाईकी आशंकासे व्यापार बन्द कर दिया था, उन सबको परवाने मिल सकते थे। जो भारतीय सन् १८९८में अथवा उससे पहलेसे व्यापार करते थे उनको परवाने मिल जाते थे। इसकी पुष्टिमें दर्जनों उदाहरण दिये जा सकते हैं। अर्जदारने फिजूल ही इस तर्कपर जोर दिया और वास्तविकता सरकारके सामने रखी। इसके अलावा लड़ाईकी आशंकासे अपनी दूकान किसीने बन्द की थी, तो वह हुसेन अमद थे।

### *सरकारी कथन*

(५) सरकारको यह पता लग गया था कि सम्बन्धित व्यापारीने बहुत-सा माल इकट्ठा कर लिया है और सो भी झूठे बहानोंके आधारपर परवाना हासिल करके। फिर भी ऐसे मामलेमें जितनी रिआयत सम्भव थी उतनी रिआयत करनेका फैसला किया गया और हुसेन अमदका परवाना नया करनेके लिए गत अप्रैल मासमें ही वाकरस्ट्रूमके रेजिडेंट मजिस्ट्रेटको लिख दिया गया था।

### *वस्तुस्थिति*

(५) रिपोर्टमें यह नहीं बताया गया कि सरकारको यह पता लगानेमें चार महीने लग गये कि उसके पास बहुत-सा माल था और इस बीचमें क्योंकि उसकी दूकान जबर-दस्ती और गैर-कानूनी रूपसे बन्द कर दी गई थी, इसलिए वह लगभग भूखों मरने लगा था। दूकानको जबरदस्ती बन्द करनेके लिए सरकारके पास कोई कानूनी अधिकार तो

था नहीं; इसलिए परवानेके बिना व्यापार करनेवाले आदमियोंके खिलाफ सरकारके पास एकमात्र उपाय यही था कि वह कानूनका भंग करनेके जुर्ममें उनपर मामला चलाती और जुर्माने करती।

इस खुले अत्याचारकी कहानीको पूरा करनेके लिए दो-एक बातें हम और बता दें। (श्री हुसेन अमदके साथ जानबूझ कर जो कार्रवाई की गई उसके वर्णनमें हमारी समझसे तो अत्याचार शब्द भी सौम्य है।) श्री हुसेन अमद ट्रान्सवालमें करीब दस वर्षसे रहते हैं और उन थोड़ेसे चुने हुए आदमियोंमें से हैं, जिनके नाम पुरानी सरकारने व्यापारके परवाने जारी करनेकी कृपा दिखाई थी। हमारे पाठक शायद यह जानते ही हैं कि गणराज्यके दिनोंमें अधिकांश ब्रिटिश भारतीय या तो ब्रिटिश प्रतिनिधिसे संरक्षण प्राप्त करके परवानेके बगैर व्यापार करते थे या अपने गोरे मित्रोंके नामपर जारी परवानोंके आधारपर। रिपोर्टमें स्वभावतः यह बात भी नही लिखी गई है कि श्री हुसेन अमदके साथ किये गये व्यवहारपर वाकरस्ट्रूमके गोरे निवासियोंको बहुत घृणा हुई और उन्होंने श्री हुसेन अमदको यह प्रमाणपत्र दिया कि वे परवाना पानेके पूर्णतः पात्र हैं। रिपोर्टमें कही इस बातका भी जिक्रतक नही कि वाकरस्ट्रूममें श्री हुसेन अमद ही अकेले भारतीय थे जिनकी दूकान वहाँ थी और उन्हे वहाँके यूरोपीय व्यापारिक संस्थानोंका समर्थन व्यापक रूपसे प्राप्त था।

अब हम दूसरे परवानेदार — रस्टेनबर्गके श्री सुलेमान इस्माइलके मामलेको लेते हैं।

### *सरकारी कथन*

(१) जिस समय लड़ाई छिड़ी, सुलेमान इस्माइलके पास रस्टेनबर्गमें व्यापार करनेका परवाना नहीं था। उसने तो अपने कारोबारकी यह शाखा उन दिनों स्थापित की, जब अंगरेजी फौजोंने यहाँ कब्जा किया।

### *वस्तुस्थिति*

(१) रिपोर्ट इस महत्त्वपूर्ण सत्यका उल्लेख नहीं करती कि फौजी अधिकारियोंने ही श्री सुलेमानको व्यापार करनेका परवाना दिया और इस तरह रस्टेनबर्गमें अपना कारोबार स्थापित करनेमें उनकी सहायता की।

### *सरकारी कथन*

(२) सन् १९०२ के अक्टूबरमें रस्टेनबर्गके रेजिडेंट मजिस्ट्रेटने श्री सुलेमान इस्माइलकी पेढ़ीके प्रतिनिधिको हिदायत की कि उन्हें उस शहरमें व्यापार करनेका अधिकार नहीं है।

### *वस्तुस्थिति*

(२) रिपोर्टमें यह भी लिखा जा सकता था कि रेजिडेंट मजिस्ट्रेट श्री सुलेमानको परवाना देनेवाले अपने पूर्वगामी अधिकारीके उत्तराधिकारी थे; इसलिए वे अपनेसे पहले अधिकारीके निर्णयपर आपत्ति न कर सकते थे और उस परवानेको वापस न ले सकते थे, जो इस बातको पूरी तरहसे जानते हुए दिया गया था कि अर्जदार लड़ाईसे पहले उस जिलेमें व्यापार नहीं करता था।

इसके अलावा विवरणमें और भी महत्त्वपूर्ण तथ्योंका उल्लेख नही किया गया है, जो यह परवाना जारी करनेसे पहले सबपर प्रकट थे। तथ्य ये थे कि दूसरे कितने ही जिलोंमें

ऐसी ही परिस्थितियोंमें ब्रिटिश भारतीयोंको परवाने दे दिये गये थे, यद्यपि ये लोग सम्बन्धित जिलोंमें पहले कभी व्यापार नही करते थे; और इन परवानोपर कभी आपत्ति भी नही की गई थी। प्रस्तुत प्रकरणमें जो आपत्ति की गई वह तो मजिस्ट्रेटकी सनकमात्र थी।

रिपोर्टमें यह भी लिखा जा सकता था कि, श्री सुलेमान इस्माइलके प्रति न्याय भी संयोगवश ही हुआ था, क्योकि उनका परवाना नया नहीं किया गया। इसका सरकारी तौरपर कारण यह बताया गया कि उन्हें भारतीय बस्तीमें चला जाना चाहिए। सौभाग्यसे उन्होंने यह बता दिया कि इस समय रस्टेनबर्गमें कही कोई अलग भारतीय बस्ती है ही नही। इस प्रकार घिरावमें आनेपर सरकारके सामने परवाना नया करनेके सिवा कोई चारा नही रहा। परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नरने अनुभव किया कि इस आदमीके साथ सचमुच अन्याय हुआ है। इतना ही नही, परवाना खत्म होनेपर व्यापार करनेके जुर्ममें मजिस्ट्रेटने उनपर जो जुर्माना किया था, वह कृपा करके उन्हें वापिस दे दिया गया।

इन दोनो दु:खजनक मामलोंकी चर्चा हम नही करना चाहते थे। परन्तु चूंकि *मर्क्युरी* में वह विवरण प्रकाशित कर दिया गया, इसलिए हमारा कर्तव्य हो गया कि उसका प्रतिवाद किये बगैर हम खामोश न बैठे रहें। इस सारे दु:खजनक प्रकरण और सरकारी जुल्मके बीच केवल एक बात ऐसी थी, जिसपर मनुष्यको कुछ सन्तोष हो सकता है। वह यह कि, यद्यपि प्रत्येक जगहके अधिकारियोने आपसमें पूरी तरह सलाह करके अपनी तरफसे शक्तिभर यत्न किया कि अर्जदारको न्याय न मिले, फिर भी परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नर सर आर्थर लालीने दोनों मामलोकी खुद जाँच की और मंद गतिसे ही सही, पीड़ित पक्षोंके साथ न्याय किया।

ट्रान्सवालमें अधिकारियोकी भावना कैसी है, यह इन दो मामलोसे प्रकट हो जाता है। इससे यह भी प्रकट होता है कि एशियाइयोके लिए एक अलग महकमा रखनेसे ब्रिटिश भारतीयोंको न्यूनतम न्याय मिलना भी कितना मुश्किल है। इस अन्यायकी तीव्रता तब और भी अधिक बढ़ जाती है, जब हम श्री चेम्बरलेनके उस आश्वासनको याद करते है, जो उन्होने प्रिटोरियामें हमारे शिष्टमण्डलकी इस तरहकी आशंकाओके उत्तरमें दिया था।[1] उन्होने कहा था कि उपनिवेशपर अंग्रेजोंका अधिकार होनेके बाद दिये गये परवाने कभी वापस नही लिये जायेंगे। वे इंग्लैंडके वातावरण से आये थे, अतः उनके लिए तो एक ब्रिटिश अधिकारीका आश्वासन उतना ही मूल्य रखता था, जितना कि एक बैंकका चेक। फिर, इसपर तो सरकारी तौरपर उनके दस्तखत भी थे।

इस दु:खदायी प्रकरणको समाप्त करनेसे पहले हम बता दें कि इस लेखमें हमने जो भी कुछ कहा है, उन दस्तावेजोंके आधारपर कहा है, जो हमारे पास मौजूद है। इतनेपर भी अगर किसीको लगे कि हमारी भाषा कड़ी हो गई है, तो हम लाचार है; क्योकि इन प्रकरणोसे हमारे दिलको ऐसी ही भारी चोट पहुँची है।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, १–१०–१९०३

१. देखिए "अभिनन्दनपत्र: चेम्बरलेनको", जनवरी ७, १९०३।

## ३५२. मतका मूल्य

डॉ० जेमिसनसे, जो केप उपनिवेशके प्रगतिशील दल (प्रोग्रेसिव पार्टी) के नेता हैं, एक रंगदार जातिके मतदाताने पूछा था कि रंगके प्रश्नके बारेमें उनके दलकी नीति क्या है? इसका उन्होंने नीचे लिखा लाक्षणिक उत्तर दिया था :

> (१) शिक्षा — जहाँ सम्भव हो अनिवार्य, और जहाँ जरूरत हो वहाँ निःशुल्क। यह नीति गोरे या काले सबके लिए लागू होती है, चाहे वे किसी भी प्रजातिके हों। (२) गोरे और रंगदार, सब सभ्य लोगोंको पूर्णतः समान अधिकार; केवल यहाँके आदिवासी लोगोंको हम असभ्य मानते हैं। पढ़ना-लिखना सभ्यताकी कसौटी नहीं है। (३) इस देशमें बसे हुए मलायी ब्रिटिश प्रजाजन हैं; इसलिए उनके खिलाफ हमारे दिलमें किसी प्रकारका दुर्भाव नहीं है। उनको भी वही अधिकार प्राप्त होंगे जो गोरोंको प्राप्त हैं।

केपमें रंगदार जातियोंके मत इतने अधिक हैं कि वे चुनावोंमें मुकाबला कड़ा होनेपर परिणाम उलटा कर देनेकी क्षमता रखती हैं और वहाँ हर उम्मीदवार अपने प्रतिस्पर्धीको शिकस्त देनेकी भरसक कोशिश कर रहा है। हाल ही में जनरल बोथाने देशी मजदूरोंके प्रश्नके बारेमें अपने मनकी बात साफ-साफ कह दी है। इसपर श्री मैरीमन उनको बहुत खरीखोटी सुना रहे हैं क्योंकि उनके दलको देशी लोगोंके मतोंकी जरूरत है। इसलिए देशी आदमियोंसे जबरदस्ती काम लेने तथा उनके कानूनोंसे वंचित करनेके अन्यायके विरुद्ध इन दिनों वे बहुत बढ़-बढ़कर भाषण दे रहे हैं; और जनरल बोथाके देशवासियोंकी स्थितिके साथ इन देशी लोगोंकी स्थितिकी तुलना भी कर रहे हैं। वे इस समय इस बातको आसानीसे भुला देते हैं कि गणराज्योंने इन देशी लोगोंकी कुछ भी भलाई नहीं की है, और उनकी भावनाओं और अधिकारोंकी तो वे और भी कम परवा करते हैं। इसलिए हम आशा करते हैं कि केपकी रंगदार जातियाँ अपनी शक्तिका समझदारीके साथ उपयोग करेंगी और मताधिकारका लाभ बराबर उठाती रहेंगी। ब्रिटिश संविधानमें न्याय प्राप्त करनेका यह एक बड़ा शक्तिशाली साधन है। यहाँ नेटालमें तो स्वर्गीय श्री एस्कम्बने हमसे यह अधिकार छीन लिया है। इससे हमारी जो हानि हुई है, उसे हम ही जानते हैं। लोकतन्त्री राज्यमें मताधिकार-रहित समाज एक विसंगति और मूल्यवान शक्तिसे वंचित समाज होता है।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, १–१०–१९०३

## ३५३. कृतज्ञताके लिए कारण

ऐसे अवसर बहुत कम ही उपस्थित होते हैं जब हम ट्रान्सवालकी सरकारको बधाई दे सकें। किन्तु इस हफ्ते ऐसा करनेके लिए हमें एक बहुत ही अच्छा कारण मिल गया है। सरकारी गज़टमें छपा है कि भारतीयोंको परवाने देनेका काम पुनः मुख्य परवाना-सचिवको सौंप दिया गया है। यह बहुत पहले ही कर देना उचित था। जबसे एशियाइयोंके लिए एक अलग मुहकमा खुला है, तभीसे भारतीय उसका विरोध करते रहे हैं। हम हृदयसे विश्वास करते हैं कि परवाने देनेके काममें यह सुधार एशियाई मुहकमा टूटनेका पूर्व-चिह्न ही है। यह मुहकमा नितान्त अनावश्यक और धनके अपव्ययका सूचक है। हमने पढ़ा है कि सरकार बहुत बड़े पैमानेपर नौकरियोंमें छँटनी कर रही है। विधानपरिषदने एशियाई मुहकमेके लिए एक खासी बड़ी रकम मंजूर की है। उस समय सर पर्सी फिट्ज़पैट्रिकने इसके विरोधमें हलकी आवाज उठाई थी। तो, इस मुहकमेको अब बन्द क्यों नहीं कर दिया जाता? इससे उपनिवेशकी कुछ हजार पौण्डकी बचत तो होगी ही, साथ ही वाजिब शिकायतका एक कारण दूर हो जायेगा। नेटाल और केप दोनों उपनिवेशोंमें भारतीयोंकी आबादी यहाँकी अपेक्षा बहुत अधिक है। परन्तु दोनोंमें से एक भी जगह स्वतन्त्र भारतीयों और अन्योंके बीच व्यवहारमें कोई फर्क नहीं किया जाता। इस बीच इस छोटीसी दयाके लिए हम सरकारके प्रति अपना आभार प्रदर्शित किये देते हैं और विश्वास करते हैं, कैप्टेन हैमिल्टन फॉउले दूसरे परवानोंके समान ही भारतीय परवानोंपर भी न्यायपूर्वक विचार करेंगे। हम ट्रान्सवालको भारतीयोंसे भरना नहीं चाहते; परन्तु हम यह तो जरूर चाहते हैं कि उनके मामलोंकी सुनवाई तुरन्त हो जाया करे, और शरणार्थियोंको परवाने पानेमें परेशानी और देरी न हो, और बेकारका खर्च न उठाना पड़े।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, १–१०–१९०३

## ३५४. भारतीयोंके लिए सुअवसर

एक सामाजिक बुराईका डटकर मुकाबला करनेपर पिछले हफ्ते हमने श्री स्टुअर्टको बधाई दी थी[1]; परन्तु इस बधाईमें कुछ दुःख भी है। ऐसा प्रतीत होता है कि वे इसमें अति करनेका लोभ संवरण नहीं कर सके हैं। हम देखते हैं कि उनमें सारे भारतीय समाजको घसीटनेकी हलकी वृत्ति मौजूद है। हमारा खयाल है कि श्री खानके बारेमें उनके उद्‌गारोंका कोई औचित्य नहीं है। लॉर्ड ब्रूऐम जैसे प्रामाण्य पुरुष कहा करते थे कि अपने मुअक्किलका गुनाह जानते हुए भी यदि कोई वकील उसकी तरफसे वकालत करनेसे इनकार करे तो वह अपने पेशेके अयोग्य है। सिद्धान्त यह है कि जबतक एक विधिवत् बने न्यायालयमें किसीका गुनाह साबित नहीं हो जाता तबतक कानूनकी दृष्टिमें वह बेगुनाह है। लॉर्ड ब्रूऐमका व्यवहार-सूत्र इस सिद्धान्तके आधारपर काफी सबल है। केप-विधानसभाके प्रसिद्ध सदस्यका मामला अभी ताजा है।

१. देखिए "मजिस्ट्रेट श्री स्टुअर्ट," २४–९–१९०३।

वह उसी अपराधका दोषी पाया गया था, जिसके लिए एक भारतीयपर मामला चलाया गया था। क्या श्री स्टुअर्ट यह कहेंगे कि जिस विद्वान वकीलने उसका बचाव किया था उसने उसका मामला लेकर उचित नहीं किया था? उस मामलेके बारेमें खानगी तौरपर हम सब अपनी-अपनी रायें रखते हैं। परन्तु क्या हम यह कह सकेंगे कि विधानसभाके सदस्यकी तरफसे अपीलमें बहस करनेवाले अग्रगण्य बैरिस्टर या कानूनी गुनाहके सम्बन्धमें संदेहका तत्त्व होनेसे अपीलको मंजूर करनेवाले प्रधान न्यायाधीश भी दोषी हैं — बैरिस्टर इसलिए कि उन्होंने ऊपरसे दोषी प्रतीत होनेवाले आदमीकी तरफसे वकालत की, और प्रधान न्यायाधीश इसलिए कि उन्होंने उसको बरी कर दिया? फिर, उस वकीलका कर्तव्य क्या है, जिसको पैरवीके बीचमें यह ज्ञात हो कि उसका मुअक्किल सचमुच अपराधी है? क्या वह मामलेको बीचमें ही छोड़ दे? यदि कहीं वह ऐसा कर बैठे तो हमारा खयाल है, उसका यह काम पेशेकी दृष्टिसे अत्यन्त अनुचित माना जायेगा। वास्तवमें प्रश्न बड़ा पेचीदा है। हमारा तो खयाल है कि ऐसे मामलोंमें निर्णय खुद प्रत्येक वकीलको ही करना चाहिए। मजिस्ट्रेटका काम यह नहीं है कि जब-कभी वह देखे कि मामला गलत है, मुलजिमके वकीलको उपदेश करने बैठ जाये। श्री खान और श्री स्टुअर्टके बीचकी झड़पके बारेमें अभी तो इतना ही। श्री स्टुअर्टने जो-कुछ अच्छा काम किया उसमें से इतनी कमी हो गई। लेकिन जो शेष बच रहा वह भी उन्हें प्रशंसाका पात्र बनानेके लिए काफी है। अपने अन्दर जो भी अच्छाई है उसे प्रकट करनेका भारतीय समाजके लिए यह एक अनूठा अवसर है। सही दिशामें किया गया एक जोरदार प्रयत्न बहुत बड़ी गन्दगी साफ कर सकता है। बस, लोकमतका एक जोरदार प्रवाह छोड़ देनेकी जरूरत है। यों पुलिस और मजिस्ट्रेटने पहले ही काफी काम कर दिया है। लोकमत उसकी मदद कर देगा। पुलिस और मजिस्ट्रेटकी मददके बिना केवल लोकमत इन बेहया गुनहगारोंकी गेंडेकी-सी मोटी खालपर कोई असर न करता। अब, जबतक मामला गरम है तबतक अगर वह चोट मारेगा तो उसका पूरा असर होगा। हम नहीं चाहते कि हममें से एक भी भारतीय ऐसा रहे जो इस अनैतिक और घृणित व्यापारसे अपनी आजीविका चलाये। हमें हर्ष है कि पुलिस और मजिस्ट्रेटने जो कार्रवाई की उसे हमारे देशभाई पूरी तरह पसन्द करते हैं। हम आशा करते हैं कि वे सम्बन्धित गुनहगारोंको समाजकी तरफसे उचित दण्ड देनेकी व्यवस्था भी जरूर करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

*इंडियन ओपिनियन*, १-१०-१९०३

# सामग्रीके साधन-सूत्र

*अमृत बाजार पत्रिका* : कलकत्तेका प्रमुख समाचारपत्र। सन् १८६८ में बंगला साप्ताहिककी तरह निकला : सन् १८९१ से दैनिक।

*इंग्लिशमैन* : कलकत्तेका दैनिक समाचारपत्र, १८३० में स्थापित। उस समय यह यूरोपीय लोकमतका प्रमुख मुखपत्र था।

*इंडियन ओपिनियन* : (१९०३–  ) : डर्बनसे प्रकाशित साप्ताहिक पत्र, जिसके १९१४ में दक्षिण आफ्रिका छोडने तक गांधीजी लगभग सम्पादक ही रहे। उसमें अंग्रेजी और गुजरातीके दो विभाग थे। प्रारम्भमें हिन्दी और तमिलके दो और विभाग भी चलाये गये थे।

*इंडिया* : भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी ब्रिटिश-समिति लन्दनका मुखपत्र। १८९८ से १९२१ तक। देखिये खण्ड २, पृष्ठ ४१०।

इंडिया आफिस रेकर्ड्स : १९४७ तक लन्दन स्थित इंडिया आफिस में रखे जाने वाले भारत-सम्बन्धी प्रलेख (डाक्यूमेंट्स) और कागजात, जिनका सम्बन्ध भारत-मन्त्रीसे होता था।

कलोनियल आफिस रेकर्ड्स. औपनिवेशिक कार्यालय लन्दनके पुस्तकालयमें स्थित। यहाँ दक्षिण आफ्रिकी कामकाज-सम्बन्धी अधिकतर प्रलेख और कागजात उपलब्ध हैं। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३५९।

गवर्नमेंट ऑफ इंडिया रेकर्ड्स, नेशनल आर्काइव्ज, नई दिल्ली।

गवर्नमेंट ऑफ साउथ आफ्रिका रेकर्ड्स, पीटरमैरित्सबर्ग और प्रिटोरिया आर्काइव्ज।

गांधी स्मारक संग्रहालय, नई दिल्ली : गांधी साहित्य और तत्सम्बन्धी अन्य कागजात, पत्रों, नकलों आदिका केन्द्रीय संग्रहालय। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३५९।

*टाइम्स ऑफ इंडिया* : एक प्रमुख भारतीय समाचारपत्र। १८६१ में चार समाचारपत्रोंके मिल जाने पर इस नामसे स्थापित हुआ। उन चारमें से *बाम्बे टाइम्स* नामक पत्र १८३८ में आरम्भ हुआ था।

डर्बन टाउन कौंसिल रेकर्ड्स, डर्बन।

*महात्मा : लाइफ ऑफ मोहनदास करमचन्द गांधी*, लेखक डी० जी० तेंदुलकर; ८ भाग, प्रकाशक जवेरी तेंदुलकर, बम्बई (१९५१–४)

*माई चाइल्डहुड विद् गांधीजी* : लेखक प्रभुदास गाधी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५७।

*नेटाल ऐडवर्टाइज़र* : डर्बनसे प्रकाशित समाचारपत्र।

*नेटाल मर्क्युरी* : (१८५२–  ), डर्बनसे प्रकाशित समाचारपत्र।

*नेटाल लॉ रिपोर्ट्स* : *साउथ आफ्रिकन लॉ रिपोर्ट्स* नेटाल प्रोविंशियल डिविजन, १८९२।

*नेटाल विटनेस* : (१८४६–  ) : पीटरमैरित्सबर्गका स्वतन्त्र दैनिक।

*रैंड डेली मेल*. जोहानिसबर्गका दैनिक समाचारपत्र।

*रिपोर्ट ऑफ दि सेवन्टीन्थ इंडियन नेशनल कांग्रेस* : २६, २७, २८ दिसम्बर १९०१ को कलकत्तामें हुए अखिल भारतीय कांग्रेस अधिवेशनका विवरण। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी १९०२; पृष्ठ १८६ और ३५।

*ल-रैडिकल* : (१८९७-१९१४) पोर्टलुई, मारीशसका फ्रान्सीसी दैनिक पत्र।

*वेजिटेरियन* : लन्दन शाकाहारी समिति (लन्दन वेजिटेरियन सोसाइटी) का मुखपत्र; देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३५०।

*वॉयस ऑफ इंडिया* : बम्बईका मासिक पत्र, जिसे १८८३ में दादाभाई नौरोजीने स्थापित किया था। १८९० में यह पत्र *इंडियन स्पेक्टेटर*के साथ संयुक्त हुआ और १८९१ में साप्ताहिक-पत्रके रूपमें निकलने लगा।

साबरमती संग्रहालय,अहमदाबाद : पुस्तकालय तथा संग्रहालय जिसमें गांधीजीसे सम्बन्धित अनेक प्रलेख, कागजपत्र, सरकारी रिपोर्टें, दक्षिण आफ्रिकी समाचारपत्रोंकी १८९३ से १९०१ तक की कतरनोंकी फाइलें आदि संग्रहीत हैं। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३६०।

*स्टैंडर्ड* : (१९००-१९०८) पोर्टलुई मॉरीशसका आंग्ल-फ्रान्सीसी दैनिक समाचारपत्र।

# तारीखवार जीवन-वृत्तान्त

## (१८९८-१९०३)

### १८९८

*फ़रवरी १८* : प्रिटोरिया-स्थित ब्रिटिश एजेंटको सूचना दी कि १८८५ के कानून ३ के सिलसिलेमें ट्रान्सवालके भारतीयोंका परीक्षात्मक मुकदमा दायर करनेका इरादा है।

*मार्च १* फुटकर व्यापारके परवानेके सम्बन्धमें सोमनाथ महाराजके मुकदमेकी पैरवी की।

*अगस्त ८*. परीक्षात्मक मुकदमेमें ट्रान्सवालके उच्च न्यायालयने फैसला दिया कि दूकान और निवासके स्थानोमें अन्तर नही किया जा सकता और भारतीयोको सरकार द्वारा मुकर्रर बस्तियोंमें ही रहना और व्यापार करना होगा।

*अगस्त ११*· परीक्षात्मक मुकदमेमें अदालतके विरोधी फैसलेकी सूचना देते हुए भारतके वाइसरायको तार।

*अगस्त २२* : ट्रान्सवाल-सरकार द्वारा बस्तियोंकी नीति कार्यान्वित करनेपर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसको हस्तक्षेपके लिए प्रार्थनापत्र।

*अगस्त २५*· उक्त प्रार्थनापत्रकी एक प्रति भारत-मन्त्रीको भेजी।

*अगस्त ३०* : भावनगरी और *इंडिया*को परीक्षात्मक मुकदमेके फैसलेके बारेमें तार दिया कि भारतीयोको श्री चेम्बरलेनके हस्तक्षेपका भरोसा है।

*सितम्बर १४*. प्रजातीय आधारपर भारतीयोंको व्यापारिक परवाना देनेकी इनकारीके खिलाफ़ डर्बन नगर-परिषदके सामने दादा उस्मानके मुकदमेकी पैरवी की, जो विफल हुई।

*नवम्बर ३* : प्रवासी-अधिनियमके अन्तर्गत आगमन और प्रस्थान-शुल्क लगानेके विरोधमें उप-निवेश-सचिवको तार।

*नवम्बर ११* : सरकारी *गज़ट*में बस्ती-सूचना प्रकाशित हुई।

*नवम्बर १८* बस्तियो-सम्बन्धी आज्ञापत्रके अमलसे होनेवाली गम्भीर आर्थिक हानिके बारेमें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेससे फरियाद।

*नवम्बर २१* : अपने सुझावके अनुसार डर्बनमें स्थापित अन्तर्राष्ट्रीय प्रिंटिंग प्रेसके उद्घाटन समारोहमें भाग लिया।

*दिसम्बर ५* : *इंडिया*को तारसे सुझाव दिया कि ब्रिटिश मित्र बस्ती-नीतिको रद करानेके प्रयत्नोंमें उच्चायुक्तके इंग्लैंड आगमनका फायदा उठायें।

*दिसम्बर २३* : परवाना-कानूनके बहस-तलब मुद्दोंपर तज्ञ यूरोपीय वकीलकी कानूनी राय माँगी।

*दिसम्बर ३१* : विक्रेता-परवाना अधिनियम, १८९७ के सम्बन्धमें उपनिवेश-मन्त्रीके नाम प्रार्थना-पत्रका मसविदा बनाया।

### १८९९

*जनवरी ११* : नेटाल-गवर्नरको भारतीयोंका परवाना-सम्बन्धी प्रार्थनापत्र भेजा।

*जनवरी २१*. परवानोंके सम्बन्धमें भारतीयोंकी शिकायतपर तुरन्त ध्यान देनेके लिए भारतके अखबारों और जनताके नाम पत्र।

*जनवरी २२*. प्रार्थनापत्र भेजकर परवाना-अधिनियममें वाइसरायसे हस्तक्षेपकी प्रार्थना।

*मार्च ८ (के पूर्व)* : पीटरमैरित्सबर्ग टाउन कौंसिलके लिए, प्लेगसे बचाव-सम्बन्धी पत्रकका अनुवाद करनेकी जिम्मेदारी ली।

*मार्च ११* : रोडेशियामें भारतीय व्यापारियोंकी निर्योग्यताओंके बारेमें *टाइम्स ऑफ इंडिया* और *इंडिया* से पत्र-व्यवहार किया।

*मार्च २०* : नेटालमें प्लेगके आतंकपर *टाइम्स ऑफ इंडिया*को विशेष लेख भेजा। यह दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंकी स्थितिपर लिखी गई लेखमालाका पहला लेख था।

*अप्रैल २५* : ट्रान्सवाल-सरकारने एशियाइयोंके लिए जुलाई १ से पहले बस्तियोंमें चले जानेका हुक्म निकाला।

*मई १७* : गांधीजीने १८८५ के कानून ३ को अमलमें लानेकी सरकारी कार्रवाइयोंके सम्बन्धमें श्री चेम्बरलेनको प्रार्थनापत्र भेजा।

*मई १८* : उपनिवेश-सचिव, पीटरमैरित्सबर्गको लिखा कि भारतीय प्रवासी-कानूनमें संशोधन सम्बन्धी विधेयकको गिरमिटिया मजदूरोंके हितमें संशोधित किया जाये।

*मई २७* : श्री चेम्बरलेनके नाम भेजे गये १७ मईके प्रार्थनापत्रकी नकल श्री वेडरबर्नको भेजी।

*जुलाई ६* : विक्रेता-परवाना अधिनियमके अमलसे उत्पन्न परेशानियोंके उदाहरणोंकी सूचना उपनिवेश-सचिवको दी।

*जुलाई १५* : भारत-मन्त्रीसे भेंट की और भारतीयोंके प्रति उदारताकी अपील की।

*जुलाई २०* : प्रतिनिधिकी हैसियतसे प्रिटोरियामें ब्रिटिश एजेंटसे मिले और उन्हें बस्तियों-सम्बन्धी सूचनासे उत्पन्न भारतीयोंकी समस्याओंका परिचय दिया।

*जुलाई २७ (के पूर्व)* : बस्ती-हुक्मके सम्बन्धमें जोहानिसबर्गके *स्टार*के प्रतिनिधिने भेंट की।

*जुलाई ३१* : नेटाल गवर्नरको प्रार्थनापत्र देकर माँग की कि परवाना-कानूनमें संशोधन किया जाये और व्यापारिक परवानोंके सम्बन्धमें नगरपालिकाओं, नगर-परिषदों आदिके मनमाने निर्णयोंके विरुद्ध भारतीयोंको सर्वोच्च न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) में अपील करनेका अधिकार दिया जाये।

*सितम्बर १* : ब्रिटिश-बोअर युद्धकी सम्भावनाके कारण भारतीयोंको ट्रान्सवालसे जानेकी सुविधाएँ देनेके लिए उपनिवेश-मन्त्रीको तार।

*अक्टूबर १४* : ट्रान्सवालके शरणार्थियोंको डेलागोआ-बेसे नेटाल आनेकी सुविधा देनेके बाबत जमानतें मुल्तवी करनेपर जोर देते हुए प्रभावशाली व्यक्तियोंके नाम परिपत्र।

*अक्टूबर १६* : नेटाल भारतीय कांग्रेसने शरणार्थियोंको सुविधा देनेपर सरकारको धन्यवाद दिया।

*अक्टूबर १७* : अंग्रेजी बोल सकनेवाले भारतीयोंकी सभामें निश्चय किया गया कि बोअर-युद्ध छिड़नेपर नेटाल-सरकारको सेवा-सहायता प्रदान की जाये।

गांधीजीका डॉ० प्रिंसने डॉक्टरी मुआयना किया और वे आहत-सहायक दलके कामके योग्य स्वस्थ पाये गये।

*अक्टूबर १९* : सरकारको स्वयंसेवकोंकी सूची भेजी और भारतीयों द्वारा सेवाएँ देनेके प्रस्तावके बारेमें सूचित किया। सूचीमें पहला नाम गांधीजीका था।

*अक्टूबर २३* : सरकारने भारतीयोंके सेवा-प्रस्तावका स्वागत किया और सूचित किया कि उचित अवसर आनेपर वह उसका लाभ उठायेगी।

*अक्टूबर २७* : शरणार्थियोंकी परिस्थिति और भारतीयोंके घायलोंको लाने-ले-जानेकी सेवाके प्रस्तावके सम्बन्धमें *टाइम्स ऑफ इंडिया*को पत्र लिखा।

*नवम्बर १* : डर्बन महिला देशभक्त संघ निधि (डर्बन वीमेन्स पैट्रिआटिक लीग फंड) में दान देनेकी अपील भारतीयोंमें प्रचारित की। ३–३–० पौंड चंदा स्वयं दिया और ६० पौंड से ऊपर चंदा इकट्ठा किया।

*नवम्बर १८* : *टाइम्स ऑफ इंडिया* को एक पत्र लिखकर विक्रेता-परवाना अधिनियमके कारण नेटालके भारतीय व्यापारियोंको होनेवाली अड़चनोका सविस्तर परिचय दिया।

*दिसम्बर १* : उपनिवेश-सचिवको तार देकर आहत-सहायक दल (एम्बुलैन्स कोर) के कर्तव्योंकी तफसील माँगी और पूछा कि वह किस तारीखको रवाना हो।

*दिसम्बर ४* : उपनिवेश-सचिवको सूचना दी कि किसी भी क्षण बुलावा पानेपर आहत-सहायक दलके स्वयंसेवक मोर्चेपर जानेको तैयार हैं। सेवाका प्रस्ताव स्वीकार करनेमें सरकारकी ढिलाईपर दुःख प्रकट किया तथा स्वयसेवकोंके और नाम भेजे।

*दिसम्बर ११ (के पूर्व)* : नेटालके बिशपसे पत्र लिखकर प्रार्थना की कि डॉ० बूथको आहत-सहायक दलके लिए मुक्त करें।

*दिसम्बर १३* : माननीय श्री एस्कम्बके निवासपर सभामें भाषण; समझाया कि भारतीयोंने युद्धके मोर्चेपर घायलोको लाने-ले-जानेकी स्वेच्छा-सेवाकी जो तत्परता दिखाई है, उसका उद्देश्य क्या है।

*दिसम्बर १४* : आहत-सहायक दलके साथ मोर्चेके लिए रवाना।

*दिसम्बर १५* : आहत-सहायक दल खियेवेली पहुँचा और उसे युद्ध-क्षेत्रके अस्पतालमें जानेका हुक्म मिला। कोलेंजोकी पराजय।

*दिसम्बर १७* : आहत-सहायक दल एस्टकोर्टके लिए रवाना।

*दिसम्बर १९* : आहत-सहायक दल अस्थायी तौरपर तोड़ दिया गया।

१९००

*जनवरी ७ (के पूर्व)*. गांधीजीने अधिकारियोंको और अधिक सहायता-कार्यके लिए भारतीयोंकी तत्परताकी सूचना दी।

*जनवरी ७* : भारतीय आहत-सहायक दलका पुनर्गठन और उसकी एस्टकोर्टमें नियुक्ति।

*जनवरी २१* : स्पिओन कॉपमें आहत-सहायक दलका कार्य। स्वयसेवक अग्नि-वर्षाके बीच घायलोंको उठा-उठाकर पड़ावमें ले गये।

*जनवरी २८* : तीन सप्ताहके कामके बाद फिर आहत-सहायक दल तोड़ दिया गया।

*मार्च १* : गांधीजीने लेडीस्मिथकी मुक्तिपर जनरल बुलरको बधाईका सन्देश भेजा।

*मार्च ८* : विलियम विल्सन हंटरकी मृत्युपर कांग्रेसके शोक-सन्देशकी प्रति प्रचारित की।

*मार्च १४* : बोअर युद्धमें विजय पानेपर अंग्रेज सेनापतियोंके अभिनन्दनके उपलक्ष्यमें भारतीयों और यूरोपीयोंकी सभामें भाषण दिया।

*मार्च १४ (के बाद)*. भारतीय आहत-सहायक दलके कार्यका सविस्तर वर्णन करते हुए *टाइम्स ऑफ इंडिया*को लेख।

*मार्च २९ (के पूर्व)* : अंग्रेज सेनापतियोंको बधाई देनेवाले प्रस्ताव और उनके जवाबकी प्रति डर्बनके अखबारोंको भेजी।

*अप्रैल ११* : डर्बन भारतीय अस्पतालके लिए चंदेकी अपील निकाली।

*अप्रैल २०, २४* : आहत-सहायक दलके स्वयसेवकों और नायकोंको उपहार भेजते हुए व्यक्तिगत पत्र।

*मई २१* : महारानी विक्टोरियाको उनके जन्मदिनपर भारतीयोंकी बधाई सूचित की।

*जुलाई ११* : दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोके हितमें उत्तम काम करनेपर लन्दनके पूर्व भारत संघ (ईस्ट इंडिया असोसिएशन) को धन्यवाद देनेवाला प्रस्ताव प्रचारित किया।

*जुलाई ३०* : भारतके दुष्कालमें मददकी अपील — समाचारपत्रोंके जरिए।

*अगस्त १४* : उपनिवेश-मन्त्रीको सूचना दी कि तुर्कीके सुलतानके राज्यकालकी रजत जयन्तीके अवसरपर भारतीयोंने सुलतानके प्रति अपना अभिनन्दनपत्र लंदन-स्थित तुर्की राजदूतको भेज दिया है।

*सितम्बर २४* : जिन रिक्शोंपर "केवल यूरोपीयोंके लिए" लिखा होता था, उनमें भारतीय रिक्शा-चालकों द्वारा रंगदार सवारियाँ ले जानेके निषेधका उपनियम बनानेके विरुद्ध डर्बनके टाउन क्लार्कको लिखा।

*अक्टूबर ८* : भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोके लिए किये गये कामोंके विषयमें दादाभाई नौरोजीको लिखा और आगामी कांग्रेस-अधिवेशनके लिए तत्सम्बन्धी प्रस्तावका मसविदा भेजा।

*दिसम्बर ६* : लॉर्ड रॉबर्ट्सको अभिनन्दनपत्र देनेके लिए केप टाउनके भारतीय नेताको तार दिया।

*दिसम्बर १४* : बिना छुट्टी लिए कामसे गैर-हाजिर रहनेके अपराधमें भारतीय गिरमिटिया मजदूर चेल्लागाडुपर दायर मुकदमेकी पैरवी की।

*दिसम्बर २१* : डर्बनके भारतीय मदरसेके वार्षिकोत्सवकी अध्यक्षता की।

*दिसम्बर २४* : नेटाल गवर्नरको भारतीय रिक्शा-चालकोंसे सम्बन्धित डर्बन नगर-परिषदके उपनियमके विरुद्ध अर्जी दी।

### *१९०१*

*जनवरी २३* : महारानीकी मृत्युपर नेटाल-निवासी भारतीयोंकी ओरसे उपनिवेश-सचिवके पास शोक-सन्देश भेजा।

*फरवरी २* : डर्बनमें महारानीकी मूर्तिपर हार चढ़ाया और शोक-सभामें उन्हें श्रद्धांजलि भेंट की।

*फरवरी १६* : भारतीय अकाल-निधिमें प्राप्त रकमोंकी जानकारी अखबारोंमें छपाई।

*मार्च ११* : महारानीका स्मारक-चित्र बाँटनेके लिए डर्बन स्कूलोंसे लिखा-पढ़ी की।

*मार्च २५* : पैदल-पटरीके प्रतिबन्धों और भारतीय-विरोधी कानूनोंकी सख्त अमलीके खिलाफ उच्चायुक्तको तार दिया और उसमें हवाला दिया कि सम्राट्की सरकारने जाति-भेदपर आधारित कानूनको यदि रद करनेका नहीं तो सुधारनेका ही सही, आश्वासन दिया था।

*मार्च ३०* : बोअर युद्धमें सेवाकार्यके सिलसिलेमें जनरल बुलरके खरीतोंमें केवल अपने (गांधीजीके) नामके उल्लेखपर अप्रसन्नता प्रकट करते हुए उपनिवेश-मन्त्रीको पत्र।

*अप्रैल १६* : भारतीय शरणार्थियोंको ट्रान्सवालमें वापस आनेके लिए परवाने न देनेकी बावत पूर्व भारत संघ (ईस्ट इंडिया असोसिएशन) और ब्रिटिश समितिको तार।

*अप्रैल २०* : दक्षिण आफ्रिकामें अबतक प्रचलित भारतीय-विरोधी कानूनों और भारतीयोंपर लादी गई अन्य निर्योग्यताओंके विषयमें इंग्लैंडके मित्रोंको पत्र।

डर्बन आगमनके समय बम्बईके भूतपूर्व गवर्नर लॉर्ड हैरिसको भारतीयोंका अभिनन्दन-पत्र।

*अप्रैल २७* : इंग्लैंडके मित्रोंको ट्रान्सवाल-प्रवेश सम्बन्धी भारतीयोंकी कठिनाइयोंका लेखा भेजा।

*अप्रैल ३०* : उपनिवेश-मन्त्रीको पत्र लिखकर आशा व्यक्त की कि भारतीय प्रवासी अधिनियमको बदलते हुए सरकार स्त्रियोंकी मजदूरी पुरुषोंकी मजदूरीसे आधी दरपर कायम रखेगी।

*मई ४* : दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंकी निर्योग्यताओंकी ओर ध्यान खींचते हुए बम्बई सरकारको पत्र।

*मई ९, १०* : जोहानिसबर्गके सैनिक गवर्नर और उच्चायुक्तको भारतीय मामलोंके लिए खोले गये प्रवासी मुहकमेकी अवांछनीयतापर पत्र।

*मई १८*. सर आल्फ्रेड मिलनर और श्री चेम्बरलेनसे प्रभावशाली व्यक्तियोंके संयुक्त शिष्ट-मण्डलके मिलनेकी आवश्यकतापर जोर देते हुए पूर्व भारत संघ और ब्रिटिश समितिको पत्र।

*मई २१* रायचन्दभाईके देहान्तपर रेवाशंकर झवेरीको समवेदनाका पत्र।

*जून १* : भारतीय-विरोधी कानूनोंके सम्बन्धमें सम्मिलित प्रयत्नकी दृष्टिसे ब्रिटिश समितिको सुझाव दिया कि पूर्व भारत संघके साथ सयुक्त-समितिका निर्माण किया जाये।

*जून २१* : दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोकी शिकायतोंके बारेमें ब्रिटिश समिति और पूर्व भारत सघके सम्मिलित प्रयत्नोंके विषयमें श्री भावनगरीको पत्र।

*अगस्त १३* यॉर्क और कॉर्नवालके ड्यूक और डचेसको नेटालके भारतीयोंका अभिनन्दनपत्र।

*अगस्त २३*. गाधीजीने डर्बन भारतीय प्रगतिशील सघके निर्माणके लिए बुलाई गई सभाकी अध्यक्षता की; संघके निर्माणकी योजनाको बेमौका माना।

*सितम्बर ११* : परवाना-कानूनके अन्तर्गत अपराध करनेके मुकदमेमें भारतीय नाईकी पैरवी करके उसे छुड़ाया।

*अक्टूबर १५*. गाधीजीके भारत लौटनेके समय नेटाल भारतीय काग्रेस तथा अन्य भारतीय सस्थाओने उन्हे अभिनन्दन-पत्र दिये।

*अक्टूबर १८* : गाधीजीने कीमती भेंटें वापस की और लोक-कल्याणके कामोंके लिए उनका ट्रस्ट बनानेकी सिफारिश की।

भारत रवाना हुए और वादा किया कि यदि समाजको आवश्यकता हुई तो वर्षके भीतर ही लौट आयेंगे।

*अक्टूबर ३०* पोर्ट लुई, मॉरिशसमें उतरे।

*नवम्बर १३, १६*. मॉरिशसके भारतीय समाजने स्वागत किया।

*नवम्बर १९*. मॉरिशससे भारतके लिए रवाना।

*दिसम्बर १४* पोरबन्दर होते हुए राजकोट पहुँचे।

*दिसम्बर १७*. राजकोटसे कलकत्ता काग्रेस जानेके लिए बम्बई रवाना; श्री भावनगरीसे मिले।

*दिसम्बर २७*. काग्रेस अधिवेशनमें दक्षिण आफ्रिका सम्बन्धी प्रस्ताव पेश किया।

## १९०२

*जनवरी १९* : दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोके प्रश्नपर कलकत्ताके अल्बर्ट हालकी आम सभामें भाषण दिया।

*जनवरी २७* : बोअर-युद्धमें भारतीय आहत-सहायक दलके कार्यपर कलकत्तेकी दूसरी सभामें भाषण दिया।

*जनवरी २८* : जहाजसे रंगून रवाना।

*जनवरी ३१* : रगून पहुँचे।

*फरवरी २*. इस तिथिके बादकी किसी तिथिको कलकत्ता लौटे और कई दिन गोखलेके साथ ठहरे।

*फरवरी २१ या २२* : तीसरे दर्जेसे राजकोट जानेके लिए रवाना। गोखले और डॉ० प्रफुल्लचन्द्र राय स्टेशन पहुँचाने गये। बनारस, आगरा, जयपुर और पालनपुर हर जगह एक-एक दिन ठहरे; बनारसमें एनी बेसेंटसे मिलने गये।

*फरवरी १६* : राजकोट पहुँचे।

वकालत जमानेके प्रयत्न : जामनगर, वेरावल और काठियावाड़की दूसरी जगहोंके मुकदमोंकी पैरवी।

*मार्च २६* : दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंकी तात्कालिक परिस्थितिपर विलियम स्प्रॉस्टन केनको टिप्पणियाँ लिखकर भेजी और आग्रह किया कि ब्रिटिश मित्र भारतीयोंकी शिकायतें दूर करनेका प्रयत्न करें।

*मार्च ३०* : *इंडिया*को 'टिप्पणियाँ' भेजीं।

दक्षिण आफ्रिकाके सम्बन्धमें कलकत्ता कांग्रेसमें स्वीकृत अपने प्रस्तावकी प्रति श्री भावनगरीको भेजी।

*मार्च ३१* : खान और नाजरको लिखा कि यदि मेरी उपस्थिति दक्षिण आफ्रिकामें जरूरी हो तो भारतमें जमनेके पहले ही मुझे वहाँ वापस बुला लेना चाहिए।

*अप्रैल ८* : गोखलेको शाही विधान-परिषदमें बजट-सम्बन्धी भाषणपर बधाईका पत्र।

*अप्रैल ११* : गिरमिटिया भारतीयोंके बच्चोंपर व्यक्ति-कर लगाकर अप्रत्यक्ष रूपमें उन्हें भारत लौटनेके लिए बाध्य करनेवाले नेटालके विधेयकके बारेमें *टाइम्स ऑफ इंडिया*को विशेष लेख दिया।

*मई १* : राजकोटमें प्लेगकी आशंकाके समय राज्य स्वयंसेवक प्लेग-समितिके मन्त्रीका काम सँभाला।

*मई १०* : फिर *टाइम्स ऑफ इंडिया*में नेटाल-विधेयककी संलिपि देते हुए लिखा कि वह इस अन्यायके विरुद्ध अपनी आवाज उठाये। विधेयक उन्हीं दिनों पास हुआ था और शाही स्वीकृतिके लिए गया था।

*मई ३१* : नये व्यक्ति-कर कानूनसे पैदा हुई कठिनाइयोंपर *वॉयस ऑफ इंडिया*में सविस्तर विशेष लेख लिखा और उसमें आशा प्रकट की कि लॉर्ड कर्जन इसमें हस्तक्षेप करेंगे और श्री चेम्बरलेन उपनिवेशोंपर अपने प्रभावका उपयोग न्यायके पक्षमें करेंगे।

*जून ३* : अपनी आर्थिक स्थिति खराब होनेके कारण डर्बनके मित्रोंसे दक्षिण आफ्रिकाका काम चलानेके लिए रकम भेजनेका आग्रह किया।

*जून ५* : भारत-मन्त्रीको बम्बई प्रेसिडेन्सी असोसिएशनने गांधीजीका तैयार किया हुआ प्रार्थना-पत्र भेजा। उसमें भारतीय प्रवासी-कानूनको व्यक्ति-करकी उपधारा शामिल करके संशोधित करनेवाले नेटाल-कानूनका विरोध और सरकारी नियंत्रणके अधीन उपनिवेशमें प्रवासियोंका आना अस्थायी रूपसे रोक देनेकी माँग की गई थी।

*जुलाई १०* : बम्बईमें वकालत करनेके विचारसे राजकोट छोड़ा।

*जुलाई ११* : बम्बई पहुँचे।

*अगस्त १* : गोखलेको सूचित किया कि बम्बईमें दफ्तरके लिए जगह मिल गई है; वे योग्य सेवाके लिए सदा तत्पर हैं।

*अगस्त ६* : वकालतके पेशेमें अड़चनोंकी चर्चा करते हुए देवचन्द पारेखको पत्र।

*नवम्बर ३* : शुक्लको पत्र : उन्हें सूचित किया कि नेटालसे वहाँ वापस आनेका निमन्त्रण तार द्वारा आया है मगर अपनी शारीरिक अशक्ति और बच्चोंके अस्वास्थ्यके कारण जानेमें असमर्थता प्रकट की है।

*नवम्बर १४* : गोखलेको २० नवम्बरको दक्षिण आफ्रिका रवाना होनेके विचारकी सूचना।

*दिसम्बर २५*: इस तिथिके पहले डर्बन पहुँचे। उपनिवेश-मन्त्रीसे शिष्टमण्डलकी भेंटकी तिथि बदलनेके लिए नेटाल सरकारको लिखा।

*दिसम्बर २८*: नेटालके भारतीयोंके शिष्टमण्डलका नेतृत्व किया। नेटाली भारतीयोंकी शिकायतोंके बारेमें श्री चेम्बरलेनको प्रार्थनापत्र दिया।

*दिसम्बर २८ या २९*: पुलिस सुपरिटेंडेंटकी सहायतासे श्री चेम्बरलेनके सामने प्रिटोरियावासी भारतीयोंके शिष्टमण्डलके नेतृत्वके लिए ट्रान्सवालमें प्रवेशकी अनुमति प्राप्त की।

## १९०३

*जनवरी १*: गांधीजी प्रिटोरिया पहुँचे।

*जनवरी २*: सहायक उपनिवेश-सचिवसे मुलाकात की; किन्तु कहा गया कि वे ट्रान्सवालके निवासी नहीं हैं, अतः शिष्टमण्डलमें शामिल नहीं हो सकते।

*जनवरी ६*: ब्रिटिश भारतीय समिति (ब्रिटिश इंडियन कमेटी) ने लेफ्टिनेंट गवर्नरसे प्रार्थना की कि गांधीजीको श्री चेम्बरलेनसे मिलनेवाले शिष्टमण्डलमें शामिल होनेकी इजाजत दी जाये।

*जनवरी ७ (के पूर्व)*: गांधीजीने शिष्टमण्डलकी ओरसे दिये गये प्रार्थनापत्रका मसविदा बनाया। शिष्टमण्डलके नेता जॉर्ज गॉडफ्रे थे।

इसी मासमें इसके कुछ बाद गांधीजीने गिरमिटिया भारतीयोंके बारेमें वाइसरायको पत्र लिखकर प्रार्थना की कि यदि उन्हें ब्रिटिश नागरिकताके प्राथमिक अधिकार नहीं दिये जा सकते तो नेटालसे कहा जाये कि भारतीय मजदूर वहाँ बुलाये ही न जायें।

*जनवरी ३०*: दादाभाई नौरोजीको श्री चेम्बरलेनसे शिष्टमण्डलकी बातचीतके बारेमें लिखा और नेटालमें गिरमिटिया मजदूरोंके आनेपर रोक लगानेकी बात सुझाई।

*फरवरी ५*: छगनलाल गांधीको पत्र, जिसमें दक्षिण आफ्रिकामें रुकनेकी अवधिकी अनिश्चितताकी बात लिखी और बताया: "यहाँ फूलोंकी सेज नहीं है।"

*फरवरी १२*: *बाजारों*के निर्माणके विषयमें लेफ्टिनेंट गवर्नरसे भेंट की।

*फरवरी १६*: सार्वजनिक कार्यके विचारसे जोहानिसबर्ग रहना तय किया और ट्रान्सवालके सर्वोच्च न्यायालयके वकीलोंमें नाम दर्ज कराया।

*फरवरी १८*: *बाजारों*के बारेमें उपनिवेश-सचिवको अपना मत सूचित किया।

*फरवरी २१*: ट्रान्सवाल और ऑरेंज रिवर कालोनीके भारतीय प्रश्नपर दादाभाई नौरोजीको विस्तृत वक्तव्य भेजा। गोखलेको पत्रमें लिखा कि ट्रान्सवालमें घटनाएँ तेजीसे घट रही है और वे "घमासानके बीचमें" हैं।

*मार्च १६*: दक्षिण आफ्रिकाकी स्थितिपर दादाभाई नौरोजीको नियमित वक्तव्य भेजा।

*अप्रैल २५*: *वेजिटेरियन*में दक्षिण आफ्रिका आनेके अभिलाषी प्रवासियोंको निर्देश-रूप लेख लिखा। उपनिवेश-सचिवको हाइडेलबर्गमें भारतीय व्यापारियोंपर पुलिसके अत्याचारके विषयमें पत्र लिखा।

*अप्रैल २७*: हाइडेलबर्गकी घटनाओंके विषयमें अपना पत्र अखबारोंको दे दिया।

*मई १*: १९०३ की सूचना ३५६ के विषयमें लेफ्टिनेंट गवर्नरको विलियम हॉस्केन और जोहानिसबर्गके अन्य निवासियोंका प्रार्थनापत्र भेजा और यह राय प्रकट की कि प्रवासको नियमित करनेवाला कानून बनाना अधिक स्वीकार्य होगा।

*मई ६*: भारतीयोंको *बाजारों* आदिमें सीमित करनेवाले भारतीय विरोधी कानूनोंके अमलके विरोधमें जोहानिसबर्गमें आम सभा की और माँग की कि वे कानून रद किये जायें।

*मई ९* : दादाभाई नौरोजीको हाइडेलबर्ग और जोहानिसबर्गकी घटनाओं, सूचना ३५६ के बारेमें यूरोपीयोंके प्रार्थनापत्र तथा जोहानिसबर्गकी आम सभाके विवरण भेजे।

*मई १०* : दादाभाईको पत्र लिख कर सूचित किया कि प्रवासियोंको सीमित करनेके लिए, कुछ परिवर्तनोंके साथ, नेटालके ढंगका विधान स्वीकार किया जा सकता है; *बाजार*के सिद्धान्तको भी स्वीकार करनेकी तैयारी इस शर्तपर प्रकट की कि वह कानूनन लादा न जाये।

एक पत्रमें गोखलेको लिखा कि जोहानिसबर्गमें वे 'बड़ी कठिनाइयोंसे' बस सके हैं। दक्षिण आफ्रिकामें एशियाई प्रवासके प्रश्नके अध्ययन और भारतमें उसके विरोधमें आन्दोलन चलानेकी प्रार्थना की।

*मई १६* : दादाभाई नौरोजीको खबर दी कि ट्रान्सवाल-सरकार पंजीकरण (रजिस्ट्रेशन)-करके रूपमें ३ पौंड वसूल करनेका प्रयत्न कर रही है।

*मई २२* : अनिवार्य पंजीकरण-कर और उपनिवेशमें भारतीयोंके सामान्य प्रश्नपर ट्रान्सवालके गवर्नर लॉर्ड मिलनरसे मिलनेवाले शिष्टमण्डलका नेतृत्व किया।

*मई २४* : शिष्टमण्डलने लॉर्ड मिलनरके सामने जो माँगें रखीं उनसे दादाभाई नौरोजीको अवगत कराया।

*मई ३१* : दादाभाई नौरोजीसे अपने साप्ताहिक पत्र-व्यवहारमें आग्रह किया कि ऑरेंज रिवर कालोनीमें भारतीयोंको भेदभाव भरे बर्तावसे बचानेकी जरूरत है। केप कालोनीमें *बाजार*-कानूनके बनाये जानेकी सूचना दी और वर्तमान कानूनको रद करानेमें ही प्रयत्नोंको केन्द्रित करनेकी आवश्यकतापर जोर दिया।

*जून ४* : मनसुखलाल नाजरके सम्पादकत्वमें *इंडियन ओपिनियन*का प्रकाशन प्रारम्भ।

*जून ६* : गांधीजीने ब्रिटिश समितिको तार दिया कि आशा है इंग्लैंड सरकार भूतपूर्व भारतीय गिरमिटिया मजदूरोंका अनिवार्य रूपसे वापस किया जाना मंजूर नहीं करेगी।

दादाभाई नौरोजीको लिखे गये अपने नियतकालीन वक्तव्यमें भूतपूर्व भारतीय गिरमिटिया मजदूरोंके अनिवार्य रूपसे वापस किये जानेका विरोध किया और इस बातपर जोर दिया कि यदि नेटाल और केप कालोनीमें *बाजार* और बस्तियोंके कानून स्थायी बना दिये गये तो उससे भारतीय हितोंकी बड़ी हानि होगी।

*जून ८* : ट्रान्सवालके गवर्नरको एशियाई दफ्तर और *बाजार*-सूचनाकी हानियोंका विवरण तथा बस्तियोंमें जमीनकी मालिकीपर रोक उठाने और जीवन तथा व्यापार करनेकी स्वतन्त्रता लौटानेकी माँग करते हुए अर्जी दी।

*जून १०* : भारतीयोंको वतनियोंके साथ शामिल करनेवाले नगरपालिका चुनाव अध्यादेशके मसविदेमें सुधारकी माँग करते हुए नेटाल विधानसभाको अर्जी दी।

*जून २३* : प्रवासी-प्रतिबन्धक विधेयकमें सुधार सुझाते हुए नेटाल विधान-परिषदको प्रार्थनापत्र दिया।

*जून ३०* : हरिदासभाई वोराको पत्र लिखा, जिसमें धन्धेकी सफलता, सार्वजनिक कार्यमें होनेवाले श्रम और लगभग बारह वर्ष जोहानिसबर्गमें रहनेकी अपनी तैयारीका उल्लेख किया।

*जुलाई ४* : एशियाई विरोधी कानूनोंको नरम करनेके विरोधमें जो लोग अपने स्वार्थके कारण हो-हल्ला मचा रहे थे, गांधीजीने उन्हें जवाब देनेवाले "सुसंचालित आन्दोलन" की भारत भरमें आवश्यकतापर जोर देते हुए गोखलेको पत्र लिखा।

*जुलाई १८* : दादाभाई नौरोजीको भारतीय विरोधके बावजूद म्यूनिसिपल ऑर्डिनेन्स पास किये जाने और ट्रान्सवाल सरकार द्वारा भारतीयोके लिए ५४ बस्तियाँ बनाई जानेके प्रस्तावकी खबर दी।

*जुलाई २५* : दादाभाई नौरोजीको *बाजार*-सूचनापर अमल करनेके ट्रान्सवाल विधान-परिषदके प्रस्तावकी सूचना दी।

*अगस्त ३* : अपने साप्ताहिक वक्तव्यमें चालू परवानोंके विषयमें ढीलकी माँग की, ट्रान्सवालके भारतीय शरणार्थियोकी अभीतक जारी कठिनाइयोंका उल्लेख किया और लॉर्ड मिलनरके इस आरोपका खण्डन किया कि पृथक्करणकी नीतिका आधार स्वच्छता है।

*अगस्त ४* : शरणार्थी समस्याके विषयमें ब्रिटिश समिति, *इंडिया* और *टाइम्स ऑफ इंडिया*को तार।

*अगस्त १०* : दादाभाई नौरोजीको ४ अगस्तके तारका विस्तृत स्पष्टीकरण भेजा।

*अगस्त २४* : श्री चेम्बरलेनको नेटाल विधानसभा द्वारा स्वीकृत प्रवासी-प्रतिबन्धक विधेयकपर शाही स्वीकृति रोकनेके लिए प्रार्थनापत्र।

*सितम्बर २* : *इंडियन ओपिनियन*में आशा व्यक्त की कि कोई भी भारतीय *बाजार*-सूचनासे छूट पानेके लिए गिड़गिडायेगा नही।

*सितम्बर ७* : दादाभाई नौरोजीको इस आशयका पत्र कि, गिरमिटिया मजदूरोके अनिवार्य रूपसे भारत लौटाये जाने और उन्हें मजदूरीका कुछ अश भारतमें चुकाया जानेके प्रयत्नोको इंग्लैडमें जरा भी मजूरी न मिले।

# टिप्पणियाँ

तिलक, लोकमान्य बाल गंगाधर (१८५६–१९२०) : भारतके महान राष्ट्रीय नेता, विद्वान और ग्रंथकार। देखिए खण्ड २, पृष्ठ ४१८।

दादाभाई नौरोजी (१८२५–१९१७) : पथदर्शक भारतीय राजनीतिज्ञ, ब्रिटिश संसदके और लंदनमें कांग्रेसकी ब्रिटिश समितिके सदस्य। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९३।

बाम्बे प्रेसिडेन्सी असोसिएशन : १८८५ में बम्बईमें स्थापित संस्था, जिसका उद्देश्य "सब उचित और वैध उपायोंसे लोकहितकी हिमायत और वृद्धि करना था।"

भावनगरी, सर मंचरजी मेरवानजी (१८५१–१९३३) : भारतीय बैरिस्टर, जो इंग्लैंडके निवासी बन गये थे; भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी ब्रिटिश समितिके तथा ब्रिटिश संसदके सदस्य। देखिए खण्ड २, पृष्ठ ४२०।

मेहता, सर फीरोजशाह (१८४५–१९१५) : भारतीय कांग्रेसके एक प्रमुख नेता; देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९५।

रानडे, महादेव गोविन्द (१८४२–१९०१) : एक यशस्वी भारतीय नेता, समाज-सुधारक और ग्रंथकार। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके संस्थापकोंमें से एक। देखिए खण्ड २, पृष्ठ ४२०–२१।

रुस्तमजी, पारसी जीवनजी : नेटालके एक प्रमुख भारतीय व्यापारी। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९५।

वेडरबर्न, सर विलियम : भारतीय सिविल सर्विसके एक यशस्वी सदस्य। बादमें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेससे सम्बन्ध जोड़ लिया। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९६।

हंटर, सर विलियम विल्सन (१८४०–१९००) : भारतीय सिविल सर्विसके विशिष्ट सदस्य। लेखक और भारतीय मामलोंके अधिकारी विद्वान। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९६।

# सांकेतिका

## अ



## आ

## इ



## ई

## ऐ



## ओ



## क

## ख



## ग

### घ



### च

## ज

## ध



## न

फ

भ

## म

## य

## व

## ह